श्री शिवपुराण

॥ प्रथम खण्ड ॥

शिवपुराण—महात्म्यम्

॥ शिवपुराण—महत्व ॥

हे हे सूत महाप्राज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्प्रभो ।
आख्याहि मे कथासारं पुराणानां विशेषतः ।१।
सदाचारश्च सद्भक्तिर्विवेको वर्द्धते कथम् ।
स्वविकारनिरासश्च सज्जनैः क्रियते कथम् ।२।
जीवाश्च सुरतां प्राप्ताः प्रायो घोरे कलाविह ।
तस्य संशोधने किं हि विद्यते परमायनम् ।३।
यदस्ति वस्तु परमं श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ।
पावनं पावनानां च साधनं यद्वदाधुना ।४।
येन तत्साधनेनाशु शुद्धयत्यात्मा विशेषतः ।
शिवप्राप्तिर्भवेत्तात सदा निमलचेतसः ।५।

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी! हे सर्वसिद्धान्तो के ज्ञाता महा-पंडित! आप विशेषकर पुराणों की कथा का सार मेरे प्रति कहिये ।१। सदाचार, भक्ति के द्वारा विवेक की वृद्धि किस प्रकार होती है और सज्जन अपने विकारों को किस प्रकार शान्त करते हैं सो कहिये ।२। इस घोर कलि-काल में प्राणी असुरत्व को प्राप्त हुये हैं, उनका शोधन किस प्रकार हो सो आप कहने की कृपा करें ।३। जो वस्तु अत्यन्त श्रेष्ठ और कल्याण देने वाली है तथा जो पवित्रों से भी पवित्र है उत्तम साधन रूप है सो आप मुझसे कहें ।४। आत्मा जिस साधन के द्वारा शुद्ध हो जाता है और सदा निर्मल चित्त वाले व्यक्तियों को भगवान् शिव प्राप्त हो जाते हैं ।५।

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल श्रवणप्रीतिलालसः ।
अतो विचार्य्य सुधिया वच्मि शास्त्रं महोत्तमम् ।६।
सर्वसिद्धांतनिष्पन्नं भक्त्यादिकविवर्द्धनम् ।
शिवतोषकरं दिव्यं शृणु वत्स रसायनम् ।७।
कलिव्यालमहात्रासविध्वंसकरमुत्तमम्
शैवं पुराणं परमं शिवेनोक्तं पुरा मुने।८।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं महद्यस्य सुधीमतः ।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने ।९।
एतच्छिवपुराणं हि परमं शास्त्रमुत्तमम् ।
शिवरूपं क्षितौ ज्ञेय सेवनीयं च सर्वथा ।१०।
पठनाच्छ्रवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः ।
सद्यः शिवपदप्राप्तिं लभते सर्वसाधनात् ।११।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांक्षितं पठनं नाभिः ।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम् ।१२।

सूतजी ने कहा—हे मुनिवरों ! तुम्हारी प्रीति कथा सुनने में है । इस लिए तुम धन्य हो । इसी कारण मैं बुद्धिपूर्वक विचार करके यह श्रेष्ठ शास्त्र कहता हूँ ।६। यह सर्व सिद्धान्त से सम्पन्न भक्ति आदि की वृद्धि करने वाला तथा शिवजी का सन्तोष करने वाला परम दिव्य रसायन स्वरूप है ।७। कालरूपी महासर्प का विध्वंसक यह परम श्रेष्ठ शिवपुराण है । हे मुने ! यह भगवान् शिव के द्वारा कहा गया है ।८। जिसने जन्म जन्मान्तर अत्यन्त श्रेष्ठ आर पुण्यकर्म किये हों, उस मनुष्य की अत्यन्त प्रीति इस महापुराण के श्रवण में होती है ।९। यह शिवपुराण परमश्रेष्ठ शास्त्र है । पृथिवी में इस शिव-स्वरूप ही जानकर श्रद्धापूर्वक इसका सदा सेवन करे ।१०। इसके पढ़ने और श्रवण करने से मनुष्य शीघ्र ही श्रेष्ठ भक्ति से सम्पन्न होता और उसे शिव-साधन रूप परम पद की शीघ्र प्राप्ति होती है ।११। इसलिये मनुष्यों को इसे सब प्रकार से पढ़ना ही उचित है । क्योंकि इसके प्रेमपूर्वक पढ़ने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।१२।

पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ।१३।
राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ।
तत्पुण्यं लभते शम्भोःकथाश्रवणमात्रतः ।१४।
ये शृण्वन्ति मुने शैवं पुराणं शास्त्रमुत्तमम् ।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः ।१५।
शृण्वतां तत्पुराणं हि तथा कीर्तयतां च तत् ।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ।१६।
गन्तुं निःश्रेयस स्थानं येऽभिवाञ्छंति देहिनः ।
शैवम्पुराणममलं भक्त्या शृणुवन्तु ते सदा ।१७।
सदा श्रोतुं यद्यशक्तो भवेत्स मुनिसत्तम् ।
नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम् ।१८।
यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् ।
पुण्यं मासादिषु मुने श्रूयाच्छिवपुराणकम् ।१९।

शिव पुराण का श्रवण करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता और अनेक भोगों का उपभोग करने पर अन्त में उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है ।१३। राजसूय यज्ञ या सौ अग्निष्टोम से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शिवजी की कथा सुनने मात्र से ही मिल जाता है ।१४। हे मुने ! श्रेष्ठ शिव पुराण का जो मनुष्य श्रवण करते हैं, वे मनुष्य नहीं, वरन् साक्षात् रुद्र रूप ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।१५। इसके सुनने वालों और कीर्तन करने वालों की चरणरज भी तीर्थ स्वरूप हैं, ऐसा मुनि-जनों का कथन है ।१६। कल्याणप्रद स्थान की कामना वाले जीवों को नित्य शिवजी के निर्मल पुराण का श्रवण करना चाहिए ।१७। यदि सब काल सुनने में समर्थ न हो तो नियमर्वक दो घड़ी ही इसे सुने ।१८। यदि प्रति दिन सुनने में समर्थन न हो तो पवित्र महीनों में श्रवण करे ।१९।

मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा क्षणं च वा
ये शृण्वन्ति पुराणं तन्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ।२०।

तत्पुराणं च शृण्वानः पुरुषो यो मुनीश्वर ।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ।२१।
तत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शम्भोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चल भवेत् ।२२।
विशेषतः कलौ शैवपुराण श्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिसाधनकृत्मुने ।२३।
पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसंकीर्तनं तथा ।
कल्पद्रुमफल सम्यङ् मनुष्याणां न संशयः ।२४।
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम् ।
हिताय विदधे षम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम् ।२५।
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान् ।
शम्भोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ।२६।

जो व्यक्ति एक मुहुर्त, उससे आधा या क्षणमात्र को भी सुनते हैं, वे दुर्गति को प्राप्त नहीं होते ।२०। हे मुनीश्वर ! इस महा पुराण को जो प्राणी सुनते हैं, वे कर्म रूपी विकराल वन को भस्म कर संसार-सागर से पार हो जाते हैं ।२१। हे मुने ! सम्पूर्ण यज्ञों से जो फल प्राप्त होता है, वह शिव पुराण के सुनने से अवश्य मिल जाता है ।२२। विशेषकर कलि काल में मुक्ति का साधन रूप, शिवपुराण के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म नहीं है ।२३। सुनना या उनका नाम संकीर्तन करना, मनुष्यों के लिये कल्प वृक्ष के समान फलदायी है, इसमें सन्देह नहीं है ।२४। कलियुग के जिन दुर्मधी पुरुषों ने अपने धर्म को छोड़ दिया है, उनके लिए भी यह अमृत रूप हित करने वाला है ।२५। इस अमृत को जो पुरुष पीता है, वह अजर अमर हो जाता है और शिवजी के कथा-मृत से कुल को भी अजर अमर कर देता है ।२६।

सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्या विशेषतः ।
एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी ।२७।
एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रतः ।
किं ब्रवीमि फलं तस्य शिवश्चित्तं समाश्रयेत् ।२८।

एतच्छिवपुराणस्य कथा भवति यद्गृहे ।
तीर्थभूतं हि तद्गेहं बसतां पापनाशनम् ।२९।
अश्वमेधसहस्राणि बाजतेयशतानि च ।
कलां शिवपुराणस्य नार्हन्ति खलु षोडशीम् ।३०।
गंगाद्याः पुण्यनद्यश्च सप्तपुर्यो गया तथा ।
एतच्छिवपुराणस्य समतां यांति न क्वचित् ।३१।
नित्यं शिवपुराणस्य श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ।
स्वमुखेन पठेद्भक्त्या यदीच्छेत्परमां गतिम् ।३२।
एतच्छिवपुराणं यो वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
पठेद्वा प्रीतितो नित्यं स पुण्यात्मा न संशयः ।३३।

विशेषकर इसका सर्वदा सेवन करे । इसकी कथा परम पवित्र करने वाली है ।२७। इस कथा के सुनने मात्र से ही जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं क्या कहूं ? शिवजी में अपने मन को समर्पण करदे ।२८। जिस गृह में शिवपुराण की कथा होती है, वह साक्षात् तीर्थ के समान है, उसमें निवास करने से पापों का नाश हो जाता है ।२९। हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ भी शिवपुराण की सोलहवीं कला के समान नहीं है ।३०। सहस्र गङ्गा आदि सप्त नदी, सप्तपुरी तथा गया भी इस की समता नहीं कर सकतीं ।३१। परमगति की कामना वाले पुरुष को भक्तिपूर्वक नित्यप्रति शिवपुराण का एक या आधे श्लोक का पाठ करना चाहिये ।३२। इस का जो पुरुष भक्तिपूर्वक पाठ करता और नित्य श्रवण करता है, उसके पुण्यात्मा होने में सन्देह नहीं है ।३३।

एतच्छिवपुराणं यः पूजयेन्नित्तमादरात् ।
स भुक्त्वेहाखिलान्कामानंते शिवपदं लभेत् ।३४।
एतच्छिवपुराणस्य कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः ।
पट्टवस्त्रादिना सम्यक् सत्कारं स सुखी सदा ।३५।
शैवं पुराणममलं शैवसर्वस्वमादरात् ।
सेवनीयं प्रयत्नेन परत्रेह सुखेप्सुना ।३६।
चतुर्वर्गप्रदं शैवं पुराणममलं परम् ।

श्रोतव्यं सर्वदा प्रीत्या पठितव्यं विशेषतः ।३७।
देवेतिहासशास्त्रेषु परं श्रेयस्करं महत् ।
शैवं पुराणं विज्ञेयं सर्वथा हि मुमुक्षिभिः ।३८।
शैवंपुराणमिदमात्मविदांवरिष्ठं सेव्यंसदापरमवस्तुसतांसमर्च्यम् ।
तापत्रयाभिशमनंसुखदंसदैवप्राणप्रियं विधिहरीशमुखामराणाम् ॥
वन्दे शिवपुराणं हि सर्वदाऽहं प्रसन्नधीः ।
शिवः प्रसन्नतां यायाद्दद्यात्स्वपदयो रतिम् ।४०।

इस का आदर पूर्वक नित्य प्रति पूजन करने वाले मनुष्य सभी कामनाओं को भोग कर अन्त में शिवपद को प्राप्त होते हैं ।३४। नित्यप्रति निरालस्य होकर इसका पाठ करने से तथा नित्य पट्ट वस्त्रादि से सत्कार करने से सर्वदा सुख की प्राप्ति होती है ।३५। यह अत्यन्त स्वच्छ एवं सर्वस्व है । जिसे दोनों लोकों में सुख प्राप्ति की इच्छा हो उसे आदर पूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ।३६। यह निर्मल शिवपुराण चतुर्वर्ग का दाता है । इसका पाठ एवं श्रवण सदा प्रीतिपूर्वक करना चाहिए ।३७। वेद, इतिहास तथा शास्त्रों में यह परम श्रेय प्रदायक है इसलिये मुमुक्ष जनों को सदा शिव पुराण का ज्ञान आवश्यक है ।३८। आत्म ज्ञानियों के लिये यह शिवपुराण अत्यन्त उत्तम है । पपम वस्तु सदा सेवनीय और सत्पुरुषों को पूजनीय है । त्रिताप नाशक, सुखदायक है तथा ब्रह्मा, विष्णु और देवतागणों के लिये प्राणों के समान प्रिय है ।३९। मैं प्रसन्न होकर शिवपुराण को सदा प्रणाम करता हूं । शिवजी इसके द्वारा प्रसन्न होकर अपने चरणों की प्रीति मुझे प्रदान करें ।४०।

देवराजमुक्तिवर्णन

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः ।
कामादिनिरता नित्यं तेऽपि शुद्धयन्त्यनेन वै ।१।
ज्ञानयज्ञः परोऽय वै भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा ।
शोधनः सर्वपापानां शिवमन्तोषकारकः ।२।
तृष्णाकुलाः सत्यहीनाः पितृमातृविदूषकाः ।
दाम्भिका हिंसका ये च तेऽपि शुद्धयन्त्यनेन वै ।३।

स्ववर्णाश्रमधर्मेभ्यो वर्जिता मत्सरान्विताः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।४।
छलच्छद्मकरा ये च ये च क्रूराः सुनिर्दयाः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।५।
ब्रह्मस्वपुष्टाः सततं व्यभिचाररताश्च ये।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।६।
सदा पापरता ये च ये शठाश्च दुराशयाः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।७।
मलिना दुर्धियोऽशान्ता देवताद्रव्यभोजिनः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।८।

सूतजी ने कहा—जो मनुष्य पाप, दुराचार, कामादिक से डूबे हुये हैं, वे भी इसके द्वारा शुद्ध हो जायेंगे ।१। यह परम भुक्ति और मुक्ति का दाता ज्ञान यज्ञ है। सब पापों का शोधनकर्त्ता और शिवजी का संतोष कराने में समर्थ है ।२। तृष्णा और व्याकुल और सत्य से हीन तथा माता पिता की हंसी उड़ाने वाले एवं हिंसक मनुष्य भी इसके द्वारा सुधर जाते हैं ।३। वर्णाश्रम धर्म से रहित तथा मत्सर युक्त प्राणी भी कलिकाल में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा संसार सागर के पार हो जाँयेंगे ।४। जो पुरुष छल करने वाले, क्रूर एवं निर्दय स्वभाव के हैं वे भी कलिकाल में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।५। जो व्यक्ति ब्राह्मणों के धन के द्वारा पुष्ट हुए तथा निरन्तर व्यभिचार कर्म में लगे रहते हैं, वे भी इस ज्ञान यज्ञ के प्रभाव से तर जायेंगे ।६। जो सदा पाप कर्म में रत, शठ एवं दुराशा से युक्त हैं वे भी कलियुग से इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।७। मलीन एवं बुरी बुद्धि वाले अशान्त तथा देवताओं के द्रव्य को हड़पने वाले मनुष्य भी कलियुग में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।८।

।। चंचुला वैराग्य वर्णन ।।

श्रृणु शौनक वक्ष्यामि त्वदग्रे गुह्यमप्युत।
यतस्त्वं शिवभक्तानामग्रणीर्वेदवित्तमः ।१।

समुद्रनिकटे देशे ग्रामो बाष्कलसंज्ञकः ।
बसन्ति यत्र पापिष्ठा वेदधर्मोज्झिता जनाः ।२।
दुष्टा दुर्विषयात्मानो निर्दैवा जिह्मवृत्तयः ।
कृषीवलाः शस्त्रधराः परस्त्रीभोगिनः खलाः ।३।
ज्ञानवैराग्यसद्धर्मं न जानन्ति परं हिते ।
कुकथाश्रवणाढयेषु नि रताः पशुबुद्धयः ।४।
अन्ये वर्णाश्च कुधियः स्वधर्मवि मुखाः खलाः ।
कुकर्मनिरता नित्यं सदा विशयिणश्चते ।५।
स्त्रियः सर्वाश्च कुटिलाः स्वैरिण्यः पापलालसाः ।
कुस्त्रियो व्यभिचारिण्यः सद्व्रताचारवर्जिताः ।६।
एवं कु जनसंवासे ग्रामे बाष्कलसंज्ञिते ।
तत्रैको बिन्दुगोनाम विप्र आसीन्महाधमः ।७।

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! मैं तुमसे अत्यन्त गुह्य कथा कहता हूं, क्योंकि तुम शिव भक्तों में सर्व प्रथम ही ।१। समुद्र के निकट एक देश में बाष्कल नामक ग्राम था, उसमें वेद-धर्म से विमुख पापीजन रहते थे ।२। दुष्ट, दुर्विषयी तथा कुटिल वृत्ति वाले, कृषि कर्म में लगे हुए, शस्त्र बल पर निर्भर रहने वाले और पर-स्त्री भोगी थे ।३। वे ज्ञान-वैराग्य स्वरूप अपने धर्म से अज्ञान, पशुबुद्धि व्यक्ति बुरी वार्ता सुनने में ही रुचि रखते थे, क्योंकि उनकी बुद्धि पशु से समान थी ।४। अन्य वर्ण के लोग भी कुबुद्धि वाले थे । सदा अपने धर्म के विमुख रहते और विषय भोगों में रत तथा कुकर्म करने वाले थे ।५। सभी स्त्रियाँ स्वैरिणी, कुटिल और पापकर्म की इच्छा वाली थीं । सत् व्रत और आचार से रहित तथा व्यभिचारिणी थीं ।६। बुरे व्यक्तियों वाले उस ग्राम में बिदुन नामक अत्यन्त अधर्मी ब्राह्मण भी निवास करता था ।७।

स दुरात्मा महापापी सुदारोऽपि कुमार्गगः ।
वेश्यापतिर्बभूवाथ कामाकुलितमानसः ।८।
स्वपत्नीं चंचुलां नाम हित्वा नित्य सुधर्मिणीम् ।
रेमे स वेश्यया दुष्टः स्मरबाणप्रपीडितः ।९।

एवं कालो व्यतीयाय महांस्तस्य कुकर्मण: ।
सा स्वधर्मभयात्क्लेशात्स्मरार्तापि च चंचुला ।१०।
अथ तस्याङ्गना सापि प्ररूढनवयौवना ।
अविषत्यस्मरावेशा स्वधर्माद्विरराम ह ।११।
जारेण संगता रात्रौ रेमे पापेन गुप्तत: ।
पतिदृष्टिं वञ्चयित्वा भ्रष्टसत्वा कुमार्गगा ।१२।
कदाचित्तां दुराचारां स्वपत्नीं चंचुलां मुने ।
जारेण संगतां रात्रौ ददर्श स्मरविह्वलाम् ।१३।
दृष्टा तां दूषितां पत्नीं कुकर्मासक्तमानसाम् ।
जारेण संगतां रात्रौ क्रोधाद्द्रुदाव वेगत: ।१४।

वह अत्यन्त पापी, दुरात्मा और स्त्री सहित कुमार्ग पर चलने वाला, काम से व्याकुल होकर वेश्या का पति बना ।८। वह चंचुला नामक से अपनी पत्नी का त्याग कर काम-बाण से पीड़ित होकर वेश्या के साथ रहने लगा ।९। इस इकार उस कुकर्मी को बहुत समय व्यतीत हो गया । उसकी पत्नी चंचुला अपने धर्म और क्लेश का भय होते हुए भी काम से आक्रान्त हो गई ।१०। वह अत्यन्त तरुणाई को प्राप्त थी, उसने कामदेव से महान् पीड़ित होकर अपने धर्म का त्याग कर दिया ।११। जार की संगति में अपने पति की दृष्टि बचाकर रहने लगी । वह अपने सत से भ्रष्ट तथा कुमार्ग-गामिनी हो गई ।१२। एक समय उसके पति ने उस दुराचारिणी को रात्रि के समय जार के साथ देख लिया ।१३। वह उस कुमार्ग गामिनी दुष्टा को जार के साथ रमण करती देखकर अत्यन्त क्रोध पूर्वक उसकी ओर दौड़ा ।१४।

तमागतं गृहे दुष्टमाज्ञाय बिन्दुगं खल: ।
पलायितो द्रुतं जारो वेगतश्छद्मवान्स वै ।१५।
अथ स बिन्दुग: पत्नीं गृहीत्वा सुदुराशय: ।
मुष्टिबन्धेन संतर्ज्य पुन:पुनरताडयत् ।१६।
सा नारी ताडिता भर्त्रा चंचुला स्वैरिणी खला ।
कुपिता निर्भया प्राह स्वपतिं बिन्दुगं खलम् ।१७।

भवान्प्रतिदिनं कामं रमते वेश्यया कुधीः ।
मां विहाय स्वपत्नीं च युवतीं पतिसेविनीम् ।१८।
रूपपत्या युवत्याश्च कामाकुलितचेतसः ।
विना पति विहारं स्यात्का गतिर्मे भवान्वदेत् ।१९।
अहं महारूपवती नवयौवनविह्वला ।
कथं सहे कामदुःखंतव सङ्गं विनाऽऽर्तधीः ।२०।
इत्युक्तः स तया मूर्खो मूढधीर्ब्राह्मणोऽधर्मः ।
प्रोवाच बिन्दुगः पापो स्वधर्मविमुखः खल ।२१।

पति को रात्रि के समय घर में आया देखकर स्त्री ने जार को संकेत किया और वह छली वहाँ से भाग गया ।१५। तब बिन्दुग ने उसे पकड़ लिया और मुष्टिकाप्रहार से बारम्बार मारने लगा ।१६। अपने पति के द्वारा पिटी हुई चंचुला क्रोध ले भय-रहित होती हुई इस प्रकार कहने लगी ।१७। चंचुला बोली—आप जो नित्यप्रति वेश्या के प्रेम में फँसे रहते हो और मैं नित्यप्रति तुम्हारी सेवा करती हूँ। तुम मेरा त्याग करते हो ।१८। बताओ जो सौन्दर्यमयी काम से व्याकुल है, उसकी पति से रमण करने केबिना क्या गति होगी ? ।१९। मैं अत्यन्त रूपवती, नवयौवन से युक्त तथा काम से व्याकुल हूं । तुम्हारे साथ रमण किए बिना मैं काम का सन्ताप किस प्रकार सहन कर सकती हूँ ? ।२०। सूतजी ने कहा—चंचुला के ऐसा कहने पर ब्राह्मणों में नीच एवं अपने धर्म से हीन मति वाले पापी बिन्दुग ने उससे कहा ।२१।

सत्यमेतत्त्वयोक्तं हि कामव्याकुलचेतसा ।
हितं वक्ष्यामि तस्मात्तो शृणु कांते भयं त्यज ।२२।
जारैर्विहर नित्यं त्वं चेतसा निर्भयेन व ।
धनमाकर्ष तेभ्यो हि दत्त्वा तेभ्यः परां रतिम् ।२३।
तद्धनं देहि सर्वं मे वेश्यासंसक्त चेतसः ।
महत्स्वार्थं भवेन्नूनं तवापि च ममापि च ।२४।
इति भर्तृवचः श्रुत्वा चंचुला तद्वधूश्य सा ।
तथेपि भर्तृवचनं प्रतिजग्राह हृष्टधीः ।२५।

कृत्वैवं समयं तौ वै दम्पती दुष्टमानसौ ।
कुकर्मनिरतौ जातौ निर्भयेन कुचेतसा ।२६।
एवं तयोस्तु दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः ।
महान्कालो व्यतीयाय निष्फलो मूढचेतसोः ।२७।

विन्दुग ने कहा—हे काम से व्याकुल चित्त वालो ! मैं हित की बात कहता हूं, उसे भय छोड़कर सुन ।२२। तू निर्भय मन से जार के साथ समागम कर, परन्तु उसे प्रसन्न करके धन भी तो प्राप्त कर २३। और उस सम्पूर्ण धन को मुझ वेश्या के साथ गमन करने वाले अपने पति को दे दे । इस कार्य में मेरा और तेरा, दोनों का ही स्वार्थ निहित है ।२४। सूतजी ने कहा—अपने पति की बात सुनकर चंचुला ने 'बहुत अच्छा' कहा और फिर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक दोनोंही दुष्ट हृदय परस्पर निर्भय चित्त होकर अत्यन्त कुकर्म में संलग्न हो गये ।२५-२६। इस प्रकार दुराचार में लगे रहने वाले उन दोनों स्त्री-पुरुषों को बहुत-सा समय व्यतीत हो गया और वे मूढ़ मन वाले नितान्त निष्फल रहे ।२७।

अथ विप्रः स कुमतिर्बिन्दुगो वृषलीपतिः ।
कालेन निधनं प्राप्तो जगाम नरकं खलः ।२८।
भुक्त्वा नरकदुःखानि बह्वहानि स मूढधीः ।
विन्ध्येऽभवत्पिशाचो हि गिरौ पापी भयङ्करः ।२९।
मृते भर्तरि तस्मिन्वै दुराचाररेऽथ बिन्दुगे ।
उवास स्वगृहे पुत्रैश्चिरकालं बिमूढधीः ।३०।
एवं विहरती जारैः स नारी चांचुलताह्वया ।
आसीत्कामरता प्रीता किञ्चिदुत्क्रान्तयौवना ।३१।
एकदा दैवयोगेन सम्प्राप्ते पुण्यपर्वणि ।
सा नारी बन्धुभिः सार्द्धं गोकर्ण क्षेत्रमाययौ ।३२।
प्रसङ्गात्सा तदा त्वा कस्मिंश्चित्तीर्थपाथसि ।
सस्नौ सामान्यतो यत्र तत्र बभ्राम बन्धुभिः ।३३।

समय पाकर वह मूढ़ वृषलीपति मृत्यु को प्राप्त हो गया और उसे घोर नरक की प्राप्ति हुई ।२८। बहुत काल तक नरक:दुःख भोग कर

वह मूढ़ बड़ा भयंकर एवं महापापी पिशाच होकर विंध्य पर्वत में रहने लगा ।२६। जब उस दुराचारी की मृत्यु हो गयी तब वह चंचुला पुत्रों के साथ बहुत समय तक अपने गृह में निवास करती रही ।३०। वह जारों के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाये रही । परन्तु काम से सुख मानने वाली उस स्त्री का यौवन कुछ-कुछ व्यतीत हो गया ।३१। दैवयोग से एक समय पुण्य पर्व के आने पर वह मारी अपने बान्धवों के साथ गोकर्ण क्षेत्र में जा पहुँची ।३२। प्रसंगवश उसने किसी एक तीर्थ के जल में स्नान किया और बन्धुजनों के साथ इस क्षेत्र में भ्रमण करने लगी ।३३।

देवालयेऽथ कस्मिश्चिद्दैवज्ञमुखतः शुभाम् ।
शुश्राव सत्कथां शम्भोः पुण्यां पौराणिकीं च सा ।३४।
योषितां जारसक्तानां नरके यमकिंकरा ।
संतप्तलोहपरिघं शिपन्ति स्मरमन्दिरे ।३५।
इति पौराणिकेनोक्तां श्रुत्वा वैराग्यवर्द्धिनीम् ।
इति पौराणिकेनोक्तां श्रुत्वा वैराग्यवर्द्धिनीम् ।
कथामासीद्भयोद्विग्ना चकम्पे तत्र सा च वै ।३६।
कथासमाप्तौ सा नारी निर्गतेषु जनेषु च ।
भीता रहसि तं प्राह भैवं सं वाचकं द्विजम् ।३७।
ब्रह्मंस्त्वं श्रृणवसद्वृत्तमजानन्त्या स्वधर्मकम् ।
श्रुत्वा मामुद्धर स्वामिकृन्कृपां कृत्वातुलामपि ।३८।
चरितं सूल्बणं पापं मया मूढधिया प्रभो ।
नीतं पौश्चल्यतः सर्वं यौवनं मदनान्धया ।३६।
श्रुत्वेदं वचनं तेऽद्य वैराग्यरसजृम्भितम् ।
जाता महाभया साऽहं सकम्पात्तयियोगिका ।४०।

वहां किसी देवालय में किसी पण्डित के मुख से उसने शिव पुराण की कथा श्रवण की ।३४। कि जो नारी जार के साथ रमण करती है उसे यजदूत नरक में ले जाते और उसके यौन स्थानमें लोहे का बनातप्त मुसल प्रविष्ट करते हैं ।३५। इस प्रकार वैराग्य की वृद्धि करने वाली पुराणकथा को सुनकर चंचुला अत्यन्त भय से उद्विग्न होकर कांपने लगी ।३६। जब कथा पूरी हो गई और सभी श्रोता वहाँ से चले गये तब

वह भयभीत उस कथावाचक से एकान्त में प्रश्न करने लगी ।३७। चंचुला ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! आप मुझे असत् वृत्त कारी स्त्री समझकर मेरा वृत्तान्त सुनें और अत्यन्त कृपापूर्वक मेरा उद्धार करें ।३८। मेरा चरित्र अत्यन्त घृणित है । मुझ मूर्खा ने अपना यौवन अज्ञान के कारण व्यभिचार में व्यतीत कर डाला । मैं उस समय मदान्ध हो चुकी थी ।३९। आपके वैराग्य रस से परिपूर्ण वचन सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो उठी हूं और मेरा हृदय कम्पायमान हो रहा है ।४०।

धिङ् मां मूढधियं पापां काममोहितचेतसम् ।
निन्द्यां दुर्विषयासक्तां विमुखीं हि स्वधर्मतः ।४१।
यदल्पस्य सुखस्यार्थे स्वकायस्य विनाशिनः ।
महापापं कृतं घोरमजानन्त्याऽतिकष्टदम् ।४२।
यास्यमिदुर्गतिं कां कां घोरां हा कष्टदायिनीम् ।
को ज्ञो यास्यति मां तत्र कुमारगरतमानसाम् ।४३।
मरणे यमदूतांस्तान्कथं द्रक्ष्ये भयंकरान् ।
कथं पाशैर्बलात्कण्ठे बध्यमाना धृतिं लभे ।४४।
कथं सहिष्ये नरके खंडशो देहकृन्तनम् ।
यातनां तत्र महतीं दुःखदां च विशेषतः ।४५।
दिवा चेष्टामिन्द्रियाणां कथं प्राप्स्यामि शोचती ।
रात्रौ कथं लभिष्येऽहं निद्रां दुःखपरिप्लुता ।४६।
हा हतास्मि च दग्धास्मि विदीर्णहृदयास्मि च ।
सर्पथाऽहं विनष्टाऽस्मि पापिनी सर्वथाप्यहम् ।४७।

मैं काम से भ्रमित चित्त हुई मूढ़ बुद्धि वाली स्त्री हूं । मुझे धिक्कार है जो मैंने अपने धर्म से विमुख होकर निंदित कुधर्म को प्राप्त किया है । ।४१। जो मैं स्वल्प सुख के आकर्षण में अपने कार्य को नष्ट कर देने वाले अत्यन्त कष्टकारी घोर दुष्कर्म में प्रवर्त्त हो गयी ।४२। अब मैं किस घोर कष्ट देने वाली दुर्गति को पाऊँगी और मुझ कुमार्ग में मन रमाने वाली स्त्री की रक्षा वहाँ कौन करेगा ? ।४३। मृत्यु को प्राप्त करने पर मैं उन यमदूतों को किस प्रकार देखूँगी । जब वे यमदूत मुझे

कठोर पाशों में बाँधेंगे तब मुझे विश्राम कैसे प्राप्त होगा ? ।४४। जब नरक में देह के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे, तब मैं उसे किस प्रकार सहन करूंगी ? वहाँ तो अत्यन्त दुःसह्य यातना प्राप्त होती हैं ।४५। उन इन्द्रियों की चेष्टा का ध्यान करती हुई मैं किस प्रकार देख सकूंगी। दुःख से युक्त हुई मैं रात्रि में किस प्रकार सो सकूंगी ।४६। मैं विदीर्ण हृदय वाली सब प्रकार दग्ध और नष्ट हो चुकी हूं, क्योंकि मैं अत्यन्त पाप कर्म वाली हूँ ।४७।

हा विधे मां महापापे तत्त्वा दुःशेमुषीं हठात् ।
अपैति यत्स्वधर्माद्व सर्वसौख्यकरादहो ।४८।
शूलप्रोतस्य शैलाग्रात्पततस्तुङ्गसो द्विज ।
यद्दुःखं देहिनो घोरं तस्मात्कोटिगुणं मम ।४९।
अश्वमेधशतं कृत्वा गंगा स्नात्वा शतं समाः ।
न शुद्धिर्जायते प्रायो मत्पापस्य गरीयसः ।५०।
किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये ।
कस्त्रायेत मां लोकेऽस्मिन्पतन्तीं नरकार्णवे ।५१।
त्वमेव मे गुर्ब्रह्मं स्त्वं माता त्वं पिताऽसि च ।
उद्धरोद्धर मां दीनां त्वमेव शरणं गताम् ।५२।
इति संजातनिर्वेदां पतिमाञ्चरणद्वये ।
उत्थाप्य कृपया धीमान्बभाषे ब्राह्मणः स हि ।५३।

हा विधना ! तुमने हठपूर्वक यह घोर पापमयी बुद्धि प्रदान कर क्या किया, जो सब सुखों को प्रदान करने वाले धर्म से हीन बना देती है ।४८। हे महात्मन् ! शूल से गोदने पर और पर्वत से गिरने पर जो पीड़ा होती है, मुझे उससे करोड़ गुनी हो रही है ।४९। सौ अश्व-मेध यज्ञ कर लेने पर तथा सौ वर्ष तक निरन्तर गंगा स्नान करने पर भी मेरे घोर पाप का शोधन नहीं हो सकता ।५०। मैं क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? किसकी शरण में पहुँचूं ? मुझ नरक सागर में गिरी हुई स्त्री की रक्षा करने में इस लोक में समर्थ कौन है ? ।५१। हे ब्रह्मन् ! आप ही मेरे गुरु और माता-पिता हैं। कृपा कर आप मुझ दीन का उद्धार

कीजिये। मैं आपकी शरण को प्राप्त हुई हूँ।५२। सूतजी ने कहा—जब चंचुला इस प्रकार निर्वेद को लाप्त होकर ब्राह्मण के चरणों में गिर पड़ी तब कृपापूर्वक उसे उठाकर ब्राह्मण ने कहा।५३।

॥ चंचुला की सद्गति ॥

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि शिवानुग्रहतो वराम्।
इमां शिवपुराणस्य श्रुत्वा वैराग्यवत्कथाम्।१।
मा भैषीर्द्विजपत्नि त्वं शिवस्य शरणं व्रज।
शिवानुग्रहतः सर्वं पापं सद्यो विनश्यति।२।
सत्कथाश्रवणादेव जाता ते मतिरीदृशी।
पश्चात्तापान्विता शुद्धा वैराग्यं विषयेषु।३।
पश्चात्तापः पापकृतां निष्कृतिः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्।४।
पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्।५।
प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवन्निर्भयः पुमान्।
स याति सुगतिं प्रायः पश्चात्तापी न संशयः।६।
एतिच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणतो यथा।
जायते चित्त शुद्धिर्हि न तथान्यैरुपायतः।७।

ब्राह्मण ने कहा—तू भाग्यवश ही ज्ञान को प्राप्त हुई है। शिवजी का तेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह है जो तू शिवपुराण की वैराग्यमयी कथा सुनकर ही ज्ञान को प्राप्त कर सकी।१। हे विप्रपत्नी! भय मत करो और शिवजी की शरण में जा। शिवजी के अनुग्रह से सब पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।२। उनकी सत्कथा सुनने से ही तेरी मति ऐसी हुई है, जिससे तू पश्चात्ताप करके शुद्ध हुई और विषयों से विरक्त हो गई है।३। पश्चात्ताप ही पापों की परम निष्कृति है। विद्वज्जनों ने पश्चात्ताप से सब प्रकार के पापों की शुद्धि होना कथन किया है।४। पश्चात्ताप करने से जिसके पापों का शोधन न हो, उसे प्रायश्चित करना चाहिये। विद्वानों ने इससे सब पापों का शोधन होना कहा है।५। विधिपूर्वक अनेक प्रकार

के प्रायश्चित करने पर भी मनुष्य भयभीत नहीं होपाता। परन्तु पश्चा-ताप करने वाले को सुगति की प्राप्ति होती है।६। इसके सुनने से जैसी चित्त शुद्धि है, वैसी अन्य उपायों से नहीं होती ।७।

अतः सर्वस्व वर्गस्यैतत्कथासाधनं मतम् ।
एतदर्थं महादेवो निर्ममे त्वाग्रहादिमाम् ।८।
कथया सिद्धयुति ध्यानमनया गिरिजापतेः ।
ध्यानाज्ज्ञानं परं तस्मात्कैवल्यं भवति ध्रुवम् ।९।
असिद्धशंकरध्यानः कथामेव श्रृणोति यः ।
स प्राप्यान्यभवे ध्यानं शंभोर्यातिः परां गतिम् ।१०।
एतत्कथाश्रवणतः कृत्वा ध्यानमुमापतेः ।
ते पश्चात्तापिनः पापा बहवः सिद्धिमागताः ।११।
सर्वेषां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम् ।
यथावर्त्मसमाराध्यं भवबन्धगदापहम् ।१२।
कथाश्रवणतः शम्भोर्मननाच्च ततो हृदा ।
निदिव्यासनतश्चैव चित्तशुद्धिर्भवत्यलम् ।१३।
ध्यायतः शिवपदाब्जं चतसा निर्मलेन वै ।
एकेन जन्मना मुक्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।१४।

इसलिए सभी को शिवपुराण की कथा सुननी चाहिये। इसी उद्देश्य से शिवजी ने इसे बनाया है। क्योंकि यह सभी वर्ग का साधक है।८। इस कथा के द्वारा शिवजी का ध्यान सिद्ध हो जाता है। ध्यान से ज्ञान को सिद्धि होती और ज्ञान से कैवल्य प्राप्त होता है ।९। जिसे शंकर का ध्यान सिद्ध नहीं है, वह यदि इस कथा को सुने तो उसे शिवजी के ध्यान की सिद्धि होती है और वह परमगति को प्राप्त होता है ।१०। इस कथा को सुनकर भगवान् शिवजी का ध्यान करके पश्चात्ताप करने वाले पुरुष सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ।११। इस सत्कथा को सुनने वाले पुरुष सभी प्रकार के मङ्गल को प्राप्त होते और शिवजी की आराधना करने से उनकी संसार व्याधि छूट जाती है। ।१२। शिव की कथा सुन-कर मनन करने से तथा निदिध्यासन के द्वारा चित्त की पूर्ण शुद्धि

हो जाती है ।१३। स्वच्छ चित्त से शिवजी के चरणकमल का ध्यान कर एक जन्म में ही तू मुक्ति को प्राप्त हो जायगी यह मैं सत्य कहता हूं ।१४

अथ बिंदुगपत्नी सा चंचुलाह्वा प्रसन्नधीः ।
इत्युक्ता तेन विप्रेण समासीद्बाष्पलोचना ।१५।
पपातारं द्विजेन्द्रस्य पादयोस्तस्य हृष्टधीः ।
चञ्चुला साञ्जलिः सा च कृतार्थास्मीत्यभाषत ।१६।
अथ सोत्थाय सातका साञ्जलिर्गद्गदाक्षरम् ।
तमुवाच महाशैवं द्विजं वैराग्ययुक्सुधीः ।१७।
ब्रह्मञ्छैववर स्वामिन्धन्यस्त्वं परमार्थदृक् ।
परोपकार निरतो वणनीयः सुसाधुषु ।१८।
उद्धरोद्धर मां साधो पतन्ती नरकार्णवे ।
श्रुत्वा यां सुकथां शवीं पुराणार्थविजृम्भिताम् ।१९।
विरक्तधीरहं जाता विषयेभ्यश्च सवतः ।
सुश्रद्धा महती ह्येतत्पुराणश्रवणेऽधुना ।२०।

तब चंचुला उसके वचनों से प्रसन्न हुई और उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु आ गये ।१५। वह प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण के चरणों में गिर गई और हाथ जोड़कर बोली, हे ब्रह्मन् ! मैं कृतार्थ होगई हूं ।१६। और अत्यन्त शान्तिपूर्वक उठकर प्रसन्न होती हुई गद्गद वाणी द्वारा वैराग्यमय वचन उस महाशैव्य से बोली ।१७। चंचुला ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप शिव-भक्तों में श्रेष्ठ हैं । परमार्थं के देखने वाले, परोपकार में निरत तथा साधुओं में उत्तम हैं ।१८। हे भगवन् ! मैं नरक सागर में गिरती जा रही हूं आप मेरा उद्धार करिये । जिस पुराण के अर्थ वाली शिव-कथा को सुनकर मैं पाप कर्मों से विरक्त हुई हूं, उस कल्याणकारी पुराण को श्रवण करने की मुझे अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई है ।।१९-२०।।

इत्युक्त्वा साञ्जलिः सा वै संप्राप्य तदनुग्रहम् ।
तत्पुराणं श्रोतुकामाऽतिष्ठत्तत्सेवने रता ।२१।
अथ शैववरो विप्रस्तस्मिन्नेव स्थले सुधीः ।

सत्कथां श्रावयामास तत्पुराणस्य तां स्त्रियम् ।२२।
इत्थं तस्मिन्महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ।
कथां शिवपुराणस्य सा शुश्राव महोत्तमाम् ।२३।
भक्तिज्ञानविरागाणां वर्द्धिनीं मुक्तिदायिनीम् ।
बभूव सुकृतार्था सा श्रुत्वा तां सत्कथां पराम् ।२४।

सूतजी ने कहा—चंचुला हाथ जोड़कर इस प्रकार कहती हुई ब्राह्मण की कृपा को प्राप्त हुई और शिवपुराण सुनने की कामना से उसके समीप जा बैठी ।२१। वह शैव्यों में श्रेष्ठ विप्र उस पवित्र स्थान में उस स्त्री को शिवपुराण की पवित्र कथा सुनने लगे ।२२। उस विप्र श्रेष्ठ के मुख से चंचुला ने उस महान् क्षेत्र में बैठकर परमोत्तम शिवपुराण की कथा सुनी ।२३। वह कथा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि करने वाली और मोक्षदायिनी थी । चंचुला उस कथा को सुनकर कृतार्थ होगई ।२४।

।। बिन्दुग सद्गति ।।

सा कदाचिदुमां देवीमुपगम्य प्रणम्य च ।
सुतुष्टाव करौ बद्ध्वा परामानन्दसंप्लुता ।१।
गिरिजे स्कन्दमातस्त्वं सेविता सर्वदा नरैः ।
सर्वसौख्यप्रदे शम्भुप्रिये ब्रह्मस्वरूपिणि ।२।
विष्णु ब्रह्मादिभिः सेव्या सगुणा निर्गुणापि च ।
त्वामाद्या प्रकृतिःसूक्ष्मा सच्चिदानन्दरूपिणी ।३।
सृष्टिस्थितिलयकरी त्रिगुण त्रिसुरायला ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां सुप्रतिष्ठाकरा परा ।४।
इति स्तुत्वा महेशीं तां चंचुला प्राप्तसद्गतिः ।
विरराम नतस्कन्धा प्रेमपूर्णाश्रुलोचना ।५।
ततः सा करुणाविष्ठा पार्वती शंकरप्रिया ।
तामुवाच महाप्रीत्या चंचुला भक्तवत्सला ।६।
चंचुले सखि सुप्रीतानया स्तुत्यास्मि सुन्दरि ।
किं याचसे वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ।७।

सूतजी ने कहा—एक समय चंचुला भगवती उमा के पास पहुँची और उन्हें प्रणाम कर परमानन्द पूर्वक कर जोड़कर प्रसन्न करने लगी ।१। चंचुला ने कहा—हे गिरजे ! हे स्कन्द माता ! आपकी मनुष्य सदा सेवा करते हैं । आप ही सदा सुख के देने वाली तथा साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हो ।२। ब्रह्मा, विष्णु आदि के द्वारा सेवनीय आप सगुण निर्गुण स्वरूप आद्या प्रकृति एवं सूक्ष्म सच्चिदानन्द स्वरूप वाली हो ।३। आप ही सृष्टि स्थिति और लय करने वाली त्रिगुणात्रिसुरालया एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सुप्रतिष्ठा करने वाली हो ।४। सूतजी ने कहा—सद्गति प्राप्त चंचुला ने भगवती उमा की इस प्रकार स्तुति की और नेत्रों में अश्रु लाती हुई शान्ति को प्राप्त हुई ।५। तब करुणामयी गिरिजा ने उस भक्त-वत्सला चंचुला से कहा—हे चंचुले ! मैं तेरी स्तुति से अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं । तुझे जो कुछ वर माँगना हो माँग ले, तेरे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है ॥६–७॥

इत्युक्ता या गिरिजया चंचुला सुप्रणम्यताम् ।
पर्यपृच्छत सुप्रीत्या साञ्जलिर्नतमस्तका ।८।
मम भर्ताभुना क्वास्ते नैव जानामि तद्गतिम् ।
तेन युक्ता यथाहं वै भवामि गिरिजेऽनघे ।९।
तथैव कुरु कल्याणि कृपया दीनवत्सले ।
महादेवि महेशानि भर्ता मे वृषलीपति ।
तत्तः पूर्वं मृतः पापी न जाने कां गतिं गतः ।१०।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याश्चंचुलाया हि पार्वती ।
प्रत्युवाच सुसंबीत्या गिरिजा नयवत्सला ।११।
सुते भर्ता बिन्दुगाह्वो महापापी दुराशयः ।
वेश्याभोगी महामूढो मृत्वा स नरकं गतः ।१२।
भुक्त्वा नरकदुःखानि विविधान्यमिताः समाः ।
पापशेषेण पापात्मा विन्ध्ये जातः पिशाचकः ।१३।
इदानीं स पिशाचोऽस्ति नानाक्लेशसमन्वितः ।
तत्रैव वातभुग्दुष्टः सर्वकष्टवहः सदा ।१४।

सूतजी ने कहा—पार्वतीजी की बात सुनकर चंचुला ने हाथ जोड़े और प्रणामपूर्वक शिर झुका कर उनसे प्रश्न किया ।८। हे भगवती ! मेरा स्वामी इस समय कहाँ है ? मैं उसके विषय में नहीं जानती । हे कल्याणी ! वह मुझे मिल सके, ऐसी कृपा करिये ।९। हे महादेवी ! मेरा स्वामी वृषलीपति था । वह पापी मुझसे पहले ही मर गया, न जाने उसे कौन-सी गति प्राप्त हुई ।१०। सूतजी ने कहा—चंचुला की यह बात सुनकर भगवती पार्वतीजी प्रसन्न होकर कहने लगीं ।११। हे पुत्री ! तेरा पति बिन्दुग घोर पापी और वेश्यागामी था । वह महामूढ़ मरने के पश्चात् नरक में गिरा ।१२। उसने बहुत वर्षों तक नरक के दुःख भोगे और बचे हुये पाप के कारण वह विंध्याचल में जाकर पिशाच हुआ ।१३। इस समय वह अनेक क्लेशों में पड़ा हुआ पिशाच है और वायु भक्षण करता हुआ अनेक कष्टों को भोगता है ।१४।

इति गौर्य्या वचः श्रुत्वा चंचुला सा शुभव्रता ।
पतिदुःखेन महता दुःखिताऽऽसीत्तदा किल ।१५।
समाधाय ततश्चित्त सुप्रणम्य महेश्वरीम् ।
पुनः पप्रच्छ सा नारी हृदयेन विदूयता ।१६।
महेश्वरी महादेवि कृपां कुरु ममोपरि ।
समुद्धर पतिं मेऽद्य दुष्टकर्मक खलम् ।१७।
केनोपायेन मे भर्ता पापात्मा स कुबुद्धिमान् ।
सद्गतिं प्राप्नुयाद्देवि तद्वदाशु नमोऽस्तु ते ।१८।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वती भक्तवत्सला ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा चंचुलां स्वसखीं च ताम् ।१९।
श्रृणुयाद्यदि ते भर्ता पुन्यां सिवकथा पराम् ।
निस्तीर्यं दुर्गति सर्वा सद्गतिं प्राप्नुयादिति ।२०।
इति गौर्य्यां वचः श्रुत्वाऽमृताक्षरमथादरात् ।
कृताञ्जलिर्नतस्कन्धा प्रणनाम पुनः पुनः ।२१।
तत्कथाश्रवणं भर्तुः सर्वपापविशुद्धये ।
सद्गतिप्राप्तये चैव प्रार्थयामास तां तदा ।२२।

सूतजी ने कहा—पार्वतीजी की बात सुनकर उत्तम व्रत वाली चंचुला अपने पति के दुःख से अत्यन्त दुःखी हो गई ।१५। अपने स्वामी में चित्त लगाकर पार्वतीजी को प्रणाम कर वह दुखित हृदय से उनसे पुनः प्रश्न करने लगी ।१६। हे महादेवी ! मुझ पर कृपा करिये । दुष्टकर्म के फल से कष्ट भोगते हूए मेरे स्वामी का उद्धार कीजिये ।१७। मेरा पापात्मा स्वामी किस प्रकार बुद्धिमान हो सद्गति को प्राप्त हो, मेरे प्रति वह कहिये। मैं आपको प्रणाम करती हूं ।१८। सूतजी ने कहा—उसकी बात सुनकर भक्त-वत्सल पार्वतीजी ने प्रसन्न होकर अपनी सखी चंचुला से कहा ।१९। यदि तेरा पति पवित्र शिव कथा सुने तो दुर्गति से पार होकर श्रेष्ठ गति प्राप्त करेगा ।२०। पार्वतीजी के अमृत समान शब्दों को श्रवण कर आदर पूर्वक हाथ जोड़ती हुई चंचुला अपने स्वामी के पाप की निवृत्ति के लिये शिव कथा की इच्छा करती हुई, कथा का सुयोग प्राप्त करने के निमित्त भगवती से पुनः प्रार्थना करने लगी ।२१-२२।

तयामुहुर्मुहुर्नार्या प्रार्थ्यमाना शिवप्रिया ।
गौरी कृपान्वितासीत्सा महेशी भक्तवत्सला ।२३।
अथ तुम्बुरमाहूय शिवसत्कीर्तिगायकम् ।
प्रीत्या गन्धवराजं हि गिरिकन्येदमब्रवीत् ।२४।
हे तुंबुरो शिवप्रीत मन मानसकारक ।
सहानया विन्ध्यशलं भद्रं ते गच्छ सत्वरम् ।२५।
आस्ते तत्र महाघोरः पिशाचोऽतिभयंकरः ।
तद्वृत श्रृणु सुप्रीत्याऽऽदितः सर्वं ब्रवीमि ते ।२६।
पुराभवे पिशाचः स बिन्दुगाह्वोऽभवद्द्विजः ।
अस्या नार्याः पतिर्दुष्टो मत्सख्या वृषलीपतिः ।२७।
स्नानसंध्याक्रियाहीनोऽशोचः क्रोधविमूढधीः ।
दुर्भक्षो सज्जनद्वेषी दुष्परिग्रहकारकः ।२८।
हिंसकः शस्त्रधारी च सव्यहस्तेन भोजनी ।
दीनानां पीडकः क्रूरः परवेश्मप्रदीपकः ।२९।
चाण्डालाभिरतो नित्य वेश्याभोगी महाखलः ।

स्वपत्नीत्यागकृत्पापी दुष्टसंगरतस्तदा ।३०।

सूतजी ने कहा—जब उसने पार्वतीजी की बारम्बार प्रार्थना की तब भक्तवत्सला पार्वतीजी कृपा से युक्त हो गईं ।२३। उन्होंने शिव की सत्कीर्ति का गान करने वाले तुम्बरु गन्धर्व को बुलाया और उससे प्रीति-पूर्वक कहने लगीं ।२४। पार्वतीजी ने कहा—हे तुम्वरु ! तुम शिवजी की प्रीति करने वाले और मेरे वचन मानने वाले हो । इसके साथ विंध्याचल पर्वत को जाओ ।२५। वहाँ एक अत्यन्त भयङ्कर पिशाच निवास करता है । मैं तुमसे उसकी बात कहती हूँ, तुम प्रसन्न होकर उसे श्रवण करो ।२६। पिशाच योनि को प्राप्त होने से पूर्व बिन्दुग नामक ब्राह्मण था । वह दुष्ट इसी स्त्री का स्वामी था । वेश्यागामी, स्नान एवं संध्या की क्रिया से रहित, पवित्रता से हीन, क्रोध से मूर्ख बुद्धि वाला, दुर्भक्षी, सज्जनों से द्वेष रखने वाला और दुष्परिग्रह वाला था ।२७।-२८। वह शस्त्रधारी, हिंसक, बाँये हाथ से भोजन करने वाला, दीनों को पीड़ित करने वाला, क्रूर, पीड़क तथा लोगों के घर में आग लगाने वाला था ।२९। चाण्डाल से प्रीति करने वाला, वेश्यागामी, अत्यन्त पापी, पत्नी का त्याग करने वाला और दुष्ट सङ्ग से प्रीति करने वाला था ।३०।

तेन वेश्याकुसंगेन सुकृतं नाशितं महत् ।
वित्तलोभेन महषी निभया जारिणी कृता ।३१।
आमृत्योः स दुराचारी कालेन निधनं गतः ।
ययौ यमपुरं घोरंभोगस्थानं हि पापिनाम् ।३२।
तत्र भुक्त्वा स दुष्टात्मा नरकानि बहूनि च ।
इदानीं स पिशाचोऽस्ति विंध्येऽद्रौ पाप भुक्खलः ।३३।
तस्याग्रे परमां पुण्यां सर्वपापविनाशिनीम् ।
दिव्यां शिवपुराणस्य कथांकथय यत्नतः ।३४।
दुतं शिवपुराणस्य कथा श्रवणतः परात् ।
सर्वपाप विशुद्धात्मा हास्यति प्रेततां च सः ।३५।
मुक्तं च दुर्गतेस्तंवै बिन्दुगं त्वं पिशाचकम् ।

मदाज्ञया विमानेन समानय शिवान्तिकम् ।३६।

उसने वेश्या-सङ्ग से अपने सभी सुकृतों को नष्ट कर डाला और धन के लोभ से अपनी पत्नी को भी व्यभिचारिणी बना दिया ।३१। मरने के समय तक वह दुराचार में लगा रहा और मृत्यु होने पर यम-लोक को गया जहाँ से उसे पापियों के घोर स्थान की प्राप्ति हुई ।३२। वहाँ उस दुष्टात्मा को अनेक नरक भोगने पड़े और अब विंध्याचल पर्वत में जाकर पिशाच हो गया है ।३३। तुम वहाँ जाकर परम पवित्र शिवपुराण की कथा, जो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने में समर्थ है, उस पिशाच को श्रवण कराओ ।३४। वह उस पवित्र कथा सुनते ही पाप-रहित होकर अपने प्रेतत्व का त्याग कर देगा ।३५। तब वह दुर्गति से छूट कर अपने पिशाचत्व को छोड़ देगा। उस समय तुम उसे विमान पर बैठा कर मेरी आज्ञा से शिवजी के ले जाना ।३६।

इत्यादिष्टो महेशान्या गन्धर्वेन्द्रश्च तुंबुरुः ।३७।
मुमुदेऽतीव मनसि भाग्यं निजमवर्णयत् ।३८।
आरुह्य सुविमानं स सत्या तत्प्रियया सह ।
ययौ विंध्याचलं सोऽरं यत्रास्ते नारदप्रियः ।३९।
तत्रापश्यत्पिशाचं तं महाकायं महाहनुम् ।
प्रहसन्तं रुदन्तं च वलगतं विकटाकृतिम् ।
बलाज्जग्राह तं पाशैः पिशाचं चातिभीकरम् ।
तुम्बुरुश्शिवसत्कीर्तिगायकश्च महाबली ।४०।
अथोशिवपुराणस्य वाचनार्थं स तुम्बुरुः ।
निश्चित्य रचनां चक्रे महोत्सवसमन्विताम् ।४१।
पिशाचं तारितुं देव्याः शासनात्तुम्बुरुगतः ।
विंध्यं शिवपुराणं स ह्यद्रि श्रावयितुं परम् ।४२।
इति कोलाहलो जातः सर्वलोकेषु वै महान् ।
तत्र तच्छ्रवणार्थाय ययुर्देवर्षयो द्रुतम् ।४३।

सूतजी ने कहा—तुम्बरु गन्धर्व से जब पार्वतीजी ने इस प्रकार कहा, तब वह अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने भाग्य को सराहने लगा ।३७।

चंचुला को साथ लेकर वह गन्धर्व विमान में बैठा और तब उनने विंध्याचल पर्वत को प्रस्थान किया ।३८। वहाँ वह विकराल हनु वाला महाकाय पिशाच उन्हें दिखाई दिया । वह विकट आकार वाला कभी हँसता, रोता कभी कूदता और चाहे जो कुछ बकता था ।३९। तुम्बरु ने उस पिशाच को बलपूर्वक पाशों के द्वारा पकड़ा और फिर उसके समक्ष शिवजी की कीर्ति का गान प्रारम्भ किया ।४०। फिर तुम्बरु ने शिवपुराण पढ़ने के लिये एक महोत्सव के वातावरण का आयोजन किया ।४१। पार्वतीजी की आज्ञा से उस पिशाच को सङ्कट मुक्त करने लिये तुम्बरु गया, वह शिवपुराण की कथा विंध्याचल में कहेगा ।४२। सब लोगों में यह विज्ञप्ति प्रसारित हो गई तब शिवपुराण का श्रवण करने के लिये वहाँ देवता और ऋषि भी आ गये ।४३।

समाजस्तत्र परमोऽद्भुतश्चासीच्छुभावहः ।
तेषां शिवपुराणस्यागतानां श्रोतुमादरात् ।४४।
पिशाचमथ तं पाशैर्बद्ध्वा समुपवेश्य च ।
तुंबुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम् ।४५।
आरभ्य संहितामाद्यां सप्तमीसंहितावधि ।
स्पष्टं शिवपुराणं हि समाहात्म्यं समावदत् ।४६।
श्रुत्वा शिवपुराणं तु सप्तसहितमादरात् ।
बभूवुः सुकृतार्थास्ते सर्वे श्रोतार एव हि ।४७।
स पिशाचो महापुण्यं श्रुत्वा शिवपुराणकम् ।
विधूय कलुषं सर्वं जहौ पैशाचिकं वपुः ।४८।
दिव्यरूपो बभूवाशु गौरवर्णः सितांशुकः ।
सर्वालंकारदीप्तांगस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।४९।

उस समय वहाँ श्रेष्ठ और अद्भुत समाज हुआ सभी, आदरपूर्वक शिवपुराण सुनने को एकत्र हुए थे ।४४। पाशों से बँधा वह पिशाच भी वहाँ बैठा । उस समय तुम्बरु ने वीणा लेकर पार्वतीपति शिवजी का कीर्ति-गान प्रारम्भ किया ।४५। उसने प्रथम संहिता से प्रारम्भ कर सातवीं संहिता तक माहात्म्य सहित सम्पूर्ण शिवपुराण की

कथा का वर्णन किया ।४६-४७। कथा श्रवण के फल से पिशाच ने भी पाप रहित होकर अपने शरीर का त्याग कर दिया ।४८। वह तत्काल गौर वर्ण का होकर श्वेत वस्त्रधारी दिखाई देने लगा। सम्पूर्ण अलङ्कारों से जगमगाता हुआ वह तीन नेत्र युक्त चन्द्रशेखर रूप हो गया ।४९।

शिवपुराण श्रवण विधि

श्रीमच्छिवपुराणस्य श्रवणस्य विधिं वद ।
येन सर्वं लभेच्छ्रोता सम्पूर्णं फलमुत्तमम् ।१।
अथ ते संप्रवक्ष्यामि संपूर्ण धलहेतवे ।
विधि शिवपुराणस्य शौनक श्रवणे मुने ।२।
दैवज्ञं च प्रमाहूय सन्तोष्य च जनान्वितः ।
मुहूर्तं शोधयेच्छुद्धं निर्विघ्नेन समाप्तये ।३।
वार्ता प्रेष्या प्रयत्नेन देशे देशे च सा शुभा ।
भविष्यति कथा शैवी आगन्तव्यं शुभार्थिभिः ।४।
दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे शंकरकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च वोधस्तेषां भवेद्यतः ।५।
देशे देशे शांभवा ये कीर्तन श्रवणोत्सुकाः ।
तेषामानयनं कार्यं तत्प्रकारार्थमादरात् ।६।
भविष्यति समाजोऽत्र साधूनां परमोत्सवः ।
पारायणे पुराणस्य शैवस्य परामाद्भुतः ।७।

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! आप शिवपुराण के सुनने की विधि मेरे प्रति कहिए, जिससे श्रोताओं को श्रेष्ठ फल की प्राप्ति हो सके ।१। सूतजी ने कहा—मैं फल के लिए शिवपुराण की विधि तुमसे कहता हूं। हे शौनक ! तुम इसे ध्यान से श्रवण करो ।२। शिवपुराण की कथा सुनने के लिए ज्योतिषी को बुलावे और कुटुम्ब सहित सन्तुष्ट कर पुराण के निर्विघ्न पूर्ण होने के लिए मुहूर्त निकाले ।३। फिर देश-देश में समाचार भेजे कि अमुक स्थान पर शिवपुराण की कथा होगी, उसे सुनने के लिए सबको सम्मिलित होना चाहिये ।४। जो शिवजी की कथा अथवा उनके कीर्तन से रहित हो ऐसे स्त्री, शूद्र आदि अज्ञानियों को भी बोध हो

सके ।५। देश-देश में जो शिव-भक्त कीर्तन और श्रवण के लिये उत्क-ण्ठित हों, उनको आदरपूर्वक आमन्त्रित करना चाहिए ।६। इस स्थान पर साधुओं का परम मंगल प्रदान करने वाला समाज होगा तथा अत्यंत अद्‌भुत शिवपुराण का पारायण होगा ।७।

नावकाशो यदि प्रेम्णागन्तव्यं दिनमेककम् ।
सर्वथाऽऽगमनं कार्यं दुर्लभा च क्षणस्थितिः ।८।
तेषामाह्वानमेवं हि कार्यं सविनय मुदा ।
आगतानां च तेषां हि सर्वथा कार्य्य आदरः ।९।
शिवालये च तीर्थे वा वने वापि गृहेऽथवा ।
कार्यं शिवपुराणस्य श्रवणस्थलमुत्तमम् ।१०।
कार्यं संशोधन भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
विचित्रा रचना दिव्या महोत्सवपुरासरम् ।११।
कर्तव्यो मण्डपाऽत्युच्चैः कदलीस्तं भमंडितः ।
फलपुष्पादिभि सम्यग्विष्वग्वतानराजितः ।१२।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपः सपताकः सुशोभनः ।
सुभक्तिः चर्बथा कार्या सर्वानन्दविधायिनी ।१३।
सकल्प्यमानसं दिव्यं शङ्करस्य परमात्मनः ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं सुखसाधनम् ।१४।

यदि अवकाश न हो तो एक दिन के लिए ही प्रेम पूर्वक आइये । यहाँ अवश्य आना चाहिये। क्योंकि ऐसे कार्य क्षणमात्र के लिये भी दुर्लभ हैं ।८। इस प्रकार विनयपूर्वक लोगों को आमन्त्रित करना चाहिए और आगत व्यक्तियों का आदर एवं सम्मान करना चाहिये ।९। यदि शिवा-लय रूप तीर्थं की स्थापना कराये और वहाँ शिवपुराण की कथा करावे तो वह स्थान इसके लिए सर्वश्रेष्ठ है ।१०। जहाँ शिवपुराण की कथा हो, वहाँ पहिले पृथ्वी को लीपे और धातुओं से आच्छादित करे। इस प्रकार विचित्र रचना पूर्वक महोत्सव करे ।११। केला का ऊँचा मण्डप निर्मित करे और फल पुष्पादि का अर्पण करते हुथे भले प्रकार पूजन करना चाहिये ।१२। चारों ओर ध्वजा पताका फहराये और सब

प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली श्रेष्ठ भक्ति का आश्रय ग्रहण करे ।१३। संकल्प कर भगवान् शङ्कर को दिव्य आसन पर प्रतिष्ठापित करे और भक्त को बैठने के लिये भी श्रेष्ठ आसन दे ।१४।

श्रोतृणां कल्पनीयानि सुस्थलानि ययार्हतः ।
अन्येषां च स्थलान्येव साधारणतया मुने ।१५।
विवाहे यादृश चित्त तादृशं कार्यमेव हि ।
अन्य चिन्ता विनिर्वार्य्या सर्वा शौनक लौकिकी ।१६।
उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता प्राग्वदनस्थता ।
व्युत्क्रमः पादयोर्ज्ञेयो विरोधो नास्ति कश्चन ।१७।
अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
अथवा सम्मुखं वक्तुः श्रोतृणामाननं स्मृतम् ।१८।
नीचबुद्धि न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ।१९।
गुरुवत्सन्ति बहवो जन्मतो गुणतश्च वै ।
परो गुरु पुराणज्ञस्तेषां मध्ये विशेषतः ।२०।
पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विजितमत्सरः ।
साधुः कारुण्यवान्वाग्मी वदेत्पुण्यकथामिमाम् ।२१।
आसूर्योदयमारभ्य सार्द्धद्विप्रहरान्तकाम् ।
कथा शिवपुराणस्य वाच्यसम्मक् सुधीमता ।२२।

श्रोताओं के बैठने के लिये भी योग्य एवं सुन्दर स्थान रखे तथा सभी स्थान साधारण रूप से निश्चित करे ।१५। शिवपुराण की कथा में वैसा ही उत्साह रखे, जैसा विवाहादि अन्य मङ्गल कार्यों के करने में होता है । हे शौनक ! सभी लौकिक चिन्ताओं को उस समय त्याग दे ।१६। वक्ता का मुख उत्तर दिशा में रहे और श्रोता पूर्वाभिमुख होकर पालथी मारकर बैठे । कथा के सम्मुख पाँव न रखे और किसी प्रकार का भी बिरोध न हो ।१७। अथवा पूज्य पूजक के बीच में पूर्व दिशा होनों चाहिये अथवा श्रोताओं के मुख कथा वाचक के सम्मुख होने चाहिये । ।१८। पुराण के जानने वाले के प्रति शंका युक्त बुद्धि न करे, क्योंकि

उसके मुख के निकलने वाले वचन देहधारियों के लिये कामधेनु के समान हैं ।१६। जन्म से और गुण से अनेक गुरु होते हैं, परन्तु उन सभी में शिवपुराण का ज्ञाता विशिष्ट प्रकार का गुरु होता है ।२०। पुराण का जानने वाला पवित्र, चतुर, शान्त, मन्द-रहित, साधु दयावान और वाग्मी हो जो इस पुराण कथा को कहता है ।२१। शिवपुराण की कथा का आरम्भ सूर्योदय से पूर्व कर दे और बुद्धिमान कथावाचक उसे साढ़े दो पहर तक बाँचे ।२२।

कथां शिवपुराणस्य श्रृणुयाददरात्सुधीः ।
श्रोता सुविधिना शुद्धः शुद्धचित्त प्रसन्नधीः ।२३।
अनेककर्मविभ्रान्तः कामादिषड्विकारवान् ।
स्त्रैणः पाखण्डवादी च वक्ता श्रोता न पुण्यभाक् ।२४।
लोकचिन्त्तां धनागारपुत्रचिंतां व्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेष्फलमुत्तमम् ।२५।
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ।२६।
कथायां कथ्यमानायां गच्छन्त्यंयत्र ये नराः ।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दारादिसम्पदः ।२७।
असम्प्रणम्य वक्तारं कथां श्रृण्वन्ति ये नराः ।
भुक्त्वा ते नरकान्सर्वान्भवत्यर्जुनपादपाः ।२८।
अनातुरा श्याना ये श्रृण्वतीमां कथां नराः ।
भुक्त्वा ते नरकान्सर्वान्भवत्यजगरादयः ।२९।

शिवपुराण की कथा बुद्धिमान श्रोता आदर पूर्वक सुने और शुद्ध तथा प्रसन्नचित्त रहे ।२३। अनेक कर्मों से भ्रान्ति को प्राप्त तथा कामादि छै विकारों से युक्त, चोर, पाखण्डी वक्ता या श्रोता पुण्य के भागी नहीं होते ।२४। उत्तम फल की प्राप्ति उसी को होती है जो लोक-चिन्ता, धन, गृह, या पुत्र की चिन्ता त्याग कर केवल शिव कथा में चित्त लगाता है ।२५। श्रद्धा भक्ति से युक्त तथा अन्य कार्यों की लालसा से मुक्त पुरुष मौन रहकर और व्यग्रता को छोड़कर कथा सुनते हैं, वही पुण्य-

भागी होते हैं।२६। कथा होते हुये जो मनुष्य उसे बीच में छोड़कर अन्य स्थान को चले जाते हैं, उनके भोगान्तर में स्त्री, धन आदि का नाश हो जाता है।२७। जो मनुष्य कथा वाचक को प्रणाम किये बिना कथा श्रवण करते हैं, वे नरक में दुःख पाकर अर्जुन वृक्ष की योनि प्राप्त करते हैं।२८। जो मनुष्य निरोग होते हुये भी लेटकर कथा श्रवण करते हैं, वे नरकों के दुःख भोगने के पश्चात् अजगर आदि होते हैं।२९।

वक्तुः समासनारूढ़ा ये श्रृण्वन्ति कथामिमाम् ।
गुरुतल्पसमं पाप प्राप्यते नारकैः सदा ।३०।
ये निंदंति च वक्तारं कथां चेमां सुपावनीम् ।
भवंति शनका भुक्त्वा दुःखं जन्मशतं हि ते ।३१।
कथायां वर्तमानायां दुर्वादं ये वदंति हि ।
भुक्त्वा ते नरकान्घोरान्भवंति गर्दभास्ततः ।३२।
कदाचिन्नापि श्रृण्वन्ति कथामेतां सुपावनीम् ।
भुक्त्वा ते नरकान्घोरान्भवंति वनसूकराः ।३३।
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये खलाः ।
कोटचब्दं नरकाम्भुक्त्वा भवंति ग्रामसूकराः ।३४।
एवंविचार्य शुद्धात्मा श्रोता वक्तृसुभक्तिमान् ।
कथाश्रवणहेतोर्हि भवेत्प्रीत्योद्यतः सुधीः ।३५।
कथाविघ्नविनाशार्थं गणेशं पूजयेत्पुरा ।
नित्य संपाद्य सं ेपात्प्रायश्चित्तं सपाचरेत् ।३६।

जो किसी अहं-भावना वश वक्ता के बराबर, ऊंचे आसन पर बैठ कर कथा श्रवण करते हैं, उनको गुरु शैय्या पर चढ़ने का पाप होता है।३०। जो वक्ता इस पवित्र कथा की निन्दा करते हैं, वे दुःख भोगते हुये सौ जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त होते हैं।३१। जो कथा होते के समय मुख से दुर्वचन निकालते हैं, वे घोर नरक के दुखों को भोगकर गधे की योनि में जाते हैं।३२। इस पवित्र कथा को जो कभी भी श्रवण नहीं करते, वे घोर नरक में जाकर दुःख भोगते और फिर वन शूकर होते हैं।३३। कथा होते समय जो दुष्ट मनुष्य विघ्न उपस्थित करते हैं, वह

करोड़ वर्षों तक नरक भोगने के उपरान्त ग्राम शूकर बनते हैं ।३४। इसलिये श्रोता और वक्ता दोनों ही विचार पूर्वक शुद्धात्मा होकर भक्ति-भाव सहित कथा सुनने के लिये बुद्धिपूर्वक तत्पर हों ।३५। कथा में विघ्न उपस्थित न हो, इसके लिये प्रथम गणेशजी का पूजन करे, फिर संक्षेप में नित्य कर्म करके प्रायश्चित करे ।३६।

नवग्रहांश्च सम्पूज्य सर्वतोभद्रदैवतम् ।
शिवपूजोक्तविधिना पुस्तकं तत्समर्चयेत् ।३७।
पूजनांते महाभक्त्या करौ बद्ध्वा विनीतकः ।
साक्षाच्छिवस्वरूपस्य पुस्तकस्य स्तुतिं चरेत् ।३८।
श्रीमच्छिवपुराणाख्य प्रत्यक्षस्त्व महेश्वरः ।
श्रवणार्थं स्वीकृतोऽसि सन्तुष्टो भव वै मयि ।३९।
मरोरथ मदीयोऽयं कर्तव्यः सफलस्त्वया ।
निर्विघ्नेन सुसम्पूर्णं कथाश्रवणमस्तु मे ।४०।
भवाब्धिमग्नं दीनं मां समुद्धर भवार्णवात् ।
कर्मग्राहगृहीतांगं दासोऽहं तव शंकर ।४१।
एवं शिवपुराणं हि साक्षाच्छिवस्वरूपकम् ।
स्तुत्वा दीनवचः प्रोच्य वक्तुः पूजां समारभेत् ।४२।
शिवपूजोक्तविधिना वक्तारं च समर्चयेत् ।
सपुष्पवस्त्रभूषाभिर्धूपदीपादिनाऽर्चयेत् ।४३।
तदग्रे शुद्धचित्तेन कर्तव्यो नियमस्यदा ।
आसमाप्ति यथाशक्त्या धारणीयः सुयत्नतः ।४४।
व्यासरूप प्रबोधाग्य् शिवशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ।४५।

नवग्रह और सर्वतोभद्र के देवताओं को पूजकर शिवजी की पूजन विधि के अनुसार पुराण-पुस्तक का पूजन करना चाहिये ।३७। पूजन के अन्त में भक्ति पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर साक्षात् शिवजी स्वरूप पुराण-पुस्तक की स्तुति करे ।३८। यह श्री शिवपुराण प्रत्यक्ष शिवजी का स्वरूप है । सुनने के लिये यह सत्कार करने से मेरे ऊपर प्रसन्न हों

।३९। मेरे इन मनोरथों को आप पूर्ण कीजिये । मेरी यह कथा निर्विघ्न सम्पूर्ण हो जाय, ऐसी कृपा करिये ।४०। हे शङ्कर ! मैं आपका दास हूं । कर्म रूपी ग्राह के द्वारा पकड़ा हुआ संसार सागर में पड़ा हूँ । इस सागर से आप मुझे पार लगाइये ।४१। इस प्रकार इस साक्षात् शिव स्वरूप शिवपुराण का स्तवन करता हुआ नम्रतायुक्त वाणी से व्यास पूजन करे ।४२। शिवजी का पूजन जिस विधि से किया जाता है, उसी विधि से वक्ता का पूजन करे । वस्त्राभूषण, पुष्प और धूप दीप से पूजन करे ।४३। उसके सम्मुख शुद्ध चित से नियम ले और जब तक कथा सम्पूर्ण हो तब तक अपने सामर्थ्यानुसार नियमों का पालन करे ।४४। हे व्यास स्वरूप ! हे ज्ञान के देने वाले ! हे सम्पूर्ण शास्त्र विशारद ! आप इस कथा को कहकर मेरे अज्ञान का हरण कीजिये ।४५।

शिवपुराण के श्रोताओं के विधि निषेध और पूजाविधि

पुंसां शिवपुराणस्य श्रवणव्रतिनां मुने ।
सर्वलोकहितार्थाय दयया नियमं वद ।१।
नियमं श्रृणु सद्भक्त्या पुसां तेषां च शौनक ।
नियमात्सत्कथां श्रुत्वा निर्विघ्नफलमुत्तमम् ।२।
पुसां दीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।
श्रोतुकामैरतो वक्तुर्दीक्षा ग्राह्या च तैर्मुने ।३।
ब्रह्मचर्यमधः सुप्ति पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्ति च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।४।
आसमाप्तपुराणं हि समुपोष्य सुशक्तिमान् ।
शृणुयाद्भक्तिः शुद्धः पुराणं शैवमुत्तमम् ।५।
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात्सुखम् ।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तं न वाहितत् ।६।
एकवारं हविष्यान्न भुंज्यादेतत्कथाव्रती ।
सुखसाध्यं यथा स्यात्तच्छ्रवणं कायमेव च ।७।

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! शिवपुराण का व्रत करने वालों के सम्पूर्ण लोकहित के लिये नियम कहिये ।१। सूतजी ने कहा–हे शौनक ! भक्तिपूर्वक उनके नियमों को सुनो । नियम से सत्कथा को सुने, जिससे निर्विघ्नता पूर्वक श्रेष्ठ फल प्राप्त हो ।२। कथा सुनने में दीक्षा-रहित का अधिकार नहीं है । इसलिये वक्ता से दीक्षा लेनी चाहिए ।३। ब्रह्मचर्य पूर्वक पृथिवी में शयन, पत्तल में भोजन तथा कथा समाप्त होने पर आहार ग्रहण करे ।४। श्रोता को उचित है कि पुराण-कथा के सम्पूर्ण होने पर्यन्त सामर्थ्यानुसार व्रत पालन करते हुए श्रद्धा सहित शिवपुराण का श्रवण करे ।५। घृत या दुग्ध का पान करके या फलाहार करके अथवा एक समय भोजन करके कथा सुने ।६। इस कथा के सुनने वाले को एक बार हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये जिस प्रकार कथा श्रवण सुखसाध्य हो सके वैसा ही करे ।७।

भोजनं सुकरं मन्ये कथासु श्रवणप्रदम् ।
नोपवासो वरश्चेत्स्यात्कथाश्रवणविघ्नकृत् ।८।
गरिष्ठं द्विदलं दग्धं निष्पावांश्च मसूरिकाम् ।
भावदुष्टं पर्युषितं जग्ध्वा नित्यं कथाव्रती ।९।
वार्ताकिं च कलिंदं च चिचण्डं मूलकं तथा ।
कूष्माण्डं नालिकेरं च मूलं जग्ध्वा कथाव्रती ।१०।
पलाण्डुं लशुनं हिंगुं गृजनं मादकं हि तत् ।
वस्तुन्यामिषसंज्ञानि वर्जयेद्यः कथाव्रती ।११।
कामादिषड्विकारं च द्विजनां च विनिन्दनम् ।
पतिव्रतासतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ।१२।
सत्यं शौचं दयां मौनमार्जव विनय तथा ।
औदार्यं मनसश्चैव कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।१३।
निष्कामश्च सकामश्च नियमाच्छृणुयात्कथाम् ।
सकामः काममाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ।१४।

भले प्रकार कथा में मन लग सके, इसलिये थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर ले । उपवास करने से कथा में मन न लगने के कारण विघ्न होता

है ।८। गरिष्ठ दालें, दग्ध निष्पाव मसूरिका अथवा बासी और दोषयुक्त भोजन को कथाव्रती ग्रहण न करे ।९। बैंगन, कलिंद चिचैंड़ा मूली, पेठा आदि शाक मूल का सेवन भी कथाव्रती को नित्य प्रति नहीं करना चाहिए ।१०। प्याज, लहसुन, गाजर तथा मादक द्रव्य और आमिष वस्तुओं का भोजन भी कथाव्रती के लिए त्याज्य कहा गया है ।११। कामादि षट् विकारों का त्याग करे । सत्पुरुषों और ब्राह्मणों की कभी निन्दा न करे तथा पतिव्रता की भी निन्दा न करे ।१२। सत्य, शौच, दया, मौन, आर्जव, विनय, उदारता आदि का पालन कथाव्रती पुरुष को नित्य प्रति करना चाहिए ।१३। निष्काम या सकाम किसी भी भाव से कथा नियमपूर्वक सुननी चाहिए । सकाम पुरुष कामना को और निष्काम श्रवण वाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है ।१४।

दरिद्रश्च क्षयी रोगी पापी निर्भाग्य एव च ।
अनपत्योऽपि पुरुषः श्रृणुयात्सत्कथामिमाम् ।१५।
काकवन्ध्यादयः सप्तविधा अपि खलस्त्रियः ।
स्रवद्गर्भा च या नारी ताभ्यां श्राव्या कथा परा ।१६।
शिवपूजनवत्सम्यक्पुस्तकस्य पुरो मुने ।
पूजा कार्यो सुविधिना वक्तुश्च तदनन्तरम् ।१७।
पुस्तकाच्छादनार्थं हि नवीनं चासनं शुभम् ।
समर्चयेद्दृढं दिव्यं बन्धनार्थं च सूत्रकम् ।१८।
पुराणार्थं प्रयच्छन्ति ये सूत्रं वसनं नवम् ।
योगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवंति भवे भवे ।१९।
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मपदे कल्पं यान्ति शैवपदं ततः ।२०।

दरिद्री, क्षयी, रोग, पापी, भाग्यहीन एवं सन्तानहीन पुरुष भी अपने दुःखों के निवारणार्थ इस कथा को श्रवण करे ।१५। सातों प्रकार की बंध्या स्त्रियों अथवा जिन स्त्रीयों का गर्भ-स्राव हो जाता हो उन्हें निरन्तर शिव कथा को श्रवण करना चाहिए ।१६। हे मुने ! शिवजी

का पूजन करने के समान पुस्तक के सम्मुख विधिवत् पूजन करे और फिर वक्ता का पूजन करे।१७। पुस्तक के आच्छादनार्थ नवीन वस्त्र प्रदान करे और उसे बाँधने के निमित्त सुन्दर रेशमी डोरा देना चाहिए, ।१८। जो पुरुष पुराण के निमित्त नवीन वस्त्र और सूत्र प्रदान करते हैं, वे सभी युगों में योगी और ज्ञान-सम्पन्न होते हैं।१९। वे स्वर्ग लोक में जाकर वहाँ के अनेक भोगों का उपभोग कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते और कल्प के अन्त में शिवलोक में जाते हैं।२०।

विरक्तश्च भवेच्छ्रोता परऽहनि विशेशतः।
गीता वाच्या शिवेनोक्ता रामचन्द्राय या मुने ।२१।
गृहस्थश्चेद्भवेच्छ्रोता कर्तव्यस्तेन धीमता।
होमः शुद्धेन हविषा कर्मणस्तस्य शान्तये ।२२।
रुद्रसहितया होमः प्रतिश्लोकेन वा मुने।
गायत्र्यास्तन्मयत्वाच्च पुराणस्यास्य तत्वतः ।२३।
दोषयोः प्रशमार्थं च न्यूनताधिकताख्ययोः।
पठेच्च श्रृणुयाद्भक्तत्या शिवनामसहस्रकम् ।२४।
एवं कृते विधाने च श्रीमच्छिवपुराणकम्।
संपूर्णफलदं स्याद्वै भुक्तिमुक्ति प्रदायकम् ।२५।

यदि श्रोता विरक्त हो तो द्वितीय दिवस शिव गीता का विशेष करके पाठ करे। उसका उपदेश शिवजी ने श्रीरामचन्द्रजी को दिया था।२१। यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उसे शुद्ध हवि के द्वारा उस कर्म की शान्ति के निमित्त हवन करना चाहिये ।२२। अथवा रुद्र संहिता के प्रत्येक श्लोक से हवन करे या तन्मय गायत्री से अथवा पुराण के तत्व से हवन करे ।२३। न्यूनाधिक दोषों की शान्ति के लिये भक्तिपूर्वक शिव-सहस्र नाम का पाठ करना चाहिये।२४। इस प्रकार विधानपूर्वक श्रवण करने से शिवपुराण पूर्ण फलदाता होता है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों फलों की प्राप्ति होती है।२५।

श्रीशिवमहापुराणम्
अथ श्रीशिवमहापुराणं विद्येश्वरसंहिता प्रारभ्यते
श्रीगणेशाय नमः
श्रीगुरुभ्यो नमः
श्रिसरस्वत्यै नमः
अथ शिवपुराणे प्रथमा विद्येश्वरसंहिताप्रारभ्यते

आद्यन्तमंगलमजातसमानभावमार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्
पंचाननं प्रबलपंचविनोदशीलं संभावये मनसिशंकरमम्बिकेशम् १

अध्याय १

व्यास उवाच
धर्मक्षेत्रे महाक्षेत्रे गंगाकालिन्दिसंगमे
प्रयागे परमे पुण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि १
मुनयः शंसितात्मानस्सत्यव्रतपरायणाः
महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे २
तत्र सत्रं समाकर्ण्य व्यासशिष्यो महामुनिः
आजगाम मुनीन्द्रष्टुं सूतः पौराणिकोत्तमः ३
तं दृष्ट्वा सूतमायांतं हर्षिता मुनयस्तदा
चेतसा सुप्रसन्नेन पूजां चक्रुर्यथाविधि ४
ततो विनयसंयुक्ता प्रोचुः सांजलयश्च ते
सुप्रसन्ना महात्मानः स्तुतिं कृत्वायथाविधि ५
रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्वै भाग्यगौरवात्
पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यर्थमीयिवान् ६
तस्मादाश्चर्य्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम्

रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः ७
यच्च भूतं च भव्यं च यच्चान्यद्वस्तु वर्तते
न त्वयाऽविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ८
त्वं मद्दिष्टवशादस्य दर्शनार्थमिहागतः
कुर्वन्किमपि नः श्रेयो न वृथा गंतुमर्हसि ९
तत्त्वं श्रुतं स्म नः सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम्
न तृप्तिमधिगच्छामः श्रवणेच्छा मुहुर्मुहुः १०
इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सूत सन्मते
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो भवेत् ११
प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः १२
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः १३
देहात्मदृष्टया मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः
मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिंकराः १४
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः १५
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशःपरवंचकाः
त्रिकालसंध्यया हीना ब्रह्मबोधविवर्जिताः १६
अदयाः पंडितं मन्यास्स्वाचारव्रतलोपकाः
कृष्युद्यमरताः क्रूरस्वभावा मलिनाशयाः १७
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्यागशीलिनः
असत्संगाः पापरता व्यभिचारपरायणाः १८
अशूरा अरणप्रीताः पलायनपरायणाः
कुचौरवृत्तयः शूद्राः कामकिंकरचेतसः १९

शस्त्रास्त्रविद्यया हीना धेनुविप्रावनोज्झिताः
शरण्यावनहीनाश्च कामिन्यूतिमृगास्सदा २०
प्रजापालनसद्धर्मविहीना भोगतत्पराः
प्रजासंहारका दुष्टा जीवहिंसाकरा मुदा २१
वैश्याः संस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः
कुपथाः स्वार्जनरतास्तुलाकर्मकुवृत्तयः २२
गुरुदेवद्विजातीनां भक्तिहीनाः कुबुद्धयः
अभोजितद्विजाः प्रायः कृपणा बद्धमुष्टयः २३
कामिनीजारभावेषु सुरता मलिनाशयाः
लोभमोहविचेतस्काः पूर्तादिसुवृषोज्झिताः २४
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्मत्यागशीलिनः २५
कर्तारस्तपसां भूयो द्विजतेजोपहारकाः
शिश्वल्पमृत्युकाराश्च मंत्रोच्चारपरायणाः २६
शालिग्रामशिलादीनां पूजकाहोमतत्पराः
प्रतिकूलविचाराश्च कुटिला द्विजदूषकाः २७
धनवंतः कुकर्म्माणो विद्यावन्तो विवादिनः
आख्यायोपासना धर्मवक्तारो धर्मलोपकाः २८
सुभूपाकृतयो दंभाः सुदातारो महामदाः
विप्रादीन्सेवकान्मत्वा मन्यमाना निजं प्रभुम् २९
स्वधर्मरहिता मूढाः संकराः क्रूरबुद्धयः
महाभिमानिनो नित्यं चतुर्वर्णविलोपकाः ३०
सुकुलीनान्निजान्मत्वा चतुर्वर्णैर्विवर्तनाः
सर्ववर्णभ्रष्टकरा मूढास्सत्कर्मकारिणः ३१
स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञानकारिकाः

श्वशुरद्रोहकारिण्यो निर्भया मलिनाशनाः ३२
कुहावभावनिरताः कुशीलास्स्मरविह्वलाः
जारसंगरता नित्यं स्वस्वामिविमुखास्तथा ३३
तनया मातृपित्रोश्च भक्तिहीना दुराशयाः
अविद्यापाठका नित्यं रोगग्रसितदेहकाः ३४
एतेषां नष्टबुद्धीनां स्वधर्मत्यागशीलिनाम्
परलोकेपीह लोके कथं सूत गतिर्भवेत् ३५
इति चिंताकुलं चित्तं जायते सततं हि नः
परोपकारसदृशो नास्ति धर्मो परः खलु ३६
लघूपायेन येनैषां भवेत्सद्योघनाशनम्
सर्व्वसिद्धान्तवित्त्वं हि कृपया तद्वदाधुना ३७
व्यास उवाच
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्
मनसा शंकरं स्मृत्वा सूतः प्रोवाच तान्मुनीन् ३८
इति श्रीशैवेमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां मुनिप्रश्नवर्णनो नाम
प्रथमोऽध्यायः १

अध्याय २

सूत उवाच
साधुपृष्टं साधवो वस्त्रैलोक्यहितकारकम्
गुरुं स्मृत्वा भवत्स्नेहाद्वक्ष्ये तच्छृणुतादरात् १
वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं शैवमुत्तमम्
सर्वाघौघोद्धारकरं परत्र परमार्थदम् २
कलिकल्मषविध्वंसि यस्मिञ्छिवयशः परम्
विजृम्भते सदा विप्राश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ३

तस्याध्ययनमात्रेण पुराणस्य द्विजोत्तमाः
सर्वोत्तमस्य शैवस्य ते यास्यंति सुसद्गतिम् ४
तावद्विजृंभते पापं ब्रह्महत्यापुरस्सरम्
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ५
तावत्कलिमहोत्पाताः संचरिष्यंति निर्भयाः
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ६
तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदंति परस्परम्
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ७
तावत्स्वरूपं दुर्बोधं शिवस्य महतामपि
यावच्छिवपुराणं हि नो देष्यति जगत्यहो ८
तावद्यमभटाः क्रूराः संचरिष्यंति निर्भयाः
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ९
तावत्सर्वपुराणानि प्रगर्जंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो १०
तावत्सर्वाणि तीर्थानि विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ११
तावत्सर्वाणि मंत्राणि विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १२
तावत्सर्वाणि क्षेत्राणि विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १३
तावत्सर्वाणि पीठानि विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १४
तावत्सर्वाणि दानानि विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १५
तावत्सर्वे च ते देवा विवदंति महीतले

यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १६
तावत्सर्वे च सिद्धान्ता विवदंति महीतले
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले १७
अस्य शैवपुराणस्य कीर्तनश्रवणाद्द्विजाः
फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तमाः १८
तथापि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किंचित्तु वोनघाः
चित्तमाधाय शृणुत व्यासेनोक्तं पुरा मम १९
एतच्छिवपुराणं हि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च
यः पठेद्भक्तिसंयुक्तस्स पापान्मुच्यते क्षणात् २०
एतच्छिवपुराणं हि यः प्रत्यहमतंद्रितः
यथाशक्ति पठेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते २१
एतच्छिवपुराणं हि यो भक्त्यार्चयते सदा
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् २२
एतच्छिवपुराणं यस्साधारणपदेच्छया
अन्यतः शृणुयात्सोऽपि मत्तो मुच्येत पातकात् २३
एतच्छिवपुराणं यो नमस्कुर्याददूरतः
सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः २४
एतच्छिवपुराणं वै लिखित्वा पुस्तकं स्वयम्
यो दद्याच्छिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु २५
अधीतेषु च शास्त्रेषु वेदेषु व्याकृतेषु च
यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य संभवेत् २६
एतच्छिवपुराणं हि चतुर्दश्यामुपोषितः
शिवभक्तसभायां यो व्याकरोति स उत्तमः २७
प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्य्याफलं लभेत्
इह भुक्त्वाखिलान्कामानं ते निर्वाणतां व्रजेत् २८

उपोषितश्चतुर्दश्यां रात्रौ जागरणान्वितः
यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् २९
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः
आत्मतुल्यधनं सूर्य्यग्रहणे सर्वतोमुखे ३०
विप्रेभ्यो व्यासमुख्येभ्यो दत्त्वायत्फलमश्नुते
तत्फलं संभवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ३१
एतच्छिवपुराणं हि गायते योप्यहर्निशम्
आज्ञां तस्य प्रतीक्षेरन्देवा इन्द्रपुरो गमाः ३२
एतच्छिवपुराणं यः पठञ्छृण्वन्हि नित्यशः
यद्यत्करोति सत्कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत् ३३
समाहितः पठेद्यस्तु तत्र श्रीरुद्रसंहिताम्
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेवादिनैर्भवेत् ३४
तां रुद्रसंहितां यस्तु भैरवप्रतिमांतिके
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स कामानखिलाँल्लभेत् ३५
तां रुद्रसंहितां यस्तु सपठेद्वटबिल्वयोः
प्रदक्षिणां प्रकुर्वाणो ब्रह्महत्या निवर्तते ३६
कैलाससंहिता तत्र ततोऽपि परमस्मृता
ब्रह्मस्वरूपिणी साक्षात्प्रणवार्थप्रकाशिका ३७
कैलाससंहितायास्तु माहात्म्यं वेत्ति शंकरः
कृत्स्नं तदर्द्धं व्यासश्च तदर्द्धं वेद्म्यहं द्विजाः ३८
तत्र किंचित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ३९
न नाशयति यत्पापं सा रौद्री संहिता द्विजाः
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ४०
शिवेनोपनिषत्सिंधुमन्थनोत्पादितां मुदा

कुमारायार्पितां तां वै सुधां पीत्वाऽमरो भवेत् ४१
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं कर्तुमुद्यतः
मासमात्रं संहितां तां पठित्वा मुच्यते ततः ४२
दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसंभवम्
पापं सकृत्कीर्तनेन संहिता सा विनाशयेत् ४३
शिवालये बिल्ववने संहितां तां पठेत्तु यः
स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरे ४४
संहितां तां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान्
तस्य ये पितरः सर्वे यांति शंभोः परं पदम् ४५
चतुर्दश्यां निराहारो यः पठेत्संहितां च ताम्
बिल्वमूले शिवः साक्षात्स देवैश्च प्रपूज्यते ४६
अन्यापि संहिता तत्र सर्वकामफलप्रदा
उभे विशिष्टे विज्ञेये लीलाविज्ञानपूरिते ४७
तदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंमितम्
निर्मितं तच्छिवेनैव प्रथमं ब्रह्मसंमितम् ४८
विद्येशंच तथारौद्रं वैनायकमथौमिकम्
मात्रं रुद्रैकादशकं कैलासं शतरुद्रकम् ४९
कोटिरुद्रसहस्राद्यं कोटिरुद्रं तथैव च
वायवीयं धर्मसंज्ञं पुराणमिति भेदतः ५०
संहिता द्वादशमिता महापुण्यतरा मता
तासां संख्यां ब्रुवे विप्राः शृणुतादरतोखिलम् ५१
विद्येशं दशसाहस्रं रुद्रं वैनायकं तथा
औमं मातृपुराणाख्यं प्रत्येकाष्टसहस्रकम् ५२
त्रयोदशसहस्रं हि रुद्रैकादशकं द्विजाः
षट्सहस्रं च कैलासं शतरुद्रं तदर्द्धकम् ५३

कोटिरुद्रं त्रिगुणितमेकादशसहस्रकम्
सहस्रकोटिरुद्राख्यमुदितं ग्रंथसंख्यया ५४
वायवीयं खाब्धिशतं घर्मं रविसहस्रकम्
तदेवं लक्षसंख्याकं शैवसंख्याविभेदतः ५५
व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्
शैवं तत्र चतुर्थं वै पुराणं सप्तसंहितम् ५६
शिवे संकल्पितं पूर्वं पुराणं ग्रन्थसंख्यया
शतकोटिप्रमाणं हि पुरा सृष्टौ सुविस्मृतम् ५७
व्यस्तेष्टादशधा चैव पुराणे द्वापरादिषु
चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते कृते द्वैपायनादिभिः ५८
प्रोक्तं शिवपुराणं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम्
श्लोकानां संख्यया सप्तसंहितं ब्रह्मसंमितम् ५९
विद्येश्वराख्या तत्राद्या रौद्री ज्ञेया द्वितीयिका
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ६०
पंचमी चैव मौमाख्या षष्ठी कैलाससंज्ञिका
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहितामताः ६१
ससप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम्
वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरि गतिप्रदम् ६२
एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात्
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते ६३
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च
एतच्छिवपुराणस्य नार्हंत्यल्पां कलामपि ६४
शैवं पुराणममलं शिवकीर्तितं तद्व्यासेन शैवप्रवणेन न
संगृहीतम्
संक्षेपतः सकलजीवगुणोपकारे तापत्रयघ्नमतुलं शिवदं सतां

हि ६५
विकैतवो धर्म इह प्रगीतो वेदांतविज्ञानमयः प्रधानः
अमत्सरांतर्बुधवेद्यवस्तु सत्क्लृप्तमत्रैव त्रिवर्गयुक्तम् ६६
शैवं पुराणतिलकं खलु सत्पुराणं
वेदांतवेदविलसत्परवस्तुगीतम्
यो वै पठेच्च शृणुयात्परमादरेण शंभुप्रियः स हि लभेत्परमां
गतिं वै ६७
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः २

अध्याय ३

व्यास उवाच
इत्याकर्ण्य वचः सौतं प्रोचुस्ते परमर्षयः
वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाद्भुतम् १
इति श्रुत्वा मुनीनां स वचनं सुप्रहर्षितः
संस्मरञ्छंकरं सूतः प्रोवाच मुनिसत्तमान् २
सूत उवाच
शृण्वंतु ऋषयः सर्वे स्मृत्वा शिवमनामयम्
पुराणप्रवरं शैवं पुराणं वेदसारजम् ३
यत्र गीतं त्रिकं प्रीत्या भक्तिज्ञानविरागकम् ४
वेदांतवेद्यं सद्वस्तु विशेषेण प्रवर्णितम् ५
सूत उवाच
शृण्वंतु ऋषयः सर्वे पुराणं वेदसारजम्
पुरा कालेन महता कल्पेऽतीते पुनःपुनः ६
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि
मुनीनां षट्कुलीनानां ब्रुवतामितरेतरम् ७

इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत्
तेऽभिजग्मुर्विधातारं ब्रह्माणं प्रष्टुमव्ययम् ८
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन्
त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम् ९
कः पुमान्सर्वतत्त्वेभ्यः पुराणः परतः परः
ब्रह्मोवाच
यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह १०
यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेंद्रपूर्वकम्
सहभूतेंद्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ११
एष देवो महादेवः सर्वज्ञो जगदीश्वरः
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नाऽन्यथा क्वचित् १२
रुद्रो हरिर्हरश्चैव तथान्ये च सुरेश्वराः
भक्त्या परमया तस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः १३
बहुनात्र किमुक्तेन शिवे भक्त्या विमुच्यते
प्रसादाद्देवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः
यथेहांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः १४
तस्मादीशप्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवं द्विजाः
दीर्घसत्रं समाकृध्वं यूयं वर्षसहस्रकम् १५
अमुष्यैवाध्वरेशस्य शिवस्यैव प्रसादतः
वेदोक्तविद्यासारं तु ज्ञायते साध्यसाधनं १६
मुनय ऊचुः
अथ किं परमं साध्यं किंवा तत्साधनं परम्
साधकः कीदृशस्तत्र तदिदं ब्रूहि तत्त्वतः १७
ब्रह्मोवाच
साध्यं शिवपदप्राप्तिः साधनं तस्य सेवनम्

साधकस्तत्प्रसादाद्योऽनित्यादिफलनिःस्पृहः १८
कर्म कृत्वा तु वेदोक्तं तदर्पितमहाफलम्
परमेशपदप्राप्तः सालोक्यादिक्रमात्ततः १९
तत्तद्भक्त्यनुसारेण सर्वेषां परमं फलम्
तत्साधनं बहुविधं साक्षादीशेन बोधितम् २०
संक्षिप्य तत्र वः सारं साधनं प्रब्रवीम्यहम्
श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा २१
मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च मन्तव्यश्च महेश्वरः २२
इति श्रुतिप्रमाणं नः साधनेनाऽमुना परम्
साध्यं व्रजत सर्वार्थसाधनैकपरायणाः २३
प्रत्यक्षं चक्षुषा दृष्ट्वा तत्र लोकः प्रवर्तते
अप्रत्यक्षं हि सर्वत्र ज्ञात्वा श्रोत्रेण चेष्टते २४
तस्माच्छ्रवणमेवादौ श्रुत्वा गुरुमुखाद्बुधः
ततः संसाधयेदन्यत्कीर्तनं मननं सुधीः २५
क्रमान्मननपर्यंते साधनेऽस्मिन्सुसाधिते
शिवयोगो भवेत्तेन सालोक्यादिक्रमाच्छनैः २६
सर्वांगव्याधयः पश्चात्सर्वानंदश्च लीयते
अभ्यासात्क्लेशमेतद्वै पश्चादाद्यंतमंगलम् २७

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
तृतीयोऽध्यायः ३

अध्याय ४

मुनय ऊचुः
मननं कीदृशं ब्रह्मञ्छ्रवणं चापि कीदृशम्

कीर्तनं वा कथं तस्य कीर्तयैतद्यथायथम् १
ब्रह्मोवच
पूजाजपेशगुणरूपविलासनाम्नां युक्तिप्रियेण मनसा परिशोधनं यत्
तत्संततं मननमीश्वरदृष्टिलभ्यं सर्वेषु साधनवरेष्वपि मुख्यमुख्यम्
२
गीतात्मना श्रुतिपदेन च भाषया वा शंभुप्रतापगुणरूपविलासनाम्नाम्
वाचा स्फुटं तु रसवत्स्तवनं यदस्य तत्कीर्तनं भवति साधनमत्र
मध्यम् ३
येनापि केन करणेन च शब्दपुंजं यत्र क्वचिच्छिवपरं श्रवणेंद्रियेण
स्त्रीकेलिवद्दृढतरं प्रणिधीयते यत्तद्वै बुधाः श्रवणमत्र जगत्प्रसिद्धम्
४
सत्संगमेन भवति श्रवणं पुरस्तात्संकीर्तनं पशुपतेरथ तद्दृढं स्यात्
सर्वोत्तमं भवति तन्मननं तदंते सर्वं हि संभवति शंकरदृष्टिपाते ५
सूत उवाच
अस्मिन्साधनमाहत्म्ये पुरा वृत्तं मुनीश्वराः
युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमवधानतः ६
पुरा मम गुरुर्व्यासः पराशरमुनेः सुतः
तपश्चचार संभ्रांतः सरस्वत्यास्तटे शुभे ७
गच्छन्यदृछया तत्र विमानेनार्करोचिषा
सनत्कुमारो भगवान्ददर्श मम देशिकम् ८
ध्यानारूढः प्रबुद्धोऽसौ ददर्श तमजात्मजम्
प्रणिपत्याह संभ्रांतः परं कौतूहलं मुनिः ९
दत्त्वार्घ्यमस्मै प्रददौ देवयोग्यं च विष्टिरम् १०ब्
प्रसन्नः प्राह तं प्रह्वं प्रभुर्गंभीरया गिरा १०
सनत्कुमार उवाच

सत्यं वस्तु मुने दध्याः साक्षात्करणगोचरः
स शिवोथासहायोत्र तपश्चरसि किं कृते ११
एवमुक्तः कुमारेण प्रोवाच स्वाशयं मुनिः
धर्मार्थकाममोक्षाश्च वेदमार्गे कृतादराः १२
बहुधा स्थापिता लोके मया त्वत्कृपया तथा
एवं भुतस्य मेप्येवं गुरुभूतस्य सर्वतः १३
मुक्तिसाधनकं ज्ञानं नोदेति परमाद्भुतम्
तपश्चरामि मुक्त्यर्थं न जाने तत्र कारणम् १४
इत्थं कुमारो भगवान्व्यासेन मुनिनार्थितः
समर्थः प्राह विप्रेंद्रा निश्चयं मुक्तिकारणम् १५
श्रवणं कीर्तनं शंभोर्मननं च महत्तरम्
त्रयं साधनमुक्तं च विद्यते वेदसंमतम् १६
पुराहमथ संभ्रांतो ह्यन्यसाधनसंभ्रमः
अचले मंदरे शैले तपश्चरणमाचरम् १७
शिवाज्ञया ततः प्राप्तो भगवान्नंदिकेश्वरः
स मे दयालुर्भगवान्सर्वसाक्षी गणेश्वरः १८
उवाच मह्यं सस्नेहं मुक्तिसाधनमुत्तमम्
श्रवणं कीर्तनं शंभोर्मननं वेदसंमतम् १९
त्रिकं च साधनं मुक्तौ शिवेन मम भाषितम्
श्रवणादिं त्रिकं ब्रह्मन्कुरुष्वेति मुहुर्मुहुः २०
एवमुक्त्वा ततो व्यासं सानुगो विधिनंदनः
जगाम स्वविमानेन पदं परमशोभनम् २१
एवमुक्तं समासेन पूर्ववृत्तांतमुत्तमम्
ऋषय ऊचुः
श्रवणादित्रयं सूत मुक्त्योपायस्त्वयेरितः २२

श्रवणादित्रिकेऽशक्तः किं कृत्वा मुच्यते जनः
अयत्नेनैव मुक्तिः स्यात्कर्मणा केन हेतुना २३
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायं
साध्यसाधनखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ४

अध्याय ५

सूत उवाच
श्रवणादित्रिकेऽशक्तो लिंगं बेरं च शांकरम्
संस्थाप्य नित्यमभ्यर्च्य तरेत्संसारसागरम् १
अपि द्रव्यं वहेदेव यथाबलमवंचयन्
अर्पयेल्लिंगबेरार्थमर्चयेदपि संततम् २
मंडपं गोपुरं तीर्थं मठं क्षेत्रं तथोत्सवम्
वस्त्रं गंधं च माल्यं च धूपं दीपं च भक्तितः ३
विविधान्नं च नैवेद्यमपूपव्यंजनैर्युतम्
छत्रं ध्वजं च व्यजनं चामरं चापि सांगकम् ४
राजोपचारवत्सर्वं धारयेल्लिंगबेरयोः
प्रदक्षिणां नमस्कारं यथाशक्ति जपं तथा ५
आवाहनादिसर्गांतं नित्यं कुर्यात्सुभक्तितः
इत्थमभ्यर्च्य यन्देवं लिंगेबेरे च शांकरे ६
सिद्धिमेति शिवप्रीत्या हित्वापि श्रवणादिकम्
लिंगबेरार्चनामात्रान्मुक्ताः पुर्वे महाजनाः ७
मनुय ऊचुः
बेरमात्रे तु सर्वत्र पूज्यंते देवतागणाः
लिंगेबेरे च सर्वत्र कथं संपूज्यते शिवः ८
सूत उवाच

अहो मुनीश्वराः पुण्यं प्रश्नमेतन्महाद्भुतम्
अत्र वक्ता महादेवो नान्योऽस्ति पुरुषः क्वचित् ९
शिवेनोक्तं प्रवक्ष्यामि क्रमाद्गुरुमुखाच्छ्रुतम्
शिवैको ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलः परिकीर्तितः १०
रूपित्वात्सकलस्तद्वत्तस्मात्सकलनिष्कलः
निष्कलत्वान्निराकारं लिंगं तस्य समागतम् ११
सकलत्वात्तथा बेरं साकारं तस्य संगतम्
सकलाकलरूपत्वाद्ब्रह्मशब्दाभिधः परः १२
अपि लिंगे च बेरे च नित्यमभ्यर्च्यते जनैः
अब्रह्मत्वात्तदन्येषां निष्कलत्वं न हि क्वचित् १३
तस्मात्ते निष्कले लिंगे नाराध्यंते सुरेश्वराः
अब्रह्मत्वाच्च जीवत्वात्तथान्ये देवतागणाः १४
तूष्णीं सकलमात्रत्वादर्च्यंते बेरमात्रके
जीवत्वं शंकरान्येषां ब्रह्मत्वं शंकरस्य च १५
वेदांतसारसंसिद्धं प्रणवार्थे प्रकाशनात्
एवमेव पुरा पृष्टो मंदरे नंदिकेश्वरः १६
सनत्कुमारमुनिना ब्रह्मपुत्रेण धीमता १७ब्
सनत्कुमार उवाच
शिवान्यदेववश्यानां सर्वेषामपि सर्वतः १७
बेरमात्रं च पूजार्थं श्रुतं दृष्टं च भूरिशः
शिवमात्रस्य पूजायां लिंगं बेरं च दृश्यते १८
अतस्तद्ब्रूहि कल्याण तत्त्वं मे साधुबोधनम्
नंदिकेश्वर उवाच
अनुत्तरमिमं प्रश्नं रहस्यं ब्रह्मलक्षणम् १९
कथयामि शिवेनोक्तं भक्तियुक्तस्य तेऽनघ

शिवस्य ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलत्वाच्च निष्कलम् २०
लिंगं तस्यैव पूजायां सर्ववेदेषु संमतम्
तस्यैव सकलत्वाच्च तथा सकलनिष्कलम् २१
सकलं च तथा बेरं पूजायां लोकसंमतम्
शिवान्येषां च जीवत्वात्सकलत्वाच्च सर्वतः २२
बेरमात्रं च पूजायां संमतं वेदनिर्णये
स्वाविर्भावे च देवानां सकलं रूपमेव हि २३
शिवस्य लिंगं बेरं च दर्शने दृश्यते खलु
सनत्कुमार उवाच
उक्तं त्वया महाभाग लिंगबेरप्रचारणम् २४
शिवस्य च तदन्येषां विभज्य परमार्थतः
तस्मात्तदेव परमं लिंगबेरादिसंभवम् २५
श्रोतुमिच्छामि योगींद्र लिंगाविर्भावलक्षणम्
नंदिकेश्वर उवाच
शृणु वत्स भवत्प्रीत्या वक्ष्यामि परमार्थतः २६
पुरा कल्पे महाकाले प्रपन्ने लोकविश्रुते
आयुध्येतां महात्मानौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् २७
तयोर्मानं निराकर्तुं तन्मध्ये परमेश्वरः
निष्कलस्तंभरूपेण स्वरूपं समदर्शयत् २८
ततः स्वलिंगचिह्नत्वात्स्तंभतो निष्कलं शिवः
स्वलिंगं दर्शयामास जगतां हितकाम्यया २९
तदाप्रभृति लोकेषु निष्कलं लिंगमैश्वरम्
सकलं च तथा बेरं शिवस्यैव प्रकल्पितम् ३०
शिवान्येषः तु देवानां बेरमात्रं प्रकल्पितम्
तत्तद्बेरं तु देवानां तत्तद्भोगप्रदं शुभम्

शिवस्य लिंगबेरत्वं भोगमोक्षप्रदं शुभम् ३१
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां पंचमोऽध्यायः ५

अध्याय ६

नंदिकेश्वर उवाच
पुरा कदाचिद्योगींद्र विष्णुर्विषधरासनः
सुष्वाप परया भूत्या स्वानुगैरपि संवृतः १
यदृच्छया गतस्तत्र ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः
अपृच्छत्पुंडरीकाक्षं शयनं सर्वसुन्दरम् २
कस्त्वं पुरुषवच्छेषे दृष्ट्वा मामपि दृप्तवत्
उत्तिष्ठ वत्स मां पश्य तव नाथमिहागतम् ३
आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत्
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ४
इति श्रुत्वा वचः क्रुद्धो बहिः शांतवदाचरत्
स्वस्ति ते स्वागतं वत्स तिष्ठ पीठमितो विश ५
किमु ते व्याग्रवद्वक्त्रं विभाति विषमेक्षणम्
ब्रह्मोवाच
वत्स विष्णो महामानमागतं कालवेगतः ६
पितामहश्च जगतः पाता च तव वत्सक
विष्णुरुवाच
मत्स्थं जगदिदं वत्स मनुषे त्वं हि चोरवत् ७
मन्नाभिकमलाज्ञातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा
नंदिकेश्वर उवाच
एवं हि वदतोस्तत्र मुग्धयोरजयोस्तदा ८
अहमेव बरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः

परस्परं हंतुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम् ९
युयुधातेऽमरौ वीरौ हंसपक्षींद्रवाहनौ
वैरंच्या वैष्णवाश्चैवं मिथो युयुधिरे तदा १०
तावद्विमानगतयः सर्वा वै देवजातयः
दिदृक्षवः समाजग्मुः समरं तं महाद्भुतम् ११
क्षिपंतः पुष्पवर्षाणि पश्यंतः स्वैरमंबरे
सुपर्णवाहनस्तत्र क्रुद्धो वै ब्रह्मवक्षसि १२
मुमोच बाणानसहानस्त्रांश्च विविधान्बहून्
मुमोचाऽथ विधिः क्रुद्धो विष्णोरुरसि दुःसहान् १३
बाणाननलसंकाशानस्त्रांश्च बहुशस्तदा
तदाश्चर्यमिति स्पष्टं तयोः समरगोचरम् १४
समीक्ष्य दैवतगणाः शशंसुर्भृशमाकुलाः
ततो विष्णुः सुसंक्रुद्धः श्वसन्व्यसनकर्शितः १५
माहेश्वरास्त्रं मतिमान् संदधे ब्रह्मणोपरि
ततो ब्रह्मा भृशं क्रुद्धः कंपयन्विश्वमेव हि १६
अस्त्रं पाशुपतं घोरं संदधे विष्णुवक्षसि
ततस्तदुत्थितं व्योम्नि तपनायुतसन्निभम् १७
सहस्रमुखमत्युग्रं चंडवातभयंकरम्
अस्त्रद्वयमिदं तत्र ब्रह्मविष्णवोर्भयंकरम् १८
इत्थं बभूव समरो ब्रह्मविष्णवोः परस्परम्
ततो देवगणाः सर्वे विषण्णा भृशमाकुलाः
ऊचुः परस्परं तात राजक्षोभे यथा द्विजाः १९
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरो भावोप्यनुग्रहः
यस्मात्प्रवर्तते तस्मै ब्रह्मणे च त्रिशूलिने २०
अशक्यमन्यैर्यदनुग्रहं विना तृणक्षयोप्यत्र यदृच्छया क्वचित्

इति देवाभयं कृत्वा विचिन्वंतः शिवक्षयम्
जग्मुः कैलासशिखरं यत्रास्ते चंद्रशेखरः २२
दृष्ट्वैवममरा हृष्टाः पदंतत्पारमेश्वरम्
प्रणेमुः प्रणवाकारं प्रविष्टास्तत्र सद्मनि २३
तेपि तत्र सभामध्ये मंडपे मणिविष्टरे
विराजमानमुमया ददृशुर्देवपुंगवम् २४
सव्योत्तरेतरपदं तदर्हितकरां बुजम्
स्वगणैः सर्वतो जुष्टं सर्वलक्षणलक्षितम् २५
वीज्यमानं विशेषजैः स्त्रीजनैस्तीव्रभावनैः
शस्यमानं सदावेदैरनुगृह्णंतमीश्वरम् २६
दृष्ट्वैवमीशममराः संतोषसलिलेक्षणाः
दंडवद्दूरतो वत्स नमश्चक्रुर्महागणाः २७
तानवेक्ष्य पतिर्देवान्समीपे चाह्वयद्गणैः
अथ संह्लादयन्देवान्देवो देवशिखामणिः
अवोचदर्थगंभीरं वचनं मधुमंगलम् २८
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां षष्ठोऽध्यायः ६

अध्याय ७

ईश्वर उवाच
वत्सकाः स्वस्तिवः कच्चिद्वर्तते मम शासनात्
जगच्च देवतावंशः स्वस्वकर्मणि किं नवा १
प्रागेव विदितं युद्धं ब्रह्मविष्णवोर्मयासुराः
भवतामभितापेन पौनरुक्त्येन भाषितम् २
इति सस्मितया माध्व्या कुमारपरिभाषया
समतोषयदंबायाः स पतिस्तत्सुरव्रजम् ३

अथ युद्धांगणं गंतुं हरिधात्रोरधीश्वरः
आज्ञापयद्गणेशानां शतं तत्रैव संसदि ४
ततो वाद्यं बहुविधं प्रयाणाय परेशितुः
गणेश्वराश्च संनद्धा नानावाहनभूषणाः ५
प्रणवाकारमाद्यंतं पंचमंडलमंडितम्
आरुरोह रथं भद्रमंबिकापतिरीश्वरः
ससूनुगणमिंद्राद्याः सर्वेप्यनुययुः सुराः ६
चित्रध्वजव्यजनचामरपुष्पवर्षसंगतिनृत्यनिवहैरपि वाद्यवर्गैः
संमानितः पशुपतिः परया च देव्या साकं तयोः
समरभूमिमगात्ससैन्यः ७
समीक्ष्यं तु तयोर्युद्धं निगूढोऽभ्रं समास्थितः
समाप्तवाद्यनिर्घोषः शांतोरुगणनिःस्वनः ८
अथ ब्रह्माच्युतौ वीरौ हंतुकामौ परस्परम्
माहेश्वरेण चाऽस्त्रेण तथा पाशुपतेन च ९
अस्त्रज्वालैरथो दग्धं ब्रह्मविष्णवोर्जगत्त्रयम्
ईशोपि तं निरीक्ष्याथ ह्यकालप्रलयं भृशम् १०
महानलस्तंभविभीषणाकृतिर्बभूव तन्मध्यतले स निष्कलः
ते अस्त्रे चापि सज्वाले लोकसंहरणक्षमे
निपेततुः क्षणे नैव ह्याविर्भूते महानले १२
दृष्ट्वा तदद्भुतं चित्रमस्त्रशांतिकरं शुभम्
किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्च परस्परम् १३
अतींद्रियमिदं स्तंभमग्निरूपं किमुत्थितम्
अस्योर्ध्वमपि चाधश्च आवयोर्लक्ष्यमेव हि १४
इति व्यवसितौ वीरौ मिलितौ वीरमानिनौ
तत्परौ तत्परीक्षार्थं प्रतस्थातेऽथ सत्वरम् १५

आवयोर्मिश्रयोस्तत्र कार्यमेकं न संभवेत्
इत्युक्त्वा सूकरतनुर्विष्णुस्तस्यादिमीयिवान् १६
तथा ब्रह्माहं सतनुस्तदंतं वीक्षितुं ययौ
भित्त्वा पातालनिलयं गत्वा दूरतरं हरिः १७
नाऽपश्यात्तस्य संस्थानं स्तंभस्यानलवर्चसः
श्रांतः स सूकरहरिः प्राप पूर्वं रणांगणम् १८
अथ गच्छंस्तु व्योम्ना च विधिस्तात पिता तव
ददर्श केतकी पुष्पं किंचिद्विच्युतमद्भुतम् १९
अतिसौरभ्यमम्लानं बहुवर्षच्युतं तथा
अन्वीक्ष्य च तयोः कृत्यं भगवान्परमेश्वरः २०
परिहासं तु कृतवान्कंपनाच्चलितं शिरः
तस्मात्तावनुगृह्णातुं च्युतं केतकमुत्तमम् २१
किं त्वं पतसि पुष्पेश पुष्पराट् केन वा धृतम्
आदिमस्याप्रमेयस्य स्तंभमध्याच्चयुतश्चिरम् २२
न संपश्यामि तस्मात्त्वं जह्याशामंतदर्शने
अस्यां तस्य च सेवार्थं हंसमूर्तिरिहागतः २३
इतः परं सखे मेऽद्य त्वया कर्तव्यमीप्सितम्
मया सह त्वया वाच्यमेतद्विष्णोश्च सन्निधौ २४
स्तंभांतो वीक्षितो धात्रा तत्र साक्ष्यहमच्युत
इत्युक्त्वा केतकं तत्र प्रणनाम पुनः नः
असत्यमपि शस्तं स्यादापदीत्यनुशासनम् २५
समीक्ष्य तत्राऽच्युतमायतश्रमं प्रनष्टहर्षं तु ननर्त हर्षात्
उवाच चैनं परमार्थमच्युतं षंढात्तवादः स विधिस्ततोऽच्युतम् २६
स्तंभाग्रमेतत्समुदीक्षितं हरे तत्रैव साक्षी ननु केतकं त्विदम्
ततोऽवदत्तत्र हि केतकं मृषा तथेति तद्धातृवचस्तदंतिके २७

हरिश्च तत्सत्यमितीव चिंतयंश्चकार तस्मै विधये नमः स्वयम्
षोडशैरुपचारैश्च पूजयामास तं विधिम् २८
विधिं प्रहर्तुं शठमग्निलिंगतः स ईश्वरस्तत्र बभूव साकृतिः
समुत्थितः स्वामि विलोकनात्पुनः प्रकंपपाणिः परिगृह्य तत्पदम्
२९
आद्यंतहीनवपुषि त्वयि मोहबुद्ध्या भूयाद्विमर्श इह नावति
कामनोत्थः
स त्वं प्रसीद करुणाकर कश्मलं नौ मृष्टं क्षमस्व विहितं भवतैव
केल्या ३०
ईश्वर उवाच
वत्सप्रसन्नोऽस्मि हरे यतस्त्वमीशत्वमिच्छन्नपि सत्यवाक्यम्
ब्रूयास्ततस्ते भविता जनेषु साम्यं मया सत्कृतिरप्यलप्थाः ३१
इतः परं ते पृथगात्मनश्च क्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनं च ३२
इति देवः पुरा प्रीतः सत्येन हरये परम्
ददौ स्वसाम्यमत्यर्थं देवसंघे च पश्यति ३३
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां सप्तमोऽध्यायः ७

अध्याय ८

नंदिकेश्वर उवाच
ससर्जाथ महादेवः पुरुषं कंचिदद्भुतम्
भैरवाख्यं भ्रुवोर्मध्याद्ब्रह्मदर्पजिघांसया १
स वै तदा तत्र पतिं प्रणम्य शिवमंगणे
किं कार्यं करवाण्यत्र शीघ्रमाज्ञापय प्रभो २
वत्सयोऽयं विधिः साक्षाज्जगतामाद्यदैवतम्
नूनमर्चय खड्गेन तिग्मेन जवसा परम् ३

स वै गृहीत्वैककरेण केशं तत्पंचमं दृप्तमसत्यभाषणम्
छित्त्वा शिरांस्यस्य निहंतुमुद्यतः प्रकंपयन्खड्गमतिस्फुटं करैः ४
पिता तवोत्सृष्टविभूषणांबरस्त्रगुत्तरीयामलकेशसंहतिः
प्रवातरंभेव लतेव चंचलः पपात वै भैरवपादपंकजे ५
तावद्विधिं तात दिदृक्षुरच्युतः कृपालुरस्मत्पतिपादपल्लवम्
निषिच्य बाष्पैरवदत्कृतांजलिर्यथा शिशुः स्वं पितरं कलाक्षरम् ६
अच्युत उवाच
त्वया प्रयत्नेन पुरा हि दत्तं यदस्य पंचाननमीशचिह्नम्
तस्मात्क्षमस्वाद्यमनुग्रहार्हं कुरु प्रसादं विधये ह्यमुष्मै ७
इत्यर्थितोऽच्युतेनेशस्तुष्टः सुरगणांगणे
निवर्तयामास तदा भैरवं ब्रह्मदंडतः ८
अथाह देवः कितवं विधिं विगतकंधरम्
ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षी शठमीशत्वमास्थितः ९
नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयात्स्थानोत्सवादिकम्
ब्रह्मोवच
स्वामिन्प्रसीदाद्य महाविभूते मन्ये वरं वरद मे शिरसः प्रमोक्षम् १०
नमस्तुभ्यं भगवते बंधवे विश्वयोनये
सहिष्णवे सर्वदोषाणां शंभवे शैलधन्वने ११
ईश्वर उवाच
अराजभयमेतद्वै जगत्सर्वं न शिष्यति
ततस्त्वं जहि दंडार्हं वह लोकधुरं शिशो १२
वरं ददामि ते तत्र गृहाण दुर्लभं परम्
वैतानिकेषु गृह्येषु यज्ञे च भवान् गुरुः १३
निष्फलस्त्वदृते यज्ञः सांगश्च सहदक्षिणः
अथाह देवः कितवं केतकं कूटसाक्षिणम् १४

रे रे केतक दुष्टस्त्वं शठ दूरमितो व्रज
ममापि प्रेम ते पुष्पे मा भूत्पूजास्वितः परम् १५
इत्युक्ते तत्र देवेन केतकं देवजातयः
सर्वानि वारयामासुस्तत्पार्श्वादन्यतस्तदा १६
केतक उवाच
नमस्ते नाथ मे जन्मनिष्फलं भवदाज्ञया
सफलं क्रियतां तात क्षम्यतां मम किल्बिषम् १७
ज्ञानाज्ञानकृतं पापं नाशयत्येव ते स्मृतिः
तादृशे त्वयि दृष्टे मे मिथ्यादोषः कुतो भवेत् १८
तथा स्तुतस्तु भगवान्केतकेन सभातले
न मे त्वद्धारणं योग्यं सत्यवागहमीश्वरः १९
मदीयास्त्वां धरिष्यंति जन्म ते सफलं ततः
त्वं वै वितानव्याजेन ममोपरि भविष्यसि २०
इत्यनुगृह्य भगवान्केतकं विधिमाधवौ
विरराज सभामध्ये सर्वदेवैरभिष्टुतः २१
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायामष्टमोऽध्यायः ८

अध्याय ९

नंदिकेश्वर उवाच
तत्रांतरे तौ च नाथं प्रणम्य विधिमाधवौ
बद्धांजलिपुटौ तूष्णीं तस्थतुर्दक्षवामगौ १
तत्र संस्थाप्य तौ देवं सकुटुंबं वरासने
पूजयामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः २
पौरुषं प्राकृतं वस्तुज्ञेयं दीर्घाल्पकालिकम्
हारनूपुरकेयूरकिरीटमणिकुंडलैः ३

यज्ञसूत्रोत्तरीयस्त्रक्क्षौममाल्यांगुलीयकैः
पुष्पतांबूलकर्पूरचंदनागुरुलेपनैः ४
धूपदीपसितच्छत्रव्यजनध्वजचामरैः
अन्यैर्दिव्योपहारैश्च वाङ्मनोतीतवैभवैः ५
पतियोग्यैः पश्वलभ्यैस्तौ समर्चयतां पतिम्
यद्यच्छ्रेष्ठतमं वस्तु पतियोग्यं हितद्धवजे ६
तद्वस्त्वखिलमीशोपि पारं पर्यचिकीर्षया
सभ्यानां प्रददौ हृष्टः पृथक्तत्र यथाक्रमम् ७
कोलाहलो महानासीत्तत्र तद्वस्तु गृह्णताम्
तत्रैव ब्रह्मविष्णुभ्यां चार्चितः शंकरः पुरा ८
प्रसन्नः प्राह तौ नम्रौ सस्मितं भक्तिवर्धनः
ईश्वर उवाच
तुष्टोऽहमद्य वां वत्सौ पूजयाऽस्मिन्महादिने ९
दिनमेतत्ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम्
शिवरात्रिरिति ख्याता तिथिरेषा मम प्रिया १०
एतत्काले तु यः कुर्यात्पूजां मल्लिंगबेरयोः
कुर्यात्तु जगतः कृत्यं स्थितिसर्गादिकं पुमान् ११
शिवरात्रावहोरात्रं निराहारो जितेंद्रियः १२ब्
अर्चयेद्वा यथान्यायं यथाबलमवंचकः १२
यत्फलं मम पूजायां वर्षमेकं निरंतरम्
तत्फलं लभते सद्यः शिवरात्रौ मदर्चनात् १३
मद्धर्मवृद्धिकालोऽयं चंद्रकाल इवांबुधेः
प्रतिष्ठाद्युत्सवो यत्र मामको मंगलायनः १४
यत्पुनः स्तंभरूपेण स्वाविरासमहं पुरा
स कालो मार्गशीर्षे तु स्यादार्द्रा ऋृक्षमर्भकौ १५

आर्द्रायां मार्गशीर्षे तु यः पश्येन्मामुमासखम्
मद्बेरमपि वा लिंगं स गुहादपि मे प्रियः १६
अलं दर्शनमात्रेण फलं तस्मिन्दिने शुभे
अभ्यर्चनं चेदधिकं फलं वाचामगोचरम् १७
रणरंगतलेऽमुष्मिन्यदहं लिंगवर्ष्मणा
जृंभितो लिंगवत्तस्माल्लिंगस्थानमिदं भवेत् १८
अनाद्यंतमिदं स्तंभमणुमात्रं भविष्यति
दर्शनार्थं हि जगतां पूजनार्थं हि पुत्रको १९
भोगावहमिदं लिंगं भुक्तिं मुक्त्येकसाधनम्
दर्शनस्पर्शनध्यानाज्जंतूनां जन्ममोचनम् २०
अनलाचलसंकाशं यदिदं लिंगमुत्थितम्
अरुणाचलमित्येव तदिदं ख्यातिमेष्यति २१
अत्र तीर्थं च बहुधा भविष्यति महत्तरम्
मुक्तिरप्यत्र जंतूनां वासेन मरणेन च २२
रथोत्सवादिकल्याणं जनावासं तु सर्वतः
अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत् २३
मत्क्षेत्रादपि सर्वस्मात्क्षेत्रमेतन्महत्तरम्
अत्र संस्मृतिमात्रेण मुक्तिर्भवति देहिनाम् २४
तस्मान्महत्तरमिदं क्षेत्रमत्यंतशोभनम्
सर्वकल्याणसंपूर्णं सर्वमुक्तिकरं शुभम् २५
अर्चयित्वाऽत्र मामेव लिंगे लिंगिनमीश्वरम्
सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूप्यं सार्ष्टिरेव च २६
सायुज्यमिति पंचैते क्रियादीनां फलं मतम्
सर्वेपि यूयं सकलं प्राप्स्यथाशु मनोरथम् २७
नंदिकेश्वर उवाच

इत्यनुगृह्य भगवान्विनीतौ विधिमाधवौ
यत्पूर्वं प्रहतं युद्धे तयोः सैन्यं परस्परम् २८
तदुत्थापयदत्यर्थं स्वशक्त्याऽमृतधारया
तयोर्मौढ्यं च वैरं च व्यपनेतुमुवाच तौ २९
सकलं निष्कलं चेति स्वरूपद्वयमस्ति मे
नान्यस्य कस्यचित्तस्मादन्यः सर्वोप्यनीश्वरः ३०
पुरस्तात्स्तंभरूपेण पश्चाद्रूपेण चार्भकौ
ब्रह्मत्वं निष्कलं प्रोक्तमीशत्वं सकलं तथा ३१
द्वयं ममैव संसिद्धं न मदन्यस्य कस्यचित्
तस्मादीशत्वमन्येषां युवयोरपि न क्वचित् ३२
तदज्ञानेन वां वृत्तमीशमानं महाद्भुतम्
तन्निराकर्तुमत्रैवमुत्थितोऽहं रणाद्भितौ ३३
त्यजतं मानमात्मीयं मयीशे कुरुतं मतिम्
मत्प्रसादेन लोकेषु सर्वोप्यर्थः प्रकाशते ३४
गुरूक्तिर्व्यंजकं तत्र प्रमाणं वा पुनः पुनः
ब्रह्मतत्त्वमिदं गूढं भवत्प्रीत्या भणाम्यहम् ३५
अहमेव परं ब्रह्म मत्स्वरूपं कलाकलम्
ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाहं कृत्यं मेनुग्रहादिकम् ३६
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्माहं ब्रह्मकेशवौ
समत्वाद्व्यापकत्वाच्च तथैवात्माहमर्भकौ ३७
अनात्मानः परे सर्वे जीवा एव न संशयः
अनुग्रहाद्यं सर्गांतं जगत्कृत्यं च पंकजम् ३८
ईशत्वादेव मे नित्यं न मदन्यस्य कस्यचित्
आदौ ब्रह्मत्त्वबुद्ध्यर्थं निष्कलं लिंगमुत्थितम् ३९
तस्मादज्ञातमीशत्वं व्यक्तं द्योतयितुं हि वाम्

सकलोहमतो जातः साक्षादीशस्तु तत्क्षणात् ४०
सकलत्वमतो ज्ञेयमीशत्वं मयि सत्वरम्
यदिदं निष्कलं स्तंभं मम ब्रह्मत्वबोधकम् ४१
लिंगलक्षणयुक्तत्वान्मम लिंगं भवेदिदम्
तदिदं नित्यमभ्यर्च्यं युवाभ्यामत्र पुत्रकौ ४२
मदात्मकमिदं नित्यं मम सान्निध्यकारणम्
महत्पूज्यमिदं नित्यमभेदाल्लिंगसिंगिनोः ४३
यत्रप्रतिष्ठितं येन मदीयं लिंगमीदृशम्
तत्र प्रतिष्ठितः सोहमप्रतिष्ठोपि वत्सकौ ४४
मत्साम्यमेकलिंगस्य स्थापने फलमीरितम्
द्वितीये स्थापिते लिंगे मदैक्यं फलमेव हि ४५
लिंगं प्राधान्यतः स्थाप्यं तथाबेरं तु गौणकम्
लिंगाभावेन तत्क्षेत्रं सबेरमपि सर्वतः ४६
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां नवमोऽध्यायः ९

अध्याय १०

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः
सर्गादिपंचकृत्यस्य लक्षणं ब्रूहि नौ प्रभो
शिव उवाच
मत्कृत्यबोधनं गुह्यं कृपया प्रब्रवीमि वाम् १
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः
पंचैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ २
सर्गः संसारसंरंभस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता
संहारो मर्दनं तस्य तिरोभावस्तदुत्क्रमः ३
तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पंचकम्

कृत्यमेतद्वहत्यन्यस्तूष्णीं गोपुरबिंबवत् ४
सर्गादि यच्चतुष्कृत्यं संसारपरिजृंभणम्
पंचमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम् ५
तदिदं पंचभूतेषु दृश्यते मामकैर्जनैः
सृष्टिर्भूमौ स्थितिस्तोये संहारः पावके तथा ६
तिरोभावोऽनिले तद्वदनुग्रह इहाम्बरे
सृज्यते धरया सर्वमद्भिः सर्वं प्रवर्द्धते ७
अर्द्यते तेजसा सर्वं वायुना चापनीयते
व्योम्नानुगृह्यते सर्वं ज्ञेयमेवं हि सूरिभिः ८
पंचकृत्यमिदं बोढुं ममास्ति मुखपंचकम्
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पंचमं मुखम् ९
युवाभ्यां तपसा लब्धमेतत्कृत्यद्वयं सुतौ
सृष्टिस्थित्यभिधं भाग्यं मत्तः प्रीतादतिप्रियम् १०
तथा रुद्रमहेशाभ्यामन्यत्कृत्यद्वयं परम्
अनुग्रहाख्यं केनापि लब्धुं नैव हि शक्यते ११
तत्सर्वं पौर्विकं कर्म युवाभ्यां कालविस्मृतम्
न तद्रुद्र महेशाभ्यां विस्मृतं कर्म तादृशम् १२
रूपे वेशे च कृत्ये च वाहने चासने तथा
आयुधादौ च मत्साम्यमस्माभिस्तत्कृते कृतम् १३
मद्ध्यानविरहाद्वत्सौ मौढ्यं वामेवमागतम्
मज्ज्ञाने सति नैवं स्यान्मानं रूपे महेशवत् १४
तस्मान्मज्ज्ञानसिद्ध्यर्थं मंत्रमोंकारनामकम्
इतः परं प्रजपतं मामकं मानभंजनम् १५
उपादिशं निजं मंत्रमोंकारमुरुमंगलम्
ओंकारो मन्मुखाज्जज्ञे प्रथमं मत्प्रबोधकः १६

वाचकोऽयमहं वाच्यो मंत्रोऽयं हि मदात्मकः
तदनुस्मरणं नित्यं ममानुस्मरणं भवेत् १७
अकार उत्तरात्पूर्वमुकारः पश्चिमाननात्
मकारो दक्षिणमुखाद्बिंदुः प्राङ्मुखतस्तथा १८
नादो मध्यमुखादेवं पंचधाऽसौ विजृंभितः
एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरो भवेत् १९
नामरूपात्मकं सर्वं वेदभूतकुलद्वयम्
व्याप्तमेतेन मंत्रेण शिवशक्त्योश्च बोधकः २०
अस्मात्पंचाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्यतत्
आकारादिक्रमेणैव नकारादियथाक्रमम् २१
अस्मात्पंचाक्षराज्जाता मातृकाः पंचभेदतः
तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रात्त्रिपाद्गाय त्रिरेव हि २२
वेदः सर्वस्ततो जज्ञे ततो वै मंत्रकोटयः
तत्तन्मंत्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत् २३
अनेन मंत्रकंदेन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति
सकला मंत्रराजानः साक्षाद्भोगप्रदाः शुभाः २४
नंदिकेश्वर उवाच
पुनस्तयोस्तत्र तिरः पटं गुरुः प्रकल्प्य मंत्रं च समादिशत्परम्
निधाय तच्छीर्ष्णि करांबुजं शनैरुदङ्मुखं संस्थितयोः सहांबिकः
२५
त्रिरुच्चार्याग्रहीन्मंत्रं यंत्रतंत्रोक्तिपूर्वकम्
शिष्यौ च तौ दक्षिणायामात्मानं च समर्पयत् २६
प्रबद्धहस्तौ किल तौ तदंतिके तमेव देवं जगतुर्जगद्गुरुम् २७
ब्रह्माच्युतावूचतुः
नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे

नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने २८
नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिंगिने
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पंचमुखायते २९
पंचब्रह्मस्वरूपाय पंच कृत्यायते नमः
आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनंतगुणशक्तये ३०
सकलाकलरूपाय शंभवे गुरवे नमः
इति स्तुत्वा गुरुं पद्यैर्ब्रह्मा विष्णुश्च नेमतुः ३१
ईश्वर उवाच
वत्सकौ सर्वतत्त्वं च कथितं दर्शितं च वाम्
जपतं प्रणवं मंत्रं देवीदिष्टं मदात्मकम् ३२
ज्ञानं च सुस्थिरं भाग्यं सर्वं भवति शाश्वतम्
आर्द्रायां च चतुर्दश्यां तज्जाप्यं त्वक्षयं भवेत् ३३
सूर्यगत्या महार्द्रायामेकं कोटिगुणं भवेत्
मृगशीर्षांतिमो भागः पुनर्वस्वादिमस्तथा ३४
आर्द्रासमः सदा ज्ञेयः पूजाहोमादितर्पणे
दर्शनं तु प्रभाते च प्रातःसंगवकालयोः ३५
चतुर्दशी तथा ग्राह्या निशीथव्यापिनी भवेत्
प्रदोषव्यापिनी चैव परयुक्ता प्रशस्यते ३६
लिंगं बेरं च मेतुल्यं यजतां लिंगमुत्तमम्
तस्माल्लिंगं परं पूज्यं बेरादपि मुमुक्षुभिः ३७
लिंगमोंकारमंत्रेण बेरं पंचाक्षरेण तु
स्वयमेव हि सद्द्रव्यैः प्रतिष्ठाप्यं परैरपि ३८
पूजयेदुपचारैश्च मत्पदं सुलभं भवेत्
इति शास्य तथा शिष्यौ तत्रैवांऽतर्हितः शिवः ३९
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां दशमोऽध्यायः १०

अध्याय ११

ऋषय ऊचुः
कथं लिंगं प्रतिष्ठाप्यं कथं वातस्य लक्षणम्
कथं वा तत्समभ्यर्च्यं देशे काले च केन हि १
सूत उवाच
युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि बुद्ध्यतामवधानतः
अनुकूले शुभे काले पुण्ये तीर्थे तटे तथा २
यथेष्टं लिंगमारोप्यं यत्र स्यान्नित्यमर्चनम्
पार्थिवेन तथाप्येनं तैजसेन यथारुचि ३
कल्पलक्षणसंयुक्तं लिंगं पूजाफलं लभेत्
सर्वलक्षणसंयुक्तं सद्यः पूजाफलप्रदम् ४
चरे विशिष्यते सूक्ष्मं स्थावरे स्थूलमेव हि
सलक्षणं सपीठं च स्थापयेच्छिवनिर्मितम् ५
मंडलं चतुरस्रं वा त्रिकोणमथवा तथा
खट्वांगवन्मध्यसूक्ष्मं लिंगपीठं महाफलं ६
प्रथमं मृच्छिलादिभ्यो लिगं लोहादिभिः कृतम्
येन लिंगं तेन पीठं स्थावरे हि विशिष्यते ७
लिंगं पीठं चरे त्वेकं लिंगं बाणकृतं विना
लिंगप्रमाणं कर्तृ-णां द्वादशांगुलमुत्तमम् ८
न्यूनं चेत्फलमल्पं स्यादधिकं नैव दूष्यते
कर्तुरेकांगुलन्यूनं चरेपि च तथैव हि ९
आदौ विमानं शिल्पेन कार्यं देवगणैर्युतम्
तत्र गर्भगृहे रम्ये दृढे दर्पणसंनिभे १०
भूषिते नवरत्नैश्च दिग्द्वारे च प्रधानकैः
नीलं रक्तं च वै दूर्यं श्यामं मारकतं तथा ११

मुक्ताप्रवालगोमेदवज्राणि नवरत्नकम् १२ब्
मध्ये लिंगं महद्द्रव्यं निक्षिपेत्सहवैदिके १२
संपूज्य लिंगं सद्याद्यैः पंचस्थाने यथाक्रमम्
अग्नौ च हुत्वा बहुधा हविषास कलं च माम् १३
अभ्यर्च्य गुरुमाचार्यमर्थैः कामैश्च बांधवम्
दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्यो जडमप्यजडं तथा १४
स्थावरं जंगमं जीवं सर्वं संतोष्य यत्नतः
सुवर्णपूरिते श्वभ्रे नवरत्नैश्च पूरिते १५
सद्यादि ब्रह्म चोच्चार्य ध्यात्वा देवं परं शुभम्
उदीर्य च महामंत्रमोंकारं नादघोषितम् १६
लिंगं तत्र प्रतिष्ठाप्य लिगं पीठेन योजयेत्
लिंगं सपीठं निक्षिप्य नित्यलेपेन बंधयेत् १७
एवं बेरं च संस्थाप्यं तत्रैव परमं शुभम्
पंचाक्षरेण बेरं तु उत्सवार्थं वहिस्तथा १८
बेरं गुरुभ्यो गृह्णीयात्साधुभिः पूजितं तु वा
एवं लिंगे च बेरे च पूजा शिवपदप्रदा १९
पुनश्च द्विविधं प्रोक्तं स्थावरं जंगमं तथा
स्थावरं लिंगमित्याहुस्तरुगुल्मादिकं तथा २०
जंगमं लिंगमित्याहुः कृमिकीटादिकं तथा
स्थावरस्य च शुश्रूषा जंगमस्य च तर्पणम् २१
तत्तत्सुखानुरागेण शिवपूजां विदुर्बुधाः
पीठमंबामयं सर्वं शिवलिंगं च चिन्मयम् २२
यथा देवीमुमामंके धृत्वा तिष्ठति शंकरः
तथा लिंगमिदं पीठं धृत्वा तिष्ठति संततम् २३
एवं स्थाप्य महालिंगं पूजयेदुपचारकैः

नित्यपूजा यथा शक्तिध्वजादिकरणं तथा २४
इति संस्थापयेल्लिंगं साक्षाच्छिवपदप्रदम्
अथवा चरलिंगं तु षोडशैरुपचारकैः २५
पूजयेच्च यथान्यायं क्रमाच्छिवपदप्रदम्
आवाहनं चासनं च अर्घ्यं पाद्यं तथैव च २६
तदंगाचमनं चैव स्नानमभ्यंगपूर्वकम्
वस्त्रं गंधं तथा पुष्पं धूपं दीपं निवेदनम् २७
नीराजनं च तांबूलं नमस्कारो विसर्जनम्
अथवाऽर्घ्यादिकं कृत्वा नैवेद्यां तं यथाविधि २८
अथाभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्
यथाशक्ति सदाकुर्यात्क्रमाच्छिवपदप्रदम् २९
अथवा मानुषे लिंगेप्यार्षे दैवे स्वयंभुवि
स्थापितेऽपूर्वके लिंगे सोपचारं यथा तथा ३०
पूजोपकरणे दत्ते यत्किंचित्फलमश्नुते
प्रदक्षिणानमस्कारैः क्रमाच्छिवपदप्रदम् ३१
लिंगं दर्शनमात्रं वा नियमेन शिवप्रदम्
मृत्पिष्टगोशकृत्पुष्पैः करवीरेण वा फलैः ३२
गुडेन नवनीतेन भस्मनान्नैर्यथारुचि
लिंगं यत्नेन कृत्वांते यजेत्तदनुसारतः ३३
अंगुष्ठादावपि तथा पूजामिच्छंति केचन
लिंगकर्मणि सर्वत्र निषेधोस्ति न कर्हिचित् ३४
सर्वत्र फलदाता हि प्रयासानुगुणं शिवः
अथवा लिंगदानं वा लिंगमौल्यमथापि वा ३५
श्रद्धया शिवभक्ताय दत्तं शिवपदप्रदम्
अथवा प्रणवं नित्यं जपेद्दशसहस्रकम् ३६

संध्ययोश्च सहस्त्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्
जपकाले मकारांतं मनःशुद्धिकरं भजेत् ३७
समाधौ मानसं प्रोक्तमुपांशु सार्वकालिकम्
समानप्रणवं चेमं बिंदुनादयुतं विदुः ३८
अथ पंचाक्षरं नित्यं जपेदयुतमादरात्
संध्ययोश्च सहस्त्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ३९
प्रणवेनादिसंयुक्तं ब्राह्मणानां विशिष्यते
दीक्षायुक्तं गुरोर्ग्राह्यं मंत्रं ह्यथ फलाप्तये ४०
कुंभस्नानं मंत्रदीक्षां मातृकान्यासमेव च
ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुर्ज्ञानी विशिष्यते ४१
द्विजानां च नमःपूर्वमन्येषां च नमोन्तकम् ४२ब्
स्त्रीणां च क्वचिदिच्छंति नमो तं च यथाविधि ४२
विप्रस्त्रीणां नमः पूर्वमिदमिच्छंति केचन
पंचकोटिजपं कृत्वा सदा शिवसमो भवेत् ४३
एकद्वित्रिचतुःकोटयाब्रह्मादीनां पदं व्रजेत्
जपेदक्षरलक्षंवा अक्षराणां पृथक्पृथक् ४४
अथवाक्षरलक्षं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्
सहस्त्रं तु सहस्त्राणां सहस्त्रेण दिनेन हि ४५
जपेन्मंत्रादिष्टसिद्धिर्नित्यं ब्राह्मणभोजनात्
अष्टोत्तरसहस्त्रं वै गायत्रीं प्रातरेव हि ४६
ब्राह्मणस्तु जपेन्नित्यं क्रमाच्छिवपदप्रदान्
वेदमंत्रांस्तु सूक्तानि जपेन्नियममास्थितः ४७
एकं दशार्णं मंत्रं च शतोनं च तदूर्ध्वकम्
अयुतं च सहस्त्रं च शतमेकं विना भवेत् ४८
वेदपारायणं चैव ज्ञेयं शिवपदप्रदम्

अन्यान्बहुतरान्मंत्राञ्जपेदक्षरलक्षतः ४९
एकाक्षरांस्तथा मंत्राञ्जपेदक्षरकोटितः
ततः परं जपेच्चैव सहस्रं भक्तिपूर्वकम् ५०
एवं कुर्याद्यथाशक्ति क्रमाच्छिव पदं लभेत्
नित्यं रुचिकरं त्वेकं मंत्रमामरणांतिकम् ५१
जपेत्सहस्रमोमिति सर्वाभीष्टं शिवाज्ञया
पुष्पारामादिकं वापि तथा संमार्जनादिकम् ५२
शिवाय शिवकार्यार्थे कृत्वा शिवपदं लभेत्
शिवक्षेत्रे तथा वासं नित्यं कुर्याच्च भक्तितः ५३
जडानामजडानां च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम्
तस्माद्वासं शिवक्षेत्रे कुर्यदामरणं बुधः ५४
लिंगाद्धस्तशतं पुण्यं क्षेत्रे मानुषके विदुः
सहस्रारत्निमात्रं तु पुण्यक्षेत्रे तथार्षके ५५
दैवलिंगे तथा ज्ञेयं सहस्रारत्निमानतः
धनुष्प्रमाणसाहस्रं पुण्यं क्षेत्रे स्वयं भुवि ५६
पुण्यक्षेत्रे स्थिता वापी कूपाद्यं पुष्कराणि च
शिवगंगेति विज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा ५७
तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा जपित्वा हि शिवं व्रजेत्
शिवक्षेत्रं समाश्रित्य वसेदामरणं तथा ५८
दाहं दशाहं मास्यं वा सपिंडीकरणं तु वा
आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे क्षेत्रे पिंडमथापि वा ५९
सर्वपाप विनिर्मुक्तः सद्यः शिवपदं लभेत्
अथवा सप्तरात्रं वा वसेद्वा पंचरात्रकम् ६०
त्रिरात्रमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत्
स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात्प्राप्नुते नरः ६१

वर्णोद्धारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः
सर्वं कृतं कामनया सद्यः फलमवाप्नुयात् ६२
सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपदप्रदम्
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात् ६३
प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामिकं तथा
सायाह्नं शांतिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि ६४
कालो निशीथो वै प्रोक्तोमध्ययामद्वयं निशि
शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा ६५
एवं ज्ञात्वा नरः कुर्वन्यथोक्तफलभाग्भवेत्
कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा ६६
उक्तेन केनचिद्वापि अधिकारविभेदतः
सद्वृत्तिः पापभीरुश्चेत्ततत्फलमवाप्नुयात् ६७
ऋषय ऊचुः
अथ क्षेत्राणि पुण्यानि समासात्कथयस्व नः
सर्वाः स्त्रियश्च पुरुषा यान्याश्रित्य पदं लभेत् ६८
सूत योगिवरश्रेष्ठ शिवक्षेत्रागमांस्तथा
सूत उवाच
शृणुत श्रद्धया सर्वक्षेत्राणि च तदागमान् ६९
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायांएकदशोऽध्यायः ११

अध्याय १२

सूत उवाच
शृणुध्वमृषयः प्राज्ञाः शिवक्षेत्रं विमुक्तिदम्
तदागमांस्ततो वक्ष्ये लोकरक्षार्थमेव हि १
पंचाशत्कोटिविस्तीर्णा सशैलवनकानना

शिवाज्ञया हि पृथिवी लोकं धृत्वा च तिष्ठति २
तत्र तत्र शिवक्षेत्रं तत्र तत्र निवासिनाम्
मो-क्षार्थं कृपया देवः क्षेत्रं कल्पितवान्प्रभुः ३
परिग्रहादृषीणां च देवानां परिग्रहात्
स्वयंभूतान्यथान्यानि लोकरक्षार्थमेव हि ४
तीर्थे क्षेत्रे सदाकार्यं स्नानदानजपादिकम्
अन्यथा रोगदारिद्र्यमूकत्वाद्याप्नुयान्नरः ५
अथास्मिन्भारते वर्षे प्राप्नोति मरणं नरः
स्वयंभूस्थानवासेन पुनर्मानुष्यमाप्नुयात् ६
क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः
पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत् ७
येन केनाप्युपायेन पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः
सिंधोः शतनदीतीरे संति क्षेत्राण्यनेकशः ८
सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा
तत्तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद्ब्रह्मपदं लभेत् ९
हिमवद्गिरिजा गंगा पुण्या शतमुखा नदी
तत्तीरे चैव काश्यादिपुण्यक्षेत्राण्यनेकशः १०
तत्र तीरं प्रशस्तं हि मृगे मृगबृहस्पतौ
शोणभद्रो दशमुखः पुण्योभीष्टफलप्रदः ११
तत्र स्नानोपवासेन पदं वैनायकं लभेत्
चतुर्वींशमुखा पुण्या नर्मदा च महानदी १२
तस्यां स्नानेन वासेन पदं वैष्णवमाप्नुयात्
तमसा द्वादशमुखा रेवा दशमुखा नदी १३
गोदावरी महापुण्या ब्रह्मगोवधनाशिनी
एकविंशमुखा प्रोक्ता रुद्रलोकप्रदायिनी १४

कृष्णावेणी पुण्यनदी सर्वपापक्षयावहा
साष्टादशमुखाप्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी १५
तुंगभद्रा दशमुखा ब्रह्मलोकप्रदायिनी
सुवर्णमुखरी पुण्या प्रोक्ता नवमुखा तथा १६
तत्रैव सुप्रजायंते ब्रह्मलोकच्युतास्तथा
सरस्वती च पंपा च कन्याश्वेतनदी शुभा १७
एतासां तीरवासेन इंद्रलोकमवाप्नुयात्
सह्याद्रिजा महापुण्या कावेरीति महानदी १८
सप्तविंशमुखा प्रोक्ता सर्वाभीष्टं प्रदायिनी
तत्तीराः स्वर्गदाश्चैव ब्रह्मविष्णुपदप्रदाः १९
शिवलोकप्रदा शैवास्तथाऽभीष्टफलप्रदाः
नैमिषे बदरे स्नायान्मेषगे च गुरौ रवौ २०
ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्ततः पूजादिकं तथा
सिंधुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कटगे रवौ २१
केदारोदकपानं च स्नानं च ज्ञानदं विदुः
गोदावर्यां सिंहमासे स्नायात्सिंहबृहस्पतौ २२
शिवलोकप्रदमिति शिवेनोक्तं तथा पुरा
यमुनाशोणयोः स्नायाद्गुरौ कन्यागते रवौ २३
धर्मलोके दंतिलोके महाभोगप्रदं विदुः
कावेर्यां च तथास्नायात्तुलागे तु रवौ गुरौ २४
विष्णोर्वचनमाहात्म्यात्सर्वाभीष्टप्रदं विदुः
वृश्चिके मासि संप्राप्ते तथार्के गुरुवृश्चिके २५
नर्मदायां नदीस्नानाद्विष्णुलोकमवाप्नुयात्
सुवर्णमुखरीस्नानं चापगे च गुरौ रवौ २६
शिवलोकप्रदमिति ब्राह्मणो वचनं यथा

मृगमासि तथा स्नायाज्ञाह्नव्यां मृगगे गुरौ २७
शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा
ब्रह्मविष्णवोः पदे भुक्त्वा तदंते ज्ञानमाप्नुयात् २८
गंगायां माघमासे तु तथाकुंभगते रवौ
श्राद्धं वा पिंडदानं वा तिलोदकमथापिवा २९
वंशद्वयपितृ-णां च कुलकोटयुद्धरं विदुः
कृष्णवेरयां प्रशंसंति मीनगे च गुरौ रवौ ३०
तत्तत्तीर्थे च तन्मासि स्नानमिंद्रपदप्रदम्
गंगां वा सह्यजां वापि समाश्रित्य वसेद्बुधः ३१
तत्कालकृतपापस्य क्षयो भवति निश्चितम्
रुद्रलोकप्रदान्येव संति क्षेत्रारयनेकशः ३२
ताम्रपर्णी वेगवती ब्रह्मलोकफलप्रदे
तयोस्तीरे हि संत्येव क्षेत्राणि स्वर्गदानि च ३३
संति क्षेत्राणि तन्मध्ये पुरयदानि च भूरिशः
तत्र तत्र वसन्प्राज्ञस्तादृशं च फलं लभेत् ३४
सदाचारेण सद्वृत्त्या सदा भावनयापि च
वसेद्दयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत् ३५
पुरयक्षेत्रे कृतं पुरयं बहुधा ऋद्धिमृच्छति
पुरयक्षेत्रे कृतं पापं महदरावपि जायते ३६
तत्कालं जीवनार्थश्चेत्पुरयेन क्षयमेष्यति
पुरयमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा ३७
मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद्द्विजाः
मानसं वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा ३८
ध्यानादेव हि तन्नश्येन्नान्यथा नाशमृच्छति
वाचिकं जपजालेन कायिकं कायशोषणात् ३९

दानाद्धनकृतं नश्येन्नाऽन्यथाकल्पकोटिभिः
क्वचित्पापेन पुण्यं च वृद्धिपूर्वेण नश्यति ४०
बीजांशश्चैव वृद्ध्यंशो भोगांशः पुण्यपापयोः
ज्ञाननाश्यो हि बीजांशो वृद्धिरुक्तप्रकारतः ४१
भोगांशो भोगनाश्यस्तु नान्यथा पुण्यकोटिभिः
बीजप्ररोहे नष्टे तु शेषो भोगाय कल्पते ४२
देवानां पूजया चैव ब्रह्मणानां च दानतः
तपोधिक्याच्च कालेन भोगः सह्यो भवेन्नृणाम्
तस्मात्पापमकृत्वैव वस्तव्यं सुखमिच्छता ४३
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां द्वादशोऽध्यायः १२

अध्याय १३

ऋषय ऊचुः
सदाचारं श्रावयाशु येन लोकाञ्जयेद्बुधः
धर्माधर्ममयान्ब्रूहि स्वर्गनारकदांस्तथा १
सूत उवाच
सदाचारयुतो विद्वान्ब्राह्मणो नाम नामतः
वेदाचारयुतो विप्रो ह्येतैरेकैकवान्द्विजः २
अल्पाचारोल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः
किंचिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तया ३
शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः
असूयालुः परद्रोही चंडालद्विज उच्यते ४
पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः
धान्यादिक्रयवान्वैश्य इतरो वणिगुच्यते ५
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते

कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः ६
सर्वो ह्युषःप्राचीमुखश्चिन्तयेद्देवपूर्वकान्
धर्मानर्थांश्च तत्क्लेशानायं च व्ययमेव च ७
आयुर्द्वेषश्च मरणं पापं भाग्यं तथैव च
व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिक्फलम् ८
निशांत्यायामोषा ज्ञेया यामार्धं संधिरुच्यते
तत्काले तु समुत्थाय विरामूत्रे विसृजेद्द्विजः ९
गृहाद्दूरं ततो गत्वा बाह्यतः प्रवृतस्तथा
उदरामुखः समाविश्य प्रतिबंधेऽन्यदिरामुखः १०
जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुख्यतः
लिंगं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना ११
मलमुत्सृज्य चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम्
उद्धृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद्बहिः १२
अथवा देवपित्रार्षतीर्थावतरणं विना
सप्त वा पंच वा त्रीन्वा गुदं संशोधयेन्मृदा १३
लिंगे कर्कोटमात्रं तु गुदे प्रसृतिरिष्यते
तत उत्थाय पद्धस्तशौचं गराडूषमष्टकम् १४
येन केन च पत्रेण काष्ठेन च जलाद्बहिः
कार्यं संत्यज्य तर्ज्जनीं दंतधावनमीरितम् १५
जलदेवान्नमस्कृत्य मंत्रेण स्नानमाचरेत्
अशक्तः कंठदघ्नं वा कटिदघ्नमथापि वा १६
आजानु जलमाविश्य मंत्रस्नानं समाचरेत्
देवादींस्तर्पयेद्विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च १७
धौतवस्त्रं समादाय पंचकच्छेन धारयेत्
उत्तरीयं च किं चैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु १८

नद्यादितीर्थस्नाने तु स्नानवस्त्रं न शोधयेत्
वापीकूपगृहादौ तु स्नानादूर्ध्वं नयेद्बुधः १९
शिलादार्वादिके वापि जले वापि स्थलेपि वा
संशोध्य पीडयेद्वस्त्रं पितृ-णां तृप्तये द्विजाः २०
जाबालकोक्तमंत्रेण भस्मना च त्रिपुंड्रकम्
अन्यथा चेज्जले पात इतस्तन्नरकमृच्छति २१
आपोहिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत्पापशांतये
यस्येति मंत्रं पादे तु संधिप्रोक्षणमुच्यते २२
पादे मूर्ध्नि हृदि चैव मूर्ध्नि हृत्पाद एव च
हृत्पादमूर्ध्नि संप्रोक्ष्य मंत्रस्नानं विदुर्बुधाः २३
ईषत्स्पर्शे च दौः स्वास्थ्ये राजराष्ट्रभयेऽपि च
अत्यागतिकाले च मंत्रस्नानं समाचरेत् २४
प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः
अपः पीत्वा तथामध्ये पुनः प्रोक्षणमाचरेत् २५
गायत्र्या जपमंत्रांते त्रिरूर्ध्वं प्राग्विनिक्षिपेत्
मंत्रेण सह चैकं वै मध्येऽर्घ्यं तु रवेर्द्विजा २६
अथ जाते च सायाह्ने भुवि पश्चिमदिग्मुखः
उद्धृत्य दद्यात्प्रातस्तु मध्याह्नेंगुलिभिस्तथा २७
अंगुलीनां च रंध्रेण लंबं पश्येद्दिवाकरम्
आत्मप्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् २८
सायं मुहूर्तादर्वाक्तु कृता संध्या वृथा भवेत्
अकालात्काल इत्युक्तो दिनेऽतीते यथाक्रमम् २९
दिवाऽतीते च गायत्रीं शतं नित्ये क्रमाज्जपेत्
आदशाहात्पराऽतीते गायत्रीं लक्षमभ्यसेत् ३०
मासातीते तु नित्ये हि पुनश्चोपनयं चरेत्

ईशो गौरीगुहो विष्णुर्ब्रह्मा चेंद्रश्च वै यमः ३१
एवं रूपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये
ब्रह्मार्पणं ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ३२
तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मंत्रालये बुधः
तत्र देवालये वापि गृहे वा नियतस्थले ३३
सर्वान्देवान्नमस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः
प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत्ततः ३४
जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत्
त्रैलोक्यसृष्टिकर्त्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम् ३५
संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्महे
ज्ञानकर्मेंद्रियाणां च मनोवृत्तीर्धियस्तथा ३६
भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत्सदा
इत्थमर्थं धियाध्यायन्ब्रह्मप्राप्नोति निश्चयः ३७
केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मण्यस्य च पूर्तये
सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुंगवः ३८
अन्येषां च यथा शक्तिमध्याह्ने च शतं जपेत्
सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टकसमन्वितम् ३९
मूलाधारं समारभ्य द्वादशांतस्थितांस्तथा
विद्येशब्रह्मविष्णवीशजीवात्मपरमेश्वरान् ४०
ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोहं भावनया जपेत्
तानेव ब्रह्मरंध्रादौ कायाद्बाह्ये च भावयेत् ४१
महत्तत्त्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम्
एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः ४२
परस्मिन्योजयेज्जीवं जपतत्त्वमुदाहृतम्
शतद्विदशकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम् ४३

मंत्राणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद्विदुः
सहस्रं ब्राह्मदं विद्याच्छतमैंद्रप्रदं विदुः ४४
इतरत्त्वात्मरक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते
दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत् ४५
लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः
गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्येन योजयेत् ४६
आसप्ततेस्तु नियमं पश्चात्प्रव्राजनं चरेत्
प्रातर्द्वादशसाहस्त्रं प्रव्राजीप्रणवं जपेत् ४७
दिने दिने त्वतिक्रांते नित्यमेवं क्रमाज्जपेत्
मासादौ क्रमशोऽतीते सार्धलक्षजपेन हि ४८
अत ऊर्ध्वमतिक्रांते पुनः प्रैषं समाचरेत्
एवं कृत्वा दोषशांतिरन्यथा रौरवं व्रजेत् ४९
धर्मार्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात्कामी न चेतरः
ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याद्ब्रह्मज्ञानं सदाभ्यसेत् ५०
धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्यसंभवः
धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते ५१
विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते
धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च ५२
द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात्तीर्थस्नानादि दैहिकम्
धनेन धनमाप्नोति तपसा दिव्यरूपताम् ५३
निष्कामः शुद्धिमाप्नोति शुद्ध्या ज्ञानं न संशयः
कृतादौ हि तपःश्लोघ्यं द्रव्यधर्मः कलौ युगे ५४
कृतेध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा
द्वापरे यजनाज्ज्ञानं प्रतिमापूजया कलौ ५५
यादृशं पुण्यं पापं वा तादृशं फलमेव हि

द्रव्यदेहांगभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ५६
अधर्मो हिंसिकारूपो धर्मस्तु सुखरूपकः
अधर्माद्दुःखमाप्नोति धर्माद्वै सुखमेधते ५७
विद्यादुर्वृत्तितो दुःखं सुखं विद्यात्सुवृत्तितः
धर्मार्जनमतः कुर्याद्भोगमोक्षप्रसिद्धये ५८
सकुटुंबस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च
शतवर्षस्य वृत्तिं तु दद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम् ५९
चांद्रायणसहस्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं विदुः
सहस्रस्य कुटुंबस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्चरेत् ६०
इंद्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम्
यां देवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः ६१
तत्तल्लोकमवाप्नोति इति वेदविदो विदुः
अर्थहीनः सदा कुर्यात्तपसा मार्जनं तथा ६२
तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते
अर्थार्जनमथो वक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः ६३
कृतात्प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धितः
अदैन्यादनतिक्लेशाद्ब्राह्मणो धनमर्जयेत् ६४
क्षत्रियो बाहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद्विशः
न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्सिद्धिं समश्नुते ६५
ज्ञानसिद्ध्या मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात्
मोक्षात्स्वरूपसिद्धिः स्यात्परानन्दं समश्नुते ६६
सत्संगात्सर्वमेतद्वै नराणां जायते द्विजाः
धनधान्यादिकं सर्वं देयं वै गृहमेधिना ६७
यद्यत्काले वस्तुजातं फलं वा धान्यमेव च
तत्तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो देयं वै हितमिच्छता ६८

जलं चैव सदा देयमन्नं क्षुद्व्याधिशांतये
क्षेत्रं धान्यं तथाऽऽमान्नमन्नमेवं चतुर्विधम् ६९
यावत्कालं यदन्नं वै भुक्त्वा श्रवणमेधते
तावत्कृतस्य पुण्यस्य त्वर्धं दातुर्न संशयः ७०
ग्रहीताहिगृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत् ७१
आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः
नित्यं नैमित्तकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः ७२
वित्तस्य वर्धनं कुर्याद्वृद्ध्यंशेन हि साधकः
हितेन मितमे ध्येन भोगं भोगांशतश्चरेत् ७३
कृष्यर्जिते दशांशं हि देयं पापस्य शुद्धये
शेषेण कुर्याद्धर्मादि अन्यथा रौरवं व्रजेत् ७४
अथवा पापबुद्धिः स्यात्क्षयं वा सत्यमेष्यति
वृद्धिवाणिज्यके देयष्षडंशो हि विचक्षणैः ७५
शुद्धप्रतिग्रहे देयश्चतुर्थांशो द्विजोत्तमैः
अकस्मादुत्थितेऽर्थे हि देयमर्धं द्विजोत्तमैः ७६
असत्प्रतिग्रहसर्वं दुर्दानं सागरे क्षिपेत्
आहूय दानं कर्तव्यमात्मभोगसमृद्धये ७७
पृष्टं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारतः ७८ब्
जन्मांतरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्टवस्तुनि ७८
परेषां च तथा दोषं न प्रशंसेद्विचक्षणः
विशेषेण तथा ब्रह्मञ्छ्रुतं दृष्टं च नो वदेत् ७९
न वदेत्सर्वजंतूनां हृदि रोषकरं बुधः
संध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये ८०
अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि

तंडुलं धान्यमाज्यं वा फलं कंदं हविस्तथा ८१
स्थालीपाकं तथा कुर्याद्यथान्यायं यथाविधि
प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे समाचरेत् ८२
नित्यसंधानमित्युक्तं तमजस्रं विदुर्बुधाः
अथवा जपमात्रं वा सूर्यवंदनमेव च ८३
एवमात्मार्थिनः कुर्युरर्थार्थी च यथाविधि
ब्रह्मयज्ञरता नित्यं देवपूजारतास्तथा ८४
अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा
ब्राह्मणानां तृप्तिकराः सर्वे स्वर्गस्य भागिनः ८५
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः १३

अध्याय १४

ऋषय ऊचुः
अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च
गुरुपूजां ब्रह्मतृप्तिं क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो १
सूत उवाच
अग्नौ जुहोति यद्द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि २
समिदग्नौ व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम्
प्रथमाश्रमिणामेवं यावदौपासनं द्विजाः ३
आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां यतिनां द्विजाः
हितं च मितमेध्यान्नं स्वकाले भोजनं हुतिः ४
औपासनाग्निसंधानं समारभ्य सुरक्षितम्
कुंडे वाप्यथ भांडे वा तदजस्रं समीरितम् ५
अग्निमात्मन्यरण्यां वा राजदैववशाद्ध्रुवम्

अग्निस्त्यागभयादुक्तं समारोपितमुच्यते ६
संपत्करी तथा ज्ञेया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः
आयुष्करीति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा ७
अग्नियज्ञो ह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात्
इंद्रादीन्सकलान्देवानुद्दिश्याग्नौ जुहोतियत् ८
देवयज्ञं हि तं विद्यात्स्थालीपाकादिकान्क्रतून्
चौलादिकं तथा ज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम् ९
ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद्देवानां तृप्तये सकृत्
ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याऽध्ययनं भवेत् १०
नित्यानंतरमासोयं ततस्तु न विधीयते
अनग्नौ देवयजनं शृणुत श्रद्धयादरात् ११
आदिसृष्टौ महादेवः सर्वज्ञः करुणाकरः
सर्वलोकोपकारार्थं वारान्कल्पितवान्प्रभुः १२
संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम्
आदावारोग्यदं वारं स्ववारं कृतवान्प्रभुः १३
संपत्कारं स्वमायाया वरं च कृतवांस्ततः
जनने दुर्गतिक्रांते कुमारस्य ततः परम् १४
आलस्यदुरितक्रांत्यै वारं कल्पितवान्प्रभुः
रक्षकस्य तथा विष्णोर्लोकानां हितकाम्यया १५
पुष्ट्यर्थं चैव रक्षार्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः
आयुष्करं ततो वारमायुषां कर्तुरेव हि १६
त्रैलोक्यसृष्टिकर्त्तुर्हि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
जगदायुष्यसिद्ध्यर्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः १७
आदौ त्रैलोक्यवृद्ध्यर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते
तयोः कर्त्रोस्ततो वारमिंद्रस्य च यमस्य च १८

भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम्
आदित्यादीन्स्वस्वरूपान्सुखदुःखस्य सूचकान् १९
वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्योतिश्चक्रेप्रतिष्ठितान्
स्वस्ववारे तु तेषां तु पूजा स्वस्वफलप्रदा २०
आरोग्यं संपदश्चैव व्याधीनां शांतिरेव च
पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हानिर्यथाक्रमम् २१
वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरःसरम्
अन्येषामपि देवानां पूजायाः फलदः शिवः २२
देवानां प्रीतये पूजापंचधैव प्रकल्पिता
तत्तन्मंत्रजपो होमो दानं चैव तपस्तथा २३
स्थंडिले प्रतिमायां च ह्यग्नौ ब्राह्मणविग्रहे
समाराधनमित्येवं षोडशैरुपचारकैः २४
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यात्पूर्वाभावे तथोत्तरम्
नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शांतये २५
आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः
दिनं मासं तथा वर्षं वर्षत्रयमथवापि वा २६
प्रारब्धं प्रबलं चेत्स्यान्नश्येद्रोगजरादिकम्
जपाद्यमिष्टदेवस्य वारादीनां फलं विदुः २७
पापशांतिर्विशेषेण ह्यादिवारे निवेदयेत्
आदित्यस्यैव देवानां ब्राह्मणानां विशिष्टदम् २८
सोमवारे च लक्ष्म्यादीन्संपदर्थं यजेद्बुधः
आज्यान्नेन तथा विप्रान्सपत्नीकांश्च भोजयेत् २९
काल्यादीन्भौम वारे तु यजेद्रोगप्रशांतये
माषमुद्गाढकान्नेन ब्रह्मणांश्चैव भोजयेत् ३०
सौम्यवारे तथा विष्णुं दध्यन्नेन यजेद्बुधः

पुत्रमित्रकलत्रादिपुष्टिर्भवति सर्वदा ३१
आयुष्कामो गुरोर्वारे देवानां पुष्टिसिद्धये
उपवीतेन वस्त्रेण क्षीराज्येन यजेद्बुधः ३२
भोगार्थं भृगवारे तु यजेद्देवान्समाहितः
षड्रसोपेतमन्नं च दद्याद्ब्राह्मणतृप्तये ३३
स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद्देयं वस्त्रादिकं शुभम्
अपमृत्युहरे मंदे रुद्रादींश्च यजेद्बुधः ३४
तिलहोमेन दानेन तिलान्नेन च भोजयेत्
इत्थं यजेच्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत् ३५
देवानां नित्ययजने विशेषयजनेपि च
स्नाने दाने जपे होमे ब्राह्मणानां च तर्पणे ३६
तिथिनक्षत्रयोगे च तत्तद्देवप्रपूजने
आदिवारादिवारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः ३७
तत्तद्रूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः
देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः ३८
द्रव्यश्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः ३९ब्
तारतम्यक्रमाद्देवस्त्वारोग्यादीन्प्रयच्छति ३९
शुभादावशुभांते च जन्मर्क्षेषु गृहे गृही
आरोग्यादिसमृद्ध्यर्थमादित्यादीन्ग्रहान्यजेत् ४०
तस्माद्वै देवयजनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्
समंत्रकं ब्राह्मणानामन्येषां चैव तांत्रिकम् ४१
यथाशक्त्यानुरूपेण कर्तव्यं सर्वदा नरैः
सप्तस्वपि च वारेषु नरैः शुभफलेप्सुभिः ४२
दरिद्रस्तपसा देवान्यजेदाढ्यो धनेन हि
पुनश्चैवंविधं धर्मं कुरुते श्रद्धया सह ४३

पुनश्च भोगान्विविधान्भुक्त्वा भूमौ प्रजायते
छायां जलाशयं ब्रह्मप्रतिष्ठां धर्मसंचयम् ४४
सर्वं च वित्तवान्कुर्यात्सदा भोगप्रसिद्धये
कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ४५
य इमं शृणुतेऽध्यायं पठते वा नरो द्विजाः
श्रवणस्योपकर्त्ता च देवयज्ञफलं लभेत् ४६
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां चतुर्दशोऽध्यायः १४

अध्याय १५

ऋषय ऊचुः
देशादीन्क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थवित्तम्
सूत उवाच
शुद्धं गृहं समफलं देवयज्ञादिकर्मसु १
ततो दशगुणं गोष्ठं जलतीरं ततो दश
ततो दशगुणं बिल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम् २
ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश
ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थनद्यास्ततो दश ३
सप्तगंगानदीतीरं तस्या दशगुणं भवेत्
गंगा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रपर्णिका ४
सिंधुश्च सरयू रेवा सप्तगंगाः प्रकीर्तिताः
ततोऽब्धितीरं दश च पर्वताग्रे ततो दश ५
सर्वस्मादधिकं ज्ञेयं यत्र वा रोचते मनः
कृते पूर्णफलं ज्ञेयं यज्ञदानादिकं तथा ६
त्रेतायुगे त्रिपादं च द्वापरेऽर्धं सदा स्मृतम्
कलौ पादं तु विज्ञेयं तत्पादोनं ततोर्द्धके ७

शुद्धात्मनः शुद्धदिनं पुण्यं समफलं विदुः
तस्माद्दशगुणं ज्ञेयं रविसंक्रमणे बुधाः ८
विषुवे तद्दशगुणमयने तद्दश स्मृतम्
तद्दश मृगसंक्रांतौ तच्चंद्रग्रहणे दश ९
ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्णकालोत्तमे विदुः
जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाच्च रोगदम् १०
अतस्तद्विषशांत्यर्थं स्नानदानजपांश्चरेत्
विषशांत्यर्थकालत्वात्स कालः पुण्यदः स्मृतः ११
जन्मर्क्षे च व्रतांते च सूर्यरागोपमं विदुः
महतां संगकालश्च कोटयर्कग्रहणं विदुः १२
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतयस्तथा
पूजायाः पात्रमेते हि पापसंक्षयकारणम् १३
चतुर्विंशतिलक्षं वा गायत्र्या जपसंयुतः
ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं संपूर्णफलभोगदम् १४
पतनात्त्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते
दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते १५
गायकं त्रायते पाताद्गायत्रीत्युच्यते हि सा
यथाऽर्थहिनो लोकेऽस्मिन्परस्यार्थं न यच्छति १६
अर्थवानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति
स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान्संत्रातुमर्हति १७
गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते
तस्माद्दाने जपे होमे पूजायां सर्वकर्मणि १८
दानं कर्तुं तथा त्रातुं पात्रं तु ब्राह्मणोर्हति
अन्नस्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम् १९
ब्राह्मणं श्रेष्ठमाहूय यत्काले सुसमाहितम्

तदर्थं शब्दमर्थं वा सद्बोधकमभीष्टदम् २०
इच्छावतः प्रदानं च संपूर्णफलदं विदुः
यत्प्रश्नानंतरं दत्तं तदर्धं फलदं विदुः २१
यत्सेवकाय दत्तं स्यात्तत्पादफलदं विदुः
जातिमात्रस्य विप्रस्य दीनवृत्तेर्द्विजर्षभाः २२
दत्तमर्थं हि भोगाय भूर्लोकेदशवार्षिकम्
वेदयुक्तस्य विप्रस्य स्वर्गे हि दशवार्षिकम् २३
गायत्रीजपयुक्तस्य सत्ये हि दशवार्षिकम्
विष्णुभक्तस्य विप्रस्य दत्तं वैकुंठदं विदुः २४
शिवभक्तस्य विप्रस्य दत्तं कैलासदं विदुः
तत्तल्लोकोपभोगार्थं सर्वेषां दानमिष्यते २५
दशांगमन्नं विप्रस्य भानुवारे ददन्नरः
परजन्मनि चारोग्यं दशवर्षं समश्नुते २६
बहुमानमथाह्वानमभ्यंगं पादसेवनम्
वासो गंधाद्यर्चनं च घृतापूपरसोत्तरम् २७
षड्रसं व्यंजनं चैव तांबूलं दक्षिणोत्तरम्
नमश्चानुगमश्चैव स्वन्नदानं दशांगकम् २८
दशांगमन्नं विप्रेभ्यो दशभ्यो वै ददन्नरः
अर्कवारे तथाऽऽरोग्यं शतवर्षं समश्नुते २९
सोमवारादिवारेषु तत्तद्वारगुणं फलम्
अन्नदानस्य विज्ञेयं भूर्लोके परजन्मनि ३०
सप्तस्वपि च वारेषु दशभ्यश्च दशांगकम्
अन्नं दत्त्वा शतं वर्षमारोग्यादिकमश्नुते ३१
एवं शतेभ्यो विप्रेभ्यो भानुवारे ददन्नरः
सहस्रवर्षमारोग्यं शर्वलोके समश्नुते ३२

सहस्रेभ्यस्तथा दत्त्वाऽयुतवर्षं समश्नुते
एवं सोमादिवारेषु विज्ञेयं हि विपश्चिता ३३
भानुवारे सहस्राणां गायत्रीपूतचेतसाम्
अन्नं दत्त्वा सत्यलोके ह्यारोग्यादि समश्नुते ३४
अयुतानां तथा दत्त्वा विष्णुलोके समश्नुते
अन्नं दत्त्वा तु लक्षाणां रुद्रलोके समश्नुते ३५
बालानां ब्रह्मबुद्ध्या हि देयं विद्यार्थिभिर्नरैः
यूनां च विष्णुबुद्ध्या हि पुत्रकामार्थिभिर्नरैः ३६
वृद्धानां रुद्रबुद्ध्या हि देयं ज्ञानार्थिभिर्नरैः
बालस्त्रीभारतीबुद्ध्या बुद्धिकामैर्नरोत्तमैः ३७
लक्ष्मीबुद्ध्या युवस्त्रीषु भोगकामैर्नरोत्तमैः
वृद्धासु पार्वतीबुद्ध्या देयमात्मार्थिभिर्जनैः ३८
शिलवृत्त्योञ्छवृत्त्या च गुरुदक्षिणयार्जितम्
शुद्धद्रव्यमिति प्राहुस्तत्पूर्णफलदं विदुः ३९
शुक्लप्रतिग्रहाद्दत्तं मध्यमं द्रव्यमुच्यते
कृषिवाणिज्यकोपेतमधमं द्रव्यमुच्यते ४०
क्षत्रियाणां विशां चैव शौर्यवाणिज्यकार्जितम्
उत्तमं द्रव्यमित्याहुः शूद्राणां भृतकार्जितम् ४१
स्त्रीणां धर्मार्थिनां द्रव्यं पैतृकं भर्तृकं तथा
गवादीनां द्वादशीनां चैत्रादिषु यथाक्रमम् ४२
संभूय वा पुण्यकाले दद्यादिष्टसमृद्धये
गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ४३
रौप्यं लवणकूष्मांडे कन्याद्वादशकं तथा
गोदानाद्दत्तगव्येन गोमयेनोपकारिणा ४४
धनधान्याद्याश्रितानां दुरितानां निवारणम्

जलस्नेहाद्याश्रितानां दुरितानां तु गोजलैः ४५
कायिकादित्रयाणां तु क्षीरदध्याज्यकैस्तथा
तथा तेषां च पुष्टिश्च विज्ञेया हि विपश्चिता ४६
भूदानं तु प्रतिष्ठार्थमिह चाऽमुत्र च द्विजाः
तिलदानं बलार्थं हि सदा मृत्युजयं विदुः ४७
हिरण्यं जाठराग्नेस्तु वृद्धिदं वीर्यदं तथा
आज्यं पुष्टिकरं विद्याद्वस्त्रमायुष्करं विदुः ४८
धान्यमन्नं समृद्ध्यर्थं मधुराहारदं गुडम्
रौप्यं रेतोभिवृद्ध्यर्थं षड्रसार्थं तु लावणम् ४९
सर्वं सर्वसमृद्ध्यर्थं कूष्मांडं पुष्टिदं विदुः
प्राप्तिदं सर्वभोगानामिह चाऽमुत्र च द्विजाः ५०
यावज्जीवनमुक्तं हि कन्यादानं तु भोगदम्
पनसाम्रकपित्थानां वृक्षाणां फलमेव च ५१
कदल्याद्यौषधीनां च फलं गुल्मोद्भवं तथा
माषादीनां च मुद्गानां फलं शाकादिकं तथा ५२
मरीचिसर्षपाद्यानां शाकोपकरणं तथा
यदृतौ यत्फलं सिद्धं तद्देयं हि विपश्चिता ५३
श्रोत्रादींद्रियतृप्तिश्च सदा देया विपश्चिता
शब्दादिदशभोगार्थं दिगादीनां च तुष्टिदा ५४
वेदशास्त्रं समादाय बुद्ध्वा गुरुमुखात्स्वयम्
कर्मणां फलमस्तीति बुद्धिरास्तिक्यमुच्यते ५५
बंधुराजभयाद्बुद्धिश्श्रद्धा सा च कनीयसी
सर्वाभावे दरिद्रस्तु वाचा वा कर्मणा यजेत् ५६
वाचिकं यजनं विद्यान्मंत्रस्तोत्रजपादिकम्
तीर्थयात्राव्रताद्यं हि कायिकं यजनं विदुः ५७

येन केनाप्युपायेन ह्यल्पं वा यदि वा बहु
देवतार्पणबुद्ध्या च कृतं भोगाय कल्पते ५८
तपश्चर्या च दानं च कर्तव्यमुभयं सदा
प्रतिश्रयं प्रदातव्यं स्ववर्णगुणशोभितम् ५९
देवानां तृप्तयेऽत्यर्थं सर्वभोगप्रदं बुधैः
इहाऽमुत्रोत्तमं जन्मसदाभोगं लभेद्बुधः
ईश्वरार्पणबुद्ध्या हि कृत्वा मोक्षफलं लभेत् ६०
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति सदा नरः
तस्य वैधर्मबुद्धिश्च ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ६१
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां पंचदशोध्यायः १५

अध्याय १६

ऋषय ऊचुः
पार्थिवप्रतिमापूजाविधानं ब्रूहि सत्तम
येन पूजाविधानेन सर्वाभिष्टमवाप्यते १
सूत उवाच
सुसाधुपृष्टं युष्माभिः सदा सर्वार्थदायकम्
सद्यो दुःखस्य शमनं शृणुत प्रब्रवीमि वः २
अपमृत्युहरं कालमृत्योश्चापि विनाशनम्
सद्यः कलत्रपुत्रादिधनधान्यप्रदं द्विजाः ३
अन्नादिभोज्यं वस्त्रादिसर्वमुत्पद्यते यतः
ततो मृदादिप्रतिमापूजाभीष्टप्रदा भुवि ४
पुरुषाणां च नारीणामधिकारोत्र निश्चितम्
नद्यां तडागे कूपे वा जलांतर्मृदमाहरेत् ५
संशोध्य गंधचूर्णेन पेषयित्वा सुमंडपे

हस्तेन प्रतिमां कुर्यात्क्षीरेण च सुसंस्कृताम् ६
अंगप्रत्यंगकोपेतामायुधैश्च समन्विताम्
पद्मासनस्थितां कृत्वा पूजयेदादरेण हि ७
विघ्नेशादित्यविष्णूनामंबायाश्च शिवस्य च
शिवस्यशिवलिंगं च सर्वदा पूजयेद्द्विज ८
षोडशैरुपचारैश्च कुर्यात्तत्फलसिद्धये
पुष्पेण प्रोक्षणं कुर्यादभिषेकं समंत्रकम् ९
शाल्यन्नेनैव नैवेद्यं सर्वं कुडवमानतः
गृहे तु कुडवं ज्ञेयं मानुषे प्रस्थमिष्यते १०
दैवे प्रस्थत्रयं योग्यं स्वयंभोः प्रस्थपंचकम्
एवं पूर्णफलं विद्यादधिकं वै द्वयं त्रयम् ११
सहस्रपूजया सत्यं सत्यलोकं लभेद्द्विजः
द्वादशांगुलमायामं द्विगुणं च ततोऽधिकम् १२
प्रमाणमंगुलस्यैकं तदूर्ध्वं पंचकत्रयम्
अयोदारुकृतं पात्रं शिवमित्युच्यते बुधैः १३
तदष्टभागः प्रस्थः स्यात्तच्चतुःकुडवं मतम्
दशप्रस्थं शतप्रस्थं सहस्रप्रस्थमेव च १४
जलतैलादिगंधानां यथायोग्यं च मानतः
मानुषार्षस्वयंभूनां महापूजेति कथ्यते १५
अभिषेकादात्मशुद्धिर्गंधात्पुण्यमवाप्यते
आयुस्तृप्तिश्च नैवेद्याद्धूपादर्थमवाप्यते १६
दीपाज्ज्ञानमवाप्नोति तांबूलाद्भोगमाप्नुयात्
तस्मात्स्नानादिकं षट्कं प्रयत्नेन प्रसाधयेत् १७
नमस्कारो जपश्चैव सर्वाभीष्टप्रदावुभौ
पूजान्ते च सदाकार्यौ भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः १८

संपूज्य मनसा पूर्वं कुर्यात्तत्तत्सदा नरः
देवानां पूजया चैव तत्तल्लोकमवाप्नुयात् १९
तदवांतरलोके च यथेष्टं भोग्यमाप्यते
तद्विशेषान्प्रवक्ष्यामि शृणुत श्रद्धया द्विजाः २०
विघ्नेशपूजया सम्यग्भूर्लोकेऽभीष्टमाप्नुयात्
शुक्रवारे चतुर्थ्यां च सिते श्रावणभाद्रके २१
भिषगृक्षे धनुर्मासे विघ्नेशं विधिवद्यजेत्
शतं पूजासहस्रं वा तत्संख्याकदिनैर्व्रजेत् २२
देवाग्निश्रद्धया नित्यं पुत्रदं चेष्टदं नृणाम्
सर्वपापप्रशमनं तत्तद्दुरितनाशनम् २३
वारपूजांशिवादीनामात्मशुद्धिप्रदां विदुः
तिथिनक्षत्रयोगानामाधारं सार्वकामिकम् २४
तथा बृद्धिक्षयाभावात्पूर्णब्रह्मात्मकं विदुः
उदयादुदयं वारो ब्रह्मप्रभृति कर्मणाम् २५
तिथ्यादौ देवपूजा हि पूर्णभोगप्रदा नृणाम्
पूर्वभागः पितृ-णां तु निशि युक्तः प्रशस्यते २६
परभागस्तु देवानां दिवा युक्तः प्रशस्यते
उदयव्यापिनी ग्राह्या मध्याह्ने यदि सा तिथिः २७
देवकार्ये तथा ग्राह्यास्थिति ऋक्षादिकाः शुभाः
सम्यग्विचार्य वारादीन्कुर्यात्पूजाजपादिकम् २८
पूजार्यते ह्यनेनेति वेदेष्वर्थस्य योजना
पूर्णभोगफलसिद्धिश्च जायते तेन कर्मणा २९
मनोभावांस्तथा ज्ञानमिष्टभोगार्थयोजनात्
पूजाशब्दर्थ एवं हि विश्रुतो लोकवेदयोः ३०
नित्यनैमित्तिकं कालात्सद्यः काम्ये स्वनुष्ठिते

नित्यं मासं च पक्षं च वर्षं चैव यथाक्रमम् ३१
तत्तत्कर्मफलप्राप्तिस्तादृक्पापक्षयः क्रमात्
महागणपतेः पूजा चतुर्थ्यां कृष्णपक्षके ३२
पक्षपापक्षयकरी पक्षभोगफलप्रदा
चैत्रे चतुर्थ्यां पूजा च कृता मासफलप्रदा ३३
वर्षभोगप्रदा ज्ञेया कृता वै सिंहभाद्रके
श्रवणयादित्यवारे च सप्तम्यां हस्तभे दिने ३४
माघशुक्ले च सप्तम्यामादित्ययजनं चरेत्
ज्येष्ठभाद्रकसौम्ये च द्वादश्यां श्रवणर्क्षके ३५
द्वादश्यां विष्णुयजनमिष्टंसंपत्करं विदुः
श्रावणे विष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदं भवेत् ३६
गवादीन्द्वादशानर्थान्सांगान्दत्वा तु यत्फलम्
तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यां विष्णुतर्पणात् ३७
द्वादश्यां द्वादशान्विप्रान्विष्णोर्द्वादशनामतः
षोडशैरुपचारैश्च यजेत्तत्प्रीतिमाप्नुयात् ३८
एवं च सर्वदेवानां तत्तद्द्वादशनामकैः
द्वादशब्रह्मयजनं तत्तत्प्रीतिकरं भवेत् ३९
कर्कटे सोमवारे च नवम्यां मृगशीर्षके
अंबां यजेद्भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम् ४०
आश्वयुक्छुक्लनवमी सर्वाभीष्टफलप्रदा
आदिवारे चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ४१
आर्द्रायां च महार्द्रायां शिवपूजा विशिष्यते
माघकृष्णचतुर्दश्यां सर्वाभीष्टफलप्रदा ४२
आयुष्करी मृत्युहरा सर्वसिद्धिकरी नृणाम्
ज्येष्ठमासे महार्द्रायां चतुर्दशीदिनेपि च ४३

मार्गशीर्षार्द्रिकायां वा षोडशैरुपचारकैः
तत्तन्मूर्तिशिवं पूज्य तस्य वै पाददर्शनम् ४४
शिवस्य यजनं ज्ञेयं भोगमोक्षप्रदं नृणाम्
वारादिदेवयजनं कार्तिके हि विशिष्यते ४५
कार्तिके मासि संप्राप्ते सर्वान्देवान्यजेद्बुधः
दानेन तपसा होमैर्जपेन नियमेन च ४६
षोडशैरुपचारैश्च प्रतिमा विप्रमंत्रकैः
ब्राह्मणानां भोजनेन निष्कामार्तिकरो भवेत् ४७
कार्तिके देवयजनं सर्वभोगप्रदं भवेत्
व्याधीनां हरणं चैव भवेद्भूतग्रहक्षयः ४८
कार्तिकादित्यवारेषु नृणामादित्यपूजनात्
तैलकार्पासदानात्तु भवेत्कुष्ठादिसंक्षयः ४९
हरीतकीमरीचीनां वस्त्रक्षीरादिदानतः
ब्रह्मप्रतिष्ठया चैव क्षयरोगक्षयो भवेत् ५०
दीपसर्षपदानाच्च अपस्मारक्षयो भवेत्
कृत्तिकासोमवारेषु शिवस्य यजनं नृणाम् ५१
महादारिद्र्यशमनं सर्वसंपत्करं भवेत्
गृहक्षेत्रादिदानाच्च गृहोपकरणादिना ५२
कृत्तिकाभौमवारेषु स्कंदस्य यजनान्नृणाम्
दीपघंटादिदानाद्वै वाक्सिद्धिरचिराद्भवेत् ५३
कृत्तिकासौम्यवारेषु विष्णोर्वै यजनं नृणाम्
दध्योदनस्य दानं च सत्संतानकरं भवेत् ५४
कृतिकागुरुवारेषु ब्रह्मणो यजनाद्धनैः
मधुस्वर्णाज्यदानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ५५
कृत्तिकाशुक्रवारेषु गजकोमेडयाजनात् १

गंधपुष्पान्नदानेन भोग्यवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ५६
वंध्या सुपुत्रं लभते स्वर्णरौप्यादिदानतः
कृत्तिकाशनिवारेषु दिक्पालानां च वंदनम् ५७
दिग्गजानां च नागानां सेतुपानां च पूजनम्
त्र्यंबकस्य च रुद्रस्य विष्णोः पापहरस्य च ५८
ज्ञानदं ब्रह्मणश्चैव धन्वंतर्यश्विनोस्तथा
रोगापमृत्युहरणं तत्कालव्याधिशांतिदम् ५९
लवणायसतैलानां माषादीनां च दानतः
त्रिकटुफलगंधानां जलादीनां च दानतः ६०
द्रवाणां कठिनानां च प्रस्थेन पलमानतः
स्वर्गप्राप्तिर्धनुर्मासे ह्युषःकाले च पूजनम् ६१
शिवादीनां च सर्वेषां क्रमाद्वै सर्वसिद्धये
शाल्यन्नस्य हविष्यस्य नैवेद्यं शस्तमुच्यते ६२
विविधान्नस्य नैवेद्यं धनुर्मासे विशिष्यते
मार्गशीर्षेऽन्नदस्यैव सर्वमिष्टफलं भवेत् ६३
पापक्षयं चेष्टसिद्धिं चारोग्यं धर्ममेव च
सम्यग्वेदपरिज्ञानं सदनुष्ठानमेव च ६४
इहामुत्र महाभोगानंते योगं च शाश्वतम्
वेदांतज्ञानसिद्धिं च मार्गशीर्षान्नदो लभेत् ६५
मार्गशीर्षे ह्युषःकाले दिनत्रयमथापि वा
यजेद्देवान्भोगकामो नाधनुर्मासिको भवेत् ६६
यावत्संगवकालं तु धनुर्मासो विधीयते
धनुर्मासे निराहारो मासमात्रं जितेंद्रियः ६७
आमध्याह्नजपेद्विप्रो गायत्रीं वेदमातरम्
पंचाक्षरादिकान्मंत्रान्पश्चादासप्तिकं जपेत् ६८

ज्ञानं लब्ध्वा च देहांते विप्रो मुक्तिमवाप्नुयात्
अन्येषां नरनारीणां त्रिःस्नानेन जपेन च ६९
सदा पंचाक्षरस्यैव विशुद्धं ज्ञानमाप्यते
इष्टमन्त्रान्सदाजप्त्वा महापापक्षयं लभेत् ७०
धनुर्मासे विशेषेण महानैवेद्यमाचरेत्
शालितंडुलभारेण मरीचप्रस्थकेन च ७१
गणनाद्द्वादशं सर्वं मध्वाज्यकुडवेन हि
द्रोणयुक्तेन मुद्गेन द्वादशव्यंजनेन च ७२
घृतपक्वैरपूपैश्च मोदकैः शालिकादिभिः
द्वादशैश्च दधिक्षीरैर्द्वादशप्रस्थकेन च ७३
नारिकेलफलादीनां तथा गणनया सह
द्वादशक्रमुकैर्युक्तं षट्त्रिंशत्पत्रकैर्युतम् ७४
कर्पूरखुरचूर्णेन पंचसौगंधिकैर्युतम्
तांबूलयुक्तं तु यदा महानैवेद्यलक्षणम् ७५
महानैवेद्यमेतद्वै देवतार्पणपूर्वकम्
वर्णानुक्रमपूर्वेण तद्भक्तेभ्यः प्रदापयेत् ७६
एवं चौदननैवेद्याद्भूमौ राष्ट्रपतिर्भवेत्
महानैवेद्यदानेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ७७
महानैवेद्यदानेन सहस्रेण द्विजर्षभाः
सत्यलोके च तल्लोके पूर्णमायुरवाप्नुयात् ७८
सहस्राणां च त्रिंशत्या महानैवेद्यदानतः
तदूर्ध्वलोकमाप्यैव न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ७९
सहस्राणां च षट्त्रिंशज्जन्म नैवेद्यमीरितम्
तावन्नैवेद्यदानं तु महापूर्णं तदुच्यते ८०
महापूर्णस्य नैवेद्यं जन्मनैवेद्यमिष्यते

जन्मनैवेद्यदानेन पुनर्जन्म न विद्यते ८१
ऊर्जे मासि दिने पुण्ये जन्म नैवेद्यमाचरेत्
संक्रांतिपातजन्मर्क्षपौर्णमास्यादिसंयुते ८२
अब्दजन्मदिने कुर्याज्जन्मनैवेद्यमुत्तमम्
मासांतरेषु जन्मर्क्षपूर्णयोगदिनेपि च ८३
मेलने च शनैर्वापि तावत्साहस्रमाचरेत्
जन्मनैवेद्यदानेन जन्मार्पणफलं लभेत् ८४
जन्मार्पणाच्छिवः प्रीतिः स्वसायुज्यं ददाति हि
इदं तज्जन्मनैवेद्यं शिवस्यैव प्रदापयेत् ८५
योनिलिंगस्वरूपेण शिवो जन्मनिरूपकः
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं जन्म पूजा शिवस्य हि ८६
बिंदुनादात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्
बिंदुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्त्यात्मकं जगत् ८७
नादाधारमिदं बिंदुर्बिंद्वाधारमिदं जगत्
जगदाधारभूतौ हि बिंदुनादौ व्यवस्थितौ ८८
विन्दुनादयुतं सर्वं सकलीकरणं भवेत्
सकलीकरणाज्जन्मजगत्प्राप्नोत्यसंशयः ८९
बिंदुनादात्मकं लिंगं जगत्कारणमुच्यते
बिंदुर्देवीशिवो नादः शिवलिंगं तु कथ्यते ९०
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं शिवलिंगं प्रपूजयेत्
माता देवी बिंदुरूपा नादरूपः शिवः पिता ९१
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानंद एव हि
परमानंदलाभार्थं शिवलिंगं प्रपूजयेत् ९२
सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता ९३ब्
पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते ९३

कृपयांतर्गतैश्वर्यं पूजकस्य ददाति हि
तस्मादंतर्गतानंदलाभार्थं मुनिपुंगवाः ९४
पितृमातृस्वरूपेण शिवलिंगं प्रपूजयेत्
भर्गः पुरुषरूपो हि भर्गाप्रकृतिरुच्यते ९५
अव्यक्तांतरधिष्ठानं गर्भः पुरुष उच्यते
सुव्यक्तांतरधिष्ठानं गर्भः प्रकृतिरुच्यते ९६
पुरुषत्वादिगर्भो हि गर्भवाञ्जनको यतः
पुरुषात्प्रकृतो युक्तं प्रथमं जन्म कथ्यते ९७
प्रकृतेर्व्यक्ततां यातं द्वितीयं जन्म कथ्यते
जन्म जंतुर्मृत्युजन्म पुरुषात्प्रतिपद्यते ९८
अन्यतो भाव्यतेऽवश्यं मायया जन्म कथ्यते
जीर्यते जन्मकालाद्यत्तस्माज्जीव इति स्मृतः ९९
जन्यते तन्यते पाशैर्जीवशब्दार्थ एव हि १००ब्
जन्मपाशनिवृत्त्यर्थं जन्मलिंगं प्रपूजयेत् १००
भं वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद्भगः प्रकृतिरुच्यते १०१ब्
प्राकृतैः शब्दमात्राद्यैः प्राकृतेंद्रियभोजनात् १०१
भगस्येदं भोगमिति शब्दार्थो मुख्यतः श्रुतः १०२ब्
मुख्यो भगस्तु प्रकृतिर्भगवाञ्छिव उच्यते १०२
भगवान्भोगदाता हि नाऽन्यो भोगप्रदायकः १०३ब्
भगस्वामी च भगवान्भर्ग इत्युच्यते बुधैः १०३
भगेन सहितं लिंगं भगंलिंगेन संयुतम् १०४ब्
इहामुत्र च भोगार्थं नित्यभोगार्थमेव च १०४
भगवंतं महादेवं शिवलिंगं प्रपूजयेत् १०५ब्
लोकप्रसविता सूर्यस्तच्चिह्नं प्रसवाद्भवेत् १०५
लिंगेप्रसूतिकर्तारं लिंगिनं पुरुषो यजेत् १०६ब्

लिंगार्थगमकं चिह्नं लिंगमित्यभिधीयते १०६
लिंगमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः १०७ब्
शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिंगमुच्यते १०७
स्वचिह्नपूजनात्प्रीतश्चिह्नकार्यं न वीयते १०८ब्
चिह्नकार्यं तु जन्मादिजन्माद्यं विनिवर्तते १०८
प्राकृतैः पुरुषैश्चापि बाह्याभ्यंतरसंभवैः १०९ब्
षोडशैरुपचारैश्च शिवलिंगं प्रपूजयेत् १०९
एवमादित्यवारे हि पूजा जन्मनिवर्तिका ११०ब्
आदिवारे महालिंगं प्रणवेनैव पूजयेत् ११०
आदिवारे पंचगव्यैरभिषेको विशिष्यते १११ब्
गोमयं गोजलं क्षीरं दध्याज्यं पंचगव्यकम् १११
क्षीराद्यं च पृथक्च्चैव मधुना चेक्षुसारकैः ११२ब्
गव्यक्षीरान्ननैवेद्यं प्रणवेनैव कारयेत् ११२
प्रणवं ध्वनिलिंगं तु नादलिंगं स्वयंभुवः ११३ब्
बिंदुलिंगं तु यंत्रं स्यान्मकारं तु प्रतिष्ठितम् ११३
उकारं चरलिंगं स्यादकारं गुरुविग्रहम् ११४ब्
षड्लिंगं पूजया नित्यं जीवन्मुक्तो न संशयः ११४
शिवस्य भक्त्या पूजा हि जन्ममुक्तिकरी नृणाम् ११५ब्
रुद्राक्षधारणात्पादमर्धं वैभूतिधारणात् ११५
त्रिपादं मंत्रजाप्याच्च पूजया पूर्णभक्तिमान् ११६ब्
शिवलिंगं च भक्तं च पूज्य मोक्षं लभेन्नरः ११६
य इमं पठतेऽध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ११७ब्
तस्यैव शिवभक्तिश्च वर्धते सुदृढा द्विजाः ११७
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां षोडशोऽध्यायः १६

अध्याय १७

ऋषय ऊचुः
प्रणवस्य च माहात्म्यं षड्लिंगस्य महामुने
शिवभक्तस्य पूजां च क्रमशो ब्रूहि नःप्रभो १
सूत उवाच
तपोधनैर्भवद्भिश्च सम्यक्प्रश्नस्त्वयं कृतः
अस्योत्तरं महादेवो जानाति स्म न चापरः २
अथापि वक्ष्ये तमहं शिवस्य कृपयैव हि
शिवोऽस्माकं च युष्माकं रक्षां गृह्णातु भूरिशः ३
प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः
नवं नावांतरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः ४
प्रः प्रपंचो न नास्तिवो युष्माकं प्रणवं विदुः
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः ५
स्वजापकानां योगिनां स्वमंत्रपूजकस्य च
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ६
तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ७
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः
प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः ८
सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात्स्थूलं पंचाक्षरं विदुः
सूक्ष्ममव्यक्तपंचार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत् ९
जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि
मंत्रेणार्थानुसंधानं स्वदेहविलयावधि १०
स्वदेहेगलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः
केवलं मंत्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः ११

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमाप्नुयात्
सूक्ष्मं च द्विविधं ज्ञेयं ह्रस्वदीर्घविभेदतः १२
अकारश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम्
बिंदुनादयुतं तद्धि शब्दकालकलान्वितम् १३
दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृद्गतम्
मकारं तंत्रितत्त्वं हि ह्रस्वप्रणव उच्यते १४
शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम्
ह्रस्वमेवं हि जाप्यं स्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम् १५
भूवायुकनकार्णोद्योःशब्दाद्याश्च तथा दश
आशान्वयेदशपुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते १६
ह्रस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम्
व्याहृत्यादौ च मंत्रादौ कामं शब्दकलायुतम् १७
वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वंदने संध्ययोरपि
नवकौटिजपाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत् १८
पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात्
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपांजयमवाप्नुयात् १९
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसांजयमाप्नुयात्
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमवाप्नुयात्
आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै २०
गंधादीनांक्रमेणैवनवकोटिजपेणवै
अहंकारस्य च पुनर्नव कोटिजपेन वै २१
सहस्रमंत्रजप्तेन नित्यशुद्धो भवेत्पुमान्
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः २२
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् २३

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः
सदा जपन्सदाध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् २४
समाधिस्थो महायोगीशिव एव न संशयः
ऋषिच्छंदोदेवतादि न्यस्य देहेपुनर्जपेत् २५
प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्
दशमातृषडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत् २६
प्रवृत्तानां च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते
क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिनः २७
धनादिविभवैश्चैव कराद्यंगैर्नमादिभिः
क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगीति कथ्यते २८
पूजायुक्तश्च मितभुग्बाह्येंद्रियजयान्वितः
परद्रोहादिरहितस्तपोयोगीति कथ्यते २९
एतैर्युक्तः सदा क्रुद्धः सर्वकामादिवर्जितः
सदा जपपरः शांतोजपयोगीति तं विदुः ३०
उपचारैः षोडशभिः पूजया शिवयोगिनाम्
सालोक्यादिक्रमेणैव शुद्धो मुक्तिं लभेन्नरः ३१
जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः
तपःकर्तुर्जपः प्रोक्तो यज्ञपन्परिमार्जते ३२
शिवनाम नमःपूर्वं चतुर्थ्यां पंचतत्त्वकम्
स्थूलप्रणवरूपं हि शिवपंचाक्षरं द्विजाः ३३
पंचाक्षरजपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः
प्रणवेनादिसंयुक्तं सदा पंचाक्षरं जपेत् ३४
गुरूपदेशं संगम्य सुखवासे सुभूतले
पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णभूतावधि द्विजाः ३५
माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम्

एकवारं मिताशीतु वाग्यतो नियतेंद्रियः ३६
स्वस्य राजपितृ-णां च शुश्रूषणं च नित्यशः
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी ३७
पंचाक्षरं पंचलक्षं जपेच्छिवमनुस्मरन्
पद्मासनस्थं शिवदं गंगाचंद्रकलान्वितम् ३८
वामोरुस्थितशक्त्या च विराजं तं महागणैः
मृगटंकधरं देवं वरदाभयपाणिकम् ३९
सदानुग्रहकर्त्तारं सदा शिवमनुस्मरन्
संपूज्य मनसा पूर्वं हृदिवासूर्यमंडले ४०
जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः शुद्धकर्मकृत्
प्रातः कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्मसमाप्य च ४१
मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः
पंचाक्षरस्य मंत्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत् ४२
वरयेच्च सपत्नीकाञ्छैवान्वै ब्राह्मणोत्तमान्
एकं गुरुवरं शिष्टं वरयेत्सांबमूर्तिकम् ४३
ईशानं चाथ पुरुषमघोरं वाममेव च
सद्योजातं च पंचैव शिवभक्तान्द्विजोत्तमान् ४४
पूजाद्रव्याणि संपाद्य शिवपूजां समारभेत्
शिवपूजां च विधिवत्कृत्वा होमं समारभेत् ४५
मुखांतं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समारभेत्
दशैकं वा शतैकं वा सहस्रैकमथापि वा ४६
कापिलेन घृतेनैव जुहुयात्स्वयमेव हि
कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतं बुधः ४७
होमान्ते दक्षिणा देया गुरोर्गोमिथुनं तथा
ईशानादिस्वरूपांस्तान्गुरुं सांबं विभाव्य च ४८

तेषां पत्सिक्ततोयेन स्वशिरः स्नानमाचरेत्
षट्त्रिंशत्कोटितीर्थेषु सद्यः स्नानफलं लभेत् ४९
दशांगमन्नं तेषां वै दद्याद्वैभक्तिपूर्वकम्
पराबुद्ध्या गुरोः पत्नीमीशानादिक्रमेण तु ५०
परमान्नेन संपूज्य यथाविभवविस्तरम्
रुद्राक्षवस्त्रपूर्वं च वटकापूपकैर्युतम् ५१
बलिदानं ततः कृत्वा भूरिभोजनमाचरेत्
ततः संप्रार्थ्य देवेशं जपं तावत्समापयेत् ५२
पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्रीभवेन्नरः
पुनश्च पंचलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत् ५३
अतलादि समारभ्य सत्यलोकावधिक्रमात्
पंचलक्षजपात्तत्तल्लोकैश्वर्यमवाप्नुयात् ५४
मध्ये मृतश्चेद्भोगांते भूमौ तज्ज्ञापको भवेत्
पुनश्च पंचलक्षेण ब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात् ५५
पुनश्च पंचलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात्
आहत्य शतलक्षेण साक्षाद्ब्रह्मसमो भवेत् ५६
कार्यब्रह्मण एवं हि सायुज्यं प्रतिपद्य वै
यथेष्टं भोगमाप्नोति तद्ब्रह्मप्रलयावधि ५७
पुनः कल्पांतरे वृत्ते ब्रह्मपुत्रः सजायते
पुनश्च तपसा दीप्तः क्रमान्मुक्तो भविष्यति ५८
पृथ्व्यादिकार्यभूतेभ्यो लोका वै निर्मिताः क्रमात्
पातालादि च सत्यांतं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश ५९
सत्यादूर्ध्वं क्षमांतं वैविष्णुलोकाश्चतुर्दश
क्षमलोके कार्यविष्णुर्वैकुंठे वरपत्तने ६०
कार्यलक्ष्म्या महाभोगिरक्षां कृत्वाऽधितिष्ठति

तदूर्ध्वगाश्च शुच्यंतां लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः ६१
शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः
षडुत्तराश्च पंचाशदहिंसांतास्तदूर्ध्वगाः ६२
अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे
कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान्कृत्वाधितिष्ठति ६३
तदंते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम्
शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालश्चक्रेश्वराह्वयः ६४
माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान्कालेन युंजति
असत्यश्चाशुचिश्चैव हिंसा चैवाथ निर्घृणा ६५
असत्यादिचतुष्पादः सर्वांशः कामरूपधृक्
नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसंगो वेदबाह्यध्वनिः सदा ६६
क्रोधसंगः कृष्णवर्णो महामहिषवेषवान्
तावन्महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधास्तावदेव हि ६७
तदर्वाक्कर्मभोगो हि तदूर्ध्वं ज्ञानभोगकम्
तदर्वाक्कर्ममाया हि ज्ञानमाया तदूर्ध्वकम् ६८
मा लक्ष्मीः कर्मभोगो वै याति मायेति कथ्यते
मा लक्ष्मीर्ज्ञानभोगो वै याति मायेति कथ्यते ६९
तदूर्ध्वं नित्यभोगो हि तदर्वाग्नश्वरं विदुः
तदर्वाक्च तिरोधानं तदूर्ध्वं न तिरोधनम् ७०
तदर्वाक्पाशबंधो हि तदूर्ध्वं न हि बंधनम्
तदर्वाक्परिवर्तंते काम्यकर्मानुसारिणः ७१
निष्कामकर्मभोगस्तु तदूर्ध्वं परिकीर्तितः
तदर्वाक्परिवर्तंते बिंदुपूजापरायणाः ७२
तदूर्ध्वं हि व्रजंत्येव निष्कामा लिंगपूजकाः
तदर्वाक्परिवर्तंते शिवान्यसुरपूजकाः ७३

शिवैकनिरता ये च तदूर्ध्वं संप्रयांति ते
तदर्वाग्जीवकोटिः स्यात्तदूर्ध्वं परकोटिकाः ७४
सांसारिकास्तदर्वाक्च मुक्ताः खलु तदूर्ध्वगाः
तदर्वाक्परिवर्तंते प्राकृतद्रव्यपूजकाः ७५
तदूर्ध्वं हि व्रजंत्येते पौरुषद्रव्यपूजकाः
तदर्वाक्छक्तिलिंगं तु शिवलिंगं तदूर्ध्वकम् ७६
तदर्वागावृतं लिंगं तदूर्ध्वं हि निरावृति
तदर्वाक्कल्पितं लिंगं तदूर्ध्वं वै न कल्पितम् ७७
तदर्वाग्बाह्यलिंगं स्यादंतरंगं तदूर्ध्वकम्
तदर्वाक्छक्तिलोका हि शतं वै द्वादशाधिकम् ७८
तदर्वाग्बिंदुरूपं हि नादरूपं तदुत्तरम्
तदर्वाक्कर्मलोकस्तु तदूर्ध्वं ज्ञानलोककः ७९
नमस्कारस्तदूर्ध्वं हि मदाहंकारनाशनः
जनिजं वै तिरोधानं नानिषिद्ध्यातते इति ८०
ज्ञानशब्दार्थ एवं हि तिरोधाननिवारणात्
तदर्वाक्परिवर्तंते ह्याधिभौतिकपूजकाः ८१
आध्यात्मिकार्चका एव तदूर्ध्वं संप्रयांतिवै
तावद्वै वेदिभागं तन्महालोकात्मलिंगके ८२
प्रकृत्याद्यष्टबंधोपि वेद्यंते संप्रतिष्ठतः
एवमेतादृशं ज्ञेयं सर्वं लौकिकवैदिकम् ८३
अधर्ममहिषारूढं कालचक्रं तरंति ते
सत्यादिधर्मयुक्ता ये शिवपूजापराश्च ये ८४
तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्यस्वरूपधृक्
सत्यादिपादयुक्तस्तु शिवलोकाग्रतः स्थितः ८५
क्षमाशृंगः शमश्रोत्रो वेदध्वनिविभूषितः

आस्तिक्यचक्षुर्निश्वासगुरुबुद्धिमना वृषः ८६
क्रियादिवृषभा ज्ञेयाः कारणादिषु सर्वदा
तं क्रियावृषभं धर्मं कालातीतोधितिष्ठति ८७
ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्वस्वायुर्दिनमुच्यते
तदूर्ध्वं न दिनं रात्रिर्न जन्ममरणादिकम् ८८
पुनः कारणसत्यांताः कारणब्रह्मणस्तथा
गंधादिभ्यस्तु भूतेभ्यस्तदूर्ध्वं निर्मिताः सदा ८९
सूक्ष्मगंधस्वरूपा हि स्थिता लोकाश्चतुर्दश
पुनः कारणविष्णोर्वै स्थिता लोकाश्चतुर्दश ९०
पुनःकारणरुद्रस्य लोकाष्टाविंशका मताः
पुनश्च कारणेशस्य षट्पंचाशत्तदूर्ध्वगाः ९१
ततः परं ब्रह्मचर्यलोकाख्यं शिवसंमतम्
तत्रैव ज्ञानकैलासे पंचावरणसंयुते ९२
पंचमंडलसंयुक्तं पंचब्रह्मकलान्वितम्
आदिशक्तिसमायुक्तमादिलिंगं तु तत्र वै ९३
शिवालयमिदं प्रोक्तं शिवस्य परमात्मनः
परशक्त्यासमायुक्तस्तत्रैव परमेश्वरः ९४
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोप्यनुग्रहः
पंचकृत्यप्रवीणोऽसौ सच्चिदानंदविग्रहः ९५
ध्यानधर्मः सदा यस्य सदानुग्रहतत्परः
समाध्यासनमासीनः स्वात्मारामो विराजते ९६
तस्य संदर्शनं सांध्यं कर्मध्यानादिभिः क्रमात्
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिर्भवेत् ९७
क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञानं प्रसाधयेत्
तद्दर्शनगताः सर्वे मुक्ता एव न संशयः ९८

मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि
क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषु सुस्थितः ९९
शिवस्य दर्शनं लब्धा स्वात्मारामत्वमेव हि
यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति १००
कृपाविचक्षणः शंभुरज्ञानमपनेष्यति
अज्ञानविनिवृत्तौ तु शिवज्ञानं प्रवर्तते १०१
शिवज्ञानात्स्वस्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति
आत्मारामत्वसंसिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः १०२
पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमाप्नुयात्
पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवाप्नुयात् १०३
पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमाप्नुयात्
पुनश्च शतलक्षेण ऐश्वर्यं पदमाप्नुयात् १०४
पुनश्चैवंविधेनैव जपेन सुसमाहितः
शिवलोकादिभूतं हि कालचक्रमवाप्नुयात् १०५
कालचक्रं पंचचक्रमेकैकेन क्रमोत्तरे
सृष्टिमोहौ ब्रह्मचक्रं भोगमोहौ तु वैष्णवम् १०६
कोपमोहौ रौद्रचक्रं भ्रमणं चैश्वरं विदुः
शिवचक्रं ज्ञानमोहौ पंचचक्रं विदुर्बुधाः १०७
पुनश्च दशकोटया हि कारणब्रह्मणः पदम्
पुनश्च दशकोटया हि तत्पदैश्वर्यमाप्नुयात् १०८
एवं क्रमेण विष्णवादेः पदं लब्ध्वा महौजसः
क्रमेण तत्पदैश्वर्यं लब्ध्वा चैव महात्मनः १०९
शतकोटिमनुं जप्त्वा पंचोत्तरमतंद्रितः
शिवलोकमवाप्नोति पंचमावरणाद्बहिः ११०
राजसं मंडपं तत्र नंदीसंस्थानमुत्तमम्

तपोरूपश्च वृषभस्तत्रैव परिदृश्यते १११
सद्योजातस्य तत्स्थानं पंचमावरणं परम्
वामदेवस्य च स्थानं चतुर्थावरणं पुनः ११२
अघोरनिलयं पश्चात्तृतीयावरणं परम्
पुरुषस्यैव सांबस्य द्वितीयावरणं शुभम् ११३
ईशानस्य परस्यैव प्रथमावरणं ततः
ध्यानधर्मस्य च स्थानं पंचमं मंडपं ततः ११४
बलिनाथस्य संस्थानं तत्र पूर्णामृतप्रदम्
चतुर्थं मंडपं पश्चाच्चंद्रशेखरमूर्तिमत् ११५
सोमस्कंदस्य च स्थानं तृतीयं मंडपं परम्
द्वितीयं मंडपं नृत्यमंडपं प्राहुरास्तिकाः ११६
प्रथमं मूलमायायाः स्थानं तत्रैव शोभनम्
ततः परं गर्भगृहं लिंगस्थानं परं शुभम् ११७
नंदिसंस्थानतः पश्चान्न विदुः शिववैभवम्
नंदीश्वरो बहिस्तिष्ठन्पंचाक्षरमुपासते ११८
एवं गुरुक्रमाल्लब्धं नंदीशाच्च मया पुनः
ततः परं स्वसंवेद्यं शिवे नैवानुभावितम् ११९
शिवस्य कृपया साक्षाच्छिव लोकस्य वैभवम्
विज्ञातुं शक्यते सर्वैर्नान्यथेत्याहुरास्तिकाः १२०
एवंक्रमेणमुक्ताः स्युर्ब्राह्मणा वै जितेंद्रियः
अन्येषां च क्रमं वक्ष्ये गदतः शृणुतादरात् १२१
गुरूपदेशाज्जाप्यं वै ब्राह्मणानां नमोऽतकम्
पंचाक्षरं पंचलक्षमायुष्यं प्रजपेद्विधिः १२२
स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पंचलक्षं जपेत्पुनः
मंत्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान्मुक्तो भवेद्बुधः १२३

क्षत्रियः पंचलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति
पुनश्च पंचलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् १२४
मंत्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान्मुक्तो भवैन्नरः
वैश्यस्तु पंचलक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति १२५
पुनश्च पंचलक्षेण मंत्रक्षत्रिय उच्यते
पुनश्च पंचलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति १२६
पुनश्च पंचलक्षेण मंत्रब्राह्मण उच्यते
शूद्रश्चैव नमोंतेन पंचविंशतिलक्षतः १२७
मंत्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेद्द्विजः
नारीवाथ नरो वाथ ब्राह्मणो वान्य एव वा १२८
नमोन्तं वा नमःपूर्वमातुरः सर्वदा जपेत्
ततः स्त्रीणां तथैवोह्यगुरुर्निर्दर्शयेत्क्रमात् १२९
साधकः पंचलक्षान्ते शिवप्रीत्यर्थमेव हि
महाभिषेक नैवेद्यं कृत्वा भक्तांश्च पूजयेत् १३०
पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत्
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः १३१
शिवस्वरूपमंत्रस्य धारणाच्छिव एव हि
शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत् १३२
शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेदसर्वक्रियां विदुः
यावद्यावच्छिवं मंत्रं येन जप्तं भवेत्क्रमात् १३३
तावद्वै शिवसान्निध्यं तस्मिन्देहे न संशयः
देवीलिंगं भवेद्रूपं शिवभक्तस्त्रियास्तथा १३४
यावन्मंत्रं जपेद्देव्यास्तावत्सान्निध्यमस्ति हि
शिवं संपूजयेद्धीमान्स्वयं वै शब्दरूपभाक् १३५
स्वयं चैव शिवो भूत्वा परां शक्तिं प्रपूजयेत्

शक्तिं बेरं च लिंगं च ह्यालेख्या मायया यजेत् १३६
शिवलिंगं शिवं मत्वा स्वात्मानं शक्तिरूपकम्
शक्तिलिंगं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम् १३७
शिवलिंगं नादरूपं बिंदुरूपं तु शक्तिकम्
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिंगकम् १३८
पूजयेच्च शिवं शक्तिं स शिवो मूलभावनात्
शिवभक्ताञ्छिवमंत्ररूपकाञ्छिवरूपकान् १३९
षोडशैरुपचारैश्च पूजयेदिष्टमाप्नुयात्
येन शुश्रूषणाद्यैश्च शिवभक्तस्य लिंगिनः १४०
आनंदं जनयेद्विद्वाञ्छिवः प्रीततरो भवेत्
शिवभक्तान्सपत्नीकान्पत्न्या सह सदैव तत् १४१
पूजयेद्भोजनाद्यैश्च पंच वा दश वा शतम्
धने देहे च मंत्रे च भावनायामवंचकः १४२
शिवशक्तिस्वरूपेण न पुनर्जायते भुवि
नाभेरधो ब्रह्मभागमाकंठं विष्णुभागकम् १४३
मुखं लिंगमिति प्रोक्तं शिवभक्तशरीरकम्
मृतान्दाहादियुक्तान्वा दाहादिरहितान्मृतान् १४४
उद्दिश्य पूजयेदादिपितरं शिवमेव हि
पूजां कृत्वादिमातुश्च शिवभक्तांश्च पूजयेत् १४५
पितृलोकं समासाद्यक्रमान्मुक्तो भवेन्मृतः
क्रियायुक्तदशभ्यश्च तपोयुक्तो विशिष्यते १४६
तपोयुक्तशतेभ्यश्च जपयुक्तो विशिष्यते
जपयुक्तसहस्रेभ्यः शिवज्ञानी विशिष्यते १४७
शिवज्ञानिषु लक्षेषु ध्यानयुक्तो विशिष्यते
ध्यानयुक्तेषु कोटिभ्यः समाधिस्थो विशिष्यते १४८

उत्तरोत्तर वै शिष्ट्यात्पूजायामुत्तरोत्तरम्
फलं वैशिष्ट्यरूपं च दुर्विज्ञेयं मनीषिभिः १४९
तस्माद्वै शिवभक्तस्य माहात्म्यं वेत्ति को नरः
शिवशक्त्योः पूजनं च शिवभक्तस्य पूजनम् १५०
कुरुते यो नरो भक्त्या स शिवः शिवमेधते
य इमं पठतेऽध्यायमर्थवद्वेदसंमतम् १५१
शिवज्ञानी भवेद्विप्रः शिवेन सह मोदते
श्रावयेच्छिवभक्तांश्च विशेषज्ञो मनीश्वराः १५२
शिवप्रसादशिद्धिः स्याच्छिवस्य कृपया बुधाः १५३
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां सप्तदशोऽध्यायः १७

अध्याय १८

ऋष्य ऊचुः
बंधमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थवित्तम
सूत उवाच
बंधमोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात् १
प्रकृत्याद्यष्टबंधेन बद्धो जीवः स उच्यते
प्रकृत्याद्यष्टबंधेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते २
प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः
बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते ३
प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहंकारो गुणात्मकः
पंचतन्मात्रमित्येते प्रकृत्याद्यष्टकं विदुः ४
प्रकृट्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते
पुनश्च कर्मजो देहो जन्मकर्म पुनः पुनः ५
शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम्

स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्ममिंद्रियभोगदम् ६
कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः
सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते ७
तस्माद्धि कर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः
शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद्भ्राम्यते सदा ८
चक्रभ्रमनिवृत्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत्
प्रकृत्यादि महाचक्रं प्रकृतेः परतः शिवः ९
चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतोयतः
पिबति वाथ वमति जीवन्बालो जलं यथा १०
शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति
सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छिव इति स्मृतः
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः ११
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतंत्रता नित्यमलुप्तशक्तिः
अनंतशक्तिश्च महेश्वरस्य यन्मानसैश्वर्यमवैति वेदः १२
अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादिवशं भवेत्
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयेत् १३
निःस्पृहस्य च पूर्णस्य तस्य पूजा कथं भवेत्
शिवोद्देशकृतं कर्म प्रसादजनकं भवेत् १४
लिंगे बेरे भक्तजने शिवमुद्दिश्य पूजयेत्
कायेन मनसा वाचा धनेनापि प्रपूजयेत् १५
पुजया तु महेशो हि प्रकृतेः परमः शिवः
प्रसादं कुरुते सत्यं पूजकस्य विशेषतः १६
शिवप्रसादात्कर्माद्यं क्रमेण स्ववशं भवेत्
कर्मारभ्य प्रकृत्यंतं यदासर्वं वशं भवेत् १७
तदामुक्त इति प्रोक्तः स्वात्मारामो विराजते

प्रसादात्परमेशस्य कर्म देहो यदावशः १८
तदा वै शिवलोके तु वासः सालोक्यमुच्यते
सामीप्यं याति सांबस्य तन्मात्रे च वशं गते १९
तदा तु शिवसायुज्यमायुधाद्यैः क्रियादिभिः
महाप्रसादलाभे च बुद्धिश्चापि वशा भवेत् २०
बुद्धिस्तु कार्यं प्रकृतेस्तत्सृष्टिरिति कथ्यते
पुनर्महाप्रसादेन प्रकृतिर्वशमेष्यति २१
शिवस्य मानसैश्वर्यं तदाऽयत्नं भविष्यति
सार्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं लब्ध्वा स्वात्मनि राजते २२
तत्सायुज्यमिति प्राहुर्वेदागमपरायणाः
एवं क्रमेण मुक्तिः स्याल्लिंगादौ पूजया स्वतः २३
अतः शिवप्रसादार्थं क्रियाद्यैः पूजयेच्छिवम्
शिवक्रिया शिवतपः शिवमंत्रजपः सदा २४
शिवज्ञानं शिवध्यानमुत्तरोत्तरमभ्यसेत्
आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वै शिवचिंतया २५
सद्यादिभिश्च कुसुमैरर्चयेच्छिवमेष्यति
ऋषय ऊचुः
लिंगादौ शिवपूजाया विधानं ब्रूहि सर्वतः २६
सूत उवाच
लिंगानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः
तदेव लिंगं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् २७
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्फलम्
स्थूललिंगं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते २८
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिंगानिसुबहूनि च २९

तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः
भूविकाराणि लिंगानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ३०
स्वयं भूलिंगं प्रथमं बिंदुलिंगंद्वितीयकम्
प्रतिष्ठितं चरंचैव गुरुलिंगं तु पंचमम् ३१
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः ३२
स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्य व्यक्त एव सः
स्वयंभूतं जातमिति स्वयंभूरिति तं विदुः ३३
तल्लिंगपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थिंडिलेपि वा ३४
स्वहस्ताल्लिखितं लिंगं शुद्धप्रणवमंत्रकम्
यंत्रलिंगं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ३५
बिंदुनादमयं लिंगं स्थावरं जंगमं च यत्
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ३६
यत्र विश्वस्य ते शंभुस्तत्र तस्मै फलप्रदः
स्वहस्ताल्लिख्यते यंत्रे स्थावरादावकृत्रिमे ३७
आवाह्य पूजयेच्छंभुं षोडशैरुपचारकैः
स्वयमैश्वर्यमाप्नोति ज्ञानमभ्यासतो भवेत् ३८
देवैश्च ऋषिभिश्चापि स्वात्मसिद्ध्यर्थमेव हि
समंत्रेणात्महस्तेन कृतं यच्छुद्धमंडले ३९
शुद्धभावनया चैव स्थापितं लिंगमुत्तमम्
तल्लिंगं पौरुषं प्राहुस्तत्प्रतिष्ठितमुच्यते ४०
तल्लिंगपूजया नित्यं पौरुषैश्वर्यमाप्नुयात्
महद्भिर्ब्राह्मणैश्चापि राजभिश्च महाधनैः ४१
शिल्पिनाकल्पितं लिंगं मंत्रेण स्थापितं च यत्

प्रतिष्ठितं प्राकृतं हि प्राकृतैश्वर्यभोगदम् ४२
यदूर्जितं च नित्यं च तद्धि पौरुषमुच्यते
यद्दुर्बलमनित्यं च तद्धि प्राकृतमुच्यते ४३
लिंगं नाभिस्तथा जिह्वा नासाग्रञ्च शिखा क्रमात्
कटयादिषु त्रिलोकेषु लिंगमाध्यात्मिकं चरम् ४४
पर्वतं पौरुषं प्रोक्तं भूतलं प्राकृतं विदुः
वृक्षादि पौरुषं ज्ञेयं गुल्मादि प्राकृतं विदुः ४५
षाष्टिकं प्राकृतं ज्ञेयं शालिगोधूमपौरुषम्
ऐश्वर्यं पौरुषं विद्यादणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ४६
सुस्त्रीधनादिविषयं प्राकृतं प्राहुरास्तिकाः
प्रथमं चरलिंगेषु रसलिंगं प्रकथ्यते ४७
रसलिंगं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्टप्रदं भवेत्
बाणलिंगं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदं शुभम् ४८
स्वर्णलिंगं तु वैश्यानां महाधनपतित्वदम्
शिलालिंगं तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं शुभम् ४९
स्फाटिकं बाणलिंगं च सर्वेषांसर्वकामदम्
स्वीयाभावेऽन्यदीयं तु पूजायां न निषिद्धयते ५०
स्त्रीणां तु पार्थिवं लिंगं सभर्तृ-णां विशेषतः
विधवानां प्रवृत्तानां स्फाटिकं परिकीर्तितम् ५१
विधवानां निवृत्तानां रसलिंगं विशिष्यते
बाल्येवायौवनेवापि वार्द्धकेवापि सुव्रताः ५२
शुद्धस्फटिकलिंगं तु स्त्रीणां तत्सर्वभोगदम्
प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि ५३
पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत्
अभिषेकांते नैवेद्यं शाल्यन्नेन समाचरेत् ५४

पूजांते स्थापयेल्लिंगं संपुटेषु पृथग्गृहे
करपूजानि वृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत् ५५
निवृत्तानां परं सूक्ष्मलिंगमेव विशिष्यते
विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद्विभूतिं च निवेदयेत् ५६
पूजां कृत्वाथ तल्लिंगं शिरसा धारयेत्सदा
विभूतिस्त्रिविधा प्रोक्ता लोकवेदशिवाग्निभिः ५७
लोकाग्निजमथो भस्मद्रव्यशुद्ध्यर्थमावहेत्
मृद्दारुलोहरूपाणां धान्यानां च तथैव च ५८
तिलादीनां च द्रव्याणां वस्त्रादीनां तथैव च
तथा पर्युषितानां च भस्मना शिद्धिरिष्यते ५९
श्वादिभिर्दूषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते
सजलं निर्जलं भस्म यथायोग्यं तु योजयेत् ६०
वेदाग्निजं तथा भस्म तत्कर्मांतेषु धारयेत्
मंत्रेण क्रियया जन्यं कर्माग्नौ भस्मरूपधृक् ६१
तद्भस्मधारणात्कर्म स्वात्मन्यारोपितं भवेत्
अघोरेणात्ममंत्रेण बिल्वकाष्ठं प्रदाहयेत् ६२
शिवाग्निरिति संप्रोक्तस्तेन दग्धं शिवाग्निजम्
कपिलागोमयं पूर्वं केवलं गव्यमेव वा ६३
शम्यस्वत्थपलाशान्वा वटारम्वधबिल्वकान्
शिवाग्निना दहेच्छुद्धं तद्वै भस्म शिवाग्निजम् ६४
दर्भाग्नौ वा दहेत्काष्ठं शिवमंत्रं समुच्चरन्
सम्यक्संशोध्य वस्त्रेण नवकुंभे निधापयेत् ६५
दीप्त्यर्थं तत्तु संग्राह्यं मन्यते पूज्यतेपि च
भस्मशब्दार्थ एवं हि शिवः पूर्वं तथाऽकरोत् ६६
यथा स्वविषये राजा सारं गृह्णाति यत्करम्

यथा मनुष्याः सस्यादीन्दग्ध्वा सारं भजंति वै ६७
यथा हि जाठराग्निश्च भक्ष्यादीन्विविधान्बहून्
दग्ध्वा सारतरं सारात्स्वदेहं परिपुष्यति ६८
तथा प्रपंचकर्तापि स शिवः परमेश्वरः
स्वाधिष्ठेयप्रपंचस्य दग्ध्वा सारं गृहीतवान् ६९
दग्ध्वा प्रपंचं तद्भस्म् अस्वात्मन्यारोपयच्छिवः
उद्धूलनेन व्याजेन जगत्सारं गृहीतवान् ७०
स्वरत्नं स्थापयामास स्वकीये हि शरीरके
केशमाकाशसारेण वायुसारेण वै मुखम् ७१
हृदयं चाग्निसारेण त्वपां सारेण वैकटिम्
जानु चावनिसारेण तद्वत्सर्वं तदंगकम् ७२
ब्रह्मविष्णवोश्च रुद्राणां सारं चैव त्रिपुंड्रकम्
तथा तिलकरूपेण ललाटान्ते महेश्वरः ७३
भवृद्ध्या सर्वमेतद्धि मन्यते स्वयमैत्यसौ
प्रपंचसारसर्वस्वमनेनैव वशीकृतम् ७४
तस्मादस्य वशीकर्ता नास्तीति स शिवः स्मृतः
यथा सर्वमृगाणां च हिंसको मृगहिंसकः ७५
अस्य हिंसामृगो नास्ति तस्मात्सिंह इतीरितः
शं नित्यं सुखमानंदमिकारः पुरुषः स्मृतः ७६
वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते
तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वार्चयेच्छिवम् ७७
तस्मादुद्धूलनं पूर्वं त्रिपुंड्रं धारयेत्परम्
पूजाकाले हि सजलं शुद्ध्यर्थं निर्जलं भवेत् ७८
दिवा वा यदि वारात्रौ नारी वाथ नरोपि वा
पूजार्थं सजलं भस्म त्रिपुंड्रेणैव धारयेत् ७९

त्रिपुंड्रं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः
शिवपूजां फलं सांगं तस्यैव हि सुनिश्चितम् ८०
भस्म वै शिवमंत्रेण धृत्वा ह्यत्याश्रमी भवेत्
शिवाश्रमीति संप्रोक्तः शिवैकपरमो यतः ८१
शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम्
ललाटेऽग्रे सितं भस्म तिलकं धारयेन्मृदा ८२
स्वहस्ताद्गुरुहस्ताद्वाशिवभक्तस्य लक्षणम्
गुणान्रुंध इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः ८३
सविकारान्राजसादीन्गुणान्रुंधे व्यपोहति
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः ८४
गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः
विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते ८५
तस्माद्गुरुशरीरं तु गुरुलिंगं भवेद्बुधः
गुरुलिंगस्य पूजा तु गुरुशुश्रूषणं भवेत् ८६
श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा
उक्तं यद्गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा ८७
करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि
तस्माद्वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ८८
शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोर्दत्त्वा सुशिष्यकः
अग्रपाकं निवेद्याग्रेभुंजीयाद्गुर्वनुज्ञया ८९
शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदाशिष्यत्वयोगतः
जिह्वालिंगान्मंत्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिच्यवै ९०
जातः पुत्रो मंत्रपुत्रः पितरं पूजयेद्गुरुम्
निमज्जयति पुत्रं वै संसारे जनकः पिता ९१
संतारयति संसाराद्गुरुर्वै बोधकः पिता

उभयोरंतरं ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत् ९२
अंगशुश्रूषया चापि धनाद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम्
पादादिकेशपर्यंतं लिंगान्यंगानि यद्गुरोः ९३
धनरूपैः पादुकाद्यैः पादसंग्रणादिभिः
स्नानाभिषेकनैवेद्यैर्भोजनैश्च प्रपूजयेत् ९४
गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः
गुरुशेषं तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरं भवेत् ९५
गुरोः शेषः शिवोच्छिष्टं जलमन्नादिनिर्मितम्
शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्यं भवेद्द्विजाः ९६
गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकलं भवेत्
गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद्गृह्णीत वै गुरुम् ९७
अज्ञानमोचनं साध्यं विशेषज्ञो हि मोचकः
आदौ च विघ्नशमनं कर्तव्यं कर्म पूर्तये ९८
निर्विघ्नेन कृतं सांगं कर्म वै सफलं भवेत्
तस्मात्सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद् बुधः ९९
सर्वबाधानिवृत्त्यर्थं सर्वान्देवान्यजेद्बुधः
ज्वरादिग्रंथिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिका मता १००
पिशाचजंबुकादीनां वल्मीकाद्युद्भवे तथा
अकस्मादेव गोधादिजंतूनां पतनेपि च १०१
गृहे कच्छपसर्पस्त्रीदुर्जनादर्शनेपि च
वृक्षनारीगवादीनां प्रसूतिविषयेपि च १०२
भाविदुःखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मता
अमेध्या शनिपातश्च महामारी तथैव च १०३
ज्वरमारी विषूचिश्च गोमारी च मसूरिका
जन्मर्क्षग्रहसंक्रांतिग्रहयोगाः स्वराशिके १०४

दुःस्वप्नदर्शनाद्याश्च मता वै ह्यधिदैविकाः
शवचांडालपतितस्पर्शाद्यंतर्गृहे गते १०५
एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके
शांतियज्ञं तु मतिमान्कुर्यात्तद्दोषशांतये १०६
देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वापि गृहांगणे
प्रादेशोन्नतधिष्ण्ये वै द्विहस्ते च स्वलंकृते १०७
भारमात्रव्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च
मध्ये विलिख्यकमलं तथा दिक्षुविलिख्य वै १०८
तंतुना वेष्टितं कुंभं नवगुग्गुलधूपितम्
मध्ये स्थाप्य महाकुंभं तथा दिक्ष्वपि विन्यसेत् १०९
सनालाम्रककूर्चादीन्कलशांश्च तथाष्टसु
पूरयेन्मंत्रपूतेन पंचद्रव्ययुतेन हि ११०
प्रक्षिपेन्नव रत्नानि नीलादीन्क्रमशस्तथा
कर्मज्ञं च सपत्नीकमाचार्यं वरयेद्बुधः १११
सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिंद्रादीनां च निक्षिपेत्
सशिरस्के मध्यकुंभे विष्णुमावाह्य पूजयेत् ११२
प्रागादिषु यथामंत्रमिंद्रादीन्क्रमशो यजेत्
तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्यां च नमोन्ते न यथाक्रमम् ११३
आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत्
आचार्य ऋत्विजा सार्धं तन्मात्रान्प्रजपेच्छतम् ११४
कुंभस्य पश्चिमे भागे जपांते होममाचरेत्
कोटिं लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधाः ११५
एकाहं वा नवाहं वा तथा मंडलमेव वा
यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः ११६
शमीहोमश्च शांत्यर्थे वृत्त्यर्थे च पलाशकम्

समिदन्नाज्यकैर्द्रव्यैर्नाम्ना मंत्रेण वा हुनेत् ११७
प्रारंभे यत्कृतं द्रव्यं तत्क्रियांतं समाचरेत्
पुण्याहं वाचयित्वांते दिने संप्रोक्षयेज्जलैः ११८
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यावदाहुतिसंख्यया
आचार्यश्च हविष्याशीऋत्विजश्च भवेद्बुधाः ११९
आदित्यादीन्ग्रहानिष्ट्वा सर्वहोमांत एव हि
ऋत्विभ्यो दक्षिणां दद्यान्नवरत्नं यथाक्रमम् १२०
दशदानं ततः कुर्याद्भूरिदानं ततः परम्
बालानामुपनीतानां गृहिणां वनिनां धनम् १२१
कन्यानां च सभर्तृ-णां विधवानां ततः परम्
तंत्रोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत् १२२
उत्पातानां च मारीणां दुःखस्वामी यमः स्मृतः
तस्माद्यमस्य प्रीत्यर्थं कालदानं प्रदापयेत् १२३
शतनिष्केण वा कुर्याद्दशनिष्केण वा पुनः
पाशांकुशधरं कालं कुर्यात्पुरुषरूपिणम् १२४
तत्स्वर्णप्रतिमादानं कुर्याद्दक्षिणया सह
तिलदानं ततः कुर्यात्पूर्णायुष्यप्रसिद्धये १२५
आज्यावेक्षणदानं च कुर्याद्व्याधिनिवृत्तये
सहस्रं भोजयेद्विप्रान्दरिद्रः शतमेव वा १२६
वित्ताभावे दरिद्रस्तु यथाशक्ति समाचरेत्
भैरवस्य महापूजां कुर्याद्भूतादिशांतये १२७
महाभिषेकं नैवेद्यं शिवस्यान्ते तुकारयेत्
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भूरिभोजनरूपतः १२८
एवं कृतेन यज्ञेन दोषशांतिमवाप्नुयात्
शांतियज्ञमिमं कुर्याद्वर्षे वर्षे तु फाल्गुने १२९

दुर्दर्शनादौ सद्यो वै मासमात्रे समाचरेत्
महापापादिसंप्राप्तौ कुर्याद्भैरवपूजनम् १३०
महाव्याधिसमुत्पत्तौ संकल्पं पुनराचरेत्
सर्वभावे दरिद्रस्तु दीपदानमथाचरेत् १३१
तदप्यशक्तः स्नात्वा वै यत्किंचिद्दानमाचरेत्
दिवाकरं नमस्कुर्यान्मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् १३२
सहस्रमयुतं लक्षं कोटिं वा कारयेद् बुधः
नमस्कारात्मयज्ञेन तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः १३३
त्वत्स्वरूपेर्पिता बुद्धिर्नतेऽशून्ये च रोचति
या चास्त्यस्मदहंतेति त्वयि दृष्टे विवर्जिता १३४
नम्रोऽहं हि स्वदेहेन भो महांस्त्वमसि प्रभो
न शून्यो मत्स्वरूपो वै तव दासोऽस्मि सांप्रतम् १३५
यथायोग्यं स्वात्मयज्ञं नमस्कारं प्रकल्पयेत्
अथात्र शिवनैवेद्यं दत्त्वा तांबूलमाहरेत् १३६
शिवप्रदक्षिणं कुर्यात्स्वयमष्टोत्तरं शतम्
सहस्रमयुतं लक्षं कोटिमन्येन कारयेत् १३७
शिवप्रदक्षिणात्सर्वं पातकं नश्यति क्षणात्
दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम् १३८
धर्मेणैव हि पापानामपनोदनमीरितम्
शिवोद्देशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने १३९
अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम्
क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम् १४०
जननं मरणं द्वंद्वं मायाचक्रमितीरितम्
शिवस्य मायाचक्रं हि बलिपीठं तदुच्यते १४१
बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै

पदे पदांतरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् १४२
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम्
निर्गमाज्जननं प्राप्तं नमस्त्वात्मसमर्पणम् १४३
जननं मरणं द्वंद्वं शिवमायासमर्पितम्
शिवमायार्पितद्वंद्वो न पुनस्त्वात्मभाग्भवेत् १४४
यावद्देहं क्रियाधीनः सजीवो बद्ध उच्यते
देहत्रयवशीकारे मोक्ष इत्युच्यते बुधैः १४५
मायाचक्रप्रणेता हि शिवः परमकारणम्
शिवमायार्पितद्वंद्वं शिवस्तु परिमार्जति १४६
शिवेन कल्पितं द्वंद्वं तस्मिन्नेव समर्पयेत्
शिवस्यातिप्रियं विद्यात्प्रदक्षिणं नमो बुधाः १४७
प्रदक्षिणनमस्काराः शिवस्य परमात्मनः
षोडशैरुपचारैश्च कृतपूजा फलप्रदा १४८
प्रदक्षिणाऽविनाश्यं हि पातकं नास्ति भूतले
तस्मात्प्रदक्षिणेनैव सर्वपापं विनाशयेत् १४९
शिवपूजापरो मौनी सत्यादिगुणसंयुतः
क्रियातपोजपज्ञानध्यानेष्वेकैकमाचरेत् १५०
ऐश्वर्यं दिव्यदेहश्च ज्ञानमज्ञानसंशयः
शिवसान्निध्यमित्येते क्रियादीनां फलं भवेत् १५१
करणेन फलं याति तमसः परिहापनात्
जन्मनः परिमार्जित्वाज्ज्ञबुद्ध्या जनितानि च १५२
यथादेशं यथाकालं यथादेहं यथाधनम्
यथायोग्यं प्रकुर्वीत क्रियादीञ्छिवभक्तिमान् १५३
न्यायार्जितसुवित्तेन वसेत्प्राज्ञः शिवस्थले
जीवहिंसादिरहितमतिक्लेशविवर्जितम् १५४

पंचाक्षरेण जप्तं च तोयमन्नं विदुः सुखम्
अथवाऽहुर्दरिद्रस्य भिक्षान्नंज्ञानदं भवेत् १५५
शिवभक्तस्य भिक्षान्नंशिवभक्तिविवर्धनम्
शंभुसत्रमिति प्राहुर्भिक्षान्नंशिवयोगिनः १५६
येन केनाप्युपायेन यत्र कुत्रापि भूतले
शुद्धान्नभुक्सदा मौनीरहस्यं न प्रकाशयेत् १५७
प्रकाशयेत्तु भक्तानां शिवमाहात्म्यमेव हि
रहस्यं शिवमंत्रस्य शिवो जानाति नापरः १५८
शिवभक्तो वसेन्नित्यं शिवलिंगं समाश्रितः
स्थाणुलिंगाश्रयेणैव स्थाणुर्भवति भूसुराः १५९
पूजया चरलिंगस्य क्रमान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्
सर्वमुक्तं समासेन साध्यसाधनमुत्तमम् १६०
व्यासेन यत्पुराप्रोक्तं यच्छ्रुतं हि मया पुरा
भद्रमस्तु हि वोऽस्माकं शिवभक्तिर्दृढाऽस्तुसा १६१
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति नरः सदा
शिवज्ञानं स लभतेशिवस्य कृपया बुधाः १६२
इति श्रीशैवेमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखंडे
शिवलिंगमहिमावर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः १८

अध्याय १९

ऋषय ऊचुः
सूत सूत चिरंजीव धन्यस्त्वं शिवभक्तिमान्
सम्यगुक्तस्त्वयाव्लिंगमहिमाव्सत्फलप्रदः १
यत्र पार्थिवमाहेशलिंगस्य महिमाधुना
सर्वोत्कृष्टश्च कथितो व्यासतो ब्रूहि तं पुनः २

सूत उवाच
शृणुध्वमृषयः सर्वे सद्भक्त्या हरतो खिलाः
शिवपार्थिवलिंगस्य महिमा प्रोच्यते मया ३
उक्तेष्वेतेषु लिंगेषु पार्थिवं लिंगमुत्तमम्
तस्य पूजनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः ४
हरिर्ब्रह्मा च ऋषयः सप्रजापतयस्तथा
संपूज्य पार्थिवं लिंगं प्रापुःसर्वेप्सितं द्विजाः ५
देवासुरमनुष्याश्च गंधर्वोरगराक्षसाः
अन्येपि बहवस्तं संपूज्य सिद्धिं गताः परम् ६
कृते रत्नमयं लिंगं त्रेतायां हेमसंभवम्
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे ७
अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी वरा
अनन्यपूजिता विप्रास्तपस्तस्मान्महत्फलम् ८
यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठो महेश्वरः
एवं सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्टमुच्यते ९
यथा नदीषु सर्वासु ज्येष्ठा श्रेष्ठा सुरापगा
तथा सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते १०
यथा सर्वेषु मंत्रेषु प्रणवो हि महान्स्मृतः
तथेदं पार्थिवं श्रेष्ठमाराध्यं पूज्यमेव हि ११
यथा सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणःश्रेष्ठ उच्यते
तथा सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते १२
यथा पुरीषु सर्वासु काशीश्रेष्ठतमा स्मृता
तथा सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते १३
यथा व्रतेषु सर्वेषु शिवरात्रिव्रतं परम्
तथा सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्थमुच्यते १४

यथा देवीषु सर्वासु शैवीशक्तिः परास्मृता
तथा सर्वेषु लिंगेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते १५
प्रकृत्यपार्थिवं लिंगं योन्यदेवं प्रपूजयेत्
वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा १६
पार्थिवाराधनं पुरयं धन्यमायुर्विवर्धनम्
तुष्टिदं पुष्टिदंश्रीदं कार्यं साधकसत्तमैः १७
यथा लब्धोपचारैश्च भक्त्या श्रद्धासमन्वितः
पूजयेत्पार्थिवं लिंगं सर्वकामार्थसिद्धिदम् १८
यः कृत्वा पार्थिवं लिंगे पूजयेच्छुभवेदिकम्
इहैव धनवाञ्छ्रीमानंते रुद्रो भिजायते १९
त्रिसंध्यं योर्चयंल्लिंगं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम्
दशैकादशकंयावत्तस्य पुरयफलं शृणु २०
अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलोके महीयते
पापहं सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि २१
जीवन्मुक्तः स वैज्ञानी शिव एव न संशयः
तस्य दर्शनमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च जायते २२
शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं तु पार्थिवम्
यावज्जीवनपर्यंतं स याति शिवमन्दिरम् २३
मृडेनाप्रमितान्वर्षाञ्छिवलोकेहि तिष्ठति
सकामः पुनरागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् २४
निष्कामः पूजयेन्नित्यं पार्थिवंलिंगमुत्तमम्
शिवलोके सदा तिष्ठेत्ततः सायुज्यमाप्नुयात् २५
पार्थिवं शिवलिंगं च विप्रो यदि न पूजयेत्
स याति नरकं घोरं शूलप्रोतं सुदारुणम् २६
यथाकथंचिद्विधिना रम्यं लिंगं प्रकारयेत्

पंचसूत्रविधानां च पार्थिवेन विचारयेत् २७
अखण्डं तद्धि कर्तव्यं न विखण्डं प्रकारयेत्
द्विखण्डं तु प्रकुर्वाणो नैव पूजाफलं लभेत् २८
रत्नजं हेमजं लिंगं पारदं स्फाटिकं तथा
पार्थिवं पुष्परागोत्थमखंडं तु प्रकारयेत् २९
अखंडं तु चरं लिंगं द्विखंडमचरं स्मृतम्
खंडाखंडविचारोयं सचराचरयोः स्मृतः ३०
वेदिका तु महाविद्या लिंगं देवो महेश्वरः
अतो हि स्थावरे लिंगे स्मृता श्रेष्ठादिखंडिता ३१
द्विखंडं स्थावरं लिंगं कर्तव्यं हि विधानतः
अखंडं जंगमं प्रोक्तंश् ऐवसिद्धान्तवेदिभिः ३२
द्विखंडं तु चरां लिंगं कुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः
नैव सिद्धान्तवेत्तारो मुनयः शास्त्रकोविदाः ३३
अखंडं स्थावरं लिंगं द्विखंडं चरमेव च
येकुर्वन्तिनरामूढानपूजाफलभागिनः ३४
तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना अखंडं चरसंज्ञकम्
द्विखंडं स्थावरं लिंगं कर्तव्यं परया मुदा ३५
अखंडे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी
द्विखंडे तु चरे पूजामहाहानिप्रदा स्मृता ३६
अखंडे स्थावरे पूजा न कामफलदायिनी
प्रत्यवायकरी नित्यमित्युक्तं शास्त्रवेदिभिः ३७
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखंडे
पार्थिवशिवलिंगपूजनमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः १९

अध्याय २०

सूत उवाच
अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यते
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी १
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्प्पणमाचरेत् २
नैत्यिकं सकलं कामं विधायानंतरं पुमान्
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ३
वेदोक्ताविधिना सम्यक्संपूर्णफलसिद्धये
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिंगमुत्तमम् ४
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ५
शुद्धप्रदेशसंभूतां मृदमाहृत्य यत्नतः
शिवलिंगं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ६
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ७
संगृह्य मृत्तिकां लिंगनिर्माणार्थं प्रयत्नतः
अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम् ८
संशोध्य च जलेनापि पिंडीकृत्य शनैः शनैः
विधीयेत शुभं लिंगं पार्थिवं वेदमार्गतः ९
ततः संपूजयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलाप्तये
तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्वं संविधानतः १०
नमः शिवाय मंत्रेणार्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत्
भूरसीति च मंत्रेण क्षेत्रसिद्धिं प्रकारयेत् ११
आपोस्मानिति मंत्रेण जलसंस्कारमाचरेत्

नमस्ते रुद्रमंत्रेण फाटिकाबंधमुच्यते १२
शंभवायेति मंत्रेण क्षेत्रशुद्धिं प्रकारयेत्
नमः पूर्वेण कुर्यात्पंचामृतस्यापि प्रोक्षणम् १३
नीलग्रीवाय मंत्रेण नमःपूर्वेण भक्तिमान्
चरेच्छंकरलिंगस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम् १४
भक्तितस्तत एतत्ते रुद्रायेति च मंत्रतः
आसनं रमणीयं वै दद्याद्वैदिकमार्गकृत् १५
मानो महन्तमिति च मंत्रेणावाहनं चरेत्
याते रुद्रेण मंत्रेण संचरेदुपवेशनम् १६
मंत्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्य्याच्छिवस्य च
अध्यवोचदिति प्रेम्णाधिवासं मनुनाचरेत् १७
मनुना सौजीव इति देवतान्यासमाचरेत्
असौ योवसर्पतीति चाचरेदपसर्पणम् १८
नमोस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाहरेत्
अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याऽचमनं त्र्यंबकेण च १९
पयः पृथिव्यामिति च पयसा स्नानमाचरेत्
दधिक्राव्णेतिमंत्रेण दधिस्नानं च कारयेत् २०
घृटं स्नाने खलु घृतं घृतं यावेति मंत्रतः
मधुवाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यृचा २१
मधुखंडस्नपनं प्रोक्तमिति पंचामृतं स्मृतम्
अथवा पाद्यमंत्रेण स्नानं पंचामृतेन च २२
मानस्तोके इति प्रेम्णा मंत्रेण कटिबंधनम्
नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धापयेत् २३
या ते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः
शिवाय विधिना भक्तश्चरेद्वस्त्रसमर्पणम् २४

नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गंधं दद्यादृचा सुधीः
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मंत्रेण चार्पयेत् २५
नमः पार्याय इति वा पुष्प मंत्रेण चार्पयेत्
नमः पर्णाय इति वा बिल्बपत्रसमर्पणम् २६
नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि
दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा २७
नमो ज्येष्ठाय मंत्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्
मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम् २८
इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात्फलसमर्पणम्
नमो व्रज्यायेति ऋचा सकलं शंभवेर्पयेत् २९
मानो महांतमिति च मानस्तोके इति ततः
मंत्रद्वयेनैकदशाक्षतै रुद्रान्प्रपूजयेत् ३०
हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत्
देवस्य त्वेति मंत्रेण ह्यभिषेकं चरेद्बुधः ३१
दीपमंत्रेण वा शंभोर्नीराजनविधिं चरेत्
पुष्पांजलिं चरेद्भक्त्या इमा रुद्राय च त्र्यृचा ३२
मानो महान्तमिति च चरेत्प्राज्ञः प्रदक्षिणाम्
मानस्तोकेति मंत्रेण साष्टाङ्गं प्रणमेत्सुधीः ३३
एषते इति मंत्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत्
यतोयत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यंबकेण च ३४
नमःसेनेति मंत्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत्
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचानया ३५
पंचमुद्राः प्रदर्श्याथ शिवमंत्रजपं चरेत्
शतरुद्रियमंत्रेण जपेद्वेदविचक्षणः ३६
ततः पंचाङ्गपाठं च कुर्य्याद्वेदविचक्षणः

देवागात्विति मंत्रेण कुर्याच्छंभोर्विसर्जनम् ३७
इत्युक्तः शिवपूजाया व्यासतो वैदिकोविधिः
समासतश्च शृणुत वैदिकं विधिमुत्तमम् ३८
ऋचा सद्योजातमिति मृदाहरणमाचरेत्
वामदेवाय इति च जलप्रक्षेपमाचरेत् ३९
अघोरेण च मंत्रेण लिंगनिर्माणमाचरेत्
तत्पुरुषाय मंत्रेणाह्वानं कुर्याद्यथाविधि ४०
संयोजयेद्वेदिकायामीशानमनुना हरम्
अन्यत्सर्वं विधानं च कुर्य्यात्संक्षेपतः सुधीः ४१
पंचाक्षरेण मंत्रेण गुरुदत्तेन वा तथा
कुर्यात्पूजां षोडशोपचारेण विधिवत्सुधीः ४२
भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ४३
अनेन मनुना वापि पूजयेच्छंकरं सुधीः
सुभक्त्या च भ्रमं त्यक्त्वा भक्त्यैव फलदः शिवः ४४
इत्यपि प्रोक्तमादृत्य वैदिकक्रमपूजनम्
प्रोच्यतेन्यविधिः सम्यक्साधारणतया द्विजः ४५
पूजा पार्थिवलिंगस्य संप्रोक्ता शिवनामभिः
तां शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदायिनीम् ४६
हरो महेश्वरः शंभुः शूलपाणिः पिनाकधृक्
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात् ४७
मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च
स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ४८
ओंकारादिचतुर्थ्यंतैर्नमोन्तैर्नामभिः क्रमात्
कर्तव्या च क्रिया सर्वा भक्त्या परमया मुदा ४९

कृत्वा न्यासविधिं सम्यक्षडङ्गकरयोस्तथा
षडक्षरेण मंत्रेण ततो ध्यानं समाचरेत् ५०
कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैः सनंदादिभिरर्च्यमानम्
भक्तार्तिदावानलमप्रमेयं ध्यायेदुमालिंगितविश्वभूषणम् ५१
ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचंद्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं
परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्
पद्मासीनं समंतात्स्थितममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं
विश्वबीजं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम् ५२
इति ध्यात्वा च संपूज्य पार्थिवं लिंगमुत्तमम्
जपेत्पंचाक्षरं मंत्रं गुरुदत्तं यथाविधि ५३
स्तुतिभिश्चैव देवेशं स्तुवीत प्रणमन्सुधीः
नानाभिधाभिर्विप्रेन्द्राः पठेद्वै शतरुद्रियम् ५४
ततः साक्षतपुष्पाणि गृहीत्वांजलिना मुदा
प्रार्थयेच्छंकरं भक्त्या मंत्रैरेभिः सुभक्तितः ५५
तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोहं सदा मृड
कृपानिध इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे ५६
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जप पूजादिकं मया
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर ५७
अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान्
इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु ५८
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि
न ज्ञातोसि महादेव कुतोहं त्वं महाशिव ५९
यथा तथा त्वदीयोस्मि सर्वभावैर्महेश्वर
रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर ६०
इत्येवं चाक्षतान्पुष्पानारोप्य च शिवोपरि

प्रणमेद्भक्तितश्शंभुं साष्टांगं विधिवन्मुने ६१
ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः
पुनः स्तुवीत देवेशं स्तुतिभिः श्रद्धयान्वितः ६२
ततो गलरवं कृत्वा प्रणमेच्छुचिनम्रधीः
कुर्याद्विज्ञप्तिमादृत्य विसर्जनमथाचरेत् ६३
इत्युक्ता मुनिशार्दूलाः पार्थिवार्चा विधानतः
भुक्तिदा मुक्तिदा चैव शिवभक्तिविवर्धिनी ६४
इत्यध्यायं सुचित्तेन यः पठेच्छृणुयादपि
सर्वपापविशुद्धात्मासर्वान्कामानवाप्नुयात् ६५
आयुरायोग्यदं चैव यशस्यं स्वर्ग्यमेव च
पुत्रपौत्रादिसुखदमाख्यानमिदमुत्तमम् ६६

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
पार्थिवशिवलिंगपूजाविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः २०

अध्याय २१

ऋषय ऊचुः
सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोस्तु ते
सम्यगुक्तं त्वया तात पार्थिवार्चाविधानकम् १
कामनाभेदमाश्रित्य संख्यां ब्रूहि विधानतः
शिवपार्थिवलिंगानां कृपया दीनवत्सल २
सूत उवाच
शृणुध्वमृषयः सर्वे पार्थिवार्चाविधानकम्
यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ३
अकृत्वा पार्थिवं लिंगं योन्यदेवं प्रपूजयेत्
वृथा भवति सा पूजा दमदानादिकं वृथा ४

संख्या पार्थिवलिंगानां यथाकामं निगद्यते
संख्या सद्यो मुनिश्रेष्ठ निश्चयेन फलप्रदा ५
प्रथमावाहनं तत्र प्रतिष्ठा पूजनं पृथक्
लिंगाकारं समं तत्र सर्वं ज्ञेयं पृथक्पृथक् ६
विद्यार्थी पुरुषः प्रीत्या सहस्रमितपार्थिवम्
पूजयेच्छिवलिंगं हि निश्चयात्तत्फलप्रदम् ७
नरः पार्थिवलिंगानां धनार्थी च तदर्द्धकम्
पुत्रार्थी सार्द्धसाहस्रं वस्त्रार्थी शतपंचकम् ८
मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामश्च सहस्रकम्
दयार्थी च त्रिसाहस्रं तीर्थार्थी द्विसहस्रकम् ९
सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वश्यार्थी शतमष्टकम्
मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम् १०
उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्ततः
स्तंभनार्थी सहस्रं तु द्वेषणार्थी तदर्द्धकम् ११
निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सर्द्धमुत्तमम्
महाराजभये पंचशतं ज्ञेयं विचक्षणैः १२
चौरादिसंकटे ज्ञेयं पार्थिवानां शतद्वयम्
डाकिन्यादिभये पंचशतमुक्तं जपार्थिवम् १३
दारिद्र्ये पंचसाहस्रमयुतं सर्वकामदम्
अथ नित्यविधिं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिसत्तमाः १४
एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिंगं चार्थसिद्धिदम्
त्रिलिंगं सर्वकामानां कारणं परमीरितम् १५
उत्तरोत्तरमेवं स्यात्पूर्वोक्तगणनाविधि
मतांतरमथो वक्ष्ये संख्यायां मुनिभेदतः १६
लिंगानामयुतं कृत्वा पार्थिवानां सुबुद्धिमान्

निर्भयो हि भवेन्नूनं महाराजभयं हरेत् १७
कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद्बुधः
डाकिन्यादिभये सप्तसहस्त्रं कारयेत्तथा १८
सहस्राणि पंचपंचाशदपुत्रः प्रकारयेत्
लिंगानामयुतेनैव कन्यकासंततिं लभेत् १९
लिंगानामयुतेनैव विष्णवादैश्वर्यमाप्नुयात्
लिंगानां प्रयुतेनैव ह्यतुलां श्रियमाप्नुयात् २०
कोटिमेकां तु लिंगानां यः करोति नरो भुवि
शिव एव भवेत्सोपि नात्र कार्य्या विचारणा २१
अर्चा पार्थिवलिंगानां कोटियज्ञफलप्रदा
भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं ततः कामर्थिनां नृणाम् २२
विना लिंगार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः
महाहानिर्भवेत्तस्य दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः २३
एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिंगार्चा चैकतः स्मृता २४
कलौ लिंगार्चनं श्रेष्ठं तथा लोके प्रदृश्यते
तथा नास्तीति शास्त्राणामेष सिद्धान्तनिश्चयः २५
भुक्तिमुक्तिप्रदं लिंगं विविधापन्निवारणम्
पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात् २६
शिवानाममयं लिंगं नित्यं पूज्यं महर्षिभिः
यतश्च सर्वलिंगेषु तस्मात्पूज्यं विधानतः २७
उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिंगमीरितम्
मानतो मुनिशार्दूलास्तच्छृणुध्वं वदाम्यहम् २८
चतुरंगुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया युतम्
उत्तमं लिंगमाख्यातं मुनिभिः शास्त्रकोविदैः २९

तदर्द्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्द्धमघमं स्मृतम्
इत्थं त्रिविधमाख्यातमुत्तरोत्तरतः परम् ३०
अनेकलिंगं यो नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः
पूजयेत्स लभेत्कामान्मनसा मानसेप्सितान् ३१
न लिंगाराधनादन्यत्पुण्यं वेदचतुष्टये
विद्यते सर्वशास्त्राणामेष एव विनिश्चयः ३२
सर्वमेतत्परित्यज्य कर्मजालमशेषतः
भक्त्या परमया विद्वाँल्लिंगमेकं प्रपूजयेत् ३३
लिंगेर्चितेर्चितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्
संसारांबुधिमग्नानां नान्यत्तारणसाधनम् ३४
अज्ञानतिमिरांधानां विषयासक्तचेतसाम्
प्लवो नान्योस्ति जगति लिंगाराधनमंतरा ३५
हरिब्रह्मादयो देवा मुनयो यक्षराक्षसाः
गंधर्वाश्चरणास्सिद्धा दैतेया दानवास्तथा ३६
नागाः शेषप्रभृतयो गरुडाद्याःखगास्तथा
सप्रजापतयश्चान्ये मनवः किन्नरा नराः ३७
पूजयित्वा महाभक्त्या लिंगं सर्वार्थसिद्धिदम्
प्राप्ताः कामानभीष्टांश्च तांस्तान्सर्वान्हृदि स्थितान् ३८
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः
पूजयेत्सततं लिंगं तत्तन्मंत्रेण सादरम् ३९
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः
अधिकारोस्ति सर्वेषां शिवलिंगार्चने द्विजाः ४०
द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं वरम्
अन्येषामपि जंतूनां वैदिकेन न संमतम् ४१
वैदिकानां द्विजानां च पूजा वैदिकमार्गतः

कर्तव्यानान्यमार्गेण इत्याह भगवाञ्छिवः ४२
दधीचिगौतमादीनां शापेनादग्धचेतसाम्
द्विजानां जायते श्रद्धानैव वैदिककर्मणि ४३
यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा
अन्यत्समाचरेन्मर्त्यो न संकल्पफलं लभेत् ४४
इत्थं कृत्वार्चनं शंभोर्नैवेद्यांतं विधानतः
पूजयेदष्टमूर्तीश्च तत्रैव त्रिजगन्मयीः ४५
क्षितिरापोनलो वायुराकाशः सूर्य्यसोमकौ
यजमान इति त्वष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिताः ४६
शर्वो भवश्च रुद्रश्च उग्रोभीम इतीश्वरः
महादेवः पशुपतिरेतान्मूर्तिभिरर्चयेत् ४७
पूजयेत्परिवारं च ततः शंभोः सुभक्तितः
ईशानादिक्रमात्तत्र चंदनाक्षतपत्रकैः ४८
ईशानं नंदिनं चंडं महाकालं च भृंगिणम्
वृषं स्कंदं कपर्दीशं सोमं शुक्रं च तत्क्रमात् ४९
अग्रतो वीरभद्रं च पृष्ठे कीर्तिमुखं तथा
तत एकादशान्रुद्रान्पूजयेद्विधिना ततः ५०
ततः पंचाक्षरं जप्त्वा शतरुद्रियमेव च
स्तुतीर्नानाविधाः कृत्वा पंचांगपठनं तथा ५१
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा नत्वा लिंगं विसर्जयेत्
इति प्रोक्तमशेषं च शिवपूजनमादरात् ५२
रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ५३
न प्राचीमग्रतः शंभोर्नोदीचीं शक्तिसंहितान्
न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो ग्राह्यं समाश्रयेत् ५४

विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया
बिल्वपत्रं विना नैव पूजयेच्छंकरं बुधः ५५
भस्माप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठाः प्रवृत्ते शिवपूजने
तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे च त्रिपुंड्रकम् ५६
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां
साध्यसाधनखण्डे पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः २१

अध्याय २२

ऋष्य ऊचुः
अग्राह्यं शिवनैवेद्यमिति पूर्वं श्रुतं वचः
ब्रूहि तन्निर्णयं बिल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने १
सूत उवाच
शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधानतयाधुना
सर्वं वदामि संप्रीत्या धन्या यूयं शिवव्रताः २
शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रतीदृढनिश्चयः
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ३
दृष्ट्वापि शिवनैवेद्ये यांति पापानि दूरतः
भक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्या यांति कोटिशः ४
अलं यागसहस्रेणाप्यलं यागार्बुदैरपि
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ५
यद्गृहे शिवनैवेद्यप्रचारोपि प्रजायते
तद्गृहं पावनं सर्वमन्यपावनकारणम् ६
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ७
आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि

विलंबे पापसंबंधो भवत्येव हि मानवे ८
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते
सपापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम् ९
हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरूप्यादिनिर्मिते
शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्य्यते १०
शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्
सर्वेषामपि लिंगानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ११
अन्यदीक्षायुजां नृ-णां शिवभक्तिरतात्मनाम्
शृणुध्वं निर्णयंप्रीत्याशिवनैवेद्यभक्षणे १२
शालग्रामोद्भवे लिंगे रसलिंगे तथा द्विजाः
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते १३
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिंगेषु सर्वशः
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् १४
ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति १५
चंडाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः
चंडाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः १६
बाणलिंगे च लौहे च सिद्धे लिंगे स्वयंभुवि
प्रतिमासु च सर्वासु न चंडोधिकृतो भवेत् १७
स्नापयित्वा विधानेन यो लिंगस्नापनोदकम्
त्रिःपिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति १८
अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्
शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रिताम् १९
लोंगोपरि च यद्द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिंगस्पर्शबाह्यतः २०

नैवेद्यनिर्णयः प्रोक्त इत्थं वो मुनिसत्तमाः
शृणुध्वं बिल्वमाहात्म्यं सावधानतयाऽदरात् २१
महादेवस्वरूपोयं बिल्वो देवैरपि स्तुतिः
यथाकथंचिदेतस्य महिमा ज्ञायते कथम् २२
पुण्यतीर्थानि यावंति लोकेषु प्रथितान्यपि
तानि सर्वाणि तीर्थानिबिल्वमूलेव संति हि २३
बिल्वमूले महादेवं लिंगरूपिणमव्ययम्
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् २४
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्द्धानमभिषिंचति
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः २५
एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम्
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तु ष्टोभवत्यलम् २६
पूजयेद्बिल्वमूलं यो गंधपुष्पादिभिर्नरः
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्द्धते सुखम् २७
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम्
स तत्त्वज्ञानसंपन्नो महेशांतर्गतो भवेत् २८
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम्
गृहीत्वा पूजयेद्बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते २९
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते ३०
बिल्वमूले क्षीरमुक्तमन्नमाज्येन संयुतम्
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते ३१
सांगोपांगमिति प्रोक्तं शिवलिंगप्रपूजनम्
प्रवृत्तानां निवृत्तानां भेदतो द्विविधं द्विजाः ३२
प्रवृत्तानां पीठपूजां सर्वपूजां समाचरेत्

अभिषेकान्ते नैवेद्यं शाल्यन्नेन समाचरेत्
पूजान्ते स्थापयेल्लिंगं पुटे शुद्धे पृथग्गृहे ३४
करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत्
निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिंगमेव विशिष्यते ३५
विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद्विभूतिं च निवेदयेत्
पूजां कृत्वा तथा लिंगं शिरसाधारयेत्सदा ३६
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
शिवनैवेद्यवर्णनोनामद्वाविंशोऽध्यायः २२

अध्याय २३

ऋषय ऊचुः
सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोस्तु ते
तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् १
तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाम माहात्म्यमुत्तमम्
त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानंदयचेतसम् २
सूत उवाच
साधुपृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकम्
भवंतो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः ३
येषां चैव शिवः साक्षाद्दैवतं परमं शुभम्
सदा शिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा ४
ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम्
उद्धृतञ्च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते ५
मुखे यस्य शिवनाम सदाशिवशिवेति च
पापानि न स्पृशंत्येव खदिरांगारंकयथा ६
श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुखं व्याहरते यदा

तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ७
तन्मुखञ्च तथा यो वै पश्यतिप्रीतिमान्नरः
तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम् ८
यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजा
तस्य दर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलंलभेत् ९
शिवनामविभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च
एतत्त्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम् १०
एतत्त्रयं शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः
तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम् ११
तद्दर्शनं यथा वेणी नोभयोरंतरं मनाक्
एवं योनविजानाति सपापिष्ठो न संशयः १२
विभूतिर्यस्य नो भाले नांगे रुद्राक्षधारणम्
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा १३
शैवं नाम यथा गंगा विभूतिर्यमुना मता
रुद्राक्षं विधिना प्रोक्ता सर्वपापाविनाशिनी १४
शरीरे च त्रयं यस्य तत्फलं चैकतः स्थितम्
एकतो वेणिकायाश्च स्नानजंतुफलं बुधैः १५
तदेवं तुलितं पूर्वं ब्रह्मणाहितकारिणा
समानं चैव तज्ञातं तस्माद्धार्यं सदा बुधैः १६
तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्णवादिभिः सरैः
धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात्पापहारकम् १७
ऋृष्य ऊचुः
ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादित्रितयोद्भवम्
तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत १८
सूत उवाच

ऋषयो हि महाप्राज्ञाः सच्छैवा ज्ञानिनां वराः
तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या शृणुतादरतो द्विजाः १९
सुगूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि
भवत्स्नेहान्मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना २०
कस्तत्त्रितयमाहात्म्यं संजानाति द्विजोत्तमाः
महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्माण्डे सदसत्परम् २१
वच्म्यहं नाम माहात्म्यं यथाभक्ति समासतः
शृणुत प्रीतितो विप्राः सर्वपापहरं परम् २२
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः
भस्मीभवंत्यनायासात्सत्यंसत्यं न संशयः २३
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक
शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा २४
स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यस्स बुधो मतः
शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानव २५
भवंति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने २६
पातकानि विनश्यंति यावंति शिवनामतः
भुवि तावंति पापानि क्रियंते न नरैर्मुने २७
ब्रह्महत्यादिपापानां राशीनप्रमितान्मुने
शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान्नरैः २८
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरंति ये
संसारमूलपापानि तानि नश्यंत्यसंशयम् २९
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ३०
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः

पापदावाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि ३१
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः
संसारदवमध्येपि न शोचंति कदाचन ३२
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ३३
अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर
शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी ३४
यस्या साधारणं शंभुनाम्नि भक्तिरखंडिता
तस्यैव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम ३५
कृत्वाप्यनेकपापानि शिवनामजपादरः
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ३६
भवंति भस्मसाद्वृक्षा दवदग्धा यथा वने
तथा तावंति दग्धानि पापानि शिवनामतः ३७
यो नित्यं भस्मपूतांगः शिवनामजपादरः
संतरत्येव संसारं सघोरमपि शौनक ३८
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून्
न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः ३९
विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवनामजपः परम्
संसारतारणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितः ४०
किं बहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम्
शिवनाम्नो महिमानं सर्वपापापहारिणम् ४१
पापानां हरणे शंभोर्नामः शक्तिर्हि पावनी
शक्नोति पातकं तावत्कर्तुं नापि नरः क्वचित् ४२
शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम्
इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापः पुरामुने ४३

तथा काचिद्द्विजायोषा सौ मुने बहुपापिनी
शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ४४
इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम्
शृणुध्वं भस्ममाहात्म्यं सर्वपावनपावनम् ४५
इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां
साध्यसाधनखंडेशिवनममाहात्म्यवर्णनोनामत्रयोविंशोऽध्यायः २३

अध्याय २४

सूत उवाच
द्विविधं भस्म संप्रोक्तं सर्वमंगलदं परम्
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु १
एकं ज्ञेयं महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम्
महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधं परम् २
तद्भस्म त्रिविधं प्रोक्तं श्रोतं स्मार्तं च लौकिकम्
भस्मैव स्वल्पसंज्ञं हि बहुधा परिकीर्तितम् ३
श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम्
अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौकिकम् ४
धारणं मंत्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुंगवैः
केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मंत्रवर्जितम् ५
आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंभवम्
तदापि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुंड्रस्य महामुने ६
अग्निहोत्रोत्थितं भस्मसंग्राह्यं वा मनीषिभिः
अन्ययज्ञोत्थितं वापि त्रिपुण्ड्रस्य च धारणे ७
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्जाबालोपनिषद्गतेः
सप्तभिधूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ८

वर्णानामाश्रमाणां च मंत्रतो मंत्रतोपि च
त्रिपुंड्रोद्धूलनं प्रोक्तजाबालैरादरेण च ९
भस्मनोद्धूलनं चैव यथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम्
प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति विश्रुतिः १०
शिवेन विष्णुना चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम्
उमादेवी च लक्ष्मींश्च वाचान्याभिश्च नित्यशः ११
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च संस्करैः
अपभ्रंशैर्धृतं भस्मत्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना १२
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये
तेषां नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः १३
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये
तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिस्संसाराज्जन्मकोटिभिः १४
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये
तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि १५
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये
ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णयः १६
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये
तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि १७
महापातकयुक्तानां जंतूनां शर्वविद्विषाम्
त्रिपुंड्रोद्धूलनद्वेषो जायते सुदृढं मुने १८
शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात्त्रियायुषात्मवित्
मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः १९
सितेन भस्मना कुर्य्यात्त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम्
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते २०
सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्

यो सावनादिभूतान्हि लोकानाप्तो मृतो भवेत् २१
अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद्वै षडक्षरम्
त्रिपुंड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत् २२
अदयो वाधमो वापि सर्वपापान्वितोपि वा
उषःपापान्वितो वापि मूर्खो वा पतितोपि वा २३
यस्मिन्देशेव सेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः
सर्वतीर्थैश्च क्रतुभिः सांनिध्यं क्रियते सदा २४
त्रिपुंड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुरासुरैः
पापान्वितोपि शुद्धात्मा किं पुनः श्रद्धया युतः २५
यस्मिन्देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः
गतो यदृच्छयाद्यापि तस्मिस्तीर्थाः समागताः २६
बहुनात्र किमुक्तेन धार्यं भस्म सदा बुधैः
लिंगार्चनं सदा कार्यं जप्यो मंत्रः षडक्षरः २७
ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः
भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम् २८
इति वर्णाश्रमाचारो लुप्तवर्णक्रियोपि च
पापात्सकृत्त्रिपुंड्रस्य धारणात्सोपि मुच्यते २९
ये भस्मधारिणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वंति मानवाः
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ३०
ते नाधीतं गुरोः सर्वं ते न सर्वमनुष्ठितम्
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुंड्रं भस्मना कृतम् ३१
ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वंति ताडनम्
तेषां चंडालतो जन्म ब्रह्मन्नूह्यं विपश्चिता ३२
मानस्तोकेन मंत्रेण मंत्रितं भस्म धारयेत्
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव प्रोक्तेष्वंगेषु भक्तिमान् ३३

वैश्यस्त्रियं बकेनैव शूद्रः पंचाक्षरेण तु
अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत् ३४
पंचब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते
त्रियंबकेन मनुना विधिर्वै ब्रह्मचारिणः ३५
अघोरेणाथ मनुना विपिनस्थविधिः स्मृतः
यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुंड्रादीनि कारयेत् ३६
अतिवर्णाश्रमी नित्यं शिवोहं भावनात्परात्
शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत् ३७
न त्याज्यं सर्ववर्णैश्च भस्मधारणमुत्तमम्
अन्यैरपि यथाजीवैस्सदेति शिवशासनम् ३८
भस्मस्नानेन यावंतः कणाः स्वाण्गे प्रतिष्ठिताः
तावंति शिवलिंगानि तनौ धत्ते हि धारकः ३९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च संकराः
स्त्रियोथ विधवा बालाः प्राप्ताः पाखंडिकास्तथा ४०
ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासी वा व्रती तथा
नार्यो भस्म त्रिपुंड्रांका मुक्ता एव न संशयः ४१
ज्ञानाज्ञानधृतो वापि वह्निदाहसमो यथा
ज्ञानाज्ञानधृतं भस्म पावयेत्सकलं नरम् ४२
नाश्नीयाज्जलमन्नमल्पमपि वा भस्माक्षधृत्या विना
भुक्त्वावाथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा संकरः
एनोभुग्नरकं प्रयाति सत दागायत्रिजापेन तद्वर्णानां तु यतेस्तु
मुख्यप्रणवाजपेन मुक्तंभवेत् ४३
त्रिपुंड्रं ये विनिंदंति निन्दन्ति शिवमेव ते
धारयंति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ४४
धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्

धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ४५
ये निंदंति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरं ये निन्दंति त्रिपुंड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने
ते वै संकरसूकरासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमा जाता एव भवंति पापपरमास्तेनारकाः केवलम् ४६
ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि दिने स्वप्नेपि नो केवलं पश्यंतु श्रुतिरुद्रसूक्तजपतो मुच्येत तेनादृताः
सत्संभाषणतो भवेद्धि नरकं निस्तारवानास्थितं ये भस्मादिविधारणं हि पुरुषं निंदंति मंदा हि ते ४७
न तांत्रिकस्त्वधिकृतो नोद्धूर्वपुंड्रधरो मुने
संतप्तचक्रचिह्नोत्र शिवयज्ञे बहिष्कृतः ४८
तत्रैते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः
ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत् ४९
यच्चंदनैश्चंदनकेपि मिश्रं धार्यं हि भस्मैव त्रिपुंड्रभस्मना
विभूतिभालोपरि किंचनापि धार्यं सदा नो यदि संतिबुद्धयः ५०
स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकावधि धारणीयं भस्म द्विजादिभिरथो विधवाभिरेवम्
तद्वत्सदाश्रमवतां विशदाविभूतिर्धार्यापवर्गफलदा सकलाघहन्त्री ५१
त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम्
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ५२
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोथ वा यतिः
ब्रह्मक्षत्राश्च विट्शूद्रास्तथान्ये पतिताधमाः ५३
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च धृत्वा शुद्धा भवंति च
भस्मनो विधिना सम्यक्पापराशिं विहाय च ५४

भस्मधारी विशेषेण स्त्रीगोहत्यादिपातकैः
वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ५५
परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम्
परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ५६
सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च
गोहिरण्यमहिष्यादितिलकम्बलवाससाम् ५७
अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः
दशवेश्यामतंगीषु वृषलीषु नटीषु च ५८
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च मैथुनम्
मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः ५९
पैशुन्यं कूटवादश्च साक्षिमिथ्याभिलाषिणाम्
एवमादीन्यसंख्यानि पापानि विविधानि च
सद्य एव विनश्यंति त्रिपुंड्रस्य च धारणात् ६०
शिवद्रव्यापहरणं शिवनिंदा च कुत्रचित्
निंदा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ६१
रुद्राक्षं यस्य गात्रेषु ललाटे तु त्रिपंड्रकम्
सचांडालोपि संपूज्यस्सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ६२
यानि तीर्थानि लोकेस्मिन्गंगाद्यास्सरितश्च याः
स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुंड्रकम् ६३
सप्तकोटि महामंत्राः पंचाक्षरपुरस्सराः
तथान्ये कोटिशो मंत्राः शैवकैवल्यहेतवः ६४
अन्ये मंत्राश्च देवानां सर्वसौख्यकरा मुने
ते सर्वे तस्य वश्याः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुंड्रकम् ६५
सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं जनयिष्यताम्
स्ववंशजानां ज्ञातीनामुद्धरेद्यस्त्रिपुंड्रकृत् ६६

इह भुक्त्वा खिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः
जीवितांते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ६७
अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यवपुः शिवम्
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यत्रिदशसेवितम् ६८
विद्याधराणां सर्वेषां गंधर्वाणां महौजसाम्
इंद्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ६९
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पदेषु च
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कन्याशतं रमेत् ७०
तत्र ब्रह्मायुषो मानं भुक्त्वा भोगाननेकशः
विष्णोर्लोके लभेद्भोगं यावद्ब्रह्मशतात्ययः ७१
शिवलोकं ततः प्राप्य लब्ध्वेष्टं काममक्षयम्
शिवसायुज्यमाप्नोति संशयो नात्र जायते ७२
सर्वोपनिषदां सारं समालोक्य मुहुर्मुहुः
इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुंड्रकम् ७३
विभूतिं निंदते यो वै ब्राह्मणः सोन्यजातकः
याति च नरके घोरे यावद्ब्रह्मा चतुर्मुखः ७४
श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने
धृतत्रिपुंड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ७५
जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचि
मंत्रस्नानं हरेत्पापं ज्ञानस्नाने परं पदम् ७६
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्
तत्फलं समवाप्नोति भस्मस्नानकरो नरः ७७
भस्मस्नानं परं तीर्थं गंगास्नानं दिने दिने
भस्मरूपी शिवः साक्षाद्भस्म त्रैलोक्यपावनम् ७८
न तदूनं न तद्ध्यानं न तद्दानं जपो न सः

त्रिपुंड्रेण विनायेन विप्रेण यदनुष्ठितम् ७९
वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा
मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ८०
एवं त्रिपुंड्रं यः कुर्य्यान्नित्यं नियतमानसः
शिवभक्तः सविज्ञेयो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ८१
यस्यांगेनैव रुद्राक्ष एकोपि बहुपुण्यदः
तस्य जन्मनिरर्थं स्यात्त्रिपुंड्ररहितो यदि ८२
एवं त्रिपुंड्रमाहात्म्यं समासात्कथितं मया
रहस्यं सर्वजंतूनां गोपनीयमिदं त्वया ८३
तिस्रो रेखा भवंत्येव स्थानेषु मुनिपुंगवाः
ललाटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषु बुधैर्मुने ८४
भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदंतो भवेद्भ्रुवोः
तावत्प्रमाणं संधार्यं ललाटे च त्रिपुंड्रकम् ८५
मध्यमानामिकांगुल्या मध्ये तु प्रतिलोमतः
अंगुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुंड्राख्या भिधीयते ८६
मध्येंगुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्नतः
त्रिपुण्ड्रधारयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ८७
तिसृणामपि रेखानां प्रत्येकं नवदेवताः
सर्वत्रांगेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु ८८
अकारो गार्हपत्याग्निर्भूधर्मश्च रजोगुणः
ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च ८९
महदेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवता
विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः ९०
उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्त्वं यजुस्तथा
मध्यंदिनं च सवनमिच्छाशक्त्यंतरात्मकौ ९१

महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ९२
मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमोदिवौ
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा ९३
शिवश्चैव च रेखायास्तृतियायाश्च देवता
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणौ ९४
एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्भक्त्या स्थानदेवताः
त्रिपुंड्रं धारयेच्छुद्धो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ९५
इत्युक्ताः स्थानदेवाश्च सर्वांगेषु मुनीश्वरः
तेषां संबंधिनो भक्त्या स्थानानि शृणु सांप्रतम् ९६
द्वात्रिंशत्स्थानके वार्द्धषोडशस्थानकेपि च
अष्टस्थाने तथा चैव पंचस्थानेपि नान्यसेत् ९७
उत्तमांगे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा
नासावक्त्रगलेष्वेवं हस्तद्वय अतः परम् ९८
कूर्परे मणिबंधे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः
नाभौ मुष्कद्वये चैवमूर्वोर्गुल्फे च जानुनि ९९
जंघाद्वयेपदद्वन्द्वे द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् १००ब्
अग्न्यब्भूवायुदिग्देशदिक्पालान्वसुभिः सह १००
धरा ध्रुवश्च सोमश्च अपश्चेवानिलोनलः १०१ब्
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः १०१
एतेषां नाममात्रेण त्रिपुंड्रं धारयेद्बुधाः १०२ब्
कुर्याद्वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः १०२
शीर्षके च ललाटेच कंठे चांसद्वये भुजे १०३ब्
कूर्परे मणिबंधे च हृदये नाभिपार्श्वके १०३
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाय यजेत्तत्राश्विदैवते १०४ब्

शिवशक्तिं तथा रुद्रमीशं नारदमेव च १०४
वामादिनवशक्तीश्च एताः षोडशदेवताः १०५ब्
नासत्यो दस्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ १०५
अथवा मूर्द्धनि केशे च कर्मयोर्वदने तथा १०६ब्
बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा १०६
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश १०७ब्
शिवश्चन्द्रश्च रुद्रः को विघ्नेशो विष्णुरेव वा १०७
श्रीश्चैव हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः १०८ब्
नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्ऋषिकन्यकाः १०८
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः १०९ब्
इत्येव षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते १०९
गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुत्तमम् ११०ब्
अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम् ११०
ब्रह्मा च ऋषयः सप्तदेवताश्च प्रकीर्तिताः १११ब्
इत्येवं तु समुद्दिष्टं भस्मविद्भिर्मुनीश्वराः १११
अथ वा मस्तकं बाहूहृदयं नाभिरेव च ११२ब्
पंचस्थानान्यमून्याहुर्धारणे भस्मविज्ञनाः ११२
यथासंभवनं कुर्य्याद्देशकालाद्यपेक्षया ११३ब्
उद्धूलनेप्यशक्तिश्चेत्त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ११३
त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिवेदजनकं शिवम् ११४ब्
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ११४
ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वापार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम् ११५ब्
बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तु प्रकोष्ठयोः ११५
कुर्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि ११६ब्
भीमायेति ततः पृष्ठे शिरसः पश्चिमे तथा ११६

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां भस्मधारणवर्णनोनाम चतुर्विंशोऽध्यायः २४

अध्याय २५

सूत उवाच
शैनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूपमहापते
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात्कथयाम्यहम् १
शिवप्रियतमो ज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः
दर्शनात्स्पर्शनाज्ञाप्यात्सर्वपापहरः स्मृतः २
पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने
लोकोपकरणार्थाय शिवेन परमात्मना ३
शिव उवाच
शृणु देविमहेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे
कथयामि तवप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ४
दिव्यवर्षसहस्राणि महेशानि पुनः पुरा
तपः प्रकुर्वतस्त्रस्तं मनः संयम्य वै मम ५
स्वतंत्रेण परेशेन लोकोपकृतिकारिणा
लीलया परमेशानि चक्षुरुन्मीलितं मया ६
पुटाभ्यां चारुचक्षुर्भ्यां पतिता जलबिंदवः
तत्राश्रुबिन्दवो जाता वृक्षा रुद्राक्षसंज्ञकाः ७
स्थावरत्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात्
ते दत्ता विष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्य एव च ८
भूमौ गौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान्
मथुरायामयोध्यायां लंकायां मलये तथा ९
सह्याद्रौ च तथा काश्यां दशेष्वन्येषु वा तथा

परानसह्यपापौघभेदनाञ्छ्रुतिनोदनात् १०
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा जाता ममाज्ञया
रुद्राक्षास्ते पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ११
श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णाज्ञेयाः क्रमाद्बुधैः
स्वजातीयं नृभिर्धार्यं रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् १२
वर्णैस्तु तत्फलं धार्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा १३
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं संप्रकीर्त्तितम् १४
अधमं चणमात्रं स्यात्प्रक्रियैषा परोच्यते
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया १५
बदरीफलमात्रं च यत्स्यात्किल महेश्वरि
तथापि फलदं लोके सुखसौभाग्यवर्द्धनम् १६
धात्रीफलसमं यत्स्यात्सर्वारिष्टविनाशनम्
गुंजया सदृशं यत्स्यात्सर्वार्थफलसाधनम् १७
यथा यथा लघुः स्याद्वै तथाधिकफलप्रदम्
एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः १८
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे
तस्माच्च धारणी यो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम् १९
यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षफलदः शुभः
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि २०
समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कंटकैः संयुताः शुभाः
रुद्राक्षाः कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदाः सदा २१
क्रिमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कंटकैर्हीनमेव च
व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान्षड्विवर्जयेत् २२

स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम्
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् २३
रुद्राक्षधारणं प्राप्तं महापातकनाशनम्
रुद्रसंख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः २४
एकादशशतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि २५
शतार्द्धेन युतैः पंचशतैर्वै मुकुटं मतम्
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषो वरः २६
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्त्या तथा पुनः
रुद्राक्षैरुपवीतं व निर्मीयाद्भक्तितत्परः २७
शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्रक्षाणां महेश्वरि
कर्णयोः षट् च षट्चैव वामदक्षिणयोस्तथा २८
शतमेकोत्तरं कंठे बाह्वोर्वै रुद्रसंख्यया
कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबंधे तथा पुनः २९
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतैर्नरैः
शेषानुर्वरितान्पंच सम्मितान्धारयेत्कटौ ३०
एतत्संख्या धृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि
तद्रूपं तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं सर्वैर्महेशवत् ३१
एवंभूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासनैर्जनम्
शिवेति व्याहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ३२
शतादिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्तितः
तदभावे प्रकारोन्यः शुभः संप्रोच्यते मया ३३
शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिंशतं वहेत्
पंचाशच्च गले दध्याद्बाह्वोः षोडश षोडश ३४
मणिबंधे द्वादशद्विस्कंधे पंचशतं वहेत्

अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत् ३५
एवं सहस्त्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः
तं नमंति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ३६
एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु मस्तके
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ३७
एकैकं कर्णयोः षट्षड्बाह्वोः षोडश षोडश
करयोरविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ३८
संख्या प्रीतिर्धृता येन सोपि शैवजनः परः
शिववत्पूजनीयो हि वंद्यस्सर्वैरभीक्ष्णशः ३९
शिरसीशानमंत्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेपि च ४०
अघोरबीजमंत्रेण करयोर्धारयेत्सुधीः
पंचदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ४१
पंच ब्रह्मभिरंगश्च त्रिमालां पंचसप्त च
अथवा मूलमंत्रेण सर्वानक्षांस्तुधारयेत् ४२
मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च
श्लेष्मांतकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ४३
वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे
पीतमसकृत् ४४
छिन्नं खंडितं भिन्नं विदीर्ण
ततो वैश्यैर्धार्यं प्रतिदिवसभावश्यकमहो तथा कृष्णं शूद्रैः श्रुति-
गदितमार्गोयमगजे ४४
वर्णी वनी गृहयतीर्नियमेन दध्यादेतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत्
रुद्राक्षधारणमिदं सुकृतैश्च लभ्यं त्यक्त्वेदमेतदखिलान्नरकान्प्रयांति
४५

आदावामलकात्स्वतो लघुतरा रुग्णास्ततः कंटकैः संदष्टाः
कृमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेण हीनास्तथा
धार्या नैव शुभेप्सुभिश्चणकवद्रुद्राक्षमप्यंततो रुद्राक्षोमम लिंगमंगल-
मुमे सूक्ष्मं प्रशस्तं सदा ४६
सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ४७
दिवा बिभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ विभ्रद्दिवाकृतैः
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ४८
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयांति न ४९
रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये
पंचाक्षरं ये हि जपंति मंत्रं पूज्या भवद्भिः खलु ते हि साधवः ५०
यस्याण्गे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके
मुखे पंचाक्षरं नास्ति तमानय यमालयम् ५१
ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः
ते पूज्याः सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन ५२
एवमाज्ञापयामास कालोपि निजकिण्करान्
तथेति मत्त्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः ५३
अत एव महादेवि रुद्राक्षोत्यघनाशनः
तद्धरो मत्प्रियः शुद्धोऽत्यघवानपि पार्वति ५४
हस्ते बाहौ तथा मूर्ध्नि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः
अवध्यः सर्वभूतानां रुद्ररूपी चरेद्भुवि ५५
सुरासुराणां सर्वेषां वंदनीयः सदा स वै
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः ५६
ध्यानज्ञानावमुक्तोपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ५७
रुद्राक्षेण जपन्मन्त्रं पुण्यं कोटिगुणं भवेत्
दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ५८
यावत्कालं हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत्स वै
तावत्कालं स्वल्पमृत्युर्न तं देवि विबाधते ५९
त्रिपुंड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाविलसांगकम्
मृत्युंजयं जपंतं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत् ६०
पंचदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा
सर्वमन्त्राञ्जपेद्भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ६१
विष्णवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा ६२
रुद्राक्षा विविधाः प्रोक्तास्तेषां भेदान्वदाम्यहम्
शृणु पार्वति सद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ६३
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ६४
यत्र संपूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि
नश्यंत्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवंति हि ६५
द्विवक्त्रो देवदेवेशस्सर्वकामफलप्रदः
विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधं नाशयेद्द्रुतम् ६६
त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात्साधनदस्सदा
तत्प्रभावाद्भवेयुर्वै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ६७
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति
दर्शनात्स्पर्शनात्सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः ६८
पंचवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामतः प्रभुः
सर्वमुक्तिप्रदश्चैव सर्वकामफलप्रदः ६९

अगम्यागमनं पापमभक्ष्यस्य च भक्षणम्
इत्यादिसर्वपापानि पंचवक्त्रो व्यपोहति ७०
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तुधारणाद्दक्षिणे भुजे
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ७१
सप्तवक्त्रो महेशानि ह्यनंगो नाम नामतः
धारणात्तस्य देवेशिदरिद्रोपीश्वरो भवेत् ७२
रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्च वसुमूर्तिश्च भैरवः
धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत् ७३
भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः
दुर्गा वात दधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी ७४
तं धारयेद्वामहस्ते रुद्राक्षं भक्तितत्परः
सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः ७५
दशवक्त्रो महेशानि स्वयं देवो जनार्दनः
धारणात्तस्य देवेशि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ७६
एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि
स रुद्रो धारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ७७
द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत्केशदेशके
आदित्याश्चैव ते सर्वेद्वादशैव स्थितास्तथा ७८
त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः
सर्वान्कामानवाप्नोति सौभाग्यं मंगलंलभेत् ७९
चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः
धारयेन्मूर्ध्नि तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति ८०
इति रुद्राक्षभेदा हि प्रोक्ता वै मुखभेदतः
तत्तन्मंत्राञ्छृणु प्रीत्या क्रमाच्छैल्लेश्वरात्मजे ८१
ओं ह्रीं नमः १ ओं नमः २ ओं क्लीं नमः ३ ओं ह्रीं नमः ४ ओं ह्रीं

नमः ५ ओं ह्रीं हुं नमः ६ ओं हुंनमः ७ ओं हुं नमः ८ ओं ह्रीं हुं नमः
९ ओं ह्रीं नमः नमः १० ओं ह्रीं हुं नमः ११ ओं क्रौं क्षौं रौं नमः १२
ओं ह्रीं नमः १३ ओं नम १४
भक्तिश्रद्धा युतश्चैव सर्वकामार्थसिद्धये
रुद्राक्षान्धारयेन्मंत्रैर्देवनालस्य वर्जितः ८२
विना मंत्रेण हो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ८३
रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः
डाकिनीशाकिनी चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः ८४
कृत्रिमं चैव यत्किंचिदभिचारादिकं च यत्
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शंकितविग्रहम् ८५
रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति
देवीगणपतिस्सूर्यः सुराश्चान्येपि पार्वति ८६
एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि
सम्यग्धार्यास्समंत्राश्च भक्त्याधर्मविवृद्धये ८७
इत्युक्तं गिरिजाग्रे हि शिवेन परमात्मना
भस्मरूद्राक्षमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ८८
शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ
तद्धारणप्रभावद्धि भुक्तिर्मुक्तिर्न संशयः ८९
भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तस्स उच्यते
पंचाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ९०
विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया
पूजितोपि महादेवो नाभीष्टफलदायकः ९१
तत्सर्वं च समाख्यातं यत्पृष्टं हि मुनीश्वर
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ९२

एतद्यः शृणुयान्नित्यं माहात्म्यपरमं शुभम्
रुद्राक्षभस्मनोर्भक्त्यासर्वान्कामानवाप्नुयात् ६३
इह सर्वसुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसंयुतः
लभेत्परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो भवेत् ६४
विद्येश्वरसंहितेयं कथिता वो मुनीश्वराः
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं मुक्तिदा शिवशासनात् ६५
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां
साध्यसाधनखण्डे रुद्राक्षमहात्म्यवर्णनोनाम पञ्चविंशोऽध्यायः २५
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमा विद्येश्वरसंहिता समाप्ता

Credits
Source: *Siva-Purana, Book 1*, (Bombay: Venkateshvara Steam Press, 1920).
Data Entry and Proofing by Jun Takashima et al.
File conversion using Vedapad software by Ralph Bunker.
Formatted for Maharishi University of Management Vedic Literature Collection.

अथ शिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहिता प्रारभ्यते
श्रीगणेशाय नमः
श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम् ।
मायाश्रयम्विगतमायमचिंत्यरूपम्
बोधस्वरूपममलं हि शिवन्नमामि १
वन्दे शिवन्तम्प्रकृतेरनादिम्प्रशान्तमेकम्पुरुषोत्तमं हि
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः २
वन्देतरस्थं निजगूढरूपं शिवंस्वतस्स्त्रष्टुमिदम्विचष्टे
जगन्ति नित्यम्परितो भ्रमंति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम् ३
व्यास उवाच
जगतः पितरं शम्भुञ्जगतो मातरं शिवाम्
तत्पुत्रञ्च गणाधीशन्नत्वैतद्वर्णयामहे ४
एकदा मुनयस्सर्वे नैमिषारण्य वासिनः
पप्रच्छुर्वरया भक्त्या सूतन्ते शौनकादयः ५
ऋषय ऊचुः
विद्येश्वरसंहितायाः श्रुता सा सत्कथा शुभा
साध्यसाधनखंडा ख्यारम्याद्या भक्तवत्सला ६
सूत सूत महाभाग चिरञ्जीव सुखीभव
यच्छ्रावयसि नस्तात शांकरीं परमां कथाम् ७
पिबन्तस्त्वन्मुखाम्भोजच्युतं ज्ञानामृतम्वयम्
अवितृप्ताः पुनः किंचित्प्रष्टुमिच्छामहेऽनघ ८
व्यासप्रसादात्सर्वज्ञो प्राप्तोऽसि कृतकृत्यताम्
नाज्ञातम्विद्यते किंचिद्भूतं भव्यं भवच्च यत् ९

गुरोर्व्यासस्य सद्भक्त्या समासाद्य कृपां पराम्
सर्वं ज्ञातं विशेषेण सर्वं सार्थं कृतं जनुः १०
इदानीं कथय प्राज्ञ शिवरूपमनुत्तमम्
दिव्यानि वै चरित्राणि शिवयोरप्यशेषतः ११
अगुणोगुणतां याति कथं लोके महेश्वरः
शिवतत्त्वं वयं सर्वे न जानीमो विचारतः १२
सृष्टेः पूर्वं कथं शंभुस्स्वरूपेणावतिष्ठते
सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्त्तते प्रभुः १३
तदन्ते च कथन्देवस्स तिष्ठति महेश्वरः
कथम्प्रसन्नतां याति शंकरो लोकशंकरः १४
स प्रसन्नोमहेशानः किं प्रयच्छति सत्फलम्
स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च तत्सर्वं कथयस्व नः १५
सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुशुश्रुम
भक्तप्रयासं स महान्न पश्यति दयापरः १६
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाश्शिवांगजाः
महेशस्तत्र पूर्णांशस्स्वयमेव शिवोऽपरः १७
तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः
उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा प्रभो १८
तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथालीलाः परा अपि
एतत्सर्वं तदन्यच्च कथनीयं त्वयाऽनघ १९
व्यास उवाच
इति पृष्टस्तदा तैस्तु सूतो हर्षसमन्वितः
स्मृत्वा शंभुपदां भोजम्प्रत्युवाच मुनीश्वरान् २०
सूत उवाच
सम्यक्पृष्टं भवद्भिश्च धन्या यूयं मुनीश्वराः

सदाशिवकथायां वो यज्ञाता नैष्ठिकी मतिः २१
सदाशिवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृञ्जाह्नवीसलिलं यथा २२
शंभोर्गुणानुवादात्कोविरज्येत पुमान्द्विजाः
विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात्सदा २३
गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि
मनःश्रोत्राभिरामश्च यत्तस्सर्वार्थदस्स वै २४
कथयामि यथाबुद्धि भवत्प्रश्नानुसारतः
शिवलीलां प्रयत्नेन द्विजास्तां शृणुतादरात् २५
भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तत्तथा नारदेन वै
पृष्टं पित्रे प्रेरितेन हरिणा शिवरूपिणा २६
ब्रह्मा श्रुत्वा सुतवचश्शिवभक्तः प्रसन्नधीः
जगौ शिवयशः प्रीत्या हर्षयन्मुनिसत्तमम् २७
व्यास
सूतोक्तमिति तद्वाक्यमाकर्ण्य द्विजसत्तमाः
पप्रच्छुस्तत्सुसंवादं कुतूहलसमन्विताः २८
ऋषय ऊचुः
सूत सूत महाभाग शैवोत्तम महामते
श्रुत्वा तव वचो रम्यं चेतो नस्सकुतूहलम् २९
कदा बभूव सुखकृद्विधिनारदयोर्महान्
संवादो यत्र गिरिशसुलीला भवमोचिनी ३०
विधिनारदसंवादपूर्वकं शांकरं यशः
ब्रूहि नस्तात तत्प्रीत्या तत्तत्प्रश्नानुसारतः ३१
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्
सूतः प्रोवाच सुप्रीतस्तत्संवादानुसारतः ३२

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने मुनिप्रश्नवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः १
सूत उवाच
एवस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोर्थंमन आदधे १
हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना
यत्समी पेसुरनदी सदा वहति वेगतः २
तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः
तपोर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ३
तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः
बध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ४
चक्रे मुनिस्समाधिं तमहम्ब्रह्मेति यत्र ह
विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ५
इत्थं तपति तस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे
चकंपेऽथ शुनासीरो मनस्संतापविह्वलः ६
मनसीति विचिंत्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति
तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः ७
सस्मार स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः
आजगाम द्रुतं कामस्समधीर्महिषीसुतः ८
अथागतं स्मरं दृष्ट्वा संबोध्य सुरराट् प्रभुः
उवाच तं प्रपश्याशु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः ९
इन्द्र उवाच
मित्रवर्य्य महावीर सर्वदा हितकारक
शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना १०
त्वद्बलान्मे बहूनाञ्च तपोगर्वो विनाशितः

मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहतस्सदा ११
हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः
मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासंयमवान्दृढः १२
याचेन्न विधितो राज्यं स ममेति विशंकितः
अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर १३
इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामस्समधु प्रियः
जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वञ्चकार ह १४
रचयामास तत्राशु स्वकलास्सकला अपि
वसंतोपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात् १५
न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः
भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह १६
शृणुतादरतस्तत्र कारणं शौनकादयः
ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि १७
अत्रैव शम्भुनाऽकारि सुतपश्च स्मरारिणा
अत्रैव दग्धस्ते नाशु कामो मुनितपोपहः १८
कामजीवनहेतोर्हि रत्या संप्रार्थितैस्सुरैः
सम्प्रार्थित उवाचेदं शंकरो लोकशंकरः १९
कंचित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः
परंत्विह स्मरोपायश्चरिष्यति न कश्चन २०
इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमरास्सदा
कामबाणप्रभावोत्र न च लिष्यत्यसंशयम् २१
इति शंभूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा
नारदे स जगामाशु दिवमिन्द्रसमीपतः २२
आचख्यौ सर्ववृत्तांतं प्रभावं च मुनेः स्मरः
तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं स मधुप्रियः २३

विस्मितोभूत्सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम्
तद्वृत्तां तानभिज्ञो हि मोहितश्शिवमायया २४
दुर्ज्ञेया शांभवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह
भक्तं विनार्पितात्मानं तया संमोह्यते जगत् २५
नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह
पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः २६
कामाज्ञयं निजं मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः
वृथैव विगतज्ञानश्शिवमायाविमोहितः २७
धन्या धन्या महामाया शांभवी मुनिसत्तमाः
तद्गतिं न हि पश्यंति विष्णुब्रह्मादयोपि हि २८
तया संमोहितोतीव नारदो मुनिसत्तमः
कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुंमदी २९
रुद्रं नत्वाब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तङ्गर्ववान्मुनिः
मत्वात्मानं महात्मानं स्वप्रभुञ्चस्मरञ्जयम् ३०
तच्छ्रुत्वाशंकरः प्राह नारदं भक्तवत्सलः
स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ३१
रुद्र उवाच
हे तातनारद प्राज्ञधन्यस्त्वं शृणु मद्वचः
वाच्यमेवं नकुत्रापि हरेरग्रेविशेषतः ३२
पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान्
गोप्यंगोप्यं सर्वथाहि नैववाच्यं कदाचन ३३
शास्म्यहं त्वांविशेषेण मम प्रियतमोभवान्
विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तो तीवमेऽनुगः ३४
शास्तिस्मेत्थञ्च बहुशो रुद्रस्सूतिकरः प्रभुः
नारदोनहितं मेनेशिवमायाविमोहितः ३५

प्रबलाभाविनी कर्मगतिर्ज्ञेयाविचक्षणैः
ननिवार्याजनैः कैश्चिदपीच्छासैवशांकरी ३६
ततस्स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगामह
विधिं नत्वाऽब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात् ३७
तदाकरार्य विधिस्सोथ स्मृत्वा शम्भुपदाम्बुजम्
ज्ञात्वा सर्वं कारणं तन्निषिषेध सुतं तदा ३८
मेने हितन्न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः
शिवमायामो हि तश्च रूढचित्तमदांकुरः ३९
शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा
तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तंत्यांत स्थितं यतः ४०
नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः
मदांकुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः ४१
आगच्छंतं मुनिन्दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात्
उत्थित्वाग्रे गतोऽरं तं शिश्लेषज्ञातहेतुकः ४२
स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्
हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ४३
विष्णुरुवाच
कुत आगम्यते तात किमर्थमिह चागतः
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽहं तु तवागमात् ४४
विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः
स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः ४५
श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुस्स मदं कारणं ततः
ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादाम्बुजं हृदि ४६
तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराड् हरिः
सांजलिर्विसुधीर्नम्रमस्तकः परमेश्वरम् ४७

विष्णुरुवाच
देवदेव महादेव प्रसीद परमेश्वर
धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्व विमोहिनी ४८
इत्यादि स स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः
निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम् ४९
यत्कर्तव्यं शंकरस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः
शिवशासनतः प्राह हृदाथ मुनिसत्तमम् ५०
विष्णुरुवाच
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तपोनिधिरुदारधीः
भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ५१
विकारास्तस्य सद्यो वै भवंत्यखिलदुःखदाः
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान्सदा ५२
कथं कामविकारीस्या जन्मनाविकृतस्सुधीः
इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ५३
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम्
नारद उवाच
किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि ५४
इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ५५
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे
सृष्ट्युपाख्याने नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः २

ऋषय ऊचुः
सूतसूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते
अद्भुतेयं कथा तात वर्णिता कृपया हि नः १
मुनौ गते हरिस्तात किं चकार ततः परम्

नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि २
व्यास उवाच
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः ३
सूत उवाच
मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे
शिवेच्छया चकाराशु माया मायाविशारदः ४
मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत्
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनो हरम् ५
स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तु विराजितम्
नरनारीविहाराढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम् ६
तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः
सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः ७
चतुर्दिग्भ्यः समायातैस्संयुतं नृपनन्दनैः
नानावेषैस्सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः ८
एतादृशम्पुरं दृष्ट्वा मोहम्प्राप्तोऽथ नारदः
कौतुकी तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः ९
आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः
उपवेश्यार्चयांचक्रे रत्नसिंहासने वरे १०
अथ राजा स्वतनयां नामतश्श्रीमतीं वराम्
समानीय नारदस्य पादयोस्समपातयत् ११
तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह विस्मितः
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा १२
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृतांजलिः
दुहितेयं मम मुने श्रीमती नाम नामतः १३

प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम्
सा स्वयंवरसंप्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता १४
अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात्
कीदृशं तनयेयं मे वरमाप्स्यति तद्वद १५
इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः
समाभाष्य स राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् १६
सुतेयं तव भूपालसर्वलक्षणलक्षिता
महाभाग्यवती धन्यालक्ष्मीरिव गुणालया १७
सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरिशसदृशो विभुः
अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः १८
इत्युक्त्वा नृपमामंत्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः
बभूव कामविवशश्शिवमाया विमोहितः १९
चित्ते विचिन्त्यसमुनिराप्नुयांकथमेनकाम्
स्वयंवरे नृपालानामेकं मांवृणुयात्कथम् २०
सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा
तद्दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशानात्र संशयः २१
विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः
विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मर विह्वलः २२
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह
रहसित्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तान्तमशेषतः २३
तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तहि
ब्रूहीत्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम् २४
नारद उवाच
त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिस्स वृषतत्परः
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमतीवरवर्णिनी २५

जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येप्यति सुन्दरी
परिणेतुमहं विष्णोतामिच्छाम्यद्यमाचिरम् २६
स्वयंवरं चकरासौ भूपतिस्तनयेच्छया
चतुर्दिग्भ्यसमायाता राजपुत्रास्सहस्रशः २७
यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम्
त्वद्रूपं सा विना कंठे जयमालां न धास्यति २८
स्वरूपं देहि मे नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव
वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा २९
सूत उवाच
वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदनः
शांकरीं प्रभुतां बुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ३०
विष्णुरुवाच
स्वेष्टदेशं मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव
भिषग्वरो यथार्त्तस्य यतः प्रियतरोऽसिमे ३१
इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरे
स्वरूपमनुगृह्यास्य तिरोधानं जगाम सः ३२
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः
मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः ३३
अथ तत्र गतः शीघ्रन्नारदो मुनिसत्तमः
चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैस्समाकुलम् ३४
स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता
शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभापरा ३५
तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत्
स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा ३६
मां वरिष्यति नान्यं सा विष्णुरूपधरन्ध्रुवम्

आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः ३७
पूर्वरूपं मुनिं सर्वे ददृशुस्तत्र मानवाः
तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादयो द्विजाः ३८
तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थं समागतौ
विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेदं जज्ञतुः परम् ३९
मूढं मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ
कुरुतस्तत्प्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम् ४०
पश्य नारद रूपं हि विष्णोरिव महोत्तमम्
मुखं तु वानरस्येव विकटं च भयंकरम् ४१
इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः
इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ४२
न शुश्राव यथार्थं तु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः
पर्यैक्षच्छ्रीमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः ४३
एतस्मिन्नंतरे भूपकन्या चांतः पुरात्तु सा
स्त्रीभिस्समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी ४४
मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा
तत्र स्वयम्वरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा ४५
बभ्राम सा सभां सर्वां मालामादाय सुव्रता
वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा ४६
वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा
दृष्टिं निवार्य च ततः प्रस्थिता प्रीतमानसा ४७
न दृष्ट्वा स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनसेप्सितम्
अंतस्सभास्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम् ४८
एतस्मिन्नंतरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः
न दृष्टः कैश्चिदपरैः केवलं सा ददर्श हि ४९

अथ सा तं समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा
अर्पयामास तत्कण्ठे तां मालां वरवर्णिनी ५०
तामादाय ततो विष्णू राजरूपधरः प्रभुः
अंतर्धानमगात्सद्यस्स्वस्थानं प्रययौ किल ५१
सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमतीम्प्रति
मुनिस्तु विह्वलोऽतीव बभूव मदनातुरः ५२
तदा तावूचतुस्सद्यो नारदं स्वरविह्वलम्
विप्ररूपधरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ ५३
गणावूचतुः
हे नारदमुनेत्वं हि वृथामदनमोहितः
तल्लिप्सुस्स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम् ५४
सूत उवाच
इत्याकर्ण्यतयोर्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत्
मुखं ददर्श मुकुरे शिवमायाविमोहितः ५५
स्वमुखं वानरस्येव दृष्ट्वा चुक्रोधसत्वरम्
शापन्ददौ तयोस्तत्र गणयोर्मोहितो मुनिः ५६
युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मणस्य हि
भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती ५७
श्रुत्वा हरगणावित्थं स्वशापं ज्ञानिसत्तमौ
न किंचिदूचतुस्तौ हि मुनिमाज्ञाय मोहितम् ५८
स्वस्थानं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम्
चक्रतुर्मन्यमानौ वै शिवेच्छां सकलां सदा ५९

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने नारदमोहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ३

ऋषय ऊचुः
सूत सूत महाप्राज्ञ वर्णिता ह्यद्भुता कथा
धन्या तु शांभवी माया तदधीनं चराचरम् १
गतयोर्गणयोश्शंभोस्स्वयमात्मेच्छया विभोः
किं चकार मुनिः क्रुद्धो नारदः स्मरविह्वलः २
सूत उवाच
विमोहितो मुनिर्दत्त्वा तयोश्शापं यथोचितम्
जले मुखं निरीक्ष्याथ स्वरूपं गिरिशेच्छया ३
शिवेच्छया न प्रबुद्धः स्मृत्वा हरिकृतच्छलम्
क्रोधं दुर्विषहं कृत्वा विष्णुलोकं जगाम ह ४
उवाच वचनं क्रुद्धस्समिद्ध इव पावकः
दुरुक्तिगर्भितं व्यङ्गं नष्टज्ञानश्शिवेच्छया ५
नारद उवाच
हे हरे त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः
परोत्साहं न सहसे मायावीमलिनाशयः ६
मोहिनीरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा
असुरेभ्योऽपाययस्त्वं वारुणीममृतं न हि ७
चेत्पिबेन्न विषं रुद्रोदयां कृत्वा महेश्वरः
भवेन्नष्टाऽखिला माया तव व्याजरते हरे ८
गतिस्सकपटा तेऽतिप्रिया विष्णोविशेषतः
साधुस्वभावो नभवान्स्वतंत्रः प्रभुणा कृतः ९
कृतं समुचितन्नैव शिवेन परमात्मना
तत्प्रभावबलं ध्यात्वा स्वतंत्रकृतिकारकः १०
त्वद्गतिं सुसमाज्ञाय पश्चात्तापमवाप सः
विप्रं सर्वोपरिप्राह स्वोक्तवेदप्रमाणकृत् ११

तज्ज्ञात्वाहं हरे त्वाद्य शिक्षयिष्यामि तद्बलात्
यथा न कुर्याः कुत्रापीदृशं कर्म कदाचन १२
अद्यापि निर्भयस्त्वं हि संगं नापस्तरस्विना
इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः १३
इत्थमुक्त्वा हरिं सोथ मुनिर्मायाविमोहितः
शशापक्रोधनिर्विण्णो ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन् १४
स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो मामकार्षीर्विमोहकः
अन्वकार्षीस्स्वरूपेण येन कापट्यकार्यकृत् १५
तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भव तद्दुःखभुग्घरे
यन्मुखं कृतवान्मेत्वं ते भवंतु सहायिनः १६
त्वं स्त्रीवियोगजं दुःखं लभस्व परदुःखदः
मनुष्यगतिकः प्रायो भवाज्ञानविमोहितः १७
इति शप्त्वा हरिं मोहान्नारदोऽज्ञानमोहितः
विष्णुर्जग्राह तं शापं प्रशंसञ्शांभवीमजाम् १८
अथ शंभुर्महालीलो निश्चकर्ष विमोहिनीं
स्वमायां मोहितो ज्ञानी नारदोप्यभवद्यया १९
अंतर्हितायां मायायां पूर्ववन्मतिमानभूत्
नारदो विस्मितमनाः प्राप्तबोधो निराकुलः २०
पश्चात्तापमवाप्याति निनिन्द स्वं मुहुर्मुहुः
प्रशशंस तदा मायां शांभवीं ज्ञानिमोहिनीम् २१
अथ ज्ञात्वा मुनिस्सर्वं मायाविभ्रममात्मनः
अपतत्पादयोर्विष्णोर्नारदो वैष्णवोत्तमः २२
हर्य्युपस्थापितः प्राह वचनं नष्टदुर्मतिः
मया दुरुक्तयः प्रोक्ता मोहितेन कुबुद्धिना २३
दत्तश्शापोऽपि तेनाथ वितथं कुरु तं प्रभो

महत्पापमकार्षं हि यास्यामि निरयं ध्रुवम् २४
कमुपायं हरे कुर्यां दासोऽहं ते तमादिश
येन पापकुलं नश्येन्निरयो न भवेन्मम २५
इत्युक्त्वा स पुनर्विष्णोः पादयोर्मुनिसत्तमः
पपात सुमतिर्भक्त्या पश्चात्तापमुपागतः २६
अथ विष्णुस्तमुत्थाप्य बभाषे सूनृतं वचः
विष्णुरुवाच
न खेदं कुरु मे भक्त वरस्त्वं नात्र संशयः २७
शृणु तात प्रवक्ष्यामि सुहितं तव निश्चयात्
निरयस्ते न भविता शिवश्शं ते विधास्यति २८
यदकार्षीश्शिववचो वितथं मदमोहितः
स दत्तवानीदृशं ते फलं कर्म फलप्रदः २९
शिवेच्छाऽखिलं जातं कुर्वित्थं निश्चितां मतिम्
गर्वापहर्ता स स्वामी शंकरः परमेश्वरः ३०
परं ब्रह्म परात्मा स सच्चिदानंदबोधनः
निर्गुणो निर्विकारो च रजस्सत्वतमः पर ३१
स एवमादाय मायां स्वां त्रिधा भवति रूपतः
ब्रह्मविष्णुमहेशात्मानिर्गुणोऽनिर्गुणोऽपि सः ३२
निर्गुणत्वे शिवाह्वो हि परमात्मा महेश्वरः
परं ब्रह्माव्ययोऽनंतो महादेवेति गीयते ३३
तत्सेवया विधिस्स्रष्टा पालको जगतामहम्
स्वयं सर्वस्य संहारी रुद्ररूपेण सर्वदा ३४
साक्षी शिवस्वरूपेण मायाभिन्नस्स निर्गुणः
स्वेच्छाचारी संविहारी भक्तानुग्रहकारकः ३५
शृणु त्वं नारद मुने सदुपायं सुखप्रदम्

सर्वपापापहर्त्तारं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ३६
त्युक्त्वा स्त्वसंशयं सर्वं शंकरसद्यशः
शतनामशिवस्तोत्रं सदानन्यमतिर्जप ३७
यज्ञपित्वा द्रुतं सर्वं तव पापं विनश्यति
इत्युक्त्वा नारदं विष्णुः पुनः प्राह दयान्वितः ३८
मुने न कुरु शोकं त्वं त्वया किंचित्कृतं नहि
स्वेच्छया कृतवान्शंभुरिदं सर्वं न संशयः ३९
अहार्षित्त्वन्मतिं दिव्यां काम क्लेशमदात्स ते
त्वन्मुखाद्दापयांचक्रे शापं मे स महेश्वरः ४०
इत्थं स्वचरितं लोके प्रकटीकृतवान् स्वयम्
मृत्युंजयः कालकालो भक्तोद्धारपरायणः ४१
न मे शिवसमानोस्ति प्रियः स्वामी सुखप्रदः
सर्वशक्तिप्रदो मेऽस्ति स एव परमेश्वरः ४२
तस्योपास्यां कुरु मुने तमेव सततं भज
तद्यशः शृणु गाय त्वं कुरु नित्यं तदर्चनम् ४३
कायेन मनसा वाचा यश्शंकरमुपैति भो
स पण्डित इति ज्ञेयस्स जीवन्मुक्त उच्यते ४४
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः
भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः ४५
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि तान्यतः
शिवार्चनैकनश्यानि नान्य नश्यानि सर्वथा ४६
स वैदिकस्स पुण्यात्मा स धन्यस्स बुधो मुने
यस्सदा कायवाक्चित्तैश्शरणं याति शंकरम् ४७
भवंति विविधा धर्मा येषां सद्यः फलोन्मुखाः
तेषां भवति विश्वासस्त्रिपुरांतकपूजने ४८

पातकानि विनश्यंति यावंति शिवपूजया
भुवि तावंति पापानि न संत्येव महामुने ४९
ब्रह्महत्यादिपापानां राशयोप्यमिता मुने
शिवस्मृत्या विनश्यंति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ५०
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरंति ते
संसारमूलपापानि तस्य नश्यंत्यसंशयम् ५१
संसारमूलभूतनां पातकानां महामुने
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ५२
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः
पापदावाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि ५३
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुतः
संसारदवमध्यपि न शोचति न संशयः ५४
न भक्तिश्शंकरे पुंसां रागद्वेषरतात्मनाम्
तद्विधानां हि सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ५५
अनंतजन्मभिर्येन तपस्तप्तं भविष्यति
तस्यैवभक्तिर्भवति भवानी प्राणवल्लभे ५६
जातापि शंकरे भक्तिरन्यसाधारणी वृथा
परंत्वव्यभिचारेणशिवभक्तिरपेक्षिता ५७
यस्यासाधारणीशंभौ भक्तिरव्यभिचारिणी
तस्यैवमोक्षस्सुलभोनास्येतिन्य मतिर्मम ५८
कृत्वाप्यनंतपापानियदि भक्तिर्महेश्वरे
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ५९
भवंति भस्मसाद्वृक्षादवदग्धा यथावने
तथा भवन्ति दग्धानि शांकराणामघान्यपि ६०
योनित्यं भस्मपूतांगो शिवपूजोन्मुखो भवेत्

स तरत्येव संसारमपारमतिदारुणम् ६१
ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून्
लिप्यते नरः पापैर्विरूपाक्षस्य सेवकः ६२
विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवस्यैवार्चनम्परम्
संसारनाशनोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम् ६३
अद्यप्रभृति यत्नेन सावधानो यथाविधि
साम्बं सदाशिवं भक्त्या भज नित्यं महेश्वरम् ६४
आपादमस्तकं सम्यक् भस्मनोद्धूल्य सादरम्
सर्वश्रुतिश्रुतं शैवम्मंत्रञ्जप षडक्षरम् ६५
सर्वाङ्गेषु प्रयत्नेन रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान्
धारयस्वातिसद्भक्त्या समन्त्रम्विधिपूर्वकम् ६६
शृणु शैवीं कथां नित्यं वद शैवीं कथां सदा
पूजयस्वातियत्नेन शिवभक्तान्पुनः पुनः ६७
अप्रमादेन सततं शिवैकशरणो भव
शिवार्चनेन सततमानन्दः प्राप्यते यतः ६८
उरस्याधाय विशदे शिवस्य चरणाम्बुजौ
शिवतीर्थानि विचर प्रथमं मुनिसत्तम ६९
पश्यन्माहात्म्यमतुलं शंकरस्य परात्मनः
गच्छानन्दवनं पश्चाच्छंभुप्रियतमं मुने ७०
तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा पूजनं कुरु भक्तितः
नत्वा स्तुत्वा विशेषेण निर्विकल्पो भविष्यसि ७१
ततश्च भवता नूनं विधेयं गमनं मुने
ब्रह्मलोके स्वकामार्थं शासनान्मम भक्तितः ७२
नत्वा स्तुत्वा विशेषेण विधिं स्वजनकं मुने
प्रष्टव्यं शिवमाहात्म्यं बहुशः प्रीतचेतसा ७३

स शैवप्रवरो ब्रह्मा माहात्म्यं शंकरस्य ते
श्रावयिष्यति सुप्रीत्या शतनामस्तवं च हि ७४
अद्यतस्त्वं भव मुने शैवश्शिवपरायणः
मुक्तिं भागी विशेषेण शिवस्ते शंविधास्यति ७५
इत्थं विष्णुर्मुनिं प्रीत्या ह्युपदिश्य प्रसन्नधीः
स्मृत्वा नुत्वा शिवं स्तुत्वा ततस्त्वंतरधीयत ७६
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने नारदस्य विष्णूपदेशवर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः ४

सूत उवाच
अंतर्हिते हरौ विप्रा नारदो मुनिसत्तमः
विचचार महीं पश्यञ्छिवलिंगानि भक्तितः १
पृथिव्या अटनं कृत्वा शिवरूपाण्यनेकशः
ददर्श प्रीतितो विप्रा भुक्तिमुक्तिप्रदानि सः २
अथ तं विचरंतं कौ नारदं दिव्यदर्शनम्
ज्ञात्वा शंभुगणौ तौ तु सुचित्तमुपजग्मतुः ३
शिरसा सुप्रणम्याशु गणावूचतुरादरात्
गृहीत्वा चरणौ तस्य शापोद्धारेच्छया चतौ ४
शिवगणावूचतुः
ब्रह्मपुत्र सुरर्षे हि शृणु प्रीत्यावयोर्वचः
तवापराधकर्तारावावां विप्रौ न वस्तुतः ५
आवां हरगणौ विप्र तवागस्कारिणौ मुने
स्वयम्वरे राजपुत्र्या मायामोहितचेतसा ६
त्वया दत्तश्च नौ शापः परेशप्रेरितेन ह
ज्ञात्वा कुसमयं तत्र मौनमेव हि जीवनम् ७

स्वकर्मणः फलं प्राप्तं कस्यापि न हि दूषणम्
सुप्रसन्नो भव विभो कुर्वनुग्रहमद्यनौ ८
सूत उवाच
वच आकर्ण्य गणयोरिति भक्त्युक्तमादरात्
प्रत्युवाच मुनिः प्रीत्या पश्चात्तापमवाप्य सः ९
नारद उवाच
शृणुतं मे महादेव गणौ मान्यतमौ सताम्
वचनं सुखदं मोहनिर्मुक्तं च यथार्थकम् १०
पुरा मम मतिर्भ्रष्टा सीच्छिवेच्छावशात् ध्रुवम्
सर्वथा मोहमापन्नश्शप्तवान्वां कुशेमुषिः ११
यदुक्तं तत्तथा भावि तथापि शृणुतां गणौ
शापोद्धारमहं वच्मि क्षमेथा मघमद्य मे १२
वीर्यान्मुनिवरस्याप्त्वा राक्षसेशत्वमादिशम्
स्यातां विभवसंयुक्तौ बलिनो सुप्रतापिनौ १३
सर्वब्रह्मांडराजानौ शिवभक्तौ जितेन्द्रियौ
शिवापरतनोर्मृत्यु प्राप्य स्वं पदमाप्स्यथः १४
सूत उवाच
इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नारदस्य महात्मनः
उभौ हरगणौ प्रीतौ स्वं पदं जग्मतुर्मुदा १५
नारदोऽपि परं प्रीतो ध्यायच्छिवमनन्यधीः
विचचार महीं पश्यञ्छिवतीर्थान्यभीक्ष्णशः १६
काशीं प्राप्याथ स मुनिः सर्वोपरि विराजिताम्
शिवप्रियां शंभुसुखप्रदां शम्भुस्वरूपिणीम् १७
दृष्ट्वा काशीं कृताऽर्थोभूत्काशीनाथं ददर्श ह
आनर्च परम प्रीत्या परमानन्दसंयुतः १८

स मुदः सेव्यतां काशीं कृतार्थो मुनिसत्तमः
नमन्संवर्णयन्भक्त्या संस्मरन्प्रेमविह्वलः १९
ब्रह्मलोकं जगामाथ शिवस्मरणसन्मतिः
शिवतत्त्वं विशेषेण ज्ञातुमिच्छुस्स नारदः २०
नत्वा तत्र विधिं भक्त्या स्तुत्वा च विविधैस्तवैः
पप्रच्छ शिवत्तत्वं शिवसंभक्तमानसः २१
नारद उवाच
ब्रह्मन्ब्रह्मस्वरूपज्ञ पितामह जगत्प्रभो
त्वत्प्रसादान्मया सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् २२
भक्तिमार्गं ज्ञानमार्गं तपोमार्गं सुदुस्तरम्
दानमार्गञ्च तीर्थानां मार्गं च श्रुतवाहनम् २३
न ज्ञातं शिवतत्त्वं च पूजाविधिमतः क्रमात्
चरित्रं विविधं तस्य निवेदय मम प्रभो २४
निर्गुणोऽपि शिवस्तात सगुणश्शंकरः कथम्
शिवतत्त्वं न जानामि मोहितश्शिवमायया २५
सृष्टेः पूर्वं कथं शंभुस्स्वरूपेण प्रतिष्ठितः
सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते प्रभुः २६
तदन्ते च कथं देवस्स तिष्ठति महेश्वरः
कथं प्रसन्नतां याति शंकरो लोकशंकरः २७
संतुष्टश्च स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च महेश्वरः
किं फलं यच्छति विधे तत्सर्वं कथयस्व मे २८
सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुसंश्रुतम्
भक्तप्रयासं स महान्न पश्यति दयापरः २९
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाश्शिवांशजाः
महेशस्तत्र पूर्णांशस्स्वयमेव शिवः परः ३०

तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः
उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा विभो ३१
तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि
एतत्सर्वं तथान्यच्च कथनीयंत्वयानघ ३२
तदुत्पत्तिं विवाहं च शिवायास्तुविशेषतः
प्रब्रूहि प्रे प्रजानाथ गुहजन्मतथैव च ३३
बहुभ्यश्च श्रुतं पूर्वं न तृप्तोऽस्मिजगत्प्रभो
अतस्त्वांशरणं प्राप्तः कृपां कुरु ममो परि ३४
इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्यांगजस्य हि
उवाच वचनं तत्र ब्रह्मालोकपितामहः ३५
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने नारदप्रश्नवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ५

ब्रह्मोवाच
भो ब्रह्मन्साधु पृष्टोऽहंत्वया विबुधसत्तम
लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया १
यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत्
तदहं ते प्रवक्ष्यामि शिवतत्त्वमनामयम् २
शिवतत्त्वं मया नैव विष्णुनापि यथार्थतः
ज्ञातञ्च परमं रूपमद्भुतं च परेण न ३
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ४
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम्
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजो विवर्जितम् ५
अदृष्टत्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम्

अव्यक्तगंधरूपं च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ६
इत्थं सत्यं धतमसे सूचीभेद्ये निरंतरे
तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते ७
इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम्
योगिनोंतर्हिताकाशे यत्पश्यंति निरंतरम् ८
अमनोगोचरम्वाचां विषयन्न कदाचन
अनामरूपवर्णं च न च स्थूलं न यत्कृशम् ९
अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम्
न यत्रोपचयः कश्चित्तथा नापचयोऽपि च १०
अभिधत्ते स चकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः
सत्यं ज्ञानमनंतं च परानंदम्परम्महः ११
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति
निर्गुणं योगिगम्यञ्च सर्वव्याप्येककारकम् १२
निर्विकल्पं निरारंभं निर्मायं निरुपद्रवम्
अद्वितीयमनाद्यन्तमविकाशं चिदात्मकम् १३
यस्येत्थं संविकल्पंते संज्ञासंज्ञोक्तितः स्म वै
कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत्किल १४
अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया
सर्वैश्वर्यगुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा १५
सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्वकारिणी
सर्वैकवंद्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः १६
परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणीम्
अद्वितीयमनाद्यंतं सर्वाभासं चिदात्मकम्
अंतर्दधे पराख्यं यद्ब्रह्म सर्वगमव्ययम् १७
अमूर्तं यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिस्सदाशिवः

अर्वाचीनाः पराचीना ईश्वरं तं जगुर्बुधाः १८
शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैरं विहरता तनुः
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टा स्वशरीरानपायिनी १९
प्रधानं प्रकृति तां च मायां गुणवतीं पराम्
बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् २०
सा शक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृतिस्सकलेश्वरी
त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत २१
अस्या अष्टौ भुजाश्चासन्विचित्रवदना शुभा
राकाचन्द्रसहस्रस्य वदने भाश्च नित्यशः २२
नानाभरणसंयुक्ता नानागतिसमन्विता
नानायुधधरा देवी फुल्लपंकजलोचना २३
अचिंत्यतेजसा युक्ता सर्वयोनिस्समुद्यता
एकाकिनी यदा माया संयोगाच्चाप्यनेकिका २४
परः पुमानीश्वरस्स शिवश्शंभुरनीश्वरः
शीर्षे मन्दाकिनीधारी भालचन्द्रस्त्रिलोचनः २५
पंचवक्त्रः प्रसन्नात्मा दशबाहुस्त्रिशूलधृक्
कर्पूरगौरसुसितो भस्मोद्धूलितविग्रहः २६
युगपच्च तया शक्त्या साकं कालस्वरूपिणा
शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा २७
तदेव काशिकेत्येतत्प्रोच्यते क्षेत्रमुत्तमम्
परं निर्वाणसंख्यानं सर्वोपरि विराजितम् २८
ताभ्यां च रमाणाभ्यां च तस्मिन्क्षेत्रे मनोरमे
परमानं दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणी २९
मुने प्रलयकालेपि न तत्क्षेत्रं कदाचन
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः ३०

अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना
क्षेत्रस्यानंदहेतुत्वादविमुक्तमनंतरम् ३१
अथानन्दवने तस्मिञ्छिवयो रममाणयोः
इच्छेत्यभूत्सुरर्षे हि सृज्यः कोप्यपरः किल ३२
यस्मिन्यस्य महाभारमावां स्वस्वैरचारिणौ
निर्वाणधारणं कुर्वः केवलं काशिशायिनौ ३३
सएव सर्वं कुरुतां स एव परिपातु च
स एव संवृणोत्वं ते मदनुग्रहतस्सदा ३४
चेतस्समुद्रमाकुंच्य चिंताकल्लोललोलितम्
सत्त्वरत्नं तमोग्राहं रजोविद्रुमवल्लितम् ३५
यस्य प्रसादात्तिष्ठावस्सुखमानंदकानने
परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बहिश्चिंतातुरे सुखम् ३६
संप्रधार्य्येति स विभुस्तया शक्त्या परेश्वरः
सव्ये व्यापारयांचक्रे दशमेंऽगेसुधासवम् ३७
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुंदरः
शांतस्सत्त्वगुणोद्रिक्तोगांभीर्य्यामितसागरः ३८
तथा च क्षमया युक्तोमुनेऽलब्धोपमोऽभवत्
इन्द्रनीलद्युतिः श्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ३९
सुवर्णकृतिभृच्छ्रेष्ठदुकूलयुगलावृतः
लसत्प्रचंडदोर्दण्डयुगलोह्यपरा जितः ४०
ततस्सपुरुष श्शंभुं प्रणम्य परमेश्वरम्
नामानि कुरु मे स्वामिन्वद कर्म जगाविति ४१
तच्छ्रुत्वा वचनम्प्राह शंकरः प्रहसन्प्रभुः
पुरुषं तं महेशात्तो वाचा मेघगभीरया ४२
शिव उवाच

विष्णिवतिव्यापकत्वात्ते नाम ख्यातं भविष्यति
बहून्यन्यानि नामानि भक्तसौख्यकराणि ह ४३
तपः कुरु दृढो भूत्वा परमं कार्यसाधनम्
इत्युक्त्वा श्वासमार्गेण ददौ च निगमं ततः ४४
ततोऽच्युतश्शिवं नत्वा चकार विपुलं तपः
अंतर्द्धानं गतश्शक्त्या सलोकः परमेश्वरः ४५
दिव्यं द्वादश साहस्रं वर्षं तप्त्वापि चाच्युतः
न प्राप स्वाभिलषितं सर्वदं शंभुदर्शनम् ४६
तत्तत्संशयमापन्नश्चिंतितं हृदि सादरम्
मयाद्य किं प्रकर्त्तव्यमिति विष्णुश्शिवं स्मरन् ४७
एतस्मिन्नंतरे वाणी समुत्पन्ना शिवाच्छुभा
तपः पुनः प्रकर्त्तव्यं संशयस्यापनुत्तये ४८
ततस्तेन च तच्छ्रुत्वा तपस्तप्त सुदारुणम्
बहुकालं तदा ब्रह्मध्यानमार्गपरेण हि ४९
ततस्स पुरुषो विष्णुः प्रबुद्धोः ध्यानमार्गतः
सुप्रीतो विस्मयं प्राप्तः किं यत्तव महा इति ५०
परिश्रमवतस्तस्य विष्णोः स्वाङ्गेभ्य एव च
जलधारा हि संयाता विविधाश्शिवमायया ५१
अभिव्याप्तं च सकलं शून्यं यत्तन्महामुने
ब्रह्मरूपं जलमभूत्स्पर्शनात्पापनाशनम् ५२
तदा श्रांतश्च पुरुषो विष्णुस्तस्मिञ्जले स्वयम्
सुष्वाप परम प्रीतो बहुकालं विमोहितः ५३
नारायणेति नामापि तस्यसीच्छ्रुतिसंमतम्
नान्यत्किंचित्तदा ह्यासीत्प्राकृतं पुरुषं विना ५४
एतस्मिन्नन्तरे काले तत्त्वान्यासन्महात्मनः

तत्प्रकारं शृणु प्राज्ञ गदतो मे महामते ५५
प्रकृतेश्च महानासीन्महतश्च गुणास्त्रयः
अहंकारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः ५६
तन्मात्राश्च ततो जातः पञ्चभूतानि वै ततः
तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च ५७
तत्त्वानामिति संख्यानमुक्तं ते ऋषिसत्तम
जडात्मकञ्च तत्सर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना ५८
तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसंख्यकम्
शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके ५९

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सृष्टिव्याख्याने
प्रथमखंडे विष्णूत्पत्तिवर्णनो नाम षष्ठोऽध्यायः ६

ब्राह्मोवाच
सुप्ते नारायणे देवे नाभौ पंकजमुत्तमम्
आविर्बभूव सहसा वृहवै सकरेच्छया १
अनंतयष्टिकायुक्तं कर्णिकारसमप्रभम्
अनंतयोजनायाममनंतोच्छ्रायसंयुतम् २
कोटिसूर्यप्रतीकाशं सुंदर वचसयुतम्
अत्यद्भुतं महारम्यं दर्शनीयमनुत्तमम् ३
कृत्वा यत्नं पूर्ववत्स शंकरः परमेश्वरः
दक्षिणांगान्निजान्मां कैसाशीश्शंभुरजीजनत् ४
स मायामोहितं कृत्वा मां महेशो द्रुतं मुने
तन्नाभिपंकजादाविर्भा वयामास लीलया ५
एपमाद्मात्ततो जज्ञे पुत्रोऽहं हेमगर्भकः
चतुर्मुखो रक्तवर्णस्त्रिपुंड्रांकितमस्तकः ६

तन्मायामोहितश्चाहं नाविदं कमलं विना
स्वदेहजनकं तात पितरं ज्ञानदुर्बलः ७
कोहं वा कुत आयातः किं कार्यं तु मदीयकम्
कस्य पुत्रोऽहमुत्पन्नः केनैव निर्मितोऽधुना ८
इति संशयमापन्नं बुद्धिर्मौ समपद्यत
किमर्थं मोहमायामि तज्ज्ञानं सुकरं खलु ९
एतत्कमलपुष्पस्य पत्रारोहस्थलं ह्यधः
मत्कर्ता च स वै तत्र भविष्यति न संशयः १०
इति बुद्धिं समास्थाय कमलादवरो हयन्
नाले नाले गतस्तत्र वर्षाणां शतकं मुने ११
न लब्धं तु मया तत्र कमलस्थानमुत्तमम्
संशयं च पुनः प्राप्तः कमले गन्तुमुत्सुकः १२
आरुरोहाथ कमलं नालमार्गेण वै मुने
कुड्मलं कमलस्याथ लब्धवान्न विमोहिताः १३
नालमार्गेण भ्रमतो गतं वर्षशतं पुनः
क्षणमात्र तदा तत्र ततस्तिष्ठन्विमोहितः १४
तदा वाणी समुत्पन्ना तपेति परमा शुभा
शिवेच्छया परा व्योम्नो मोहविध्वंसिनी मुने १५
तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः
पुनस्तप्तं तपो घोरं द्रष्टुं स्वजनकं तदा १६
तदा हि भगवान्विष्णुश्चतुर्बाहुस्सुलोचनः
मय्येवानुग्रहं कर्तुं द्रुतमाविर्बभूव ह १७
शंखचक्रायुधकरो गदापद्मधरः परः
घनश्यामलसर्वांगः पीताम्बरधरः परः १८
मुकुटादिमहाभूषः प्रसन्नमुखपंकजः

कोटिकंदर्पसंकाशस्सन्दृष्टो मोहितेन सः १६
तद्दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं विस्मयं परमं गतः
कालाभं कांचनाभं च सर्वात्मानं चतुर्भुजम् २०
तथाभूतमहं दृष्ट्वा सदसन्मयमात्मना
नारायणं महाबाहु हर्षितो ह्यभवं तदा २१
मायया मोहितश्शम्भोस्तदा लीलात्मनः प्रभोः
अविज्ञाय स्वजनकं तमवोचं प्रहर्षितः २२
ब्रह्मोवाच
कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम्
तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण सुदृढेन तु २३
प्रबुद्ध्योत्थाय शयनात्समासीनः क्षणं वशी
ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः २४
मामत्र सस्थितं भासाध्यासितो भगवान्हरिः
आह चोत्थाय ब्रह्माणं हसन्मां मधुरं सकृत् २५
विष्णुरुवाच
स्वागतं स्वागतं वत्स पितामह महाद्युते
निर्भयो भव दास्येऽहं सर्वान्कामान्न संशयः २६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभः
रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम् २७
ब्रह्मोवाच
भाषसे वत्स वत्सेति सर्वसंहारकारणम्
मामिहाति स्मितं कृत्वा गुरुश्शिष्यमिवानघ २८
कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्
सनातनमजं विष्णुं विरिंचिं विष्णुसंभवम् २६
विश्वात्मानं विधातारं धातारम्पंकजेक्षणम्

किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम् ३०
वेदोमां वक्ति नियमात्स्वयंभुवमजं विभुम्
पितामहं स्वराजं च परमेष्ठिनमुत्तमम् ३१
इत्याकरार्य हरिर्वाक्यं मम क्रुद्धोरमापतिः
सोऽपि मामाह जाने त्वां कर्तारमिति लोकतः ३२
विष्णुरुवाच
कर्तुं धर्त्तुं भवानंगादवतीर्णो ममाव्ययात्
विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम् ३३
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्
विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम् ३४
नारायणं महाबाहुं सर्वव्यापकमीश्वरम्
मन्नाभिपद्मतस्त्वं हि प्रसूतो नात्र संशयः ३५
तवापराधो नास्त्यत्र त्वयिमायाकृतं मम
शृणु सत्यं चतुर्वक्त्रसर्वदेवेश्वरो ह्यहम् ३६
कर्ता हर्ता च भर्ता च न मयास्ति समो विभुः
अहमेव परं ब्रह्मपरं तत्त्वं पितामह ३७
अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः
अद्य दृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिँश्चराचरम् ३८
तत्तद्विद्धिचतुर्वक्त्र सर्वं मन्मयमित्यथ
मया सृष्टं पुराव्यक्तं चतुर्विंशतितत्त्वकम् ३९
नित्यं तेष्वणवो बद्धास्सृष्टक्रोधभयादयः
प्रभावाच्चभवानंगान्यनेकानीह लीलया ४०
सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहंकारस्त्रिधा ततः
तन्मात्रं पंकजं तस्मान्मनोदेहेन्द्रियाणि च ४१
आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया

इति बुद्ध्वा प्रजानाथ शरणं व्रज मे विधे ४२
अहं त्वां सर्वदुःखेभ्यो रक्षिष्यामि न संशयः
ब्रह्मोवाच
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा क्रोधसमन्वितः
को वा त्वमिति संभत्स्याब्रुवं मायाविमोहितः ४३
किमर्थं भाषसे भूरि बह्वनर्थकरं वचः
नेश्वरस्त्वं परब्रह्म कश्चित्कर्ता भवेत्तव ४४
मायया मोहितश्चाहं युद्धं चक्रे सुदारुणम्
हरिणा तेन वै सार्द्धं शंकरस्य महाप्रभोः ४५
एवं मम हरेश्चासीत्संगरो रोमहर्षणः
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः ४६
एतस्मिन्नंतरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं तथाऽऽवयोः ४७
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालान लशतोपमम्
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम् ४८
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसंभवम्
तस्य ज्वालासहस्रेणमोहितो भगवान्हरिः ४९
मोहितं चाह मामत्र किमर्थं स्पर्द्धसेऽधुना
आगतस्तु तृतीयोऽत्र तिष्ठतां युद्धमावयोः ५०
कुत एवात्र संभूतः परीक्षावोऽग्निसंभवम्
अधो गमिष्याम्यनलस्तंभस्यानुपमस्य च ५१
परीक्षार्थं प्रजानाथ तस्य वै वायुवेगतः
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गंतुमर्हतिसत्वरम् ५२
ब्रह्मोवाच
एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा

वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान्मुने ५३
तदा प्रभृति मामाहुर्हंसहंसो विराडिति
हंसहंसेति यो ब्रूयात्स हंसोऽथ भविष्यति ५४
सुश्वे ह्यनलप्रख्यो विश्वतः पक्षसंयुतः
मनो निलजवो भूत्वा गत्वोद्ध्र्व चोद्ध्र्वतः पुरा ५५
नारायणोऽपि विश्वात्मा सुश्वेतो ह्यभवत्तदा
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ५६
मेरुपर्तववर्ष्माणं गौरतीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम्
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम् ५७
ह्रस्वपादं विचित्रांगंजैत्रं दृढमनौपमम्
वाराहाकारमास्थाय गतवांस्तदधौ जवात् ५८
एवम्वर्षसहस्रं चरन्विष्णुरधो गतः
तथाप्रभृति लोकेषु श्वेतवाराहसंज्ञकः ५९
कल्पो बभूव देवर्षे नराणां कालसंज्ञकः
बभ्राम बहुधा विष्णुः प्रभविष्णुरधोगतः ६०
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः
तावत्कालं गतश्चोद्ध्र्वमहमप्यरिसूदन ६१
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया
श्रान्तो न दृष्ट्वा तस्यांतमहं कालादधोगतः ६२
तथैव भगवान्विष्णुश्श्रांतं कमललोचनः
सर्वदेवनिभस्तूर्णमुत्थितस्समहावपुः ६३
समागतो मया सार्द्धं प्रणिपत्य भवं मुहुः
मायया मोहितश्शंभोस्तस्थौ संविग्नमानसः ६४
पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव ह्यग्रतः परमेश्वरम्
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति ६५

अनिर्देश्यं च तद्रूपमनाम कर्मवर्जितम्
अलिंगं लिंगतां प्राप्तं ध्यानमार्गेप्यगोचरम् ६६
स्वस्थं चित्तं तदाकृत्वा नमस्कार परायणो
बभूवतुरुभावावामहं हरिरपि ध्रुवम् ६७
जानीवो न हि ते रूपं योऽसियोऽसि महाप्रभो
नमोऽस्तुते महेशान रूपं दर्शयनौत्वरन् ६८
एवं शरच्छतान्यासन्नमस्कारं प्रकुर्वतोः
आवयोर्मुनिशार्दूलमदमास्थितयोस्तदा ६९
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
विष्णुब्रह्मविवादवर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः ७

ब्रह्मोवाच
एवं तयोर्मुनिश्रेष्ठ दर्शनं कांक्षमाणयोः
विगर्वयोश्च सुरयोः सदा नौ स्थितयोर्मुने १
दयालु रभवच्छंभुर्दीनानां प्रतिपालकः
गर्विणां गर्वहर्ता च सर्वेषां प्रभुरव्ययः २
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः
ओमोमिति सुरश्रेष्ठात्सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः ३
किमिदं त्विति संचिंत्य मया तिष्ठन्महास्वनः
विष्णुस्सर्वसुराराध्यो निर्वैरस्तुष्टचेतसा ४
लिंगस्य दक्षिणे भागे तथापश्यत्सनातनम्
आद्यं वर्णमकाराख्यमुकारं चोत्तरं ततः ५
मकारं मध्यतश्चैव नादमंतेऽस्य चोमिति
सूर्यमंडलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे ६
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषि सत्तम

शीतांशुमराडलप्रख्यं मकारं तस्य मध्यतः ७
तस्योपरि तदाऽपश्यच्छुद्धस्फटिकसुप्रभम्
तुरीयातीतममलं निष्कलं निरुपद्रवम् ८
निर्द्वंद्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यंतरवर्जितम्
स बाह्यभ्यंतरे चैव बाह्याभ्यंतरसंस्थितम् ९
आदिमध्यांतरहितमानंदस्यापिकारणम्
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परायणम् १०
कुत एवात्र संभूतः परीक्षावोऽग्निसंभवम्
अधोगमिष्याम्यनलस्तंभस्यानुपमस्य च ११
वेदशब्दोभयावेशं विश्वात्मानं व्यचिंतयत्
तदाऽभवदृषिस्तत्र ऋषेस्सारतमं स्मृतम् १२
तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान्परमेश्वरम्
महादेवं परं ब्रह्म शब्दब्रह्मतनुं परम् १३
चिंतया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह
अप्राप्य तन्निवर्तंते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः १४
एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम्
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम् १५
एकाक्षरादकाराख्याद्भगवान्बीजकोराडजः
एकाक्षरादुकाराख्याद्धरिः परमकारणम् १६
एकाक्षरान्मकाराख्याद्भगवान्नीललोहितः
सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः १७
मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत्
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीज उच्यते १८
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः १९

बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः
अस्य लिंगादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः २०
उकारयोनौ निःक्षिप्तमवर्द्धत समं ततः
सौवर्णमभवच्चांडमावेद्यं तदलक्षणम् २१
अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमंडं व्यवस्थितम्
ततो वर्षसहस्रांते द्विधाकृतमजोद्भवम् २२
अंडमप्सु स्थितं साक्षाद्व्याघातेनेश्वरेण तु
तथास्यसुशुभं हिमं कपालं चोद्ध्र्वसंस्थितम् २३
जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पंचलक्षणा
तस्मादंडाद्भवो जज्ञे ककाराख्यश्चतुर्मुखः २४
अ स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः
एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः २५
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः समानि सादरम्
एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्याहुश्चावयोस्तदा २६
ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छक्तिसंभवैः
मंत्रं महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम् २७
एतस्मिन्नंतरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दरम्
ददर्श च मया सार्द्धं भगवान्विश्वपालकः २८
पंचवक्त्रं दशभुजंगौरकर्पूरवन्मुने
नानाकांति समायुक्तं नानाभूषणभूषितम् २९
महोदारं महावीर्यं महापुरुषलणम्
तं दृष्ट्वा परमं रूपं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ३०
अथ प्रसन्नो भगवान्महेशः परमेश्वरः
दिव्यं शब्दमयं रूपमाख्याय प्रहसन्स्थितः ३१
अकारस्तस्य मूर्द्धा हि ललाटो दीर्घ उच्यते

इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम् ३२
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः ३३
वामं कपोलमूकारो लृ लॄ नासापुटे उभे
एकारश्चोष्ठ ऊद्र्ध्वश्च ह्यैकारस्त्वधरो विभोः ३४
ओकारश्च तथौकारो दन्तपंक्तिद्वयं क्रमात्
अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य शूलिनः ३५
कादिपंचाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे
चादिपंचाक्षराण्येवं पंच हस्तास्तु वामतः ३६
टादिपंचाक्षरं पादास्तादिपंचाक्षरं तथा
पकार उदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ३७
बकारो वामपार्श्वस्तु भकारः स्कंध उच्यते
मकारो हृदयं शंभोर्महादेवस्य योगिनः ३८
यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः
हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते ३९
एवं शब्दमयं रूपमगुणस्य गुणात्मनः
दृष्ट्वा तमुमया सार्द्धं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ४०
एवं दृष्ट्वा महेशानं शब्दब्रहम तनुं शिवम्
प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चापश्यदूद्र्ध्वतः ४१
ॐकारप्रभवं मंत्रं कलापंचकसंयुतम्
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् ४२
मेधाकारमभूद्भूयस्सर्वधर्मार्थसाधकम्
गायत्रीप्रभवं मंत्रं सहितं वश्यकारकम् ४३
चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कालमनुत्तमम्
अथ पंचसितं मंत्रं कलाष्टकसमायुतम् ४४

आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम्
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम् ४५
कलाष्टकसमा युक्तं सुश्वेतं शांतिकं तथा
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैस्सह लेहितम् ४६
बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम्
वर्णा एकाधिकाः षष्टिरस्य मंत्रवरस्य तु ४७
पुनर्मृत्युंजयं मन्त्रं पञ्चाक्षरमतः परम्
चिंतामणिं तथा मंत्रं दक्षिणामूर्ति संज्ञकम् ४८
ततस्तत्त्वमसीत्युक्तं महावाक्यं हरस्य च
पञ्चमंत्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः ४९
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुस्सामरूपिणम्
ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं पुरातनम् ५०
अघोरहृदयं हृद्यं सर्वगुह्यं सदाशिवम्
वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् ५१
विश्वतः पादवन्तं तं विश्वतोक्षिकरं शिवम्
ब्रह्मणोऽधिपति सर्गस्थितिसंहारकारणम् ५२
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिस्साम्बं वरदमीश्वरम्
मया च सहितो विष्णुर्भगवांस्तुष्टचेतसा ५३

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे
सृष्ट्युपाख्याने शब्दब्रह्मतनुवर्णनो नामाष्टमोऽध्यायः ८

Credits
Source: *The Śivamahāpurāṇam*, (Delhi: Nag Publishers, 1986).

ईशानमीशनुकुटं पुरुषाख्यं तुरातनम् ।।४५
अघोरहृदयं हृदयं सर्वगुह्यं सदाशिवम् ।
वामापादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम ।।४६
विश्वतः पादवन्तं त विश्वतोऽक्षिकरं शिवम् ।
ब्रह्मणोऽधिपति सर्गस्थिति संहारकारणम् ।।४७
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः साम्बं वरदमीश्वरम् ।
मया च सहितो विष्णुर्भगवास्तुष्टचेतसा ।।४८

फिर मृत्युंजय मंत्र अथवा त्र्यंबक मंत्र और इसके उपरान्त पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) व चिन्तामणि मंत्र और दक्षिणमूर्ति मंत्र को ग्रहण करे ।४३। 'तत्वमसि' शिवजी का महा वाक्य है । इन पाँचों मन्त्रों को ग्रहण कर भगवान् ने जप किया ।।४४।। फिर ऋक्, यजु और साम रूपी कला वर्ण, जो ईशान, ईश मुकुट, पुरातन पुरुष हैं, उन्हें देखकर ।।४५।। अघोर हृदय, सव में गुह्य, सदाशिव वामपाद महा-भोगीन्द्र एवं महादेव के भूषण को धारण करे ।४६। जिनके सभी ओर नेत्र हैं, जो ब्रह्माजी के अधीश्वर, सर्ग स्थित तथा संहार कर्त्ता हैं ।४७। साम्बशिव वर देने वाले हैं उनको वाणियों से संतुष्ट करने लगे । इस प्रकार मैंने विष्णुजी के सहित अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उनकी स्तुति की ।४८।

* हरिहर की अभेदता और परमशिवतत्व वर्णन *

अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत ।
सदा सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि ।।१
ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते ।
तदा त्वं सर्व दुःखानां नाशाय तत्परो भव ।।२
रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा ।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन ।।३
वस्तुतश्चापि चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च ।
लीलयापि महाविष्णो यत्यं सत्यं न संशयः ।।४
रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति ।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति ।।५

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम ।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ।।६
त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः ।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतित ध्रुमम् ।।७
आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदशातां विशेषतः ।
संदेहोऽत्र न कर्त्तव्यो ब्रह्माविष्णुहरात्मनाम् ।।८
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम् प्रियतरो हि सः ।
एवं वै यो बिजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभाः ।।६

परमेश्वर शिवजी ने कहा—हे विष्णो ! हे सुव्रत ! तुम मेरी आज्ञा श्रवण करो । तुम सदैव सभी लोकों में मान्य एवं पूजनीय होंगे ।१। ब्रह्माजी द्वारा रचे गये लोक में जब दुःख पड़ेगा तब तुम उस दुःख से लोकों को उबारने में तत्पर रहोगे ।।२।। तुम दोनों को रुद्र का ध्यान करना उचित है । हे ब्रह्मा ! तुम्हारे ध्यान के योग्य विष्णु हैं, तुम दोनों में और रुद्र में कोई भेद नहीं है ।३। यथार्थ में तुम तीनों एक तत्व-रूप ही हो । हे विष्णो ! यह सब अंतर लीला मात्र का ही है, यथार्थ में नहीं है ।४। जो रुद्रभक्त तुम्हारा निन्दक हो, उसका सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो जाता है ।।५।। हे पुरुषोत्तम ! हे विष्णो ! जो कोई तुमसे द्वेष करेगा, वह नरकगामी होगा, इसमें संशय नही है ।६। जो तुम्हारा आश्रय लेता है, वही मेरा आश्रित है, हम तुममें अन्तर समझने वाला अवश्य ही नरक को प्राप्त होगा ।७। तुम देवताओं के आयुर्बल को श्रवण करो । ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के एकत्व में सन्देह नही करना चाहिये ।।८।। ब्रह्मा, विष्णु ने कहा—हे स्वामिन् ! आपका कथन यथार्थ है । जो आपका भक्त होगा, वही मेरे लिये प्रिय होगा, जो इस प्रकार जानेगा उसके लिए मोक्ष दुर्लभ नहीं है ।।६।।

* शिव पूजन की विधि और उसका फल *

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तुते ।
श्रीविताऽद्याद्भुता शैवी कथा परमपावनी ।।१

तत्राद्भुता महादिव्या लिंगोत्पत्तिः श्रुता शुभा।
श्रुत्वा यस्याः प्रभावं दुःखनाशो भवेदिह ।२
ब्रह्मानारदसम्वादमनुसृत्य दयानिधे।
शिवार्चनविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः ।३
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्या पूज्यते शिवः।
कथं कार्यं च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ।४
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शर्मदं श्रुतिसम्मतम्।
उवाच सकलं प्रीत्या मुनिप्रश्नानुसारतः ।५
साधु पृष्टं भवद्भिश्च तद्रहस्यं मुनीश्वराः।
तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ।६
भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तथा व्यासेन वै पुरा।
पृष्टं सनत्कुमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना ।७
ततो व्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत्।
मह्यं च पठितं लोकानां हितकाम्यया ।८

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! आपको नमस्कार है, आपने परम पावनी शिव कथा कही है।१। उसमें अद्भुत दिव्य लिंग की उत्पत्ति सुनी, जिसके प्रभाव से इस लोक में दुःखों का क्षय होता है।२। ब्रह्मा, और नारद के सम्वाद को स्मरण कर आप शिव की पूजा विधि कहिये, जिससे शिवजी संतुष्ट हो सकें।२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र यह सभी शिवजी की पूजा करते हैं, व्यासजी उसे किस प्रकार करने का उपदेश करते हैं, सो कहने की कृपा करें।४। उनके ऐसे कल्याणप्रद तथा श्रुति-सम्मत वाक्य सुनकर सूतजी कहने लगे।५। हे मुनियो! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। मैंने जैसा सुना है, वैसा ही कहता हूँ।६। जो प्रश्न आपने किया है वही व्यासजी ने सनत्कुमार से किया था। जो उन्होंने कहा और उपमन्यु ने सुना था।७। फिर शिवार्चन को सम्पूर्ण विधि लोकों के हितार्थ व्यासजी ने मुझे पढ़ाया।८।

तच्छ्रुतं चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः।
तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्माऽवदत्पुरा ।९

श्रृणु नारद वक्ष्यामि संक्षेपाल्लिंगपूजनम् ।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरान्मुने ।१०
एवं तु शांकरं रूपं सुखं स्वच्छ सनातनम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या सवकामफलाप्तये ।११
दारिद्रयं रोगदुःखं च पीडनं शत्रुसम्भवम् ।
पापं चतुर्विध तावद्या बन्नाचयते शिवम् ।१२
सम्पूजिते शिवे देवे सर्वदुःखं विलीयते ।
सम्पद्यते सुखं सर्वं पश्चान्मुक्तिरवाप्यते ।१३
ये वै मानुष्यमाश्रित्य मुख्यं सनातनः सुखम् ।
तेन पूज्यो महादेवः सर्वकार्यार्थसाधकः ।१४
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च विधिवत्क्रमात् ।
शङ्करार्चा प्रकुर्वन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ।१५

उपमन्यु ने वह सब श्री कृष्ण को सुनाया था, जैसे ब्रह्माजी ने कहा था, वैसे ही मैं तुमसे कहता हूँ ।९। ब्रह्माजी ने कहा—हे नारदजी ! मैं संक्षेप में लिंग-पूजा की विधि कहता हूँ, इसे विस्तार पूर्वक तो सौ वर्ष में भी नहीं कहा जा सकता ।१०। इस प्रकार शिवजी का स्वरूप सुखदायक एवं सनातन है । सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति के लिये उनका परम भक्तिपूर्वक पूजन करे ।११। दारिद्रय, रोग, दुःख तथा शत्रु की पीड़ा यह चार प्रकार के संकट तभी रहते हैं, जब तक कि शंकर की पूजा नहीं की जाती ।१२। भगवान का पूजन करने से सभी दुःखों का लोप हो जाता है और सर्व सुख की प्राप्ति होकर अन्त में मोक्ष मिलती है ।१३। मनुष्य जन्म में सन्तान का ही मुख्य सुख है, इसकी प्राप्ति के हेतु सर्वार्थ-साधक भगवात् शिवजी का पूजन करे ।१४। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए चारों वर्णों को क्रमशः शिवार्चन करना चाहिये ।१५।

प्रातःकाले समुत्थाय मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके ।
गुरोश्च स्मरणं कृत्वा शंभोश्चव तथा पुनः ।१६
तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यानं चैव हरेरपि ।
ममापि गिर्जराणां वै मुन्यादीनां तथा मुने ।१७

ततः स्तोत्रं शंभुनाम गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।
तथोत्थाय मलोत्सर्गं दक्षिणस्यां चरेद्दिशि ॥१८
एकान्ते तु विधिं कुर्यान्मलोत्सर्गस्य तच्छ्रुतम् ।
तदेव कथयाम्यद्य श्रृण्वाधाम मनो मुने ॥१६
शुद्धां मृद द्विजो लिप्यात्पंचवारं विशुद्धये ।
क्षत्रियश्च चतुर्वारं वैश्यो वारत्रयं तथा ॥२०
शूद्रो द्विवारं च मृदं गृह्णीयाद्विधिशुद्धये ।
गुदे वाथ सकृल्लिगे वारमेकं प्रयत्नतः ॥२१

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठे और गुरु तथा शिवजी का स्मरण करे ॥१६॥ फिर तीर्थों का स्मरण और शंकर का ध्यान करके मेरा स्मरण करे और फिर देवताओं और मुनियों का ध्यान करे ॥१७॥ शिवनाम के स्तोत्र का विधिवत् जप करे और फिर उठकर दक्षिण दिशा में जाकर मल त्याग करे ॥१८॥ शास्त्रानुसार मलोत्सर्ग एकान्त में करे । हे मुने ! उसकी विधि आपसे कहता हूँ, ध्यान से सुनो ।१६। शुद्धि के लिए ब्राह्मण को मृत्तिका से पाँच बार हाथ धोने चाहिए, क्षत्रिय चार बार तथा वैश्य तीन बार हाथ धोवे ॥२०॥ शूद्र दो बार मिट्टी से हाथ धोवे, गुदा और लिंग में भी एक बार मिट्टी लगावे ॥२१॥

दशावारं वामहस्ते सप्तवारं द्वयोस्तथा ।
प्रत्येकम्पादयोस्तात त्रिवारं कारयोः पुनः ॥२२
स्त्रीभिश्च शूद्रवत्कार्यं मृदाग्रहणमुत्तमम् ।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य पूर्ववन्मृदमापरेत् ॥२३
दंतकाष्ठं ततः कुर्यात्स्ववर्णक्रमओ नरः ॥२४
विप्रः कुर्याद्दंतकाष्टं द्वादशांगुलमानतः ।
एकादशांगुलं राजा वश्यः कुर्याद्दशांगुलम् ॥२५
शूद्रोनवांगुलं कुर्यादिति मानमिदं स्मृतम् ।
कालदोषं विचार्य्यैव मनुदृष्टं विबजयेत् ॥२६
षष्ठ्याद्यामाश्च मवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम् ।
तथा श्राद्धदिनं तात निषिद्धं रदधावने ॥२७

स्नानं तु विधिवत्कार्यं तीर्थादिषु क्रमेण तु ।
देशकालविशेषेण स्नानं कार्यं समन्त्रकम् ॥२८

बाँए हाथ से दस बार, फिर दोनों हाथों से सात-सात बार मृत्तिका लगावे, पाँव के तले में तीन बार लगाकर फिर तीन बार हाथ धोवे। ।२। स्त्रियों को शूद्र के समान मिट्टी से हाथ धोने चाहिये। हाथ पाँव धोकर पूर्ववत् मिट्टी ग्रहण करे ॥२३॥ फिर अपने वर्ण क्रम के अनुरूप दाँतुन करे ॥२४॥ ब्राह्मण को बारह अंगुल की दाँतुन करने का विधान हैं, क्षत्रिय को ग्यारह अंगुल की और वैश्य को दस अंगुल की ॥२५॥ शूद्र भी नौ अंगुल की दाँतुन करे। इस प्रकार प्रमाण कहा गया है। काल-दोष का विचार करके क्रिया करे तो दृष्ट को भी वर्जित किया जा सकता है ।२६। छ, अमावस, नवमी व्रत का दिन, सूर्यास्त के समय, रविवार अथवा श्राद्ध के दिन दाँतुन करने का निषेध है ।२७। तीर्थादि में क्रमपूर्वक तथा विधि सहित स्नान करे, विशेषकर देशकाल के अनुसार ओर मन्त्र सहित स्नान करना चाहिये ॥२८॥

आचम्य प्रथमं तत्र धौतवस्त्रेण चाधरेत् ।
एकांते सुस्थले स्थित्वा संध्याविधिमथाचरेत् ॥२९
यथायोग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथारभेत् ।
मनस्तु सुस्थिरं कृत्वा पूजागारं प्रविश्य च ॥३०
पूजाविधिं समावाय स्वासने ह्युपविश्य वै ।
न्यासादिकं विधायादो पूजयेत्क्रमशो हरम् ॥३१
प्रथमं च गणाधीशं द्वारपालांस्तथैव च ।
दिक्पालांश्च सुसंपूज्य पश्चात्पीठं प्रकल्पयेत् ॥३२
अथवाऽष्टदलं कृत्वा पूजाद्रव्यसमीपतः ।
उपविश्य ततस्तत्र चोपवेश्य शिवं प्रभुम् ॥३३
त्रयमाचमनं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः करौ ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा मध्ये ध्यायेच्च त्र्यम्बकम् ॥३४
पचपवक्त्रं दशभुजां शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
सर्वाभरणासंयुक्तं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ॥३५

स्नान करने के पश्चात् धुले हुए वस्त्र धारण करे फिर स्वच्छ स्थान में एकान्त में बैठकर संध्या करे ।।२९।। यथाविधि करके, पूजन आरम्भ करे, मन को स्थिर करके पूजा स्थान में प्रवेश करे ।३०। विधि सहित आसन ग्रहण कर न्यासादि करे और फिर क्रम से शिवजी का पूजन करे ।३१। प्रथम गणेशजी को पूजे, फिर द्वारपाल और दिकपालों का पूजन करे और सिंहासन की कल्पना करे ।३२। अथवा पूजा द्रव्य के निकट अष्टदल कमल बनाकर स्वयं बैठे और वहाँ भगवान् शिवजी की स्थापना करे ।३३। फिर तीन आचमन कर हाथ धोवे और तीन प्राणायाम कर मध्य में त्र्यम्बकदेव का ध्यान करे ।३४। पाँच मुख, दश भुजा, स्फटिक मणि के समान स्वच्छ सम्पूर्ण आभरण, व्याघ्र चर्म उत्तरीय सहित सुशोभित ।३५।

तस्य सारूप्यतां स्मृत्वा ददेत्पापं नरः सदा ।
शिवं ततः समुत्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम् ।३६
देहशुद्धि ततः कृत्वा मूल मन्त्रं न्यसेत्क्रमात् ।
सवत्र प्रणवेनैव षडगन्यासमाचरेत् ।३७
कृत्वा हृदि प्रयोगं च ततः पूजां समारभेत् ।
पाद्यार्गायमनार्थं च पात्राणि च प्रकल्पयेत् ।३८
स्थापयेद्विविधात्कुंभान्नव धीमान्यथाविधि ।
दर्भैराच्छाद्य तैरेव संस्थाप्याभ्युक्ष्य वारिणा ।३९
तेषु तेषु च सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम् ।
प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्यं बुद्धिमान् ।४०
उशीरं चन्दनं चैव पाद्यं तु परिकल्पयेत् ।
जातिकंकोलकर्पूरवटमूलतमालकम् ।४१
चूर्णयित्वा तथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके ।
एतत्सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चनव नान्वितम् ।।४२

भगवान शिवजी की सारूप्यता को प्राप्त होकर प्राणी अपने पापों को

सदैव क्षीण करे, फिर भगवान् शिव को उठाकर उनकी पूजा करे ।३६। फिर देह की शुद्धि कर क्रम पूर्वक मूलमन्त्र का न्यास करे, ओंकार के सहित षडग न्यास करना चाहिये ।३७। हृदय में प्रयोग करके पूजन प्रारम्भ करे और पाद्य, अर्घ्य, आचमन के लिए पात्रों की कल्पना करे ।३८। यथाविधि नवीन घट स्थापित करे, फिर कुशों से आच्छादित करके जल से छिड़के ।३९। उन सब पात्रों में शीतल जल भरे और द्रव्यों को ग्रहण कर प्रणवोच्चार सहित उसमें डाले ।४०। पाद्य में उशीर और चन्दन प्रयोग करे । जायफल, कंकोल, कर्पूर, वटमूल और तमाल ।४१। सबको चूर्ण कर आचमन में डाले तथा चन्दन आदि भी इन पदार्थों में मिलावे ।४२।

पार्श्वयोर्देवदेवस्य नंदीशं तु समर्चयेत् ।
गंधैर्धूपस्तथा दीपैर्विविधः पूजयेच्छिवम् ।४३
लिंगशुद्धिं ततः कृत्वा मुद युक्तो नरस्तदा ।
यथोचित तु मन्त्रोधैः प्रणवादिनमोतकैः ।४४
कल्पयेदासनं स्वस्तिपद्मादि प्रणवेन तु ।
तस्मात्पूवदिश साक्षादणिमामयमक्षरम् ।४५
लघिमा ेक्षिण चैव महिमा पश्चिमं तथा ।
प्राप्तश्च वोत्तर पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य च ।४६
ईक्षित्वं नैऋर्त पत्रं वशित्वं वायुगोचरे ।
सर्वज्ञत्व तथशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ।४७
सोमस्याथस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकस्त्वयम् ।
धर्मादीनपि तस्याधो भवतः कल्पयेत्क्रमाद् ।४८
अव्यक्तादि चतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयन् ।
सद्योजातं प्रवक्ष्यामीस्यावाह्य परमेश्वरम् ।४९

महादेवजी के पार्श्व में नन्दीजन का पूजन करे और विविध गन्ध, धूप, दीप से शिव का पूजन करे ।४३। फिर लिंग की शुद्धि कर, मन से ओंकार सहित नमस्कार करे ।४४। ओंकार सहित स्वस्ति कमल आदि युक्त आसनकी कल्पना करे और पूर्व की ओर साक्षात् अणिमायुक्त अक्षर

को ।४५। लघिमा सिद्धि दक्षिण की ओर, महिमा पश्चिम की ओर, प्राप्ति उत्तर की ओर तथा प्राकाम्य अग्नि दिशा में ।४६। ईशित्व नैऋत्य दिशा में, वशित्व को वायुकोण के दल में, सर्वज्ञ सिद्धि को ईशान में कल्पित करे तथा कर्णिका सोम कही जाती है ।४७। सोम के नीचे सूर्य उसके नीचे धर्मादि की कल्पना क्रमपूर्वक करे ।४८। अव्यक्तादिको चारों दिशाओं में, सोम के अन्त में तीनों गुणों को कल्पित करे तथा 'सद्योजातं प्रवक्ष्यामि' आदि मन्त्र से ईश्वर का आह्वान करना चाहिए ।४९।

वामदेवेन मन्त्रेण तिष्ठेच्चवासनोपरि ।
सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत् ।।५०
ईशानं सर्वविद्यानामिति मन्त्रेत्र पूजयेत् ।
पाद्यमाचमनीयं च विधायार्घ्यं प्रदापयेत् ।।५१
स्थापयेद्विधिना रुद्रं गंधचन्दनवारिणा ।
पञ्चगव्यविधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च ।।५२
प्रणवेनैव गव्येन स्नापयेत्मयसा च तम् ।
दध्ना च मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन तु ।।५३
घृतेन तु तथा पूज्य सर्वकामहितावहम् ।
पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत् ।।५४
पवित्रजलभाण्डेषु मंत्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः ।
शुद्धीकृत्य यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः ।।५५
तावद्दूरं न कर्त्तव्यं न यावच्चन्दनं क्षिपेत् ।
तन्दुलैः सुन्दरैस्तत्र पूजयेच्छंकरम्मुदा ।।५६

वामदेव मन्त्रसे आसन पर स्थित हो, रुद्र गांयत्री से उनका सामीप्य तथा 'अघोरेभ्यो अथघोरेभ्यो' मन्त्र से निरोध करे ।५०। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' आदि मन्त्र से पूजा करे और पाद्य आचमन के पश्चात् अर्घ्य दे ।५१। गन्ध चन्दन के जल से विधिवत् रुद्र की स्थापना करे फिर पंच गव्य से ओंकार पूर्वक शिवजी को स्नान करावे । दही मधु और ईख के रस से ।५३। तथा घृत से सम्पूर्ण कामना और हित के देने वाले शिवजी का पूजन करे तथा पवित्र द्रव्यों से प्रणय पूर्वक शिवजी का पूजन करे

।५४। पवित्र जलों को मन्त्र सहित पात्रों में ग्रहण करे तथा यथा योग्य श्वेत वस्त्र से जल को छाने ।५५। जब तक चन्दन न डाले, तब तक दूर न करे तथा श्रेष्ठ चावलों से शिवजी का पूजन करे ।५६।

कुशापामार्गकर्पूरजातिचंपकपाटलैः ।
करवीरैस्सितैश्चैव मल्लिका कमलोत्पलैः ॥५७
अपूर्वपुष्पैर्विविधैश्चन्दनाद्यैस्तथैव च ।
जलेन जलधाराश्च कल्पयेत्परमेश्वरे ॥५८
पात्रैश्च विविधैर्देवं स्नापयेच्च महेश्वरम् ।
मन्त्रपूर्वं प्रकर्तव्या पूजा सर्वफलप्रदा ॥५९
मन्त्राश्च तुभ्यं तांस्तात सर्वकामार्थ सिद्धये ।
प्रवक्ष्यामि समासेन सावधानतया शृणु ॥६०
पाठ्यमानेन मन्त्रेण तथा वाङ्मयकेन च ।
रुद्रेण नीलरुद्रेण सुशुक्लेन शुभेन च ॥६१
होतारेण तथा शीर्ष्णा शुभेनाथर्वणेन च ।
शांत्या वाथ पुनः शांत्या मारुणेनारुणेन च ॥६२
अर्थाभीष्टेन साम्ना च तथा देवव्रतेन । ६३

कुशा, चिरचिटा, कर्पूर जातिफल, चम्पक, पाटल, कनेर पुष्प, मल्लिका और कमल ।५७। तना अन्य अनेक अपूर्व पुष्प चन्दनादि से, पूजन कर शिवजी पर जल की धारा छोड़े ।५८। अनेक प्रकार के पात्रों में जल भरकर पूजन मंत्र पूर्वक की हुई पूजा सम्पूर्ण कामनाओं और फलों की देने वाली है ।५९। सभी कामनाओं की सिद्धि के निमित्त मैं उन मन्त्रों को संक्षेप में कहता हूँ, ध्यान पूर्वक श्रवण करो ।६०। पढ़ाये गये मन्त्र, वाङ्मय, कण्ठस्थ मंत्र, रुद्र सूक्त मंत्र, नीलसूक्त के मंत्र तथा शुक्ल यजुर्वेद के श्रेष्ठ मन्त्रों से ।६१। होतारम्० यजुमंत्र, अथर्वशीर्ष के मन्त्र, फिर शान्ति, आरुणि मन्त्र से ।६२। जो अपने को अनुकूल ही ऐसे अथर्व और साम मन्त्र तथा देव व्रत मन्त्र से ।६३।

रथांतरेण पुष्पेण सूक्तेन युक्तेन च ।
मृत्युंजयेन मन्त्रेण तथा पञ्चाक्षरेणाच ॥६४

जलधाराः सहस्रेन शतेनेकोत्तरेण वा ।
कर्तव्या वेदमार्गेण नामभिर्वाथ वा पुनः ।६५
ततश्चन्दनपुष्पादि रोपणीय शिवोपरि ।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखबासादिकं तथा ।६६
ततः स्फटिकसंकाश देवं निष्कलमक्षयम् ।
कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ।६७
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रविष्णवाद्यैरपि देवैरगोचरम् ।
वेदवित्भिर्हि वेदांते त्वगोचरमिति स्मृतम् ।६८
आदिमध्यान्तरहितं भेषज सर्वरोगिणाम् ।
शिवतत्वमिति ख्यातं शिवलिंगं व्यवस्थितम् ।६९
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्द्धनि ।
धूपैर्दीपैश्व नवेद्यैस्तांबूलैः सुन्दरैस्तथा ।७०

रथान्तर मन्त्र, पुष्पसूक्त के मन्त्र, मृत्युंजय मन्त्र तथा पंचाक्षर मंत्र से ।६४। एक हजार जलधारा से अथवा एक सौ एक जलधारा से वेद मन्त्रों से अथवा नाम मन्त्रोंसे भगवान् शिवजीके ऊपर अभिषेक करे।६५। फिर चन्दन, पुष्प आदि अर्पित करे तथा मुखवासादि के लिए सामग्री प्रणव से अर्पण करनी चाहिये ।६६। फिर स्फटिक मणि के समान देव कला रहित, क्षय रहित, सब लोकों के कारण एवं सर्वलोकमय परम स्वरूप ।६७। ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु आदि को भी अगोचर तथा वेदान्तियों के वेदान्त में भी अगम्य ।६८। आदि, मध्य, अन्त से रहित, सब रोगों के लिए औषधि रूप, विख्यात शिवतत्व रूप शिव लिंग प्रतिष्ठित हैं ।६९। धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल शिव लिंग पर चढ़ाना चाहिए और चढ़ाते समय प्रत्येक बार प्रणव का उच्चारण करना चाहिए ।७०।

नीराजनेन रम्येण यथोक्तविधिना ततः ।
नमस्कारैः स्तवैश्चान्यैर्मंत्रैर्नानाविधैरपि ।७१
अर्घ्य दत्वा तु पुष्पाणि पादयोः सुविकीर्य च ।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मनाऽऽधियेच्छिवम् ।७२

हस्ते गृहीत्वा पुष्पाणि समुत्थाय कृतांजलिः।
प्रार्थयेत्पुनरीशानं मन्त्रेणानेन शङ्करम् ।।७३
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मता ।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकरः ।।७४
पठित्वैवं च पुष्पाणि शिवोपरि मुदा न्यसेत् ।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा ह्याशिषो विवधास्तथा ।।७५
मार्जनं तु ततः कार्यं शिवस्योपरि वै पुनः ।
नमस्कारं ततः क्षांति पुनराचमनाय च ।।७६
अघोच्चारणमुच्चार्य नमस्कारं प्रकल्पयेत् ।
प्रार्थयेच्च पुनस्तत्र सर्वभावसमन्वितः ।।७७

फिर यथाविधि नीराजन, नमस्कार और स्तुति करते हुए अनेक प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण करे ।७१। अर्घ्य देकर शिवजी के चरणों में पुष्प अर्पण करे और प्रणाम पूर्वक उनका अर्पण करे ।७२। फिर हाथ में पुष्प ग्रहण कर उठे और अगले मन्त्र से ईशान देवता की आराधना करे ।७३। हे शंकर ! मैंने जो ज्ञान या अज्ञान से आपका पूजन किया है, वह सब आपकी कृपा से फलयुक्त हो ।७४। यह कहकर शिव जी के ऊपर पुष्प चढ़ावे, फिर स्वस्तिवाचन करके आशीर्वाद ग्रहण करे ।७५। फिर शिवजी के ऊपर मार्जन करे फिर नमस्कार कर अपराध क्षमा करावे और आचमन करावे ।७६। फिर अघोर मन्त्र का उच्चारण कर नमस्कार की कल्पना करे और सभी भावों से शिवजी की स्तुति प्रार्थना करे ।७७।

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवेभवे ।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मत ।।७८
इति संप्रार्थ्य देवेशं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या गलनादैर्विशेषतः ।।७९
नमस्कारं ततः कृत्वा परिवारगणैः सह ।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा कार्यं कुर्याद्यथासुखम् ।।८०
एवं यः पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः ।

तस्य वै सकला सिद्धिर्जायते तु पदे पदे ।।८१
वाग्मी स जायते तस्य मनोभीष्टफलं ध्रुवम् ।
रोगं दुःखं च शोकं च ह्युद्वेग कृत्रिमं तथा ।।८२
कौटिल्यं च गरं चैव यद्यद्दुःखमुपस्थितम् ।
तद् दुःखं नाशयत्येव शिवः परः ।।८३
कल्याणं जायते तस्य शुक्लपक्षे यथा शशी ।
वर्द्धते सद्गुणस्तत्र ध्रुव शङ्कर पूजनात् ।।८४

मेरी शिवजी में भक्ति हो, निरन्तर शिवजी में भक्ति रहे । हे शिव! तुम ही मुझे शरण देने वाले हो, कोई दूसरा नहीं है ।७८। इस प्रकार सर्वसिद्धि प्रदायक देवों के भी ईश्वर शिवजी की प्रार्थना कर परम भक्ति पूर्वक कण्ठनाद के शब्दों द्वारा उन्हें प्रसन्न करे ।७९। फिर परिवारी जनों के सहित नमस्कार करता हुआ अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हो सुखदायक कार्य करे ।८०। जो मनुष्य शिव-भक्ति परायण होकर नित्य प्रति इस प्रकार पूजा करते हैं, उन्हें पद-पद में सिद्धि प्राप्त होती है ।८१। वह मनुष्य वाग्मी होता है और उसकी सभी इच्छाएँ फलदायक होती हैं । रोग, दुःख, शोक, उद्वेग, वनावट ।८२। कुटिलता तथा विष प्रयोग से उत्पन्न दुःखों को कल्याणकारी शिवजी नष्ट करते हैं ।८३। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान उसका कल्याण होता और शिवजी की पूजा करने से सद्गुणों की वृद्धि होती हैं ।८४।

* लिंग पूजा विधान और स्तोत्र पाठ *

अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम् ।
श्रूयतामृषयो देवयाः सर्वकामसुखावहम् ।।१
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मरेत्सांवकं शिवम् ।
कुर्यात्तत्प्रार्थनां भक्त्या सांजलिर्नतमस्तकः ।।२
उत्तिष्ठोत्तिष्ट देवेश उत्तिष्ठ हृदयेशय ।
उत्तिष्ठ त्वमुमास्वामिन्ब्रह्माण्डे मङ्गलं कुरु ।।३
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वयामहादेवहृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मितथाकरोमि ।।४

इत्युक्त्वा वचनं भक्त्या स्मृत्या च गुरुपादुके।
बहिर्गच्छेद्दक्षिणाशां त्यागार्थं मलमूत्रयोः ॥५
देहशुद्धिं ततः कृत्वा समृज्जलविशोधनैः।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दंतधावनमाचरेत् ॥६
दिवानाथे त्वनुदिते कृत्वा वै दंतधावनम्।
मुखं षोडशवारं तु प्रक्षाल्यांजलिभस्तथा ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं श्रेष्ठ पूजन की विधि कहता हूं। हे देवताओ! यह सब सुख और कामनाओं को देने वाली है ॥१॥ ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर शिव-पार्वती का स्मरण करे और हाथ जोड़कर नत मस्तक हो भक्ति पूर्वक उनकी प्रशंसा करे।२। हे देवेश! हे हृदयशाये! आप उठिए और ब्रह्माण्ड का कल्याण कीजिये।२। मैं धर्म का ज्ञाता हूँ, किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है। हे प्रभो! आप मेरे हृदय में स्थित होकर जैसी प्रेरणा करते हो, मैं उसी के अनुसार करता हूँ।४। इस प्रकार भक्ति-भाव पूर्ण वचन कहे और गुरु पादुकाओं का स्मरण कर, मल-मूत्र त्यागार्थ ग्राम से बाहर दक्षिण दिशा को गमन करे।५। फिर मिट्टी और जल से देह शुद्धि कर हाथ पाँव धोवे और दाँतुन करे।६। सूर्योदय से पूर्व दाँतुन करके सोलह कुल्ला करे।७।

यथावकाशं सुस्नायान्नद्यादिष्वथवा गृहे।
देशकालविरुद्धं न स्नानं कार्यं नरेण च।८
तैलाभ्यंगं च कुर्वीत वारान्दृष्ट्वा क्रमेण च।
नित्यमभ्यगके चैव वासितं वा न दूषितम् ॥९
श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने।
अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद्ग्रहणं विना ॥१०
देशं कालं विचार्य्यैवं स्नानं कुर्याद्यथाविधि।
उत्तराभिमुखश्चैव प्राङ्मुखोऽप्यथवा पुनः ॥११
उच्छिष्टेनैव वस्त्रेण न स्नायात्स कदाचन।
शुद्धवस्त्रेण स स्नातात्तद्देवस्मरपूर्वकम् ॥१२
परधार्य्यं च नोच्छिष्टं रात्रौ च विधृतं च यत्।

तेन स्नानं तथा कार्यं क्षालितं च परित्यजेत् ॥१३
तर्पणं च ततः कार्यं देवर्षिपितृतृप्तिदम् ।
धोतवस्त्रं ततो धार्यं पुनराचमनं चरेद् ॥१४

यथा सुविधा नदी अथवा गृह में स्नान करे। स्नान देश काल को देखकर करना उचित है। वारों को देखकर क्रमानुसार तैल लगावे, नित्य तेल लगाने वाले की वास दूषित नहीं होती।९। श्राद्ध में, ग्रहण में, उपवास में, पड़वा में तेल न लगावे तो दोष नहीं है।१०। देश-काल को विचार कर, उत्तर या पूर्व की ओर मुख करके स्नान करे।११। उच्छिष्ट से स्नान न करे, अपने देवता का स्मरण करता हुआ शुद्ध वस्त्र से स्नान करे।१२। दूसरे का धारण किया हुआ वस्त्र उच्छिष्ट कहा है। परन्तु एक रात्रि का धारण किया हुआ वस्त्र उच्छिष्ट नहीं है, उससे स्नान करे और धोये हुए वस्त्र को छोड़ दे।१३। फिर देवताओं और ऋषियों की तृप्ति के लिए तर्पण करे और धुला हुआ वस्त्र धारण कर आचमन करे।१४।

शुचौ देशे ततो गत्वा गोमयाद्यपमार्जिते ।
आसनं च शुभं तत्र रचनीयं द्विजोत्तमाः ॥१५
शुद्धकाष्ठसमुत्पन्नं पूर्णं स्तरितमेव वा ।
चित्रासनं तथा कुर्यात्सर्मकार्वफलप्रदम् ॥१६
यथायोग्यं पुनर्ग्राह्यं मृगचर्मादिकं च यत् ।
तत्रोपविश्य कुर्वीत त्रिपुण्ड्रं भस्मवा सुधीः ॥१७
जपस्तपस्तथा दानं त्रिपुण्ड्रात्सफल भवेत् ।
अभावे भस्मनस्तत्र जलस्यादि प्रकीर्तितम् ॥१८
एवं कृत्वा त्रिपुण्ड्रं रुद्राक्षान्धारयेन्नरः ।
संपाद्य च स्वकं कर्म पुनराराधयेच्छिवम् ॥१९
पुनराचमनं कृत्वा त्रिवारं मन्त्रपूर्वकम् ।
एकं वाथ प्रकुर्याच्च गंगाविन्दुरिति ब्रुवन् ॥२०
अन्नोदकं तथा तत्र शिवपूजार्थमाहरेत् ।
अन्यद्वस्तु यत्किंचिद्यथाशक्ति समीपगम् ॥२१

फिर गोबर से लिपे हुए पवित्र स्थान में सुन्दर आसन कल्पित करे ।१५। वह शुद्ध काष्ठ का और चिकना हो, ऐसा चित्रासन सर्व कामना और फल का देने वाला बनावे ।१६। फिर मृग चर्म आदि को ग्रहण कर उस पर बैठे और भस्म से त्रिपुण्ड धारण करे ।१७। त्रिपुण्ड धारण से जप, तप, दान सब सफल होता है, यदि भस्म न हो तो जल से ही त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ।१८। इस प्रकार त्रिपुण्ड धारण के पश्चात् रुद्राक्ष धारण करे और सम्पादन करता हुआ, शिवजी की आराधना करे ।१९। फिर मन्त्र पूर्वक तीन आचमन करके गंगा विष्णु का उच्चारण करता हुआ एक बार तिलक लगावे ।२०। फिर शिवजी का पूजन करने के लिये यथाशक्ति अन्न, जल अथवा अन्य जो वस्तु हो निकट लावे ।२१।

कृत्वा स्थैर्यं च तत्रैव धैर्यमास्थाय वै पुनः ।
अर्धपात्रं तथा चैकं जलगंधाक्षतैर्युतम् ।।२२
दक्षिणांसे तथा स्थाप्यनुपचारस्य क्लृप्तये ।
गुरोश्च स्मरणं कृत्वा तदनुज्ञामवाप्य च ।।२३
संकल्पं विधिवत्कृत्वा कामनां न नियुज्य वै ।
पूजयेत्परया भक्त्या शिवं सपरिवारकम् ।।२४
मुद्रामेकां प्रदर्श्यैव पूजयेद्विघ्नहारकम् ।
सिंधुरादिपार्थैश्च सिद्धिबुद्धिसमन्वितम् ।।२५
लक्षलाभयुतं तत्र पूजयित्वा नमेत्पुनः ।
चतुर्थ्यंतैर्नामपदैर्नमोन्तैः प्रणवादिभिः ।।२६
क्षमाप्यैनं तदा देवं भ्रात्रा चैव समन्वितम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या नमस्कुर्यात्पुनः पुनः ।।२७
द्वारपालं सदा द्वारि तिष्ठंतं च महोदरम् ।
पूजयित्वा ततः पश्चात्पूजयेद्गिरिजां सतीम् ।।२८

यह करता हुआ धैर्य पूर्वक वहाँ बैठे और फिर गन्ध, जल, अक्षत से युक्त अर्घ्य पात्र ग्रहण करे ।२२। फिर उपचार की पूर्ति के हेतु अपने दक्षिण ओर उसे स्थापित कर गुरु का स्मरण करे और उनकी

आज्ञा प्राप्त करके।२३। विधिवत् संकल्प करे और उसमें अपनी कामना व्यक्त करता हुआ परम भक्तिभाव से सपरिवार शिवजी पूजा करे।१४। फिर एक मुद्रा भेंट की उपस्थित कर विघ्नेश्वर की पूजा करे। इनकी पूजा सिद्धि बुद्धि से करता हुआ सिन्दूर आदि पदार्थ अर्पण करे।२५। लक्ष लाभ युक्त पूजन करके नमस्कार करे और प्रणाम करे तो प्रणव सहित चतुर्थी विभक्ति नाम से लगाकर अन्त में नमः लगावे।२६। फिर उनसे क्षमा कराकर स्कन्ध-भ्राता सहित परम भक्ति पूर्वक पूजा कर बारम्बार प्रणाम करे।२७। शिवजी के द्वार पर सदा स्थित रहने वाले सहोदर नामक द्वारपाल की पूजा कर फिर सती पार्वती जी का पूजन करे।२८।

चंदनैः कुंकुमैश्चैव धूपैर्दीपैरनेकशः।
नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयित्वा ततः शिवम् ॥२९
नमस्कृत्यपुनस्तत्र गच्छेच्च शिवसान्निधौ।
यदि गेहे पार्थिवीं वा राजती तथा ॥३०
धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत्।
नमस्कृत्य पुनस्तां च पूजयेद्भक्तितत्परः ॥३१
तस्यां तु पूजितायां वै सब स्युः पूजितास्तथा।
स्थापयेच्च मृदा लिंगं विधाय विधिपूर्वकम् ॥३२
कर्तव्यं सर्वथा तत्र नियमात्स्वगृहे स्थितैः।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च ॥३३
दिक्पालान्पूजयेत्तत्र स्थापयित्वा शिवालये।
गृहे शिवः सदा पूज्यो मूलमन्त्राभियोगतः ॥३४
तत्र तु द्वारपालानां नियमो नास्ति सर्वथा।
गृहे लिंग च मत्पूज्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३५

चन्दन, केसर, धूप, दीपक, और नैवेद्य के द्वारा शिवजी का पूजन करे।२९। फिर नमस्कार कर उनके निकट जाकर घर में स्वर्ण या रजत जो कुछ पार्थिव धातु हो।३०। अथवा अन्य धातु या पारे की मूर्ति को नमस्कार कर भक्ति-भाव से तन्मयता पूर्वक पूजन करे।३१। उसको

पूजने से सभी का पूजन हो जाता है। मृत्तिका का लिंग विधि पूर्वक स्थापित करे ।३२। अपने घर में रहकर नियम पालन करे और भूत शुद्धि करके भगवान् की प्राण प्रतिष्ठा करे ।३३। शिवालय में प्रतिष्ठित कर दिक्पालों को पूजे तथा घर में भी मूल मन्त्र से शिवजी की अर्चना ।३४। घर में द्वारपाल के पूजन का नियम नहीं है, वहाँ जो लिंग पूजा जाता है उसी में सब प्रतिष्ठित हैं ।३५।

पूजकाले च सांगं वै परिवारेण संयुतम् ।
आवाह्य पूजयेद्देवं नियमोऽत्र न विद्यते ॥३६
शिवस्य संनिधिं कृत्वा स्वसानं परिकल्पयेत् ।
उदङ् मुखस्तदा स्थित्वा पुनराचमनं चरेत् ॥३७
प्रक्ष्याल्य हस्तौपश्चाद्वै प्राणायाम् प्रकल्पयेत् ।
मूलमन्त्रेण तत्रैव दशावर्तं नयेन्नरः ॥३८
पञ्च मुद्राः प्रकर्तव्याः पूजाऽवश्यं करेप्सिताः ।
एता मुद्राः प्रदर्श्यैव चरेत्पूजाविधिं नरः ॥३९
दीपं कृत्वा तदा तत्र नमस्कारं गुरोरथ ।
बद्ध्वा पद्मासनं तत्र भद्रासनमथापि वा ॥४०
उत्तानासनकं कृत्वा पर्यंका सनकं तथा ।
यथासुखं तथा स्थित्वा प्रयोगं पुनरेव च ॥४१
कृत्वा पूजां पुरा जातां वट्टकेनैव तारयेत् ।
यदि वा स्वयमेवेह गृहे न नियमोऽस्ति च ॥४२

पूजन के समय पूरे परिवार सहित आवाहन और देव-पूजन करे ।३६। शिवजी के निकट ही अपना आसन कल्पित करे और उत्तराभिमुख होकर आचमन करे ।३७। फिर हाथ धोकर प्राणायाम मूल-मन्त्र से दश बार करे ।३८। फिर पाँचों मुद्रा दिखावे, क्योंकि पूजन हाथ से ही स्थित होता है, इन मुद्राओं को देखकर ही पूजन कार्य सम्पन्न करने का विधान है ।३९। फिर दीपक करके गुरु को नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन से स्थित होकर ।४०। उत्तनासन अथवा पर्यंकासन करके सुख-पूर्वक बैठे ।४१। पहिले के समान पूजन करके टबक से तारण

करके टबक से तारण करें और घर में ही पूजन हो तो इसका नियम नहीं हैं ।४२।

पश्चाच्चैवार्घपात्रेण क्षालयेल्लिंगमुत्तमम् ।
अनन्यमानसो भूत्वा पूजाद्रव्यं निधाय च ।।४३
पश्चाच्चावाहयेद्देवं मन्त्रेणानेन वै नरः ।
कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ।।४४
यथोक्तरूपिणं शंभु निर्गुणं गुणरूपिणम् ।
पञ्चवक्त्रं दशभुज त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ।।४५
कर्पूरगौरं दिव्यांगं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम् ।।४६
वासुक्यादिपरीतांगं पिनाकाद्यायुधान्वितम् ।
सिद्धयोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यंतीह निरंतरम् ।।४७
जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुंजकैः ।
तेजसा दुःसहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ।।४८
शरण्यं सर्वसत्वानां प्रसन्नमुखपंकजम् ।
वेदैः शास्त्रैर्यथा गीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा ।।४९

फिर परसोतम शिवलिंग को अर्घ्यपात में स्नान करावे और किसी दूसरी ओर मन न रखकर, पूजन-द्रव्य का विधान करे ।४३। फिर मन्त्र से आह्वान करे। कैलाश शिखर पर स्थित उमापति ।४४। निर्गुण-सगुण यथोक्त रूप शिव पाँच मुख, दश भुजा तीन नेत्र, वृषभध्वज ।४५। कर्पूर जैसे गोरांग, मस्तक पर चन्द्रमा तथा जटाजूट से शोभायमान, व्याघ्र चर्म का उत्तरीय धारण एवं श्रेष्ठ गजचर्म धारण किये ।४६। वासु की आदि सर्पों को कण्ठ में लपेटे, हाथ में पिनाक आदि आयुध धारण किये हैं, उनके आगे अष्ट सिद्धि निरन्तर नृत्य करती हैं ।४७। जिनके चारों ओर भक्त समूह जय-जयकार कर रहे हैं जो अपने दुःसह तेज के कारण देवताओं से सेवित एवं जुर्लक्ष्य बने हैं, ।४८। जो सब प्राणियों के शरणदाता, प्रसन्न मुखकमल से युक्त, वेद शास्त्रों के गान तथा ब्रह्मा, विष्णु द्वारा भी स्तुत्य हैं ।४९।

भक्तवत्सलमानंदं शिवमावाह्याम्यहम् ।
एवं ध्यात्वाशिवं साम्वमासनं परिकल्पयेत् ॥५०
चतुर्थ्यंतपदेनैव सर्वं कुर्याद्यथाक्रमम् ।
ततः पाद्यं प्रदद्याद्वै ततोऽर्ध्यं शंकराय च ॥५१
ततश्चाच्चमनं कृत्वा संभवे परमात्मने ।
पश्चाच्च पंचभिर्द्रव्यैः स्नापयेच्छंकरं मुदा ॥५२
वेदमन्त्रैर्यथायोग्यं नामभिर्वा समन्त्रकैः ।
चतुर्थ्यंतपदैर्भक्त्या द्राव्याण्येवार्पयेत्तदा ॥५३
तथाभिलषितं द्रव्यमपयेच्छकरोपरि ।
ततश्च वारुणं कारमीयं शिवस्य वै ॥५४
सुगन्धं चन्दनं दद्यादन्यलेपानि यत्नतः ।
ससुगन्धजलेनैव जलधारां प्रकल्पयेत् ॥५५
वेदमंत्रैःषडगैर्वा नामभी रुद्रसंख्यया ।
तथावकाशं तां दत्वा वस्त्रेण मार्जयेत्ततः ॥५६

उन भक्त वत्सल, आनन्दस्वरूप भगवान् सदा शिव को मैं आह्वान करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् आसन की कल्पना करनी चाहिए।५०। चतुर्थ्यन्त पद से सब वस्तुओं का समर्पण करे फिर शिवजी के लिए पाद्य अर्घ्य दे।५१। फिर आचमन करके पंचद्रव्य, घृत, शर्करा, जल आदि से शिवजी को स्नान करावे।५२। वेद मन्त्रों से चतुर्थ्यन्त पद के द्वारा भक्ति-भाव सहित सभी वस्तुएँ अर्पण करे।५३। सभी अभिलाषित पदार्थों को शिवजी पर चढ़ाकर फिर पार्वतीजी को जल-स्नान करावे।५४। फिर सुगन्धित चन्दन अथवा अन्य अनुलेपन पदार्थ लगाकर सुगन्धित जल की धारा चढ़ावे।५५। फिर वेद मन्त्र, षडंग अथवा एकादश नाम से स्नान कराके, वस्त्र से मार्जन करे।५६।

पश्चादाचमनं दद्यात्ततो वस्त्रं समर्पयेत् ।
तिलाश्चैव जवा वापि गोधूमा मुद्गमाषकाः ॥५७
अर्पणीयाः शिवायैवं मन्त्रैर्नानाविधैरपि ।
ततः पुष्पाणि येयानि पञ्चास्याय महात्मने ॥५८

प्रतिवक्त्रं यथाध्यानं यथायोग्याभिलाषतः ।
कमलैः शतपत्रैश्च शंखपुष्पैः परैस्तथा ॥५६
कुशपुष्पैश्च धत्तूरैर्मंदारैर्द्रोणसंभवैः ।
तथा च तुलसीपत्रैर्बिल्पत्रैर्विशेषतः ॥६०
पूजयेत्परया भक्त्या शंकरं भक्तवत्सल ।
सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै ॥६१
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति ।
ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम् ॥६२
अर्पणीयं च विविधं शिवाय परया मुदा ।
ततो धूपः प्रकर्तव्यो गुग्गुलागुरुभिर्मुदः ॥६३

फिर आचमन कराकर वस्त्र भेंट करे और तिल, जौ, गेहूँ, मूँग ।५७। यह सब अनाज मन्त्रोच्चारण पूर्वक शिवजी को भेंट करे और पाँचों मुखों पर पाँच पुष्प समर्पित करे ।५८। प्रत्येक मुख का अपनी अभिलाषा के अनुरूप ध्यान करे, कमल, शतपत्र, तथा शंखपुष्पी के पुष्प ।५६। कुश पुष्प, धतूरा, मन्दार, द्रोण, तुलसी पत्र तथा विल्प पत्रों से ।६६। भक्तवत्सल भगवान् शिवजीका परम भक्ति पूर्वक पूजन करे । यदि अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो बिल्पपत्र ही समर्पित करे ।६१। बिल्व पत्र के समर्पण से ही सब पूजन सिद्ध हो जाता है । फिर सुगन्धित चूर्ण द्वारा सुवासित किया हुआ उत्तम तेल ।६६। प्रसन्नता पूर्वक शिवजी को समर्पित करे, फिर प्रेम पूर्वक गूगल और अगर की धूप दे ।६३।

दीपो देयस्ततस्तस्मै शंकराय घृतप्लुतः ।
अर्घं दद्यात्पुनस्तस्मै मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥६४
कारयेद्भावतो भक्त्या वस्त्रेण मुखमार्जनम् ।
रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर ॥६५
मुक्तिभुक्तिफल देहि गृहीत्वऽर्घं नमोस्तु ते ।
ततो देयं शिवायेव नैवेद्यं विविधं शुभम् ॥६६
तत आचमनं प्रीत्या कारयेद्वा विलम्बतः ।
सतश्शिवाय तांबूल सांगोपांगं विधाय च ॥६७

कुर्यादारार्तिकं पंचवर्तिकामनुसंख्यया ।
पादयोश्च चतुर्वारं द्विःकृत्वो नाभिमण्डले ।६८
एककृत्वे मुखे सप्तकृत्वः सर्वांग एव हि ।
ततो ध्यानं यथोक्तं वै कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् ।।६९
यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्र जपं सुधीः ।।७०

फिर घी से भरा हुआ दीपक आगे रखे और अगले मन्त्र से भक्ति-सहित अर्घ्य प्रदान करे ।६४। फिर भक्ति सहित वस्त्र से मुख मार्जन करे और प्रार्थना करे कि हे देव ! मुझे रूप यश और भोग प्रदान कीजिये ।६५। हे प्रभो ! आपको प्रणाम, आप अर्घ्य को ग्रहण कर मुझे भुक्ति-मुक्ति का फल प्रदान करिये । फिर शिवजी के लिए श्रेष्ठ नैवेद्य भेंट करे ।६६। फिर कुछ देर बाद, प्रीति पूर्वक आचमन करावे और सांगोपांग विधान द्वारा ताम्बूल अर्पण करे ।६७। फिर पाँच बत्ती की आरती करे और चार वार चरणों में तथा नाभि मण्डल में ।६८। एक बार मुख पर तथा सात बार सम्पूर्ण अंग में आरती करे और जैसा कहा गया है, उस प्रकार ध्यान और मन्त्रोच्चारण करे ।६९। यथा संख्या और यथा ज्ञान मनुष्य को मन्त्र विधि करनी उचित है । गुरु द्वारा उपदेशित मार्ग में मन्त्र का जप करता हुआ ।।७०।।

गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् ।
यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः ।।७१
स्तोत्रैर्नानाविधैः प्रीत्या स्तुवीत वृषभध्वजम् ।
ततः प्रदक्षिणां कुर्याच्छिवस्य च शनैः शनैः ।।७२
नमस्कारांस्ततः कुर्यात्साष्टांग विधिवत्पुमान् ।
ततः पुष्पांजलिर्देयो मन्त्रेणानेन भक्तितः ।।७३
शंकराय परेशाय शिवसंतोषहेतवे ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया ।।७४
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकरं ।
तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोहं सदा मृड ।।७५

इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसाद मे ।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेववलंगनत् ।।७६
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शत्रणं प्रभो ।
इत्यादि वहुविज्ञप्तिं कृत्वा सम्यग्विधानतः ।।७७

गुरु के बताए मार्ग के अनुसार ही मन्त्रोच्चारण करे । यथा संख्या और यथा ज्ञान मन्त्र की विधि का उपयोग करे ।७१। तथा प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से शिवजी की स्तुति करे, धीरे २ प्रदक्षिणा करे ।।७२।। फिर विधिवत् साष्टांग नमस्कार कर अगले मन्त्र से भक्ति-भाव पूर्वक पुष्पांजलि समर्पित करे ।३७। "भगवान् शंकर की सन्तुष्टि के निमित्त ज्ञान अथवा अज्ञान से मैंने जो पूजनादि किया है ।७४। हे शंकर! आपकी कृपा से यह सब सफल हो । मेरे प्राण आप में ही हैं । हे शिव ! आप सुख के देने वाले हैं, आप में ही मेरा चित्त है ।७५। हे गौरीपते ! हे भूतनाथ ! इस प्रकार जानकर आप मुझ पर प्रसन्न हों, जिनका पृथ्वी से चरण फिसलता है, उनको अवलम्ब पृथिवी ही है ।७६। आप में जो मेरा अपराध हुआ है उसमें आप ही शरण रूप हैं । इस प्रकार विधिवत् बहुत सी विज्ञप्ति करे ।७७।

पुष्पांजलिं समर्प्यैव पुनः कुर्यान्नतिं मुहुः ।
स्वस्थानं गच्छ देवेश परिबारयुतः प्रभो ।।७८
पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयाऽऽगंतव्यमादरात् ।
इति संप्रार्थ्य बहुशः शंकरं प्रक्तवत्सलम् ।।७९
विसर्जयेत्स्वहृदये तदषो मूर्ध्नि विन्यसेत् ।
इति प्रोक्तमशेषेण मुनयः शिवपूजनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव तिमान्यच्छ्रोतुमर्हथ ।।८०

और पुष्पांजलि भेंट कर बारम्बार प्रणाम करे और निवेदन करे कि हे प्रभो ! आप सपरिवार अपने स्थान को गमन करें ।७८। हे प्रभो ! पूजन के समय यहाँ पुनः पधारने की कृपा करना । इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् शिवजी की अनेक प्रकार से प्रार्थना करे ।७९। और विसर्जन करके उनकी जलमय मूर्ति को अपने हृदय में धारण करे ।

हे मुनीश्वरो ! शिवजी का पूजन इस प्रकार तुमसे कहा है, यह भुक्ति-मुक्ति का दाता है । अब और क्या सुनने की इच्छा है ? ।८०।

※ विशेष पुष्पों से शिव पूजन का फल ※

व्यासशिष्य महाभाग कथय त्वं प्रमाणतः ।
कैः पुष्पै पूजितः शंभुः किं किं यच्छति वै फलम् ।।
शौनकाद्याश्च ऋषयः शृणुतादरतोऽखिलम् ।
कथयाम्यद्य सुप्रीत्या पुष्पार्पण विनिर्णयम् ।।२
एष एव विधि; पृष्टो नारदेन महर्षिणा ।
प्रोवाच परमप्रीत्या पुष्पार्पण विनिर्णयम् ।।३
कमलैर्बिल्वपत्रैश्च शतपत्रैस्तथा पुनः ।
शंखपुष्पैस्तथा देवं लक्ष्मीकामोऽर्चयेच्छिवम् ।।४
एतैश्च लक्षसंख्याकैः पूजितश्चेद्भवेच्छिवः ।
पापहानिस्तथा विप्र लक्ष्मीःस्यान्नात्र संशयः ।।५
विंशतिः कमलानां तु प्रस्थमेकमुदाहृतम् ।
बिल्बो दलससस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ।।६
शतपत्रसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ।
पलैः षोडशभिः प्रस्थः पलं टकदश स्मृतः ।।७

ऋषियों ने कहा—हे व्यास शिष्य सूतजी ! अब आप यह बताइये कि किस २ पुष्प के द्वारा पूजन करने से शिवजी क्या २ फल प्रदान करते हैं ।१। सूतजी ने कहा—हे ऋषियों ! मैं अब पुष्पों के अर्पण का क्रम पूर्वक विवरण करता हूँ; तुम आदर पूर्वक श्रवण करो ।२। यह विधि महर्षि नारद ने भी पूछी थी और ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनके प्रति कही थी ।३। ब्रह्माजी ने कहा था कि कमल, बेलपत्र, शशपत्र या शंखपुष्पी से शिवजी की पूजा करे तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।४। यदि इन एक लक्ष पुष्पों से शिवजी का पूजन करे तो निःसन्देह पाप नष्ट हो और लक्ष्मी की प्राप्ति हो ।५। बीस कमल पुष्पों का एक प्रस्थ

होता है और हजार बेल पत्रों का आधा प्रस्थ होता है ।६। तथा हजार शतपत्र का भी आधा प्रस्थ होता है। सोलह फल का एक प्रस्थ तथा दश टंक का एक पल होता है ॥७॥

अनेनैव तु मानेन तुलामारोपयेद्यदा ।
सर्वान्कामानवाप्नोति निष्कामश्चेच्छिवो भवेत् ॥८
राज्यस्य कामुको यो वै पार्थिवानां च पूजया ।
तोषयेच्छंकरं देवं दशकोटचा मुनीश्वराः ॥९
लिंग शिवं तथा पुष्पमखंड तंदुलं तथा ।
चर्चितं चंदनेनैव जलधारां तथा पुनः ॥१०
प्रीतिरूपं तथा मन्त्रं बिल्वीदलमनुत्तामम् ।
अथवा शतपत्रं च कमलं वा तथा पुनः ॥११
शंखपुष्पैस्तथा प्रोक्तं विशेषेण पुरातनैः ।
सर्वकामफलं दिव्यं परत्रेहापि सर्वथा ॥१२
धूपं दीपं च नैवेद्यमर्घं चारार्तिकं तथा ।
प्रदक्षिणां नमस्कारं क्षमापनविसर्जने ॥१३
कृत्वा सागं तथा भोज्यं कृते येन भवेदिह ।
तस्य वै सर्वथा राज्यं शंकरः प्रददाति च ॥१४

इस परिमाण में तराजू पर चढ़ानेसे कामना रहित होकर पूजन करे तो सब कामनायें प्राप्त होकर शिव रूप हो जाता है जो राज्य चाहता हो वह दश करोड़ पार्थिव पूजा से शिव को प्रसन्न करे। जो मनुष्य शिव लिंग पर पुष्प तथा चावल चढ़ाकर चन्दन और जल धारा अर्पण करे। प्राचीन जनों ने शंख पुष्पों से विशेष रूप से पूजन करने को कहा है। यह इस लोक और परलोक में भी दिव्य कामनाओं का देने वाला है ।८-१२। धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमापन और विसर्जन यह सभी विधिवत् करके जिसने शिवजी को भोग लगाया, उसे भगवान् शिव राज्य प्रदान करते हैं ॥१३-१४॥

प्राधान्यकामुको यो वै तदर्द्धेनार्चयेत्पुमान् ।
कारागृहगतो यो वै लक्षेनैवार्चयेद्धरम् ॥१५

रोगग्रस्तो यदा स्याद्वै यदर्द्धं नार्चयेच्छिवम् ।
कन्याकामो भवेद्यो वै तदर्द्धेन शिवं पुनः ॥१६
विद्याकामस्तथा यः स्यात्तदर्द्धं नार्चयेच्छिवम् ।
वाणीकामो भवेद्यो वै घृतेनैवार्चयेच्छिवम् ॥१७
उच्चाटनार्थं शत्रूणां तन्मितेनैव पूजनम् ।
मारणे वै तु लक्षेण मोहने तु तदर्धतः ॥१८
सामंतानां जये चैव कोटिपूजा प्रशस्यते ।
राज्ञामयुतसंख्यं च वशीकरणकर्मणि ॥१९
यशसे च तथा संख्या वाहनाद्यैः सहस्रिका ।
मुक्तिकामोऽर्चयेच्छंभुं पंचकोट्या सुभक्तितः ॥२०
ज्ञानार्थी पूजयेत्कोट्या शंकरं लोकशंकरम् ।
शिवदर्शनकामो वै तदर्द्धेन प्रपूजयेत् ॥२१

तथा जो व्यक्ति अपनी प्रधानता चाहता हो वह शिवजी का इससे आधा पूजन करे । यदि कारागृह से मुक्त होना चाहे तो एक लाख कमलों से शिवजी की पूजा करनी चाहिये । रोगी मनुष्य पचास हजार कमलों से और कन्या की कामना वाला मनुष्य पच्चीस हजार कमलों से पूजन करे । विद्या प्राप्ति की इच्छा वाला इससे आधा और वाणी की कामना वाले को घृत से पूजन करना चाहिए । शत्रुओं के उच्चाटनार्थ भी उतनी ही पूजा करे, मारण कर्म में एक लाख और मोहन कर्म में पचास हजार पुष्पों का विधान है ।१५-१८। सामन्तों को जीतने में एक करोड़ और राजा के वशीकरण में दस लाख पूजन कहा गया है यश की कामना वाले को भी इतनी पूजा कही है । वाहनादि की प्राप्ति के लिये एक हजार तथा मोक्ष की कामना वाले को पाँच करोड़ पूजन का विधान है ज्ञान की अभिलाषा वाला मनुष्य कल्याणकारी शिवजी को एक करोड़ पुष्पों से पूजे, तथा शिवजी के साक्षात्कार की कामना वाला इससे आधा पूजन करे ॥१९-२१॥

तथा मृत्युंजयो जाप्यः कामकाफलरूपतः ।
पचलक्षा जपा यर्हि प्रत्यक्षं तु भवेच्छिवः ॥२२

लक्षेण भजते कश्चिद्द्वितीये जातिसंभवः ।
तृतीये कामनालाभश्चतुर्थे त प्रपश्यति ॥२३
प ंचमं यदा लक्षं फलं यच्छत्यसंशयम् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण दशलक्षे फलं भवेत् ॥२४
मुक्तिकामो भवेद्यो वै दर्भे ंश्च पूजनश्चरेत् ।
लक्षसंख्या तु सर्व त्र ज्ञातव्या ऋषिसत्तम ॥२५
आयुःकामो भवेद्यो वै दुर्वाभिः पूजनश्चरेत् ॥२६
पुत्रकामो भवेद्यो वै धत्तूरकुसुमैश्चरेत् ॥२६
रक्तदण्डश्च धत्तूरः पूजने शुभदः स्मृतः ।
अगस्त्यकुसुमैश्चैव पूजकस्व महद्यशः ॥२७
भुक्तिमुक्तिफलं तस्य तुलस्या पूजयेद्यदि ।
अर्कपुष्पैः प्रतापश्च कुब्जकह्लारकैस्तथा ॥२८

अन्य कामना प्राप्ति के लिए मृत्यु ंजय का जप कर इसके पाँच लाख विधिवत् जप से शिवजी से साक्षात् होता है । कोई एक लाख से पूजते हैं, दो लाख से जाति का, तीसरे लाख में कामना का और चौथे लाख में शिवजी के दर्शन का लाभ मिलता है । पाँच लाख में पूर्ण फल की प्राप्ति होती है । इसी मन्त्र से दस लाख में सर्वार्थ फल प्राप्त होता है । मोक्ष-कामना वालों को कुशों से पूजन करना चाहिए । हे ऋषियो ! इस पूजन में सर्वत्र लाख संख्या में सामग्री लेनी चाहिए ।२२-२५। आयु की कामना वाले को एक लाख दूर्वा से पूजन करना कहा है । पुत्र की कामना वाले को एक लाख धतूरों से पूजन का विधान है । आल डन्डी वाला धतूरा ही पूजन में ग्रहण करे, अगस्त्य के पुष्पों से पूजा करने वाले को अत्यन्त यश की प्राप्ति होती है । तुलसी के पूजन से भुक्ति-मुक्ति दोनों उपलब्ध होती हैं । कुब्ज कल्हार या आक के पुष्पों से पूजने से प्रताप की वृद्धि होती है ।२६-२८।

जपाकुमुमपूजा तु शत्रू णां मृत्युदा स्मृता ।
रोगोच्चाटनकानीह करवीराणि वै क्रमात् ॥२९
बंधुकैर्भू षणावाप्तिर्जात्या वाहान्न संशयः ।

अतसीपुष्पकैर्देवं विष्णुवल्लभतामियात् ।।३०
शमीपत्रै स्तथा मुक्तिः प्राप्यते पुरुषेण च ।
मल्लिकाकुसुमैर्दत्तैः स्त्रीयं शुभतरां शिवः ।।३१
यूथिकाकुसुमैः शस्तैर्गृहं नैव विमुच्यते ।
कर्णिकारैस्तथा वस्त्रसंपत्तिर्जायते नृणाम् ।।३२
निर्गुण्डीकुसुमैर्लोके मनो निर्मलतां व्रजेत ।
बिल्वपत्रै स्तथा लक्षैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।३३
शृंगारहारपुष्पैस्तु वर्धते सुखसम्पदा ।
ऋतुजातानि पुष्पाणि मुक्तिदानि न संशयः ।।३४
राजिकाकुसुमानीह शत्रूणां मृत्युदानि च ।
एषां लक्षं शिवे दद्याद्द्याच्च विपुलं फलम् ।।३५
विद्यते कुसुमं तन्न यन्नैव शिववल्लभम् ।
चंपकं केतकं हित्वा त्वन्यत्सर्वं समर्पयेत् ।।३६

जपा के पुष्पों से पूजे तो शत्रु नाश और कनेर पुष्पों से पूजे तो रोग नष्ट होते हैं। उच्चाटन कर्म में भी कनेर पुष्प ले। भूषणों की प्राप्ति के लिए बन्धूक के पुष्प और वाहन प्राप्ति के लिए चमेली के पुष्प तथा विष्णु की प्रीति के लिए अलसी के पुष्पों से पूजन करे। मोक्ष प्राप्ति के लिए शमीपत्र से तथा सुन्दर स्त्रियों की कामना वाला मल्लिका के पुष्पों से शिवजी का पूजन करे। यूथिका के पुष्पों से पूजे तो घर में धान्यों का अभाव नहीं होता। कर्णिकार के पुष्पों से पूजे तो वस्त्र और सम्पत्ति की उपलब्धि होती है ।।२९-३२।। निर्गुण्डी के पुष्पों से पूजन मन को स्वच्छ करता है तथा एक लाख बेलपत्रों से पूजे तो सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। हारसिंगार के पुष्पों से पूजा करे तो सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती है तथा ऋतु के उत्पन्न हुये पुष्पों से पूजन करे तो मोक्ष मिलती है। राई के पुष्पों से पूजन करे तो शत्रुओं की मृत्यु होती है और एक लाख पुष्पों के चढ़ाने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है। शिवजी को सभी पुष्प प्रिय हैं, चम्पा और केतकी न चढ़ावे, अन्य सब पुष्प अर्पण करे ।।३३-३६।।

रुद्र संहिता—सती खंड

❋ हिमालय पर शिव और सती का बिहार ❋

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे ।
कैलासक्ष्माभृतः प्राह प्रस्थस्थं वृषभध्वजम् ॥१
देवदेव महादेव शंभो मत्प्राणवल्लभ ।
शृणु मे वचनं नाथ श्रुत्वा तत्कुरु मानद ॥२
घनागमोऽयं संप्राप्तः कालः परमदुःसहः ।
अनेकवर्णमेघौघः संगीनांबरं दिक्चयः ॥३
विवांति वाता हृदयं हारयंतीति वेगिनः ।
कदंबरजसा धौताः पाथोबिन्दुविकर्षणाः ॥४
मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुंचताम् ।
विद्युत्पताकिनां तीव्रैः क्षुब्धं स्यात्कस्य नो मनः ॥५
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघच्छन्नो निशापतिः ।
दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यसनाकरः ॥६
मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनंतः पवनेरिताः ।
पतंत इव लोकानां दृश्यते मूर्ध्नि शंकर ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—एक समय वर्षा ऋतु में शिवजी कैलाश के शिखर पर विराजमान थे, उस समय सती ने उनसे कहा ॥१॥ सती ने कहा—हे देवाधिदेव ! हे प्राणवल्लभ ! हे नाथ ! आप मेरी बात सुनिये और उसके अनुसार कीजिये ॥२॥ हे प्रभो ! यह अत्यन्त दुःसह वर्षा काल आ गया है, अनेक वर्ण के मेघ दशों दिशाओं में आ घिरे हैं ।३। हृदय का हरण करने वाली वायु प्रवाहित हो रही है, कदम्ब के मकरन्द से युक्त जल के छींटे आ रहे हैं ।४। जल धाराओं की वर्षा करते, गर्जते तथा बिजली चमकाते हुए मेघों को देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं हो जायगा ? ॥५॥ यह ऋतु विरही जनों को दुःखदायक है । इसमें दिन

में सूर्य और रात्रि से चन्द्रमा भी प्रकाशित नहीं होता। यह दिवस को रात्रि जैसा रखता हुआ सुशोभित है।६। हे शिव! वायु वेग से प्रेरित हुए मेघ शब्द करते हैं परन्तु एकत्र नहीं ठहरते और लोगों के सिर पर गिरते हुए से लगते हैं ॥७॥

वाताहता महावृक्षा नतन्त इव चांवरे।
दृश्यंते हर भीरूणां त्रासदाः कामुकेप्सिताः ॥८
स्निग्धनीलांजनस्याशु सदिवौघस्य पृष्ठतः।
बलाकराजी चात्युच्चैर्यमुनापृष्ठफेनवत् ॥९
क्षपाक्षयेषु वलयं दृश्यते पलिकागता।
अंबुधाविव मदीप्तपावको वडवामुखः ॥१०
प्रारोहंतीह सस्यानि मन्दिरं प्राङ्गणेष्वपि।
किमन्यत्र विरूपाक्ष सस्योद्भूतिं वदाम्यहम् ॥११
श्यामलै रायतै रक्तविशदोऽयं हिमाचलः।
मन्दराश्रयघोघः पत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ॥१२
असमश्रीश्च कुटिल भेजे यस्याथ किंशुकान्।
उच्चावचान् कलौ लक्ष्मीर्गन्तासंत्यज्य सज्जनान् ॥१३
मंदारस्तनपीलूनां शब्देन हृषिता मृडः।
केकायंते प्रतिवने सततं पृष्ठसूत्रकम्। १४

हे शिव! वायु प्रेरित बड़े-बड़े वृक्ष भी अंतरिक्ष में नृत्य करते से प्रतीत होते हैं, जो भयभीतों को भया वह और कामियों को सुखदायक है।८। चिकने और श्याम वर्ण अंजन जैसे मेघ पर उड़ते हुए बगुलों को पंक्ति यमुना नदी की पीठ पर बहते हुए फेन के समान शोभा दे रही है।९। रात्रि की उपस्थित में कालापन बढ़ जाने से बिजली बलयाकार दिखाई देती है, जिस प्रकार कि समुद्र प्रदीप्त बड़वामुख अनल होती है ॥१०॥ हे विरूपाक्ष! इस अवस्था में मन्दराचल के छोटे वृक्ष जम गये हैं, अन्य स्थान की बात ही क्या है?।११। जैसे पक्षियों से घिरा हुआ दुग्ध का समुद्र शोभा देता है, वैसे ही काले, सफेद तथा लाल मेघों से घिरा हुआ वह पर्वत शोभा दे रहा है ॥१२॥ विभिन्न

प्रकार से सुशोभित वृक्षों के पल्लव अत्यन्त शोभायमान हैं, उसी प्रकार जैसे कि कलि में लक्ष्मी सज्जनों को त्याग कर असज्जनों को प्राप्त होती है ॥१३॥ मन्दराचल के मेघों की ध्वनि से प्रसन्न होकरमोर भी अपनी पीठ दिखाकर नृत्य कर रहे हैं ॥१४॥

मेघोत्सुकानां मधुरश्चातकानां मनोहरः ।
धारासारशरैस्तापं पेतुः प्रतिपथोद्गतम् ॥१५
मेघानां पश्य मद्देहे दुर्नयं करकोत्करैः ।
ये छादयंत्यनुगते मयूरांश्चातकांस्तथा ॥१६
शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम् ।
हर्षं गच्छन्ति गिरिशं विदूरमपि मानसम् ॥१७
एतस्मिन्विषमे काले नीडं काकश्चकोरकाः ।
कुर्वंति त्वां विना गेहान् कथं शांतिमवाप्स्यसि ॥१८
महतीवाद्य नो भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक् ।
यतस्व यस्माद्वासाय माचिरं वचनान्मम ॥१९
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकोश्यामथ क्षितौ ।
तत्रोपयोग्यं संवासं कुरु त्वं वृषभध्वज ॥२०

मेघों की कामना वाले चातकों की मधुर ध्वनि भी सुनाई पड़ रही है ॥१५॥ मेघों की इस दुर्नीति का अवलोकन कीजिए की यह अपने अनुगामी मोरों और चातकों को ओलों से आच्छादित कर देता है ॥१६॥ मोर और सारंग को मित्र से भी हारता देखकर उनका मन हर्षित हो रहा है ॥१७॥ इस विषम समय में कौए और मोर भी अपना घोंसला बनाते हैं तो आप ही बिना घर के किस प्रकार शान्ति प्राप्त करेंगे ॥१८॥ हे पिनाकी ! हे शंकर ! मुझे मेघों से अत्यन्त भय लग रहा है, इसलिए आप मेरी बात मान कर घर का प्रबन्ध कीजिए ॥१९॥ हे वृषभध्वज ! कैलाश, में हिमालय में, काशी में अथवा पृथिवी पर जहां कहीं भी उचित हो, घर का प्रबन्ध आवश्यक है ॥२०॥

एवमुक्तस्तया शंभुर्दाक्षायण्या नथाऽसकृत् ।
संजहास च शीर्षस्थचन्द्ररश्मिस्मितालयम् ॥२१

अथोवाच सतीं देवीं स्मिताभिन्नौष्ठसंपुटः ।
महात्मा सर्वतस्वज्ञास्तोषयन्परमेश्वरः ।२२
यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
मेघास्तत्र न गंतारः कदाचिदपि मत्प्रिये ।।२३
मेघा निबंतपर्यंतं सञ्चरंति महीभृत ।
सदा प्रालेयसानोस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ।।२४
कैलासस्य तथा देवि पादगाः प्रायशो घनाः ।
सञ्चरंति न गच्छन्ति तत ऊर्ध्वं कदाचन ।।२५
सुमेरोर्वा गिरेरूर्ध्वं न गच्छन्ति बलाहकाः ।
जम्बूमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ।।२६
इत्युक्तेषु गिरीन्द्रेषु यस्योपरि भवेद्धि ते ।
मनोरुचिर्निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं हि मे ।।२७
स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शब्दोत्तरं गैर्मधुरस्वनैस्तैर्मुदोपगेयानि गिरौ हिमोत्थे ।।२८

ब्रह्माजी ने कहा—दाक्षायणी की प्रार्थना सुनकर शिवजी को हँसी आई और उनके मस्तक पर स्थित अर्द्धचन्द्र के प्रकाश से वह स्थान प्रकाशमान होगया ।।२१।। फिर सब तत्वों के ज्ञाता शिवजी सती प्रसन्न करते हुए, हँस कर कहने लगे ।।२२।। हे प्रिये ! तुम्हारी प्रन्नता के लिए जो स्थान मैं निश्चत करूँगा, वहाँ मेघ न पहुँच सकेंगे ।।२३।। वर्षा-काल में भी हिमालय के शिखर के नीचे ही मेघ घूमते रहेंगे ।।२४।। और कैलाश के ऊपर तो कभी मेघ आते ही नहीं, नीचे ही रह जाते हैं ।।२५।। पुष्कर आवर्त्तक आदि मेघ जम्बू के मूल तक पहुँचते हैं, सुमेरु के शिखर पर नहीं चढ़ते ।।२६।। इतने पर्वतों में जिस पर तुम रहना चाहो उसे मुझे शीघ्र बताओ। हिमालय पर्वत में सोने के पंख वाले अनिल वृन्द नामक पक्षी अपने मधुर शब्दों के द्वारा तुम्हारे इच्छित विहार की लीलाओं को गावेंगे ।।२७-२८।।

सिद्धाङ्गनास्तेरचितासनाभवमिच्छन्तिचैवोपहृतंसकौतुकम् ।
स्वेच्छाविहारेमणिकुट्टिमेगिरौकुर्वन्तिचेष्यंतिफलादिद.नकैः ।।

फणीन्द्रकन्या गिरिकन्यकाश्च या नागकन्याश्च तुरङ्गमुख्य:।
सर्वास्तुनास्तेसततं सहायतांसमाचरिष्यंत्युनुमोदविभ्रमैः ॥३०
रूपं तदेवमतुलंवदनंमुचारु दृष्ट्वांगनानिजवपुर्निजकांतिसह्यम् ।
हेलानिजेवतुषिरूपगणेषुनित्यंकर्तारइत्यनिमिषेक्षणचारुरूपा: ॥
या मेनका पर्वतराजजाया रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापितेतत्र मनोऽनुमोदं नित्यं करिष्यत्यनुनाथनाद्यैः॥३२
पुरं हि वर्गैर्गिरिराजवंद्यैः प्रीति विचिन्वद्भिरुदाररूपा ।
शिक्षासदातेगलुशोचितापिकार्यान्ऽन्वहंप्रीतियुता गुणाद्यैः ॥३३
विचित्रैः कोकिलालापामोदैः कुंजगणावृतम् ।
सदा वसंतप्रभवं गतुमिच्छमि किं प्रिये ॥३४
नानाबहुजलापूर्णसरः शीतसम वृतम् ।
पद्मिनीशतशोयुक्तमचलेन्द्र हिमालयम् ॥३५

वहाँ तुम्हारे इच्छित व्यवहार के समय सिद्धों की नारियाँ मणिजटित वेद रूप आसन की भूमि को कौतुक सहित भेंट करेंगी तथा विभिन्न प्रकार के फल आदि लाकर तुम्हें अर्पण करेंगी ।२६। नाग कन्या, पर्वत कन्या, तुरङ्गमुखी किन्नरी यह सभी लीला-बिहार के समय श्रेष्ठ वचनों को कहकर तुम्हें प्रसन्न करेंगी । वहाँ की अत्यन्त सुन्दरी सुरनारियां तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य और मनोहर मुख को देखकर अपने रूप-गुण की निन्दा करेंगी और तुम्हारी ओर एकटक देखती रहेंगी ।३०-३१। पर्वतराज की पत्नी मेनका भी तुम्हारे मन को अनेक प्रकार से प्रसन्न करेगी और तुम्हारे अनुकूल रहेगी ॥३२॥ हिमालय की वन्दना करने वाले सब परिवारीजन और पुरजन तुम्हारे प्रति उदार और प्रीतिमय रहेंगे । तुम्हें कुछ सोच होगा तो समझायेंगे । तुम कोकिलाओं के अद्भुत आलाप और मोदमय कुंजो से युक्त तथा बसन्तोत्पत्ति वाले स्थान में जाओगे ।३३-३४। अनेक जलों से सम्पन्न, सरस शीतयुक्त और सैकड़ों कमलनियों से सुशोभित अचल हिमालय हैं ॥३५॥

सर्वकामप्रदैर्वृक्षैः शाद्वलैः कल्पसञ्ज्ञकैः ।
सक्षण पश्य कुसुमान्यथाश्वकरिगोव्रजे ॥३६

प्रशांतश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालये महामाये नानामृगगणैर्युतम् ॥३७
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोरत्नैरभितिः परिशोभितम् ॥३८
हिरण्मयै रत्नालैः पङ्कजैर्मुकुलैर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथाऽसंख्यैः कच्छपैर्मकरैः करैः ॥३९
निषेवितं मञ्जुलैश्च तथा नीलोत्पलादिभिः ।
देवेशि तस्मान्मुक्तैश्च सर्वगंधैश्च कुङ्कुमैः ॥४०
लसद्गंधजलैःशुभ्रैरापूर्णैः स्वच्छकांतिभिः ।
शाद्वलैस्तरुणैस्तुंगैस्तीरस्थैरुपशोभितम् ॥४१
नृत्यत्भिरिव शाखोटैर्वर्जयंतं स्वसम्भवम् ।
कामदेवैः सारसंश्च मत्ताचक्रांगशोभितैः ॥४२

सम्पूर्ण कामनाओं के दाता शाद्वल तथा कल्प वृक्षों से युक्त पुष्पों को गोव्रज के समान क्षण भर के लिये देखो ।३६। यह मुनियों और यतियों से युक्त देवालय है, यहाँ के सभी हिंसक जीव शान्त स्वभाव के हैं तथा यह विभिन्न मृगों से सम्पन्न है ।३७। स्फटिक मणि और स्वर्ण आदि से रचित गौख आदि तथा रजत स्थानों से युक्त मानसरोवर आदि जलाशयों के रत्नों से सब प्रकार सुशोभित है ।३८। सुवर्ण और रत्नों की डंडी वाले कमल, मुकुलों के समूह, शिशुमार तथा असंख्य कच्छप और मकरों से व्याप्त है ।३९। वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल नील कमल सुशोभित है, सब ओर से कुंकुम आदि की सुगन्ध फैल रही है ।४०। स्वच्छ कान्ति वाले सरोवर परिपूर्ण हैं, उनके जलों से सुगन्ध आ रही है, विशाल तरुण तरु तथा शाद्वलों से मेरुराज सुशोभित है ॥४१॥ यहाँ अखरोटों के वृक्षों की शाखायें इस प्रकार हिल रही हैं, जैसे वे नृत्य कर रहे हों, सारस तथा मदमत्त चकवा-चकवी भी यहाँ स्थित हैं ॥४२॥

मधुरारावविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ।
शब्दायमानं च मुदा कामोद्दीसनकारकम् ॥४३
वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।

अग्नेः कोणपराजस्य मारुतस्य परस्य च ॥४४
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरोरुच्चैः सुरालयम् ।
रंभाशचीमेनकादिरं भोरुगणसेवितम् ॥४५
किं त्वमिच्छसि सर्वेषां पर्वतानां हि भूभृताम् ।
सारभूते महारम्ये संविहर्तुं महागिरौ ॥४६
तत्र देवी सखियुता साप्सरोगणमण्डिता ।
नित्यं करिष्यति शची तव योग्यां सहायताम् ॥४७
अथवा मम कैलासे पर्वतेंद्रे समाश्रये ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजिते ॥४८
गङ्गाजलौघप्रयते पूर्णचन्द्रसमप्रभे ।
दरीषु सानुषु सदा ब्रह्मकन्याभ्युदोरिते ॥४९

भौंरे मधुर ध्वनि से गुंजार रहे हैं तथा कमोद्दीपन करने वाले सुन्दर शब्द सब ओर से हो रहे हैं ॥४३॥ इन्द्र,यम,वरुण,अग्नि,कुवेर, कोणपति, पवन आदि की नगरी ॥४४॥ उस मेरु-शिखर पर सुशोभित हैं,वहाँ सम्पूर्ण देवताओं का निवास है तथा रंभा, शची, मेनका आदि अप्सराओं से यह स्थान सुशोभित है ॥४५॥ हे देवि ! इन सब भूमियों के सारभूत अत्यन्त मनोहर महान् पर्वतों में विहार करने की तुम्हें इच्छा है ? ॥४६॥ वहाँ जाने पर सखियों और अप्सराओं सहित शची तुम्हारी सहायिका होंगी ॥४७॥ अथवा तुम्हारी इच्छा सब पर्वतों से ऊँचे तथा कुबेरपुरी के भी ऊपर स्थित पर्वतराज कैलाश में निवास करने की है ? ॥४८॥ जहाँ पूर्ण चन्द्रकान्ति के समान नित्य जल प्रवाहित है, कन्दराओं में ब्रह्म कन्यायें सुन्दर गान करती रहती हैं ॥४९॥

नानामृगगणैर्युक्ते पद्माकाशतावृते ।
सर्वैं गुणैश्च सद्वस्तु सुमेरोरपि सुन्दरि ॥५०
स्थानेष्वेतेषु यत्रापि तवांतःकरणे स्पृहा ।
टेद्रुतं मे समाचक्ष्व वासकर्तास्मि तत ते ॥५१
इती रते शंकरे तदा दाक्षायणी शनैः ।
दमाह महादेवं लक्षणं स्वप्रकाशनम् ॥५२

हिमाद्रावेव वसथुमहमिच्छे त्वया सह ।
नचिपात्कुरु संवासं तस्मिन्नेव महागिरौ ।।५३
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोहितः ।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ।।५४
सिद्धांगनागणयुतमागम्यं चैव पक्षिभिः ।
अगमच्छिखरं रम्य सरसीवनराजितम् ।।५५
विचित्ररूपैः धमलैः शिखरं रत्नकबुरम् ।
बालार्कसदृशं शम्भुराससाद सतीसखः ।।५६

जो अनेक मृग समूहों और सैकड़ों कमलों से व्याप्त,सर्वगुण श्रेष्ठ सुमेरु हैं, वह भी सुन्दर स्थान है ।।५०।। देवि ! इनमें से जिस स्थान को कहो, वहीं वृक्षादि से सुरम्य स्थान देखकर निवास करें ।।५१।। ब्रह्माजी बोले कि शिवजी ने जब इस प्रकार कहा तब सती शिवजी के समक्ष धीरे-धीरे अपने निवास स्थान का लक्षण कहने लगीं ।।५२।। सती ने कहा—हे शिवजी ! मैं आपके साथ हिमालय में निवास करना चाहती हूँ, आप उसी महापर्वत में शीघ्र चल कर निवास कीजिए ।।५३।। ब्रह्माजी ने कहा—सती की बात सुनकर मोहित हुए शिवजी सती के सहित हिमालयके उच्च शिखर में पहुंचे ।।५४।। जो वन सिद्धों की नारियों से सेवित हैं, जहाँ पक्षियों की भी पहुँच नहीं है, उस कमलों से सुशोभित पर्वत के मनोहर शिखर पर पहुँच गये ।।५५।। वह शिखर विचित्र रूप वाले कमलों से चित्रित था । प्रातःकालीन सूर्य के समान दीप्तिमान उस शिखर पर शिवजी सती के सहित पहुँचे ।।५६।।

स्फटिकाभ्रमये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पावल्लिभिः सरसीभिश्च संयुते ।।५७
प्रफुल्लतरुशाखाग्रं गुञ्जद्भ्रमरसेवितम् ।
पंकेरुहेःप्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ।।५८
शोभितं चक्रवाकाद्यैः कादंवैर्हंसशङ्कुभिः ।
प्रमत्तसारसैः क्रौंचैर्नीलस्कन्धैश्च शब्दितः ।।५९

पुंस्कोकिलानां निनदैर्मधुरैर्गणसेवितैः ।
तुरङ्गवदनैः सिद्धैरप्सरोभिश्च गुच्छकैः ।।६०
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विपारितम् ।
पुरं ध्रीभिःपार्वतीभिः कन्याभिरभिसङ्गतम् ।।६१
विपञ्चीतांत्रिकामत्तमृदङ्गपटहस्वनैः ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकैस्थैश्च शोभितम् ।।६२
देविकाभिर्दीर्गिकाभिर्गंधिभिः सुसमावृतम् ।
लफुल्लकुसुमै नित्यं सुकुञ्जरुपशोभितम् ।।६३

वह स्फटिक मणि और अभ्रमय शाद्वल वृक्षों से सुशोभित विचित्र पुष्प-राजी और कमलनियों से सम्पन्न था ।५७। प्रफुल्लित वृक्षों की अगली शाखा पर गुंजारते हुए भ्रमरों से सेवित तथा पंकरुह और नील-कमल के समूह से सम्पन्न ।५८। चक्रवाक, कादम्ब, हंस शंकु मदमत्त सारस तथा नीले कंठ वाले क्रौंच पक्षियों से युक्त एवं शब्दायमान ।५९। कोयलों के मधुर आलाप तथा तुरङ्ग बदन वाले सिद्ध और अप्सराओं से युक्त था ।६०। विद्याधरी देवी और किन्नरियों के बिहार से युक्त तथा पहाड़िन स्त्रियों और कन्याओं से सम्पन्न ।६१। मृदङ्ग, पटह, बीणा और सितार के स्बरों पर नृत्य करती हुई अप्सराओं के कौतुकों से युक्त ।६२। देवताओं द्वारा निर्मित बावड़ी और उनसे आती हुई कमल की गंध से युक्त तथा प्रफुल्लित पुष्पों वाले वृक्षों की कुंजों से सुशोभित ।६३।

शैलराजपुराभ्यर्णे शिखरे वृषभध्वजः ।
सह सत्या चिरं रेमे एवं भूतेषु शोभनम् ।।६४
तस्मिन् स्वर्ग समे स्थाने दिव्यमानेन शङ्करः ।
दशवर्षसहस्राणि रेमे सत्यासमं मुदा ।।६५
स कदाचित्ततः स्थानादन्यद्याति स्थलं हरः ।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवीदेववृतं सदा ।।६६
द्वीपान्नाना तथोद्यानवनानि वसुधातलम् ।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्राभ्येत्य रेमे सतीसुखम् ।।६७
न यज्ञे स दिबरात्रौ क ब्रह्मणि तपः समम् ।

सत्यां हि मनसा शंभुः प्रीतिमेव चकार ह ॥६८
एवं महादेवमुखं सत्यपश्यत्स्म सर्वदा ।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाऽद्राक्षीत्सतीमुखम् ॥६९
एवनन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुषम् ।
वर्द्धयामासतु कालीशिवौ भावांबुसेचनैः ॥७०

सब प्राणियों से सुशोभित शैलराज के उस श्रेष्ठ शिखर पर सती के सहित शिवजी बहुत समय तक स्मरण करते रहे ।६४। उस स्वर्ग जैसे स्थान में सती सहित शंकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक दस हजार देव वर्ष तक बिहार रत रहे ॥६५॥ वे कभी उस स्थान से अन्य स्थान पर जाते और कभी देवी-देवताओं से युक्त मेरु शिखर पर भ्रमण करते ।६६। कभी पृथ्वी के अनेक द्वीप और दिव्य उत्तानों में विचरण करते हुए सती के साथ विहार-रत रहे ।६७। यज्ञ, तप, अपने रूप का चिन्तन आदि का त्याग कर शिवजी ने सती में ही मन को रमा लिया ।६८। इस प्रकार सती सदा शिवजी का मुख देखती और शिवजी सदा सती का मुख देखते रहते ते ।६९। ऐसे पारस्परिक अनुराग में रत शिव और सती ने भाव-रूपी जल का सिंचन कर प्रेम-रूपी वृक्ष की बृद्धि की ।७०।

※ शिव का सती के प्रति मोक्ष शास्त्र कथन ※

सुप्रसन्नं प्रभुं नत्वा सा दक्षतनया सती ।
उवाच सांजलिर्भक्त्या विनयावनता ततः ॥१
ज्ञातुमिच्छामि देवेश परं तत्वं सुखावहम् ।
यं न ससारदुःखाब्द्वै तरेज्जीवोंऽजसा हर ॥२
यत्कृत्वा विषयी जीवः स लभेत्परमं पदमु ।
संसारी न भवेन्नाथ तत्वं वद कृपां कुरु ॥३
इत्यपृच्छत्सम सद्भक्त्या शंकरं सा सती मुने ।
आदिशक्तिर्महेशानी जीवोद्धाराय केवलम् ॥४
आकर्ण्य तच्छिबः स्वामी स्वेच्छयोपात्तविग्रहः ।
अवोचत्परयप्रीतिः सती योगविरक्तधीः ॥५
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दाक्षायणि महेश्वरि ।

परं तत्वं तदेवानुशयी मुक्तो भवेद्यतः ।।६
परतत्वं विजानीहि विज्ञानं परमेश्वरि ।
द्वितीय स्मरणं यत्र नाह ब्रह्मेति शुद्धधीः ।।७

एक समय दक्षसुता सती अपने प्रसन्न हुए स्वामी को प्रणाम कर भक्ति-सहित नम्र होकर बोली ।।१।। हे देवेश ! मैं अब सुखदायक परमतत्व को जाना चाहती हूं । हे शंकर ! जिससे यह जीव भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।२।। विषयी मनुष्य जिसे पाकर परमपद प्राप्त कर लेता है और पुनः संसारी नहीं होता । आप कृपा करके उसी तत्व को मेरे प्रति कहिये ।।३।। ब्रह्माजी ने कहा—सती ने भक्तिपूर्वक शिवजी से इस प्रकार प्रश्न किया और प्राणियों के उद्धार की इच्छा व्यक्त की ।।४।। तब स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले शंकर ने यह बात सुनकर, योग से विरक्त बुद्धि होते हुए सती से कहा ।।५।। शिवजी बोले—हे दक्षसुते ! जिस परमतत्व का ज्ञान प्राप्त कर यह अनुशयी जीव मोक्ष को प्राप्त होता है, उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ, तुम श्रवण करो ।।६।। हे महेशानि ! तुम विज्ञान को ही परमतत्व समझो । उसमें बुद्धिपूर्वक ब्रह्म का ही स्मरण किया जाता है, किसी अन्य का नही ।।७।।

तद्दुर्लभं त्रिलोकेस्मिंस्तज्ज्ञाता विरलः प्रिये ।
यादृशो यः स दासोऽहं ब्रह्म साक्षात्परात्परः ।।८
तन्माता मम भक्तिश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता ।।९
भक्तौ ज्ञाने न वेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् ।
विज्ञानंन भवत्येव सति भक्तिविरोधिन ।।१०
भक्त्या हीनः सदाहं वै तत्प्रभावाद्गृहेष्वपि ।
नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः ।।११
सा भक्तिर्द्विविधा देवि सगुणा निर्गुणा मता ।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा त्ववरा स्मृता ।।१२
नैष्ठिक्यनैष्ठिकी भेदाद्द्विविधे हि ते ।
षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता ।।१३

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ।
तयोर्बहुविधत्वाच्च तत्वं त्वन्यत्र वर्णितम् ॥१४

हे प्रिये ! इस तत्वज्ञान का ज्ञाता कोई विरला ही होता है, यह अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि वह ब्रह्म परे से भी परे हैं, मैं उसका दास हूँ ॥८॥ उस विज्ञान की माता, भुक्ति मुक्ति की दात्री मेरी भक्ति है । परन्तु मेरी भक्ति भी मेरी ही कृपा से सुलभ होती है । उसके नौ प्रकार हैं भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है । भक्ति करने वाला मनुष्य सदा सुखी होता है । जो मनुष्य भक्ति से विरोध करता है, उसे विज्ञान की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है ।९ १०। मैं अपने भक्त के सदा आधीन रहता हूँ, भक्ति के प्रभाव से निम्न जाति वालों के घरों में भी जाता हूँ ॥११॥ वह भक्ति भी सगुण-निर्गुण के भेद से दो प्रकार की है । इसमें प्रथम श्रेष्ठ और दूसरी निम्न है ॥१२॥ दोनों प्रकार की भक्ति भी नैष्ठिकी के और अनैष्ठिकी के भेद से दो-दो प्रकार की हैं, इनमें भी नैष्ठिकी के छः प्रकार और अनैष्ठिकी का एक ही प्रकार है ॥१३॥ इसको विहित और अविहित भेद से ज्ञानी जन अनेक प्रकार की मनाते हैं । अनेक प्रकार की होने से उसका तत्व अन्यत्र कहा गया है ॥१४॥

ते नवांगेउभेज्ञेये वर्णिते मुनिभिः प्रिये ।
वर्णयामि नवांगानि प्रेमतः शृणु दक्षजे ॥१५
श्रवण कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा ।
दास्यं तथाऽर्चनं देवि वंदनं मम सर्वदा ॥१६
सख्यंमात्मापणं चेति नवांगानि विदुर्बुधाः ।
उपांज्ञानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै ॥१७
शृणु देबि नवांगानां लक्षणानि पृथक्-पृथक् ।
मम भक्तैर्मनो दत्वा भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ॥१८
कथादेर्नित्यसम्मानं कुर्वन्देहादिभिर्मुदा ।
स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते ॥१९
हृदाकाशेन संपश्यन् जन्मकर्माणि वै मम ।
प्रीत्योच्चोच्चारण तेषामेतत्कीर्तनमुच्यते ॥२०

व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र सर्वदा ।
निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम् ।।२१

मुनियों ने उन दोनों के अंग नौ प्रकार के बताये हैं, उन नौ अंगों के लक्षण पृथक-पृथक कहता हूँ, तुम उन्हें ध्यान से श्रवण करो ।१५। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन और वन्दन ।१६। सख्य तथा आत्म समर्पण—यह नौ अङ्ग विज्ञजन बताते हैं, और उपांग तो असंख्य हैं ।१७। अब नौ अंगों का लक्षण पृथक-पृथक कहता हूं, मेरा जो भक्त इनमें मन को लगायेगा, उसे भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होगी ।१८। कथा आदि में देह आदि से सम्मान करना चाहिये, स्थिर आसन पर स्थित होकर उसका पान करे, इसे सुनना कहते हैं ।१९। हृदयाकाश में मेरे जन्म-कर्म को देखता हुआ प्रीतिपूर्वक उनका उच्चारण करे, यह कीर्तन कहा जाता है ।२०। मुझको नित्य, सर्वत्र सदा व्यापक मानकर भय-रहित रहकर लोक में सदैव विचरण करे ।२१।

अरुणोदयमारभ्य सेवाकालाञ्चिता हृदा ।
वाक्पाणिपादैस्तस्यार्चासेवन तदुदाहृतम् ।।२२
सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः ।
हृदयामृतभागेन प्रियं दास्यमुदाहृतम् ।।२३
सदा भृत्यनुकूल्येन विधिना मे परात्मने ।
अर्पण षोडशानां वै पाद्यादीनां तदर्चनम् ।।२४
मंत्रोच्चारणध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात् ।
यदष्टागेन भूस्पर्श तद्वै वंदन मुच्यते ।।२५
मंगलामंगल यद्यत्करोतीतीश्वरो हि मे ।
सर्वं तन्मंगलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम् ।।२६
कृत्वा देहादिकं तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम् ।
निर्वाहाय च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम् ।।२७
नवांगानानीति मद्भक्तेर्भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ।
मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च ।।२८

अरुणोदय से आरम्भ करे, सेवा काल में सदा हृदय से निर्भय रहता

हुआ स्मरण करे, इसे नाम स्मरण कहते हैं ।१२। सेवा परायण होकर अपनी इन्द्रियों को प्रभु सेवा में लगावे और हृदय से उनके अमृत का भोग करे और उनका चिन्तन करे, इसे दास्य करते हैं ।२३। भृत्य के समान सदैव मेरी अनुकूलता करे और षोडश प्रकार से मेरी पूजा करे तथा पाद्य अर्घ्य दे, इसे अर्चन कहा गया है ।२४। मन वचन कर्म के द्वारा मन्त्रोच्चारण तथा ध्यान करे और आठों अंगों से पृथिवी का स्पर्श करे, इसे वन्दना कहते हैं ।२५। मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ भी ईश्वरेच्छा से होता है, वह सब मेरे लिए मङ्गल ही है, इस प्रकारका विश्वास सख्य कहा गया है ।२६। देहादि को प्रीतिपूर्वक अर्पण कर देना और स्वयं शून्यत्व का भाव मानना, इसे आत्म-समर्पण कहा गया है ।२७। मेरी भक्ति के यह नवाँग भुक्ति मुक्ति प्रदायक तथा ज्ञानोत्पादक हैं और मेरे लिए अत्यन्त प्रिय हैं ।।२८।।

इत्थं सांगोपांगभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये ।
ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते ।।२६
सर्वकर्मफलोत्पत्तिः मर्वदा त्वत्समप्रिया ।
यच्चियत्ते सा स्थिता नित्य सर्व द, सोऽति मत्प्रियः ।।३०
त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पंथा नास्ति सुखावहः ।
चतुर्युगेषु देवेशि कलौतु सुविशेषतः ।।३१
कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिः नवंयुगेष्वपि ।
यत्प्रभावादहं नित्यं तद्वशो नाम संशयः ।।३२
यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत् ।
बिघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयेः ।।३३
भक्तहेतोरहं देवि कालं क्रोधपरिप्लुतः ।
अहं वह्निता नेत्रभवेन निजरक्षकः ।।३४
किं बहूक्तेन देवेशि भक्ताधीनःसदा ह्यहम् ।
तत्कर्तुः पुरुषस्यातित्रशगो नात्र सशयः ।।३५
इत्थमाकर्ण्य भक्तेस्तु महत्वं दक्षजा सती ।
जहर्षातीव मनसि प्रणनाम शिवं मुदा ।।३६

इस प्रकार की सांगोपाँग भक्ति ज्ञान वैराग्य को उत्पन्न करने वाली एवं परमश्रेष्ठ है । मुक्ति सदा इसकी दासी है ॥ ॥२९॥ इसी के द्वारा सम्पूर्ण कर्म और फल उत्पन्न होते हैं, मेरे लिए यह सदैव तुम्हारे समान ही प्रिय है, जिसके चित्त में इसका वास है, वह मेरा प्रीति भाजन है । ॥३०॥ भक्ति के समान अन्य कोई मार्ग त्रैलोक्य में सुख का देने वाला नहीं है यह चारों युगों में प्रधान मानी गयी है, परन्तु कलियुग में विशेष रूप से हितकारिणी है ॥३१॥ सभी युगों, विशेष कर कलियुग में भक्ति विशेष फल के देने वाली है । इसका प्रत्यक्ष फल होता देखकर मैं सदा इसके वश में रहता हूँ ॥३२॥ लोक में जो पुरुष भक्ति-युक्त होता है मैं सदा उसकी सहायता करता हूँ । उसके यहाँ जो कोई विघ्न उपस्थित करता है, मैं उसके लिए शत्रु हो जाता हूँ ॥३३॥ भक्तों के निमित्त मैं ही काल रूप क्रोध से व्याप्त हूँ । भक्तों के हितार्थ ही मैंने अपने नेत्रों की अग्नि से उसे भस्म कर डाला था ॥३४॥ मैं सदा भक्ति के आधीन हूँ, जो पुरुष भक्ति करता है उसके वश में रहता हूँ ॥३५॥ ब्रह्माजी ने कहा कि शिवजी से इस प्रकार भक्ति का माहात्म्य श्रवण कर सती अत्यन्त प्रसन्न हुई और प्रेत सहित अपने स्वामी को प्रणाम किया ॥३६॥

॥ दक्ष और शिव के विरोध का कारण ॥

पुराऽभवच्च सर्वेषामध्वरो विधिना महान् ।
प्रयागे समवेतानां मुनीमां च महात्मनाम् ॥१
तत्र सिद्धाः समाख्यातः सनकाद्याः सुरर्षयः ।
सप्रजापतयो देवा ज्ञानिनो ब्रह्मदर्शिनः ॥२
अहं समागतस्तत्र परिवारसमन्वितः ।
निगमैरागमैर्युक्तो मूर्तिमद्भिर्महाप्रभैः ॥३
समाजोऽभूद्विचित्रो हि तेषामुत्सवसयुतः ।
ज्ञानवादोऽभवत्तत्र नानाशास्त्रसमुद्भवः ॥४
तस्मिन्नवसरे रुद्रः सभवानीगणः प्रभुः ।
त्रिलोकहितकृत्स्वामी तत्रागात्सूतिकृन्मुने ॥५
दृष्ट्वा शिवं सुराः सर्वे सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।

अनमंस्तं प्रभुं भक्त्या तुष्टुवुश्च तथा ह्यहम् ।६।
तस्थुश्शिवाज्ञया सर्वे यथास्थानं मुदान्विताः ।
प्रभुदर्शनसतुष्टा वर्णयन्तो निजं विधिम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—प्राचीन में प्रयागराज में एकत्र हुए मुनियों द्वारा एक महान् यज्ञ हुआ ।१। उसमें सिद्ध, परमर्षि, देवर्षि, सनकादि, प्रजापति, ब्रह्मज्ञानी तथा देवगण एकत्र हुए ।२। मैं भी सपरिवार वहाँ गया, मेरे साथ निगमागम भी साकार रूप में वहाँ पहुँचे ।३। वहाँ उत्सव के सहित वह विचित्र समाज हुआ और अनेक शास्त्रों का ज्ञान तथा वाद उपस्थित हुआ ।४। उसी अवसर पर पार्वतीपति भी अपने गणों सहित त्रैलोक्य के हित साधनार्थ वहाँ आये ।५। शिवजी को देखते ही सब सिद्धों, देवताओं ऋषियों और मुनियों ने उन्हें अपना प्रभु मानते हुए प्रणाम किया और मैं भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति करने लगा ।६। उस समय शिवजी की आज्ञा से सभी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये और उनके दर्शन करके अपने-अपने भाग्य की सराहना करने लगे ।७।

तस्मिन्नवसरे दक्षः प्रजापपितिः प्रभुः ।
आगमत्तत्र सुप्रीतः सुच्चस्वी यदृच्छया ।८।
मां प्रणम्य स दक्षो हि न्युष्टस्तत्र मदाज्ञया ।
ब्रह्माण्डाधिपतिर्मान्य मानी तत्त्वबसिर्मुखः ।९।
स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च दक्षः सर्वैः सुरर्षिभिः ।
पूजितो वरतेजस्वी करौ वद्ध्वा विनम्रकै ।१०।
नानाविहारकृन्नाथः स्वतंत्रः परमोतिकृत् ।
नानमत्तां तदा दक्षं स्वासनस्थो महेश्वरः ।११।
दृष्ट्वाऽनतं हरं तत्र स मे पुत्रोऽप्रसन्नधीः ।
अकुप्यत्सहसा रुद्रे तदा दक्षः प्रजापतिः ।१२।
क्रूरदृष्ट्या महागर्वो दृष्ट्वा रुद्रं महाप्रभुम् ।
सर्वान्संश्रावयंन्नुच्चैरवोचज्ज्ञानवर्जितः ।१३।
एते हि सर्वे च सुरासुरा भृशं नमति मां विप्रवरास्तथर्षयः ।
कथं ह्यसौ दुजनवन्महामना त्वभूत्तु यः प्रेतपिशाचसवृतः ।।

उसी समय प्रजापतियों के भी पति अत्यन्त तेजस्वी दक्ष वहाँ प्रसन्नता पूर्वक आये ।८। ब्रह्माण्ड के अधिपति होने के अभिमान भर हुए दक्ष ने केवल मुझे प्रणाम किया और मेरी आज्ञा से वहाँ बैठ गये ।९। उस समय सभी देवताओं और ऋषियों ने उन अत्यन्त तेजस्वी दक्ष का स्तुति और प्रणामों से सत्कार किया तथा विनम्रतापूर्वक करबद्ध प्रार्थना की ।१०। परन्तु अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त परम स्वतन्त्र शंकर अपने आसन पर बैठे रहे, उन्होंने दक्ष को प्रणाम नहीं किया ।११। शिवजी को प्रणाम न करता देखकर मेरा पुत्र दक्ष अत्यन्त रुष्ट हुआ और शिवजी पर क्रोध करने लगा ।१२। और अत्यन्त अहंकारपूर्वक उसने क्रूर दृष्टि से शिवजी को देखा तथा उसको सुनाते हुए ज्ञानरहित वाक्य कहे ।१३। दक्ष ने कहा – यह सुर, असुर, विप्र ऋषि सब मुझे देखकर प्रणाम करते हैं, परन्तु प्रेत-पिशाचों से घिरा हुआ, अत्यन्त अभिमानी यह दुर्जन के समान कैसे बैठा रहा ? ।१४।

श्मशानवासी निरपत्रयो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना ।
लुप्तक्रियो भूतपिशाचसेवितो मत्तोऽविधो नीतिविदूषकः सदा ॥
पाखंडिनो दुर्जनपापशीला दृष्ट्वा द्विजं प्रोद्धतनिंदकाश्च ।
वध्वा सकासक्तरतिप्रवीणस्तस्मादमुं शप्तुमहं प्रवृतः ।१६।
इत्येवमुक्त्वा स महाखलस्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं ह्यवोचत् ।
शृण्वत्वती विप्रवरास्तथा सुरा वध्यं हि मे चार्हथ कर्तुमेतम् ॥
रुद्रो ह्ययं यज्ञवहिष्कृतो मे वर्णेष्वतीतोऽय विवर्णरूपः ।
देवैनं भाग लभतां सहैव श्मशानवासी कुलजन्महीनः ।१८।
इति दक्षोक्तमाकर्ण्य भृग्वाद्या बहवो जनाः ।
अगर्हयन् दुष्टसत्वं रुद्रं नत्वाऽमरं बहवो जनाः ।१९।
नन्दी निशम्य तद्वाक्यं लोलाक्षोऽतिरुषान्वितः ।
अब्रवीत्वरितं दक्षं शापं दातुमना गण ।२०।

इस श्मशानसेवी, निर्लज्ज, क्रियाहीन भूत पिशाचों से सेवित, नीति की हँसी उड़ाने वाले ने मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ।१५। इस पाखण्डी, दुर्जन, विप्र निन्दक को सदैव पत्नी में आसक्त रहने के

कारण शाप देने को उद्यत हुआ हूँ ।१६। ब्रह्माजी ने कहा कि इतना कहकर दुष्ट प्रजापति ने क्रोधपूर्वक रुद्र के प्रति कहा—हे विप्रो, देवताओ ! सब सुनो, यह वध के योग्य है ।१७। मैं इसे यज्ञ से बाहर करता हूँ, वर्णों से भी बाहर, विवर्ण रूप, यह आज से देवताओं में यज्ञ भाग प्राप्त न करेगा, क्योंकि यह श्मशान में रहने वाला और कुल-जन्म से हीन है ।१८। ब्रह्माजी बोले कि भृगु आदि अनेक ऋषि दक्ष के वचन सुनकर रुद्र को देवताओं के समान जानकर निन्दा करने लगे ।१९। परन्तु नन्दी के नेत्र लाल हो गए और उसने दक्ष को शाप देते हुए कहा ।२०।

रे रे शठ महामूढ दक्ष दुष्टमते त्वया ।
यज्ञबाह्यो हि मे स्वामी महेशो हि कृतः कथम् ।२१।
यस्य स्मरणमात्रेण भवंति सफला मखाः ।
तीर्थानि च पवित्राणि सोऽयं शप्तो हरः कथम् ।२२।
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्ष दुर्मते ।
वृथोपहसितश्चैवादुष्टो रुद्रो महाप्रभुः ।२३।
येनेदं पाल्यते विश्वं सृष्टमंते विनाशिनम् ।
शप्तोऽयं स कथं रुद्रो महेशो ब्राह्मणाधम ।२४।
एवं निर्भत्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
नन्दिनं च शशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः ।२५।
यूयं सर्वे रुद्रगणा वेदबाह्या भवंतु वै ।
वेदमार्गपरित्यक्तास्तथा त्यक्ता महार्षिभिः ।२६।
पाखंडवादनिरताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
मदिरापाननिरता जटाभस्मास्थिधारिणः ।२७।
इति शप्तास्तथा तेन दक्षेण शिवकिंकराः ।
तच्छ्रुत्वातिरुषाविष्टोऽभवन्नन्दी शिवप्रियः ।२८।

नन्दीश्वर ने कहा—अरे महामूढ़ दक्ष ! तूने मेरे स्वामी महेश्वर को यज्ञ से किस कारण निकाल दिया है ? ।२१। जिनके स्मरण करने से ही यज्ञ सफल होते हैं और तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान् शंकर को तूने शाप कैसे दिया ? ।२२। हे कुबुद्धि वाले दक्ष ! तूने चपलता से

शंकर को व्यर्थ ही शाप दिया है । तूने इन सरल हृदय वाले महाप्रभु की व्यर्थ ही हँसी उड़ाई है ।२३। जो इस संसार को पालन करते और अन्त में विनाश करते हैं, उस रुद्र को तूने कैसे शाप दिया है ।२४। इस प्रकार नन्दीश्वर द्वारा प्रजापति की भर्त्सना किये जाने पर दक्ष क्रोध में भर गया और उसने नन्दी को भी शाप दिया ।२५। दक्ष ने कहा—तुम सभी रुद्रगण वेद से बाहर होंगे तथा महर्षियों द्वारा भी तुम्हारा त्याग किया जायगा ।२६। तुम पाखण्डी, अशिष्ट, मदिरा पीने वाले तथा जटा, भस्म और अस्थियों के धारण करने वाले होंगे ।२७। ब्रह्माजी ने कहा कि दक्ष ने जब इस प्रकार शिवगणों को शाप दिया तब उसे सुनकर नन्दी अत्यन्त क्रोधित हुए ।२८।

प्रत्युचाच दुतं दक्षं गर्वित ं त ं महाखलम् ।
शिलादतनयो नन्दी तेजस्वी शिववल्लभः ।२९।
रे दक्ष शठ दुर्बुद्धे वृथैव शिवकिंकराः ।
शप्तास्ते व्रह्मचापल्याच्छिवतत्वमजानता ।३०।
भृग्वाद्यैर्दुष्टचित्तैश्च मूढः स उपहासिता ।
महाप्रभुर्महेशानो ब्राह्मणत्वादह ंमते ।३१।
ये रुद्रविमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृ ंशाः खलाः ।
रुद्रतेजः प्रभावत्वात्तेषां शापं ददाम्यहम् ।३२।
वेदवादरता यूयं वेदतत्वबहिर्मुखाः ।
भवंतु सतत ं विप्रा नान्यदस्तीति वादिनः ।३३।
कामात्मानः स्वर्गपराः क्रोधलोभमदान्विताः ।
भवंतु समत ं विप्रा भिक्षुका निरपत्रपाः ।३४।
वेदमार्ग ं पुरस्कृत्या ब्राह्मणः शूद्रयाजिनः ।
दरिद्रा वै भविष्यति प्रतिग्रहरताः सदा ।३५।

उस अहंकारी दुष्ट दक्ष से उस शिलादसुत नन्दी ने शीघ्रता से कहा कि अरे दुर्बुद्धि वाले दक्ष ! तू शिव-तत्व से अज्ञान है । तूने ब्रह्म-चपलता से शिवगणों को व्यर्थ ही शाप दिया ।३०। तूने दुष्ट मन वाले भृगु आदि से उपहास कराया और ब्राह्मणत्व अह ंकार में

भर कर महाप्रभु शंकर का निरादर किया।३१। तेरे समान रुद्र से विमुख दुष्ट ब्राह्मणों को मैं रुद्र के तेज प्रभाव से शाप देता हूँ।३२। तुम वेद-वाद परायण होकर भी वेद तत्व का ज्ञान न पा सकोगे। 'कुछ नहीं है' ऐसा ही निरन्तर कहने वाले होंगे।३३। तुम कामना से ही अनुष्ठान करोगे स्वर्ग की इच्छा वाले, लोभ, मद, क्रोध से युक्त, निर्लज्ज तथा भिक्षा माँगने वाले होंगे।३४। वेद-मार्ग की दुहाई देकर कुयज्ञ कराओगे और कुदान लेने वाले दरिद्री होगे।३५।

असत्प्रतिग्रहाश्चैव सर्वे निरयगामिनः।
भविष्यंति सदा दक्ष केचिद्वै ब्रह्मराक्षसाः।३६।
यश्शिवं सुरसामान्यमुद्दिश्य परमेश्वरम्।
द्रुह्यत्यजौ दुष्टमतिस्तत्वतो विमुखो भवेत्।३७।
कूटधर्मेषु गेहेषु सदा ग्राम्यसुकेच्छया।
कर्मतंत्रं वितनुता वेदवादं च शांश्वतम्।३८।
बिनष्टानदकमुखो विस्मृतात्मगतिः पशुः।
भ्रष्टकर्मानियरतो दक्षो बस्तमुखोऽचिरात्।३९।
शप्तास्ते कोपिना तत्र नंदिना ब्राह्मणा यदा।
हाहाकारो महानासीच्छप्तो दक्षेण चेश्वरः।४०।
तदाकर्ण्याहमत्यंतमर्निंदं मुहुर्मुहुः।
भृग्वादीनपि विप्रांश्च वेदसृट् शिवतत्ववित्।४१।
ईश्वरोऽपि वचः श्रुत्वा नंदिनः प्रहसन्निव।
उवाच मधुरं वाक्यं बोधयंस्त सदाशिवः।४२।

तुम सत्य रहित प्रतिग्रह ग्रहण करने के कारण नरकगामी होगे और इनमें भी कोई-कोई तो ब्रह्म राक्षस बनेगा।३६। जिन भगवान् शंकर को तुम सामान्य देवता समझते हो, उनसे द्रोह करने वाला दुष्ट बुद्धि तथा तत्व से विमुख होगा।३७। शंकर-द्रोही कूट-धर्म में रत रहकर घर में पड़े रहेंगे और ग्राम्य सुख की कामना करेंगे तथा कर्म-तन्त्र में लगकर वेद पर विवाद करते रहेंगे।३८। इनके आनन्द का नाश होगा, अपनी गति का ज्ञान विस्मृत हो जाने से पशु रूप होंगे।

कर्मनीति से विमुख होने वाले इस दक्ष का मुख बकरे के समान हो जायगा ।३६। जिस समय क्रोधपूर्वक नन्दीश्वर ने ब्राह्मणों को और दक्ष को शाप दिया, उस समय सर्वत्र महान् हाहाकार मच गया ।४०। यह सुनकर मैंने दक्ष तथा भृगु आदि ब्राह्मणों की इसलिए निन्दा की कि उन्होंने वेद और शिवरत्न का ज्ञान होते हुए भी ऐसा किया ।४१। नन्दी के इन वचनों को सुनकर शंकर हँसे और उसे समझाते हुए कहने लगे ।४२।

शृणु नंदिन् महाप्राज्ञ न कर्तुं क्रोधमर्हसि ।
वृथा शप्तं ब्रह्मकुलं मत्वा शप्तं च मां भ्रमात् ।४३।
वेदो मंत्राक्षरमयः साक्षात्सूक्तमयो भृशम् ।
सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।४४।
तस्मादात्मविदो नित्यं त्वं मा शप रुषान्वितः ।
शप्या न वेदाः केनापि दुर्द्धियाऽपि कदाचन ।४५।
अहं शप्तो न चेदानीं तत्वतो बोद्धमर्हसि ।
शान्तो भव महाधीमन् सनकादिविबोधकः ।४६।
यज्ञोऽहं यज्ञककर्माहं यज्ञांगानि च सर्वशः ।
यज्ञात्मा यज्ञनिरतो यज्ञवाह्योऽहमेव वै ।४७।
कोऽयं कस्त्वमिमे के हि सर्वोऽहमपि तत्वतः ।
इति बुद्धया हि विमृश वृथा शप्तास्त्वया द्विजाः ।४८।
तत्वज्ञानेन निर्हृत्य प्रपंचरचनो भव ।
बुद्धःस्वस्थो महाबुद्धे नन्दिन् क्रोधादिवर्जितः ।४९।

शंकर ने कहा—हे नन्दी ! हे महाप्राज्ञ ! तुमको क्रोध करना उचित नहीं है। तुमने भ्रम से मुझे शाप देता हुआ देखकर ब्रह्मकुल को व्यर्थ ही शाप दे डाला ।४३। वेद मन्त्राक्षर युक्त हैं तथा सूक्त में सभी देहधारियों की आत्मा प्रतिष्ठित है ।४४। इसलिए आत्मज्ञानी होकर तुग क्रोधवश शाप मत दो, वेद कभी किसी दुर्बुद्धि से भी शाप के योग्य नहीं है ।४५। तुम तत्ज्ञान से यह समझ सकते हो कि मैं कभी शापित नहीं हो सकता। हे बुद्धिवन्त ! तुमने सनकादि को ज्ञान दिया था, तुम शान्त होओ ।४६। यज्ञ, यज्ञ के कर्म, यज्ञ के अङ्ग, यज्ञ की आत्मा

यज्ञ में रत, यज्ञ से बाहर सभी में मैं व्याप्त हूँ ।४७। तुम सब कौन हो ? तत्व से विचार कर देखो तो मैं ही हूँ और ऐसा विचार करने से ज्ञात होगा कि ब्राह्मणों को शाप व्यर्थ ही दिया गया ।४८। इस प्रपंच को यत्वज्ञान से जानकर शान्त होओ । क्रोध को त्याग कर स्वस्थ होओ और सम्पूर्ण रहस्य को समझों ४९।

एवं स बोधितस्तेन शम्भुना नन्दिकेश्वरः ।
विवेकपरमो भूत्वा शांतोऽभूत्क्रोधवर्जितः ।५०।
शिवोपि तं प्रबोध्याशु स्वगण प्राणवल्लभम् ।
सगणः स ययौ तस्मात्स्वस्थानं प्रमुदान्वितः ।५१।
दक्षोऽपि स रुषाऽऽविष्टस्तैर्द्विजैः परिवारितः ।
स्वस्थानं च ययौ चित्ते शिवद्रोहपरायणः ।५२।
रुद्रं तदानीं परिशप्यमानं संस्मृत्य दक्षः परया रुषाऽन्वितः ।
श्रद्धां विहायैव स मूढबुद्धिर्निन्दापरोऽभूच्छिवपूजकानाम् ।५३।
इत्यक्तो दक्षदुर्बुद्धिः शंभुना परमात्मना ।
परां बुद्धिषणां तस्य शृणु तात वदाम्यहम् ।५४।

ब्रह्माजी ने कहा—जब भगवान् शंकर ने इस प्रकार नन्दीश्वर को समझाया तब उन्हें परम बोध हुआ और क्रोध को छोड़कर वे शान्त हुए ।५०। इस प्रकार अपने प्रिय गण को समझा कर शिवजी गणों सहित उस स्थान से चले गये ।५१। तथा दक्ष भी मन में शिव के प्रति द्रोह धारण किए ब्राह्मणों सहित क्रोधपूर्वक अपने स्थान को गये ।५२। इस प्रकार शंकर को शाप देकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए दक्ष ने मूर्खता वश शिवपूजकों की निन्दा करना प्रारम्भ किया ।५३। दुर्बुद्धि दक्ष की शंकर के प्रति धृष्टता का वर्णन किया गया, अब शंकर के द्वारा जो प्रतिक्रिया हुई उसे ध्यानपूर्व सुनो ।५४।

दक्ष यज्ञ में शिव भाग न होने पर दधीचि का विरोध

एकदा तु मुने तेन यज्ञः प्रारंभितो महान् ।
तत्राहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेन सुरर्षयः ।१।
महर्षयोऽखिलास्तत्र निर्जराश्च समागताः ।

यद्यज्ञकरणार्थं हि शिवमायाविमोहिताः ।२।
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च वामदेवस्तथा भृगुः ।
दधीचिर्भगवान् व्यासो भारद्वाजोऽथ गौतमः ।३।
पैलः पराशरो गर्गो भार्गवः ककुभः सितः ।
सुमंतुत्रिककंकाश्च वैशंपायन एव च ।४।
एते चान्ये च वहवो मुनयो हर्षिता ययुः ।
मम पुत्रस्य दक्षस्या सदाराः ससुता मखम् ।५।
तथा सर्वे सुरगणा लोकपाला महोदयाः ।
तथोपनिर्जराः सर्वे स्वोपकारबलान्विताः ।६।
सत्यलोकात्समानीतो नुनोऽहं बिश्वकारकः ।
ससुतः सपरीवारो मूर्तवेदादिसंयुनः ।७।

ब्रह्माजी ने कदा—हे नारदजी ! उस समय दक्ष ने एक महायज्ञ का आरम्भ किया और दीक्षा लेकर सभी महर्षियों को आमन्त्रित किया ।१। शिवमाया में मोहित देवगण और ऋषिगण यज्ञ कराने के लिए वहाँ पहुँचे ।२। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, व्यास, भरद्वाज तथा गौतम ।३। पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुपसित, सुमन्तत्रिक, कंक और वैशंपायन ।४। तथा अन्य अनेक मुनि प्रसन्न होकर वहाँ आये । यह सभी स्त्री-पुत्रों सहित दक्ष के यज्ञ में उपस्थित हुए ।५। इसी प्रकार सभी देवता, लोकपाल तथा अन्य देवता, उपकरण तथा बल से सम्पन्न वहाँ आये ।६। सत्यलोक से मुझे भी प्रार्थना करके आमन्त्रित किया गया और मैं भी सपरिवार तथा मूर्त वेद शास्त्रादि के सहित वहाँ पहुंचा ।७।

वैकुन्ठाच्च तथा विश्णुः संप्रार्थ्य विविधादरात् ।
सपार्षदपरीवारः समानीतो मखं प्रति ।८।
एवमन्ये समायाता दक्षयज्ञं विमोहिताः ।
सत्कृतास्तेन दक्षेण सर्वे ते हि दुरात्मना ।९।
भवनानि महार्हाणि सुप्रभाणि महांति च ।
त्वष्ट्रा कृतानि दिव्यानि तेभ्यो दत्तानि तेन वै ।१०।

तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथायोग्यं च संस्थिताः ।
सम्मानित अराजस्ते सकला विष्णुना मया ।११।
वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तदा ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्यश्च तपोधनाः ।१२।
अधिष्टाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः ।
अहं तत्राभदं ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ।१३।
तथैव सर्वे दिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
सायुधाः सपरीवाराः कुतूहलकराः सदा ।१४।

अत्यन्त आदर सहित वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु को बुलाया और वे भी अपने पार्षद तथा परिवार सहित पधारे ।८। अन्य अनेक महात्मा मोहित होकर दक्ष-यज्ञमें आये और उस शिवद्रोही दक्षने सभी का सत्कार किया ।९। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अत्यन्त प्रकाशमान भवन उन सबको रहने के लिए बता दिए ।१०। उन स्थानों में मेरे और नारायण के सहित सभी देवता सम्मानित होकर विराजमान हुए ।११। यह महायज्ञ उस कनखल तीर्थ में जैसे ही प्रारम्भ हुआ, उस समय भृगु आदि तपस्वी उसमें ऋत्विक् बने ।१२। सब मरुद्गणों के सहित विष्णु इसमें अधिष्ठाता हुए और त्रयी की विधि का ज्ञाता मैं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुआ ।१३। इसी प्रकार सब दिक्पाल यज्ञमें द्वारपाल रूप से उसके रक्षक हुए, वे हाथों में आयुध धारण किए उस कुतूहल में सपरिवार संलग्नथे ।१४।

उपस्तस्थे स्वयं यज्ञः सुरूपस्तस्य चाध्वरे ।
सर्वे महानिश्रेष्ठाः स्वयं वेदधराऽभवन् ।१५।
तननूपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः ।
हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ।१६।
अष्टाशीतिसहस्राणि जुह्वन्ति सह ऋत्विजः ।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ।१७।
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ।
सप्तर्षयः समा गाथाः कुर्वंतिस्म पृथक्पृथक् ।१८।
गंधर्वविद्याधरसिद्धसंधानादित्यसंधान् सयगणान् सयज्ञान् ।

संख्यावरान्नाग चरान् समस्तान् वव्रे स दक्षो हि महाध्वरे स्वे।१६।
द्विजर्षिराजर्षिसुरर्षिसंघा नृपाः समित्राः सचिवाः ससैन्याः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवाश्च सर्वे वृतास्तेन मखोपवेत्राः ।२०।

दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमंगलः ।
भार्यया सहितो रेजे कृतस्वस्त्ययनो भृशम् ।२१।

उस स्थान पर यज्ञ भी अपने स्वरूप में स्थित हो गया तथा सब महामुनि स्वयं ही वेद के धारण करने वाले हुए ।१५। अग्नि ने अपने सहस्रों रूप धारण किए और उस महोत्सवयुक्त यज्ञ में आहुति ग्रहण करने लगे ।१६। अठासी हजार ऋषि आहुति दे रहे थे और चौंसठ हजार ऋषि उसमें उद्‌गाता थे ।१७। इतने ही अध्वर्य तथा होता थे तथा नारद आदि सप्तर्षि पृथक्-पृथक् गाथा गान कर रहे थे ।१८। गन्धर्व, विद्याधर तथा सिद्धों के समूह, आदित्यगण,यज्ञगण, समस्त संख्या वाले नाग तथा समस्त चर दक्ष द्वारा यज्ञ में वरण किये गए थे ।१६। ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मित्र, मन्त्री, तथा सेना सहित सभी राजा, वसु तथा गण देवताओ को दक्ष ने वरण किया था ।२०। कौतुक मंगल के उपरान्त दक्ष ने दीक्षा ग्रहण की तथा स्वस्तिवाचन के पश्चात् भार्या सहित सुशोभित हुआ ।२१।

तस्मिन् यज्ञे वृतः शंभुर्न दक्षेण दुरात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ।२२।
कपालिभार्येति सती दयिता स्वसुतापि च ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेणागुणदर्शिना ।२३।
एवं प्रवर्तमाने हि दक्षयज्ञ महोत्सवे ।
स्वकार्यमग्नास्तत्रासन् सर्वे तेऽध्वरसंमताः ।२४।
एतस्मिन्नंतरे तत्रादृष्ट्वा वै शंकरं प्रभुम् ।
प्रोद्विग्नमानसः शैवोः दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।२५।
सर्वे शृणुत मद्वाक्यं देवर्षिप्रमुखा मुदा ।
कस्मान्नै वागता शंभुरश्मिन् यज्ञे महोत्सवे ।२६।
एते सुरेशा मुनयो सहत्तराः सलोकपालाश्च समागता हि ।

तथापियज्ञस्तु न शोभतेभृशपिनाकिना तेन महात्मना विना।२७।
येनैव सर्वाण्यपि मंगलानि भवति शंसन्ति महाविपश्चितः ।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्रपुमान् पुराणो वृषध्वजो नीलगलः परेशः ।२८।

परन्तु उस दुरात्मा ने शिवजी को कपाली और अयोग्य कहकर उस यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया ।२२। यद्यपि उसको अपनी कन्या सती अन्यन्त प्रिय थी, किन्तु वह कपाली की पत्नी है, ऐसा विचार कर उसे भी यज्ञ में नहीं बुलाया ।२३। इस प्रकार दक्ष के यज्ञ महोत्सव का आरम्भ हुआ और सभी अध्वर्यु अपने कार्य में तत्पर हुए ।२४। तब वहाँ अपने स्वामी भगवान् शिव को न देखकर परम शैव्य दधीचि ने उद्विग्न मन से कहा ।२५। दधीचि ने कहा—सभी देवगण और ऋषिगण इस सभा में मेरा प्रश्न सुनें कि इस यज्ञ महोत्सव में भगवान् शंकर क्यों नहीं पधारे ? ।२६।सभी सुरेश्वर,मुनीश्वर और लोकपाल इस यज्ञ में उपस्थित हैं, परन्तु महात्मा शिवजी के अभाव में यह यज्ञ शोभा नहीं पा रहा है ।२७। महात्मा जन जिनके द्वारा सम्पूर्ण मंगल होना कहते हैं, उन्हीं पुराण पुरुष, वृषमध्वज, नीलकण्ड के यहाँ दर्शन नहीं हो रहे हैं ।२८।

अमंगलान्येव च मंगलानि भवन्ति येनाधिगताधि दक्ष ।
त्रिपंचकेचाप्यथ मंगलानि भवन्ति सद्यः परतः पुराणि ।२९।
तस्मात्वयैव कर्तव्यमाह्नानं परमेशितुः ।
त्वरितं ब्रह्मणा वापि विष्णुना प्रभाविष्णुना ।३०।
इन्द्रेण लोकपालैश्च द्विजैः सिद्धैः सहाधुना ।
सर्वथाऽऽनयनीयोऽसौ शंकरो यज्ञपूर्त्यै ।३१।
सर्वैर्भद्भिर्गन्तव्यं नत्र देवो महेश्वः ।
दाक्षायण्या समं शम्भुमानयध्वं त्वरान्विताः ।३२।
तेन सर्वं पवित्रं स्याच्छम्भुना परमात्मना ।
अत्रागतेन देवेशाः सांबेन परमात्मना ।३३।
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या समग्रं सुकृतं भवेत् ।

तस्मात्सर्वं प्रय।नेन ह्यानेतव्यो वृषध्वजः ।३४।
समागते शंकरेऽत्र पावनो हि भवेन्मखः ।
भविष्यत्यन्यथाऽपूर्णः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।३५।

जिनके पाते ही सम्पूर्ण अमंगल मंगल रूप हो जाते है और आठों दिशायें मंगल से परिपूर्ण हो जाती हैं ।२६। इसलिए ब्रह्माजी या भगवान् विष्णु को भेज कर शीघ्र ही भगवान् शंकर को यहाँ बुलाना चाहिए ।३०। इन्द्र, लोकपाल या सिद्ध ब्राह्मणों के सहित यज्ञ पूर्ति के लिए शंकर को यहाँ शीघ्र लाना चाहिये ।३१। अथवा सभी उन महेश्वर के पास जाकर उन्हें दक्ष-सुता सहित यहाँ ले आवें ।३२। यदि वे देवेश यहाँ सती सहित आ गये तो यह यज्ञ पवित्र हो जायगा ।३३। उनके स्मरण करने अथवा नामोच्चारण करने से सब सुकृत होता है, उन बृषभध्वज को प्रयत्नपूर्वक यहाँ लाना चाहिए ।३४। मैं सत्य कहता हूँ कि शंकर के आने से ही यज्ञ पवित्र होगा, अन्वथा अपूर्ण ही रह जायगा ।३५।

तस्य तद्वचन श्रुत्वा दक्षो रोषसमन्वितः ।
उवाच त्वरितं मूढः प्रहसन्निव दुष्टधीः ।३६।
मूलं विष्णुर्देवतानां यत्र धर्मः सनातनः ।
समानीतो मया सम्यक् किमूनं यज्ञकर्मणि ।३७।
यस्मिन्वेदाश्च यज्ञाश्च कर्माणि विविधानि च ।
प्रमिष्ठितानि सर्वाणि सोऽसौ विष्णुरिहागतः ।३८।
सत्यलोकात्समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वेदैः सोपनिषद्भिश्च विविधैरागमैः सहः ।३६।
तथा सूरगणैः साकमागतः सुरराट् स्वयम् ।
तथा यूयं समायाता ऋषयो वीतकल्मषाः ।४०।
ये ये यज्ञोचिता शांताः पात्रभूताः समागताः ।
वेदवेदार्थतत्वज्ञाः सर्वे यूयं दृढव्रता ।४१।

ब्रह्माजी ने कहा कि दधीचि के इस प्रकार वचन सुनकर दक्ष अत्यन्त

क्रोधित हुआ और अहंकार से हँसता हुआ कहने लगा ।३६। विष्णु भगवान् देवताओं के मूल हैं और सनातन धर्म उन्हीं में स्थित है, मैंने उनको इस यज्ञ में बुला ही लिया है तो अब न्यूनता ही क्या रह गयी ? ।३७। जिन विष्णु भगवान् में अनेक कर्म, यज्ञ और वेद भी स्थित हैं, वे यहाँ साक्षात् उपस्थित हैं ।३८। सत्यलोक से लोक पितामह ब्रह्मा भी आ गये हैं तथा उपनिषद और आगम भी मूर्त रूप से उनके साथ यहाँ हैं ।३९। सब देवताओं के सहित देवराज यहाँ हैं ही और आप सब पाप-रहित ऋषिगण भी यहाँ हैं ।४०। यज्ञ में उचित पात्र रूप वेद वेदार्थ के तत्व-ज्ञाता एवं दृढ़वती जितने भी हैं, वे सभी यहाँ आ गये हैं ।४१।

अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणापि प्रयोजनम् ।
कन्या दत्ता मया विप्र ब्रह्मणा नोदितेन हि ।४२।
हरोऽकुलीनोऽसौ विप्र पितृमातृविवर्जितः ।
भूतप्रेतपिशाचानां परेतिको दुरत्ययः ।४३।
आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः ।
कर्मण्यस्मिन्न योन्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना ।४४।
तस्मात्त्वयेदृशं वाक्यं पुनर्वाच्यं न हि क्वचित् ।
सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान् ।४५।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत ।
सर्वेषां श्वण्वतां देवमुनीनां सारसंयुतम् ।४६।
अयज्ञोऽयं महाजातो विना तेन शिवेन हि ।
विनाशोऽपि विशेषेण ह्यत्र ते हि भविष्यति ।४७।
एवमुक्त्वा दधीचोऽसावेक एव विनिर्गतः ।
यज्ञावाटाच्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमं ययौ ।४८।
ततोऽन्ये शांकहा ये च मुख्याश्शिवमतानुगाः ।
निर्युयुः स्वाश्रमान् सद्यः शापं दत्त्वा तथैव च ।४९।

फिर रुद्र से हमें क्या प्रयोजन है ? ब्रह्माजी की आज्ञा से मैंने अपनी कन्या उनको दी थी ।४२। परन्तु, हे ब्रह्मन् ! वे तो अकुलीन,

माता-पिता हीन तथा भूत:पिशाचों के अधिपत और दुर्गम हैं ।४३। आत्मा की सम्भावना से युक्त, स्तब्ध, अहंकारी, कर्म में अयोग्य होने के कारण मैंने उन्हें नहीं बुलाया है ।४४। इसलिए आप सब मिलकर ही मेरे यज्ञ को सफल करें और रुद्र के विषय में फिर कुछ न कहें ।४५। ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष की बात सुनकर दधीचि ने पुनः कहा, जिसे देवता, मुनि आदि सब ने सुना ।४६। दधीचि बोले—शिवजी के बिना यह यज्ञ, अयज्ञ ही है, इससे तुम नष्ट हो जाओगे ।४७। इतना कहकर दधीचि वहाँ से उठकर चले गए और अपने आश्रम में जा पहुँचे ।४८। इनके पश्चात् जो भी शिवभक्त वहाँ आये थे, सभी दक्ष को शाप देकर अपने-अपने स्थान को गए ।४९।

मुनो विनिर्गते तस्मिन् मखादन्येषु दुष्टधीः ।
शिवद्रोही मुनीन् दक्षः प्रहसन्निदमब्रबीत् ।५०।
गतः शिवप्रियो विप्रो दधीचो नाम नामतः ।
अन्ये तथाविधा ये च गतास्ते मम चाध्वरात् ।५१।
एतच्छुभतरं जातं ममतं मे हि सर्वदा ।
सत्यं ब्रवीमि देवेश सुराश्च मुनयस्तथा ।५२।
विनष्टचित्ता मंदाश्च मिथ्यावादरताः खलाः ।
वेदवाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते मखकर्मणि ।५३।
वेदवादरतायूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः ।
यज्ञं मे सफलं विप्राः सुराः कुर्वन्तु मा चिरम् ।५४।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिव मायाविमोहिताः ।
यन्मखे देवयजनं चक्रुः सर्वे सुरर्षयः ।५५।
इति तन्मखशापो हि वर्णितौ मे मुनीश्वर ।
यज्ञविध्वंसयोगोऽपि प्रोच्यते शृणु सदारम् ।५६।

जब कुछ अन्य मुनिगण भी बहाँ से चले गये तब वह शिवद्रोही दक्ष उपस्थित जनों से कहने लगा ।५०। दक्ष ने कहा—शंकर का प्रिय दधीचि यहाँ से चला गया और उस जैसे अन्य व्यक्ति भी यहाँ से उठकर चले गये ।५१। यह अत्यन्त शुभ हुआ, मैं भी यही चाहता था, मैं

यह सत्य ही कह रहा हूँ ।५२। जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई हो, आत्मा अस्वच्छ हों, मिथ्यावाद में रत हों, वेद से विरुद्ध तथा दुराचार से प्रवृत्त हों, ऐसों को कभी भी यज्ञ में न बुलावे ।५३। विष्णु आदि आप सभी वेदवाद में निरत हैं। हे विप्रो ! हे देवताओ ! आप ही मेरे यज्ञ को सफल कीजिए ।५४। ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष के ऐसे वचन सुनकर शिवमाया में मोहित हुए देवता और ऋषि उस यज्ञ में देव-यजन करने लगे ।५। इस प्रकार यज्ञ में शाप देने का वर्णन हुआ अब यज्ञ विध्वंस का वृत्तान्त आदर सहित श्रवण करो ।५६।

।। सती का पिता के यज्ञ में जाने के लिये आग्रह ।।

यदा ययुर्दक्षमखमुत्सवेन सुरर्षयः ।
तस्मिन्नेवांतर देवी पर्वते गन्धमादने ।१।
धारागृहे वितानेन सखीभिः परिवारिता ।
दाक्षायणी महाक्रीड़ाश्चकार विविधाः सती ।२।
क्रीडासक्ता तदा देवी ददर्शाथ मुद्रा सती ।
दक्षयज्ञे प्रयांत च रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ।३।
दृष्ट्वा सीमंतया भूतां विजयां प्राह सा सती ।
स्वसखप्रवरां प्राणप्रियां सा हि हितावहाम् ।४।
हे सखीप्रवरे प्राणप्रिये त्वं विजये मम ।
क्व गमिष्यति चन्द्रोऽयं रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ।५।
तथोक्ता विजया सत्या गत्वा तत्सन्निधौ द्रुतम् ।
क्व गच्छसीति पप्रच्छ शशिनं यथोचितम् ।६।
विजयोक्तमयाकर्ण्यं स्वयात्रां पूर्वमादरात् ।
कथितं तेन तत्सर्वं दक्षयज्ञोत्सवादिकम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—जब दक्ष-यज्ञ के लिए देवता और ऋषि जा रहे थे, उस अवसर पर सती गन्धमादन पर्वत पर ।१। वितान के नीचे अपनी सखियों के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ा में रत थीं ।२। उस क्रीड़ा के समय सती ने दक्ष-यज्ञ में जाती हुई रोहिणी के विषय में पूछा ।३। उसको शृंगार करते हुये देखकर सती ने विजया से कहा, क्योंकि

विजय सती की अत्यन्त प्रिय सखी तथा हितसाधिका थी ।४। सती ने कहा—हे विजया ! तू मेरी अत्यन्त प्रिय सखी है । यह चन्द्रमा कहाँ जा रहा है, यह बात तू रोहिणी से जाकर पूछ ।५। ब्रह्माजी ने कहा—सती की बात सुनकर विजया ने चन्द्रमा के पास जाकर पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो ? ।६। विजया की बात सुनकर चन्द्रमा ने दक्ष के यहाँ यज्ञ महोत्सव का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर अपने वहाँ जाने की बात बताई ।७।

तच्छ्रुत्वा विजया देवीं त्वरिता जातसंभ्रमा ।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्त शशिना सतीम् ।८।
तच्छ्रुत्वा कालिका देवी विस्मिताभूत्सती तदा ।
विमृश्य कारणं तत्राज्ञात्वा चेतस्यचिंतयत् ।९।
दक्षः पिता मे माता च वीरिणी नो कुतः सती ।
आह्वानं न करोति स्म विस्मृता मां प्रियां सुताम् ।१०।
पृच्छेयं शंकरं तत्र कारणं सर्वमादरात् ।
चितयित्वेति सासीद्वै तत्र गन्तुं सुनिश्चया ।११।
अथ दाक्षायणी देवी विजयां प्रवरां सखीम् ।
स्थापयित्वा द्रुतं तत्र समगच्छच्छिवांतिकम् ।१२।
ददर्श तं सभामध्ये संस्थितं बहुभिर्गणैः ।
नद्यादिभिर्महावीरैः प्रवरैर्यूथयूथपैः ।१३।
दृष्ट्वा तत्प्रभुमीशानं स्वपति साथ दक्षजा ।
प्रष्टुं तत्कारणं शीघ्रं प्राप शंकरसंनिधम् ।१४-१५।

यह सुनकर विजया अत्यन्त विस्मित हुई और उसने सती के पास आकर वह सब वृत्तान्त कह सुनाया, जो उससे चन्द्रमा ने कहा था ।८। यह सुनकर सती को भी बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका कारण समझ में न आने से वह सोचने लगी ।९। दक्ष मेरे पिता हैं, मेरी माता वीरिणी हैं, इन्होंने मुझे यज्ञोत्सव में क्यों नहीं बुलाया ? मुझे वे क्यों भूल गये ? ।१०। मैं शिवजी के पास चलकर इसका कारण पूछूँ, यह सोचकर शिवजी के पास जाने का निश्चय किया ।११। सती विजया

को वहीं छोड़कर शिवजी के पास शीघ्रता से पहुंची ॥१२॥ यहाँ सभा जुड़ी हुई देखी—नन्दी आदि महागणों के मध्य में शिवजी विराजमान थे ॥१३॥ दक्षसुता ने अपने पति को इस प्रकार यूथपों के बीच में देखा और वह शीघ्रता से उनके समीप जा पहुँची ॥१४-१५॥

अथ शंभुर्महालीलः सर्वेशः सुखदः सताम् ।
सतीमुवाच त्वरितं गणमध्यस्थ आदरात् ॥१६
किमर्थमागताऽत्र त्वं सभामध्ये सविस्मया ।
कारणं तस्य सुप्रीत्या शीघ्रं वद सुमध्यमे ॥१७
एवमुक्ता तदा तेन महेशेन मुनीश्वर ।
सांजलिः सुप्रणम्याशु भत्युवाच प्रभुं शिवा ॥१८
पितुर्मम महान्यज्ञो भवतीति मया श्रुतम् ।
तत्रोत्सवो महानस्ति समवेताः सुरर्षयः ॥१९
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
गमनं देवदेवेश तत्सर्वं कथय प्रभो ॥२०
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिः ।
कुर्वन्ति यन्महादेव सुहृदः प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥२१

उस समय महाकौतुकी एवं सत्पुरुषों के लिए कल्याणप्रद शिवजी गणों के मध्य बैठे हुए ही सती से बोले ॥१६॥ शिवजी ने कहा—तुम आश्चर्यचकित-सी इतनी द्रुत-गति से सभा के मध्य क्यों आई हो, यह मुझे शीघ्र बताओ ॥१७॥ ब्रह्माजी ने कहा कि शंकर के इस प्रकार कहने पर सती ने हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा ॥१८॥ सती बोली—हे प्रभो ! मेरे पिता के यहाँ महान् यज्ञ हो रहा है, ऐसा मैंने सुना है। उस महोत्सव में सब ऋषि मुनि एकत्र हुए हैं ॥१९॥ आपको मेरे पिता का यज्ञ अच्छा क्यों नहीं लगा ? आप वहाँ क्यों नहीं गये ? यह मुझे बताइये ॥२०॥ सुहृदों का सुहृयों से मिलन परम धर्म है। आप भी प्रीति की वृद्धि करने वाली इस नीति का पालन करें ॥२१॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मया गच्छ सह प्रभो ।
यज्ञवाटं पितुर्मेद्य स्वामिन् प्रार्थनया मम ॥२२

तस्यास्तद्ववचनं श्रुत्वा सत्या देवोश्वरः।
दक्षवागिषुहृद्विद्धो बभाषे सूनृतं वचः ॥२३
दक्षस्तव पिता देवि मम द्रोही विशेषतः ॥२४
यस्य मे मानिनः सर्वे ससुरर्षिमुखाः परे।
ते मूढा यजनं प्राप्ताः पितुस्ते ज्ञानवर्जिताः ॥२५
अनाहूताच्च ये देवि गच्छंति परमंदिरम्।
अवमानं प्राप्नुवंति मरणादधिकं तथा ॥२६
परालयं गतोऽपीन्द्रो लघुर्भवति तद्विधः।
का कथा च परेषां वै रीढा यात्रा हि तद्विधा ॥२७
तस्मात्त्वया मया चापि दक्षस्य यजनं प्रति।
न गंतव्यं विशेषेण सत्यमुक्तं मया प्रिये ॥२८

हे प्रभो ! आप मेरे साथ वहाँ चलिए, हे स्वामिन् ! मेरा निवेदन है कि आप मेरे पिताजी के यज्ञ महोत्सव में अवश्य चलें ।२२। ब्रह्माजी ने कहा — सती के यह वचन सुनकर दक्ष के वचनों को स्मरण करते हुए शंकर ने सत्य वचन कहे ।२३। शिव ने कहा—हे देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे द्वेष रखते हैं ।२४। जो देवता-ऋषि उनके लिए मान्य हैं, वही मूर्ख बुद्धि वाले तुम्हारे पिता के यज्ञ में पहुँचे हैं ।२५। हे प्रिये ! जो किसी के यहाँ बिना बुलाये जा पहुँचते है वे तिरस्कृत होते हैं और उन्हें मरणादि तक प्राप्त हो सकता है ।२६। दूसरे के घर जाने पर इन्द्र की गरिमा भी नहीं रहती। बिना बुलाये जाना अनर्थक है ।२७। अतः दक्ष यज्ञ में मेरा जाना ठीक नहीं, तुम मेरी यह बात सत्य समझो ।२८।

तथारिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोऽपि शरैर्जनः।
स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्म ताडितः स यथा मतः ॥२९
विद्यादिभिर्गुणैः षड्भिरसन्दयैः सतां स्मृतौ।
हतायां भूयसां धाम न पश्यंति खलाः प्रिये ॥३०
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना।
उवाच रोषसंयुक्ता शिवं वाक्यविदां वरम् ॥३१
यज्ञः स्यात्सफला येन स त्वं शंभोऽखिलेश्वर।

अनाहूतोऽसि तेनाद्य पित्रा मे दुष्टकारिणा ।।३२
तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि भत्र भावं दुरात्मनः ।
सुरर्षीणां च सर्वेषामागतानां दुरात्मनाम् ।।३३
तस्माच्चाद्यैव गच्छामि स्वपितुर्यजनं प्रभो ।
अनुज्ञां देहि मे नाथ तत्र गंतुं महेश्वर ।।३४
इत्युक्तो भगवान् रुद्रस्तया देव्या शिवः स्वयम् ।
विज्ञाताखिलदृक् द्रष्टा सतीं सूतिकरोऽब्रवीत् ।।३५

स्वजनों के दुर्वाक्यों से अंतःकरण जितना व्यथित होता है, उतना तो शत्रुओं के वाणों से भी नहीं होता ।२६। हे प्रिये ! विद्यादि छः गुणों से सम्पन्न भी खलों द्वारा तेजहीन हो जाते हैं ।३०। ब्रह्माजी ने कहा—जब शिवजी ने सती से इस प्रकार कहा तब सती ते शङ्कर से क्रोधपूर्वक कहा ।३१। सती बोली—हे शंकर ! आप सबके ईश्वर हैं । आपके वहाँ जाने से यज्ञ सफल हो जाता, परन्तु मेरे दुष्टकर्मा पिता ने आपको निमन्त्रित नहीं किया ।३२। इसलिए मैं उस दुरात्मा के भाव को जानना चाहती हूँ । वहाँ दुरात्मा होकर सभी देवता और ऋषि पहुँचे हैं ।३३। इसलिये मैं भी उस यज्ञ में अवश्य जाऊँगी । हे प्रभो ! आप मुझे वहाँ जाने की अनुमति दें ।३४। ब्रह्माजी ने कहा – जब इस प्रकार सती ने कहा तो सर्वज्ञाता भगवान् शंकर ने उससे कहा ।३५।

यद्येव ते रुचिर्देवि तत्र गंतुमवश्यकम् ।
सुव्रते वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम् ।।३६
एतं नंदिनमारुह्य वृषभं सज्जमादरात् ।
महाराजोपचाराणि कृत्वा बहुगुणान्विता ।।३७
भूषितं वृषमारोहेत्युक्ता रुद्रेण सा सती ।
सुभूषिता सती युक्ता ह्यगमत्पितृमंदिरम् ।।३८
महाराजोपचाराणि दत्तानि परमात्मना ।
सुच्छत्रचामरादीनि सद्वस्त्राभरणानि च ।।३९
गणाः षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुश्शिवाज्ञया ।
कुतूहलयुताः प्रीता महोत्सवसमन्विताः ।।४०

तदोत्सवो महानासीद्यजने तत्र सर्वतः ।
सत्याश्शिवप्रियायस्तु वामदेवगणैः कृतः ॥४१
कुतूहलं गणाश्चक्रुशिवयोर्यश उज्जगुः ।
बालांतः पुप्लुवुः प्रीत्या महावीराश्शिवप्रियाः ॥४२
सर्वथासीऽऽन्महाशोभा गमने जागदम्बिके ।
सुखाराव: संबभूव पूरितं भुवनत्रयम् ॥४३

हे देवि ! यदि तुम वहाँ जाना ही चाहती हो तो मेरी आज्ञा से अवश्य ही जाओ ॥३६॥ इस नन्दी वृषभ को सुसज्जित कर और इस पर चढ़ कर ॥३७॥ अपने सभी आभूषण धारण कर शीघ्र जाओ। यह सुनकर सती सभी साज-सज्जा मुक्त होकर अपने पितृगेह को चली ॥३८॥ भगवान् शंकर ने महाराजों जैसी साज-सज्जा प्रदान की—छत्र, चँवर, आभरण आदि दिये ॥३९॥ शिवजी को आज्ञा से साठ हजार शिवगण सती के साथ महोत्सव करते हुये चले ॥४०॥ उस समय उस देव-यजन भूमि से महोत्सव आरम्भ हुआ और सती के साथ अनेक वाम-देव गणों ने प्रस्थान किया ॥४१॥ शिवजी तथा शिवा का गुणगान करते करते हुए शिवगण कुतूहलपूर्वक दूर-दूर तक कूदते-फाँदते चले ॥४२॥ सती के चलने में सब प्रकार शोभा हुई और उनके मुख से निकले हुए शब्दों से तीनों भुवन परिपूर्ण हो गये ॥४३॥

॥ दक्ष द्वारा सती का तिरस्कार ॥

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः ।
सुरासुरमुनीन्द्रादिकुतूहलसमन्वितः ॥१
स्वपितुर्भवनं तत्र नानाश्चर्यसमन्वितम् ।
ददर्श सुप्रभं चारु सुरर्षिगणसंयुतम् ॥२
द्वारिस्थिता तदा देवी ह्यवरुह्य निजासनात् ।
नन्दिनोऽभ्यंतरं शीघ्रमेकैवागच्छदध्वरम् ॥१३
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी ।
अ करोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ॥४
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन ।

नान्योऽपि तद्भयातत्र शिवमायाविमोहितः ॥५
अथ सा मातरं देवी पितरं च सती मुने ।
अनमद्विस्मितात्यंतं सर्वलोकपराऽभवत् ॥६
भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदन्तरे ।
न शंभुभागमकरोत् क्रोधं दुर्विषहं सती ॥७

इस प्रकार सती वहाँ पहुँच गई, जहाँ अत्यन्त प्रभावशाली यज्ञ हो रहा था। देवता, दैत्य, मुनि और इन्द्रादि वहाँ कुतूहल कर रहे थे ॥१॥ उस समय सती ने अपने पिता के स्थान को अनेक आश्चर्यों तथा देवता और मुनियों से युक्त देखा ॥२॥ सती अपने आसन से द्वार में उतर पड़ी और केवल नन्दी को साथ लेकर यज्ञ भूमि में पहुँची ॥३॥ सती को आयी हुई देखकर उसकी माता और बहिनों ने उसका स्वागत किया ॥४॥ परन्तु दक्ष ने उसे देखकर भी आदर नहीं किया तथा शिवमाया में मोहित अन्य व्यक्तियों ने भी आदर नहीं किया ॥५॥ तब सती ने अत्यन्त आश्चर्य से अपने माता-पिता को प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी हुई ॥६॥ सती ने उस यज्ञ में विष्णु आदि सब देवताओं का भाग पृथक्-पृथक् देखा, परन्तु शिव का भाग न देखकर अत्यन्त क्रोधित हुई ॥७॥

तदा दक्षं दहन्तीव रुषा पूर्णा सती भृशम् ।
क्रूरदृष्ट्या विलोक्यैव सर्वानप्यपमानिता ॥८
अनाहूतस्त्वया कस्माच्छंभुः परमशोभनः ।
येन पूतमिदं विश्वं समग्रं सचराचरम् ॥९
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञांगो यज्ञदक्षिणाः ।
यज्ञकर्ता च यः शंभुस्तं विना च कथं मखः ॥१०
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वं पूतं भवत्यहो ।
विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति ॥११
द्रव्यमंत्रादिकं सर्वं हव्यं च यन्मयम् ।
शंभुना हि विना तेन कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥१२
किं शिवं सुरसामान्यं मत्वाकार्षीरनादरम् ।
भ्रष्टबुद्धिर्भवानद्य जातोऽसि जनकाधम ॥१३

विष्णु ब्रह्मादयो देवा यं संसेव्य महेश्वरम् ।
प्राप्ताः स्वपदवीं सर्वे तं न जानासि रे हरम् ।।१४

अयन्त क्रोध में जैसे दक्ष को भस्म करना चाहती हो, अत्यन्त अपमान अनुभव करते हुए उसने कहा ।८। कि जिनकी कृपा से यह सम्पूर्ण चराचर जगत पवित्र हो जाता है, उन शिव को तुमने क्यों नहीं बुलाया ? ।९। यज्ञ स्वरूप, यज्ञ-ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, यज्ञ के अङ्ग, यज्ञ के दक्षिणास्वरूप तथा यज्ञ-कर्ता शंकर के बिना यज्ञ का सम्पादन कैसा ? ।१०। जिनके स्मरण मात्र से ही सब कुछ पवित्र हो जाता है, उसके न होने पर सब अपवित्र ही रहेगा ।११। सम्पूर्ण द्रव्य, मन्त्र तथा हव्य—कव्य उनके बिना निरर्थक है तब इस यज्ञ की प्रवृत्ति ही उनके बिना किस प्रकार हुई ? ।१२। क्या तुमने शिवजी को सामान्य देवता समझ कर उनका निरादर किया है ? हे पिता ! तुम अधम और बुद्धिभ्रष्ट हो ।१३। विष्णु, ब्रह्मा आदि भी जिन शंकर की सेवा करके अपनी पदवी को प्राप्त हुए हैं तुम उन महेश्वर को नहीं जानते ? ।१४।

एते कथं समायाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः ।
तव यज्ञे बिना शंभुं स्वप्रभुं मुनयस्तथा ।।१५
इत्युक्त्वा परमेशानी विष्णवादीन्सकलान् प्रति ।
पृथक्पृथगवोचत्सा भर्त्सयंती भवात्मिका ।।१६
हे विष्णो त्वं महादेवं किं न जानासि तत्त्वतः ।
सगुणं निर्गुणं चापि श्रुतयो यं वदंति ह ।।१७
यद्यपि त्वां करं दत्त्वा बहुवारं महेश्वरः ।
अशिक्षयत्पुरा शाल्वप्रमुखाकृतिभिर्हरे ।।१८
तदपि ज्ञानमायातं न ते चेतसि दुर्मते ।
भागार्थी दक्षयज्ञेऽस्मिन् शिवं स्वस्वामिनं विना ।।१९
पुरा पंचमुखो भूत्वा गर्वितोऽसि सदाशिवम् ।
कृतश्चतुर्मुखस्तेन विस्मृतोऽसि तदद्भुतम् ।।२०
इन्द्र त्वं किं न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।
भस्मीकृतः पविस्तेनि हरेण क्रूरकर्मणः ।।२१

यह विष्णु तथा ब्रह्मादि देवता अपने स्वामी शंकर के बिना यहां कैसे आ गये ? ।१५। ब्रह्माजी बोले कि सब देवताओं के प्रति इस प्रकार कहती हुई सती ने क्रोधपूर्ण मुद्रा में देखते हुए कहा ।१६। सती ने कहा-- हे विष्णु ! क्या आप तत्व से शिवजी को नहीं जानते । श्रुतियाँ उनको गुण-रहित बताती हैं ।१७। हे विष्णो ! यद्यपि शिवजी ने अनेक बार शाल्व आदि के समय हाथ देकर तुम्हें शिक्षा दी है ।१८। हे मतिहीन ! फिर भी तुमको ज्ञान नहीं हुआ और अपने स्वामी का भाग न देखकर भी अपना भाग स्वीकार कर लिया ।१९। हे ब्रह्मा ! तुम पहिले अहंकार वश शिवजी के प्रति द्रोह किया करते थे । तुम्हारे पाँच मुख थे परन्तु शिवजी ने चार कर डाले । इसे क्या तुम भूल गये ? ।२०। हे इन्द्र ! क्या तुम्हें शिवजी का पराक्रम ज्ञात नहीं है । कठिनकर्मा रुद्र ने तुम्हारे वज्र तक को भस्म कर डाला था ।२१।

हे सुराः किन्न जानीथ महादेवस्य विक्रमम् ।
अत्रे वसिष्ट मुनयो युष्माभिः किं कृतं त्विह ।।२२
भिक्षाटनं च कृतवान् पुरा दारुबने विभुः ।
शप्तो यद्भिक्षुको रुद्रो भवद्भिर्मुनिभिस्तदा ।।२३
शप्तेनापि च रुद्रेण यत्कृतं विस्मृतं कथम् ।
तल्लिंगेनाखिलं दग्धं भुवनं सचराचरम् ।।२४
सर्वे वेदाश्च संभूता सांगाः शास्त्राणि वाग्यतः ।
सोऽसौ वेदांतगः शंभुः कैश्चिज्ज्ञातुं न पार्यते ।।२५
सर्वे मूढाश्च संजाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः ।
मुनयोऽन्ये विना शंभुमागता यदिहाध्वरे ।।२६
इत्यनेकविधां वाणीरगदज्जगदम्बिका ।
कोपान्विता सती तत्र हृदयेन विदूयता ।।२७

हे देवगण ! क्या तुम शंकर के कर्म से अनभिज्ञ हो ? हे अत्रि ! हे वसिष्ठ ! तुमने यह क्या किया ? ।२२। जब वे दारुवन में भीख माँगने गये थे, उस समय तुम ऋषियों ने उन भिखारी के वेश वाले शिवजी को शाप दे दिया था ।२३। उन शापित शिव ने जो किया,

उसे क्या तुम भूल गये ? उस शिव लिंग से चराचर जगत् भस्म होने लगा था ।।२४।। उस समय विष्णु आदि सभी देवता मूढ़ हो गये हैं जो शिवजी के बिना इस यज्ञ में उपस्थित हुए हैं ।।२५।। यहाँ अंगों सहित वेदशास्त्र भी मौन हैं, परन्तु वेदान्त से जानने के योग्य भगवान शिव को जानने में समर्थ कोई भी नहीं है ।।२६।। ब्रह्माजी ने कहा कि सती ने ऐसे वचन क्रोधपूर्वक कहे और वह दुखी हृदय से क्रोध में खड़ी रही ।।२७।।

विष्ण्वादयोऽखिला देवा मुनयो ये च तद्वचः ।
मौनी भूतास्तदाकर्ण्य भवव्याकुलमानसाः ।।२८
अथ दक्षः समाकर्ण्य स्वपुत्र्यास्तादृशं वचः ।
विलोक्य क्रूरदृष्ट्या तां सतीं क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।।२९
तव किं बहुनोक्तेन कार्यं नास्तीह सांप्रतम् ।
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे कस्मात्त्व हि समागता ।।३०
अमंगलस्तु ते भर्ता शिवोऽसौ गम्यते बुधैः ।
अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।।३१
तस्मान्ना ह्वायितो रुद्रो यज्ञार्थं सुकुवेषभृत् ।
देवर्षिसंसदि मया ज्ञात्वा पुत्रि विपश्चिता ।।३२
विधिना प्रेरितं न त्वं दत्ता मंदेन पापिना ।
रुद्रायाविदितार्थाय चोद्धताय दुरात्मने ।।३३
तस्मात्कोपं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
यद्यागतासि यज्ञेऽस्मिन् बाय गृह्णीष्व चात्मना ।।३४
दक्षेणोक्तेति सा पुत्री सती त्रैलोक्यपूजिता ।
निन्दायुक्तं स्वपितरं दृष्ट्वाऽऽसीद्रुषिता भृशम् ।।३५

सती के क्रोध पूर्ण वाक्यों को सुनकर विष्णु आदि सभी देवता भयभीत मन मौन बैठे रहे ।।२८।। अपनी पुत्री के वैसे वचन सुनकर दक्ष ने उसे क्रूर-दृष्टि से देखा और क्रोधपूर्वक कहने लगा ।।२९।। दक्ष ने कहा–हे भद्रे ! तू अधिक यह सब क्या कह रही है । तेरा यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है, तू रह चाहे चली जा । तू यहाँ किसलिये आई है ?

॥३०॥ सब मेधावीजन जानते हैं कि तुम्हारे पति शंकर अमंगलमय लक्षण वाले, अकुलीन, वेद से बहिर्मुख और भूत-पिशाचों के अधिपति हैं ॥३१॥ इसीलिए उन कुवेश वाले शिव को यहाँ नहीं बुलाया। मैंने बुद्धिपूर्वक समझ लिया कि देवताओं और ऋषियों की सभा में उनका क्या प्रयोजन है ? ॥३२॥ मुझ मन्द बुद्धि वाले ने ब्रह्माजी के कहने से तुझे उनको दे दिया, मैं यह नहीं जानता था कि रुद्र क्रोधी तथा दुरात्मा है ॥३३॥ हे पुत्री ! इसलिए तू क्रोध को छोड़कर स्वस्थ हो और इस यज्ञ में आ गई तो अपना भाग ग्रहण कर ॥३४॥ ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष के इस प्रकार कहने पर सती अपने पिता को निन्दायुक्त दृष्टि से देखते हुए अत्यन्त रोष करने लगी ॥३५॥

अचिंतयत्तदा से त कथं यास्यामि शंकरम् ।
शंकरं द्रष्टुकामाऽहं पृष्टा वक्ष्ये किमुत्तरम् ॥३६
अथ प्रोवाच पितरं दक्षं तं दुष्टमानसम् ।
निःश्वसंती रुषाविष्टा सा सती त्रिजगत्प्रसूः ॥३७
यो निंदति महादेवं निंद्यमानं शृणोति वा ।
तावुभौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३८
तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
किं जीवितेन मे तात शृण्वंत्यानादरं प्रभोः ॥३९
यदि शक्तः स्वयं शंभोर्निन्दकस्य विशेषतः ।
छिंद्यात् प्रसह्य रसनां तदा शुद्धयन्न संशयः ॥४०
यद्यशक्तो जनस्तत्र निरयात्सुपिधाय वै ।
कर्णौ धीमान् ततश्शुद्धयेद्वदंतीदं बुधा वराः ॥४१
इत्यमुक्त्वा धर्मनीति पश्चात्तापमवाप सा ।
अस्मरच्छांकरं वाक्यं दूयमानेन चेतसा ॥४२

सती विचार करने लगी कि मैं शिवजी के पास किस प्रकार पहुँचू ? इस समय मुझे शिवजी के दर्शन की कामना है, परन्तु जब वे मुझसे यहाँ का हाल पूछेंगे तो उन्हें क्या उत्तर दूँगी ? ॥३६॥ तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली सती क्रोध से बारम्बार स्वांस खींचती

हुई अपने दुष्ट-हृदय पिता दक्ष से कहने लगी ।३७। सती ने कहा—जो शिवजी की निन्दा करते या उनकी निन्दा सुनते हैं, वह निश्चय ही नरक में पड़ते हैं ।३८। इसलिये मैं अग्नि में प्रविष्ट होकर देह छोड़ती हूं । क्योंकि अपने स्वामी की निन्दा सुनकर मैं जीवित नहीं रह सकती ।३९। यदि सामर्थ्य हो तो निन्दा करने वाले की जिह्वा को काट डाले, तभी दोष छूटता है, इनमें सन्देह नहीं है ।४०। यदि सामर्थ्य न हो तो अपने कानों पर हाथ रखकर वहाँ से दूर चला जाय, ज्ञानियों का यही कहना है ।४१। ब्रह्माजी ने कहा कि इस प्रकार नीति वचन कहकर सती अत्यन्त दु खी मन से शिवजी को याद करने लगी ।४२।

ततः संक्रुद्ध्य सा दक्षं निःशकं प्राह तानपि ।
सर्वान्विष्णवादिकान्देवान्मुनीनपि सती ध्रुवम् ।।४३
तात त्व निंदकः शंभोः पश्चात्तापं गमिष्यसि ।
इह भुक्त्वा महादुःखमंते यास्यसि यातनाम् ।।४४
यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रियश्चैव परात्मनः ।
तस्मिन्नवैरे शर्वेऽस्मिन् त्वां दिनाः कः प्रतीपकः ।।४५
महाद्विनिंदा नाश्चर्यं सर्वदाऽसत्सु सेर्ष्यकम् ।
महदंघ्रिरजोध्वस्ततमः सु सैव शोभना ।।४६
शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम् ।
सकृत्प्रसंगात्सकलमघमाशु निहंति तत् ।।४७
पवित्र कीर्तितमलं भवान् द्वेष्टि शिवेतरः ।
अलंघ्यशासनं शंभुमहो सश्वर्वेश्वरं खलः ।।४८
यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिसुनिषेवितम् ।
सर्वार्थदं ब्रह्म रसैः सर्वार्थिभिरथादरात् ।।४९

फिर निःशंक भाव से विष्णु आदि देवताओं और मुनियों से क्रोधपूर्वक कहने लगी ।४३। सती ने कहा—तुम सब शिवनिन्दक अत्यन्त पश्चाताप को प्राप्त होगे । यहाँ महा दुःख प्राप्त करते हुए अन्त में यमलोक के कष्ट सहोगे ।४४। जिसका विश्व में कोई अप्रिय नहीं,

सब ही उनके प्रिय हैं, उन निवर शिवजी से तुम्हारे सिवाय अन्य कौन वैर करेगा ? ।४५। इसमें विस्मय भी क्या है ? असत् व्यक्ति महान् पुरुषों की निन्दा करते हैं परन्तु महापुरुषों की चरण-रज से अज्ञान नष्ट कर लेने में ही शोभा है ।४६। जिसने अपनी वाणी से 'शिव' इन दो अक्षरों का उच्चारण किया, उसके पाप एक बार के उच्चारण से ही नष्ट हो गये ।४७। भगवान् शिव का शासन लंघन के योग्य नहीं है, परन्तु तुम अमंगल स्वरूप उन पवित्र प्रभु से द्वेष करते हो ।४८। जिनके पद-पद्मों में बड़े-बड़े सन्त पुरुषों का मन रमा रहता है, जो ब्रह्मरस के द्वारा सभी कामना करने वालों को उनके अनुसार फल देते हैं ।४९।

यद्वर्षत्यर्थिनः शीघ्रं लोकस्य शिव आदरात् ।
भवान् द्रुह्यति मूर्खत्वात्तस्मै चाशेषबंधवे ॥५०
किं वा शिवाख्यमशिवं त्वदम्ये न विदुर्बुधाः ।
ब्रह्मादस्तं मुनयः सनकाद्यास्तथा परे ॥५१
अवकीर्य जटा भूतैः श्मशाने स कपालधृक् ।
तन्मात्सभस्म वा ज्ञात्वा प्रीत्यावसदुरारधीः ॥५२
ये मूर्द्धाभिर्दधति तच्चरणोत्सृष्टमादरात् ।
निर्माल्यं मुनयो देवाः स शिवः परमेश्वरः ॥५३
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म चोदितम् ।
वेदे विविच्य वृत्तं च तद्विचार्यं मनीषिभः ॥५४
विरोधियौगपद्यैककर्तृके च तथा द्वयम् ।
परब्रह्मणि शंभौ तु कर्मच्छिन्ति न किंचन ॥५५
मा वः पदव्यः स्म पितः या अस्मदाथिताःसदा ।
यज्ञशालासु वो धूम्रवर्त्मभुक्तोज्झिताः परम् ॥५६

जो शिवजी अभ्यर्थियों पर शीघ्र ही कामना की वृष्टि करते हैं, उन लोकबन्धु शिवजी से तुम शत्रुता करते हो ।५०। उन शिव को तुम्हादे सिवा कोई अन्य 'अशिव' नहीं जानता, ब्रह्मादि, सनकादि तथा अन्य मुनि क्या उन्हें नहीं जानते ? ।५१। वे भूतगणों के साथ श्मशान

में जटा खोलकर कपाल धारण करते हैं। वे उदार बुद्धि वाले प्रेम से मृतक की अस्थियों की माला और भस्म को धारण करते हैं ।।५२।। उनकी चरणरज को आदर सहित शिर पर धारण करने वाले मनुष्य पाप रहित हो जाते हैं। जिनके निर्माल्य की कामना मुनि और देवता करते हैं, वह परमेश्वर शिव ही हैं ।।५३।। वेद के अनुसार प्रवृत्ति और निवृत्ति के भेद से दो प्रकार के कर्म हैं, बुद्धिमानों को उन पर विचार करना चाहिए ।।५४।। एकही कर्त्ता में वे दोनों विरोधी हो जाते हैं परन्तु शिवजी के लिए किसी कर्मादा की इच्छा नहीं है ।।५५।। हे पिता ! तुम्हारी यज्ञशाला का धूम्र अपने मार्ग को छोड़ दे और तुम्हारे पद का व्यय न हो ।।५६।।

नो व्यक्तलिंगः सततमवधूतसुसेवितः ।
अभिमानमतो न त्वं कुरु तात कुबुद्धिधृक् ।।५७
किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्वत्वं सर्वथा कुधीः ।
त्वदुद्भवेम देहेन न मे किंचित्प्रयोजनम् ।।५८
तज्जन्म धिग्यो महतां सर्वथावद्यकृत्खलः ।
परित्याज्यो विशेषेण तत्संबंधो विपश्चिता ।।५९
गोत्रं त्वदीयं भगवान् यदाह वृषभध्वजः ।
दाक्षायणीति सहसाऽहं भवामि सुदुर्मनाः ।।६०
तस्मात्त्वदंगजं देहं कुणपं गर्हित सदा ।
व्युसृज्य नूनमधुनाभविष्यामि सुखावहा ।।६१
हे सुरा मुनय सर्वे यूयं शृणुत मद्वचः ।
सर्वथाऽनुचितं कर्म युष्माकं दुष्टचेतसाम् ।।६२
सर्वे यूयं विमूढा हि शिवनिंदाः कलिप्रियाः ।
प्राप्स्यंति दंडं नियतमखिलं च हराद्ध्रुवम् ।।६३
दक्षमुक्त्वाऽवरे तांश्च व्यरमत्सा सती तदा ।
अनुद्य चेतसां शंभुमस्मरत् प्राणवल्लभम् ।।६४

वह अव्यक्त लिंग अवधूतों के द्वारा सदा सेवित हैं, तुम कुबुद्धि से उनके प्रति अभिमान न करो ।।५७।। कुबुद्धिवश तुम महादुष्ट हो गये

हो । तुम्हारे द्वारा उत्पन्न इस देह को रखना ठीक नहीं है ॥५८॥ जिस जन्म में महान् पुरुषों की निन्दा हो, उस जन्म को धिक्कार है । बुद्धिमान व्यक्ति को तुमसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये ॥५९॥ तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होने के कारण शिवजी मुझे दाक्षायणी कहते हैं, मुझे इस उच्चारण से अब दुःख होगा ॥६०॥ इसलिए तुम्हारे देह से उत्पन्न हुए गर्हित शरीर को अभी छोड़कर सुखी होऊँगी ॥६१॥ हे देवगण । हे मुनिगण ! तुम सब मेरे वचनों को सुनो । तुम सब दुष्ट चित्त वाले हो और तुम्हारा यह कर्म सर्वथा निन्दा के योग्य है ॥६२॥ तुम सभी मूर्ख हो गये हो तुमने शिव की निन्दा की है, इसलिए भगवान् शंकर द्वारा तुम्हें इसका दण्ड शीघ्र ही प्राप्त होगा ॥६३॥ यह कहकर सती दुख से व्याकुल हुई अपने प्राणवल्लभ शिवजी का चिन्तन करने लगी ॥६४॥

॥ यज्ञ स्थल में सती का देहत्याग ॥

मौनीभूता यदा साऽऽसीत्सती शंकरवल्लभा ।
चरित्रं किमभूत्तत्र विधे तद्वद चादरात् ॥१
मौनीभूता सती देवी स्मृत्वा स्वपतिमादरात् ।
क्षितावुदीच्यां सहसा निषसाद प्रशांतधीः ॥२
जलमाचम्य विधिवत् संबृता वाससा शुचि ।
दृङ् निमील्य पतिं स्मृत्वा योगमार्गं समाविशत् ॥३
कृत्वा समानावनिलौ प्राणापानौ सितानन ।
उत्थाप्योदानमथ च यत्नात्सा नाभिचक्रतः ॥४
हृदि स्थाप्योरसि धिया स्थितं कंठाद्भ्रुवोः सती ।
अनिंदिताऽनयन्मध्यं शंकरप्राणवल्लभा ॥५
एवं स्वदेहं सहसा दक्षकोपाज्जिहासती ।
दग्धे गात्रे वायुशुचिधारणं योगमार्गतः ॥६
तत स्व भर्तुश्चरणं चिंतयंतीं न चापरम् ।
अपश्यत्सा सती तत्र योग मार्गंनिविष्टधीः ॥७

नारदजी ने कहा–हे ब्रह्माजी ! जब सती चुप हो गई, तब क्या

हुआ वह आप सादर मेरे प्रति कहें ।१। ब्रह्माजी ने कहा—अपने पति का स्मरण करती हुई सती.मौन एवं शान्त होकर भूमि में उत्तर की ओर बैठ गई ।२। उसने विधिपूर्वक आचमन किया और नियम में तत्पर होकर शुद्ध वस्त्र पहिन कर नेत्र मूंद लिये तथा शिवजी के स्मरण पूर्व योच-मार्ग में लीन हो गइ ।३। उसने प्राण-अपान वायु को समान कर और यत्नपूर्वक उदान को नाभिचक्र से उठाकर ।४। उन्हें हृदय में स्थापित किया और फिर कंठ में लाकर भौं के बीच में प्राण वायु को स्थापित किया ।५। दक्ष के कारण क्रोधपूर्वक सहसा अपने शरीर को छोड़ने की इच्छा से सती ने इस प्रकार योग धारण किया और वायु से ही शरीर को भस्म करना प्रारम्भ किया ।६। उस समय उसने केवल अपने पति के चरण कमलों का स्मरण किया वह शिवजी का ध्यान करते हुए योग-मार्ग में प्रवृत्ति हुई ।७।

हतकल्मषतद्देहः प्रापतच्च तदग्निना ।
भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया ।।८
तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा ।
हाहेति सोऽद्भुतश्चित्रः सुरादीनां भयावहः ।।९
हंत प्रिया परा शंभोर्देवी दैवतमस्य हि ।
अहृदसून् सती केन सुदुष्टेन प्रकोपिता ।।१०
अहो त्वनात्म्यं सुमहदस्य दक्षस्य पश्यत ।
चराचरं प्रजा यस्य यत्पुत्रस्य प्रजापतेः ।।११
अहोऽद्य विमनाऽभूत्सा सती देवी मनस्विनी ।
वृषध्वजप्रियाऽभीक्ष्णं मानयोग्या सतां सदा ।।१२
सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक्स प्रजापतिः ।
महतीमपकीर्ति हि प्राप्स्यति त्वखिले भवे ।।१३
यत्स्वांगजां सुतां शंभुद्विट् न्यषेधत्समुद्यताम् ।
महानरक भोगी स मृतये नोऽपराधतः ।।१४

उसका शरीर विकार रहित हो गया और सब ओर से उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और उसकी इच्छा से तत्काल ही सम्पूर्ण शरीर

भस्म हो गया ।८। यह होते ही पृथिवी और आकाश में बड़ा कोलाहल मचा, देवताओं के हाहाकार गूँज उठे, सभी उस अद्भुत दृश्य से विस्मित थे । ।९। खेद है कि परम देव शिवजी की प्रिया सती ने अपने प्राण त्याग दिये, इसे किस दुष्ट ने रुष्ट किया था ? ।१०। इस दक्ष की घोर मूर्खता देखो, चराचर प्रजा, जिस प्रजापति की पुत्र रूप है, उसके अज्ञान को तो देखो ।११। देखो, आज सती का यह क्या हुआ ? निश्चय ही वह शिव-प्रिया अपमान के योग्य नहीं थी ।१२। परन्तु, यह प्रजापति घोर अहंकारी और ब्रह्म-द्रोही होगया, इसने संसार में इस कर्म से घोर अपयश को प्राप्त किया है ।१३। जिसने अपने देह से उत्पन्न हुई पुत्री का शिवद्रोह के वश तिरस्कार किया, यह इसका घोर अपराध हुआ है, इसे अन्त में महानरक भोगना पड़ेगा ।१४।

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ।
द्रुत तत्पार्षदाः क्रोधादुदतिष्ठन्नुदायुधाः ।।१५
द्वारि स्थिता गणाः सव रसायुतमिता रुषा ।
शंकरस्य प्रभोस्ते वाऽक्रुध्यन्नतिमहाबलाः ।।१६
हाहाकारमकुर्वस्ते धिग्धिग न नेति वादिनः ।
उच्चै स्सर्वेऽसक्रुवीराः शंकरस्य गणाधिपाः ।।१७
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
सर्वे प्रापन् भयं देवा मुनयोऽन्येऽपि ते स्थिताः ।।१८
गणा समंत्र्य ते सर्वेऽभूवन् क्रुद्धा उदायुधाः ।
कुर्वन्तः प्रलयं वाद्यशस्त्रै र्व्याप्तं दिगंतरम् ।।१९
शस्त्रैरघ्नन्निजांगानि केचित्तत्र शुचाकुलाः ।
शिरोमुखानि देवर्षे सुतीक्ष्णैः प्राणनाशिभिः ।।२०
इत्थं ते विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समं तदा ।
गणायुते द्वेच तदा तदद्भुतमिवाभवत् ।।२१

सती के देह त्याग के पश्चात् सभी इस प्रकार कह रहे थे । इस काण्ड को देखकर शिवगण भी हाथों में आयुध ग्रहण कर उठ खड़े हुए

॥१५॥ यज्ञद्वार में साठ हजार शिवगण उपस्थित थे, वे महाबली थे, उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥१६॥ वे सब हाहाकार करते हुए अपने को धिक्कारने लगे तथा क्रोधपूर्वक वे उच्च स्वर से चिल्लाये ॥१७॥ उनके हाहाकार से पृथिवी और आकाश भर उठे। वहाँ उपस्थित सभी देवता और मुनि अत्यन्त भयभीत हुए ॥१८॥ गणों ने परस्पर सलाह कर अस्त्र ग्रहण किये, उनके वाद्य तथा अस्त्रों के भीषण शब्द से प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया ॥१९॥ किसी-किसी ने तो अपने अंग काट डाले और किसी-किसी ने उन तीक्ष्ण शस्त्रों से अपने शिर और मुख नष्ट कर लिये ॥२०॥ इस प्रकार वे सती के साथ स्वयं भी नष्ट हो गए। इस प्रकार बीस हजार गण स्वयं नष्ट हो गए, यह अत्यन्त अद्भुत बात हुई ॥२१॥

गणा नाशवशिष्टा ये शंकरस्य महात्मनः।
दक्षं तं क्रोधितं हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥२२
तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान् भृगुः।
यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहोन्मुने ॥२३
हूयमाने च भृगुणा समुत्पेतुर्महासुराः।
ऋभवो नाम प्रबला वीरास्तत्र सहस्रशः ॥२४
तैरलातायुधैस्तत्र प्रमथानां मुनीश्वर।
अभूद्युद्धं सुविकटं श्रृण्वतां रोमहर्षणम् ॥२५
ऋभुभिस्तैर्महावीरैर्हन्यमानाः समन्ततः।
अयत्नयानाः प्रमथा उशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥२६
एवं शिवगणस्ते वै हता विद्राविता द्रुतम्।
शिवेच्छया महाशक्त्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥२७
तद्दृष्ट्वा ऋषयो देवाः शक्राद्याः समरुद्गणाः।
विश्वेऽश्विनौ लोपालास्तूष्णींभूतास्तदाऽभवन् ॥२८

जो शिवगण शेष रहे उन्होंने दक्ष का वध करने के लिए क्रोधपूर्वक आयुध ग्रहण किये ॥२२॥ महर्षि भृगु ने उनका यह बिचार देखकर यज्ञ के विघ्न को दूर करने वाले यजुर्मन्त्रों से दक्षिणाग्नि में आहुति देना

प्रारम्भ किया ।२३। भृगु की आहुतियों से ऋभवनामक सहस्रों महावीर उस कुण्ड से उत्पन्न हुए ।२४। हे मुनीश्वर ! उनके चक्रायुधों से शंकर के हजारों वीर युद्ध करने लगे और वहाँ अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ।२५। ऋभु और महावीरगण परस्पर भिड़ गये और ब्रह्म तेज के कारण प्रयत्न के बिना हीं शिवगण मृत्यु को प्राप्त होने लगे ।२६। शिव की इच्छा रूप महाशक्ति से वह शिवगण मरने लगे, यह बात विचित्र-सी हुई ।२७। इसे देखकर इन्द्रादि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेवा, अश्विनी-कुमार तथा सब लोकपाल मौन बैठे रहे ।२८।

केचिद्विष्णुं प्रभुं तत्र प्रार्थयन्तः समन्ततः ।
उद्विग्ना मन्त्रयन्तश्च विघ्नाभावं मुहुर्मुहुः ।२९।
सुविचार्योदर्कफलं महोद्विग्नाः सुबुद्धयः ।
सुरविष्णवादयोऽभूवंस्तन्नाशाद्रावणान्मुहुः ।३०।
एवंभूतस्तदा यज्ञो विघ्नो जातो दुरात्मनः ।
ब्रह्मबन्धोश्च दक्षस्य शंकरद्रोहिणो मुने ।३१।

किसी ने उस समय भगवान् विष्णु से प्रार्थना की, किसी ने उद्विग्न होकर विघ्नों के नष्ट होने की प्रार्थना की ।२९। आगामी परि-णाम को विचारते हुए विष्णु आदि चिन्ता करने लगे और विघ्न को नष्ट न कर सकने के कारण उनमें अत्यन्त उद्विग्नता हुई ।३०। इस प्रकार शिवद्रोही दुरात्मा दक्ष के यज्ञ में विघ्न उपस्थित हुआ ।३१।

दैव-वाणी द्वारा दक्ष की भर्त्सना और भविष्य-कथन

एतस्मिन्नन्तरे तत्र नभोवाणी मुनीश्वर ।
अवोचच्छृण्वतां दक्षसुरादीनां यथार्थतः ।१।
रे रे दक्ष दुराचार दम्भाचारपरायण ।
किं कृतं ते महामूढ कर्म चानर्थकारकम् ।२।
न कृतं शैवराजस्य दधीचेर्वचनस्य हि ।
प्रमाणं तत्कृते मूढ सर्वानन्दकरं शुभम् ।३।
निर्गतस्ते मखाद्विप्रः शापं दत्वा सुदुःसहम् ।

ततोऽपि बुद्धं किंचिन्नो त्वया मूढेन चेतसि ।४।
ततः कृतः कथं चैव स्वपुत्र्यास्त्वादरः परः ।
समागतायाः सत्याश्च मङ्गलाया गृहं स्वतः ।५।
सतीभवौ नार्चितौ हि किमिदं ज्ञानदुर्बल ।
ब्रह्मपुत्र इति वृथा गर्वितोऽसि विमोहितः ।६।
सा सत्येव सदाराध्या सर्वपापफलप्रदा ।
त्रिलोकमाता कल्याणी शङ्कराद्धांगभागिनी ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! दक्ष और देवता आदि सभी के सम्मुख उसी समय वहां आकाशवाणी हुई—।१। हे दुराचारी दक्ष ! तूने दम्भ में भर कर यह कैसा अनर्थ-कर्म कर डाला है ? ।२। अरे मूर्ख ! तूने शैव्यराज दधीचि के सर्वानन्ददायक वचनों पर भी ध्यान नहीं दिया ।३। वह ब्राह्मण तुझे घोर शाप देकर तेरे यज्ञ से उठ कर चला गया, तो भी तू अपने चित्त में कुछ भी न समझ सका ।४। फिर तूने अपनी कन्या का भी तिरस्कार किया, वह मङ्गलमयी सती स्वयं तेरे घर पर उपस्थित हुई थी ।५। हे मूर्ख ! तूने शिवा और शिव का अनादर किया, तुझे ब्रह्मा का पुत्र होने का घोर अहङ्कार है ।६। तुझे सर्वपुण्यदात्री सती की आराधना करनी चाहिए थी, वह त्रैलोक्य माता शिवजी के अर्द्धांग में सदा निवास करती थी ।७।

सा सत्येवार्चिता नित्यं सर्वसौभाग्यदायिनी ।
माहेश्वरी स्वभक्तानां सर्वमङ्गलदायिनी ।८।
सा सत्येवार्चिता नित्य संसारभयनाशिनी ।
मनोऽभीष्टप्रदा देवी सर्वोपद्रवहारिणी ।९।
सा सत्येवार्चिता नित्यं कीर्तिसम्पत्प्रदायिनी ।
परमा परमेशानी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।१०।
सा सत्येव जगद्धात्री जगद्रक्षणकारिणी ।
अनादिशक्तिः कल्पान्ते जगत्संहारकारिणी ।११।
सा सत्येव जगन्माया विष्णुमाता विलासिनी ।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवह्न्यर्कदेवादिजननी स्मृता ।१२।

सा सत्यैव तपोधर्मदानादिफलदायिनी ।
शम्भुशक्तिर्महादेवी दुष्टहन्त्री परात्परा ।१३।
ईदृग्विधा सती देवी यस्य पत्नी सदा प्रिया ।
तस्मै भागो न दत्तस्ते मूढेन कुविचारिणा ।१४।

वह माहेश्वरी अपने भक्तों को सदा मङ्गलदायिनी है, तुझे उस सौभाग्यदात्री सती की सेवा करनी चाहिए थी ।८। वह नित्य पूजन करने से जगत के भय को दूर करने वाली, कामना की देने वाली और सभी उपद्रवों को नष्ट करने वाली थी ।९। नित्य पूजन से वह कीर्त्ति और वैभव के देने वाली तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी परमेशानि थी ।१०। वह विश्वमाता सती संसार की रक्षा करने वाली तथा कल्प के अन्त में संहार करने वाली अनादि शक्ति हैं ।११। सती ही संसार को माता, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि चन्द्रमा तथा सूर्यादि सभी की जननी है ।१२। वही तप, दान, का धर्म का फल देने वाली, शिवजी की शक्ति, महादेवी, दुष्टों का संहार करने वाली तथा परे से भी परे है ।१३। इस प्रकार वह सती जिसकी प्राणवल्लभा थी, उसे तूने यज्ञ भाग भी नहीं दिया ।१४।

शम्भुर्हि परमेशानः सर्वस्वामी परात्परः ।
विष्णुब्रह्मादिसंसेव्यः सर्वकल्याणकारकः ।१५।
तप्यते हि तपः सिद्धैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः ।
युज्यते योगिभिर्योगैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः ।१६।
अनन्त धनधान्यानां यागादीनां तथैव च ।
दर्शन शङ्करस्यैव महत्फलमुदाहृतम् ।१७।
शिव एव जगद्धाता सर्वविद्यापतिः प्रभु ।
आदिविद्याधरः स्वामी सर्वमङ्गलमङ्गलः ।१८।
तच्छक्तेनकृतो यस्मात्सत्कारोऽद्य त्वया खल ।
अत एवाध्वरास्यास्य विनाशो हि भविष्यति ।१९।
अमङ्गलं भवत्येव पूजार्हाणामपूजया ।
पूज्यमाना च नासौहि यतः पूज्यतमा शिवा ।२०।

सहस्रेणापि शिरसां शेषो यत्पादजं रजः ।
वहत्यहरहः प्रीत्या शक्तिः शिवा सतां ।२१।

भगवान् शंकर ही सबके अधीश्वर एवं ब्रह्मा विष्णु आदि से सेवित हैं, वही सब का कल्याण करने वाले हैं ।१५। इनके दर्शनों की कामना से ही सिद्धजन तपस्या करते हैं और योगीजन योगाभ्यास में लीन रहते हैं ।१६। अनन्त धन, धान्य तथा यज्ञादि का जो फल होता है, वह फल भगवान् शंकर के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है ।१७। वही विश्व के धाता तथा सभी विद्याओं के अधीश्वर हैं, वही आदि-विद्या के अधिपति तथा मंगलों के भी मंगलकर्त्ता हैं ।१८। तूने मूर्खतावश उनकी शक्ति का सत्कार न कर निरादर किया, इस कारण तेरा यज्ञ नष्ट हो जायगा ।१९। जहाँ पूजन के योग्य पुरुषों का पूजन नहीं होता, वहाँ अमंगल होना स्वाभाविक है ।२०। जिसकी चरण-रज को शेषजी अपने हजार शिर से प्रीति सहित धारण करते हैं, यह वही शिवा है ।२१।

यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् ।
विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नस्तस्य शम्भोः प्रिया सती ।२२।
यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् ।
ब्रह्माब्रह्मत्वमापन्नस्तस्य शम्भोः प्रिया सती ।२३।
यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् ।
इन्द्रादयो लोकपालाः प्रापुः स्वं स्वं परं पदम् ।२४।
जगत्पिता शिवः शक्तिर्जगन्माता च सा सती ।
सत्कृतौ न त्वया मूढ कथं श्रेयो भविष्यति ।२५।
दौर्भाग्यं त्वयि संक्रांतं संक्रांतास्त्वयि चापदः ।
यौ चानाराधितौ भक्त्या भवानीशंकरौ च तौ ।२६।
अनभ्यर्च्य शिवं शम्भु कल्याण प्राप्नुयामिति ।
किमस्ति गर्वो दुर्वारः स गर्वोऽद्य विनश्यति ।२७।
सर्वेशविमुखो भूत्वा देवेष्वेतेषु कस्तव ।
करिष्यति सहायं तं न ते पश्यामि सर्वथा ।।२८

जिसके चरणों का निरन्तर ध्यान करने से विष्णु को विष्णुत्व की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२२। जिसके चरणों का ध्यान और पूजन करने से ब्रह्मा को ब्रह्मत्व की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२३। जिसके चरणों के ध्यान और पूजन से इन्द्र आदि लोकपालों को उनके पद की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२४। यह शिवा ही जगत् की माता और शिव ही जगत्पिता हैं, अरे मूर्ख तूने उनका निरादर किया है तो तेरा कल्याण किस प्रकार सम्भव है ? ।२५। तेरा दुर्भाग्य उपस्थित हो गया जो तूने भक्तिपूर्वक उस भवानी की और शिव की आराधना नहीं की ।२६। 'शिव के पूजन बिना ही मैं अपना मङ्गल कर लूँगा' तेरा यह मिथ्या गर्व आज खण्डित हो जायगा ।२७। सर्वेश्वर शिव से विरोध लेकर कौन-सा देवता तेरी सहायता करेगा ? मैं तो ऐसा कोई भी नहीं देखता ।२८।

यदि देवा: करिष्यन्ति साहाय्यमधुना तव ।
तदा नाशं समाप्स्यन्ति शलभा इव वह्निना ।२९।
ज्वलत्वद्य मुखं ते वै यज्ञध्वंसो भवत्विति ।
सहायास्तव यावन्तस्ते ज्वलंत्वद्य सत्वरम् ।३०।
अमराणां च सर्वेषां शपथोऽमंगलाय ते ।
करिष्यन्त्यद्य साहाय्यं यदेतस्य दुरात्मन: ।३१।
निर्गच्छत्वमरा: स्वोकमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।३२
निर्गच्छंत्वपरे सर्वे मुनिनागादयो मखात् ।
अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।३३।
निर्गच्छ त्वं हरे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।३४
निर्गच्छ त्वं विधे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।३५
इत्युक्त्वाध्वरशालायामखिलायां सुसंस्थितान् ।
व्यरमत्सा नभोवाणी सर्वकल्याणकारिणी ।३६

तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं सर्वे हर्यादयः सुराः ।
अकार्षुर्विस्मयं तात मनुष्यश्च तथाऽपरे ।३७।

इस समय जो देवता तेरी सहायता करेंगे वे भी इस प्रकार नष्ट हो जायेंगे, जैसे अग्नि में शलभ भस्म हो जाता है ।२९। तेरा मुख भस्म हो जाय, तेरे सभी सहायक भस्म हो जाँय और तेरा यज्ञ भी विध्वंस हो जाय ।३०। सभी देवताओं को अमङ्गलार्थ शपथ है यदि कोई इस दुरात्मा की सहायता करे ।३१। सब देवता इस यज्ञ मंडप से शीघ्र ही बाहर हो जाँय, अन्यथा उनका सर्वथा नाश हो जायगा ।३२। मुनिगण और नाग आदि भी शीघ्र ही यहाँ से चले जाँय, अन्यथा वे नष्ट हो जाँयगे ।३३। हे विष्णो ! तुम भी इस मण्डप से शीघ्र चले जाओ, अन्यथा तुम्हारा भी नाश हो जायगा ।३४। हे ब्रह्मा ! तुम भी इस स्थान से शीघ्र ही बाहर चले जाओ, अन्यथा तुम भी नष्ट हो जाओगे ।३५। ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार यज्ञशाला में सबकी उपस्थित में वह आकाशवाणी सबके कल्याणार्थ उपदेश कर मौन हो गई ।३६। विष्णु आदि सभी देवता और मुनिगण आकाशवाणी को सुनकर अत्यन्त आश्चर्य मानने लगे ।३७।

सती-मरण सुनकर शिवजी का वीरभद्र को प्रकट करना

श्रुत्वाव्योमगिरं दक्षः किमकार्षीत्तदाऽबुधः ।
अन्ये च कृतवन्तः किं ततश्च किमभूद्वद ।१।
पराजिताः शिवगणा भृगुमन्त्रबलेन वै ।
किमकार्षुः कुत्र गतास्तत्वं वद महामते ।२।
श्रुत्वा व्योमगिरं सर्वे विस्मिताश्च सुरादयः ।
नवोचकिञ्चिदपि ते तिष्ठन्तुस्तु विमोहिताः ।३।
पलायमाना ये वीरा भृगुमन्त्रबलेन ते ।
अवशिष्टाः शिवगणाः शिव शरणमाययुः ।४।
सर्वं निवेदयामासू रुद्रायामिततेजसे ।
चरित्रं च तथाभूतसुप्रणम्यादराच्च ते ।५।

देवदेव महादेव पाहि नः शरणागतान् ।
संश्रृण्वादरतो नाथ सतीवार्तां च विस्तरात् ।६।
गर्वितेन महेशान दक्षेण सुदुरात्मना ।
अपमानः कृतः सत्याऽनादरो निजरैस्तथा ।७।

नारदजी ने पूछा—आकाशवाणी को सुनकर उस अदूरदर्शी दक्ष ने तथा वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों ने क्या किया, यह मेरे प्रति कहिये ।१। जब शिवगण भृगु के मन्त्र बल से परास्त हो गए तब उन्होंने क्या किया और वे कहाँ गये ? इस सब वृत्तान्त को मुझ से कहिये ।२। ब्रह्मा जी ने कहा—आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्चर्य चकित होकर मौन का अवलम्बन कर बैठे रहे ।३। उधर भृगु के मन्त्र से परास्त होकर भागे हुए शिवगण शिवजी की शरण में पहुँचे ।४। और उनके समक्ष उपस्थित होकर प्रणाम किया तथा आदर सहित सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें सुनाया ।५। गणों ने कहा—हे देव देव ! हम शरणागतों की रक्षा करिए । हे प्रभो ! आप विस्तारपूर्वक सती की बात सुनें ।६। हे प्रभो ! उस दुरात्मा दक्ष ने अत्यन्त अहङ्कारपूर्वक देवताओं सहित सती का तिरस्कार किया ।७।

तुभ्यं भागमदान्नः स देवेभ्यश्च प्रदत्तवान् ।
दुर्वचांस्यवदत्प्रोच्चैर्दुष्टो दक्षः सुगर्वितः ।८।
ततो दृष्ट्वा न ते भाग यज्ञेऽकुप्यत्सती प्रभो ।
विनिंद्य बहुशस्तातमधाक्षीत्स्वतनुं तदा ।९।
गणास्त्वयुतसंख्या का मृतास्तत्र विलज्जया ।
स्वांगान्याच्छिद्य शस्त्रैश्चक्रुध्यामह्यपरेत्वयम् ।।१०।
तद्यज्ञं ध्वंसितुं वेगात्सन्नद्धास्तु भयावहाः ।
तिरस्कृता हि भृगुणा स्वप्रभावाद्विरोधिना ।११।
ते वयं शरणं प्राप्तास्तव विश्वम्भर प्रभो ।
निर्दयान् कुरु नस्तस्माद्दयमान भवद्भयात् । ।१२।
अपमानं विशेषेण तस्मिन् यज्ञे महाप्रभो ।
दक्षाद्यास्तेऽखिला दुष्टा अकुर्वन् गर्विता अति ।१३।

इत्युक्तं निखिलं वृत्तं स्वेषां सत्याश्चनारद ।
तेषां च मूढ़ बुद्धीनां यथेच्छसि तथा कुरु ।१४।

आपको यज्ञ भाग न देकर अन्य सभी देवताओं को दिया और अहङ्कार पूर्वक बहुत-से दुर्वचन दक्ष ने कहे हैं ।८। हे नाथ ! आपका भाग यज्ञ में न देखकर सती को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने अपने पिता की अनेक प्रकार से भर्त्सना करके अपने देह का त्याग कर दिया ।९। लज्जा के कारण हजारों शिवगणों ने वहाँ अपने अंगों को काटकर प्राण त्याग दिये, परन्तु जब हम उसे मारने और यज्ञ विध्वंस करने लगे, तब आपके विरोधी भृगु ने मन्त्र बल से हमको रोक दिया ।१०-११। हे प्रभो ! हम भयभीत होकर आपके शरण में आये हैं, हमारा निर्दयता पूर्वक पराभव हुआ है, हमको भय रहित कीजिए, हे नाथ ! हम पर दया करिए ।१२। हे शंकर ! हमारा उस यज्ञ में घोर अपमान हुआ है, उन दुष्ट दक्ष आदि ने हमारा पूर्ण तिरस्कार किया है ।१३। हमने सती की और अपनी सम्पूर्ण वार्ता आपसे निवेदन कर दी, अब आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें ।१४।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स्वगणानां वचः प्रभुः ।
सस्मार नारदं सर्वं ज्ञातुं तच्चरितं लघु ।१५।
आगतस्त्वं द्रुतं तत्र देवर्षे दिव्यदर्शनः ।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या सांजलिस्तत्र तस्थिवान् ।१६।
त्वां प्रशस्याथ स स्वामी सत्या वार्ता च पृष्टवान् ।
दक्षयज्ञगतायां वै परं च चरितं तथा ।१७।
पृष्टेव शंभुना तात त्वयाऽऽश्वेव शिवात्मना ।
तत्सर्वं कथितं वृत्तं जातं दक्षाध्वरे हि यत् ।१८
तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यं मुने तत्वन्मुखोदितम् ।
चुकोपातिद्रुतं रुद्रो महारौद्रपराक्रमः ।१९।
उत्पाट्यैकां जटां रुद्रो लोकसंहार कारकः ।
आस्फालयामास रुषा पर्वतस्य तदोपरि ।२०।

तोदनाच्च द्विधा भूता सा जटा च मुने प्रभोः ।
सम्बभूव महारावो महाप्रलयभीषणः ।२१।

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार अपने गणों की बात सुनकर उस चरित्र को शीघ्र जान लेने की इच्छा से भगवान् शंकर ने नारदजी को याद किया ।१५। तब, हे दिव्य-दर्शन नारदजी ! तुम तुरन्त ही वहाँ पहुँचे और शिवजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़े ।१६। उस समय शिव ने तुम्हारीं प्रशंसा करके सती का वृत्तान्त तथा दक्ष-यज्ञ में जाने का सम्पूर्ण समाचार कहने को कहा ।१७। शिवजी द्वारा ऐसा प्रश्न करने पर वहाँ जो कुछ घटना घटी थी, वह सब तुमने उनको सुनाई ।१८। तुम्हारे मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित होकर महारौद्र रूप हो गए ।१९। लोक संहारक रुद्र ने अपनी एक जटा उखाड़ क्रोधपूर्वक पर्वत पर दे मारी ।२०। जटा के मारते ही उसके दो खण्ड हो गए और उससे महाप्रलय के समान भयङ्कर शब्द हुआ ।२१।

तज्जटायाः समुद्भूतो वीरभद्रो महाबलः ।
पूर्व भागेन देवर्षे महाभीमो गणाग्रणीः ।२२।
स भूमिं विश्वतोबृत्य चात्यतिद्दशांगुलम् ।
प्रलयानलसंकाशः प्रोन्नतो दोः सहस्रवान् ।२३।
कोप निःश्वासतस्तत्र महारुद्रस्य चेशितुः ।
जातं ज्वराणां शतकं संनिपातास्त्रयोदश ।२४।
महाकाली समुत्पन्ना तज्जटापरभागतः ।
महाभयंकरा तात भूतकोटिभिरावृता ।२५।
सर्वे मूर्तिधराः क्रूरा ज्वरा लोकभयंकराः ।
स्वतेजसा प्रज्वलंतो दहंत इव सर्वतः ।२६।
अथ वीरो वीरभद्रः प्रणम्य परमेश्वरम् ।
कृतांजलिपुटः प्राह वाक्य वाक्यविशारदः ।२७।
महारुद्र महारौद्र सोमसूर्याग्निलोचन ।
किं कर्त्तव्यं मया कार्यं शीघ्रमाज्ञापय प्रभो ।२८।

उस जटा से महाबली वीरभद्र प्रकट हुआ। जटा के पूर्व भाग से उत्पन्न यह वीर, वीरों में अग्रणी तथा अत्यन्त भयङ्कर था।२२। इसने सम्पूर्ण पृथिवी को व्याप्त कर लिया तथा वह दश अंगुल परिमाण स्थान में स्थित था। वह प्रलय की अग्नि के समान तेजस्वी था और उसके दो हजार भुजाएँ थीं।२३। महारुद्र के क्रोध से उस समय सौ ज्वर और तेरह प्रकार के सन्निपात उत्पन्न हुए।२४। जटा के दूसरे भाग से महाकाली उत्पन्न हुई, वह महा भयङ्कर और करोड़ भूतों से घिरी हुई थीं।२५। यह सभी महा भयङ्कर क्रूर स्वरूप वाले थे, वे अपने तेज से प्रज्वलित हुए सब दिशाओं को दग्ध करते हुए से प्रतीत होते थे।२६। उस समय वह वीरभद्र शिवजी को प्रणाम कर हाथ जोड़ता हुआ इस प्रकार कहने लगा।२७। वीरभद्र ने कहा—हे महारुद्र ! हे सोम सूर्य और अग्नि जैसे नेत्र वाले ! मुझे क्या कार्य करना है, इसकी शीघ्र ही आज्ञा दीजिए।२८।

शोषणीयाः किमीशान क्षण र्द्धेनैव सिंधवः।
पेषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव पर्वताः।२९।
क्षणेन भस्मसात्कुर्यां ब्रह्मांडमुत किं हर।
क्षणेन भस्मसात्कुर्यां सुरान्वा किं मुनीश्वरान्।३०
व्याश्वासः सर्व लोकानां किमुकार्यो हि शंकर।
कर्तव्यं किमुतेशान सर्वपाणिविहिंसनम्।३१।
ममाशक्यं न कुत्रापि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
पराक्रमेण मत्तुल्यो न भूतो न भविष्यति।३२।
यत्र यत्कार्यमुदिश्य प्रेषयिष्यसि मां प्रभो।
तत्कार्यं साधयाम्येव सत्वरं त्वत्प्रसादतः।३३।
क्षुद्रास्तरन्ति लोकाब्धि शासनाच्छंकरस्यते।
हरातोऽहं न किं तर्तुं महापत्सागरं क्षमः।३४।
त्वत्प्रेषिततृणेनापि महत्कार्यमयत्नतः।
क्षणेन शक्नुये कर्तुं शंकरात्र न संशयः।३५।

हे ईशान ! आज्ञा हो तो क्षणमात्र में समुद्र का शोषण कर डालूँ

अथवा क्षण मात्र में ही पर्वतों को चूर्ण कर डालूँ ।२६। हे शंकर ! क्षण मात्र में ब्रह्माण्ड को भस्म करदूँ या देवताओं और मुनीश्वरों को दग्ध कर डालूँ ।३०। सब लोकों को अस्त-व्यस्त करदूँ ।३१। अथवा सब प्राणियों को ही नष्ट कर डालूँ । आपके प्रसाद से मैं सब कुछ करने में समर्थ हूँ क्योंकि मेरे समान पराक्रमी न कोई हुआ न होगा ।३२। हे नाथ ! आप जिस-जिस कार्य के लिए जहाँ-जहाँ मुझे भेजेंगे, मैं वहीं-वहीं जाकर उस-उस कार्य को करूँगा ।३२। हे शंकर ! आपके शासन से क्षुद्र प्राणी भी भवसागर से तर जाते हैं, तो क्या मैं आपकी कृपा से महा विपत्ति के सागर से तरने में अशक्य हूँ ? ।३४। आपकी कृपा से तिनका भी महान् कार्य करने में समर्थ होता है और क्षणभर में कर सकता है, इसमें संशय नहीं है ३५।

लीलामात्रेण ते शम्भो कार्यं यद्यपि सिद्ध्यति ।
तथाप्यहं प्रेषणीयस्तत्रैवानुग्रहो ह्ययम् ।३५।
शक्तिरेतादृशी शम्भो ममापि त्वदनुग्रहात् ।
बिना शक्तिर्न कस्यापि शंकर त्वदनुग्रहात् ।३७।
त्वदाज्ञया विना कोऽपि तृणादीनि वस्तुतः ।
नव चालयितुं शक्तः सत्यमेतन्न संशयः ।३८।
शम्भो नियम्याः सर्वेऽपि देवाद्यस्ते महेश्वर ।
तथैवाहं नियम्यस्ते नियन्तुः सर्वदेहिनाम् ।३६।
प्रणतोऽस्मि महादेव भूयोऽपि प्रणतोऽस्म्यहम् ।
प्रेषय स्वेष्टसिद्ध्यर्थं मामाद्य हर सत्वरम् ।४०।
स्पन्दोऽपि जायते शम्भो सव्यांङ्गानां मुहुर्मुहुः ।
भविष्यत्यद्यविजयो मामतः प्रेषयः प्रभो ।४१।
हर्षोत्साहविशेषोऽपि जायते मम कश्चन ।
शम्भो त्वत्पादकमले संसक्तश्च मनो मम ।४२।

हे प्रभो ! यद्यपि आपकी लीला से ही सब कार्य पूर्ण हो जाते हैं, फिर भी आप कृपा करके मुझे कार्य के लिए भेजिए ।३६। हे नाथ ! आपके अनुग्रह से मुझ में जो शक्ति है, वह आपकी कृपा के अभाव में कभी

सम्भव नहीं है ।३७। आपकी आज्ञा के बिना कोई तिनके को भी चलायमान नहीं करता, यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ ।३८। हे शिव ! जैसे सब देवता आपके नियम में स्थित हैं, वैसे ही मैं भी आपके नियम में पूर्णतया स्थित हूँ ।३९। हे शंकर मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ, आप अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मुझे अवश्य भेजिये ।४०। हे प्रभो ! मेरे दक्षिण अंग निरन्तर फड़क रहे हैं, आप मुझे जहाँ कहीं भेजेंगे, वहीं विजय होना निश्चित है ।४१। हे प्रभो ! मेरा मन आपके पद-पद्मो में है और मुझे एक विशेष प्रकार का उत्साह तथा हर्ष हो रहा है ।४२।

भविष्यत्यति प्रतिपद शुभसन्तानसततिः ।४३।
तस्यैव विजयो नित्यं तस्यैव शुभमन्वहम् ।
यस्य शम्भो दृढा भक्तिस्त्वयि शोभनसंश्रये ।४४।
इत्युक्तं तद्वचः श्रुत्वा सन्तुष्टो मङ्गलापति ।
वीरभद्र जयेति त्वं प्रोक्ताशीः प्राह तं पुनः ।४५।
शृणु मद्वचनं तात वीरभद्र सुचेतसा ।
करणीयं प्रयत्नेन तद्द्रुतं मे प्रतोषकम् ।४६।
यागं कर्तुं समुद्युक्तो दक्षो विधिसुतः खलः ।
मद्विरोधी विशेषेण महागर्वोऽबुधोऽधुना ।४७
तन्मखं भस्मात्कृत्वा सयागपरिवारकम् ।
पुनरायाहि मत्स्थानं सत्वरं गणसत्तम ।४८।
सुरा भवतु गन्धर्वा यक्षा वान्ये च केचन ।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ।४९।

अच्छी सन्तान की सन्तति भी प्रत्येक पद में अच्छी ही होती है ।४३। आप सुन्दर आश्रय वाले शंकर के चरणों में जिसकी भक्ति हो, उसी की नित्य विजय तथा सब प्रकार मङ्गल होगा ।४४। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शङ्कर उसके वचनों से सन्तुष्ट हो गए और उन्होंने वीरभद्र ! तेरी जय हो । इस प्रकार उसे आशीर्वाद दिया ।४५। शिवजी बोले—हे वीरभद्र ! तुम श्रेष्ठ मन से मेरी बात सुनो और मेरे सन्तोष के लिए मेरा आदेश पालन करो ।४६। वह दुष्ट ब्रह्मपुत्र दक्ष यज्ञ कर

रहा है, वह मेरा द्रोही, मूर्ख तथा घोर अहङ्कारी है ।४७। सपरिवार उसका यज्ञ नष्ट करके तुम शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ ।४८। वहाँ देवता, गन्धर्व जो कोई भी उपस्थित हों, उन सभी को भस्म कर डालो ।४८।

तत्रास्तु विष्णुर्ब्रह्मा वा शचीशो वा यमोऽपि वा ।
अपि चाद्यैव तान्सर्वान्पातयस्व प्रयत्नतः ।५०।
सुरा भवन्तु गन्धर्वा यक्षा वान्ये च केचन ।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ।५१।
दधीचिकृतमुल्लंघ्य शपथं मयि तत्र ये ।
तिष्ठन्ति ते प्रयत्नेन ज्वालनीयास्त्वया ध्रुवम् ।५२।
प्रथमाश्चागमिष्यन्ति यदि विष्णुवादयो भ्रमात् ।
नानाकर्षणमन्त्रेण ज्वालयाऽऽनीय सत्वरम् ।५३।
ये तत्रोल्लंघ्य शपथं मदीयं गर्विताः स्थिताः ।
ते हि मद्द्रोहिणीऽतस्तान् ज्वालयानलमालया ।५४।
सपत्नीकान्ससारांश्च दक्षयागस्थलस्थितान् ।
प्रज्वाल्य भस्मसात्कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ।५५।
तत्र त्वयि गते देवा विश्वाद्या अपि सादरम् ।
स्तोष्यन्ति त्वां तदात्याशु ज्वालया ज्वालयैव तान् ।५६

विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम जो कोई वहाँ मिले, उसी को नष्ट कर दो ।५०। देव, गन्धर्व, यक्ष जो कोई हो उसे दग्ध करो ।५१। दधीचि की शपथ को उल्लंघन कर जो कोई वहाँ स्थित रहे, उन सभी को भस्म कर दो ।५१। यदि विष्णु भी उनके साथ कोई भ्रमपूर्ण कार्य करें तो अनेक प्रकार के आकर्षण मन्त्रों द्वारा उन्हें जला दो ।५३। उस ऋषि की शपथ का उल्लंघन करके वहाँ ठहरने वाले सभी मेरे द्रोही हैं उन्हें अग्नि-लपटों से भस्म कर दो ।५४। जो भी स्त्री धन आदि के सहित दक्ष यज्ञ में स्थित हों, उन सभी को भस्म करके मेरे पास शीघ्र लौट आओ ।५५। तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर यदि विश्वेदेवा आदि देवता तुम्हारी स्तुति करें तो भी उन्हें न छोड़ना और भस्म कर देना ।५६।

देवानापि कृतद्रोहान् ज्वालमालासमाकुलैः ।
ज्वालय ज्वलनैः शीघ्रं मामाध्यायपालकम् ।५७।
दक्षादीन्सकलांस्तत्र सपत्नीकन्सबांधवान् ।
प्रज्वाल्य वीर दक्षं नु सलीलं सलिलं पिब ।५८।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वेद्रमर्यादपालकः ।
विरराम महावीरं कालारिः सकलेश्वरः ।५९।

जो देवता हमारे द्रोही हैं, उनको शीघ्र ही अग्नि की लपटों से भस्म कर देना । उनके मन्त्र पालक होने का भी ध्यान न करना ।५७। सपत्नीक गन्धर्वादि सहित दक्ष आदि को भस्म करके फिर नील धारा का जलपान करना ।५८। ब्रह्माजी ने कहा कि वेद मर्यादा का पालन करने वाले भगवान् शङ्कर क्रोध से रक्तवर्ण युक्त नेत्र वाले तथा काल के भी शत्रु वीरभद्र से ऐसा कह कर मौन हो गए ।५९।

वीरभद्र का सेना सहित गमन

इत्युक्तं श्रीमहेशस्य श्रुत्वा वचनमादरात् ।
वीरभद्रोऽतिसंतुष्टः प्रणनाम महेश्वरम् ।१।
शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ।
प्रचचाल ततः शीघ्रं वीरभद्रो मखं प्रति ।२।
शिवोऽथ प्रेषयामास शोभार्थं कोटिशो गणान् ।
तेन सार्द्धं महावीरान्प्रलयानलसन्निभान् ।३।
अथं ते वीरभद्रस्य पुरतः प्रबला गणाः ।
पश्चादपि ययुर्वीराः कुतूहलकरा गणाः ।४।
वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः ।
पाषदाः कालकालस्य सर्वेरुद्रस्वरूपिणः ।५।
गणैः समेतः किलः तैर्महात्मा स वीरभद्रो हरवेषभूषणः ।
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपाढ्यो ययौ रथस्थः प्रबलोऽतिभीकरः ।।
नल्वानां च सहस्रे द्वे प्रमाणं स्यन्दनस्य हि ।
अयुतेनैव सिंहानां पाहनानां प्रयत्नतः ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—शिवजी के उक्त वचनों को आदरपूर्वक सुन कर अत्यन्त सन्तोष सहित वीरभद्र ने उन्हें प्रणाम किया ।१। देवदेव महादेव के शासन को शीश चढ़ाकर वीरभद्र तुरन्त ही यज्ञ स्थान को चल पड़ा ।२। शिव ने भी शोभा के लिए करोड़ों गणों को उसके साथ भेजा जो कि प्रलयाग्नि के समान वीरभद्र के पीछे-पीछे चले ।३। उस समय वे महाबली गण कुछ वीरभद्र के आगे और कुछ पीछे हो लिए और मार्ग में कुतूहल करने लगे ।४। वीरभद्र के साथ जो गण चले वे सभी काल के भी काल तथा साक्षात् रुद्र रूप थे ।५। वीरभद्र भी शिवजी जैसा वेश धारण किए हुए था । वह सहस्र भुजा वाला, सर्पों को लपेटे हुए, महा-प्रबल शत्रुओं का भी भयभीत करने वाला था, वह रथारूढ़ होकर चला ।६। उसके रथ का प्रमाण दो हजार नल्व था, उस रथ में दश हजार सिंह जुते हुए थे ।७।

तथैव प्रबलाः सिंहा बहवः पार्श्वरक्षकः ।
शार्दूला मकरा मत्स्या गजास्तत्र सहस्रशः ।८।

वीरभद्रे प्रचलिते दक्षनाशाय सत्वरम् ।
कल्पवृक्षसमुत्सृष्टा पुष्पवृष्टिरभूत्तदा ।९।

तष्टुवुश्च गणा वीरं शिपिविष्टे प्रवेष्टितम् ।
चक्रुः कुतूहलं सर्वे तस्मिंश्च गमनोत्सवे ।१०।

काली कात्यायनी शानी चामुण्डा मुण्डमर्दिनी ।
भद्रकाली तथा भद्रा त्वरिता वैष्णवी तथा ।११।

एताभिर्नवदुर्गाभिर्महाकाली समन्विता ।
ययौ दक्षविनाशाय सर्वभूतगणैः सह ।१२।

डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः ।
कूष्मांडाः पर्पटाश्चैव चटका ब्रह्मराक्षसाः ।१३।

भैरवाः क्षेत्रपालाश्च दक्षयज्ञविनाशकाः ।
निर्ययुस्त्वरितं वीराः शिवाज्ञा प्रतिपालकः ।१४।

इसी प्रकार असंख्य सिंह पार्श्वरक्षक थे, तथा शार्दूल, मकर, मत्स्य और हाथी भी हजारों की संख्या में साथ थे।८। जब वीरभद्र दक्ष का संहार करने के लिए चला, तब उस पर कल्प-वृक्ष के पुष्पों की वृष्टि होने लगी।९। शिव-चेष्टा वाले उस वीरभद्र की शिवगण स्तुति करने लगे और उसके साथ चलते हुए सभी कुतूहल करने लगे।१०। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुन्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी।११। इन नौ दुर्गाओं के साथ महाकाली दक्ष-संहार के निमित्त उन भूतगणों के साथ चली।१२। डकिनी, शकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक तथा ब्रह्मराक्षस।१३। भैरव, क्षेत्रपाल यह सभी शिवाज्ञा से दक्ष को नष्ट करने के निमित्त द्रुत गति से चले।१४।

तथैव योगिनीचक्रं चतुःषष्टिगणान्वितम् ।
निर्ययौ सहसा क्रुद्धं दक्षयज्ञं विनाशितुम् ।१५
तेषां गणानां सर्वेषां संख्यानं शृणु नारद ।
महाबलवतां संघो मुख्यानां धैर्यशालिनाम् ।१६।
अभ्ययाच्छंकुकर्णश्च दशकोट्या गणेश्वरः ।
दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ।१७।
चतुःषष्ट्याः विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः ।
षड्भिः सर्वांकको वीरस्तथेव विकृताननः ।१८।
ज्वालकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः ।
सप्तभिः समद्धद्धीमान् दुद्रमीऽष्टाभिरेव च ।१९।
पञ्चभिश्च कपालीशः षडभिः संदारको गणः ।
कोटिकोटिभिरेवेह कोटिकुंडस्थैव च ।२०।
विष्टंभोऽष्टाष्टभिर्वीरैः कोटिभिगणसत्तमः ।
सहस्रकोटिभिस्तात संनादः पिप्पलस्तया ।२१।

उन गणों के साथ चौंसठ योगनियाँ भी चलीं। यह सभी क्रोधपूर्वक दक्ष का विनाश करने के लिए उद्यत थे।१५। हे नारद ! उन गणों की संख्या मैं तुमसे कहता हूँ, उन महाबली तथा धैर्यशाली गणों में संघगण

मुख्य था ।१६। शंकुकर्ण दश करोड़ गण लेकर चला, केकराक्ष ने भी दश करोड़ तथा विकृत ने आठ करोड़ गण साथ लिए ।१७। विशाख के साथ चौंसठ करोड़, पारियात्र के साथ नौ करोड़, सर्वांकक के साथ छः करोड़ और वीर कृतानन के साथ छः करोड़ ।१८। गणश्रेष्ठ ज्वालाकोश के साथ बारह करोड़, समद् के साथ सात करोड़ और दद्रुम के साथ आठ करोड़ थे ।१९। कपालीश के साथ पाँच करोड़, संदारक के साथ छः करोड़ तथा कोटि और कुण्ड के साथ एक एक करोड़ थे ।२०। विष्टंभ-वीर के साथ आठ करोड़, वीर के साथ सात करोड़ तथा संनाद और पिप्पल के साथ हजार-हजार करोड़ चले ।२१।

आवेशनस्तथाष्टाभिरष्टाभिश्चन्द्रातापनः ।
महावेशः सहस्रेण कोटिता गणपो वृतः ।२२
कुण्डी द्वादशकोटिभिस्तथा पर्वतको मुने ।
विनाशितुं दक्षयज्ञं निर्ययौ गणसत्तमः ।२३
कालश्च कालकश्चैव महाकालस्तथैव च ।
कोटीनां शतकेनैव दक्षयज्ञं ययौ प्रति ।२४
अग्निकृच्छतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च ।
आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः ।२५
सन्नाहःशतकोट्या च कोट्या च कुमुदो गणः ।
अमोघः कोकिलाश्चैव कोटिकोट्या गणाधिपः ।२६
काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशी वृषभस्तथा ।
सुमन्त्रकोगणाधीशस्तथा तात सुनिर्ययौ ।२७
काकपादोदरः षष्ठिकोटिभिर्गणसत्तमः ।
तथा सन्तानकः षष्टिकोटिभिर्गणपुङ्गवः ।२८

आवेशन के साथ आठ करोड़, चन्द्रतापन के साथ भी आठ करोड़, महावेश गणपति के साथ सहस्र करोड़ चले ।२२। कुण्डी और पर्वतक ने बारह करोड़ सेना साथ लेकर दक्ष-नाश के निमित्त गमन किया ।२३। काल, कालक और महाकाल सौ-सौ करोड़ गण लेकर दक्ष-नाश के हेतु चले ।२४। अग्निकृत ने सौ करोड़, अग्निमुख ने एक करोड़, आदित्यमूर्धा

और घनावह ने भी एक-एक करोड़ सेना साथ ली ।२५। सन्नाह ने सौ करोड़, कुमुद ने एक करोड़, अमोघ तथा कोकिल गणाधिप ने भी एक-एक करोड़ गण साथ लिए ।२६। काष्ठागूढ़ सुकेशी, वृषभ गणाधीश और सुमन्त्रक यज्ञ चौंसठ-चौंसठ करोड़ गण लेकर चले ।२७। काकपादोदर ने साठ करोड़ तथा सन्तानक ने साठ करोड़ गण लिए ।२८।

महाबलश्च नवभिः कोटिभिः पुङ्गवस्तथा ।२९।
मधुपिंगस्तथा तात गणाधीशो हि निर्ययौ ।
नीतो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ।३०।
निर्ययौ शतकोटीभिश्चतुर्वक्त्रो गणाधिपः ।
काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा ।३१।
विरूपाक्षश्च कोटीनां चतुःषष्ट्या गणेश्वरः ।
तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च गणाधिपः ।३२।
संवर्तकस्तथा चैव कुलीशश्च स्वयं प्रभुः ।
लोकांतकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ।३३।
गणो भृङ्गी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ।
अशनिर्भालकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रकः ।३४।
कोटिकोटिसहस्राणां शतविंशतिभिर्वृतः ।
वीरेशो ह्यभ्ययाद्वीरो वीरभद्रः शिवाज्ञया ।।३५

श्रेष्ठगण महाबल ने नौ करोड़ गण लिए ।२९। गणाधीश मधुपिंग भी इसी प्रकार चला तथा नील और पूर्ण भद्र ने नब्बे करोड़ गण साथ लिए ।३०। चतुर्वक्र ने सौ करोड़ तथा काष्ठागूढ़, सुकेश और वृषभ ने चौंसठ करोड़ गणों को साथ लिया ।३१। गणेश्वर विरूपाक्ष ने चौंसठ करोड़ गण साथ लिये तथा तालुकेतु, षट्मुख, पञ्चमुख और गणेश्वर ।३२। सवर्तक कुलिश, लोकान्तक, दीप्तात्मा और दैत्यान्तक शिवजी के प्रिय भृङ्गीरिटि, अशनी और भालकगण ने चौंसठ हजार करोड़ सेना साथ ली ।३३-३४। इस प्रकार शिवाज्ञा से वीरभद्र हजारों, सैकड़ों, बीसियों करोड़ सेना से घिर कर चला ।३५।

भूतकोटिसहस्रैस्तु प्रययौ कोटिभिस्त्रिभिः ।
रोमजैः श्वगणैश्चैव तथा वीरो ययौ द्रुतम् ।३६।
तदा भेरी महानादः शंखाश्च विवधस्वनाः ।
जटाहरो मुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ।३७।
ते तानि विततान्येव बन्धनानि सुखानि च ।
वादित्राणि विनेदुश्च विविधानि महोत्सवे ।३८
वीरभद्रस्य यात्रायां सबलस्य महामुने ।
शकुनान्यभवंस्तत्र भूरिणि सुखदानि च ।३९।

हजारों करोड़ भूत तथा तीन करोड़ अन्य जाति के भूत तथा रोमज और श्वगणों सहित वीरभद्र ने गमन किया ।३६। उस समय भेरी का तीक्ष्ण नाद होने लगा, जटाहार और मुखों के अनेक प्रकार के शब्द तथा शृङ्गों के शब्द होने लगे ।३७। बन्ध स्थानों पर सुखदायक शब्द बढ़ने लगे तथा वह उत्सव अनेक प्रकार के शब्दों से भर उठा ।३८। हे नारद ! बलवान वीरभद्र की यात्रा में सुख देने वाले अनेक शकुन होने लगे ।३९।

यज्ञ में दैवी उत्पातों का दर्शन

एवं प्रचलिते चास्मिन् वीरभद्रे गणान्विते ।
दुष्टचिह्नानि दक्षेण दृष्टानि विबुधैरपि ।१।
उत्पाता विवधाश्चासन् वीरभद्रे गणान्विये ।
त्रिविधा अपि देवर्पे यज्ञविध्वंससूचकाः ।२।
दक्षवामाक्षिब हूरुविस्पंदः समजायत ।
नानाकष्टप्रदस्तात सर्वथाऽशुभसूचकः ।३।
भूकंपः समभूत्तत्र दक्षयागस्थले तदा ।
दक्षोऽपश्यच्च मध्याह्ने नक्षत्राण्यद्भुतानि च ।४।
दिशश्चासन्सुमलिनाः कर्बुरोऽभूद्दिवाकरः न ।
परिवेषसहस्रेण संक्रांतश्च भयङ्करः ।५।
नक्षत्राणि पतन्ति स्म विद्युदग्निप्रभाणि च ।
नक्षत्राणामभूद्वक्रा गतिश्चाधोमुखी तदा ।६।

गृध्रा दक्षशिरःस्पृष्टाः समुद्भूता सहस्रशः ।
आसीदगृध्रपक्षच्छायः सच्छायो यागमण्डपः ।७

ब्रह्माजी ने कहा—जब इस प्रकार गणों को साथ लेकर वीरभद्र ने गमन किया, तब दक्ष ने देवताओं सहित उसके लक्षण देखे ।१। हे नारद ! वीरभद्र के गमन समय में यज्ञ के विध्वंस होने के सूचक तीन उत्पात हुए ।२। दक्ष का वाम नेत्र, बाहू, ऊरु आदि अङ्ग फड़कने लगे तथा अन्य अनेक कष्टदायक उत्पात दिखाई दिए ।३। यज्ञ की भूमि कम्पायमान हो उठी, मध्याह्न में ही नक्षत्र दिखाई देने लगे ।४। दिशायें मलीन होगईं सूर्य में काले धब्बे दिखाई पड़ने लगे, अन्य सैकड़ों भयङ्कर अशकुन हुए ।५। बिजली और अग्नि के समान तारे गिरने लगे, नक्षत्रों की गति टेढ़ी तथा अधोमुखी होगई ।६। दक्ष के शिर को स्पर्श करते हुए सैकड़ों गृद्ध उड़ने लगे, उनकी छाया से यज्ञ मण्डप ढक गया ।७।

ववाशिरे यागभूमौ क्रोष्टारो नेत्रकस्तदा ।
उल्कावृष्टिरभूत्तत्र श्वेतवृश्चिकसंभवा ।८
खरा वाता ववुस्तत्र पांशुवृष्टिसमन्विता ।
शलभाश्च समुद्भूता विवर्तानिलकंपिताः ।९
रीतैश्च पवनैरूर्ध्वं स दक्षाध्वरमण्डपः ।
देवान्वितेन दक्षेण यः कृतो नूतनोऽद्भुतः ।१०
वेमुर्दक्षादयः सर्वे तदा शोणितमद्भुतम् ।
वेमुश्च मांसखंडानि सशल्यानिमुहुर्मुहुः ।११
सकंपाश्च बभूवुस्ते दीपा वातहता इव ।
दुःखिताश्चा भवन्सर्वे शस्त्र धाराहता इव ।१२
तदा निनादजातानि वाष्पवर्षाणि तत्क्षणे ।
प्रातस्तुषारवर्षीणि पद्मानीव वनान्तरे ।१३
दक्षाद्यक्षीणि जातानि ह्यकस्माद्विशदान्यपि ।
निशायां कमलाश्चैव कुमुदानीव सङ्गवे ।१४

गीदड़ और नेत्रक पक्षी शब्द करने लगे, श्वेत वृश्चकों के साथ उल्कापात होने लगा ।८। पांशुवृष्टि के साथ तीखी वायु चल पड़ी, सब ओर से

शलभ प्रकट हो गए तथा आवर्तकी वायु अत्यन्त वेग से चलने लगा।९। दक्ष का मण्डप रीति वाली वायु से ही उड़ने लगा, दक्ष यज्ञ में यह बात दैववश अत्यन्त अद्‌भुत और नवीन हुई।१०। दक्षादि सब रक्तवमन करने लगे तथा शल्य सहित माँस के टुकड़े मुख के द्वारा गिरने लगे।११। वायु के कारण सब दीपक काँपने लगे तथा सभी जीव शस्त्र की धार से आहत हुए के समान दु खी होगए।१२। उस बड़े शब्द से आंसुओं की वर्षा होने लगी, जैसे प्रातः-कालीन ओस से कमल व्याप्त हों, सभी के मुख ऐसे हो रहे थे।१३। जैसे रात्रि में कुमुद विशद हो जाते हैं वैसे ही दक्ष आदि के नेत्र अकस्मात् बड़े हो गए।१४।

असृग्ववर्ष देवश्च तिमिरेणावृता दिशः।
दिग्दाहोऽभूद्विशेषेण त्रासयन् सकलाञ्जनान्।१५।
एवंविधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः।
भयमापेदिरेऽत्यतं मुने विष्णवादिकास्तदा।१६।
भुवि ते मूर्च्छिताः पेतुर्हा हताः स्म इतीरयन्।
तरवस्तीरसजाता नदीवेगहता इव।१७।
पतित्वा ते स्थिता भूमौ क्रूराः सर्पा हता इव।
कंदुका इव ते भूयः पतिताः पुनरुत्थिता।१८।
ततस्ते तापसंतप्ता रुरुदुः कुररी इव।
रोदनध्वनिसंक्रांतोक्तिप्रत्युक्तिका इव।१९।
सवैकुण्ठास्तत सर्व तदा कुण्ठितशक्तयः।
स्वस्वोपकंठमाकंठं लुलुठुः कमठा इव।२०।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र संजाता चाशरीरवाक्।
श्रावत्यखिलान् देवान्दक्ष चैव विशेषतः।२१।

आकाश से लोहित वर्षा होने लगी, दिशाएँ अन्धकार से भर गयीं, सब प्राणियों के लिए दुःखदायी दिग्दाह होने लगा।१५। हे मुने! इस प्रकार देवताओं ने बहुत से उत्पात देखे, विष्णु आदि को भी बड़ा भय प्रतीत हुआ।१६। 'हाय, हम मरे' कहते हुए वे वैसे ही गिर पड़े जैसे

नदी के वेग से तट के वृक्ष गिर जाते हैं।१७। क्रूर सर्प द्वारा डसे हुए के समान वे पृथिवी पर गिर गये तथा गेंद के समान उठते और पुनः गिर पड़ते थे।१८। फिर वह ताप संतप्त होकर कुररी के समान रोने लगे और उक्ति तथा प्रत्युक्ति करने लगे।१९। विष्णु सहित सभी की शक्ति क्षीण होगई और वे कमल के समान अपने-अपने स्थानों के लिए लौट पड़े।२०। तभी वहाँ आकाशवाणी हुई, उसे सभी देवताओं ने और विशेष कर दक्ष ने भी सुना।२१।

धिग् जन्म तव दक्षाद्य महामूढोऽसि पापधीः।
भविष्यति महद्दुःखमनिवार्यं हरोद्भवम्।२२।
हाहापि नीऽत्र ये मूढास्तव देवादयः स्थिताः।
तेषामपि महादुःखं भविष्यति न संशयः।२३।
तच्छ्रुत्वाकाऽऽशवचनं दृष्ट्वारिष्टानि तानि च।
दक्षः प्रापद्भयं चाति परे देवादयोऽपि ह।२४।
वेपमानस्तदा दक्षो विकलश्चाति चेतसि।
अगच्छच्छरणं विष्णोः स्वप्रभोरिंदिरापतेः।२५।
सुप्रणम्य भयाविष्टः संस्तूय च विचेतनः।
अवोचद्देवदेवं तं विष्णुं स्वजनवत्सलम्।२६।

आकाशवाणी ने कहा—हे दक्ष ! तुम अत्यन्त पापी और मूढ़ को धिक्कार है। शिवजी द्वारा तुम्हें दुःख प्राप्ति अवश्य होगी।२२। यहाँ जितने देवता उपस्थित हैं, वे सब भी महा दुःख प्राप्त करेंगे।२३। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसी आकाशवाणी सुनकर और उत्पात देखकर दक्ष तथा देवताओं ने बड़ा दुःख माना।२४। दक्ष अत्यन्त कम्पित और व्याकुल हुआ अपने स्वामी नारायण की शरण में गया।२५। प्रणाम कर स्तुति की तथा भय से अचेत होता हुआ उनसे बोला।२६।

विष्णु द्वारा शिव की सामर्थ्य वर्णन

देवदेव हरे विष्णो दीनबन्धो कृपानिधे।
मम रक्षा विधातव्या भवता साध्वरस्य च।१।
रक्षकस्त्वं मखस्यैव मखकर्मा मखात्मकः।

कृपा विधेया यज्ञस्य भङ्गो भवतु न प्रभो ।२।
इत्थं बहुविधा दक्षः कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् ।
पपात पादयोस्तस्य भयव्याकुलमानसः ।३।
उत्थाप्य तं ततो विष्णुर्दक्षं विक्लिन्नमानसम् ।
श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्यं कुमतेरस्मरच्छिवम् ।४।
स्मृत्वा शिवं महेशानं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ।
अवदच्छिवतत्त्वज्ञो दक्षं सम्बोधयन्हरिः ।५।
शृणु दक्ष प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु मे वचः ।
सर्वथा ते हितकरं महामन्त्रं सुखप्रदम् ।६।
अवज्ञा हि कृता दक्ष त्वया तत्त्वमजानता ।
सकलाधीश्वरस्यैव शंकरस्य परात्मनः ।७।

दक्ष ने कहा—हे देवदेव ! हे दीनबन्धो ! हे विष्णो ! आप कृपा के सिन्धु हैं, जैसे भी हो सके, इस यज्ञ में मेरी रक्षा करें ।१। आप यज्ञ-कर्म वाले, यज्ञ-रक्षक तथा साक्षात् यज्ञात्मा हैं, मेरा यज्ञ भङ्ग न हो, ऐसी कृपा कीजिये ।२। ब्रह्माजी ने कहा कि दक्ष ने इस प्रकार बहुत भांति प्रार्थना की और भय से व्याकुल होकर वह उनके चरणों में गिर पड़ा ।३। विष्णुजी ने उस व्याकुल चित्त दक्ष को उठाया और उसकी बात सुनकर उन्होंने शिवजी का स्मरण किया ।४। अपने प्रभु भगवान् शंकर को स्मरण कर, शिवतत्व के ज्ञाता नारायण बोले—हे दक्ष ! तुम मेरी बात सुनो ! मैं तुम्हारे लिए हितकारी महामन्त्र कहता हूँ ।६। तुमने सर्वेश्वर शंकर का तत्व न जानकर उनका निरादर किया है ।७।

ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा ।
विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे ।८।
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम् ।९।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माननीयो वृषध्वजः ।
अमानितान्महेशाच्च महद्भयमुपस्थितम् ।१०।

अद्यापि न व्ययं सर्वे प्रभवः प्रभवामहे ।
भवतो दुर्नयेनैव मया सत्यमुदीर्य्यते ।११
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चितापरोऽभवत् ।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ।१२।
एतस्मिन्नन्तरे वीरभद्रः सैन्यसमन्वितः ।
अगच्छदध्वरं रुद्रप्रेरितो गणनायकः ।१३।
पृष्टे केचित्समायाता गगने केचिदागताः ।
दिशश्च विदिशः सर्वे समावृत्य तथाऽपरे ।१४।

ईश्वर की अवज्ञा करने वाले को केवल कार्य में असफलता नहीं, पद-पद में विपत्ति उठानी पड़ती है ।८। जहाँ अपूजनीयों का पूजन और पूजनीयों का निरादर होता है, वहाँ दारिद्रय, मृत्यु और भय तीनों की प्राप्ति होती है ।९। भगवान् शिवजी सब प्रकार मान्य हैं, उनका तिरस्कार करने से ही इस घोर भय की तुम्हें प्राप्ति हुई है ।१०। तुम्हारी दुर्नीति के कारण ही अब हम सभी का प्रभाव न रहेगा, यह बात सत्य समझो ।११। ब्रह्माजी ने कहा कि भगवान् विष्णु की बात से दक्ष अत्यन्त चिन्तित हुआ और व्याकुल मन से, विवर्ण होकर मौन खड़ा रहा ।१२। इसी समय महान् सेना के सहित रुद्र द्वारा भेजा गया वीरभद्र वहाँ आ पहुँचा ।१३। कोई गण उसके पीछे से और कोई नभ-मार्ग से तथा कोई दिशा, विदिशा से वहाँ आ गये ।१४।

शर्वाज्ञया गणाः शूरा निर्भया रुद्रविक्रमाः ।
असंख्याः सिंहनादा वै कुर्वतो वीरसत्तमाः ।१५।
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
रजसा चावृतं व्योम तपसा चावृता दिशः ।१६।
सप्तद्वीपान्विता पृथ्वी चचालातिभयाकुला ।
सशैलकानना तत्र चुक्षुभुः सकलाब्धयः ।१७।
एवंभूतं च तत्सैन्य लोकक्षयकरं महत् ।
दृष्ट्वा च विस्मिताः सर्वे बभूवुरमादयः ।१८।
सैन्योद्योगमथालोक्य दक्षश्चासृङ् मुखाकुलः ।

दण्डवत्पतितो विष्णु सकलत्रोऽभ्यभाषत् ।१६।
भवद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
सत्कर्मसिद्धये विष्णो प्रमाणं त्वं महाप्रभो ।२०।
विष्णो त्वं कर्मणां साक्षी यज्ञानां प्रतिपालकः ।
धर्मस्य वेदगर्भस्य ब्रह्मणस्त्वं महाप्रभो ।२१।
तस्माद्रक्षा विधातव्या यज्ञस्यास्य मम प्रभो ।
त्वदन्यः कः समर्थोऽस्ति यतस्त्वं सकलप्रभुः ।२२।

शिव आज्ञा से वह गण निर्भय, पराक्रमी तथा शूर थे, वे सब वीर वहाँ असंख्य सिंहनाद करने लगे उससे तीनों भुवन शब्दायमान होगए तथा आकाश धूल से और दिशाएँ अन्धकार से परिपूर्ण हो गई ।१६। सप्तद्वीप युक्त पृथिवी भय के कारण काँपने लगी तथा वनों सहित पर्वत और समुद्र भी चलायमान हो गए ।१७। इस प्रकार उस लोक-नाशक महासेना को आया देख कर देवता आदि सभी क्षुब्ध हो उठे ।१८। सेना का उद्यम देखकर दक्ष का शीश झुक गया ओर वह भगवान् विष्णु के समक्ष दण्ड के समान गिरता हुआ कहने लगा ।१६। दक्ष ने कहा— हे प्रभो ! मैंने आपके बल के भरोसे ही इस महान् यज्ञ का प्रारम्भ किया था और इस कार्य की सिद्धि आपकी कृपा से ही सम्भव है ।२०। हे विष्णो ! आप कर्मों के साक्षी तथा यज्ञों के पालनकर्त्ता हैं। हे प्रभो ! आप ही वेद-धर्म के अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म हैं ।२१। इसलिए आपको इस यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आपके अतिरिक्त अन्य कौन इस कार्य में समर्थ हो सकता है ? ।२२।

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दीनतरं तदा ।
अवोचद्बोधयंस्तं वै शिवतत्त्वपराङ्मुखम् ।२३।
मया रक्षा विधातव्या तव यज्ञस्य दक्ष वै ।
ख्यातो मम पणः सत्यो धर्मस्य परिपालनम् ।२४।
तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हि किं तत्तस्य व्यतिक्रमः ।
शृणु त्वं वच्म्यहं दक्ष क्रूरबुद्धिं त्यजाधुना ।२५।
नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे यज्जातं वृत्तमद्भुतम् ।

तत्किं न स्मर्यते दक्ष विस्मृतं किं कुबुद्धिना ।२६।
रुद्रकोपाच्च को ह्यत्र समर्थो रक्षणे तव ।
न यस्याभिमतं दक्ष यस्त्वां रक्षति दुर्मतिः ।२७।
किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यति दुर्मतिः ।
समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा ।२८।

ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष के वचन सुनकर विष्णुजी सन्तुष्ट होगए तथा दक्ष को शिवतत्व से पराङ्मुख समझते हुए कहने लगे ।२३। विष्णु जी ने कहा—हे दक्ष ! धर्म का पालन मेरा कर्त्तव्य है, इसलिए मैं तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करूँगा ।२४। तुमने सत्य कहा है, परन्तु तुम अब अपनी क्रूर बुद्धि को छोड़ दो इसी में कल्याण है ।२५। हे दक्ष ! नैमिषारण्य में जो घटना हुई थी, क्या वह तुम्हें याद नहीं है ? क्रूर बुद्धि से तुम उसे भुला बैठे हो ।२६। हे दक्ष ! तुम्हारी रक्षा करना भी सुमति नहीं है, रुद्र के कोप से तुम्हारी रक्षा करने में कौन समर्थ होगा ।२७। हे दुर्बुद्धि वाले ! तुम कर्म-अकर्म को नहीं देखते हो, परन्तु सब बातों में ही कर्म की सफलता नहीं हो सकती ।२८।

स्वकर्म विद्धि तद्येन समर्थत्वेन जायते ।
न त्वन्यः कर्मणो दाता शं भवेदीश्वर विना ।२६।
ईश्वरस्य च यो भक्त्या शांतस्तद्गतमानसः ।
कर्मणो हि फलं तस्य प्रयच्छति तदा शिवः ।३०।
केवल ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः ।
निरयं ते च गच्छंति कल्पकोटिशतानि च ।३१।
पुनः कर्ममयैः पाशैर्बद्ध्वाजन्मनि जन्मनि ।
निरयेषु प्रपच्यं ते केवल कर्मरूपिणः ।३२।
अयं रुद्रगणाधीशो वीरभद्रोऽरिमर्दनः ।
रुद्रकोपाग्निसंभूतः समायातोऽध्वरांगणे ।३३।
अयमस्मद्विनाशार्थमागतोऽस्ति न संशयः ।
अशक्यमस्य नास्त्येव किमप्यस्तु तु वस्तुतः ।३४।
प्रज्वाल्यास्मानयं सर्वान् ध्रुवमेव महाप्रभुः ।

ततः प्रशांतहृदयो भविष्यति न संशयः ।३५

अपना कर्म वही समझो, जिसमें सामर्थ्य हो, कर्म का फल देने में समर्थ शिव के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है ।२९। शान्त चित्त से भक्ति पूर्वक ईश्वर में मन लगाने वाले को ही शिवजी कर्म का फल प्रदान करते हैं ।३०। जो मनुष्य ईश्वर को नहीं मानते और केवल ज्ञान के आश्रय से ही बढ़ने की इच्छा करते हैं, वे सैकड़ों करोड़ वर्षों तक नरक में पड़ते हैं ।३१। फिर जन्म जन्मान्तर रूप कर्म के फन्दा में बँध कर कर्म रूपी नरक को बारम्बार प्राप्त होते हैं ।३२। यह शत्रुओं का नाश करने वाला वीरभद्र रुद्रगणों का अधीश्वर है तथा रुद्र की क्रोधाग्नि से उत्पन्न होकर ही यहाँ आया है ।३३। इसमें सन्देह नहीं कि यह हमारे विनाशार्थ ही यहाँ आया है, इसको शान्त करना यथार्थ में तो क्या, कल्पना में भी सम्भव नहीं है ।३४। यह हम सबको इस यज्ञ में भस्म करके फिर शांत होगा, इसमें संशय नहीं है ।३५।

श्रीमहादेवशपथं समुल्लंघ्य भ्रमान्मया ।
यतः स्थितं ततः प्राप्यं मया दुःखं त्वया सह ।३६
शक्तिर्मम तु नास्त्येय दक्षाद्य तन्निवारणे ।
शपथोल्लंभनादेव शिवद्रोही यतोऽस्म्यहम् ।३७
कालत्रयेऽपि न यतो महेशद्रोहिणां सुखम् ।
ततोऽवश्यं मया प्राप्तं दुःखमद्य त्वया सह ।३८
सुदर्शनाभिधं चक्रमेतस्मिन्न लगिष्यति ।
शैवं चक्रमिदं यस्मादशैवलयकारणम् ।३९
विनापि वीरभद्रेण नामैतच्चक्रमैश्वरम् ।
हत्वा गमिष्यत्यधुना सत्वरं हरसन्निधौ ।४०
शैव शपथमुल्लंघ्य स्थितं मां चक्रमीदृशम् ।
असंहत्यैव सहसा कृपयैव स्थिरं परम् ।४१
अतः परमिद चक्रमपि न स्थास्यति ध्रुवम् ।
गमिष्यत्यधुना शीघ्रं ज्वालमालासमाकुलम् ।४२

भ्रमवश मैं शिवजी की शपथ का उल्लंघन कर यहाँ ठहरा उसका

परिणाम तुम्हारे सहित प्रत्यक्ष ही प्राप्त है ।३६। हे दक्ष ! इस उत्पात को शान्त कहना मेरी सामर्थ्य से बाहर है, शपथ का उल्लघन करने के कारण मैं भी शिवद्रोही हो गया ।३७। शिवद्रोही को त्रिकाल में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, तुम्हारे इसी दुष्कर्म के कारण मुझे भी दुःख मिला है ।३८। इस पर सुदर्शन चक्र भी प्रहार करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि यह शैव्य-चक्र अशैव्यों पर ही प्रहार करता है ।३९। यदि इस चक्र को छोड़ा गया तो यह वीरभद्र पर प्रहार किये बिना ही शङ्कर के पास पहुँच जायगा ।४०। शिवजी की शपथ का उल्लंघन करने पर भी यह चक्र मेरे पास स्थित है, इसे शिवजी की परम कृपा ही समझनी चाहिए ।४१। अन्यथा यह चक्र किसी प्रकार भी नहीं ठहर सकता और ज्वालामुखी से व्याकुल होकर तुरन्त ही यहाँ से चला जायगा ।४२।

वीरभद्रः पूजितोऽपि शीघ्रमस्माभिरादरात् ।
महाक्रोधसमाक्रांतो नास्मान् संरक्षयिष्यति ।४३।
अकांडप्रलयोऽस्माकमागतोऽद्य हि हहा ।
हा हा वत तवेदानीं नाशोऽस्माकामुपस्थितः ।४४।
शरण्योऽस्माकमधुना नास्त्येव हि जगत्त्रये ।
शंकरद्रोहिणो लोके कः शरण्यो भविष्यति ।४५।
तनुनाशेऽपि संप्राप्यास्तैश्चापि यमयातनाः ।
स नैव शक्यते सोढुं बहुदुःखप्रदायिनीः ।४६।
शिवद्रोहिणमालोक्य दृष्टदन्तो यमः स्वयम् ।
तप्ततैलकटाहेषु पातयत्येव नान्यथा ।४७।
गन्तुमेवाहमुद्युक्तं सर्वथा शपथोत्तरम् ।
तथापि न गतः शीघ्रं दुष्टसंसर्गपापतः ।४८।
यदद्य क्रियतेऽस्माभिः पलायनमितस्तदा ।
शार्वो ना कर्षकः शस्त्रैरस्मानाकर्षयिष्यति ।४९।

यदि हम यहाँ आदरपूर्वक वीरभद्र का पूजन करें तो भी भगवान् शंकर के क्रोधित होने के कारण यह हमारी रक्षा किसी प्रकार न कर

पायेगा ।४३। इस कुसमय में यह कैसा प्रलयकाल उपस्थित हुआ और हमारा तुम्हारा अन्तकाल आ गया ।४४। इस समय तीनों लोकों में हमारा कोई रक्षक नहीं है, क्योंकि शिवद्रोही की रक्षा कौन कर सकता है ? ।४५। देह का नष्ट होना और यम-यातना को सहन करना यह दुःख हम से किस प्रकार भोगा जायगा ? ।४६। शिवद्रोही को देखते ही यम-राज दाँत पीसते हैं और उसको गर्म तेल के कढ़ाव में डाल देते हैं ।४६। मैं शपथ से सर्वथा मुक्त हो सकता था, परन्तु दुष्ट-सङ्ग के कारण मैं उससे न निकल सका ।४८। अब यदि हम यहाँ से भागें तो भी शिव अपने आकर्षणास्त्रों से हमको खींच लेंगे ।४६।

स्वर्गे वा भुवि पातालेयत्र कुत्रापि चा यतः ।
श्रीवीरभद्रशस्त्राणां गमनं नहि दुर्लभम् ।५०।
यावतश्च गणाः सन्ति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः ।
तावतामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम् ।५१
श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया ।
पुरा शिरश्च चिच्छेद पञ्चमं ब्रह्मणो ध्रुवम् ।५२।
एतददुक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः ।
वीरभद्रोऽपि संप्राप तदैवाध्वरमंडपम् ।५३।
एवं ब्रुवति गोविन्द आगतं सैन्यसागरम् ।
वीरभद्रण सहित ददृशुश्च सुरादयः ।५४।

स्वर्ग, पृथिवी, पाताल कहीं भी चले जाँय, वीरभद्र के शस्त्र सभी स्थानों में पहुँच सकते हैं ।५०। त्रिशूलधारी भगवान् शिव के सब गणों की ऐसी ही शक्ति है ।५१। शिवजी की आज्ञा से श्रीकालभैरव ने अपने नखों से ही काशी में ब्रह्माजी का पाँचवाँ शीश काट डाला ।५२। यह कहकर नारायण अत्यन्त व्याकुल-मुख हो गये, तभी वीरभद्र भी यज्ञ-मण्डप में आ पहुँचा ।५२। साथ ही सेना रूप सागर उमड़ आया और सभी देवताओं ने वीरभद्र के साथ इस सेना को देखा ।५४।

वीरभद्र द्वारा लोकपालों की पराजय

इन्द्रोऽपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा ।

वज्रपाणिः सुरैः सार्द्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा ।१
तदेन्द्रो गजमारूढो बस्तारूढोऽनलस्तथा ।
यमो महिषमारूढो निऋतिः प्रेतमेव च ।२
पाशी च मकरारूढो मृगारूढः सदागतिः ।
कुबेरः पुष्पकारूढः संतद्धोऽभूदतन्द्रितः ।३
तथान्ये सुरसंघाश्च यक्षचारणगुह्यकाः ।
आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः ।४
तेषामुद्योगमालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखस्तत ।
तदन्तिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषत ।५
युष्मद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणाः स्युर्महाप्रभाः ।६
तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवाः सवासवाः ।
निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः ।७

ब्रह्माजी ने कहा— उस इन्द्र ने नारायण का उपहास करते हुए आत्मप्रशंसा पूर्वक वज्र ग्रहण किया और देवताओं के सहित वीरभद्र से युद्ध करने को तत्पर हुए ।१। उस अवसर पर इन्द्र ऐरावत पर, अग्नि मेढ़े पर, यम महिष पर और निऋत प्रेत पर ।२ वरुण मकर पर, वायु मृग पर, कुबेर पुष्पक पर चढ़े तथा अन्य सभी देवता तैयार हो गए ।३। इसी प्रकार असंख्य देवता, यक्ष, चारण, गुह्यक अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर चल दिए ।४। उनको युद्ध के लिए तत्पर देखकर नीचा मुख किये हुए दक्ष ने इन्द्र के पास आकर कहा ।५। दक्ष बोला—मैंने यह महायज्ञ आपके भरोसे पर आरम्भ किया, क्योंकि आप अत्यन्त प्रभाव वाले हैं और इस यज्ञ की सिद्धि आप पर ही निर्भर है ।६। दक्ष की बात सुनकर इन्द्र के सहित सभी देवता अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने के लिए चले ।७।

अथ देवगणाः सर्वे युयुघुस्ते बलान्विताः ।
शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया ।८
देवानां च गजानां च तदासीत्समरो महान् ।

तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते बलान्विताः ।९
नेदुः शंखश्च भेर्यश्च तस्मिन् रथमहोत्सवे ।
महादुन्दुभयो नेदुः पटहा डिंडिमादयः ।१०
तेन शब्देन महता श्लघ्यमानास्तदा सुराः ।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्तांछिवकिंकरान् ।११
इन्द्राद्यै र्लोकपालैश्च गणाः शंभोः पराङ्मुखाः ।
कृताश्च मुनीशार्दूल भृगोर्मन्त्रबलेन च ।१२
उच्चाटनं कृत तेषां भृगुणा यज्वना तदा ।
यजनार्थं च देवानां तुष्ट्यर्थं दीक्षितस्य च ।।१३
पराजितास्वकान्दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च कृत्वा तानेन पृष्ठतः ।१४

फिर वे सभी बलवान देवता युद्ध करने लगे। वे सभी इन्द्रादि के सहित शिवमाया से मोहित हो रहे थे।८। उस समय देवताओं और शिवगणों का भयङ्कर युद्ध हुआ, वे तीक्ष्ण तोमर और नाराचों में युद्ध करने लगे।९। उस समय शङ्ख और भेरियाँ बजने लगीं तथा दुन्दुभी, पटह और डुमडुमी भी बजीं।१०। उस महान् शब्द से उत्साहित हुए देवता लोकपालों सहित उन शिवगणों को मारने लगे।११। उस समय भृगु के मन्त्रबल से इन्द्रादि लोकपालों ने शिवगणों का संहार कर डाला।१२। देव-यजन और दक्ष के सन्तोष के निमित्त यज्ञकर्त्ता भृगुजी ने सबका उच्चाटन कर दिया।१३। उन भूत, प्रेत, पिशाचों को हारता हुआ देखकर वीरभद्र ने क्रोधपूर्वक उन्हें पीछे कर दिया।१४।

वृषभस्थान् पुरकृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान् ।१५
देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि ।
शूलघातैश्च ते सर्वे गणाः वेगात्प्रजघ्निरे ।१६
केचिद्द्विधा कृताः खंगैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः ।
अन्यैः शस्त्रैरपि सुरा वर्णैर्भिन्नास्तदाऽभवन् ।१७
एवं पराजिता सर्वे पलायनपरायणाः ।

परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम् ।१८।
केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ।
संग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः ।१९।
सर्वे मिलित्वा शक्राद्या देवास्तत्र रणाजिरे ।
बृहस्पतिं च प्रच्छुर्विनयावनतास्तदा ।२०।
गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे ।
शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।२१।
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शम्भुं प्रयत्नवान् ।
बृहस्पतिरुवाचेद महेन्द्रं ज्ञानदुर्बलम् ।२२।

उस वृषभ में स्थित महाबली ने त्रिशूल से देवताओं को मारकर गिराना प्रारम्भ किया ।१५। देवता, यक्ष, साध्य, गुह्यक और चारणादि को त्रिशूल का प्रहार कर धराशायी कर दिया ।१६। खड्ग से किसी के दो टुकड़े किये, किसी पर मुद्गर प्रहार किया तथा अन्य शिवगणों ने भी शस्त्र प्रहार द्वारा देवताओं को विदीर्ण किया ।१७। इस प्रकार पराजित होते हुए देवता एक दूसरे को त्याग कर भागते हुए स्वर्ग को गये ।१८। तब इन्द्रादि देवताओं ने भी युद्धभूमि त्याग दी और अत्यन्त नम्रतापूर्वक वृहस्पतिजी से कहा ।१९-२०। लोकपालों ने कहा—हे गुरो ! हे महा-पण्डित ! हे दयासिन्धो ! आप शीघ्र ही हमको वह उपाय बताइये जिससे हमारी विजय हो सके । ब्राह्माजी ने कहा—उन सबकी बात सुनकर भगवान् शिव का स्मरण करके ज्ञान-दुर्बल इन्द्र से वृहस्पतिजी ने कहा ।२१-२२।

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै ।
तदेव विवृणोमीन्द्र सावधानतया श्रृणु ।२३।
अस्ति यश्केश्वरः कश्चित् फलदः सर्वकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न स्वकर्तुः प्रभुर्हि सः ।२४।
न मन्त्रौषधयः सर्वे नाभिचारा न लौकिकाः ।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ।२५।
अन्यान्यपि च शस्त्राणि नानावेदयुतानि च ।

ज्ञातुं नेशं संभवंति वदंत्येवं पुरातनाः ॥२६
न स्वज्ञेयो महेशानः सर्ववेदायुतेन सः ।
भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथेति महाश्रुतिः ॥२७
शांत्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया ।
तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२८
परं तु संवदिष्यामि कार्याकार्यविवक्षितौ ।
सिद्ध्यंशं च सुरेशान तं शृणु त्व हिताय वै ॥२९

बृहस्पति बोले--हे इन्द्र ! पहिले नारायण ने जो कुछ कहा था, वही हो गया, अब तुम मेरी बात को सावधानीपूर्वक श्रवण करो। सभी कर्मों का फलदाता ईश्वर भी कर्त्ता की अपेक्षा करता है, क्योंकि स्वयं करने में वह भी समर्थ नहीं है।२३-२४। मन्त्र, औषधि, अभिचार तथा लौकिक कर्म और वेद मीमांसा तथा वेद सम्मत अन्य सभी शास्त्र, उसके बिना कुछ नहीं हैं और न उस ईश्वर को जानने में समर्थ हैं, ऐसा विज्ञजन कहते हैं ।२५। भगवान् शंकर को सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता भी जानने में समर्थ नहीं, उन्हें तो केवल उन्हीं की शरण को प्राप्त भक्त जान सकता है ।२६। शान्त, निर्विकार पर दृष्टि होने तथा उनकी कृपा होने पर ही शिव तत्त्व का ज्ञान हो सकता है । फिर भी, हे इन्द्र ! कार्य-अकार्य के निर्णय में सिद्ध हुए अंश को मैं तुमसे कहता हूँ, सावधानी से सुनो ।२७-२९।

त्वमिंद्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्यवै ।
आगतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यासि विक्रमम् ॥३०
एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमकोपनाः ।
आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यंत्यसंशयम् ॥३१
सर्वथा न ह्युपायोऽत्र केषांचिदपि तत्त्वत. ।
यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३२
एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा ते हि दिवौकसः ।
चिंतामापेदिरे सर्वे लोकपालाः सवासवाः ॥३३
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः ।

इन्द्रादींल्लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शंकरम् ॥३४
सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थ मागताः ।
अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत समांतिकम् ॥३५
हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिन् हे धनाधिप ।
हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे ।३६

हे इन्द्र ! तुम लोकपालों सहित मूर्खतावश इस यज्ञ में आये हो तो भला तुम क्या पराक्रम करने में समर्थ हो ? रुद्र के अत्यन्त क्रोध वाले यह गण यज्ञ को विध्वंस करने आये हैं तो अपना कार्य अवश्य करेंगे । ३० । मैं तुम से सत्य ही कहता हूँ कि इस यज्ञ के विध्वंस को रोकने का कोई भी उपाय नहीं है । ३२ । ब्रह्माजी ने कहा कि वे सभी देवता बृहस्पति जी की बात सुनकर इन्द और लोकपालों सहित चिन्ता मग्न हो गए । ३२ । तभी अत्यन्त क्रोधपूर्वक उस महाबली वीरभद्र ने इन्द्रादि लोकपालों से कहा । ३३ । वीरभद्र बोला—तुम सब अपनी मूर्खता से इस यज्ञ में आये हो । इसका उत्तम फल तुमको चखाऊँगा । हे इन्द्र ! अग्ने ! सूर्प, चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायो, निर्ऋति यम और शेष। ३४-३६

हे सुरासुरसंघा हीहैत यूयं हे विचक्षणाः ।
अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वरान् ॥३७
एवमुक्त्वा सितैर्बाणैर्जघानाथ रुषान्वितः ।
निखिलांस ाज् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः ।
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः ॥३८
पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश ।
गतेषु लोकपालेषु बिद्रतेषु सुरेषु च ।
यज्ञवाटोपकंठे हि वीरभद्रोऽगमद्गणैः ॥३९
तदा ते ऋषयः सर्वे सुभीता हि महेश्वरम् ।
विज्ञप्तुकामाः सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम् ॥४०
देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो ।
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसि त्वं न संशयः ॥४१
यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञांगो यज्ञरक्षकः ।

रक्ष यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोऽन्यो नहि रक्षकः ॥४२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः ।
योद्धुकामो भयाद्विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै ॥४३

हे सुरो ! हे चतुरो ! तुम्हें मैं अब इसका फल देता हूं, भले प्रकार उसका भोग करो। ब्रह्माजी ने कहा—यह कह कर वीरभद्र तीक्ष्ण वाणों से देवताओं पर प्रहार करने लगा। उस समय उनकी चोट से इन्द्रादि देवता अत्यन्त व्यथित हुए। ३७। फिर वे दशों दिशाओं में भागने लगे। लोकपालों को भागा हुआ देखकर वीरभद्र गणों के सहित यज्ञशाला में आया। ३८। तब सभी ऋषि भगवान् नारायण के पास पहुँचे और भय के कारण शीघ्रता से बोले। ३९। ऋषियों ने कहा—हे लक्ष्मीपते ! हे महाप्रभो ! आप साक्षात् यज्ञ स्वरूप हैं, दक्ष के इस यज्ञ की रक्षा कीजिए। ४०। आप ही यज्ञ के अंग, यज्ञ स्वरूप तथा यज्ञ रक्षक हैं, अतः आप यज्ञ की रक्षा कीजिए, आप के अतिरिक्त कौन रक्षा करने में समर्थ है ? ।४१। ब्रह्माजी ने कहा—उन ऋषियों के यह वचन सुनकर वीरभद्र से भयभीत हुए विष्णु उससे युद्ध करने का विचार करने लगे। ४२-४३।

चतुर्भुजः सुसंनद्धो चक्रायुधधरः करैः ।
महाबलोऽमरगणैर्यज्ञत्राटात्स निर्ययौ ॥४४
वीरभद्रः शूलपाणिर्नानाबलसमन्वितः ।
ददर्श विष्णुं संनद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम् ॥४५
तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽभूद्भ्रकुटीकुटिलाननः ।
कृतांत इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वारणम् ॥४६
तथाविधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽरिमर्दनः ।
अवदत्त्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैः समावृतः ॥४७
रे रे हरे महादेवशपथोल्लंघनं त्वया ।
कथमद्य कृतं चित्त गर्वः किमभवत्तव ॥४८
तव श्रीरुद्रशपथोल्लंखन शक्तिरस्ति किम् ।
को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोऽस्ति जगत्त्रये ॥४९

अत्र त्वमागतः कस्माद्वयं तन्नैव विद्महे ।
दक्षस्य यज्ञपाता त्वं कथं जातोऽसि तद्वद ॥५०

वे चार भुजाधारी, सुदर्शन चक्र धारण किये, महाबलवान देवताओं को साथ लेकर यज्ञशाला से बाहर निकले। इधर गणों के सहित त्रिशूल हाथ में लिए वीरभद्र ने विष्णु को युद्ध की इच्छा से आते देखा ।४४। विष्णु को देखते ही वीरभद्र ने टेढ़ी भौंह करके उन्हें देखा, जैसे काल किसी पापी को अथवा सिंह किसी हाथी को देखता है ।४५। इस प्रकार वीरों से घिरे शत्रु संहारक वीरभद्र ने विष्णु की ओर देखा और क्रोधपूर्वक शीघ्रता से कहा ।४६। हे विष्णो ! तुमने शंकर की शपथ का उल्लंघन, किस अभिमान के वशीभूत होकर किया है ? ।४७। क्या शिवजी की शपथ को तोड़ने में तुम समर्थ हो ? तुम कौन हो ? तीनों लोकों में तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन है ? ।४८। मैं नहीं जानता कि तुम यहाँ कैसे आये ? तुम दक्ष-यज्ञ की रक्षा कैसे कर सकते हो ? यह मुझे बताओ ।४९-५०।

दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्टं किमु त्वया ।
प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्न किप्र त्वया ॥५१
त्वञ्चापि दक्षयज्ञेऽस्मिन्नवदानार्थमागतः ।
अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज ॥५२
वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव ।
कस्तवास्ति समायातो रक्षकोऽद्य ममांतिकम् ॥५३
पातयिष्यामि भूपृष्ठ ज्वालयिष्याति वह्निना ।
दग्धं भवंतमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम् ॥५४
रे रे हरे दुराचार महेशविमुखाधम ।
श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम् ॥५५
अथापि त्वं महाबाहो योद्धु कोऽग्रतः स्थितः ।
नेष्यामि पुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ॥५६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्य बुद्धिमान् ।
उवाच विहसनप्रोत्या विष्णुस्तत्र सुरेश्वरः ॥५७

सती ने जो कुछ किया, क्या उसे तुमने नहीं देखा ? क्या दधीचि के वाक्यों को तुमने नहीं सुना ? क्या तुम भी दक्ष के यज्ञ में कुत्सित दान ग्रहण करने आये हो ? लो तुम्हें मैं इसका कुत्सित दान देता हूँ। ५। हे विष्णो ! मैं तुम्हारे हृदय को त्रिशूल से विदीर्ण कर दूँगा, तुम्हारा जो रक्षक हो, उसे भी मेरे निकट बुला लो ।५२। मैं तुम्हें पृथिवी में डाल कर जला दूँगा तथा भस्म करके पीस डालूँगा। ५३। हे दुराचारी विष्णो ! हे शिव-विमुख अधम ! क्या तुम शिवजी के पवित्र माहात्म्य से अनभिज्ञ हो ? ।५४। फिर भी तुम युद्ध की इच्छा से आगे बढ़े हो, यदि यहाँ ठहरे तो मैं तुम्हें ऐसे स्थान को भेज दूँगा, जहाँ से फिर लौटना न पड़े। ५५। ब्रह्माजी ने कहा—वीरभद्र की बात सुनकर देवाधिदेव भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले ।५६–५७।

शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः।
न रुद्रविमुखं मां त्वं वद शंकरसेवकम् ।।५८
अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुन पुनः।
दक्षेणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः ।।५९
अहं भक्तपराधीनस्तथा सोऽपि महेश्वरः।
दक्षो भक्तो हि मे तात तस्मादत्रागतो मखे ।।६०
शृणु प्रतिज्ञां से वीर रुद्रकोपसमुद्भव।
रुद्रतेजःस्वरूपो हि सुप्रतापालाय प्रभो ।।६१
अहं निवारयामि त्वां त्व च मां विनवारय।
तद्भविष्यति यद्भावि करिष्येऽह पराक्रमम् ।।६२
इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः।
अवदत्सुप्रसन्नोऽस्मि त्वां ज्ञात्वाऽस्मत्प्रभोः प्रियम् ।।६३
ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रा गणागणीः।
प्रश्रयावनतोऽब्रादीद्विष्णु देवं हि तत्त्वतः ।।६४

बिष्णु ने कहा—हे वीरभद्र ! मैं तुम्हारे प्रति तत्व कहता हूं, तुम मुझ शिव-सेवक को शिव के विरुद्ध मत समझो। इस दक्ष ने यज्ञ के लिए बहुत बार प्रार्थना की थी, अवश्य ही यह कर्मनिष्ठ है, परन्तु

मूर्खता कर बैठा है। ५८। मैं भक्तों के आधीन हूं, शिवजी भी भक्तों के आधीन हैं। दक्ष मेरा भक्त है, इसीलिए उसके यज्ञ में मैं आया हूँ।५९। तुम रुद्र कोप से उत्पन्न हुए हो, शिव प्रताप के निवाए तथा उन्हीं के तेज से प्रकट हो, मेरी प्रतिज्ञा को सुनो। ६०। मैं तुमको निवारण करूँ और तुम मुझे निवारण करो, फिर जो होना है वह तो होगा ही। मैं पराक्रम करूँगा। ६१। ब्रह्माजी ने कहा—नारायण के इस प्रकार कहने पर महाभुज वीरभद्र ने कहा कि आपको अपने प्रभु का प्रिय जान कर मैं प्रसन्न हूँ। ६२। फिर गणों में अग्रणी वीरभद्र अम्रतापूर्वक भगवान् विष्णु से कहने लगा। ६३-६४।

तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो।
इदानीं तत्त्वतो वच्मि शृणु त्वं सावधानतः ॥६५
यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः।
एति वेदा वर्णयति शिवशासनतो हरे ॥६६
शिवाज्ञया वयं सर्वे सेवकाः शंकरस्य वैः।
तथापि च रमानाथ प्रवादोचितमादरान् ॥६७
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः।
प्रहस्य चेदं प्रोवाछ वीरभद्रहितं वचः ॥६८
युद्धं कुरु महावीर माया सार्द्धमशंकितः।
तवास्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥६९
इत्युक्त्वा विरम्यासौ सन्नद्धोऽभूद्रणाय च।
स्वगणैर्वीरभद्रोऽपि सन्नद्धोऽभून्महाबलः ॥७०

उसने कहा—हे प्रभो ! आपकी भाव-परीक्षा के लिए ही मैंने वह बात कही थी, अब मैं जो बात विचारपूर्वक कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो। जैसे शिव हैं, वैसे ही आप हैं और जैसे आप वैसे ही शिव हैं शिवजी की आज्ञा से वेदों का ऐसा कथन है। ६५। हे लक्ष्मीपते ! शिवाज्ञा से हम सभी उनके सेवक हैं, इसलिये आदर सहित यह बात कहना उचित है। ६६। ब्रह्माजी ने कहा—वीरभद्र की बात सुनकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए वीरभद्र के प्रति कहा। ६७। विष्णु ने

कहा—हे महाबले ! शंका रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो, मैं तुम्हारे अस्त्रों से परिपूर्ण होकर अपने स्थान को गमन करूँगा । ६८ । ब्रह्माजी ने कहा—यह कह कर विष्णु भगवान् संग्राम के लिए तत्पर हुए तथा महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके सहित युद्धके लिए तत्पर हुआ ।६९-७०।

।।देवताओं की पराजय और दक्ष का सिर का काटा जाना ।।

वीरभद्रोऽथ युद्धे वै विणुना महाबलः ।
सस्मृत्य शंकरं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम् ।।१
आरुह्य स्यंदनं दिव्यं सर्ववैरिविमर्दनः ।
गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह ।।२
विष्णुश्चापि महाघोषं पांचजन्याभिधं निजम् ।
दध्मौ बली महाशंखं स्वकीयान् हर्षयन्निव ।।३
तच्छ्रुत्वा शंखनिर्ह्रादं देवा ये च पलायिताः ।
रणं हित्वा गत पूर्वं ते द्रुतं पुनरायय ।।४
वीरभद्रगणैस्तेषां लोकपालाः सवासवाः ।
युद्धाञ्चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः ।।५
गणानां लोकपालानां द्वंद्वयुद्धं भयावहम् ।
अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः ।।६
नंदिना युयुधे शक्रोऽनलो वै चाश्मना तथा ।
कुबेरोऽपि हि कूष्मांडपतिना युयुधे बली ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—उस समय वीरभद्र भगवान् शंकर का स्मरण करता हुआ नारायण के साथ संग्राम करने को तत्पर हुआ । १ । सब शत्रुओं का संहारक वीरभद्र दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर परम अस्त्र ग्रहण करता हुआ सिंहनाद करने लगा । २ । इधर महाबली नारायण ने अपने पक्ष के देवताओं को साथ ले पाँचजन्य शंख का महानाद किया । ३ । जो देवता रण-भूमि से भाग गये थे, वे उस शंखनाद को सुनकर पुनः आगये । ४ । फिर इन्द्रादि सभी लोकपाल उच्च स्वर से सिंहनाद कर वीरभद्र के साथ संग्राम करने लगे । ५ । सिंहनाद करके

गरजते हुए गणों और लोकपालों का अत्यन्त भयानक संग्राम हुआ ।६। नन्दी के साथ इन्द्र, अनल के साथ वैष्णव और कूष्माण्डपति के साथ कुबेर आदि का संग्राम होने लगा ।७।

तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ।।८
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनांतरे ।।९
बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम् ।
ताना घातानि कुर्वंतौ नन्दशक्रौ जिगीषया ।।१०
शक्त्या जघान चाश्मानं परमकोपनः ।
सोऽपि शूखेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम् ।।११
यमेन सह संग्रामं महालोको गणाग्रणीः ।
चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन्मुदा ।।१२
नैॠतेन समागम्य चंडश्च बलवत्तरः ।
युयुधे परमास्त्रैश्च नैॠंति निविडंबयन् ।।१३
वरुणेन समं वीरो मुंडश्चैव महाबलः ।
युयुधे परया शक्त्यां त्रिलोकीं विस्मयन्निव ।।१४

इन्द्र ने अपने सौ पर्व वाले वज्र से नन्दी पर आघात किया । ८ । नन्दी ने भी अपने त्रिशूल से इन्द्र की छाती पर प्रहार किया । ९ । दोनों वीर अत्यन्त उत्साहपूर्वक परस्पर संग्राम करने लगे । नन्दी और इन्द्र दोनों ही एक दूसरे को हराने के विचार से अनेक कौशल कर रहे थे । १० । अत्यन्त क्रोधी अग्नि ने अश्मा को शक्ति से मारा और उसने भी अत्यन्त वेग से अपने सौधार वाले त्रिशूल से अग्नि पर प्रहार किया । ११ । यम के साथ महालोक नामक गण भगवान् शिव का स्मरण करता हुआ युद्ध. कर रहा था । १२ । वीर चण्ड ने नैॠंत के साथ परमास्त्रों से युद्ध प्रारम्भ किया । १३ । वरुण से वीरमुण्ड भिड़ गया इनके युद्ध-कौशल से तीनों लोक विस्मयपूर्ण थे ।१४।

वायुना च हतो भृङ्गी स्वास्त्रेण परमौजसा ।
भृङ्गिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना ।।१५

कुवेरणैव संगम्य कूष्मांडपतिरादरात् ।
युयुधे बलवान्वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम् ।।१६
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान् ।
विदार्य्य देवानखिलान् पपौ शोणितमद्भुतम् ।।७
क्षेत्रपालास्तथा तत्र बुभुक्षः सुरपुंगवान् ।
काली चापि विदार्यैव तान्पपौ रुधिरं बहु ।
अथ विष्णुर्महातेजा ययुधे तैश्च शत्रुहा ।
चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्विव दशो दिशा ।।१६
क्षेत्रपालः समायांतं चक्रमालोक्य वेगतः ।
तत्रागत्यागतो वीरश्चाग्रसत्सहसा बली ।।२०
चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुञ्जयः ।
मुख तस्य परामृज्य तयुद्गालितवानरिम् ।।२१

भृंगी पर वायु ने अपने परमास्त्र का प्रयोग किया और वायु पर भृंगी ने अपने अत्यन्त प्रतापी त्रिशूल से प्रहार किया । १५ । कूष्माण्ड-पति ने अत्यन्त उत्साह से शिवजी का ध्यान कर कुबेर के साथ युद्ध किया । १६ । योगिनी चक्र सहित भैरवी ने सब देवताओं को द्रवित कर उनका रक्त पीना आरम्भ कर दिया । १७ । इसी प्रकार क्षेत्रपाल ने भी देवताओं का भक्षण आरम्भ किया और काली भी उनका हृदय विदीर्ण कर रक्तपान करने लगी । १८ । इधर भगवान् नारायण की युद्ध रत हुए दशों दिशाओं को भस्म करते हुए चक्र से प्रहार करने लगे । १६ । उस चक्र को वेगपूर्वक आता हुआ देखकर क्षेत्रपाल ने सम्मुख होकर उसका ग्रास कर लिया । २० । शत्रु पुरों के विजेता नारायण ने जब अपने चक्र का ग्रास हुआ देखा, तब उसके मुख को पकड़ कर चक्र को उगलवाया । २१ ।

स्वचक्रमादाय महानुभावश्चुकोप चातीव भवैकभर्त्ता ।
महाबली तैर्युयुधे प्रवीरैः संक्रुद्धनानायुधधारकोऽस्त्रैः ।।२२
चक्रे महारणं विष्णुस्तैः सार्द्धं युयुधे मुदा ।
नाना युधानि सक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम् ।।२३

अथ ये भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः ।
नानास्त्राणि विमुंचंतः संक्रुद्धाः परमौजसा ।।२४
इत्थं तस्यां रणं दृष्ट्वा हरिणाऽतुलतेजसा ।
विनिवृत्य समागम्य तान्स्वयं युयुधे बली ।।२५
अथा विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्छितः ।
युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधवः ।।२६
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।
महाविरब्धिपत्योस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने ।।२७
विष्णोर्योगबलात्तस्य देहादेव सुदारुणाः ।
शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे ।।२८

फिर जगदीश्वर विष्णु अत्यन्त क्रोध में भरकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण कर वेग से युद्ध करने लगे । २२ । उत्साहपूर्वक संग्राम करते हुए भगवान् को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र चलाये । २३ । भैरव आदि अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनके युद्ध करते हुए शस्त्र चलाने लगे । २४ । इस प्रकार उनका युद्ध देखकर भगवान् विष्णु भी पुनः वेग से संग्राम करने लगे । २५ । फिर उन्होंने सुदर्शन चक्र ग्रहण कर अत्यन्त वेगपूर्वक वीरभद्र के साथ युद्ध प्रारम्भ किया । २६ । उन दोनों में अत्यन्त घोर संग्राम हुआ उस समय नारायण ने अनेक प्रकार के अस्त्रों से प्रहार किया । २७ । विष्णुजी के देह से योगबल के कारण शंख, चक्र और गदाधारी असंख्य वीर उत्पन्न हो गए । २८ ।

ते चापि युयुधुस्तेन वीरद्रेण भाषता ।
विष्णुवद्बलवतो हि तानायुधधरा गणाः ।।२९
तान्सर्वानपि वीरोऽसौ नारायणसमप्रभान् ।
भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्वा शिवं प्रभुम् ।।३०
ततश्चोरसि तं विष्णुं जीलयेव रणाजिरे ।
जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबली ।।३१
तेन घातेन सहसा विहतः पुरुषोत्तमः ।

पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोऽभून्मुने हरिः ॥३२
ततो जज्ञेऽद्‌भुत तेजः प्रलयानलसन्निभम् ।
त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम् ॥३३
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्थाय स प्रभुः ।
प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत्पुरुषर्षभः ॥३४
तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम् ।
व्यष्टभयददीनात्मा वीरभद्रः शिवः प्रभुः ॥३५

वे सभी नारायण के समान महाबली और अनेक प्रकार के हथियार धारण किए हुए थे, वे सब वीरभद्र के साथ भिड़ गए। २९। वे सभी महाबली भगवान् के समान ही प्रभावशाली थे परन्तु वीरभद्र ने रुद्र का स्मरण कर उन सभी को त्रिशूल से भस्म कर दिया। ३०। फिर उस महाबली वीरभद्र ने भगवान् विष्णु पर अपने त्रिशूल से प्रहार किया। ३१। उस आघात से ताडित हुए नारायण सहसा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। ३२। उस समय वीरों के लिए भयदायक प्रलयाग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म करने वाला तेज प्रकट हुआ। ३३। क्रोध के कारण रक्त-वर्ण हुए नेत्र वाले भगवान् विष्णु पुनः उठकर चक्र ग्रहण कर वीरभद्र को मारने के लिए उद्यत हुए। ३४। वीरभद्र ने काल-रूपी सूर्य के समान कान्तिमान होकर उस चक्र को स्तम्भित कर दिया। ३५।

मुने शंभोः प्रभावात्तु मायेशस्य महाप्रभोः ।
न चचाल हरेश्चक्रं करस्थं स्तंभितं ध्रुवम् ॥३६
अथ विष्णुगणेशेन वीरभद्रेण भाषता ।
अतिष्ठत्स्तंभिस्तेन श्रृंगवानिब निश्चलः ॥३७
ततो विष्णुः स्तंभितो हि वीरभद्रेण नारद ।
यज्वोपमंणिमनो नीरस्तंभनकारकम् ॥३८
ततः स्तंभननिर्मुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः ।
शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुः सशरं मुने ॥३९
त्रिभिश्च धर्षितं बाणस्तेन शार्ङ्गधनुर्हरेः ।

वीरभद्रेण तत्तात त्रिधाऽत्तभूत्क्षणान्मुने ।।४०
अथ विष्णुर्महावाण्या बोधितस्तं महागणम् ।
असह्यवर्चस ज्ञात्वा ह्यंतर्धातुं मनो दधे ।।४१
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सतीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम् ।
गताः स्वलोकंस्वगणान्वितास्तुस्मृत्वाशिवंसर्वपतिस्वतंत्रम् ।।४२

भगवान् माया के स्वामी शिवजी के प्रभाव से विष्णु के हाथ का सुदर्शन चक्र स्तंभित हो गया। ३६। उस समय गणेश्वर वीरभद्र के द्वारा स्तंभित हुए भगवान् नारायण पर्वत के समान निश्चल हो गए।३७। हे नारदजी! जब वीरभद्र ने विष्णु को स्तंभित कर दिया, तब वे यज्ञ-मन्त्र के द्वारा स्तंभन से मुक्त हुए। ३८। जब शार्गधनुधारी भगवान् स्तंभन से मुक्त हो गए तब उन्होंने शार्गधनुष ग्रहण कर उस पर बाण चढ़ाया । ३९। उस धनुष से निकले हुए तीन बाणों से ताडित हुए वीरभद्र ने उनको तीन प्रकार से ही काट डाला। ४०। तब मैंने और सरस्वती ने उस गण के विषय में विष्णु को बताया और उसे असह्य तेज वाला बताकर अन्तर्धान होने का संकेत किया।४१। तब सती मरण के दुःसह पाप को जानकर भगवान् विष्णु अपने स्वामी शिवजी का स्मरण करते हुए अपने किंकरों सहित निज लोक को गये । ४२।

सत्यलोकगतश्चाहं तुत्रशोकेन पीडितः ।
अचिंतयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै ।।४३
विष्णौ मयि गये चैव देवाश्च मुनिभिः सह ।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये ते यज्ञोपवजीविनः ।।४४
तमुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम् ।
मृगस्वरूपा यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रुवे ।।४५
त तदा मृगरूतेण धावंतं गगनं प्रति ।
वीरभद्रः समादाय विशिरस्कमथाकरोत् ।।४६
ततः प्रजापति धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः ।
अरिष्टनेमिन वीरो बहुपुत्र मुनीश्वरम् ।।४७
मुनिमंगिरसं चैव कृशाश्व च महागणः ।

जघान मूर्ध्नि पादेन दत्त च मुनिपुंगवम् ॥४८
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातु तथैव च।
चिच्छेद करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४६

मैं भी पुत्र शोक में सन्तप्त हुआ सत्य-लोक को गया और दुःखी चित्त से सोचने लगा कि अब क्या किया जाय ? । ४३ । जब मैं और विष्णुजी वहां से चले गये तब वीरभद्र ने यज्ञ के सब देवताओं और मुनियों पर विजय प्राप्त कर ली । ४४ । इस घोर उत्पात और यज्ञ को ध्वस्त हुआ देखकर यज्ञ भी अत्यन्त भयभीत होकर मृग रूप धारण कर वहाँ से भाग गया । ४५ । जब मृग रूप धारण कर वह आकाश मार्ग में दौड़ा तभी वीरभद्र ने पकड़कर उसका शीश काट डाला । ४६ । फिर प्रजापति, धर्म, कश्यप, अरिष्टनेमि और बहुपुत्र मुनि । ४७ । आँगिरस और कृशाश्वमुनि को पकड़ कर इनके शिरों पर पाँव की ठोकर मारी । ४८ । सरस्वती, देवमाता की नाक का छेदन कर दिया, वीरभद्र ने यह कार्य अपने हस्तकौशल से किया । ४६ ।

ततोऽन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले ।
पातयामास सोऽयं वै क्रोधाक्रांतातिलोचनः ॥५०
बीरभद्रो विदार्य्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि ।
नाभूच्छातो द्रुतक्रोधः फणिराढिव मंडितः ॥५१
वीरभद्रोद्धृताराति: केसरीवव नद्विपान् ।
दिशो विलोकयामास कः पुत्रास्तीत्यनुक्षणम् ॥५२
व्यपोथयद्भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान् ।
पदाक्रम्योरसि तदाऽकाषीत्तच्छ्मश्रुलचनम् ॥५३
चडश्चोत्पाटयामास पूष्णो दंतान् प्रवेगतः ।
शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥५४
नन्दी भगस्य नेत्रे हि पातितस्य रुषा भुवि ।
उज्जहार दक्षमक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ॥५५
विडंबिता स्वधा तत्रसा स्वाहा दक्षिणा तथा ।
मंत्रास्तंत्रास्तथा च न्ये तत्रस्था गणनायकः ॥५६

जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम् ।
शिवस्य मायाचक्रे हि बलिपीठं तदुच्यते ।।५७
बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ।
पदे पदांतरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् ।।५८
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम् ।।
निर्गमाज्जननं प्राप्तनत्स्त्वात्मसमर्पणम् ।।५६

जन्म और मरण को माया-चक्र कहते हैं तथा शिवजी का माया-चक्र बलि पीठ कहा जाता है ।।५७।। बलि पीठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से दो चरण चलकर बलि पीठ के समीप पहुंचे ।।५८।। नमस्कार करने को प्रदक्षिणा कहते हैं । प्रदक्षिणा फिरने को जन्म तथा नमस्कार करने को आत्म-समर्पण कहा गया है ।।५६।।

।। वैदिक पार्थिव पूजन ।।

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यत ।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ।।१
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ।।२
नैत्यिकं सकलं कामं विधायानंतरं पुमान् ।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ।।३
वेदोक्तविधिना सम्यक्संपूर्णफलसिद्धये ।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिंगमुत्तमम् ।।४
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च ।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ।।५
शुद्धप्रदेशसंभुतां मृदमाहृत्य यत्नतः ।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ।।६
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका ।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ।।७

सूतजी ने कहा—वेद ज्ञाता भक्तों को पार्थिव पूजा कहा है । वैदिक मार्ग वाली पूजा भुक्ति-मुक्ति की दाता है ।।१।। अपने सूत्र के

लाया। ५८। और कपोल पकड़ बर उस पर खड्ग से वार किया, परन्तु योगबल के कारण उसका शीश अभेद्य हो गया था। ५९। जब वीरभद्र ने शस्त्रास्त्रों से उसके शिर का काटा जाना असम्भव देखा तब उसको छाती पर पाँव रखकर हाथ से शिर नोंच डाला। ६०। और उस शिव द्रोही के शिर को उसने अग्नि कुण्ड में डाल दिया। ६१। उस समय त्रिशूल घुमाता हुआ वीरभद्र युद्ध स्थल में अत्यन्त सुशोभित हुआ तथा युद्ध की सवर्ताग्नि क्रोध पूर्वक सब कुछ भस्म करने लगी। ६२। इस प्रकार वीरभद्र ने उन सबको उस जलती हुई अग्नि में शलभ के समान भस्म कर डाला। ६३।

वीरभद्रस्ततो दग्धान्दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान्।
अट्टाट्टहासमकरोत्पूरयश्च जगत्त्रयम् ॥६४
वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दनसंभवा।
पुष्पवृष्टिरभूद्दिव्या वीरभद्रे गणान्विते ॥६५
ववुर्गन्धवहाः शीताः सुगन्धासुखदाः शनैः।
देवदुंदुभयो नेदुः सममेव ततः परम् ॥६६
कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्य्यस्ततः परम्।
विनाशितदृढध्वांतो भानुमानिव सत्वरम्।.६७
कृतकार्य्यं वीरभद्रं दृष्ट्वा संतुष्टमानसः।
शंभुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः ॥६८

दक्ष आदि सभी को भस्म करके उसने तीनों लोकों को परिपूर्ण करने के लिए घोर अट्टहास किया।६४। उस समय वीरभद्र विजयश्री से आवृत्त हुआ और उसके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी तथा सभी शिवगण प्रसन्न होगए। ६५। फिर शीतल सुगन्धित, सुख की देने वाली मन्द वायु चल पड़ी, देवताओं के द्वारा दुंदुभी बजने लगीं। ६६। कृतकार्य होकर वीरभद्र कैलाश पर्वत के लिए लौटा और सूर्य के समान सम्पूर्ण अन्धकार उसने नष्ट कर दिया। ६७। वीरभद्र को कार्य में सफल हुआ देखकर परमेश्वर शिव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसे गणेश्वर बना दिया। ६८।

रुद्र-संहिता-पार्वतीखण्ड

।। शिव-पार्वती सम्वाद ।।

किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिंस्तपस्विना ।
तदुत्तरं शृणु विभो मत्तो ज्ञानविशारद ।।१
पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः ।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत् ।।२
तपसा परमेणैव प्रकृति नाशयाम्यहम् ।
प्रकृत्या रहितः शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः ।।३
तस्माच्च प्रकृतेः सद्भिर्न कार्यः संग्रहः क्वचित् ।
स्थातव्य निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः ।।४
इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारत. ।
सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः ।।५
यदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो ।
सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान्कथम् ।।६
एतद्विचार्य वक्तव्यं तत्त्वतो हि यथातथम् ।
प्रकृत्या सर्वमेतच्च बद्धमस्ति निरंतरम् ।।७

भवानी ने शिवजी से कहा—हे योगिराज ! हे ज्ञानियों में परम पण्डित ! हे व्यापक ! तपोनिष्ठ होते हुए आपने जो मेरे पिता से कहा था उसका उत्तर आप मुझसे सुनिए । १ । ब्रह्माजी ने कहा गौरी के इस वचन को सुनकर कठोर तपश्चर्या में निमग्न परम प्रसन्न चित्त वाले महेश्वर हँस कर कहने लगे । २ । महादेवजी ने कहा—मैं अपनी उग्र तपस्या के द्वारा ही प्रकृति को नष्ट कर देता हूँ, मैं शंकर नाम धारी नित्य ही प्रकृति से रहित होकर स्थित रहा करता हूं और मेरी स्थिति तत्व से रहती हैं । ३ । इसी कारण से जो सद्वृत्ति वाले पुरुष होते हैं उनको प्रकृति का संग्रह कभी भी न करके बिना विकार के लोक के

आधार से रहित होकर ही स्थित रहना चाहिये ।४। ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! शिवजी ने जिस समय लोक के व्यवहार के विषय में इस प्रकार कहा तो भगवती मनमें मुस्करा कर शिवजी से परम मधुर वचन कहने लगी ।५। काली ने कहा—हे शंकर ! हे योगीवर्य ! प्रभो ! आपने इस समय जो भी कुछ कहा है क्या यह प्रकृति नहीं है ? फिर आप किस तरह प्रकृति से परे हो सकते हैं ।६। आप इसका भली भाँति विचार करके तत्व स्वरूप जो भी योग्य हो वही कहिये । यह सब तो सर्वदा प्रकृति से बंधा हुआ ही है ।७।

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किंचिदेव हि ।
वचनं रचनं सर्वं प्राकृतं विद्धि चेतसा ।८।
यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत् ।
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः ।९।
प्रकृतेः परमश्केत्त्वं किमर्थं तप्यसे तपः ।
त्वया शम्भोऽधुना ह्यास्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो ।१०।
प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर ।
निजं जानासि चेदीश किमर्थं तप्यते तपः ।११।
वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिस्त्वया सह ।
प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रमाणं विदुर्बुधाः ।१२।
इन्द्रियाणां गोचरत्वं यावद्भवति देहिनाम् ।
तावत्सर्वं विमंतव्यं प्राकृत ज्ञानिभिर्धिया ।१३।
किं बहूक्तेन योगीश शृणु मद्वचनं परम् ।
सा चाहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यं न संशयः ।१४।

अतएव यह बात तो कभी भी आ को कहना ही नहीं चाहिये कि प्रकृति से कुछ मतलब ही नहीं हैं । संसार में समस्त रचना एवं वचन आदि प्रकृति से ही हैं इसे आप अच्छी तरह जान लेवें ।८। आपका श्रवण-भोजन और दर्शन आदि जो कुछ भी होता है यह सभी कुछ इस प्रकृति का ही कार्य कलाप है, मिथ्यावाद करना निरर्थक है ।९। यदि आप अपने आपको प्रकृति से पर मानते या कहते हैं तो हे प्रभो मैं !

यह जिज्ञासा रखती हूँ कि आपको तप से क्या प्रयोजन है और इस निर्जन स्थान में रहकर तपस्या करने की क्या आवश्यकता है ? ।१०। हे शम्भो ! प्रकृति से गलित हो जाने के कारण ही आप अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं। हे ईश ! यदि आपको निज का ही ज्ञान नहीं है तो फिर तपस्या किस लिये करते हैं ? ।११। हे योगिराज ! मेरा आप के साथ विवाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जब किसी वस्तु का प्रत्यक्ष हो जाता है तो वहाँ विद्वान् लोग अनुमान को प्रणाम नहीं माना करते हैं ।१२। शरीर धारण करने वालों को जब तक इन्द्रिय गोचर हुआ जाता है तब तक ज्ञानी लोगों को प्रज्ञा बल से सभी कुछ प्रकृति का कार्य जानना चाहिये ।१३। हे योगीश्वर ! यहाँ अधिक कथन की कोई आवश्यकता नहीं हैं, आप मेरे वचन सुनिये, मैं ही वह प्रकृति हूँ, यह सर्वथा सत्य है कि आप पुरुष हैं ।१४।

मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान्मतः ।
मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुमर्हसि ।१५।
पराधीनः सदा त्वं हि नानाकर्मकरो वशी ।
निर्विकारी कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम् ।१६।
प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्यं वचस्तव ।
तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शंकर ।१७।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्या. सांख्यशास्त्रोदितंशिवः ।
वेदांतमतसंस्थो हि वाक्यमुचे शिवां प्रति ।१८।
इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरजे सांख्यधारिणि ।
प्रत्यह कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि ।१९।
यद्यह ब्रह्म निर्लिप्यो मायया परमेश्वरः ।
वेदांतवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा ।२०।

यह मेरी ही कृपा का फल है कि आप सगुण ब्रह्म रूपधारी हुए हैं। मेरे अभाव में आप एक निरीह हैं आप में मेरे बिना कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है ।१५। आप वशी हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी आप अनेक प्रकार के कर्म किया करते हैं। आप विकार रहित किस प्रकार

है और मुझसे किस तरह लिप्त नहीं रहते हैं ? ।१६। हे शंकर ! यदि प्रकृति से परे आप हैं और आपका प्रकृति से दूर रहने का कथन सर्वथा सत्य ही है तो फिर आपको मेरे सान्निध्य में रहने में कभी भी कोई भय नहीं होना चाहिए ।१७। ब्रह्माजी ने कहा—इस उक्त प्रकार से सांख्य शास्त्र से सम्मत भवानी की वचनावली सुनकर शिवजी वेदान्त के सिद्धांत का आश्रय लेकर कहने लगे ।१८। शंकर ने कहा-हे गिरिजे हे सुभाषिणी! तुम इस तरह सांख्या-दर्शन के सिद्धान्त केअ नुसार बोल रही हो तो तुम नित्यप्रति मेरी सेवा किया करो, मैं इसका निषेध तुम से कभी भी नहीं करता हूँ ।१९। मैं माया से लिप्त न रहने वाला ब्रह्म परमेश्वर वेदान्त दर्शन के द्वारा जानने के योग्य हूँ ।२०।

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमुचे गिरिं प्रभुः ।
भक्तानुरंजनकरो भक्तानुग्रहकारकः ।२१
अत्रैव सोऽहं तपसा परेण गिरे तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये ।
चरामि भूमौ परमार्थभावस्वरूपमानंदमयं सुलोचयन् ।२२।
तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्य पर्वताधिप ।
अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न शक्यते ।२३।
सांख्यवेदांतमतयः शिवयोः शिवदः सदा ।
संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोः सुविचारतः ।२४।
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शंकरः ।
पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपरः ।२५।
उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः ।
नित्यं मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र तिष्टतु ।२६।
एवमुक्त्वा तु तां देवी सेवार्थै जगृहे हरः ।
निर्विकारो महयोगी नानालीलाकरः प्रभुः ।२७।
इदमेव महद्धैर्य्यं धीराणां सुतपस्विनाम् ।
विघ्नवन्त्यपि संप्राप्य यद्विघ्नैर्न विहन्यते ।२८।

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु गौरी से इस प्रकार कहकर फिर गिरिराज से बोले—भगवान् सदा अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह किया

करते हैं और उन्हें प्रसन्न रखने वाले हैं ।२१। हे गिरिराज ! मैं तुम्हारे इस परम सुन्दर पर्वत–प्रदेश में तप करते हुये अपने स्वरूप का परमार्थ भगवना से चिन्तन करते हुये विचरण करूँगा ।२२। हे नगाधीश ! अब आपको मुझे तपश्चार्या करने की आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिये । बिना आज्ञा के प्राप्त किए हुये किसी भी प्रकार की तपस्या नहीं की जा सकती है ।२३। सांख्य दर्शन और वेदान्त दर्शन के मत को स्वीकार करके शिव (गौरी) और शिव (शंकर) का यह पारस्परिक सम्वाद सुखप्रद बन गया है । वस्तुत: ये दोनों भिन्नता से रहित ही हैं । २४ । भगवान् शिव वे इन्द्रियजन्य विषय सुख से परे होते हुए भी नगाधीश के वचनों का गौरव रखते हुए भवानी को अपनी सेवा में रखना स्वीकार कर लिया था । ।२५। भगवान् शंकर ने अपनी सहेलियों के साथ रहने वाली भवानी से कहा कि तुम प्रतिदिन मेरी सेवा आकर किया करो और भय रहित होकर स्थित रहो ।२६। प्रभु शिव सर्वदा विकार रहित महा योगीश्वर और विविध प्रकार की लीलाएँ करने वाले हैं उन्होंने इसी रीति से पार्वती को अपनी सेवा में ग्रहण किया है ।२७। धीरतापूर्वक तपश्चर्या करने वालों का यही महान् धैर्य है जो अनेक बिघ्न बाधाओं से विचलित नहीं हुआ करते हैं ।२८।

इन्द्र द्वारा कामदेव को शिव के पास भेजना

गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम् ।
पीडितस्तारकेनाति दैत्येन च दुरात्मना ।१।
आगतस्तत्क्षणात्कामः सवसतो रतिप्रियः ।
सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।२।
प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतः स्मरः ।
महोन्नतमनास्तात सांजलिः शक्रमब्रवीत् ।३।
किं कार्यं ते समुत्पन्नं स्मृतोऽहं केन हेतुना ।
तत्त्वं कथय देवेश तत्कर्तुं समुपागतः ।४।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कंदर्पस्य सुरेश्वरः ।
उवाच वचनं प्रीत्या युक्तं युक्तमिति स्तुवन् ।५।

तव साधु समारंभो यन्मे कार्य्यमुपस्थितम् ।
तत्कर्तुं मुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज ।६।
न केवलं मदीयं च कार्य्यमस्ति सुखावहम् ।
किं तु सर्वसुरादीनां कार्य्यमेतन्न संशयः ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के चले जाने के पश्चात् दुरात्मा तारक नाम वाले असुर से परम पीड़ित होकर देवराज इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया ।१। उसी समय अपनी शक्ति से त्रिभुवन को वश में करने वाला रति-वल्लभ कामदेव रति और सखा बसन्त के सहित अभिमान-पूर्वक उपस्थित होगया ।२। देवराज इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक कामदेव ने उन्नत मन से कहा ।३। हे महेन्द्र ! ऐसा कौनसा कार्य है जिसके लिए मुझे आज याद किया हैं ? आप मुझे अपनी आज्ञा देवें मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये सेवा में प्रस्तुत हूं । ४ । ब्रह्माजी ने कहा—रति-वल्लभ के इस प्रकार के वचन सुनकर इन्द्र को बहुत प्रसन्नता हुई और उसकी प्रशंसा करके उन्होंने यह कहा ।५। देव-राज ने कहा—हे मकरध्वज ! इस समय तुम्हारा यह आरम्भ अधिक उत्तम है और अब मेरे इस प्रस्तुत कार्य को पूर्ण करने के लिये जो तुम यहाँ सहर्ष उपस्थित हुए हो इसके लिये तुम परम धन्य हो ।६। यह केवल मुझे ही सुख देने वाला कार्य नहीं है अपितु यह समस्त देवगण का सुखप्रद कार्य है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ।७।

संकटे बहु यो ब्रूते स किं कार्य्यं वरिष्यति ।
तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो ।८।
पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम् ।
पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा ।९।
क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वरस्त्रियाः ।
देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे ।१०।
वज्रं तिष्ठतु दूरे वः शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः ।
किं ते कार्यं करिष्यन्ति मयि मित्र उपस्थिते ।११।
ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्य्यां न संशयः ।

अन्येषां गणना नास्ति पातयेय हरं त्वपि ।१२।
पंचैव मृदवो बाणस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्त्रिधा पुष्पमयः शिजिनीभ्रमराञ्जिता ।१३।
बलं सुदयिता मे वै वसन्तः सचिवः स्मृतः ।
अहं पंचबलो देवा मित्रं मम सुधानिधिः ।१४।

कामदेव ने कहा—हे महाराज ! सङ्कट के समय में अधिक बातें बोलने वाला व्यक्ति कुछ भी कार्य नहीं कर सकता है, तथापि मैं जो भी कुछ निवेदन करता हूँ इसे आप सुन लीजिए ।८। क्योंकि आप मेरे परम मित्र होते हैं, अतएव यदि कोई भी आपका पद प्राप्त करनेकेलिये तपस्या करता हैं तो मैं आपके उस शत्रु का निश्चय पतन कर दूंगा ।९। चाहे कोई देवर्षि हो या दानव भी क्यों न हो उसके तपोबल को ललनाओं के कटाक्षपात से क्षण भर में नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा, मनुष्य की तो बात ही क्या है इसका नष्ट कर देना तो बहुत ही साधारण काम है ।१०। आपके कठोर वज्र तथा अन्य शस्त्रास्त्र अलग ही रक्खे रहें मुझ जैसे शक्तिशाली मित्र के होने पर वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते हैं ।११। मैं अपनी अनाद्य शक्ति के द्वारा ब्रह्मा और विष्णु को भी तप से हिला सकता हूँ—शिव जैसे योगस्थ को भी कठिन समाधि से विचलित कर सकता हूँ अन्य विचारों की तो गिनती ही क्या है ।१२। मेरे कोमल पुष्पों के ये पाँच बाण, तीन स्थानों में झुकी हुई कुसुमों की धनुही, मधुकरों की गुंजार-रूपिणी प्रत्यञ्चा और सुन्दर रमणी ही मेरा बल है तथा ऋतुराज सहायक सखा है ।१३। मैं पाँच प्रकार के उपयुक्त बलों का देवता हूँ और राकापति चन्द्र मेरा घनिष्ठ मित्र है ।१४।

सेनाधिपश्च शृङ्गारो हावभावश्च सैनिकाः ।
सर्वे मे मृदवः शक्र अहं चापि तथाविधः ।१५।
यद्येन पूर्य्यते कार्य्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत्कार्य्यं सर्वं तन्मे नियोजय ।१६।
इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्रः सुहर्षितः ।
उवाच प्राणमन्वाचा कामं कांतासुखावहम् ।१७।

यत्कार्य्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव ।
कर्त्तुं तत्त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः ।१८।
तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम् ।
अभूदजेयः संप्राप्य सर्वेषामपि दुःखदः ।१९।
तेन संपीड्यते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः ।
दुःखिता निर्जराः सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः ।२०।
देवैश्च सकलैस्तेन कृतं युद्धं यथाबलम् ।
सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन्पुरा ।२१।

रसराज शृङ्गार मेरा सेनाध्यक्ष है और हाव-भाव की विविध चेष्टाऐं मेरे सैनिक हैं। हे देवराज ! ऊपर बताये हुए ये सभी मृदु स्व-रूप वाले हैं और मैं स्वयं भी मृदुल रूप वाला हूँ। १५। मतिमान् का यही कर्तव्य होना चाहिये कि जो भी जिस कार्य के सम्पादन करने के योग्य हो उसे ही उस कार्य के पूर्ण करने में लगा देवे। मेरे करने के लायक जो भी कोई कार्य हो उसे पूर्ण करने के लिए आप मेरी नियुक्ति करें।१६। ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव की ऐसी वचनावली सुनकर इन्द्र को बहुत ही अधिक हर्ष हुआ और वह हर्षोद्गार वचन रूप में रमणियों को सुख देने वाले कामदेव से कहे।१७। इन्द्र ने कामदेव से कहा—हे तात ! मैंने अपने मनमें जो सोचा है उसे एक मात्र तुम हीं पूर्ण करने में समर्थ होते हो। अन्य किसी से भी उसका होना असम्भव है। १८। तारक नामधारी एक महान् दैत्य है, जिसने ब्रह्माजी से अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया है और अब अजेय हो गया है। उसे कोई भी युद्ध में जीत नहीं सका है। अब वह प्रबल बली होकर सबको दुःख देता रहता है।१९। इस समय वह लोगों को बहुत पीड़ा दे रहा है। इसके कारण से बहुत से धर्म नष्ट होगये हैं। समस्त देवता तथा ऋषि-वृन्द इसके उत्पीडन से महा दुखी हो रहे हैं।२०। देवगण ने अपने बल से उसके साथ बहुत युद्ध किया किन्तु उसके सामने सब आयुध विफल होगए हैं।२१।

भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम् ।
तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना ।२२।

एतस्य मरणं प्रोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः ।
शंभोर्वीर्योद्भवाद्बालान्महायोगीश्वरस्य हि ।२३।
एतत्कार्य्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः ।
ततः स्यान्मित्रवर्य्यातिं देवानां नः परं सुखम् ।२४।
ममापि विहितं तस्मात्सर्वलोकसुखावहम् ।
मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुं मर्हसि सांप्रतम् ।२५।
शंभुः स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः ।
स प्रभुर्नापि कामेन स्वतन्त्रः परमेश्वरः ।२६।
तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता ।
सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञप्ता मया श्रुतम् ।२७।
यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः ।
जायेत नितरां मार तथा कार्यं त्वया ध्रुवम् ।२८।

वरुण देव की प्रसिद्ध पाश उसके कण्ठ में आते ही टूट गई है और नारायण का अभेद्य सुदर्शन चक्र उसके कण्ठ को छूकर ही कुण्ठित हो गया है ।२२। इस दुष्ट महान् दैत्य की मृत्यु प्रजापति ने महा योगिराज शिवजी के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र के द्वारा ही निर्धारित की है ।२३। हे मित्र ! इस कठिन कार्य का सम्पादन तुमको ही करना चाहिए तभी देवताओं को सर्वाधिक सुख का लाभ हो सकता है ।२४। समस्त लोकों को आनन्द देने वाला यह कर्म है ऐसा मैंने विचार किया है अतएव तुम अब अपने मनमें मित्र-धर्म का ध्यान करके इस कार्य को करो ।२५। शंकरजी के हृदय में कोई भी कामना नहीं है और वे इस समय पर्वतों के राजा हिमालय पर घोर तपश्चर्या कर रहे हैं । भगवान् शिव परम स्वतन्त्र ईश्वर हैं ।२६। मैंने यह बात भी सुनी है कि पार्वती स्वयं उन्हें अपना पति बनाने की कामना से पिता की आज्ञा प्राप्त कर सखियों के सहित सर्वदा उनकी सन्निधि में सेवा के लिये प्रस्तुत रहा करती हैं ।२७। अतः हे रतिनाथ ! अब तुमको कोई ऐसा उपाय एवं कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिससे शंकर भगवान् में पार्वती को पत्नी रूप से स्वीकार करने की रुचि उत्पन्न हो जावे ।२८।

इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनंक्ष्यति ।
लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चान्यथा ।२९।
इत्युक्तः स कामो हि प्रफुल्लमुखपंकजः ।
प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशय ।३०।
इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः ।
अग्रहीत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः ।३१।
यत्र योगीश्वरः साक्षात्तप्यते परमं तपः ।
जगाम तत्र सुप्रीतः सदारः सर्वसंतकः ।३२।

ऐसा कार्य करने से तुम समस्त दुःखों का नाश कर अपने जीवन में सफल हो जाओगे और निस्सन्देह संसार में तुम्हारा प्रताप फिर स्थायी हो जायगा ।२९। ब्रह्माजी ने कहा—इतनी सुनते ही कामदेव का मुख विकसित कमल की भाँति खिल उठा और बड़े ही प्रेम के साथ कहा कि यह आपका कार्य मैं निश्चय ही करूंगा ।३०। इसके पश्चात् 'ओ३म्' अर्थात् ऐसा ही होगा—ऐसा कहकर स्वीकृति दी । उस समय शिवजी की माया से मोहयुक्त होकर ही कामदेव ने इन्द्रदेव की इस बात को स्वीकार कर लिया था ।३१। जिस हिमालय के शिखर पर साक्षात् योगिराज शंकर घोर तपस्या में लीन समाधिस्थ थे वहाँ प्रसन्नचित्त कामदेव सुन्दरी पत्नी और सखा बसन्त को साथ लेकर गया ।३२।

काम द्वारा शिवजी में मोह उत्पन्न होना

तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायामोहितः ।
मोहकस्य मधोश्चदौ धर्मं विस्तारयन्स्थितः ।१।
वसंतस्य च यो धर्मः प्रससार स सर्वतः ।
तपःस्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर ।२।
वनानि च प्रफुल्लानि पादपानां महामुने ।
आसन्विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर ।३।
पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै ।
विरेजुः सुस्मदीपकराणि सुरभीण्यपि ।४।

कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च ।
वभूवुर्मदनावेशकरोणि च विशेषत: ।५।
सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम् ।
आसीदति सुरम्यं हि मनोहर मतिप्रियम् ।६।
भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्मुने ।
मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—शंकर की माया से मोहित होकर इस महाभिमानी मन्मथ ने मधु को साथ लेकर अपना मोहने वाला मायाजाल का प्रसार करना वहाँ पहुँच कर आरम्भ कर दिया ।१। हे मुनिवर ! जहाँ अनेक वनौशधियाँ उत्पन्न होती थी वहाँ ऋतुराज बसन्त का प्रभाव सर्वत्र फैलने लगा और उस महा महिम महेश्वर की तपोभूमि पर बसन्त की पूर्ण महिमा दिखलाई देने लगी ।२। हे मुनिश्रेष्ठ ! कामदेव के सखा बसन्त के प्रभाव से उस भूमि के समस्त वृक्ष पुष्पित हो गये और एक विशेष प्रकार की छटा दिखलाई दे रही थी । ३ । आम्र लतिकाओं में बौर निकल आये और अशोक-वाटिका विकसित हो गई तथा इनकी मोहक सुगन्धि से काम-वासना का उद्दीपन होने लगा । ४ । कैरव कुसुम मधुकरों की गूँज से शोभित हो गये और इन सभी कारणों से कामदेव का वेग बढ़ने लगा ।५। कोकिलों का कलरव काम-वासना को बढ़ाता हुआ परमप्रिय प्रतीत होने लगा ।६। हे मुनिराज ! भ्रमरों की गुंजार उस समय अनेक प्रकार से हो रही थी जिससे तापसों के हृदय में भी काम-वासना जागृत होने लगी ।७।

चंद्रस्य विशदा कांतिर्विकीर्णा हि समंतत: ।
कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साऽभवत् ।८।
मानिनां प्रेरणाथासीत्तत्काले कालदीपिका ।
मारुतश्च सुखः साधौ ववौ विरहिणोऽप्रिय: ।९।
एवं वसंतविस्तारो मदनावेशकारक: ।
वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दु:सहोऽत्यभूत् ।१०।
अचेतसामपि तदा कामासक्तिर भून्मुने ।

सुचेतसां हि जीवानां सति किं वर्ण्यते कथा ।११।
एवं चकार स मधुः स्वप्रभावं सुदुःसहम् ।
सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः ।१२।
अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा ।
आश्चर्य्यं परमं मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः ।१३।
अथ लीलाकरस्तत्रः तपः परमदुष्करम् ।
ततापं स वशीशो हि हरो दुःखहरः प्रभुः ।१४।

सर्वत्र चन्द्रमा की चारुतम चाँदनी छिटक उठी जो कि कामी और कामिनियों के लिये दूतिकाओं के समान प्रतीत हो रही थी ।८। उस वक्त काम की उद्दीपक तथा मानी और माननीयों के मान का भंजन कर विहार करने को अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाली, विरही जनों को अति अप्रिय वायु चलने लगी ।९। वहां उस समय बसन्त ऋतु का ऐसा विस्तार सर्वत्र छा गया कि तपोनिरत मुनियों के हृदय में भी काम की उद्दीप्त वासना जाग उठी और वनवासी मुनिजनों के लिये वह दुःसह्य हो गई ।१०। हे मुनिवर ! उस समय कुछ ऐसा प्रबल प्रभाव सर्वत्र फैल गया कि चेतना वाले प्राणियों कीतो बात ही क्या हैं जो जड़ अचेतन थे उनमें भी काम की आसक्ति ने घर बना लिया ।११। बसन्त ऋतु का ऐसा दुःसह्य प्रभाव सभी ओर फैल गया कि समस्त जीवों के हृदय में वहाँ पर असह्य काम का उद्दीपन होगया था ।१२। हे तात ! उस समय बिना प्राकृत काल के ऋतुराज का ऐसा चमत्कृत प्रभाव देखकर भगवान शंकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे क्योंकि प्रभु ने तो लीला का विस्तार करने के लिए ही शरीर धारण किया है ।१३। उस समय सबका दुःख निवारण करने वाले शिवजी परम संयत होकर लीलापूर्वक दुष्कर तपश्चर्या करने में निरत हो गए ।१४।

वसंते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः ।
चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः ।१५।
स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन्सकलाञ्जनान् ।
रत्या युक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः ।१६।

एवं प्रवृत्तसुरतो शृङ्गारोऽपि गणैः सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेज हरांतिकम् ।१७।
मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः ।
न दृष्टवांस्तदा शंभोश्छिद्रं येन प्रविश्यते ।१८।
यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन्योगिवरे स्मरः ।
महादेवस्तदा सोऽभून्महा भयविमोहितः ।१९।
ज्वलज्ज्वालाग्निसंकाशभालनेत्रसमन्वितम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः ।२०।
एतस्मिन्नंतरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवा ।
जगाम शिवपूजनार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः ।२१।

इस तरह बसन्त ने अपना पूर्ण प्रभाव प्रसृत कर दिया तब कामदेव अपनी स्त्री रति को साथ लेकर आम्र की मृदुल मंजरी का बाण चढ़ा कर शिवजी के वाम-भाग में स्थित होगया ।१५। कामदेव के प्रभाव के विस्तार से सभी मोहित होगये । ऐसा कोई भी न बच सका जो रति के साथ काम को देखकर मोहित न हुआ हो ।१६। जब इस तरह रति की प्रवृत्ति हुई तो रस राज शृङ्गार भी अपने हाव-भाव आदि सैनिकगण को लेकर शंकरजी के निकट प्रविष्ट होगया ।१७। अपने पूर्ण प्रभाव के साथ कामदेव प्रकट तो हो गया किन्तु शिवजी के मन में कोई छिद्र न पाकर, प्रवेश न कर सका और बाहिर ही स्थित बना रहा ।१८। जब कामदेव ने योगीश्वर शिव के हृदय में काम-विकार उत्पन्न करने का कोई भी अवसर नहीं प्राप्त किया तो स्वयं महान् होते हुए भी महादेवजी से भयभीत होकर मोहित होगया ।१९। शंकर के मस्तक में रहने वाला तीसरा नेत्र परम प्रज्वलित होकर अग्नि के समान प्रकाश युक्त हो रहा था । ध्यानावस्था में समाधिस्थ भगवान् शिव कोअपने आधीन बनाने की शक्ति किसकी हो सकती है ।२०। उसी सम्य नित्य की भाँति भवानी अपनी सखी सहेलियों सहित बहुत से पुष्प हाथों में लेकर शिव की अर्चा करने को वहाँ आगई ।२१।

यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्वतात्मजा ।

तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः ।२२।
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमः हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ।२३।
शृङ्गारैश्च तदा भावैः सहिता पार्वती हरम् ।
जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह ।२४।
तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः ।
द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुंचत्सुसंयतः ।२५।
यथा निरंतरं नित्यमागच्छति तथा शिवम् ।
तं नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता ।२६।
सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि ।
विवृण्वती तदांगानि स्त्रीस्वभावात्सुलज्जया ।२७।
सुसस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः ।
शिवोऽपि वर्णयामास तदंगानि मुदा मुने ।२८।

जब पार्वती शिवजी के बिल्कुल समीप में पहुँची तो भगवान् शंकर एक क्षण के लिये अपनी समाधि छोड़कर जागृत होगये ।२२। कामदेव ने इतना ही छिद्र प्राप्त कर लिया और प्रसन्न होकर पास में स्थित होते हुए अमोघ वाण द्वारा शिवको आह्लादित करने लगा ।२३। हे मुनिवर ! उस समय अपने पूर्ण शृङ्गार और हाव-भावों के साथ पार्वती का आगमन ऐसा हुआ मानो वह कामदेव की सहायता के लिये मन्द-सुगन्ध से पूर्ण वायु के साथ वहाँ आई हो ।२४। उस समय कामदेव को पूरा अवसर प्राप्त हो गया और शिवजी की मनोरुचि को भवानी के निरीक्षण आदि व्यापारों में बढ़ाने के लिए उसने अपना धनुष सँभाल कर सावधानी से पुष्प वाण का प्रहार शिव पर किया ।२५। प्रतिदिन की भाँति शिव के समीप में उपस्थित होकर प्रणाम, अर्चना और वन्दना का कार्य करने के लिये उस समय पार्वती शिव के सम्मुख प्रस्तुत हो गई ।२६। शिव ने उस दिन कुछ विशेष रुचि के साथ पार्वती को जैसे ही देखा तो वह स्त्री सुलभ स्वभाव से लज्जित-सी होकर,अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सिकोड़ने लगी ।२७। उस समय विधाता के दिये हुए वरदान का स्मरण कर शिवजी

पार्वती के अङ्गों की सुन्दरता की प्रशंसा करने लगे।२८।

किं मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम्।
भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः।२९।
किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः।
पुष्पाणि किं च वर्ण्यंते वस्त्राणि च तथा पुनः।३०।
लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेवात्र विनिर्मितम्।
सर्बथा रमणीयानि सर्वांगाणि न संशयः।३१।
अहो धन्यतरा चेत्रं पार्वत्यद्भुतरूपिणी।
एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी कोपि सुरूपिणी।३२।
सुलावण्यनिधिश्चेयमद्भुतांगानि बिभ्रति।
बिमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्धिनी।३३।
क्षणमात्रं विचार्य्येत्थं संपूज्य गिरिजां ततः।
प्रबुद्धः स महायोगी सुविरक्तो जगाविति।३४।
किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः।
कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वाऽपि प्रभुरीश्वरः।३५।
ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं कि नैव करिष्यति।३६।
एवं वैराग्यमासाद्य पर्य्यंकासाद नं च तत्।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह।३७।

शिव के मुख से ये वचन निकल पड़े—पार्वती का यह मुख है या चन्द्रमा है—ये नेत्र हैं या पूर्ण विकसित कमल हैं—क्या ये भृकुटियां हैं अथवा मनोभव कामदेव का धनुष है।२९। इसकी गति भी जनूठी हैं, रूप भी अनुपम है और पुष्पों के आभरण तथा वस्त्रादि भी सभी अनोखे दिखाई देते हैं। यहाँ किसका वर्णन किया जावे कुछ समझ में नहीं आता है।३०। इस संसार की रचना में जितना भी जो लालित्य है वह सभी बटोर कर विधाता ने इसी एक में भर दिया हैं। यह पूर्णतया निस्सन्देह हे कि इस पार्वती के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग सब प्रकार से सुन्दर एवं मन को हरण करने वाले है।३१। यह महान् अदभुत एवं रमणीय रूप पाकर

पार्वती परम धन्य है । इसकी समता रखने वाली एवं सुन्दरी अन्य कोई भी स्त्री लोक में नहीं हो सकती हैं ।३२। पार्वती लावण्य की खान है और अनुपम सुन्दर अङ्गों को धारण करती हुई मननशील मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली तथा अनिर्वचनीय सुख देने वाली हैं ।३३। शिवजी क्षण मात्र में ही भवानी के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कुछ विचार कर रहे थे कि उन योगीश्वर शम्भु को चेतनता आ गई और तुरन्त ही विरक्ति भावना में मग्न होकर कहने लगे ।३४। यह क्या विचित्र घटना हुई ? मुझे ऐसा महामोह किस प्रकार और क्यों हुआ ? समर्थ और ईश्वर होते हुए भी मुझे कामदेव ने विकार युक्त किस तरह कर दिया ? ।३५। मैं इतना समर्थ होते हुए भी किसी के अस्पृश्य अङ्ग का स्पर्श करने की लालसा रक्खूँ तो फिर साधारण सामर्थ्य विहीनक्षुद्र पुरुष संसार में क्या-क्या नहीं करेंगे ? ।३६। इस तरह पूर्ण परिपक्व वैराग्य में निमग्न होकर शिव ने अपने मन से पार्वती के पर्यङ्कप्राप्ति का सुखाशा को एक दम हटा दिया । सर्वान्तर्यामी परमेश का क्या कभी भी पतन होना सम्भव हो सकता हैं ? ।३७।

शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना

धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वरः ।
विचिंचित मनस्येवे विस्मितोऽति ततः परम् ।१।
किमु विघ्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम् ।
केन मे विकृत चित्तं कृतमत्र कुकर्मिणा ।२।
कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि व कृतम् ।
जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलंघिता ।३।
विचिंत्येत्थं महायोगी परमेशः सतां गतिः ।
दिशो विलोकयामास परितः शकितस्तदा ।४।
वाम भागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम् ।
स्वशरं क्षेप्तुकामं हि गर्वितं मूढचेतसम् ।५।
तं दृष्ट्वा तादृशं गिरिशस्य परात्मनः ।
सजातः क्रोधसंमर्दस्तत्क्षादपि नारद ।६।

काम: स्थितोऽन्तरिक्षोस: धृत्वा तत्सशरं धनु: ।
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारममोघं शंकरे मुने ।७।

महान् योगीश्वर महादेवजी ने अपने धैर्य में विघ्न होता देखकर विस्मय पूर्वक गहन विचार किया और इस घटना पर बहुत अधिक आश्चर्य किया ।१। शिवजी मनमें कहने लगे मुझे घोर तपश्चर्या करते हुए इस प्रकार के विघ्न क्यों उपस्थित हुए और किस दुरात्मा ने मेरे नितान्तशांत चित्त में ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया ? ।२। मैंने अनुराग विभोर होकर अन्य स्त्री के रूप-लावण्य का बखान किया—यह धर्म के सर्वथा विरुद्ध ही हुआ । मुझसे आज शास्त्र की मर्यादा का प्रत्यक्षत: उल्लंघन हुआ हैं ।३। ब्रह्माजी ने कहा-सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले महायोगीश्वर परमेश ने ऐसा सोचते हुए अङ्किन होकर समस्त दिशाओं का अवलोकन किया ।४। उस समय शिवजी ने देखा कि उनके वाम भाग में कामदेव बाण छोड़ने की इच्छा रखकर खड़ा हुआ है और उससे अपनी विजय का लाभ पाने पर वह महामूढ़ बहुत गर्वित हो रहा है ।५। इस दूषित भावना से उपस्थित मदन को देखकर भगवान् गिरीश को महान् क्रोध उत्पन्न होगया ।६। हे मुनिवर ! उसी समय कामदेव भय-भीत होकर अपना धनुष-बाण वहीं छोड़ अन्तरिक्ष में स्थित होगया । उसने ऐसा समझ रक्खा था कि मैंने अपना दुर्निवार्य अमोघ बाण शङ्करजी पर चला दिया है ।७।

बभूवामोघमस्त्रं तु मोघं तत्परमात्मनि ।
समशाम्यत्ततस्तस्मिन्संक्रुद्धे परमेश्वर ।८।
मोघीभूते शिवे स्वेऽस्त्रे भयमापाशु मन्मथ: ।९।
चकंपे च पुर: स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युंजय प्रभुम् ।
सस्मार त्रिदशान्सर्वांछक्रादीन्भयविह्वल: ।
स स्मरो मुनिशार्दूल स्वप्रयासे निरर्थके ।१०।
कामेन सुस्मृता देवा: शक्राद्यस्ते मुनीश्वर ।
आययु: सकलास्ते हि शंभुं नत्वा च तुष्टुवु: ।११।
स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्याति हरस्य हि ।
तृतीयात्तस्य नेत्राद्वै नि:संसार ततो महान् ।१२।

ललाटमध्यगात्तस्मात्स वह्निर्द्रुतसम्भवः ।
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निसमप्रभः ।१३।
उत्पत्य गगने तूर्णं निपत्य धपणीतले ।
भ्रामं भ्राम स्वपरितः पपात मेदिनीं परि ।१४।

वह काम का अमोघ अस्त्र परमेश में निष्फल हो गया और शिव के क्रोध उत्पन्न होने पर उसकी अमाघता नष्ट हो गई ।८। शिवजी के ऊपर चलाये हुए अस्त्र के विफल हो जाने से कामदेव को बड़ा भय हो गया और प्रभु मृत्युञ्जय को कोपाविष्ट देखकर वह काँप उठा ।९। उस भय से बहुत व्याकुल होकर कामदेव ने देवराज इन्द्र आदि देवों को याद किया क्योंकि मदन का किया हुआ सभी प्रयास व्यर्थ हो गया था ।१०। हे मुनीश्वर ! मन्मथ ने जब देवों का स्मरण किया तो समस्त देवताओं ने वहाँ आकर शिव को प्रणाम किया और वन्दना करने लगे ।११। जब ये समस्त देवगण शिवजी का स्तवन कर रहे थे, उसी क्षण अत्यन्त क्रुद्ध महेश्वर के तृतीय नेत्र से, जो कि विशद ललाट के मध्य में था, अग्नि का पुञ्ज प्रकट होकर प्रलयकालीन अग्नि के समान ऊर्ध्व शिखा वाला प्रदीप्त होकर जल उठा ।१२-१३। तुरन्त ही उस प्रदीप्त अग्नि के तेज को आकाश, भूमि और अपने चारों तरफ दौड़ते हुए देखकर कामदेव पृथ्वी पर गिर पड़ा ।१४।

भस्मासात्कृत्यवान्साधो मदनं तावदेव हि ।
यावच्च नरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामितिः ।१५।
हते तस्मिन्स्मरे वीरे देवा दुःखमुपागताः ।
रुरुदुर्विह्वलाश्चातिक्रोशंतः किमभूदिति ।१६।
क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसंज्ञा साऽभवत्तदा ।
भर्तृमृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता इव ।१७।
जातायां चैव संज्ञायां रतिरत्यतविह्वला ।
विललाप यदा तत्रोच्चरंती विविधं वचः ।१८।
किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह ।
मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम् ।१९।

वहाँ प्रस्तुत देवताओं का समुदाय जब तक यही प्रार्थना कर रहे थे कि "अपराधी को क्षमा कर दीजिए" तब तक तो उस आग ने कामदेव को जला कर भस्मभूत कर ही दिया ।१५। उस समय उस परम वीर मदनदेव के नाश हो जाने से देवगण को अत्यन्त दुःख हुआ और वे सब दुःखाकुल होकर रुदन करते हुए कहने लगे—यह क्या हो गया ? ।१६। थोड़े-से समय के लिए कामदेव की स्त्री रति बेहोश होकर अपने स्वामी की मृत्यु की असह्य वेदना से गिर कर मूर्च्छित दिशा में मृतक के समान हो गई थी ।१७। कुछ समय के पश्चात् होश में आकर रति पति-वियोग के दुःख से बेचैन होकर करुणा विलाप करती हुई विविध भाँति के वचन बोलने लगी ।१८। रति ने रोते हुए कहा—मैं क्या करूँ और कहाँ जाकर किसका आश्रय लूँ ? यह देवगण ने क्या कर दिया ? मेरे पति को अपने स्वार्थ-सिद्ध करने के लिये यहाँ भेजकर मेरा सर्वनाश ही कर दिया ।१९।

।। पार्वती को नारदजी का उपदेश ।।

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णु शिष्य त्रिलोककृत् ।
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शंकरस्य महात्मनः ।१।
भस्मीभूते स्मरे शंभुतृतीयनयनाग्निना ।
तस्मिन्प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः ।२।
किं चकार ततो देवी पार्वती कुधरात्मजा ।
गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे ।३।
श्रृणु ताता महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ।
महोतिकारकस्यैव स्वामिनी मम चादरात् ।४।
यदाऽदहच्छंभनेत्रोद्भवो हि मदनं शुचिः ।
महाशब्दोऽद्भुतोऽभूद्वै येनाकाशः प्रपूरितः ।५।
तेन शब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च ।
सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला ।६।
तेन शब्देन हिमवान्परिवारसमन्वितः ।
विस्मतोऽभूदति क्लिष्टः सुतां स्मृत्वा गतां ततः ।७।

नारदजी ने कहा—हे तात ब्रह्माजी ! महामनीषी ! हे विष्णु भगवान् के शिष्य ! त्रैलोक्य की रचना करने वाले भगवान् शिव की परम अद्भुत यह कथा आपने मुझे सुनाई है।१। शिवजी के तृतीय नेत्र की प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला से जब कामदेव भस्म होगया और वह अग्नि समुद्र में प्रवेश करगई इसके पश्चात् क्या हुआ ? ।२। पर्वतराज की पुत्री पार्वती उस समय सखियों के साथ कहाँ चली गई और उसने फिर क्या किया ? हे दयासागर ! यह और मुझे बताइए।३। ब्रह्माजी बोले—हे महान भाग्य वाले तात ! अब मेरे स्वामी, अद्भुत चरित्र करने वाले शिव जी का चरित्र मैं तुमको सुनाता हूँ, उसे तुम आदरपूर्वक सुनो।४। जब शिव के नेत्र से समुत्पन्न अग्नि के द्वारा कामदेव भस्म हुआ था उस वक्त एक ऐसा भयकर शब्द हुआ था कि समस्त गगन-मण्डल उससे गूँज उठा था।५। इस महाध्वनि से कामदेव को ताप-दग्ध सोचकर पार्वती बहुत व्याकुल हो गईं और सखियों के साथ अपने स्थान में चली गई।६। उस भयानक शब्द को सुनकर नगराज हिमालय को बड़ा विस्मय हुआ और तपोनिरता अपनी पुत्री पार्वती का स्मरण करते हुए वहाँ सपरिवार पहुँच गये।७।

जगाम शोकं शैलेश सुता दृष्ट्वातिविह्वलाम् ।
रुदंतीं शंभुविरहादाससादाचलेश्वरः ।८।
आसाद्य पारिणा तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
मा विभीहि विधेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ।९।
क्रोडे कृत्वा सुतां शीघ्रं हिमवानललेश्वरः ।
स्वामालयमथानिन्ये सांत्वयन्नतिविह्वलाम् ।१०।
अन्तर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा ।
विकलाऽभूद्भृशंसा नौ लेभे शर्म न कुत्रचित् ।११।
पितृगृंह तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा ।
पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा ।१२।
ततस्त्वं पूजितस्तेन भूधरेण महात्मना ।
कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्टो वरासने ।१३।

ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमादिता ।
हरसेवान्वितं कामदहनं च हरेण ह ।१४।

हिमालय को अपनी आत्मजा पार्वती को शोक से व्याकुल देखकर बहुत अधिक कष्ट हुआ ।८। शैलराज शिव के विरह की वेदना से व्याकुल पार्वती के पास पहुँचे और पार्वती के नेत्रों से अपने हाथों के द्वारा आँसुओं को पोंछकर कहने लगे—'हे शिवे ! तुम डरो मत, रुदन बन्द कर दो', ऐसा कहकर उन्होंने पार्वती को ग्रहण करते हुए ढाढ़स बँधाया ।९। नगाधिराज ने इस तरह पार्वती को समझाते हुए अपनी गोद में बिठाया और फिर अपने भवन में शिवा ले गये ।१०। कामदेव को भस्मीभूत करने के पश्चात् शिव अन्तर्धान हो गए और भवानी उनके वियोग के दुःख से अधिक व्याकुल हो गईं, उन्हें किसी भी स्थान में शान्ति नहीं मिल सकी ।११-१२। ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उस समय इन्द्र ने मतिमान हिमालय के स्थान पर तुमको नियुक्त किया और विचरण करते हुए तुम वहाँ पहुँच गये थे ।१३। वहाँ शैलराज ने तुम्हारी अर्चना कर तुम्हें श्रेष्ठासन पर बिठलाया और तुमने उससे क्षेम कुशल का प्रश्न किया । हिमालय ने पुत्री पार्वती की सेवा एवं तपस्या और शिव के द्वारा काम-दहन का सारा चरित्र आपको सुनाया ।१४।

श्रुत्वावोचो मुने त्वं तु तं शैलशं शिवं भज ।
तमामंत्र्योदतिष्टस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम् ।१५।
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामगमस्त्वरा ।
लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिववल्लभः ।१६।
आसाद्य कालीं संबोध्य तद्धिते स्थित आदरात् ।
अवोचस्त्वं वचस्तथ्यं सर्वेषां ज्ञानिनां वरः ।१७।
शृणु कालि वचो मे हि सत्यं वच्मि दयारतः ।
सर्वथा ते हितकरं निर्विकारं सुकामदम् ।१८।
सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा बिना ।
गर्ववत्या यदध्वंसीद्दीनानुग्रहकारकः ।१९।

विरक्तश्च स स्वामी महायोगी महेश्वरः ।
विसृष्टवान्स्मरं दग्ध्वा त्वांशिवे भक्तवत्सलः ।२०।
तस्मात्त्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ।
तपसां संस्कृतां रुद्रः स द्वितोयां करिष्यति ।२१।

हे मुनिराज ! यह सुन कर तुमने शैलेश को उपदेश दिया था कि तुम अब शिव की आराधना करो और इतना कहकर शङ्कर के परम प्रिय एवं ज्ञाननिधि तुम एकान्त में बैठी हुई पार्वती के पास पहुँच कर कहने लगे । ।१५-१६। भवानी के समीप जाकर बड़े आदर के साथ सम्बोधन करके उसके हित के लिए ज्ञानियो में श्रेष्ठ एवं परोपकारी आपने अति उत्तम वचन कहे थे ।१८। नारदजी ने कहा—हे काली ! मुझे आप पर इस समय बड़ी दया आरही है, इसलिए मैं तुम से तुम्हारे हित करने वाले जो भी कुछ वचन कहता हूँ उन्हें तुम दत्तचित्त होकर सुनो । ये मेरे वचन तुम्हारे परम हितकारी और विकार रहित कामना के प्रदान करने वाले हैं ।१९। तुमने महेश्वर की सेवा तो की किन्तु वह तपस्या से रहित थी और तुमको उस सेवा का बहुत गर्व भी होगया था । इसीलिये दीन हितकारी शिव ने अनुग्रह करके ही तुम्हारा वह गर्व नष्ट किया है ।२०। हे शिवा ! तुम्हारे स्वामी महेश्वर महान् योगी और परम विरक्त हैं । वे भक्तवत्सल हैं और इसीलिए उन्होंने दुरात्मा कामदेव को भस्म करके भी तुमको छोड़ दिया था । अतएव अब तुम कुछ अधिक समय तक तपस्या करके महेश्वर प्रभु की आराधना करो । तपश्चर्या से सुसंस्कृत हो जाने वाली तुमको भगवान् शङ्कर अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे ।२१।

त्वं चापि शंकरं शम्भ न त्यक्ष्यसि कदाचन ।
नान्यं पतिं हठाद्देवि ग्रहीष्यसि शिवादृते ।२२।
इत्याकर्ण्य वचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा ।
किंचिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां सांजलिर्मुदा ।२३।
त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो ।
रुद्रस्याराधनार्थाय मंत्रं देहि मुने हि मे ।२४।

न सिद्धयति क्रिया कापि सर्वेषां सद्गुरुं विना ।
मया श्रुता पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी ।२५।
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः ।
पंचाक्षरं शम्भुमंत्रं विधिपूर्वमुपादिशः ।२६।
अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रद्धामुत्पादयन्मुने ।
प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने ।२७।
शृणु देवि मनोरस्य प्रभावं परमाद्भुतम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण शंकरः सुप्रसीदति ।२८।

हे देवी ! फिर तुम कभी भी महेश्वर का त्याग नहीं कर सकोगी और केवल शङ्कर को ही तुम हठपूर्वक अपना पति बनाओगी अन्य किसी भी देव को नहीं ।२२-२३। ब्रह्माजी ने कहा—शैल-तनया इस प्रकार के नारदजी के वचन सुनकर एक ऊँची श्वास भरकर करबद्ध होकर नारदजी से (तुमसे) बोली ।२४। पार्वती ने कहा—हे देवर्षि ! आप तो संसार में समस्त प्राणियों का उपकार एवं हित करने वाले हैं। अब आप भगवान् रुद्र की सेवाराधना करने के लिए अपना गुरु-मन्त्र प्रदान कीजिए ।२५। संसार में अच्छे गुरु की प्राप्ति के अभाव में कभीभी कोई क्रिया सिद्ध नहीं होती हैं—ऐसा मैंने सुन रक्खा है और यही सनातन श्रुति भी है। ब्रह्मा जी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने ऐसे पार्वती के विनयपूर्ण वचन सुनकर उसको सविधि शिव के "नमः शिवाय" इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश दिया था ।।२६-२७। हे मुनिश्रेष्ठ ! परम श्रद्धा की भावना को उपजाते हुए आपने इस मन्त्रराज का अतुल प्रभाव सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादन करते हुए कहा—हे देवि ! पञ्चाक्षरी मन्त्र-राज का बड़ा ही अद्भुत प्रभाव होता है। इसके केवल श्रवण करने से ही महेश्वर प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं ।२८।

मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्राणामधिराजश्च कामदः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यंतं शंकरस्य महाप्रियः ।२९।
सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद् द्रुतम् ।
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम् ।३०।

चितयंती च तद्रूपं नियमस्था शराक्षरम् ।
जप मंत्रं शिवे त्वं हि संतुष्यति शिवो द्रुतम् ।३१।
एवं कुरु तपः साध्वि तपःसाध्यो महेश्वरः ।
तपस्येव फलं सर्वैः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ।३२।

मैं तुम्हें इसका प्रभाव बतलाता हूँ । उसे तुम सुनो । यह सभी मंत्रों का राजा है । हार्दिक कामना तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने की इसमें सामर्थ्य है और यह मन्त्र शंकर भगवान् को अत्यन्त प्रिय है ।२९। हे सुभगे ! जिस समय भक्ति के साथ तुम इस मन्त्र का जाप करोगी तो तुम्हारी आराधना से वे बहुत ही शीघ्र निस्सन्देह प्रत्यक्ष हो जाँयगे ।३०। हे शिवे ! नियमपूर्वक शिव स्वरूप का मन में ध्यान करती हुई इस मन्त्र के जप से निश्चय ही शिव शीघ्र ही तुम पर प्रसन्न हो जाँयेगे । हे साध्वि ! महेश तपस्या से ही प्राप्त हो सकते हैं और लोक में सब तप से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति किया करते हैं । तप का प्रभाव ध्रुव सत्य है इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।३१-३२।

।। शिव के निमित्त पार्वती का तप करना ।।

त्वयि देवमुने याते पार्वती हृष्टमानसा ।
तपःसाध्यं हरं मेने तपोर्थं मन आदधे ।१।
ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा ।
मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत ।२।
प्रथमं पितरं गत्वा हिमवंतं नगेश्वरम् ।
पर्यपृच्छत्सुप्रणम्य विनयेन समन्विता ।३।
हिमवञ्छ्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना ।
सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापि तथा पुनः ।४।
भवतो हि कुलस्यास्या साफल्यं कर्तुमिच्छति ।
तपसा साधनीयोऽसौ नान्यथा दृश्यतां व्रजेत् ।५।
तस्माच्च पर्वतश्रेष्ठ देयाऽऽज्ञा भवताऽधुना ।
तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम् ।६।

इत्येवं च तदा पृष्ठः सखीभ्यां मुनिसत्तम ।
पार्वत्या सुविचार्याथ गिरिराजाऽब्रवीदिदम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा — हे मुनिराज ! वहाँ से आपने गमन करने के पश्चात् पार्वती परम प्रसन्न हुई और मन में 'महेश्वर तप के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं' ऐसा दृढ़ निश्चय कर भवानी ने तपस्या में ही मन लगा दिया ।१। फिर अपनी जया-विजया नाम वाली दो सहेलियों के साथ पार्वती ने अपने माता-पिता तथा अन्य सखी जनों से जाकर पूछा ।२। सर्व प्रथम अपने पिता हिमालय से प्रणामपूर्वक विनय और भक्ति के साथ पूछा ।३। पार्वती की दोनों सहेलियों ने हिमालय से प्रार्थना की 'हे राजन् ! आपकी पुत्री पार्वती अपने देह और रूप को सफल करने के लिये आप से कुछ निवेदन करना चाहती है, आप कृपाकर उसे सुनें ।४। यह आपकी आत्मजा आपके कुल को सफल करने की इच्छा करती है । इसे अब निश्चय होगया है कि भगवान् शङ्कर तप से ही साध्य हो सकते हैं, अन्य कोई भी उपाय उनके प्रत्यक्ष करने का नहीं है ।५। अतएव हे शैलाधीश ! आपको अब कृपा कर इसे आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिए कि यह पार्वती वन में जाकर शिव की प्रसन्नता के लिए तपस्या करे" ।६। ब्रह्माजी ने कहा—जब पार्वती की सखियों ने ऐसा हिमालय से पूछा तो शैलराज कुछ विचार कर कहने लगे ।७।

मह्यं च रोचतेऽयर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः ।
यथेदं भवितव्यं च किमतः परमुत्तमम् ।८।
साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः ।
मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किमु ।९।
इत्येवं वचनं पित्रा प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा ।
जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्ते तथा सह ।१०।
गत्वा तु मातरं तस्याः पर्वत्यास्ते च नारद ।
सुप्रणम्य करौ वद्ध्वोचतुर्वचनमादरात् ।११।
मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि नमोऽस्तु ते ।
सुप्रसन्नतया तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि ।१२।

तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परमं तपः ।
प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति ।१३।
इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुकामा पतिव्रते ।
त्वदाज्ञा यदि जायेत तप्यते च तथा तपः ।१४।

शैलराज ने कहा—मुझे पार्वती का ऐसा निश्चय बहुत पसन्द आया है किन्तु इस प्रकार तप करने की आज्ञा पार्वती की माता से लेनी चाहिए। यदि ऐसा हो जावे तो इस से श्रेष्ठतम अन्य क्या बात हो सकती है ।९। ब्रह्माजी ने कहा—शैलराज के ऐसे वचन सुनकर वे दोनों सखी पार्वती की माता से पार्वती की तपस्या के हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए वहाँ गई ।१०। हे नारद ! वे दोनों भवानी की माता के समक्ष प्रणाम पूर्वक सादर करबद्ध हो प्रार्थना करने लगीं।११। सखियों ने कहा—हे माता ! आपकी पुत्री आपसे कुछ निवेदन करना चाहती है और हम प्रणाम करती हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक इसकी प्रार्थना को स्वीकार करने के योग्य हैं ।१२। आपकी पुत्री अपने अभीष्ट देव शङ्कर को प्राप्त करने के लिए वन में जाकर तप करना चाहती है। इसने अपने पिताजी से तो आज्ञा प्राप्त करली है। अब आपसे अनुमति लेने के लिए यहाँ उपस्थित हुई है ।१३। हे पतिव्रते ! आपकी पार्वती अपने रूप को सफल बनाना चाहती है। यदि आपकी आज्ञा प्राप्त हो जावे तो वह वन में जाकर कठोर तपोव्रत धारण कर लेगी ।१४।

इत्युक्त्वा च ततः सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर ।
नांगीचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा ।१५।
ततः सा पार्वती प्राह स्वमेवाथ मातरम् ।
करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ।१६।
मातस्तप्तुं गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम् ।
अनुजानीहि मां गंतुं तपसेऽद्य तवोवनम् ।१७।
इत्याकर्ण्यं वचः पुत्र्या मेना दुखमुपागता ।
सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती ।१८।

दुःखितासि शिवे पुत्रि तपस्तप्तुं पुरा यदि ।
तपश्चर गृहेऽक्त त्वं न बहिर्गच्छ पार्वती ।१९।
कुत्र यासि तपः कर्तुं देवाः संति गृहे मम ।
तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च ।२०।
कर्तव्यो न हठः पुत्रि गंतव्यं न बहि क्वचित् ।
साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधयिष्यसि ।२१।

हे मुनीश्वर ! यह कर वे सखियाँ चुप होगईं और पार्वती की माता मेना ने व्याकुलतावश उसको स्वीकार नहीं किया ।१५। उस समय भवानी ने मन में शिव का ध्यान रखकर स्वयं ही विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर माता से प्रार्थना की ।१६। पार्वती ने कहा—हे माता ! मैं महेश की प्राप्ति के लिए कल प्रातःकाल में ही तपस्या करने के लिए तपोवन में प्रस्थान करूँगी, अतः आप प्रसन्नापूर्वक आज्ञा प्रदान करें ।१७। ब्रह्मा जी ने कहा—प्रिय पुत्री के इस वचन के सुनने से मेना को अत्यन्त दुःख हुआ और परम विकल होकर बेटी को अपने पास बिठाकर कहने लगी ।१८। मेना ने कहा—हे पुत्री शिवे ! यदि तुझे दुःख है और तेरी शिव के निमित्त तपस्या करने की ही प्रबल इच्छा है तो तू यहाँ अपने घर में ही स्थित रहकर तपश्चर्या कर, बाहिर कहीं भी मत जा ।१९। तू वन में घर छोड़कर कहाँ जायगी ? मेरे इस घर में सभी देवता, तीर्थ और अनेक उत्तम क्षेत्र विद्यमान रहते हैं ।२०। हे पुत्रों ! इस विषय में विशेष हठ करना उचित नहीं है । तप के लिए बाहर मत जाओ । इसके पूर्व तुमने क्या साधना कर ली है और क्या करना चाहती हो ? ।२१।

शरीरं कोमलं वत्से तपस्तु कठिनं महत् ।
एतस्मात्तु त्वया कार्य्यं तपोऽत्र न बहिर्व्रज ।२२।
स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी ।
तस्मात्त्वं पुत्रि मा कार्षीस्तपोऽर्थं गमनं प्रति ।२३।
इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता ।
संवेदे न सुखं किंचिद्विनाराध्य महेश्वरम् ।२४।

तपोनिषिद्धा तपसे वनं गंतुं च मेनया ।
हेतुना तेन सोमेति नाम प्राप शिवा तदा ।२५।
अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम् ।
निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने ।२६।
मातुराज्ञां च संप्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम ।
ततः स्वांते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशंकरा ।२७।
मातरं पितरं साथ प्रणिपत्य मुदा शिवा ।
सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तु समुद्गता ।२८।

हे बेटी ! तेरा शरीर कुसुम से भी अधिक कोमल हैं और तपस्या का कार्य बहुत कठिन है । इसलिये तू यहीं अपनी साधना पूरी कर, कहीं बाहिर मत जाओ ।२२। हे मनोकामना रखने वाली पार्वती ! तपोवन में स्त्रियों की गति नहीं सुनी गई है, अतएव तपस्या करने के लिये वनगमन नहीं करना चाहिए ।२३। ब्रह्माजी ने कहा—मेना ने अनेक प्रकार से पुत्री को तपोवन जाने के लिये निवारण किया किन्तु भवानी ने शंकर की आराधना के अतिरिक्त किसी भी तरह सुख नहीं समझा ।२४। मेना ने अनेक बार तपस्या करने के लिये वन में जाने का निषेध किया इसी कारण से भवानी का नाम 'उमा' पड़ गया ।२५। हे मुनीश्वर ! शैलराज की पुत्री शिवा को अत्यन्त दुःखित जानकर मेना ने उसे तपश्चर्या करने के लिए आज्ञा प्रदान करदी ।२६। हे मुनीवर ! उस समय माता की आज्ञा प्राप्त कर सुव्रत वाली भवानी ने शंकरजी का स्मरण करके हृदय में बहुत सुख का लाभ किया ।२७। गौरी अपने माता-पिता को प्रणाम करके शिवजी के चरणों का स्मरण करते हुये अपनी दो सहेलियों को साथ में लेकर वन में तपस्या करने के लिये चली गई ।२८।

हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च ।
वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं वद्ध्वा तु शोभनाम् ।२९।
हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं घृतम् ।
जगाम तपसे तत्र गंगावतरणं प्रति ।३०।

शम्भुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्धो मनोभवः ।
गंगावतरणो नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।३१।
हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृतः ।
काल्या तत्रेत्य भोस्तात पार्वत्या जगदम्बया ।३२।
यत्र स्थित्वा पुरा शंभुस्तप्तावन्दुस्तरं तपः ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ।३३।
हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा गिरेः सुता ।
विललापातिदुःखार्ता चिंताशोकसमन्विता ।३४।
ततश्चिरेण सा मोहं धैर्य्यात्संस्तभ्य पार्वती ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता ।३५।

विविध भाँति के मत तथा अनेक प्रकार वस्त्रादि का त्यागकर भवानी ने कटि में सुन्दर मौञ्जी बाँधली और बल्कल के वस्त्र लज्जा निवारणार्थ धारण कर लिये ।२९। कण्ठहार के स्थान में मृग चर्म धारण कर लिया और गङ्गोत्तरी के निकट तप करने को चल दी ।३०। जिस स्थान पर भगवान् शंकर ने अपनी समाधि लगाई थी और जहाँ पर मन्मथ को भस्म किया था वहीं गङ्गा के अवतरण होने का एक हिमाचल का प्रस्थ है ।३१। हे तात ! सबसे पहिले पार्वती उसी स्थल पर पहुँची किन्तु उस जगदम्बा के वहाँ पहुँचने के समय पर वह स्थान शिवजी से रहित पड़ा था ।३२। सर्वप्रथम शिवजी ने उस स्थान पर परम उत्कट तपस्या की थी। वहाँ एक क्षण के लिए पार्वती स्थित रही और फिर शिव के विरह में बहुत अधिक व्याकुल होगई ।३३। अत्यन्त वियोग के दुःख में बेचैन होती हुई भवानी गहन शोकमग्न होकर 'हाँ शंकर यह कहकर रुदन करने लगी ।३४। बहुत समय के पश्चात् रुद्राणी ने धैर्य धारण कर विरह के मोह को स्तम्भित किया और दीक्षित विधान से तपश्चर्या के लिये नियम धारण किये ।३५।

तपश्चकार सा तत्र शृंगितीर्थे महोत्तमे ।
गोरीशिखरनामासीत्तत्तपः करणाद्धि तत् ।३६।
सुन्दराश्चद्रुमास्तत्र पवित्राः शिवया मुने ।

आरोपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः ।३७।
भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय सुन्दरी ।
तथा तप समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम् ।३८।
विगृह्य मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि सहाशु सा ।
समुपस्थानिके तत्र चकार परमं तपः ।३९।
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलंतं दिवानिशम् ।
कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम् ।४०।
सतत चैव वर्षासु स्थंडिले सुस्थिरासना ।
शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया ।४१।
शीते जलांतरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा ।
अनाहाराऽतपत्तत्र नीहारेषु निशासु च ।४२।

इसके अनन्तर उस सर्वोत्तम शृंगि तीर्थ में पार्वती तप करने लगी। इसी से उस स्थान में तपस्या करने से उसका नाम तभी से गौरी शिखर पड़ गया है ।३६। हे मुने ! पार्वती ने अपने किए जाने वाले तप का फल किस तरह ज्ञात होगा—यह जानने के लिये वहाँ परीक्षार्थ बहुत से वृक्ष लगाये थे वे सब भवानी के यहाँ पदार्पण करते ही एकदम हरे-भरे हो गये ।३७। गौरी ने पहिले भूमि की शुद्धि की और फिर उस स्थान में वेदी की रचना की। इसके अनन्तर ऐसी घोर तपस्या का आरम्भ किया जो कि महामुनियों को भी दुष्कर थी ।३८। मन के साथ समस्त इन्द्रियों का निरोध करके ध्यानावस्थित होकर कठोर तपस्या करने लगी ।३९। ग्रीष्म की ऋतु में अहर्निश अपने चारों ओर अग्नि जलाकर स्वयं मध्य में बैठकर पार्वती ने मन्त्र का जप किया ।४०। वर्षा काल में खुले मैदान में आसन जमा कर एक शिला पर बैठते हुए अपने ऊपर अविरल वर्षा की धारा लेकर जाप किया ।४१। शीत काल को कठिन रात्रियों में शिव-भक्ति में निरत होकर बिना आहार किए जल के मध्य में स्थित होकर ध्यान तथा मन्त्र-जाप भवानी ने किया ।४२।

एवं तपः प्रकुर्वाणा पंचाक्षरजपे रता ।
दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम् ।४३।

स्वारोपिताङ्कद्रुमान्वृक्षान्सखीभिः सिंचती मुदा ।
प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत् ।४४।
वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा ।
दुःसहोऽपि तथा धर्मस्तया सेहे सुचित्तया ।४५।
दुखं च विविधं तत्र गणितं न तया गतम् ।
केवलं मन आधाय शिवे सीसीत्स्थिता मुने ।४६।
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं पर्णभोजनैः ।
तपः प्रकुर्वंती देवी क्रमान्निन्येऽमिताः समाः ।४७।
ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता ।
निराहाराऽभवद्देवी तपश्चरणसंरता ।४८।
आहारे त्यक्तपर्णाऽभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ।
तेन देवैरपर्णेति कथितः नामतः शिवा ।४९।

इस तरह समस्त कर्मों के फल प्रदाता शंकर जी के ध्यान में निमग्न होकर पार्वती ने घोर तपस्या में पंचाक्षरी मन्त्र का जाप किया ।४३। वहाँ अपने समारोपित वृक्षावली का सिञ्चन स्वयं अवकाश पाकर पार्वती करती थी तथा अपनी सहेलियों से उन्हें सिञ्चित कराती थी और सर्वदा समागत अतिथियों का सत्कार करती रहती थी ।४४। शीत-वात-वर्षा और ग्रीष्म के विविध प्रकार के सन्तापों को सावधान चित्त से सहन करने लगी ।४५। इस तपश्चर्या के काल में भवानी को विघ्न स्वरूप अनेक दुःख उपस्थित हुये किन्तु उसने किसी की परवाह न की । हे मुनिवर ! पार्वती का ध्येय तो एक शिवाराधना थी, उसने उसी में पूर्ण रूप से मन लगाया था ।४६। प्रथम वर्ष में फलों का भोजन और दूसरे वर्ष में पत्तों का आहार करते हुए तपस्या में देवी को इसी क्रम से बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये ।४७। इसके अनन्तर भवानी ने पर्णाहार का भी त्याग कर दिया था । उसी समय देवगण ने शिवा का नाम 'अपर्णा' रख दिया ।४८-४९।

एकपादस्थिता सासीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती ।
पंचाक्षरं जंपती च मनुं तेपे तपो महत् ।५०।

चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी ।
शिवचिंतनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीम् ।५१।
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चितयंत्ता महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ।५२।
षष्टिवर्षंसहस्राणि यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिंतयामास सा शिवा ।५३।
नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना ।
येनाहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता ।५४।
लोके वेदे च शिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा ।
शंकरा स हि सर्वत्रः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।५५।
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावानुभावनः ।
भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः ।५६।

कुछ समय बाद गौरी ने एक चरण से खड़े होकर पंचाक्षरी मन्त्र के जाप द्वारा महातपश्चर्या का आरम्भ कर दिया । पार्वती की ऐसी घोर तपस्या थी कि उसने चीर बल्कलधारी जटाजूट से युक्त शिवजी का ही चिन्तन करते हुए अपने तप द्वारा उसने महातापस मुनियों को भी जीत लिया था ।५०। इसी भाँति तप करते हुए औंर महेश्वर का ध्यान करते हुये भवानी को उस तपोवन में तीन सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये ।५१। जिस स्थान पर शिव ने साठ हजार वर्ष पर्यन्य तपस्या की थी वहाँ एकक्षण के लिये स्थित होकर पार्वती अपने मन में विचार करने लगी क्या मेरे उपास्य महेश्वर यह नहीं जान पाये हैं कि मेरे पाने के लिये ही यह तपोनिरता हो रही है जिससे कि इतने लम्बे समय में भी तपस्या करने वाली मेरीं सुधि नहीं ले सके ।५२-५४। लोक में और वेद में तथा मुनि समाज में यह प्रख्यात है कि महेश सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी और सर्वदर्शी हैं एवं वे सब प्रकार के प्रदाता, समस्त भावों से अनुभावित और सर्वदा अपने भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा सभी क्लेशों के निवारक हैं ।५५-५६।

सर्वकामान् परित्यज्य यदि चाहं वृषध्वजे ।

अनुरक्ता तदा सोऽत्र संप्रसीदनु शंकरः ।५७।
यदि नारदतंत्रत्रोक्तमंत्रो तप्तः शराक्षरः ।
सुमवत्या विधिना नित्थं संप्रीसीदतु शंकरः ।५८।
यदि भक्त्या शिवस्याहं निर्विकारा यथोदितम् ।
सर्वेश्वरस्य चात्यंतं संप्रसीदतु शंकरः ।५९।
एवं चिंतयती नित्यं तेपे सा सुचिरं तपः ।
अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी ।६०।
तथा तया तपंस्तप्तं मुनीनामपि दुष्करम् ।
स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परमं विस्मयं गताः ।६१।
तत्तपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः ।
धन्यान्निजान्मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः ।६२।
महतां वृद्धिधर्मेषु गमनं श्रेय उच्यते ।
प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्मः सदा बुधैः ।६३।

यदि वास्तव में मैंने समस्त अन्य कामनाओं का त्याग कर केवल शिव में ही अनुराग किया है तो वे महेश्वर मुझ अनुरागिणी पर अवश्य कृपा करेंगे ।५७। यदि नारदीय तन्त्रोक्त पंचाक्षरी मन्त्र को विधि एवं भक्ति के साथ मैंने प्रतिदिन जपा है तो गिरीश प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों ।५८। यदि पूर्ण भक्ति की भावना से विकार रहित शिव की समुचित समाराधना की हैं तो वे सब के स्वामी प्रभु शंकर मुझ पर प्रसन्न होंगे ।५९। इस तरह महाचिन्ता में डूबी हुई वह रुद्राणी जटा धारण किए हुए निर्विकार होकर नीचे की ओर मुख करके महातपस्या करने लगी ।६०। पार्वती ने ऐसा कठोर तप किया कि मुनिगण भी उसे नही कर सकते थे, उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य ही रहा था ।६१। अनेक ऋषि-मुनि तो पार्वती की कठोर तपस्या को सुनकर वहाँ देखने के लिए आये और अपने को परम धन्य समझ कर भवानी की प्रशंसा करते हुए अत्यधिक विस्मित हुए ।६२। जो धर्मवृद्ध होते हैं उनके समीप गमन करना महान्‌पुरुषों को परमकल्याणकारी होता है । तप का कोई प्रमाण नहीं होता अतः अतएव पंडितों को सर्वदा धर्म को मान्यता देनी चाहिए ।६३।

श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियतेतपः।
अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति ॥६४
जल्पतं इति ते सर्वे सुप्रशस्य शिवातपः।
जग्मुः स्वं धाम मुदिताः कठिनांगश्च ये ह्यपि ॥६५
अन्यच्छृणु महर्षे त्वं प्रभावं तपसोऽधुना।
पार्वत्या जगदंबायाः पराश्चर्यकरं महत् ॥६६
तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः।
तेऽप्यासंस्तत्प्रभावेण बिरोधरहितास्तदा ॥६७
सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः।
तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधत परस्परम् ॥६८
अथान्ये च मुनिश्रेष्ठ मार्जारा मूषकादयः।
निसर्गाद्वैरिणो यत्र विक्रियते स्म न कचित् ॥६९
वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च।
पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम ॥७०
तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम्।
जातं च तपसः तस्याः सिद्धिरूपभूत्तादा ॥७१

पार्वती की तपश्चर्या देख व सुनकर दूसरों के तप को हेय बताते हुए मुनिजन कहने लगे—तप तो ऐसा ही होना चाहिए जैसा यह श्री शिव के लिए किया जा रहा है। इससे विशेष बढ़कर लोक में अब तक न किसी ने किया और न भविष्य में भी हो सकेगा। ६४। इस प्रकार वे सब पार्वती के तप की प्रशंसा कहते-सुनते अपने-अपने स्थानों को चले गये यद्यपि वे कठिन अङ्ग वाले थे। ६५। हे महर्षे! अब तुम जगदम्बा के परम अद्भुत चरित्र का तथा उनकी इस तपस्या का प्रबल प्रभाव का सुनो। परस्पर में स्वभाव के विरोधी भी कोई उस आश्रम में पहुँचते ही अपने स्वभाविक विरोध का त्याग कर देते थे। यह पार्वती के तप और स्वभाव का ही प्रभाव है। ६६–६७। सिंह और गौ परस्पर में रागादि दोष वाले हैं, किन्तु उस तपोवन में शिवा की महिमा से किसी ने किसी को कभी कोई बाधा नहीं पहुँचाई। ६८। मूषक और मार्जार आदि अन्य

भी स्वाभाविक शत्रुओं ने अपनी स्वभाव सिद्ध शत्रुता का वहाँ त्याग कर दिया था ।.६९।। वहाँ के वृक्ष-लता आदि सब पुष्पित और फलित हो गये । हे मुनिवर्य ! उस समय बड़े-बड़े विचित्र पुष्प विकसित हो गए और समस्त तपोवन कैलास के समान बन गया था । यह सभी कुछ पार्वती के कठोर तप का ही प्रभाव था । इस तरह वह देवी सिद्ध रूप हो गई थी ।।७०-७१।।

।। देवताओं का तप से व्याकुल हो ब्रह्मलोक जाना ।।

एवं तपस्यां पार्वत्यां शिवप्राप्तौ मुनीश्वर ।
चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि ।।१
हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम् ।
सभार्यः ससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम् ।।२
मा खिद्यतां महाभागे तपसाऽनेन पार्वति ।
रुद्रो न दृश्यते बाले विरक्तो नात्र संशयः ।।३
त्वं तन्वी सुकुमारांगी तपसा च विमोहिता ।
भविष्यसि न संदेहः सत्यं सत्यं वदामि ते ।।४
तस्मादुत्तिष्ठ चैहि त्वं स्वगृहं वरवर्णिनि ।
किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः ।।५
अतो हि निर्विकारत्वात्त्वामादातुं वरां हरः ।
नागमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि ।।६
गगनस्थो यथा चन्द्रो गृहीतुं नहि शक्यते ।
तथैव दुर्गमं शंभुं जानीहि त्वमिहानघे ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! इस तरह तपस्या करते हुए पार्वती को जब बहुत समय हो गया और शिव दर्शन की उत्कट लालसा करते हुए भी शिव के दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई । तब दृढ़ निश्चय वाली पार्वती के पास हिमालय स्त्री, पुत्र और मन्त्रियों के साथ उपस्थित हुए और भवानी से कहने लगे ।।१-२।। हे महाभागे ! हे पार्वती ! इस तपस्या से तू खिन्न मत होना । हे बाले ! तुझको रुद्र दर्शन नहीं दे रहे हैं सो वे परम विरक्त हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।।३।। तू परम

सुकुमार अंग-प्रत्यंगों वाली है अतः तपस्या मोहित हो गई है इसमें सन्देह नहीं है। मैं तुम से जो कुछ भी कहता हूँ यह पूर्ण सत्य है ॥४॥ हे वरवर्णिनी ! इसलिये अब तुम तप को छोड़कर उठ जाओ और अपने घर को चलो। ऐसे रुद्रदेव से तुम्हारा क्या मनोरथ पूरा होगा जिसने पहिले ही रतिनाथ कामदेव को भस्म कर दिया है ॥५॥ शिवजी तो विकार से रहित हैं अतः वे तुम को ग्रहण करने के लिए कभी नहीं आवेंगे। हे देवी ! तुम उनके पाने की क्यों प्रार्थना कर रही हो ? ॥६॥ जिस तरह गगन-मण्डल में चन्द्र को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता है, हे पाप-रहिते ? उसी भाँति तुम शिव की प्राप्ति भी परम दुर्लभ एवं दुर्गम समझ लो ॥७॥

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती ।
मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव सा ॥८
एमत्रमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौंचादिभिरनातुरा ।
तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः ॥९
एवं प्रोक्ता यदा तन्वी सा सर्वैस्तपसि स्थिता ।
उवाच प्रहसंत्येव हिमवंतं शुचिस्मिता ॥१०
पुरा प्रोक्तं मया तात मातः किं विस्मृतं त्वया ।
अधुनापि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बांधवाः ॥११
विरक्तोऽसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः ।
तं तोषयामि तपसा शंकरं भक्तवत्सलम् ॥१२
सर्वे भवंतो गच्छंतु स्वं स्वं धाम प्रदर्षिताः ।
भविष्यत्येव तुष्टोऽसौ नात्र कार्य्या विचारणा ॥१३
दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम् ।
तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा—सती मेना ने भी पार्वती को बहुत कुछ समझाया तथा सह्य, मेरु, मन्दर और मैनाक पर्वतों ने भी समझाया एवं अन्य कौञ्च गिरियों ने भी अनेक हेतु बनाकर भली-भाँति आतुरता रहित भवानी को समझाया था ॥८–९॥ इस प्रकार से जब सभी ने तपस्या

में निरता पार्वती को समझाने का प्रयास किया तो मुस्कराती हुई पवित्र हास्य वाली देवी पिता हिमवान् से कहने लगी । १० । पार्वती ने कहा— हे तात ! हे माता ! मैंने पहिले ही आप लोगों से कह दिया था, क्या आपने अब उसे भुला दिया है ? अच्छा, इस समय समस्त बन्धुगण मेरी प्रतिज्ञा को सुन लेवें । यह सुनिश्चित है कि महेश्वर परम विरक्त हैं और उन्होंने क्रोध से कामदेव को भी भस्म कर दिया है । अब उन्हीं भक्तों पर कृपा दृष्टि करने वाले शिव को मैं अपनी इस उग्र तपश्चर्या से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न अवश्य ही करूँगी । ११–१२ । आप लोग प्रसन्नता पूर्वक इस समय अपने-अपने स्थानों को चले जावें । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि शंकर भगवान् मुझ पर प्रसन्न होंगे । १३ । जिन प्रभु ने कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया और गिरि के वन को दग्ध कर दिया, मैं अब उन्हें अपने तपोबल के प्रभाव से यहाँ पर ही बुला लूँगी । १४ ।

तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः ।
जानीध्वं हि महाभागाः सत्यं सत्यं वदामि वः ॥१५
आभाष्य चैवं गिरजा च मेनकां मैनाकबंधुं पितरं हिमालयम् ।
तूष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा समंदरं पर्वतराजबालिका॥
जग्मुस्तथोक्ताः शिवयाहि पर्वतायथागतेनापि विचक्षणास्ते ।
प्रशसमाना गिरिजां मुहुर्मुहुः सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः ॥
गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता ।
तपस्तेपे तदधिकं परमार्थं सुनिश्चया ॥१८
तपसा महता तेन सप्तमासीच्चराचरम् ।
त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ सदेवासुरमानुषम् ॥१९
तदा सुरसुराः सर्वे यक्षकिन्नरचारणाः ।
सिद्धाः साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः ॥२०
सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्चतथापरे ।
कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत् ॥२१

हे महान् भाग्य वालो ! मैं आपसे परम सत्य सिद्धान्त बताती हूँ कि महाभाग शिव केवल महान् तपोबल से ही सेवित हो सकते हैं । यह आप

खूब अच्छी तरह समझ लेवें । १५ । ब्रह्माजी ने कहा—शैलराज की आत्मजा गिरिजा ने अपनी माता मेनका, भाई मैनाक और पिता हिमाचल से ऐसा कह कर तथा मन्दर को भी इसी तरह समझाकर सुभाषिनी ने मौन धारण कर लिया । १६ । गिरिनन्दिनी के ऐसे वचन सुनकर पर्वतराज और सुमेरु गिरि आदि बार-बार पार्वती की दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए परम आश्चर्यान्वित होकर वापिस चले गये । १७। सब के जाने के पश्चात् भवानी अपनी सहेलियों के साथ परमार्थ के निश्चय से महान् तप में पुनः संलग्न हो गई । १८ । उस समय उसके कठोर तपोव्रत से चराचर सभी सन्तप्त हो उठे । हे मुनीश्वर ! त्रिभुवन में देव और असुरों में कोई ऐसा नहीं रहा, जिसे सन्ताप न हुआ हो । १९ । सुर-असुर-यक्ष-किन्नर-चारण-सिद्ध, मुनि, महोरग विद्याधर प्रजापति, और गुह्यक् सब को महान् कष्ट होने लगा और इसका क्या कारण है --यह किसी को भी ज्ञात न हो सका । २०-२१ ।

सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामंत्र्य विह्वलाः ।
सुमेरौ तप्तसर्वांगा विधि मां शरणं ययुः ॥२२
तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः ।
ऊचुः सर्वे च संस्तूय ह्यैकपद्यै न मां हि ते ॥२३
त्वया सृष्टिमिदं सर्वं सगदेतच्चराचरम् ।
संतप्तमति कस्माद्वै न ज्ञातं कारण विभो ॥२४
तद्ब्रूहि कारणं ब्रह्मञ्ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो ।
दग्धीभूततनून्देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः ॥२५
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिवं हृदा ।
विचार्य मनसा सर्वं गिरिजायास्तपः फलम् ॥२६
दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात् ।
हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम् ॥२७
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसंतं सुखासने ।
सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं सांजलिः सुरैः ॥२८

इन्द्र आदि समस्त देव गुरु वृहस्पति से परामर्श कर सुमेरु पर्वत पर

सर्वांग सन्तापसे अत्यन्त व्याकुल होते हुए विधाताकी शरणमें पहुँचे ।२२। वहाँ आकर सबने मुझे प्रणाम किया । मैंने देखा उनकी कान्ति एकदम क्षीण हो चुकी थी । उन्होंने मेरी स्तुति कर कहना आरम्भ किया ॥२३॥ देवगण ने कहा—हे विभो ! आपका निर्मित चराचर जगत् किस कारण से इस समय परम सन्तप्त हो रहा है ? हम लोग कोई भी इसका कारण नहीं समझ पा रहे हैं ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! आप ही इसका कारण एवं उपाय बतलाइए । हमारा शरीर सन्ताप से जल-सा रहा है । आप के अतिरिक्त हमारा कोई अन्य रक्षा करने वाला नहीं है ॥२५॥ ब्रह्माजी ने कहा— मैंने उनकी प्रार्थना सुनकर मन में शिव का स्मरण करके विचार किया कि यह पार्वती की उग्रतम तपस्या का ही परिणाम है ।२६। उस समय समस्त विश्व को ताप दग्ध जानकर सब लोग क्षीर सागर पर पहुँचे और भगवान् नारायण से सब बात कही ॥२७॥ वहाँ सुखासन पर स्थित नारायण की सेवा में प्रणाम पूर्वक सबने स्तुति करके निवेदन किया ॥२८॥

त्राहि त्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान् ।
तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपंत्याः परमेण हि ॥२९
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामस्मदादिदिवौकसाम् ।
शेषासने समाविष्टोऽस्मानुवाच रमेश्वरः ॥३०
ज्ञातं सर्वनिदानं मे पार्वतीतपसोऽद्य वै ।
युष्माभिः सहितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम् ॥३१
महादेवं प्रार्थयामो गिरिजाप्रापणाय तम् ।
पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः ॥३२
वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक् ।
यथा चैष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत् ॥३३
तस्माद्वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः ।
तपसोग्रेण संयुक्तोऽद्यास्ते परममंगलः ॥३४
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्व ऊचुः सुरादयः ।
महाभीता हठात् क्रुद्धाद्दग्धकामान्भयंकरात् ॥३५

हे नारायण ! हम पार्वती की कठोरतम तपश्चर्या के तेज से अति सन्तप्त होकर आपकी शरण में आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए।२६। इस प्रकार हम समस्त देवगण की प्रार्थना सुनकर भगवान् रमापति शेष-शय्या पर बैठे होकर हम से बोले ।।३०।। गिरिनन्दिनी की उग्र तपस्या का कारण हमको ज्ञात हो गया है। अब आप सब के साथ हम महेश्वर के स्थान पर चलते हैं ।।३१।। हे देववृन्द ! हम सभी महेश्वर से पार्वती के पाणिग्रहण की प्रार्थना करेंगे। इस पाणिग्रहण के कर लेने पर सभी लोकों का परम कल्याण होगा ।।३२।। परमदेव महेश्वर पार्वती को वरदान देने के लिए जिस तरह भी वहाँ जावें, हम सभी उनसे यही प्रार्थना करेंगे और अब हमको वहीं चलना चाहिए, जहाँ वह महाप्रभु अपनी उग्र तपस्या से परम मंगल सम्पन्न होकर विराजमान हैं ।।३३-३४।। ब्रह्माजी ने कहा—तब सब देवता कहने लगे—हम उन प्रलय करने वाले महादेव से अत्यन्त भयभीत हैं, क्योंकि उन्होंने भयंकर क्रोध से हठात् कामदेव को भस्म कर दिया है ।।३५।।

महाभयंकरं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम्।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपपाक्षं महाप्रभुम् ।।३६
यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः।
तथैवः क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न संशयः ।।३७
तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः।
सांत्वयंस्तान्सुरान्सर्वान्प्रोवाच स हरिर्मुने ।।३८
हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः।
न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः ।।३६
तस्माद्भवद्भिर्गन्तव्यं मया सार्द्धं विचक्षणः।
शंभुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः ।।४०
शिवं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं वरेण्यरूपं हि परंपराम्।
तपो जुषाणं परमात्मरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामः ।।४१
एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना।

जग्मुः सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम् ।।४२

हम उन महाक्रोधाविष्ठ कालानल के समान कान्ति वाले विरूपाक्ष से अत्यन्त डरे हुए हैं। अतः महायुक्त उनके समीप हम नहीं जायेगे। ३६। वे क्रोधमें भरे हुए हैं, जैसे परम दुस्सह कामदेव को भस्म कर दिया, वैसे ही हम सबको भी वे निस्सन्देह भस्मकर देंगे।३७। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान विष्णु देवगण के ये वचन सुनकर सबको सांत्वना देकर कहने लगे।३८। भगवान् हरिने कहा-हे देववृन्द ! तुम सब मेरे वचन पर विश्वास करो और सुनो। वे तो सर्वदा देवोंके भयके नाश करने वाले परम रक्षक स्वामी हैं। तुमको कभी भी भस्म नहीं करेंगे।३९। अतएव तुम सब हमारे साथ वहाँ उनके समीप में चलो। शिव सदा शुभकारी हैं। इसलिए उन शुभ करने वाले की ही शरण में चलना चाहिए।४०। आप मन में यह धारणा करो कि शिव परम कल्याणकारी, सर्वाधीश्वर, परात्पर, वरेण्य स्वरूप, उग्र तपस्वी और परमात्म-रूप हैं। हम उन्हीं की शरण में जा रहे हैं।४१। ब्रह्माजी ने कहा—जब भगवान् नारायण ने इस प्रकार सबको समझा कर सान्त्वना दी तो सब देवता शंकरके दर्शनकी इच्छा लेकर वहाँ गए।४२।

प्रथमं शलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रयम् ।
जग्मुर्मार्गवशात्सर्वे विष्ण्वाद्याः सकुतूहलाः ।।४३
पार्वत्याः सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा ।
प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपः स्थिताम् ।।४४
प्रशंसंतस्तपस्तस्याः साक्षात्सिद्धितनोः सुराः ।
जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः ।।४५
तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने प्रैषयंस्तदा ।
पश्यंतो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात् ।।४६
नारद त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाऽभयः सदा ।
शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम् ।।४७
पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः ।
निनाय शंकरस्थानं तदा विष्ण्वादिकान्मुने ।।४८
अथ विष्ण्वादयः सर्वे तत्र गत्वा शिव प्रभुम् ।

दद्दृशः सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ।।४९
योगपट्टस्थितं शंभुं गणैश्च परिवारितम् ।
तपोरूपं दधानं च परमेश्वररूपिणम् ।।५०
ततो विष्णुर्मयाऽन्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः ।
प्रणम्य तुष्टुवुः सूक्तैर्वेदोपषदन्वितैः ।।५१

मार्ग में सब से पहिले विष्णु आदि देवों ने भगवती शैलात्मज की तपोभूमि के दर्शन किये और पार्वती के कठोर तप को देखा तथा तपस्या के तेज से व्याप्त उस जगदम्बा को प्रणाम किया। ४३-४४। भवानी के तप की तभी देवता बड़ाई करते हुए बोले कि ऐसा प्रतीत होता है, यह साक्षात् सिद्धि का शरीर है। फिर सब भगवान् शंकरके समीप गये।४५। हे मुनिवर! वहाँ पहुँच कर समस्त देवों ने आपको ही पहले शिवजी के पास भेजा और मन्मथ का मथन करने वाले शंकर को देखकर दूर ही स्थित हो गये। ४६। हे मुने! आप उस वक्त निर्भीक होकर शिवजी के समीप गये और आपने विशेष रूप से महेश्वर को प्रसन्न देखा।४७। फिर आपने यत्न करके देवगण को बुलाया और विष्णु आदि सभी को शंकरके सन्निकट में ले गये। ४८। तब वहाँ विष्णु प्रभृति सब देवों ने सुखपूर्वक विराजमान और प्रसन्नमुख एवं भक्तों पर कृपा करने वाले शंकर के दर्शन किये। ४९। उस वक्त शिवजी योगासन पर संस्थित थे और तपश्चर्या करने का रूप धारण किये हुए थे उनके चारों ओर गण घिरे हुए थे। ५०। उस समय मैं, भगवान् विष्णु, समस्त सुर-सिद्ध और मुनिगण सबने शिव को पहिले प्रणाम किया, फिर वेद तथा उपनिषदों के सूक्तों के द्वारा उनकी स्तुति की।५१।

।।विष्णु-ब्रह्मा के आग्रह से शिवजी का सम्मत होना।।

नमो रुद्राय देवाय मदनांतकराय च ।
स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमो नमः ।।१
शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमः ।
महादेवाय प्रभवे त्रिविष्टपतये नमः ।।२
त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः ।

शंभुरीशः शंकरोऽसि दयालुस्त्वं विशेषतः ॥३
त्वं धाता सर्वजगतां ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो ।
त्वां विना कः समर्थोऽस्ति दुःखनाशे महेश्वर ॥४
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः ।
कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शंभुमारभत् ॥५
विष्णवादयः सुरगणा मुनिसिद्धसंघास्त्वांद्रष्टुमेवसुरवर्य्यविशेषयंति ।
काय्यार्थिनोऽसुरवरैःपरिभर्त्स्यमानाःसम्यक्पराभवपदंपरमंप्रपन्नाः ।
तस्मात्त्वया हि सर्वेश त्रातव्या मुनयः सुराः ।
दीनबन्धुर्विशेषेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः ॥७

देवताओं ने कहा—काम को भस्म करने वाले उज्ज्वल कान्ति से पूर्ण तीन नेत्रों को धारण करने वाले, परम स्तुति के योग्य रुद्र देव शंकर भगवान् को सब का प्रणाम स्वीकार हो ॥१॥ शिपिविष्ट, भीम और भीमाक्ष के लिए प्रणाम हैं। महेश्वर इस जगत् के उत्पन्न करने वाले और स्वर्ग के स्वामी हैं, उनके लिए सब का प्रणाम स्वीकार हो ॥२॥ आप सब लोकों के स्वामी, माता-पिता और ईश्वर हैं, आप शम्भु-ईश और शंकर तथा दया करने वाले हैं ॥३॥ हे महेश्वर ! आप त्रिभुवन के विधाता और रक्षक हैं। अतः अब आप हमारी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त दुःख का नाश करने को अन्य कोई समर्थ नहीं हैं ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर परम कृपालु नन्दिकेश्वर महेश से विज्ञप्ति करने लगे ॥५॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—हे भगवन् शंकर ! दैत्यों की दी हुई पीडा से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर परम व्याकुल विष्णु आदि समस्त देवगण मुनि-वृन्द और सिद्ध लोग आपके पुण्यमय दर्शन के लिए यहाँ उपस्थित हुए हैं। हे सुरवर ! ये सब असुरों से ताड़ित एवं तिरस्कृत होकर अब आपकी शरण ग्रहण करना चाहते हैं ॥६॥ हे सर्वेश्वर ! हे दीनबन्धो ! अब आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिए। आप तो विशेष रूप से भक्तों के वत्सल कहे जाते हैं ॥७॥

एवं दयावता शंभुर्विज्ञप्तो नंदिना भृशम् ।
शनैःशनैरुपरमद्ध्यानादुन्मील्य चाक्षिणी ॥८

ईशोऽथोपरतः शंभुस्तदा परमकोविदः ।
समाधेः परमात्मासौ सुरान्सर्वानुवाच ह ।।९
कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः ।
हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत् ।।१०
इति श्रुत्वा वचः शंभोः सर्वे देवा मुदाऽन्विताः ।
विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञप्तहेतवे ।।११
अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः ।
मदीरितमुवाचेदं सुरकार्यं महत्तमम् ।।१२
तारकेण कृतं शंभो देवानां परमाद्भुतम् ।
कष्टात्कष्टतरं देवा विज्ञप्तुं सर्व आगताः ।।१३
हे शंभो तव पुत्रेणौरसेन हि भविष्यति ।
निहतेस्तारकौ दैत्यो नान्यथा मम भाषितम् ।।१४

ब्रह्माजी ने कहा—जब नन्दिकेश्वर ने दयालु शिवजी से इस तरह प्रार्थना की तो ध्यानावस्था से जगकर शंकर ने शनैः शनैः अपने नेत्र खोले ।८। इसके अनन्तर परम पण्डित शंकर ध्यान से धीरे-धीरे उपरत होकर अपनी समाधि से जाग्रत हुए और देवताओं से बोले ।९। भगवान् शंकर ने कहा—हे देववृन्द ! तुम हरि, ब्रह्मा आदि सब हमारे पास किस कारण से उपस्थित हुए हो ? आप लोग यहाँ आने का कारण स्पष्ट रूप से हमको बतलाओ ।१०। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव के ऐसे आशा भरे वचन सुनकर समस्त देवों को अत्यन्त हर्ष हुआ और विज्ञप्ति करने के लिए विष्णु के मुख की ओर ताकने लगे ।११। सब देवगण के हितैषी विष्णु ने देवताओं के महान् कार्य के पूर्ण करने के लिये शंकर भगवान् से निवेदन करना आरम्भ किया । १२ । विष्णु ने कहा—हे शंकर ! तारकासुर से देवताओं को बहुत भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई है। इसीलिए ये सब एकत्रित होकर आपकी सेवा में उसकी प्रार्थना करने को यहाँ आये हैं। १३ । हे भगवान् ! जिस समय आपके वीर्य से स्वपुत्र उत्पन्न होगा, उसी के द्वारा इस तारक दैत्य का संहार हो सकेगा । यह मेरा निवेदन पूर्णतया सत्य एवं ध्रुव है । १४ ।

विचार्य्येत्थं महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ।
देवान्समुद्धर स्वामिन् कष्टात्तारकनिर्मितात् ॥१५
तस्मात्त्वया गिरिजा देव शंभो ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन ।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरींद्रेण च तां कुरुष्व ॥१६
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः ।
दर्शयन् सद्गतिं तेषां सर्वेषां योगतत्परः ॥१७
यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुन्दरी ।
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च ऋषयो मुनयस्तदा ॥१८
सकामाश्च भविष्यन्ति न क्षमाश्च परे पथि ।
जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतः स्मरम् ॥१९
मदनो हि मया दग्धः सर्वेषां कार्यसिद्धये ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥२०
एवं विमृश्य मनसा कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
सुधीः सर्वैश्च देवेन्द्र हठं नो कर्तुमर्हसि ॥२१

हे महेश्वर ! मैं प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप इस तथ्य पर विचार कर मुझ पर कृपा कीजिये । हे स्वामिन् ! तारकासुर बड़ा भारी कष्ट दे रहा है । आप उससे सबका उद्धार कीजिये हे शंकर ! गिरिराज हिमवान् अपनी महाभागा प्रिय पुत्री गिरिजा को आपकी सेवा में पत्नी रूप में देने को इच्छुक हो रहे हैं । आप उसका दक्षिण कर से पाणिग्रहण कर उसे स्वीकार करें । १५–१६ । भगवान् विष्णु के वचन श्रवण कर शिव ने योग में परायण समस्त देवगण को व्यावहारिक सुन्दर गति का प्रदर्शन करते हुए प्रसन्नचित्त से कहा—जब परम सुन्दरी गौरी मेरे द्वारा अंगीकृत की जायगी तब सभी सुरऋषि और मुनिवृन्द सकाम हो जायेंगे और परमार्थिक मार्ग की सामर्थ्य खो बैठेंगे, क्योंकि पाणि-ग्रहण हो जाने पर वही दुर्गा भस्मीभूत कामदेव को पुनः जीवित करा देगी । १७-१९ । मैंने तो ब्रह्माजी के वचन से सब के कार्यों की सिद्धि के लिये कामदेव को भस्म किया । हे विष्णुदेव ! इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं है ।२० । हे देवेन्द्र ! आप ही स्वयं और अकार्य की व्यवस्था

के मन में विचार करें और परम बुद्धिशील आप इन देवताओं के साथ इस विषय में कोई हठ न करें ।२१।

दग्धे कामे मया विष्णो सुरकार्यं महत् कृतम् ।
सर्वे तिष्ठंतु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम् ।।२२
यथाऽहं च सुराः सर्वे तथा यूयमयत्नतः ।
तपः परमसंक्ताः करिष्यध्वं सुतुष्करम् ।।२३
यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः ।
परमानंदसंयुक्ता निर्विकारा भवन्तु वै ।।२४
पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृत यद् विधे हरे ।
महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्वं विमृश्यताम् ।।२५
महाधनुर्धरेणैव मदनेन हठात्सुराः ।
सर्वेषां ध्वानविध्वंसः कृतस्तेन पुराऽमराः ।।२६
कामो हि नरकायैव तस्मान् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ।।२७
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः ।
सर्वरेव च मंतव्य मद्वाक्यं नात्यथा क्वचित् ।।२८

हे विष्णो ! कामदेव को भस्म कर मैंने देवगण का एक परम महान् कार्य किया है। जिस तरह मैं इस समय हूँ वैसे ही समस्त देवता भी कामवासना से मुक्त होकर स्थित रहें। २२। जैसे मैं तपश्चर्या में मग्न हूँ, हे देवगण ? वैसे ही आप सब भी दुष्कर तपस्या करो। २३। हे देववृन्द ! उस काम के बिना समाधिस्य हो परम आनन्द के साथ निर्विघ्न तपोव्रत का पालन करो। २४। हे विधाता ! हे विष्णो ! हे हेमन्द्र ! हे मुनिवृन्द ! हे देवगण ! यदि कामदेव की पुरानी सब बात भुला दी हो तो पुनः उसी पुरातन बात का संस्मरण करके भली-भाँति विचार करो। २५। हे देववण ! उस परम शक्तिशाली पुष्पधन्वा ने महेन्द्र, मुनि और देवों की जो दशा की है आपको उसका अच्छी तरह विचार अवश्य ही करना चाहिये। उसने पहिले भी सबका ध्यान कष्ट किया था। २६। नरक का द्वार काम ही होता है, इसके कारण ही क्रोध

की उत्पत्ति हुआ करती है, क्रोध से मोह, मोह से स्मृत-भ्रम और भ्रम से बुद्धि नाश होकर तप का नाश होता है। २७। हे देवगण ! आप सब को काम तथा क्रोध का त्याग कर देना चाहिए। मेरी यह उपदेशपूर्ण बात आप लोग अवश्य मान लें इसमें पूरा तथ्य भरा हुआ है।२८।

एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः।
सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णू तथा मुनीन् ॥२९
तूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानिमाश्रित्य वै पुनः।
आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः ॥३०
स्वात्मानमात्मना शंभुरात्मन्येव व्यचिंतयन्।
निरंजनं निराभासं निर्विकारं निरामयम् ॥३१
परात्परतरं नित्यं निर्ममं निरवग्रहम्।
शब्दातीतं निर्गुणं च ज्ञानगम्यं परात्हरम् ॥३२
एवंस्वरूपं परमं चिंतयन् ध्यानमास्थितः।
परमानन्दसंमग्नो बभूव बहुसूतिकृत् ॥३३
ध्यानस्थितं च सर्वेशं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः।
हरिशक्रादयः सर्वे नन्दिनं प्रोचुरानताः ॥३४
किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः।
शंभुस्त्वं शंकरसखः सर्वज्ञः शुचिसेवकः ॥३५
केनोपायेन गिरिशः प्रसन्नः स्याद्गणाधिप।
तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरणं गताः ॥३६

ब्रह्माजी ने कहा—वृषध्वज महेश ने ऐसा कह कर विष्णु विधाता देववृन्द और मुनिगण से उत्तर श्रवण करने की इच्छा प्रकट की।२९। इसके पश्चात् शिव ध्यान-मग्न होकर मौन होगये। उस समय वे गणों से युक्त थे और एक स्थाणु के तुल्य अचल होगये।३०। महेश्वर भगवान् निरंजन, निराकार, निराभास, निर्विकार और निरामय आत्म-तत्व का अपनी ही आत्मा में चिन्तन करने लग गये। ३१। वे यह चिन्तन कर रहे थे कि परमात्म तत्व परात्पर, नित्य स्वरूप, निरवग्रह, ममता से रहित, निर्गुण, ज्ञान द्वारा जानने योग्य और शब्द से भी परे हैं। ३२।

इस तरह परमतत्व स्वरूप का ध्यान करते हुए समस्त जगत् के सृष्टा प्रभु शंकर परमानन्द में निमग्न हो गये । ३३ । तब समस्त देवता और विष्णु ने महादेव को ध्यानावस्थित देखकर नन्दिकेश्वर से कहा—हम लोग अब क्या कर सकते हैं ? शंकर भगवान् तो समाधि में लीन हो गये हैं । आप ही इन परम विरक्त शिव के सच्चे सखा और परम पवित्र सेवक हैं । ३४-३५ । हे गणाधिप ! जिस उपाय से शंकर प्रसन्न हों वही हमें कृपाकर बतलाइये । हम सब आपकी शरण में आये हैं ॥३६॥

इति विज्ञपितो दैवैर्मुने हर्षादिभिस्तदा ।
प्रत्युवाच सुरांस्तान्स नन्दी शंभुप्रियो गणः ॥३७
हे हरे हे विधे शक्र निर्जरा मुनयस्तथा ।
शृणुध्वंवचनं मे हि शिवसंतोष कारकम् ॥३८
यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे ।
अतिदीनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात् ॥३९
भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतः सुराः ।
अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः ॥४०
एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः ।
यथागतेन मार्गेणान्यथा गच्छत मा चिरम् ॥४१
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्ण्वादयः सुराः ।
तथेति मत्वा सुप्रीत्या शंकरं तुष्टुवुर्हि ते ॥४२

हे मुने ! इस तरह प्रसन्नतापूर्वक देवताओं की स्तुति सुनकर शिव के परम प्रिय नन्दी ने देवताओं से कहा ॥३७॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देव-मुनियो ! अब मैं आप सबको शिव को सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करने वाली बात बतलाता हूँ, उसे सुनिये । यदि शिव के दार परिग्रह कराने में ही आप अपना कल्याण समझ कर बड़ा हठ करते हैं तो आप सब परम दैन्य-भावसे इनका स्तवन करें ।३८-३९। हे देवगण ! महेश्वर सदा भक्ति द्वारा ही वशीभूत होते हैं । वह भक्ति भी उच्चकोटि की होनी चाहिए । साधारण से काम नहीं चलेगा । शिव-भक्ति द्वारा वश में होकर जो कोई अकार्य भी होगा उसे भी कर दिया करते हैं ॥४०॥

ब्रह्माजी ने कहा—विष्णु आदि समस्त देवताओं ने नन्दी को यह बात सुनकर कि अगर आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कुछ भी फल नहीं होगा अत: जहां से आप आये हैं वापिस चले जाइये, सब ने कहा हम सब यही करेंगे और फिर सभी दीनतापूर्ण भक्तिभाव से शिव की स्तुति करने में परायण हो गये ।४१-४२।

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभा ।
समुद्धर महाक्लेशात्त्राहि नः शरणागतान् ।।४३
इत्येवं बहुदीनोक्त्या तुष्टुवुः शंकरं सुराः ।
रुरुदुः सुस्वर सर्वे प्रेमव्याकुलमानसाः ।।४४
हरिर्मया सुनीतोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह ।
संस्मरन्मनसा शंभुं भक्त्या परमयाऽन्वितः ।।४५
सुरैरेवं स्तुतः शंभुर्हरिणा च मया भृशम् ।
भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद्विरतोऽभून्महेश्वरः ।।४६
उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन्हर्षयन्हरः ।
विलोक्य करुणादृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ।।४७
हे हरे हे विधे देवाः शक्राद्या युगपत्समे ।
किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ।।४८

उन्होंने कहा–हे करुणासागर ! हे देवदेव ! हम सब इस समय महान् क्लेश में डूबे हुए, आपकी शरण में आये हैं। आप हम सबका उद्धार कीजिए। ४३। ब्रह्माजी बोले–जब बार-बार अपनी रक्षा के लिए सबने दैन्य भाव से स्तवन किया और व्याकुल होकर रुदन करने लगे तो मैंने और हरि ने अत्यन्त भक्ति के साथ शंकर का स्मरण करते हुए दीनता से विज्ञप्ति की। ४४-४५। ब्रह्माजी ने कहा—मेरे, विष्णु के तथा सभी देवताओं के द्वारा मन से शिव का स्मरण करने पर भक्तवत्सलतावश शिव ने समाधि से उपराम ग्रहण किया। ४६। भक्तों पर दया करने वाले परम प्रसन्न शिव ने सबकी ओर करुणा दृष्टि से देखते हुए कहा-हे विधाता ! हे हरे ! हे इन्द्रादि देवगण ! आप अब सब मुझे सत्य बात बतलाओ कि यहां किस कारण से आये हो ?। ४७-४८।

सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वंतर्याम्यखिलेश्वरः ।
किं न जानासि जित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात् ।४९
तारकासुरतो दुःखं सम्भूतं विवधं मृड ।
सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः ।५०
शिवा सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात् ।
तस्यां त्वदुद्भवात्पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा ।५१
इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः ।
तदन्यस्मादमृत्युः स बाधते निखिलं जगत् ।५२
नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः ।
तत्तेजसाऽखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।५३
वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर ।
देव दुःखं जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह ।५४
देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शंकर ।
विवाहं तव सद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम् ।५५
रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर ।
प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु ।५६

तब भगवान् विष्णु ने कहा—हे महेश्वर ! आप सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी और अखिलेश्वर हैं। आप हमारे मन की बात खूब अच्छी तरह जानते हैं तथापि आपकी आज्ञा का पालन करते हुए मैं सेवा में निवेदन करता हूँ ।४९। हे महेश ! तारक दैत्य ने हम सबको बहुत दुःख दिया है। इसी दुःख से छुटकारा पाने के लिए आपको सब देवता प्रसन्न करने के हेतु यहाँ उपस्थित हुए हैं ।५०। जगदम्बा गौरी ने आप ही के लिए हिमाचल के यहाँ जन्म धारण किया है। इस गिरिजा के उदर से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही तारकासुर की मृत्यु निश्चत है इसमें तनिक भी अन्यथा बात नहीं है ।५१। ब्रह्माजी ने उस दैत्य को ऐसा ही वरदान दिया है। किसी भी अन्य के द्वारा अपनी मृत्यु न देखकर वह दुरात्मा समस्त जगत् को सता रहा है ।५२। देवर्षि नारद के उपदेश से भगवती गिरिजा अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही है और उसका तेज समस्त चराचर में

व्याप्त हो गया है।५३। हे परमेश्वर ! अब उस तपोमग्न पार्वती को वरदान देने के लिए वहाँ पधारें। हे स्वामिन् ! अब आप देवों को दुःख को दूर कर हम सबको प्रसन्न कीजिए।५४। हे शङ्कर ! सब देवगण और हमारे मन में आपके विवाह देखने का उत्साह भरा हुआ है सो यदि समुचित हो तो आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें।५५। हे परात्पर ! आपने कामदेव की स्त्री रति को जो वरदान दिया है उसका भी अब अवसर आ गया है, सो आप उसे सत्य सफल करें।५६।

इत्युक्त्वा तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः।५७।
भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा।
विहस्य प्रत्युयाचाशु वेदमर्यादरक्षकः।५८।
हे हरे हे विधे देवाः शृणुत्तादरतोऽखिलाः।
यथोचितमहं वच्मि सविशेषं विवेकतः।५९।
नोचित हि विधानं वै विवाहकरणं नृणाम्।
महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः।६०।
कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसंगस्तत्र चाधिकः।
उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात्प्रमुच्यते।६१।
लोहदारमयैः पाशैर्दृढ बद्धोऽपि मुच्यते।
स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन।६२।
वर्द्धते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः।
विषयाक्रांतमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः।६३।

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार विष्णु, देवगण और महर्षियों ने कह कर प्रणाम किया और सब लोग अनेक स्तोत्रों के द्वारा शिव की स्तुति कर उनके समक्ष में स्थित हो गए।५७। भक्त पराधीन महेश्वर ने देव-गण के निवेदन को श्रवण कर वेद-मर्यादा पालन करते हुए हँसकर उसी समय कहा—।५८। हे हरे ! हे विधाता ! हे देववृन्द ! मैं जो ज्ञान की विशेषता से पूर्ण समुचित बात कहता हूँ उसे आप सब सुनिए।५९। जहाँ तक भी बन सके मनुष्यों को भी विवाह का बन्धन उचित नहीं होता

है। क्योंकि यह वैवाहिक बन्धन ऐसा दृढ़ है जो कि महा निगड़ के समान होता है।६०। यों तो संसार में बहुत से बुरे सङ्ग हुआ करते हैं। उन सब में स्त्री का सङ्ग महा हानिकारक होता है। अन्य कुसङ्ग के बन्धनों से मुक्ति हो सकती है किन्तु स्त्री के बन्धन से कभी उद्धार नहीं हो सकता है।६१। लोहा तथा दारुमय पाशों से दृढ़तापूर्वक बद्ध पुरुष भी छुटकारा पा सकता है। परन्तु स्त्री के संग रूपी पाश से बँधा हुआ मनुष्य किसी तरह भी छुटकारा नहीं पा सकता है।६२। इस महा बन्धन में पड़े हुए पुरुषों की विषय वासना बराबर बढ़ती चली जाती है और जब विषयों की बाढ़ निरन्तर होती चली जावे तो स्वप्न में भी मोक्ष की आशा रखना दुर्लभ है।६३।

सुखमिच्छति चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयांस्त्यजेत्।
विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यैनिहन्यते।६४।
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेंद्रवारुणीम्।६५
यद्यप्येवं हि जानामि सर्वं तान विशेषतः।
तयाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः।६६।
भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात्सर्वकार्यकृत्।
अयथोचितकार्त्तां हि प्रसिद्धो भुवनत्रये।६७।
कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः।
सुदक्षिणस्य भूपस्य भर्मबन्धगतस्य हि।६८।
गौतमक्लेशकर्ताहं त्र्यंबकात्मा सुखावहः।
तत्कष्टप्रददुष्ठानां शापदायी विशेषतः।६९।
विषं पीत सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक्।
देवकष्टं हृतं यत्नात्सर्वदैव मया सुराः।७०।

यदि मतिमान् मनुष्य सच्चा सुख चाहता है तो उसे सविधि विषयों का त्याग कर देना चाहिए। ये विषय विष के तुल्य प्राणियों के मारने वाले हुआ करते हैं।६४। विषयी पुरुषों के साथ वार्तालाप करने मात्र से मनुष्य का एक क्षण में पतन हो जाता है। हे महेन्द्र ! महामनीषी

आचार्यों ने विषयों को मिश्री से मिश्रित साक्षात् सुरा बतलाया है ।६५। मैं यद्यपि विषयों के बुरे प्रभाव एवं कुपरिणाम को भली भाँति जानता हूँ और मुझे विशेष रूप से सब ज्ञान भी है, तो भी मैं अब तुम्हारी इस प्रार्थना को सफल करूँगा ।६६। भक्तों के अधीन होकर उनकी प्रार्थनानुसार सभी कुछ करता हूँ। जो त्रिभुवन में बड़े शक्तिशालियों से भी असाध्य कार्य है, उस महान् तथा अनुचित कार्य को करने वाला मैं जगत् में प्रख्यात हूँ ।६७। मेंने कामरूप नामक देश के राजा की प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा कठिन बन्धन में प्राप्त सुदक्षिण नृप का प्रण भी पूर्ण किया था। गौतम को मैंने क्लेशित किया। मैं त्रयम्बकात्मा सुख को पाने वाला होने के कारण अपने भक्तों के सताने वाले दुरात्माओं को विशेष रूप से कष्ट एवं शाप दिया करता हूँ ।६८-६९। भक्तवत्सलता के भाव के हेतु ही देवहित के लिए मैंने महाकालकूट विष का पान किया था। हे देवगण ! आप लोगों का कष्ट तो मैं सर्वदा यत्न से दूर करता रहा हूँ ।७०।

भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशो बहुयत्नतः ।
विश्वानरमुनेर्दुःख हृत गृहपतिर्भवन् ।७१।
किं बहूक्तेन च हरे विधे सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
मत्पणोऽस्तीति यूयं वै सर्वे जानीथ तत्त्वतः ।७२।
यदा यदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित् ।
तदा तदा हराम्याशु तत्क्षणात्सर्वशः सदा ।७३
जानेऽहं तारकाद्दुःखं सर्वेषां वः समुत्थितम् ।
असुरात्तद्धशिष्यामि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।७४।
नास्ति यद्यपि मे कश्चिद्विहारकरणे रुचिः ।
विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे ।७५।
गच्छत स्वगृहाण्येवं निर्भयाः सकलाः सुराः ।
कार्यं वः साधयिष्यामि नात्र कार्या विचारणा ।७६।
इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धरः ।
सर्वे विष्णवादयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुने ।७७।

भक्तजन के हितार्थ मैंने अनेक बार विविध कष्टों को सहन किया है। गृहपति होकर मैंने विश्वानर मुनि का दुःख निवारण किया था ।७१। हे हरे! हे विधाता! मेरे इस कथन को आप पूर्ण सत्य एवं तत्वपूर्ण समझें। अधिक कहना व्यर्थ है ।७२। मेरे भक्तों पर जिस समय भी कोई विपत्ति आ पड़ती है, मैं उसी समय तत्काल उसे सर्व प्रकार से दूर भगा देता हूँ ।७३। मुझे ज्ञान है कि आप सबको तारकासुर बड़ा कष्ट दे रहा है। अब मैं सत्य कहता कि तुम्हारी उस पीड़ा का हरण मैं अवश्य ही करूँगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हे ।७४। यद्यपि मुझे विषय वासना में लिप्त होकर विहार करने की किंचितमात्र भी अभिरुचि नहीं है तो भी पुत्रोत्पादन के लिए ही में गिरिजा के साथ विवाह अवश्य करूँगा ।७५। हे देववृन्द! अब आप लोग भयविहीन होकर अपने स्थान को चले जाओ। मैं प्रण करता हूँ कि आपका कार्य पूर्ण करूँगा। अब इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।७६। इतना कह कर शिव मौन हो समाधिस्थ हो गए और विष्णु आदि सब देवता अपने-अपने स्थानों को चले गए ।७७।

सप्तर्षियों का हिमाचल को विवाह के लिए सम्मत करना

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः।
त्रिस्मित्तो भार्य्यया शैलानुवाच स गिरीश्वरः ।१।
हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर।
मैनाक विन्ध्य शैलेन्द्राः सर्वे श्रृणुतमद्वचः ।२।
वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्यं विचार्य्यते।
यथा तथा च शंसध्वं निर्णीय मनसाऽखिलम् ।३।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सुमेरु प्रमुखाश्च ते।
प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः ।४।
अधुना किं विमर्शो कृत्तं कार्य्यं तथैव हि।
उत्पन्नेयं महाभाग देवकार्यार्थमेव हि ।५।
प्रदातव्या शिवायेनि शिवस्यार्थेऽवतारिणी।
अनयाऽऽराधितौ रुद्रो रुद्रेण यदि भाषिता ।६।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषाम्मेर्वादिदीनां हिमाचलः ।
सुप्रसन्नतरोऽभूद्वै जहास गिरिजा हृदि ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हिमालय ने वसिष्ठ मुनि के वचनों का श्रवण कर अपनी पत्नी और गणों के सहित अत्यधिक विस्मित होकर कहा ।१। गिरिराज हिमवान् ने कहा— हे मेरु ! हे गन्धमादन ! इसी प्रकार सह्य, गिरिराज मन्दर, मैनाक, विन्ध्य और शैलेन्द्र को सम्बोधित कर कहा—तुम सब मेरे वचन सुनो ।२। महामुनि वसिष्ठ जी इस तरह कह रहे हैं अब मेरा क्या कर्तव्य है इस बात का आप सभी भलीभाँति विचार कर वर्णन करें वही मैं करूँ ।३। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् के इन वचनों को श्रवण कर मन्दर, विन्ध्यादि पर्वतों ने आपस में परामर्श करके जो निर्णय किया उसे उन्होंने प्रेम से कहा ।४। हे महाभाग ! अब कार्य तो हो ही गया है । इसका विचार करना व्यर्थ है । यह तो देवों के कार्य पूर्ण करने के लिये ही समुत्पन्न हुई है ।५। इस गिरिजा का संसार में अवतीर्ण होना शिव के लिये ही है, अतः उसे शङ्कर को ही दे देना चाहिए । पार्वती ने भी इसके लिये ही शिवाराधन किया है और रुद्रदेव के द्वारा वह अङ्गीकृत भी हो चुकी है ।६। ब्रह्माजी ने कहा—सुमेरु प्रभृति पर्वतों के इस उत्तर को सुन कर हिमवान् को परम प्रसन्नता हुई और गिरि नन्दिनी अपने मन में हँसने लगी ।७।

अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात् ।
नानावाक्यसमूहेनेतिहासैर्विविधैरपि ८।
अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः ।
मुनीनरुन्धतीं शैलं भोजयित्वा बुभोज च ।९।
अथ शैलवरो ज्ञानी सुसंसेव्य मुनींश्च तान् ।
उवाच: साञ्जलिः प्रीत्या प्रसन्नात्मा गतभ्रमः ।१०
सप्तर्षयो महाभागा वचः शृणुतमामकम् ।
विस्मयो मे गतः सर्वः शिवयोश्चरितं श्रुतम् ।११।
मदीयं च शरीरं वै पत्नी मेना सुतासुताः ।
ऋद्धिःसिद्धिश्च चान्यद्वै शिवस्यैव न चान्यथा ।१२।

इत्युक्त्वा स तदा पुत्रीं दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम् ।
भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्संगे न्यवेशयत् ।१३
उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषींस्तदा ।
अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम् ।१४

उधर अन्तःपुर में मुनिपत्नी अरुन्धती ने अनेक प्रमाणिक वचन और इतिहास की बातें सुना कर मेना का पूर्ण प्रबोधन किया ।८। शैलराज की पत्नी ने यथार्थता को समझ कर प्रसन्नता प्राप्त की और उसने अरुन्धती और शैलराज को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया ।९। परम ज्ञानी हिमवान् ने समस्त श्रेष्ठतम मुनियों की सुचारु रूप से सेवा करते हुए करबद्ध होकर प्रसन्नता से भ्रम-रहित वचन कहे—।१०। हे महान् भाग्य वाले ऋषिवृन्द ! आप सप्त ऋषियों की परम कृपा से मैंने शङ्कर और रुद्राणी का पुण्य-चरित्र सुना और अब मेरा विस्मय पूर्ण रूप से उन्मूलित होगया है ।११। इसे मैं भलीभाँति समझ गया कि यह मेरा शरीर, पत्नी मेना, पुत्री पार्वती और समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ जो कुछ भी है वह सभी भगवान् महेश्वर का ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१२। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् ने यह कह कर अपनी पुत्री पार्वती को वस्त्राभूषणों से भली भाँति सममलंकृत कराकर आदरपूर्वक ऋषियों की गोद में बिठा दिया ।१३। फिर परम प्रहृष्ट होते हुए शैलाधिपति ने ऋषियों से कहा—अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि यह भाग मैं शिव की सेवा में ही समर्पित कर दूँगा ।१४।

शङ्करो भिक्षुकस्तेऽय स्वयं दाता भवान् गिरे ।
भैक्ष्यश्च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम् ।१५
हिमवन् शिखराणान्ते यद्धेताः सदृशो गतिः ।
धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपः सर्वतो वरः ।१६।
एवमुक्त्वा तु कन्यायै मुनयो बिमलाशयाः ।
आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव ।१७।
स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति ।
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धन्तां त्वद्गुणास्तथा ।१८।

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे दत्त्वा ते गिरये मुदा ।
पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्ययं चक्रिरे तदा ।१९।
अरुन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा ।
गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती ।२०।
हरिद्राकुंकुमैः शैलश्मश्रूणि प्रत्यमार्जयत् ।
लौकिकाचारमाधाय मङ्गलायनमुत्तमम् ।२१।

ऋषी ने कहा—भगवान् शंकर ग्रहण करने वाले आप दानदाता और पार्वती भिक्षा स्वरूप हैं, इससे अधिक सर्वोत्तम कार्य क्या हो सकता है ।१५। हे हिमाचल ! आप अपने सर्वोच्च शिखर समुदाय पति के कारण परम धन्य, समस्त शैलों के स्वामी तथा श्रेष्ठ हो ।१६। यह कहते हुए पवित्रान्तःकरण वाले ऋषियों ने जगदम्बा को आशीर्वाद दिया कि हे गिरिनन्दिनी ! तुम भगवान् शिव को सुखदायक होओ ।१७। फिर ऋषि ने अपने कर कमल से उसका स्पर्श करते हुए कहा—तुम्हारा परम कल्याण होगा और शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान अपने गुणों की गरिमा से वृद्धि वाली होगी ।१८। यह कह कर ऋषियों ने हिमवान् को फल पुष्प प्रदान कर पूर्ण विश्वास दिला दिया । उधर अन्तःपुर में सुन्दर मुख वाली अरुन्धती ने शिव के गुणों का बखान कर मेना के हृदय में शिव की भक्ति भावना उत्पन्न कर दी ।१९-२०। हरिद्रा चूर्ण ओर कुंकम से शैलराज की दाढ़ी मूछों का परिमार्जन किया गया और सभी लौकिक आचारों के द्वारा मङ्गल कार्य किये गये ।२१।

ततश्च ते चतुर्थेऽह्नि संधार्य लग्नमुत्तमम् ।
परस्परं च सन्तुष्य संजग्मुः शिवसन्निधिम् ।२२।
तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्तुत्वा विविधसूक्तिभिः ।
उवचुः सर्वे वसिवाद्या मुनवः परमेश्वरम् ।२३।
देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो ।
शृण्वस्मद्वचनं प्रीत्या यत्कृत सेवकैस्तव ।२४।
बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तिभिः ।
सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोऽसौ न संशयः ।२५।

वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा ।
उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैदेवैश्च संयुतः ।२६।
गच्छ शीघ्रं महादेव हिमाचल गृहं प्रभो ।
विवाहय यथारीति पार्वतीमात्मजन्मने ।२७।

फिर चतुर्थ दिन उत्तम लग्न में सभी परस्पर परम सन्तुष्ट होकर भगवान् शङ्कर के समीप में पहुँचे ।२२। वहाँ जाकर सबने उनको सादर प्रणाम किया तथा अनेक सूक्तों द्वारा उनका स्तवन करके वसिष्ठादि ऋषिगण ने महेश्वर से कहा—हे देवाधिदेव ! हे महाप्रभो ! आपके चरण सेवियों ने जो कुछ किया है उसे हम निवेदन करने आये हैं आप कृपाकर सुनिये ।२३-२४। हे महेश्वर ! हम ने शैलराज और उनकी पत्नी मेना को ऐतिहासिक तथ्य सुनाकर अच्छी तरह समझा दिया है और वे निस्सन्देह इसे भली भांति समझ गये हैं ।२५। शैलराज ने वाग्दान द्वारा अपनी प्रिय पुत्री पार्वती को आपके लिये दे दिया है । अब आप सन्देह-रहित होकर समस्त देववृन्द और गणों के सहित सविधि विवाह करने के लिए वहाँ पधारिये ।२६। हे महेश्वर ! अब आप अविलम्ब हिमवान् के स्थान पर चलिये और रीतिपूर्वक पार्वती को अपनी पत्नी बनाने के लिये विवाह कीजिए ।२७।

शिवजी की बरात का सजाया जाना

अथ शम्भुः समाहू नन्यद्यादीन् सकलान्गणान् ।
आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै ।१।
अपि यूयं सह मया सगच्छध्वं गिरेः पुरम् ।
कियद्गणानिहस्थाप्य महोत्सवपुरः सरम् ।२।
अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा ।
स्वं स्वं बलमुपादाय तान् कथंचिद्वदाम्यहम् ।३
अभ्यगाच्छंखकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः ।
शिवेन सार्द्धं संगन्तुं हिमाचलपुरं प्रतिः ।४।
दशकोट्या केकराक्षो गणानां स महोत्सवः ।
अष्टकोट्या च विकृती गणानां गणनायकः ।५।

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् महेश ने इसके अनन्तर नन्दी आदि अपने समस्त गणों को बुलाकर अपने साथ वरयात्रा में चलने के लिये आज्ञा प्रदान की। शिव ने कहा—कुछ गण तो यहाँ रहें और शेष सभी महान् उत्सव एवं उत्साह के साथ हिमाचल के नगर को चलें।१-२। ब्रह्माजी ने कहा—गण-वर्ग ने इस प्रसन्नता की बात को सुनकर जिस परम आह्लाद के साथ प्रस्थान किया मैं उसका पूरा विवरण बतलाता हूँ।३। गणराज शङ्खकर्ण अपने साथ एक करोड़ गण लेकर हिमालय की नगरी को चल दिया। देवगण गणाधिपति दश करोड़ गण साथ लेकर तथा गणेश्वर विकृत आठ करोड़ सेना लेकर बड़े ही उत्साह के साथ हिमालय के नगर को चल दिये।४-५।

चतुष्कोट्या विशाखश्च गणानां गणनायकः।
पारिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः।६।
षष्टिः सर्वांतकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः।
गणानां दुन्दुभोऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।७।
पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा।
षड्भिः सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने।८।
कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकरतथा।
विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा।९।
सहस्रकोट्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ।
तथा सनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम।१०।
आवेशनस्तथाऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो ययौ।११।
कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने।
अष्टाभिः कोटिभिर्वीरः समगाच्चन्द्रतापनः।१२।
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै।
कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः।१३।

गणनायक विशाख ने चार करोड़ गण, पारिजातगण नौ करोड़ गण, श्रीमान् सर्वान्तक और विकृतानन साठ-साठ करोड़ गण, दुन्दुभगणनायक

आठ करोड़ गण, कपाल नामधारी गणेश्वर पाँच करोड़ गण, सन्दारक वीर गणाधिपति छै करोड़ गण, विष्टम्भ गणराज अपने साथ आठ करोड़ गण, गणेश्वर पिप्पल एक सहस्र कोटि गण, सनादक गणाधीश अपने साथ एक सहस्र करोड़ गण, आवेशन आठ करोड़ गण और महाकेश नामक गण नायक अपने साथ सहस्र करोड़ गण लेकर हिमवान् के यहाँ चल दिये ।६–११। हे मुनीश्वर ! इसी तरह कुण्ड तथा पर्वतक बारह करोड़ अपना सैनिक दल साथ लेकर चल दिये और वीर चन्द्रतापन आठ करोड़ दल साथ लेकर चल दिया ।१२। काल कालक, महाकाल और अग्निक नाम वाले गणाधीश्वर अपने साथ सौ सौ करोड़ सैनिक दल लेकर चले ।१३।

कोट्याग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः ।
आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः ।१४
सन्नाहः शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा ।
अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः ।१५
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः ।
काकपादोदर कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा ।१६
महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च कोकिलः ।
नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ।१७
सप्तकोट्या चतुर्वक्त्रः करणो विंशकोटिभिः ।
ययौ नवतिकोट्या तु गणेशानोऽहिरोमकः ।१८
यज्वाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद ।
तावत्कोटचा ययुः सर्वे गणेशा हि पृथक् पृथक् ।१९
काष्ठागूष्ठश्तुःषष्टचा कोटीनां गणनायकः ।
विरूपाक्षः सुकेशश्च वृषभश्च सनातनः ।२०

अग्निमुख गणनायक आदित्य मूर्धा और घनावह नामक गणेश्वरों ने भी साथ में एक एक करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१४। सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल ने सौ-सौ करोड़ दल लेकर प्रस्थान

किया ।१५। गणनायक सुमन्त्र ने एक कोटि तथा काकपादोदर और सन्तानक ने साठ करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१६। महाबल ने नौ करोड़, कोकिल, नील, मधुपिंग और पूर्णभद्र ने नव्वे करोड़ दल के साथ गमन किया ।१७। चतुंकक्र ने सात करोड़, करण ने बीस करोड़ और रोमक नाम वाले ने नव्वे करोड़ गणों का दल लेकर हिमवान् के यहाँ आगमन किया ।१८। हे नारद ! यज्वाक्ष-शतमन्यु, मेघमन्यु, ये सब नव्वे-नव्वे करोड़ दल लेकर गये ।१९। काष्ठाङ्गुष्ठ गणनायक-विरूपाक्ष और सुकेश, सनातन और वृषभ चौंसठ करोड़ दल के साथ गये ।२०।

तालकेतुः षडास्यश्च चंच्वास्यश्च सनातनः ।
संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः ।२१
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ।
देवो भृंगिरिटिः श्रीमान्देवनेवप्रियस्तथा ।२२
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः ।
ययुः शिवविवाहार्थं शिवेन सह सोत्सवाः ।२३
भूतकोटिसहस्रेण प्रथमाः कोटिभिस्त्रिभिः ।
वीरभद्रश्चतुः षष्ट्या रोमजानां त्रिकोटिभिः ।२४
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृत्ताः ।
तत्रजग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाः शंकरोत्सवे ।२५
क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युतः ।
उद्वाहः शंकरस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः ।२६
एते चान्य च गणपा असंख्याता महाबलाः ।
तत्र जग्मुर्महाप्रीत्या सोत्साहाः शंकरोत्सवे ।२७

हे मुने ! तालकेतु षडमुख-चञ्चुमुख सनातन-सम्वर्तक-चैत्र-लकुलीश-स्वयंन्प्रभु-लोकान्तक-दीप्तात्मा-दैत्यान्तक-देव-गिरिटि-श्रीमान् देवदेव-प्रिय-अशनि और भानुक ये चौंसठ हजार गणेश्वर महान् उत्सवोल्लास से पूर्ण होकर भगवान शङ्कर के विवाह में चल दिये ।२१।२२।२३। एक हजार करोड़ भूत, तीन करोड़ प्रमथ, चौंसठ करोड़ वीरभद्र और तीन करोड़ रोमज विवाहोत्सव में सम्मिलित होने को चल दिये।२४। ये सभी कोटि-

कोटि, सहस्र और बीस हजार करोड़ों से संयुक्त होकर विवाह में चले। इस तरह नन्दी आदि गणराज भगवान् रुद्रदेव के विवाहोत्सव का आनन्द लेने को चले ।२५। क्षेत्रपाल और भैरव करोड़-करोड़ गणों के दल के साथ सुसज्जित होकर महोत्सव का सुख लेने को रवाना हुए और बहुत ही अधिक प्रेमपूर्ण होकर प्रस्थान किया ।२६। इसी रीति से अन्य भी असंख्य महाबलधारी गणराज अत्यन्त प्रेम से शङ्कर के विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए ।२७।

सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः ।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ।२८
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः ।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः ।२९
ब्रह्माविष्णिवन्द्रसंकाशा अणिमादिगुणयुताः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः ।३०
पृथिवीचारिणः केचित् केचित्पातालचारिणः ।
केचिद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने ।३१
किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः ।
अययुः स्वगणाः शम्भोः प्रीत्या वै शङ्करोत्सवे ।३२
इत्थं देवैर्गणैश्चान्यैः सहितः शंकरः प्रभुः ।
ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै ।३३
यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः ।
तदा तत्र ह्यभूद्वृत्तं तच्छृणु त्वं मुनीश्वर ।३४
रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता ।
तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा ।३५

इस विवाह के महोत्सव में बहुत से सहस्र कर वाले, जटाजूट तथा मुकुट धारण करने वाले, मस्तक पर चन्द्र रेखाधारी, नीले कण्ठ वाले तीन नेत्र से युक्त, समस्त रुद्राक्ष मालाधारी, सद्भस्म से भूषित अङ्ग वाले, हारकेयूर-कुण्डल-मुकुट आदि से समलंकृत शरीर वाले, ब्रह्मा, विष्णु और महेन्द्र के तुल्य, अणिमादि सिद्धियों के गुणगण से भूषित

और सूर्य के समान तेज के प्रकाश वाले गणेश्वर शोभित हुये थे ।२८-३०। इन सब में कुछ भूमि बिहारी तो कोई गगनचारी और कोई पाताल में विचरण करने वाले एवं कुछ सातों स्वर्ग में पर्यटन करने वाले थे ।३१। हे महर्षे ! अधिक कहाँ तक वर्णन किया जावे इस महेश्वर के विवाह के महोत्सव में आनन्द का लाभ पाने के लिये समस्त लोकों के निवासी बड़े ही प्रेम के साथ सम्मिलित हुए ।३२। इस तरह भगवान् शम्भु समस्त देवगण के साथ अपने विवाह के लिये हिमवान् के नगर में गये ।३३। हे नारद ! जब भगवान् महेश्वर देवगण के साथ अपना विवाह करने गये उस समय जो कुछ भी हुआ उसको मैं सुनाता हूँ उसे आप सुनिये ।३४। शत्रुओं को भय देने वाली रुद्र की भगिनी होकर चण्डी भी बड़े उत्साह के साथ प्रेमपूर्वक वहाँ आई ।३५।

प्रेतासनसमारूढा सर्पाभरणभूषिता ।
पूर्ण कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम् ।३६
स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्या दीप्तलोचना ।
कुतूहलं प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला ।३७
तत्रभूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने ।
विराजन्ते स्म बहुशस्तथा नानाविधास्तदा ।३८
तैः समेताऽग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना ।
कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युपद्रवकारिणी ।३९
चण्ड्या सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा ।
कोट्येकादशसंख्याका रौद्ररुद्रप्रियाश्च ते ।४०
तदा डमरूनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ।
भेरीझंकारशब्देन शंखानां निनदेन च ।४१
तदा दुन्दुभिनिर्घोषैः शब्दः कोलाहलोऽभवत् ।
कुर्वञ्जगन्मंगलं च नाशयेन्मङ्गलेतरत् ।४२

हे मुने ! प्रेतासन पर स्थित सर्पों के आभरणों से विभूषितांग वाली, मस्तक पर महाकान्ति युक्त सुवर्ण कलश को धारण किये, अपने परिकर से

युक्त, दीप्त मुख वाली और दीप्तिपूर्ण नेत्र वाली प्रसन्नता से प्रफुल्ल विविध कुतूहल करती हुई, प्रसन्नमुखी, महाबल वाली भगवती वहाँ आई तथा करोड़ों दिव्य भूत और अनेकों नाना प्रकार वाले विरूपाक्ष भी वहाँ उत्सव में शोभित होने लगे।३६-३८। इस सब के सहित विकट मुख वाली भगवती चण्डी बड़े प्रेम से प्रीतिमय उपद्रव करती हुई वहाँ उपस्थित हो गई। उस समय चण्डी ग्यारह करोड़ रुद्र के गणों को पीछे कर स्वयं आगे हो गई। उस समारोह में डमरू की ध्वनि की तुमुलता से त्रिभुवन एकदम आकुल होगये। साथ ही भेरी की झंकार और शङ्खों की घोर ध्वनि सर्वत्र फैल गई।४०-४१। उस समय दुन्दुभियों के निर्घोष के द्वारा महान् कोलाहल होने लगा जिससे जगत् के समस्त अमङ्गल भाग जावें और सर्वत्र जगत् मङ्गलमय हो जावे।४२।

गणनां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवाः समुत्सुकाः।
अन्वयुः सर्वसिद्धांश्च लोकपालादिका मुने।४३
मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुडासनमाश्रितः।
शुशुभे ध्रियमाणेन छत्रेण महता मुने।४४
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ स्वगणैः परिवारितः।
पार्षदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः।।४५
तथाऽहमप्यशोभं वै व्रजन्मार्गे विराजितः।
वेदैर्मूर्तिधरः शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा।४६
सनकादिमहासिद्धैः सप्रजापतिभिः सुतैः।
परिवारैः संयुतो हि शिवसेवनतत्परः।४७
स्वसैन्यमध्यगः शक्र ऐरावतगजस्थितः।
नानाविभूषितोऽत्यन्तं व्रजन् रेजे सुरेश्वरः।४८
तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते।
विरेजुरति सोत्कण्ठाः शिवस्योद्वाहनं प्रति।४९

ऐसे निर्घोषकारी गणों के पीछे पूर्ण उत्कण्ठा से युक्त देवों से प्रस्थान किया और उनके पीछे समस्त सिद्धियां तथा लोकपाल आदि ने प्रयाण

किया ।४३। इन सब के मध्य भाग में गरुड़ पर समासीन कान्तिमय महान् छत्र से युक्त वैकुण्ठनाथ ने प्रयाण किया। भगवान् विष्णु पार्षदों द्वारा चमर से वीज्यमान अपने परिकर के सहित दिव्याभूषणों से भूषित थे ।४४-४५। हे नारद ! उस विवाह यात्रा में इसी तरह मार्ग में प्रयाण करने वाला मैं भी था। मेरे साथ मूर्तिमान् वेद, समस्त शास्त्र और पुराण भी चल रहे थे ।४६। महासिद्ध सनकादि, प्रजापति पुत्र तथा परिवार के सहित मैं शिवजी की सेवा करने में परायण हो रहा था ।४७। इसी प्रकार अपने ऐरावत हाथी पर विराजमान देवराज महेन्द्र भी अपने समस्त परिवार से युक्त वहाँ शोभायमान हो रहे थे। वे अनेकानेक दिव्य आभूषणों से अलंकृत वरयात्रा के मार्ग की शोभा वृद्धि कर रहे थे ।४८। महर्षियों का समुदाय भी शिव के विवाह देखने की उत्कण्ठा लिये हुए वरयात्रा में अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ।४९।

शाकिन्यो यातुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ।
भूतप्रेतपिचाशाश्च तथाऽन्ये प्रमथादयः ।५०
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूश्चेत्यादयो वराः ।
गन्धर्वाः किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्माय हर्षिताः ।५१
जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च सर्वशः ।
गायत्री चैव सावित्री लक्ष्मीरन्याः सुरस्त्रियः ।५२
एताश्चान्याश्च देवानां पत्नयो भवमातरः ।
उद्वाहः शङ्करस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः ।५३
शुद्धस्फटिकसंकाशो वृषभः सर्वसुन्दरः ।
यो धर्म उच्यते वेदैः शास्त्रैः सिद्धमहर्षिभिः ।।५४
तस्मारूढो महादेवो वृषभं धर्मवत्सलः ।
शुशुभेऽतीव देवर्षिसेवितः संकलैर्व्रजन् ।५५
एभिः समेतैः सकलैर्महर्षिभिर्बभौ महेशो बहुशोऽत्यलंकृतः ।
हिमालयाह्वास्यधरस्यसंव्रजन्पाणिग्रहार्थं सदनं शिवायाः ।५६

शिबजी की बरात में यातुधानी—शाकिनी—वेताल-ब्रह्म राक्षस-भूत-प्रेत पिशाच-प्रमथ-तुम्बरु-नारद-हाहा-हूहू-किन्नरगण-श्रेष्ठ गन्धर्व आदि

सभी परमाह्लाद प्रदर्शन करते हुए मुख और हाथ के वाद्य बजाते हुए प्रयाण कर रहे थे ।५०-५१। समस्त जगत् की मातायें, गायत्री, लक्ष्मी, सावित्री, सब देवकन्यायें, देवांगनायें आदि नारी वर्ग के समूह भगवान् शंकर के विवाहोत्सव में प्रसन्नता के साथ सम्मिलित हुए ।५२-५३। हे महर्षे ! विशुद्ध स्फटिक के तुल्य दीप्तिमान् परम सुन्दर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुये । इस वृषभ को बड़े-बड़े सिद्ध महर्षियों ने शास्त्र में धर्म बतलाया है । धर्म वत्सल शिव सबके साथ वृषभ पर जाते हुए अत्यन्त शोभित हुये ।५४-५५। इस रीति से समस्त महर्षियों के साथ जाते हुये शंकर परम शोभायमान हुये । उस समय सबने देखा कि आज रुद्रदेव पार्वती के पाणि को ग्रहण करने के लिये हिमाचल के स्थान पर पदार्पण कर रहे हैं ।५६।

॥ शिव-पार्वती का विवाहोत्सव ॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र गर्गाचार्य्यप्रणोदितः ।
हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे ।१।
हेमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता ।
हिमाद्रिश्च महाभागो वस्त्राभरणभूषितः ।२।
पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।
तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ।३।
ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तनैः ।
प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन्समय आगते ।४।
तथेति चोक्ता ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः ।
तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः ।५।
अथ ते पवतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः ।
ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवंतं नगेश्वरम् ।६।
कन्यादाने स्थीयतां चाद्य शैलनाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव ।
सत्यंब्रू मोनात्रकार्योविमर्शस्तस्मात्कन्या दीयतामीश्वराय ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—गर्गाचार्य की प्रेरणा से उसी अवसर पर प्रेरित होकर हिमालय ने अपनी पत्नी मेना के साथ कन्या के दान करने की

इच्छा की ।१। महाभाग्यशालिनी मेना दिव्य वस्त्राभूषणों से समलंकृत होकर सुवर्ण का एक कलश हाथ में लेकर पर्वत-राज हिमवान के वाम भाग में स्थित हो गई ।२। इसके पश्चात् हिमाचल ने परम प्रसन्नता के साथ अपने पुरोहित के साथ अर्घ्य-पाद्य और चन्दन-वस्त्रादि देते हुए वर का वरण किया ।३। इसके अनन्तर हिमवान् ने ब्राह्मण-वृन्द को तिथ्यादि का कीर्त्तन करने के कार्य के लिए नियुक्त किया और जब समय उपस्थित हो गया तब यह कहा गया कि अब समय आ गया है कि तिथि आदि का प्रयोग करना चाहिये ।४। यह सुनकर समय का ज्ञान रखने वाले परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अति शान्ति के साथ प्रेमपूर्वक तिथि आदि का संकीर्तन करने लगे ।५। उस समय गिरिश्रेष्ठ मेरु आदि सबने सम्भ्रमपूर्वक एक ही साथ पर्वत-राज हिमालय से कहा—हे शैलराज ! आप अब कन्या के दान करने के कार्य को सम्पन्न कीजिये, विलम्ब करने से लग्न निकल जायगी और कार्य का नाश होगा । अब अन्य कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है । आप भगवान् शंकर को अपनी कन्या देने का आयोजन करिये ।६-७।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः ।
स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः ।८।
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर ।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर ।९।
तस्मै रुद्राय महते मन्त्रेणानेन दत्तवान् ।
हिमाचलो निजां कन्यां पार्वतीं त्रिजगत्प्रसूम् ।१०।
इत्थं शिवाकरं शैलं शिवहस्ते निधाय च ।
मुमोदातीव मनसि तीर्णं काममहार्णवः ।११।
वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपंकजम् ।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ।१२।
क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोऽदादिति मनुं मुने ।
पपाठ शङ्करः प्रीत्यः दर्शयंल्लौकिकीं गतिम् ।१३।
महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः ।

बभव जयसंरावो दिवि भुव्यंतरिक्षके ।१४।

ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् ने ऐसे वचन श्रवण कर विधि-विधान के साथ अपनी कन्या का दान कर दिया ।८। हिमवान् ने कहा—हे परमेश्वर! मैं आज अपनी इस कन्या का दान आपको कर रहा हूँ । हे सर्वेश्वर ! अब आप इसको अपनी प्रिय पत्नी के स्वरूप में स्वीकार कीजिए ।९। इस तरह उस समय त्रिभुवन की उत्पत्ति करने वाली जगदम्बा पार्वती का मन्त्रोच्चारण के साथ शंकर को दान कर दिया ।१०। हिमालय अपनी आत्मजा पार्वती का हाथ भगवान् शंकर के हाथमें सौंपकर अथाह सागर से पार हो जाने के समान अपने हृदय में परम प्रसन्न हुये ।११। जब हिमवान् ने परमेश्वर को वेद-मन्त्रों के साथ अपनी कन्या का समर्पण कर दिया तो शिव ने परम प्रसन्नता के साथ जगज्जननी गिरिजा का पाणि-ग्रहण कर लिया ।१२। हे मुनीश्वर ! फिर लौकिक गति का प्रदर्शन करते हुए भगवान् शंकर ने भूमि का स्पर्श करके "कोदात् कारतादांत्" इत्यादि मन्त्र का प्रेम के सहित उच्चारण किया ।१३। उस समय सर्वत्र परमानन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव मनाया गया और त्रिभुवन में जय-जयकार की ध्वनि छा गई ।१४।

साधुशब्दं नमः शब्दं चक्रुःसर्वेतिहर्षिताः ।
गन्धर्वाः सुजागुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।१५।
हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि ।
मङ्गलं महदासीद्वै महोत्सवपुरःसरम् ।१६।
अहं विष्णुश्च चक्रश्च निर्जरा मुनयोऽखिलाः ।
हर्षिता ह्यभवंश्चाति प्रफुल्लवदनाम्बुजाः ।१७।
अथ शैलवरः सोदात्सुप्रसन्नो हिमाचलः ।
शिवाय कन्यादानस्य सांगतां सुयथोचिताम् ।१८।
ततो बन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः ।
ददुः शिवाय सद्द्रव्यं नानाविधिविधानतः ।१९।
हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीययै ।
नानाविविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ।२०।

यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च ।
चारुरत्न विकाराणि पात्राणि विविधानि ।२१।

सभी लोग प्रसन्नता से "साधु-साधु" और नमः' इस शब्द का उच्चारण करने लगे । प्रेम सहित गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सरायें नृत्य करने में तत्पर हो गईं ।१५। हिमालय के पुर के निवासी लोग भी अपने मन में अत्यन्त आह्लादित हुए तथा सब जगह मंगलमय महोत्सव मानने लगे ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—मैं, भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र, मुनि एवं अन्य समस्त देवगण प्रफुल्लित मुख वाले होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।१७। पर्वतराज हिमालय अपनी कन्या के दान की साँग सम्पन्नता करने के लिये तत्पर हुये और शंकर को यथोचित सामग्री प्रदान की ।१८। अन्य समस्त बन्धु-बान्धव-जनों ने भी बड़े भक्ति-भाव से पार्वती का अर्चन कर शिव और शिवा को सविधि श्रेष्ठतम धन दिया ।१९। हिमालय ने शिव-पार्वती को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करने के लिये अनेक विभवयुक्त वस्तुयें प्रदान कीं । हे मुनीश्वर ! गिरिराज ने कन्या के दहेज में रत्नों से जटित पात्र एवं बहुमूल्य रत्न प्रदान किये ।२०-२१।

गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा ।
दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम् ।२२।
नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ।
सुवर्ण जटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ।२३।
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम् ।
शिवाय परमेशाय विधिनाऽऽप कृतार्थताम् ।२४।
अथ शैलवरो माध्यंदिनोक्तस्तोत्रतो मुदा ।
तुष्टाव परमेशान सद्गिरा सुकृतांजलिः ।२५।
ततो वेदविदा तेनाज्ञप्ता मुनिगणास्तदा ।
शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवाया परमोत्सवाः ।२६।
देवाभिधानमुच्चार्य्य पर्य्युक्षणविधिं व्यधुः ।
महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने ।२७।

एक लाख दूध वाली गौ, सुसज्जित सौ अश्व और गिरिनन्दिनी में सौहार्द भाव वाली श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित एक लाख परिचारिकायें दीं ।२२। एक करोड़ हाथी और रथ दिये जोकि रत्न एवं सुवर्ण से मण्डित एवं जटिल थे ।२३। हिमवान् ने उदारतापूर्वक दिल खोलकर बहुत-सा सामान दहेज में पार्वती और शिव को देकर सफलता का लाभ प्राप्त किया ।२४। इस सब कुछ करने के पश्चात् हिमालय ने यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के स्तोत्र के द्वारा स्तवन कर हाथ जोड़ते हुए अपनी श्रेष्ठ वाणी से भगवान् शिव को प्रसन्न किया ।२५। वेद के ज्ञाताओं ने आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त उत्साह के साथ भवानी का अभिषेक करना आरम्भ किया ।२६। देव अभिधान का उच्चारण करते हुये उन्होंने पर्युक्षण विधि का विधान सम्पन्न किया । हे मुनिराज ! बड़े ही आनन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव उस समय हुआ जोकि वाणी द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता है ।२७।

द्विज-पत्नी द्वारा पार्वती को पतिव्रत धर्म का उपदेश

अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम् ।
कारयस्वात्मजादेव्या यात्रामद्योचितां गिरे ।१।
इतिश्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहं परम् ।
विषण्णोऽभून्महाप्रेम्ण कियत्कालं मुनीश्वर ।२।
कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शलराट् ततः ।
तथाऽस्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत् ।३।
शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने ।
मेना संयापयामास कर्त्तुमासीत्समुद्यता ।४।
श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने ।
उत्सवं विवधं तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया ।५।
गिरिजां भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः ।
द्वादशाभरणैश्चैव शृङ्गारैर्नृपसम्मितैः ।६।
मेना मनोगतिं बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी ।
गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतं परम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा— सप्त-ऋषियों ने हिमवान् के समीप उपस्थित होकर कहा—हे गिरिराज ! आज परम शुभ दिन हैं, अतएव अब आप पार्वती की विदा यात्रा करा दीजिए ।१। हे महामुने ! अपनी पुत्री की विदाई करने की बात सुनकर हिमवान् पार्वती भावी महान् वियोग से कुछ समय तक बहुत व्याकुल हो गये ।२। कुछ समय पश्चात् चेतना प्राप्त कर हिमालय ने कहा—ऐसा ही किया जायगा और इसका सन्देश अन्तःपुर में मेना के पास भेज दिया ।३। हे मुनीश्वर ! पति के इस सन्देश से मेना को हर्ष और शोक दोनों ही हुए किन्तु उसने पुत्री की विदा करने का साज-सामान सब इकट्ठा कर लिया ।४। हे मुने ! हिमवान् की पत्नी ने वेद और कुल का सम्पूर्ण आचार, सविधि करके विदाई के उत्सव का सम्पादन किया ।५। अनेक प्रकार के रत्नाभरणों से तथा दिव्य वस्त्रादि से पार्वती को विभूषित कर द्वादस नृपोचित भूषणों द्वारा उसका शृङ्गार किया ।६। इसके अनन्तर महारानी मेना का हार्दिक विचार समझकर एक पतिव्रता ब्राह्मणी ने गिरिजा को परम पवित्र पतिव्रता धर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया ।७।

गिरिजे शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्द्धनम् ।
इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम् ।८।
धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी ।९।
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे ।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम् ।१०।
पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती ।
शाण्डिल्या शतरूपानुसूया लक्ष्मीः स्वधा सती ।११।
सञ्ज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च ।
अन्या बह्वचोऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तारजाद्भयात् ।१२।
पतिव्रत्यवृषेणैव ता गताः सर्वपूज्यताम् ।
ब्रह्मविष्णुहरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः ।१३।
सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शंकरः प्रभुः ।

दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः ।१७।

द्विज पत्नी ने कहा—हे पार्वती ! अब तुम धर्म की वृद्धि करने वाले मेरे कतिपय उपदेश श्रवण करो जोकि उभय लोक में आनन्दप्रद और सुनने वालों को परम सुख देने वाले हैं ।८। संसार में पतिव्रता नारी ही सबको पवित्र करने वाली और सब तरह के पापों का नाश करने वाली होती है । अन्य कोई भी नहीं हो सकती है ।९। हे शिवे ! जो नारी अपने स्वामी को ही परमेश्वर समझकर उसकी बड़े प्रेमोत्साह से सेवा किया करती है वह यहाँ समस्त सुखप्रद भोगों का उपभोग कर अन्त में पति-लोक का लाभ प्राप्त करती है ।१०। नारियों में उदाहरणीय पतिव्रता सावित्री, अरुन्धती, शाण्डिल्या, लोपामुद्रा, शतरूपा, लक्ष्मी, अनुसूया, स्वधा और सती कही जाती हैं ।११। इनके अतिरिक्त सुमति, श्रद्धा, मेना स्वाहा आदि अन्य भी बहुत पतिव्रता हैं । विस्तार के भय से उन सबका वर्णन अब मैं नहीं करना चाहती हूँ ।१२। पतिव्रत धर्म के महामहिम प्रभाव के कारण ही ये सब संसार में वन्दनीय एवं मान्य होगई हैं और ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने भी तथा अन्य बड़े महर्षियों ने इनका अत्यन्त सम्मान किया है ।१३। मेरे कथन का सार यही है कि इसी प्रकार अपने पतिदेव भगवान् शंकर की भक्ति भाव से सेवा करती रहना । ये सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले, दीनों पर परम दयालु और समस्त चराचर के द्वारा सेवित हैं ।१४।

महान्पतिव्रताधर्मः श्रुतिस्मृतिषु नोदितः ।
यथेव वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽस्ति निश्यतम् ।१५।
भुंज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा ।
तिष्ठेत्तस्मिञ्छिवे नारी सर्वथा सति तिष्ठति ।१६।
स्वप्यात्स्वपति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः ।
सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया ।१६।
अनलंकृतमात्मानं दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे ।
कार्यार्थं प्रोषिते तस्मिन्भवेन्मण्डनवर्जिता ।१८।
पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता ।

आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत्प्र सीदेत्ताडितापि च ।
हन्यतामिति च ब्रूयात्स्वामिन्निति कृपां कुरु ।१९।
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गृच्छेत्तादन्तिकम् ।
सत्वरं साञ्जलिः प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति ।२०।
किमर्थंव्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ।
तदादिष्टा चरेत्कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा ।२१।

परम पावन पतिव्रत धर्म का महत्व श्रुति, स्मृतियों में विशद रूप से लिखा हुआ है । ऐसा अच्छा अन्यत्र कहीं भी नहीं है इसे निश्चित समझ लेना ।१५। अपने स्वामी के भोजन कर लेने के पश्चात् पति की भक्ति में परायण नारी को स्वयं भोजन करना चाहिये ।१६। पतिदेव के शयन करने के पीछे शवन करे और स्वामी के उठने के पूर्व शय्या त्याग कर देवे । सदा निश्चय भाव से परम प्रिय बनकर सेवा करे और पति का हित-चिन्तन करती रहे ।१७। सदा अपने पति के समक्ष में समलंकृत होकर ही जाना चाहिये । जब स्वामी विदेश यात्रादि को गये हों तो शृंगार कभी नहीं करे ।१८। पतिव्रता नारी को अपने पति का नाम कभी नहीं लेना चाहिए । स्वामी के बुरे एवं तिरस्कार के वचन सुन कर भी उत्तर में बुरे वचन कभी न कहे । ताड़ना और भर्त्सना पाकर भी स्वामी से कृपा करने की ही याचना करनी चाहिये ।१९। पतिव्रता को स्वामी के बुलाने पर तुरन्त अन्य समस्त कार्यों को छोड़कर पति के समीप जाना चाहिए और प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करे ।२०। हे पतिदेव ! आपने मुझ दासी को किस कार्य के लिए बुलाने की कृपा की है । पति जो भी उस समय आज्ञा देवें उसे प्रसन्नता से पूरा करे ।२१।

चिरन्तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्न व परालये ।
आदाम तत्त्वं यत्किंचित्कस्मैचिन्नार्पयेत्क्वचित् ।२२।
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ।
प्रतीक्षमाणाऽवसरं यथाकालोचितं हितम् ।२३।
न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित् ।

दूरतो वर्जयेत्सा हि समाजोत्सवदर्शनम् ।२४।
तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।
तस्मिन्सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः ।२५।
भुंज्यात्मा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत् ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं पतिव्रता ।२६।
अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि ।
परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुसेषु ।२७।
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
भवेत्सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा ।२८।

पतिव्रता नारी घर के द्वार पर अधिक समय तक न रहे, अन्य प्रतिवासी आदि के घर में न जावे और जो कुछ भी श्रवण कर ले उसे दूसरों से कहे ।२२। बिना कहे ही पूजा की समस्त सामिग्री एकत्रित करने का कार्य सम्पन्न करे और सर्वदा अपने हित करने वाले अवसर को देखती रहना चाहिए ।२३। पति के आदेश के बिना कहीं भी तीर्थ यात्रा आदि के लिए पतिव्रता को कही नहीं जाना चाहिए तथा समाज एवं उत्सव आदि में भी कहीं न जावे ।२४। जिस स्त्री को तीर्थाटन आदि करने की उत्कृष्ट अभिलाषा होती हो उसे अपने स्वामी के चरणोदक को सादर ग्रहण करना चाहिये । पतिव्रता के लिए निस्संदेह उसमें ही समस्त धाम, क्षेत्र और महा तीर्थ निवास किया करते हैं ।२५। अपने स्वामी के भोजन करने के पश्चात् जो कुछ भी मिष्ठान्नादि शेष रहे उसे पतिदेव के द्वारा प्रदत्त महाप्रसाद समझ कर पतिव्रता को सप्रेम भोजन करना चाहिये ।२६। पतिव्रत धर्म की मर्यादानुसार सदा देव, पितरगण और अतिथियों को पहले समर्पित करके स्वयं खाना चाहिये । सेवक वर्ग, गौ और भिक्षक को भी यथासमय आदर पूर्वक देवे ।२७। नारी को घर की समस्त सामग्री का संग्रह करने का कौशल परम आवश्यक है । सदा प्रसन्नचित रहे और व्यय अधिक न करे और इन सब पातिव्रत धर्म के नियमों के पूर्ण पालन में परायण रहना चाहिए ।२८।

कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् ।

अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत् ।२९।
सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ।
आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ।३०।
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च ।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लंघयेत् ।३१।
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुध्यति ।३२।
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ।३३।
हरिद्राकुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम् ।
कूर्पासकञ्च ताम्बूलं मांगल्याभरणादिकम् ।३४।
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् ।
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ।३५।

पतिव्रता नारी को पति की आज्ञा के बिना व्रतोपवास आदि नहीं करना चाहिए । आज्ञा के बिना इसका करना निष्फल हो जाता है और परकोक में नरक गामिनी होना पड़ता है ।२९। सुख के साथ बैठे हुए और स्वेच्छया रमण करने वाले पति को कभी अन्य कार्य के लिए नहीं उठावे ।३०। पतिव्रता नारी का धर्म है कि वह दुरवस्थाग्रस्त, व्याधियुक्त, वृद्धता को प्राप्त और पुंस्त्वहीन सुखी, दुःखी कैसा भी क्यों न हो, अपने पति का तिरस्कारा न करे ।३१। जब मासिक धर्म में नारी रहे तो उसे तीन रात तक अपना मुख नहीं दिखाना चाहिए और शुद्धि-स्नान के पहले अपना शब्द भी नहीं सुनावे ।३२। चतुर्थ दिन शुद्ध स्नान कर सर्व प्रथम पतिव्रता नारी अपने स्वामी का मुख-दर्शन करे, अन्य किसी का नहीं । यदि पति कहीं अन्यत्र हों तो उनका ध्यान करके सूर्य का दर्शन करे ।३३। शुद्ध स्नान कर हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, कज्जल और कूर्पासक (चोली) तथा मंगलमय भूषण और दिव्य वस्त्र धारण करे एवं ताम्बूल आदि का सेवन करे ।३४। उस अवसर पर सुचारुता से अपने केशों का संस्कार कर केशपाश को भली भाँति सम्भाल लेवे । कर, कण्ठ और

कानों में भूषण पहने । अपने स्वामी की आयु की वृद्धि कामना करती हुई पतिव्रता स्वामी से तब दूर न रहे ।३५।

न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रमणया न च ।
न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत्क्वचित् ।३६।
पतिविद्वेषिणीं नारीं न सा संभाषयेत्क्वचित् ।
नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित् ।३७।
नोलुखने न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि ।
न यंत्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत्क्वचित् ।३८।
विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं नाचरेत्क्वचित् ।
यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत् ।३९।
हृष्टा हृष्टे विषण्णा स्याद्विषण्णास्ये प्रिये प्रिया ।
पतिव्रता भवेद्देवी सदा पतिहितैषिणी ।४०।
एकरूपा भवेत्पुण्या संपत्सु च विपत्सु च ।
विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्धैर्य्यधारिणी ।४१।
सर्पिर्लवणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता ।
पतिं नास्तीति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत् ।४२।

धोविन, व्यभिचारिणी, संयासिनी और दुर्भाग्य वाली स्त्री से पतिव्रता को कभी मित्रता तथा अधिक भाषण नहीं करना चाहिए ।३६। जो स्त्री अपने स्वामी से द्वेषभाव रखती हो ऐसी स्त्री से कभी वार्त्तालाप न करे । कभी एकान्त में अकेली न रहे और बिल्कुल नग्न होकर कभी स्नान न करे ।३७। ओखरी, मूसल, बुहारी, पाषाण-यन्त्र और देहली के निकट सती स्त्री को कभी शयन नहीं करना चाहिये ।३८। किसी उचित एवं उपयुक्त समय के न होने पर सती नारी को प्रगलभता नहीं करनी चाहिए । जिन वस्तुओं तथा कार्यों में अपने पति की विशेष रुचि हो उनमें पतिव्रत नारी को भी प्रेम करना चाहिए ।३९। अपना स्वामी विषादयुक्त हो तो स्वयं भी विषण्ण रहे, जो पति प्रसन्न हो तो आप भी प्रसन्नता से रहे । प्रिय के प्रति प्रिय आचरण करे । हे देवी ! इस रीति से पतिव्रता नारी को सबकी हितकारिणी होना चाहिए ।४०।

सम्पत्ति और विपत्ति के दोनों समयों में समान भावना रखते हुए पुण्य रूप से धैर्य धारण करके सर्वदा अपने पति के हित करने वाली बनकर सती नारी को रहना उचित है ।४१। पतिव्रत पालन करने वाली नारी घर में घृत, तेल और लवण आदि अत्यावश्यक वस्तुओं के न रहने पर 'कुछ भी नहीं है' ऐसे वचन पति से कहे और किसी श्रम के कार्य में कभी स्वामी की नियुक्ति नहीं करें ।४२।

विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः ।
पतिव्रताया देवेशि स्वपतिः शिव एव च ।४३।
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लंघ्य याऽऽचरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ।४४।
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा ।
सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ।४५।
उच्चासनं न रेवेत न व्रजेद्दुष्टसन्निधौ ।
न च कातरवाक्यानि वदेन्नारी पतिं क्वचित् ।४६।
अपवादं न च ब्रूयात्कलहं दूरतस्त्यजेत् ।
गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत् ।४७।
बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः ।
ताम्बूलैर्वसनैश्चापि पादसंवाहनादिभिः ।४८।
तथैव चाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः ।
या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ।४९।

हे देवी ! स्त्री के लिए उसका स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी कहीं विशेष बतलाया गया है । अतएव पतिव्रता नारी को अपना स्वामी सर्वदा शिव स्वरूप में ही मानना चाहिए ।४३। जो भी नारी पति के आदेश का उल्लंघन करके व्रत, उपवास आदि धर्म के कृत्य किया करती है या कुछ नियम लिया करती है वह अपने पति की आयु का अपहरण ही किया करती है और मृत्यु के पश्चात् घोर नरक की यातना सहती है ।४४। जो स्त्री क्रोधावेश में आकर अपने स्वामी को चाहे जो उत्तर-प्रत्युत्तर दिया करती है वह दूसरे जन्म में किसी गाँव की कुतिया

या निर्जन वन की गीदड़ हुआ करती है ।४५। स्त्री को अपने पति से किसी भी उच्च स्थान पर नहीं बैठना चाहिए और किसी भी दुष्ट व्यक्ति के समीप में नहीं जावे तथा स्वामी से कभी कोई कातर वचन नहीं कहे ।४६। पतिव्रता नारी का कर्तव्य है कि वह कभी पति की निन्दा न करे, क्लेश के करने वाले कार्य दूर से ही त्याग दे, अपने पूज्य जनों के सामने ऊँची आवाज में जोर से न बोले और उच्च स्वर में कभी न हँसे ।४७। जब भी कभी पति कहीं बाहिर से आवे तो उन्हें देखने के साथ ही तुरन्त सामने होकर पद-प्रक्षालन के पश्चात् भोजन, जल ताम्बूल और वस्त्रादि समर्पित कर पूर्ण सत्कार करना चाहिए ।४८। इस तरह मंजु और मधुर वचन कह कर एव व्यंजन द्वारा पति का पसीना सुखाती हुई जो नारी अपने पति को सुखी तथा प्रसन्न करती है उसने त्रैलोक्य जीत लिया है ।४९।

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूज्येत्सदा ।५०।
भर्ता देवो गुरुभर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ।५१।
या भर्तारम्परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ।
उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ।५२।
ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ।
कटाक्षयति यान्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत् ।५३।
या भर्तारम्परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ।
ग्रामे वा सूकरी भूयाद्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ।५४।
या तुं कृत्य प्रियम्ब्रूयान्मूका सा जायते खलु ।
या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुभगा सा पुनः पुनः ।५५।
दृष्टि विलुप्य भर्त्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ।
काणा च विमुखी चापि कुरूपापि च जायते ।५६।

स्त्री के माता-पिता, भाई और पुत्रादि सब सीमित सुख ही देते हैं, पति ही उसे अपरिमित सुख देता है। अतः उसकी सर्वदा पूजा करे

।५०। हे देवी ! नारी के लिए पति ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ और व्रत सब कुछ है । इसलिए अन्य सबको त्याग कर एक मात्र अपने स्वामी ही की अर्चनोपासना तन, मन से करे ।५१। जो दुष्ट बुद्धि वाली अपने वन्दनीय पति को छोड़कर एकान्त में अन्य पुरुष के समीप जाती है वृक्ष की खोंतर में निवास करने वाली उलूकी होती है ।५२। स्वामी से प्रताड़ित होकर जो स्त्री पति को मारने को दौड़ती है वह दूसरे जन्म में बाघिन और वृषदंशिका का शरीर धारण करती है । स्वामी को कुटिलतापूर्ण नेत्र से देखने वाली केकराक्षी होती है ।५३। स्वामी से बचाकर स्वयं मिष्ठान्न खाती हैं वह ग्राम शूकरी या छागी अपनी विष्टा खाने वाली होती है ।५४। जो अपने पति को "तू" कहती है वह अगले जन्म में गूंगी होती है और जो अपनी सपत्नी से ईर्ष्या रखती है वह बारम्बार भाग्यहीना होती है ।५५। जो अपने स्वामी से आँख चुरा कर किसी पर पुरुष को देखती है वह कानी, बुरे मुख वाली और रूपसौन्दर्य से हीन होती है ।५६।

जीवहीनो यथा देह क्षणादशुचितां व्रजेत् ।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ।५७।
सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता ।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता ।५८।
पितृवंश्याः मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रया ।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुंजते ।५९।
शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ।
पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिता ।६०।
पतिव्रतायश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् ।
तत्र तत्र भवेत्सा हि पापहन्त्री सुपावनी ।६१।
विभुः पतिव्रता स्पर्शं कुरुते भानुमानपि ।
सोमो गन्धर्वहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ।६२।
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
शद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः ।६३।

हे देवी ! जैसे जीवात्मा के निकल जाने पर मानव देह एक क्षण में ही अपवित्र हो जाता है वैसे ही अपने स्वामी के बिना स्नान करने घर भी स्त्री अशुचि ही रहती है ।५७। पतिव्रता स्त्री के माता-पिता और पति भी स्वयं परम धन्य होते है ।५८। पतिव्रता नारी के पुण्य-प्रभाव से माता-पिता और पति के वंश में तीन-तीन पुरुष स्वर्ग के सुख का उपयोग करते हैं ।५९। स्त्री अपने शील का भंग करने पर लोक परलोक दोनों जगह दुःख भोगती और माता-पिता और पति के तीनों कुलों को नरक में ले जाती है ।६०। हे देवी ! पतिव्रत धर्म का अनिर्वचनीय महत्त्व है । पतिव्रता नारी के चरण पृथ्वी पर जहाँ भी पड़ते हैं वहीं वह पापों का हरण कर पवित्र किया करती है ।६१। सर्वत्र व्यापक सूर्य, चंद्र और पवन देव भी अपने आपको पवित्र बनाने के लिए पतिव्रता नारी के शरीर का स्पर्श करने के इच्छुक होते हैं ।६२। सब की शुद्धि करने वाला जल भी सर्वदा पतिव्रता के अङ्ग का स्पर्श करना चाहता है, जिससे वह अपनी जड़ता का नाश करें ।६३।

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफलवाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ।६४।
गृहे गृहे न किं नार्य्यो रूपलावन्यगर्विताः ।
परं विश्वेशभवत्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ।६५।
परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ।
देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ।६६।
गृहस्थः स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता ।
ग्रस्यतेऽन्याप्रतिदिनं राक्षस्या जारया यथा ।६७।
यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत् ।६८।
न गङ्गया तया भेदो या नारा पति देवता ।
उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद्बुधः ।६९।
तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः ।
फलम्पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे ।७०।

जगत् में पतिव्रता पत्नी ही गार्हस्थ्य और सुख का मूल है। धर्म के फल की प्राप्ति और सुसन्तति के लिए भार्या ही साधन स्वरूप होती है।६४। यों तो रूप-लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुत अनेक घरों में बहुत-सी स्त्रियाँ विद्यमान हैं किन्तु भगवान् शंकर की कृपा एवं भक्ति पतिव्रता नारी को ही सुलभ हुआ करती है।६५। जगत् में भार्या ही के द्वारा सच्चासुख एवं महान् विजय प्राप्त होते हैं। पत्नी के अभाव में देव, पितृ-गण, अतिथि आदि का अर्चन एवं सत्कार तथा यज्ञ-कर्म नहीं हो सकते हैं।६६। सही अर्थ में उसी व्यक्ति को गृहस्थाश्रमी मानना चाहिए जिसके घर पतिव्रता पत्नी है। वैसे तो स्त्रियाँ सबकी ही होती हैं जो अहर्निश जरा राक्षसी के तुल्य ग्रास करती रहती हैं।६७। जिस प्रकार पुण्य सलिला देव-नदी गंगा के अवगाहन करने से शरीर पवित्र हो जाता है वैसे ही पतिव्रता नारी के केवल दर्शन मात्र से ही सब पवित्र हो जाया करते हैं।६८। पतिव्रता स्त्री और भागीरथी में कुछ भी अन्तर नहीं है। शिव और भवानी के समान वे दोनों ही स्त्री पुरुष हैं। अतएव मनीषी मानव को उनका निरन्तर अर्चन करना चाहिए।५९। यदि पति ओंकार है तो स्त्री वेदश्रुति है। यदि स्त्री क्षमारूपिणी है तो पुरुष तपोरूप है। यदि पति फल है तो स्त्री सत्क्रिया है। हे पार्वती ! जो ऐसे हैं वे दोनों ही स्त्री पुरुष महाधान्य हैं।७०।

एवम्पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरीन्द्रजे ।
तद्भेदान् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाऽद्य मे ।७१।
चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ।
उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः ।७२।
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका ।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु ।७३।
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ।७४।
या पितृभ्रातृसुतवत परम्पश्यति सद्धिया ।
माध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।७५।

बुद्धा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वती ।७६।
पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न ।
पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः ।७७।

हे गिरिजे ! मैंने अब तक पतिव्रत धर्म का स्वरूप एवं परम महत्व का वर्णन किया, अब पतिब्रता के भेदों का वर्णन करती हूँ । उसे तुम दत्त चित्त होकर प्रेम से सुनो ।७१। पतिव्रतायें भी उत्तम मध्यम आदि के भेद से जगत् में चार तरह की होती हैं जिनका स्मरण मात्र ही पापों का क्षय करने वाला है ।७२। ये चार भेद उत्तम, मध्यम, अधम और अति निकृष्ट होते हैं । इनके स्वरूप, लक्षण तुम सावधानी से सुनो ।७३। जिसका मन स्वप्न में भी अपने पति को ही देखा करता हैं और किसी भी दशा में पर पुरुष की ओर नहीं आता, वह उत्तम पतिव्रता है । ७४ । हे पार्वती ! नारी दूसरी स्त्रियों के पतियों को अवस्थानुसार पिता, भ्राता और पुत्र के तुल्य देखती हैं वह मध्यम श्रेणी की है ।७५। जो नारी हृदय में अपना धर्म समझकर व्यभिचार को बहुत बुरा कार्य मानते हुए उससे पूर्णतया बचती हैं वह अच्छे चरित्र वाली अधम कोटि की पतिव्रता हैं ।७६। जो मनमें इच्छा रखते हुए भी अवसर न पाकर तथा पति और कुल के भय से एवं लोकापवाद के कारण व्यभिचार से बची रहती हैं उसको भी पण्डित समुदाय ने अति निकृष्ट श्रेणी की पतिव्रता माना है ।७७।

चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिवृताः ।
पावनाः सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिताः ।७८।
पतिव्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थदात् ।
जीवितो विप्र एको हि मृतो वःराहशापतः ।७६।
एवं ज्ञात्वा शिवे नित्यं कर्तव्यम्पतिसेवनम् ।
त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा ।८०।
जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात्पतिस्तव ।
तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः ।८१।
त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रयोजनम् ।

तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारतः शिवे ।८२।
इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणम्य ताम् ।
शिवाम्मुदमति प्राप पार्वती शङ्करप्रिया ।८३।

हे गिरिनन्दिनी ! ये चारों तरह की पतिव्रताऐं पापों को नाश करने वाली और दोनों लोकों को पवित्र बनाने वाली कही जाती हैं ।७८। पति व्रत धर्म के प्रबल प्रभाव से ही अत्रि ऋषि की स्त्री ने तीनों देवों की प्रार्थना पर बाराह के शाप से मृत एक ब्राह्मण को जीवित कर दिया ।३९। हे शैलपुत्री ! पतिव्रता धर्म के महत्व को समझकर तुम को पति की प्रेम-भक्ति के भाव से सेवा करनी चाहिए । इससे तुम्हारी समस्त मन कामनाऐं निश्चय पूरी हो जाँयगी ।८०। तुम जगदम्बा महेश्वरी साक्षात् भगवान् शंकर तुम्हारे पति हैं तुम्हारे पवित्र नाम का स्मरण करके ही जगत् में पतिव्रताऐं होंगी और सौभाग्य सुख का उपभोग करेंगी ।८१। हे देवी ! हे कल्याणि ! यद्यपि समस्त जगत् की स्वामिनी आपके सामने ऐसे उपदेशों के कथन की आवश्यकता नहीं है, तो भी लोकाचार से ही मैंने यह सब कुछ तुम से कहा है ।८२। ब्रह्माजी ने कहा-वह ब्राह्मणी इतना कहकर प्रणाम कहती हुई मौन हो गई और शिव-प्रिया पार्वती भी परमानन्द में मग्न हो गई ।८३।

रुद्र संहिता—कुमार खण्ड

॥ कुमार द्वारा तारक वध और देवोत्सव ॥

निर्वाय वीरभद्र तं कुमारः पर वीरहाः ।
समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ।१।
जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महाबलः ।
सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ।२।
तदा जयजयेत्युक्त सर्वैर्देवगणैस्तथा ।
संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ।३।

तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुःसहः ।
जातस्तदा महाघोरः सर्वभूभयकरः ।४।
शक्तिहस्तौ च तो वीरौ युयुधाते परस्परम् ।
सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ।५।
शक्तिनिर्भिन्न देहौ तौ महासाधनसंयुतौ ।
परस्परं वंचयंतौ सिंहाविव महाबलौ ।६।
वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् ।
प्राप तं च समाश्रित्य शक्त्वा शक्ति विजघ्नतु ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—कुमार कार्त्तिकेय वे वीर शत्रु का नाश करने वाले वीरभद्र का निवारण कर भगवान् शिव के चरण-कमल का स्मरण किया और मनमें तारकासुर का वध कर देने की इच्छा की ।१। इसके अनन्तर महाबलवान और परम तेजस्वी कुमार कार्त्तिकेय को बड़ा भारी क्रोधावेश हो गया और बड़ी भारी सेना साथ में लेकर युद्ध करने को चल दिये ।२। उस समय समस्त देवगण अपने गणों सहित जय-जयकार करने लगे और ऋषि-मुनि श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति का गान करने में तत्पर हो गए ।३। उस समय तारकासुर और कुमार कार्त्तिकेय का अत्यन्त ही भयंकर महाघोर युद्ध होने लगा जोकि समस्त प्राणियों को भय उत्पन्न करने वाला था ।४। हे मुने ! संग्राम भूमि में वे दोनों वीर हाथों में शक्ति लेकर परस्पर ऐसा भीषण युद्ध करने लगे कि समस्त देवता लोग परमाश्चर्य से चकित हो गए ।५। उस महान् संग्राम में दोनों ही वीरों का शरीर शक्ति के प्रहारों से छिन्न भिन्न हो गया था किन्तु वे दोनों निरन्तर एक दूसरे पर प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ।६। दोनों बली वीर वैतालिक एवं खेचर मत वाले युद्ध-शास्त्र का आश्रय ग्रहण कर तथा प्राप्य का समाश्रय लेकर परस्पर युद्ध में परायण हो रहे थे ।७।

एभिर्मंत्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ।
अन्योन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ ।८।

महाबलं प्रकुर्वतौ परस्परवधैषिणौ ।
जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ ।६।
मूर्ध्नि कंठे तथा चोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे ।
वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ।१०।
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ ।
बल्गंतौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ।११।
अभवन्प्रेक्षकाः सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः ।
ऊचुः परस्परं तत्र कोऽस्मिन्युद्धे विजेष्यते ।१२।
तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सांत्वयन् ।
असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ।१३।
मा शोच्यतां सुरैः सर्वैः सुखेन स्थीयतामितिः ।
युष्मदर्थं शंकरो हि पुत्ररूपेण संस्थित ।१४।

मन्त्रों के द्वारा दोनों का संग्राम चल रहा था और महाबल पराक्रम वाले दोनों एक दूसरे के बाधक होकर अद्भुत युद्ध कर रहे थे ।८। उस समय परस्पर में दोनों ही एक दूसरे के वध की इच्छा से बड़ा बल एवं पराक्रम दिखा रहे थे और युद्ध में विशारद शक्ति द्वारा पारस्परिक प्रहारों को बौछार करने लगे ।६। दोनों वीर ही एक दूसरे के शिर, कण्ठ, उरु, जानु, कटि, वक्षस्थल और पृष्ठ-भाग में सर्वत्र प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ।१०। दोनों के हृदय में एक दूसरे के वध की प्रबल इच्छा थी और उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कौशल से संग्राम कर रहे थे और महावीर तर्जना पूर्ण ध्वनि द्वारा भर्त्सना भी करते जाते थे ।११। समस्त देव समुदाय और गन्धर्व आदि एकत्रित होकर इस अभूतपूर्ण भीषण संग्राम को देखते हुए आपस में किस की जय होगी, ऐसी चर्चा करते थे ।१२। सभी देवों के सन्देह से निवारणार्थ आकाशवाणी हुई कि कुमार कार्तिकेय द्वारा ही तारक दैत्य का निश्चय वध होगा ।१३। आकाशवाणी में देवगण से कहा गया कि हे देवताओ ! आप चिन्ता मत करो और सुखपूर्वक

रहो, तुम्हारे कल्याण के लिए भगवान् शिव ही यहाँ पुत्र रूप में उपस्थित होकर युद्ध कर रहे हैं ।१४।

श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां स प्रमथै समावृतः
निहंतुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा ।
शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे ।
कुमारः स्म रुषाऽऽविष्टस्तारकासुरमोजसा ।१६।
तं प्रहारमनादृत्य तारको दत्यपुंगव ।
कुमारं चापि संक्रुद्धः स्वशक्त्या संजघान सः ।१७।
तेन शक्तिप्रहारेण शंकरिर्मूर्च्छितोऽभवत् ।
मुहूर्त्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ।१८।
यथा सिंहो मदोन्मत्तो हंतुकामस्तथासुरम् ।
कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ।१९।
एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्ध विशारदौ ।२०।
अभ्यामपरमावास्तातन्योन्यं विजिगीषया ।
पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ।२१।

आकाशवाणी के सुन्दर वचनों को श्रवणकर गणों के सहित कुमार को बहुत प्रसन्नता हुई और सुखपूर्वक तारक के वध का निश्चय किया ।१५। उस समय महाबाहु कुमार ने तारक की छाती में बड़े ही क्रोध और पराक्रम के साथ शक्ति का प्रबल प्रहार किया किन्तु महासुर ने उस प्रहार को तिरस्कृत करते हुए कुमार पर अपनी शक्ति का प्रहार कर दिया ।१६-१७। उस भीषण प्रहार में कुमार मूर्छित हो गए थे। तब महर्षियों ने स्तवन किया और वे क्षण-भर के पश्चात् ही उठकर सम्हल गये ।१८। मदोन्मत्त सिंह के समान बड़ी गर्जना के साथ एकदम टूटकर प्रतापी कुमार कार्त्तिकेय ने तारक पर अपना प्रहार किया । १९ । शक्ति संग्राम में परम कुशल कुमार और तारक दोनों का महाघोर संग्राम चला। युद्ध के अभ्यास में चतुर दोनों ही पारस्परिक जय की इच्छा से पैदल युद्ध में विचित्र वेगयुक्त थे ।२०-२१।

विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनिजघ्नतुः ।
नानामार्गान्प्रकुर्वन्तो गर्जन्तौ सुपराक्रमौ ।२२।
शवलोकपराः सर्वे देवगंधर्वकिन्नराः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन तत्र ते ।२३।
न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
चचाल वसुधा सर्वा सशैलवमकानना ।२४।
एतस्मिन्नंतरे तत्र हिमालयमुखा धराः ।
स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः ।२५।
ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः ।
पर्वतान्गिरिजापुत्रो बभाषे परिबोधयन् ।२६।
मा खिद्यतां महाभागा मा चिंता कुर्वतां नगाः ।
घातयाम्यद्य पापिष्टं सर्वेषां वः प्रपश्यताम् ।२७।
एवं समाश्वास्त तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान् ।
प्रणम्य गिरिजां शंभुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम् ।२८।

अनेक प्रकार के बल का प्रयोग करते हुए दोनों वीर आपस में प्रहारों की बौछार कर रहे थे और विविध मार्गों से चलते हुए पराक्रम-पूर्वक गर्जने लगे ।२२। देव गन्धर्वादि सब उस युद्ध को देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुए और कुछ भी न कह सके ।२३। उस समय संग्राम की भीषणता के कारण वायु का चलना बन्द हो गया, भास्कर कान्तिहीन हो गये और समस्त वन–कानन के सहित पर्वत एवं पृथिवी चलायमान हो गई ।२४। उस समय गिरिराज हिमवान् अन्य शैल समुदाय के साथ स्नेह से आकुल होकर कुमार के समीप गये ।२५। शिव पुत्र कुमार ने इन सबको देखकर समझाते हुई कहा—हे महाभागो ! आप लोग मनमें कुछ भी खेद तथा चिन्ता मत करिये । मैं अभी कुछ क्षण में इस महापापी दैत्य का वध कर दूँगा ।२६-२७। तब कुमार ने शैलराज, देवगण, जगम्बा और भगवान् शंकर को प्रणाम करके एक परम प्रभावशाली शक्ति का ग्रहण किया ।२८।

तं तारकं हतुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः ।

विरराज महावीरः कुमारः शंभुबालकः ।२६।
शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम् ।
तेजसाऽऽढ्यः शंकरस्य लोकक्लेशकरं च तम् ।३०।
पपात सद्यः सहसा विशीर्णांगोऽसुरः क्षितौ ।
तारकाख्यो महावीरः सर्वासुभगणाधिपः ।३१।
कुमारेश हतः सोतिवीरः स खलुः तारकः ।
लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ।३२।
तथा तं पतितं दृष्ट्वा तावकं बलवत्तरम् ।
न जघान पुनर्वीरः स गत्वा ब्यसुमाहवे ।३३।
हते तस्मिन्महादैत्ये तारकाख्ये महाबले ।
क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ।३४।
केचिदभीताः प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे ।
छिन्नभिन्नांगकाः केचिन्मृता दत्याः सहस्रशः ।३५।

शिव पुत्र महाबली महाप्रभु ने तारक के बध की इच्छा से शक्ति को हाथ में उठाया और एक अनभुत शोभा हुई ।२६। फिर कुमार ने लोक को क्लेश देने वाले तारक पर बहुत ही तेजी से भरा हुआ प्रहार किया ।३०। उस प्रहार से तारक जो महा बलवान और असुरों का अधिपति था, सर्वाङ्ग विशीर्ण होकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर गया और मृत्यु शैया की गोद में सो गया ।३१। हे मुने ! वीर कार्तिकेय ने इस प्रकार तारकासुर को मारकर गिरा दिया तो वह सबके देखते ही नाशवान हो गया ।३२। जब कुमार ने समझ लिया कि तारक वह मर गया है तो फिर उस पर कुमार ने वीर नियम के कारण कोई भी प्रहार नहीं किया ।३३। महाबली तारक जो कि दैत्य-वर्ग का नायक था, मर गया तो फिर देवगण ने अनेक असुरों का संहार यों ही बात की बात में कर डाला ।३४। असुरों में बहुत से भयभीत होकर युद्ध स्थल में दीनता प्रदर्शित करने लगे, कुछ छिन्न-भिन्न अङ्ग वाले होकर भाग गये और सहस्रों काल कवलित हो गये ।३५।

केचिज्ज्ञाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः ।

वन्दतः पाहि पाहीति: दैत्याः सांजलयस्तदा ।३६।
कियंतश्च हतास्तत्र कियंतश्च पलायिताः ।
पलावमाना व्यथितांडिता निर्ज्जरैर्गणैः ।३७।
सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः ।
पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागतः ।३८।
एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर ।
न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा ।३९।
आसीन्निष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
ते देवाः सुखमापन्नाः सर्वे शक्रादयस्तदा ।४०।
एवं विजयमापन्नं कुमारं निखिलाः सुराः ।
बभूवुर्गगद्धष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः ।४१।

कुछ अत्यन्य घबड़ाकर करबद्ध होते हुए कुमार की शरण में जाकर 'रक्षा करो'—ऐसी प्रार्थना करने लगे ।३६। उस संग्राम में कुछ मारे गये, बहुत से भाग खड़े हुए और कुछ पलायन परायण होते हुए भी देवों द्वारा प्रताड़ित एवं व्यथित किये गये ।३७। युद्ध भूमि से भागने वाले असुरों की परिपूर्ण आशाऐं निष्फल हो गईं और वे अपने प्राणों के त्राण के लिए भागकर पाताल लोक में चले गये ।३८। हे मुनिसत्तम ! उस समय इस प्रकार से दैत्य सेनाऐं नष्ट-भ्रष्ट हो गई कि वहाँ भीति विवश होकर कोई भी सामने नहीं ठहर सका ।३९। दुरात्मा तारकासुर के मर जाने पर सब निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि समस्त देवता परम प्रसन्न हो गये ।४०। उस समय देवताओं ने उस आशातीत बिजय को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त की और फिर त्रिभुवन में महान् आनन्दोल्लास छा गया ।४१।

तदा शिवोऽपितं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च ।
तत्राजगाम स मुदा सगणः प्रियया सहः ।४२।
स्वात्मजं स्वांकमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् ।
लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला ।४३।
हिमालयस्तदागत्यः स्वपुत्रैः परिवारितः ।

सबंधुः सानुगः शंभु तुष्टाव च शिवां गुहम् ।४४।
ततो देवगणाः सर्वे मुनयः सिद्धचारणाः ।
तुष्टवुः शार्करिं शंभु गिरिजां तुषिता भृशम् ।४५।
पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा ।
जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।४६।
वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः ।
जयशब्दो नमःशब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः ।४७।
ततो मयाऽच्युतश्चापि संतुष्टोऽभद्विशेषत. ।
शिवं शिवां कुमारं च संतुष्टाव समादरात् ।४८।
कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखाः सुराः ।
चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ।४९।

जब भगवान् महेश्वर ने विजय का सम्वाद सुना तो स्वयं समस्त गण और प्रिया भवानी के साथ कुमार के समीप गये ।४२। भास्कर के तुल्य दिव्य कान्ति से कमनीय कुमार कीर्त्तिकेय को पार्वती माँ ने अपनी गोद में बिठा लिया और स्नेह से गद्गद् होकर लाड़ करने लगी ।४३। उसी अवसर पर हिमवान् भी अपने समस्त परिवार के साथ वहाँ आ गये और पूज्य शंकर और अपनी पुत्री पार्वती और कुमार की प्रशंसा करके उन्हें हर्षित करने लगे ।४४। समस्त देवगण, मुनि, ऋषि, विद्या-धर गन्धर्व और सिद्ध, चारण आदि ने भी प्रसन्न चित्त होकर शिव, शिवा और शिव कुमार की स्तुति की ।४५। उपदेव अन्तरिक्ष से पुष्प वृष्टि करने लगे, गन्धर्वगण गुणगान कर रहे थे और अप्सराऐं नृत्य करने में तत्पर हो रही थीं ।४६। चारों ओर विशेष वाद्यों का वादन होने लगा 'जय-जयकार' और 'नमो नमः' की तुमुल ध्वनि से आकाश गूंज उठा ।४७। उस समय हे मुने ! मैं और भगवान् अच्युत भी वहां पर गये और शिव-भवानी और कार्त्तिकेय कुमार की हम दोनों ने बहुत प्रशंसा की ।४८। इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, और महेन्द्र आदि समस्त देवों ने मुनिगण के साथ कुमार को आगे बिठाकर उनकी आरती की। ।४९।

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
तदोत्सवो महानासीत्कीर्तन च विशेषतः ।५०।
गीतवाद्यैः सुप्रसन्नैस्तथा साजलिभिर्मुने ।
स्तूयमानो जगन्नाथः सर्वैर्देवगणैरभूत् ।५१।
ततः स भगवान्रुद्रो भवान्या जगदंबया ।
सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वगिरिं स्वगणैर्वृतः ।५३।

वेदध्वनि,गायन वादन और यज्ञ कीर्तन आदि से द्वारा वह विजय का एक महान उत्सव मनाया गया ।५०। हे मुनिश्वर ! उस समय गान-वादन के साथ बद्धाञ्चलि देवों के द्वारा सस्तुत भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए । इसके पश्चात् उस समय देवों से स्तुत होकर भगवान् रुद्र, भवानी और अपने गणों के साथ कैलास पर चले गये ।५१-५२।

बाण और प्रलम्ब का वध

एतस्मिन्नंतरे तत्र क्रौञ्चनामाचलो मुने ।
आजगाम कुमारस्य शरणं बाडपीडितः ।१।
पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम् ।
तुतोदातीव स क्रौञ्चं कोट्यातुब्रलान्वितः ।२।
प्रणिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम् ।
प्रेमनिर्मरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात् ।३।
कुमार स्कन्द देवेश तारकासुरनाशक ;
पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडतम् ।४।
संगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पत्तायितः ।
न्यपीडयच्च माऽऽगत्य हा नाथ करुणाकर ।५।
तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः ।
पयायमानो देवेश शरजन्मन्दयां कुरु ।६।
दैत्यं तं नाशय विभो बाणह्वं मां सुखीकुरु ।
दैत्यध्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरः स्वराट् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उसी समय पर बाणासुर से उत्पीड़ित

होकर क्रौञ्च नाम वाला पर्वत कुमार की शरण में उपस्थित हुआ ।१। बाणासुर कुमार का असह्य तेज न सहकर पहिले संग्राम छोड़कर भाग गया था । उस दैत्य में दश सहस्र कोटि का महान् बल था और वह क्रौच को पीड़ा पहुँचा रहा था ।२। तब कुमार के दोनों चरणों में पड़कर बहुत ही आदर के साथ प्रेम से भरी हुई वाणी से क्रौञ्च ने प्रार्थना की ।३। क्रौञ्च ने कहा—हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारक के नाशक ! मैं बाणासुर से इस समय बहुत ही पीड़ित हो रहा हूँ । आपकी शरण में आया हूँ । आप मुझ दयनीय हीन की रक्षा करो ।४। हे महासेन ! हे नाथ ! वह आपके समक्ष घबड़ा कर युद्ध भूमि से भाग गया हैं और वहाँ जाकर मुझे सता रहा है ।५। मैं उसी दुष्ट दैत्य बाण से उत्पीड़ित होकर आपके चरणों की शरण में आया हूँ । हे देवेश ! उस भगोड़े से मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये ।६। हे विभो ! आप तो दुष्ट दैत्यों का संहार करने वाले हैं और अपने ही अतुल तेज से प्रकाशित होकर देवों की सर्वदा रक्षा करने वाले हैं । अब उस दुरात्मा का वध कर मुझे सुख प्रदान करने की कृपा कीजिये ।७।

इति क्रौञ्चस्तुतः स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः ।
गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवं धिया ।८।
चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शंकरात्मजः ।
महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ।९।
सबलं भस्मसात्कृत्वाऽसुरं तं क्षणमात्रतः ।
गुहोपकठं शक्तिः सा जगाम परमा मुने ।१०।
ततः कुमारः प्रोवाचक्रौञ्चं गिरिवरं प्रभुः ।
निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः ।११।
तदुच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदितो गिरिराट् तदा ।
स्तुत्वा गुहं तदाराति स्वधाम प्रत्यपद्यत ।१२।
ततः स्कन्दो महेशस्य मुदास्थापितवान्मुने ।
त्रीणि लिंगानि तत्रैव पापाघ्नानि विधानतः ।१३।
प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात् ।

कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ।१४।

ब्रह्माजी ने कहा— इस तरह दीनतापूर्ण क्रौञ्च की स्तुति को सुन कर भक्त वत्सल कुमार बहुत प्रसन्न हो गये तथा शिव का स्मरण कर उन्होंने अपने हाथों में शक्ति धारण करली ।८। बाण को लक्ष्य बनाकर उसे मारने के उद्देश्य से उस शक्ति को छोड़ दिया । कुमार के उस शक्ति के प्रयोग से उस समय एक महान् ध्वनि हुई और सब दिशाएँ तेज से प्रज्ज्वलित हो उठी ।९। क्षणमात्र में कुमार की वह शक्ति बाणासुर को उसके अनुगामियों के साथ भस्मीभूत करके तुरन्त कुमार के पास वापिस आगई ।१०। इसके अनन्तर कुमार ने क्रौञ्च से कहा—अब तुम भय रहित होकर अपने स्थान को चले जाओ । तुमको सताने वाला बाण मारा गया है और उसके अनुगामी भी सब विध्वस्त हो गये है । ११ । स्वामी कार्त्तिकेय के ऐसे सन्तोषप्रद वचन सुनकर क्रौञ्च को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और फिर उसने कुमार का स्तवन किया तथा वह अपने निवास स्थान को चला गया ।१२। इसके पश्चात् परम प्रसन्न होकर कुमार ने समस्त पापों के समूह का क्षय करने वाले शिव के तीन लिंगों की स्थापना की ।१३। इन तीनों के नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए । वे तीनों ही समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ।१४।

पुनः सवश्वरस्तत्र जयस्तंभसमीपतः ।
स्तम्भेश्वराभिधं लिंगं गुहं स्थापितवान्मुदा ।१५।
ततः सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा ।
लिंगं स्थिापितवंतस्ते देवदेवस्य शूलिनः ।१६।
सर्वेषां शिवलिगानां महिमाऽभूत्तदाऽद्भुतः ।
सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् ।१७।
ततः सर्वेसुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः ।
ऐच्छन्गिरिवरं गंतु पुरस्कृत्य गुरुं मुदा ।१८।
तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः ।
आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः ।१९।
प्रलंबाख्योऽसुरो यो हि रथादस्मात्पलायितः ।

स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः ।२०।
सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान् ।
कुमारशरणं प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् । १।

अपने जय-स्तम्भ के समीप में सर्वेश्वर लिंग की स्थापित किया और उसके समीप में ही एक अन्य लिंग संस्थापित किया जिसका नाम स्तम्भेश्वर है ।१५। इसके पश्चात् विष्णु आदि समस्त देवों ने देवाधिदेव शङ्कर का लिङ्ग वहाँ स्थापित किया ।१६। उस जगह पर इन सभी सुसंस्थापित शङ्कर के लिंगों की अद्भुत महिमा हुई । ये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा भक्ति-भाव रखने वालों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।१७। उस समय विष्णु आदि सब देवताओं ने सप्रेम पुत्र को आगे करके कैलाश गमन करने की इच्छा की ।१८। उसी समय वहाँ शेषजी का पुत्र कुमुद नाम वाला वहाँ आया और दैत्य से पीड़ित होकर कुमार की शरण ग्रहण की ।१९। प्रलम्बासुर नामक दुष्ट दैत्य कुमार के सामने से युद्ध में भागकर वहाँ पहुँच गया था और तारक के अनुगामी उसने पाताल में उपद्रब मचाना आरम्भ कर दिया था ।२०। महान् मतिमान शेष के आत्मज कुमुद ने गिरिजानन्दन की शरण में आकर स्तुति करना आरम्भ कर दिया ।२१।

देवदेव महादेववरतात महाप्रभो ।
पीडितोऽहं प्रलबेन त्वाऽह शरणागतः ।२२।
पाहि मां शरणापन्नं प्रलबलासुरपीडितम् ।
कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो ।२३।
त्वं दीनबन्धुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः ।
खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ।२४।
कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि ।
स्वाञ्च शक्तिं स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांबुजौ ।२५।
चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलंबं चिरिजासुतः ।
महाशब्दो वभवाय जज्वलुश्च दिशो नभः ।२६।
तं संयुतबलं शक्तिद्रुतं कृत्वा च भस्मसात् ।

गुहोपकंठ सहसा जगामाक्लिष्टकारिणी ।२७।
ततः कुमार प्रोवाच कुमुदं नागबालकम् ।
निर्भयः स्वगृह गच्छ नष्टः सबलोऽसुरः ।२८।

कुमुद ने प्रार्थना की—हे देवाधिदेव महादेव के आत्मज ! हे महा प्रभो ! मैं इस समय दुष्ट प्रलम्ब की पीड़ा से बताया हुआ आपके चरणों की शरण में प्राप्त हुआ हूं ।२२। हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे तारक संहारक ! कृपा कर प्रलम्ब दैत्य से पीड़ित मुझ दीन की रक्षा कीजिये ।२३। आप दीनों के बन्धु, दया के समुद्र, दुष्टों के निग्रह करने वाले, भक्तों के वत्सल, शरणागत के प्रतिपालक और सत् पुरुषों के उद्धारक है ।२४। जब कुमुद ने ऐसी दीनता के साथ दैत्य का वध करने की प्रार्थना की तो महाप्रभु ने अपने पिता भगवान् शङ्कर के चरणों का स्मरण किया और तुरन्त अपनी शक्ति उठा ली ।२५। तब गिरिजानन्दन ने प्रलम्ब बल के उद्देश्य से शक्ति को छोड़ दिया । छूटते ही महान् घोर ध्वनि के साथ ही आकाश और दशों दिशाऐं प्रज्ज्वलित हो गये ।२६। दश हजार के बल वाले उस दैत्य को अनुचरों सहित वह शक्ति भस्म करके कुमार के पास आगई ऐसा उस शक्ति का अद्भुत कर्म सम्पन्न हुआ ।२७। उस समय कुमार ने कुमुद को आज्ञा दी कि तुमको सताने वाला दुष्ट दैत्य सपरिवार ध्वस्त हो गया है । अब तुम निडर होकर अपने घर लौट जाओ ।२८।

तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुरोऽहिपतेः सुतः ।
स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ ।२९।
एवं कुमारविजयं वर्णितं मे मुनीश्वर ।
चरित तारकवधं परमाश्चर्मकारकम् ।३०।
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ।३१।
ये कीर्तयति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः ।
कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयांति ते ।३२।
श्रोष्यंति ये च तत्कीर्ति भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः ।
मुक्ति प्राप्स्यंति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ।३३।

कुमुद ने ऐसे कुमार के परमानन्दं प्रदान करने वाले वचन सुनकर उनकी वहुत कुछ स्तुति की और सादर प्रणाम कर अपने निवास स्थान को चला गया ।२९। हे मुनिवर ! इस तरह मैंने आपको कुमार कार्त्तिकेय के इस परम अद्भुत युद्धों में विजय प्राप्त करने का सम्वाद सुनाया है । इसमें तारकासुर के वध का चरित्र तो अत्यन्त ही विस्मय उत्पन्न करने वाला है ।३०। यह तारका वध की कथा पापों का क्षय करने वाला है और संसार में मनुष्यो को समस्त कामनायें पूरी कर यश आयु के साथ मुक्ति एवं मुक्ति के भी प्रदान करने वाली है ।३१। जगत में मनुष्यों को इस चरित्र के कथन एवं श्रवण करने पर परम सुख-सौभाग्य का लाभ होगा और कुमार के इस अति उत्तम चरित्र के कीर्तन तथा सुनने से अन्त में शिव के लोक की प्राप्ति निश्चय ही होगी ।३२। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति की भावना से इस दिव्य कुमार की कीर्ति का श्रवण करेंगे उन्हें यहां सर्व सुखी के उपयोग और अन्त में दिव्य मोक्ष का लाभ होगा ।३३।

गणेश की प्रथम पूज्यपद दिया जाना और विवाह

साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना ।
श्रूयतां दत्तकर्णं हि वक्ष्येऽहमृषिसत्तम् ।१।
शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम् ।
दर्शं दर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत् ।२।
पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत ।
सदा प्रीत्या मुदा चातिलेलनं चक्रतुः सुतौ ।३।
तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर ।
महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्यां प्रचक्रतुः ।४।
षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा ।
स्नेहो व्यवर्द्धत महांशुक्लपक्षे यथा शशी ।५।
कदाचितौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ ।
शिवा शिवश्च देवर्षे सुविचारपरायणौ ।६।

विवाहयोग्यौ संजातौ सुताविति च तावुभौ ।
विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम् ।७।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम कारुणिक ऋषि श्रेष्ठ ! आज तुमने वहुत ही सुन्दर प्रश्न मुझसे पूछा है । आप सावधान होकर श्रवण करो मैं उसका उत्तर तुम्हें भली भाँति देता हूँ ।१। हे विपेन्द्र देव ! परम तपस्वी महेश्वर और जगज्जननी पार्वती अपने उन दोनों पुत्रों की अद्भुत बाल लीलाओं को देखते हुए परम प्रसन्नता प्राप्त करने लगे ।२। उन दोनों का माता-पिता के लालन से सुख दिन दूना समृद्ध हो रहा था और वे सर्वदा प्रेम के साथ बाल-क्रीड़ा का क्षानन्द लाभ करने लगे ।३। हे मुनिराज ! शिव के दोनों पुत्र परम पितृ-भक्ति से युक्त होकर अपने माता-पिता की सेवा सुश्रूषा करने में संलग्न हो ग्रये ।४। इस तरह शिव और शिवा का षण्मुख और लम्बोदर में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के तुल्य आये दिन प्रीति का भाव बढ़ने लगा ।५। हे देवर्षि ! एक दिन प्रेम के साथ एकान्त में स्थित शिव और गौरी परस्पर में विचार कर रहे थे । ।६। वे कहने लगे कि अब हमारे ये दोनों ही पुत्र विवाह संस्कार के योग्य हो गये हैं सो इनका विवाह किसी रीति से करना चाहिये ।७।

षण्मुखश्च प्रियतमो गणेश्च तथैव च ।
इति चिंतासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभुवतुः ।८।
स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ ।
तदिच्छया विवाहार्थं बभूबतुरथो मुने ।९।
अह च परिणेष्यामि ह्यहं चव पुनः पुनः ।
परस्परं च नित्य व विवादे तत्परावुभौ ।१०।
श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दंपती जगतां प्रभु ।
लौकिकाचारमाश्रित्यं विस्मय परमं गतो ।११।
कि कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः ।
इति निश्चित्य ताभ्यां वै युक्तिश्च रचितादभुता ।१२।
कदाचित्सगये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ ।

कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा ।१३।
अस्माकं नियम पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम् ।
श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ।१४

हमारे तो ये दोनों ही अतिशय प्रीति के पात्र परम प्रिय हैं। इस प्रकार कुमार और गणेश के विषय में विचार करते हुए आनन्दित हो रहे थे ।८। हे मुनिवर ! जब अपने माता-पिता की यह इच्छा जानते हुए दोनों कुमारों के मन में भी एक ही साथ अपने-अपने विवाह के सम्पादन की इच्छा उत्पन्न हो गई ।९। तब दोनों अपने माता-पिता के समक्ष में बैठकर प्रार्थना करने लगे कि मैं अपना विवाह पहिले करूँगा और इस प्रकार से उस समय विवाद बढ़ने का आरम्भ हो गया ।१०। जगत् के माता-पिता महेश्वर-भवानी अपने दोनों बेटों के विवादपूर्ण वचन सुनकर लोकाचार के आश्रय से परम विस्मित होकर सोचने लगे ।११। किस तरह से इन दोनों का विवाह एक साथ सम्पन्न होने के विषय में क्या उपाय किया जावे—ऐसा विचार करते हुए उस समय उन्होंने एक युक्ति खोज निकाली ।१२। इसके अनन्तर एक दिन भवानी और महेश ने अपने दोनों पुत्रों को अपने पास बुलाकर कहा ।१३। हमने तुम दोनों को सुख हो—इसके लिये एक नियम बना दिया है। उसे तुम दोनों प्रेम के साथ श्रवण करो। हम उसे ठीक ठीक बतलाते हैं।१४।

समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्रलभ्यते ।
तस्मात्पणः कृतः शंदः पुत्रयोरुभयोरपि ।१५।
यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रांत्वा पूर्वमुपाव्रजेत् ।
तस्यैव प्रथमं कार्यो विवाहः शुभलक्षणः ।१६।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः ।
जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै ।१७।
गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः ।
सुबुद्ध्या सविचार्येति चित्त एवं पुनः पुनः ।१८।
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं लंघितुं नैव शक्यते ।
क्रोशमात्रं गतः स्याद्वै गम्यते न मया पुनः ।१९।

किं पुनः पृथिवीमेतां क्रांत्वा चोपार्जितं सुखम् ।
विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार शृणुष्व तत् ।२०।
स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं मृमम् ।
उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः ।२१।

तुम दोनों हमारे परम प्रिय आत्मज होने के कारण समान भाव से ही प्यार के पात्र होते हो । इसमें कुछ भी कोई विशेषता नहीं हैं । हमने अब तुम दोनों ही के लिये एक प्रतिज्ञा की है और वह यह है ।१५। तुम दोनों में इस समस्त भूमि मण्डल की पूर्ण परिक्रमा देकर जो भी यहाँ पहिले आ जायगा उस ही का शुभ विवाह पहिले किया जावेगा ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता के ऐसे प्रतिज्ञायुक्त वचनों को सुनते ही महा बलवान् कुमार कार्त्तिकेय तुरन्त ही पृथ्वी की प्रदक्षिणा पूरी करने के लिये घर से चल दिये ।१७। परम बुद्धिमान् गणेश वहीं स्थित होकर बार-बार अपने मनमें बुद्धि से विचार करने में मग्न हो गए ।१८। अब क्या उपाय करना चाहिए ? मैं किसी भी तरह परिक्रमा नहीं कर सकता और मुझमें तो एक कोश तक भी चलने की शक्ति नहीं है । कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? ।१९। इस समस्त भूमण्डल की परिक्रमा को पूरा कर देना तो बहुत ही कठिन कार्य हैं—ऐसा विचार करते हुए मतिमान् गणेश जी ने जो कुछ अद्भुत उपाय किया मैं उसे तुमको सुनाता हूँ सो श्रवण करो ।२०। गणेश्वर ने भली-भांति स्नानादि से शुद्ध होकर अपने माता-पिता से विनयान्वित होकर प्रार्थना की ।२१।

आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह ।
भवंतौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ।२२।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ ।
अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ।२३।
तेनाथ पूजितौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः ।
एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः ।२४।
बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः ।
स्तुत्वा वहुतिथस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ ।२५।

भो मातर्भो पितस्त्वं च श्रृणु मे परमं वचः ।
शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहः शोभनो मम ।२६।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः ।
महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ।२७।
प्रकामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् ।
कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ।२८।

मैं पहिले आप दोनों को सिंहासन पर विराजमान कर आपकी अर्चना करना चाहता हूं सो आप मेरे समीप विराज कर मेरा यह मनोरथ पूर्ण करने की कृपा करें ।२२। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसी गणेश की पवित्र प्रार्थना सुनकर पार्वती और परमेश्वर दोनों उनकी अर्चा स्वीकार करने के लिये सिंहासन पर बैठ गये ।२३। गणपति ने भक्ति के साथ उन दोनों का अर्चन कर प्रणामपूर्वक सात बार परिक्रमा की ।२४। बुद्धि के सागर गणेशजी ने प्रेम विभोर होकर हाथ जोड़ते हुए माता-पिता को बहुत स्तुति की ।२५। उसी समय गणेशजी ने कहा—हे माता ! हे पितृदेव ! आप दोनों अब मेरी प्रार्थना सुनकर शीघ्र ही मेरा विवाह करने की कृपा करें ।२६। यह प्रार्थना सुनकर दोनों शिव और पार्वती गणेश से कहने लगे ।२७। जिस तरह कुमार कार्त्तिकेय पृथ्वी परिक्रमा के लिए चले गए हैं वैसे ही तुम भी पर्वत कानन के सहित भू मण्डल की प्रदक्षिणा करके शीघ्रता से आ जाओ ।२८।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् ।
उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ।२९।
भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ ।
धर्मतः श्रूयतां सम्यग्वचनं मम सत्तमौ ।३०।
मया तु पृथिवी क्रांता सप्तवारं पुनः पुनः ।
एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह ।३१।
तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ ।
महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्चतम् ।३२।
कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा ।

सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैर्युता ।३३।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशङ्करयोर्मुने ।
महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ।३४।
भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशंकरयोरहम् ।
स्वबद्ध या हि सकुद्रान्तपृथ्वी ;तपरिक्रमः ।३५।

ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता के ये वचन सुनकर गणेश क्रोध-पूर्वक कहने लगे ।२६। हे माता ! हे पिता ! आप दोनों ही धर्म स्वरूपी और महामनीषी हैं । मैं इस समय जो धर्म से युक्त प्रार्थना करता हूँ उसे आप श्रवण करने की कृपा करें ।६०। गणेशजी ने कहा—मैंने तो एक बार नहीं सात बार इस पृथ्वी के समस्त मण्डल की पूरी परिक्रमा करली है फिर आप मुझे क्यों पृथ्वी की परिक्रमा करने की आज्ञा दे रहे हैं ?।३१। ब्रह्माजी ने कहा—गणेश के ये वचन सुनकर लौकिक गति-विधि का आश्रय ग्रहण करते हुए महा लीलाधारी दोनों ने कहा ।३२। हे पुत्र ! तुमने भूमण्डल की परिक्रमा किस समय पूरी कर डाली है ? प्रदक्षिणा न करके भी ऐसी बात क्यों कहते हो ? यह भूमि तो सात द्वीपों से सागरान्त पर्यन्त बड़े-बड़े विशाल पर्वतों से युक्त है ।३३। ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता शिव पार्वती के ये वचन सुनकर महा मतिमान् गणेश जी ने उत्तर दिता ।३४। गणेशजी ने कहा—मैंने आप दोनों माता-पिताओं का पूजन कर सात बार परिक्रमा कर ली है। मैंने तो अपनी बुद्धि से समस्त भूमण्डल की भली भाँति पहले ही प्रदक्षिणा समाप्त करली है ।३५।

इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये ।
वर्त्तते किं च तत्तथ्य न हि किं तथ्यमेव वा ।३६
पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः ।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फल भवति निश्चितम् ।३७
अपहाय गृहे वो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् ।
तस्य पाप तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ।३८
पुत्रस्त्र च महात्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम् ।
अन्यतीर्थं तु दुरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ।३९

इदं संनिहितं तार्थं सुलभं धर्मसाधनम् ।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ।४०
इतिशास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरन्तरम् ।
भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ।४१
भवदीयं त्विद रूपमसत्यं च भवेदिह ।
तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः ।४२

यह बात तो वेदों और धर्म शास्त्रों में लिखी हुई है । यह शास्त्र के वचन सत्य हैं या असत्य हैं इसका निर्णय करके आप ही बताने की कृपा करें ।३६। शास्त्र कहता है कि जो अपने माता-पिता का अर्चन करके उनकी परिक्रमा कर लेता है उसे इस भूमण्डल की परिक्रमा पूर्ण करने के फल की सुनिश्चित प्राप्ति हो जाती है ।३७। जो कोई अपने माता-पिता को घर में यों ही छोड़कर तीर्थाटन करने को जाया करता है उस बुद्धिहीन को उनके मार देने का महा-पाप लगता है । अतएव उनकी आज्ञा प्राप्त करके ही कहीं जाना चाहिए ।३८। पुत्र के लिये माता-पिता की सेवा में संलग्न रहना ही सबसे बड़ा तीर्थ होता है । माता-पिता के चरणों की सेवा तो घर में ही रहकर सम्पन्न होती है और अन्य तीर्थों के लिए तो दूर जाना पड़ता है ।३९। यह परम पुन्यमय तीर्थ सर्वदा समीप में स्थित और परम सुलभ तथा समस्त धर्मों का साधन स्वरूप है । पुत्र की स्त्री के लिए भी घर में इसी को परम शोभन तीर्थ बतलाया गया है ।४०। वेद और समस्त धर्मशास्त्र इसी बात को निरन्तर बतलाते हैं, आपको भी इसे मानना चाहिए नहीं तो ये सब शास्त्र झूठे हो जायेंगे ।४१। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपका यह सत्य स्वरूप भी असत्य हो जायगा और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि इसी भाँति ये वेद भी असत्य हो जायेंगे ।४२।

शीघ्रं चः भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः ।
अथवा वेदशास्त्रञ्च व्यलीकं कथ्यतामिति ।४३
द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत् ।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ।४४

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः स गणेशः प्रकृष्टधीः ।
विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ।४५।
तौ दंपती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ ।४६।
ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम् ।
संप्रशस्योचतुः प्रीतया तौ यथार्थप्रभाषिणम् ।४७।
पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्न महात्मनः ।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव ततश्चैव च नान्यथा ।४८।
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते ।
तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे तथा तमः ।४९।

अब आपको मेरा शुभ विवाह यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए या फिर आप इस वेद-शास्त्र की माननीय मर्यादा को व्यर्थ बन दीजियेगा ।४३। आप धर्म के स्वरूप वाले माता-पिता हैं अतः इन दोनों बातों के मध्य में जो भी श्रेष्ठ समझें उसे ही यत्न के साथ करने की कृपा करें ।४। ब्रह्माजी ने कहा—महाज्ञानी और महायतियों में परम श्रेष्ठ पार्वती के पुत्र गणेशजी ने प्रसन्नता के साथ इतना कहकर मौन का अवलम्बन ले लिया ।४५। उस समय गणेश के इन वचनों को सुनकर समस्त विश्व की माता पार्वती और जगत पिता परमेश्वर परम आश्चर्यान्वित हुए ।४६। उस समय भवानी महेश्वर ने अपने आत्मज गणेश की इस तरह विलक्षण बुद्धि से पूर्ण बातें सुनकर उसकी अत्यधिक बड़ाई की और प्रेम के साथ कहा, हे पुत्र ! तुम सर्वथा यथार्थ कह रहे हो ।४७। शिव और रुद्राणी दोनों ने कहा—हे पुत्र ! निश्चय ही तुम्हारी लोकोत्तर निर्मल बुद्धि महात्माओं जैसी है। तुमने जो कुछ भी इस समय कहा है वह बिल्कुल यथार्थ है । इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।४८। भुवन भास्कर के उदय हो जाने पर अन्धकार की भाँति सङ्कट का समय आ पड़ने पर भी जिसकी बुद्धि विशेष रूप से सुस्थिर बनी रहती है उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।४९।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ।५०।
वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम् ।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ।५१।
सम्यक्कृतं त्वथा यच्च तत्केनापि भवेदिह ।
आवाभ्यां मानित तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ।५२।
एत्युक्त्या तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् ।
विवाहकरणे चास्य मति चक्रतुरुत्तमाम् ।५३।

वस्तुतः जिसमें विवेक बुद्धि होती है उसी में बल का भी निवास रहता है । जो बुद्धिहीन होता है उसमें बल कभी भी नहीं रह सकता है । बुद्धिमान् खरगोश ने तो बुद्धि के द्वारा महान् मदोन्मत्त सिंह को कुंए में डालकर नष्ट कर दिया था ।५०। वेद और शास्त्रों में एवं महा-पुराणों में जैसा भी बालकों का कर्त्तव्य बताया गया है तुमने उसका पूर्ण रूप से अक्षरशः पालन किया है ।५१। हे पुत्र ! इस समय तुमने जो कुछ किया उसे अन्य कोई भी नहीं कर सकता । तुम्हारी बात को अन्यथा कर देने की सामर्थ्य किसी में नहीं है । हम दोनों ने अब तुम्हारी बात मान ली है ।५२। ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह महादेव पार्वती दोनों ने बुद्धि के सागर गणेश को आश्वासन देते हुए उनके विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की ।५३।

रुद्र संहिता– युद्ध खण्ड

।। शंखचूड और शिव का दूत प्रेषण ।।

तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् ।
दूत कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम् ।१।
स तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह ।
वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।२।
कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्त च सस्मितम् ।
शुद्धिस्फटिकसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ।३।

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् ।
भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकांतं त्रिलोचनम् ।४।
तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसम्पदाम् ।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।५।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ।
विश्वेश्वरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ।६।
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारकम् ।
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ।७।

श्रीसनत्कुमार जी ने कहा— शङ्खचूड ने वहीं पर स्थित होकर महान् दानवेश्वर को अपना दूत बनाकर भगवान् शंकर के समीप में भेजा ।१। दूत ने कोटि सूर्य के समान कान्ति वाले वट के मूल में विराजमान भगवान शङ्कर के दर्शन किये ।२। भगवान शिव योगासन की मुद्रा में बैठकर दृष्टि लगाये हुए हास्ययुक्त थे स्फटिक मणि के तुल्य ब्रह्म-तेज से पूर्ण प्रकाशित हो रहे थे ।३। दूत ने देखा कि शिव त्रिशूल और पट्टिश लेकर व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं । गौरी के पति त्रिलोचन परम शान्ति की मुद्रा में स्थित अपने भक्तों की मृत्यु का हरण करने वाले हैं । शिव भक्तों को तपश्चर्या के फल प्रदान करने वाले, समस्त सम्पत्तियों के दाता, शीघ्रातिशीघ्र भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के कारण कातर होकर प्रसन्न होने वाले हैं ।४–५। भगवान् शङ्कर विश्व के स्वामी — विश्व के बीज-रूप—स्वयं विश्व स्वरूप—विश्व के उत्पादक—विश्व के भरण-पोषण कर्त्ता और विश्व के संहार करने वाले देव हैं ।६। ये कारण के भी कारण, नरक रूपी समुद्र से पार करने वाले — ज्ञान के प्रदान-कर्त्ता ज्ञान के बीज रूप और सर्वदा स्वयं ज्ञानानन्द में निमग्न एवम् सनातन हैं । शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने इस सुन्दर स्वरूप में समन्वित शिव को देखा ।७।

अवरुह्य रथाद्दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ।
शंकरं सकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः ।८।

वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् ।
लोकाशिष ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः ।९।
अथासौ शंखचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित् ।
उवाच शंकरं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ।१०।
शंखचूडस्य दूतोऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ।
वर्तते ते किमिच्छाऽद्य तत्वं ब्रूहि महेश्वरः ।११।
इति श्रुत्वा च वचनं शंखचूडस्य शंकरः ।
प्रसन्नात्म महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ।१२।
शृणु दूत महाज्ञ वचो मम सुखावहम् ।
कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च ।१३।
विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ।१४।

दानवेश्वर ने अपने रथ से उतरकर परम सुकुमार स्वरूप वाले शंकर को सादर प्रणाम किया ।८। भगवान शिव के वाम भाग में भद्रकाली और आगे स्कन्द विराजमान थे । काली देवी, षण्मुख और शङ्कर ने लोक-रीति का निर्वाह करते हुए आशीर्वाद दिया ।९। उस समय शास्त्र के ज्ञाता शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने दोनों अपने हाथ जोड़कर शिवजी से प्रार्थना की ।१०। दूत ने कहा — हे महेश्वर ! मैं शङ्खचूड का दूत होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । आपकी जो भी इच्छा हो वह मुझसे तात्विक रूप से कहिए ।११। सनत्कुमार ने कहा—शङ्खचूड के दूत दाननेश्वर के ये वचन श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महादेव बोले ।१२। श्री शिव ने कहा—हे महापण्डित दूत ! मेरा सन्देश सावधानी से सुनकर तुम अपने स्वामी से विचारपूर्वक निर्विवाद कह देना ।१३। ब्रह्मा इस समस्त जगत के पिता और धर्म को पूर्णरूप से जानने वाले । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उनके पुत्र कश्यप हुए ।१४।

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निज कन्यास्त्रयोदश ।
तास्तेत्र च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ।१५।

चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः ।
येष्वेको विप्रशित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ।१६।
तत्पुत्रो धार्मिको दंभो दानवेन्द्रो महामतिः ।
तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ।१७।
पुरा त्वं पार्षदो गोपेष्वेव च धार्मिकः ।
अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः ।१८।
दानवीं योनिमायातस्तत्वतो न हि दानवः ।
निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाधुना ।१९।
द्रोहं न कुरु तैः सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम् ।
नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ।२०।
देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव ।
निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठंतु स्वपदे सुराः ।२१।

प्रजापति दक्ष ने अपनी तेरह कन्याऐं कश्यप को दीं। उनमें एक परम पतिव्रता दनु नाम वाली कन्या थी जो कि उनके सौभाग्य को बढ़ाने वाली थी ।१५। उससे महान् तेजस्वी चार दानव पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। इनमें एक विप्रचित्ति नाम वाला अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी था ।१६। विप्रचित्ति का पुत्र अति बुद्धिमानी एवं परम धार्मिक दानवराज दम्भ उत्पन्न हुआ उसके प्रिय पुत्र धर्मात्मा तुमने जन्म लिया ।१७। हे दानवेश्वर ! पहिले तुम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय पार्षद गोपों में एक प्रमुख गोप थे। इस समय श्री राधिका के शाप के कारण दानवेश्वर हुए हो ।१८। तुम शापवश ही इस दानव योनि में आ गये हो वस्तुतः दानव नहीं हो, इसलिए तुम अपना प्राचीन हाल समझकर देववृन्द के साथ वैरभाव को त्याग दो ।९। देवताओं के साथ किसी प्रकार का द्रोह न करते हुये अपने पद का सानन्द उपभोग करो। ऐसा करने में विचार पूर्वक देखो तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं है ।२०। हे दानवेश्वर ! मेरी प्रीति के विषय में विचार कर देवताओं को उनका राज्य लौटा दो। तुमको सुखपूर्वक अपने ही राज्य में स्थित रहना चाहिये। देवगण अपने पद पर स्थित रहें, इसी में भलाई है ।२१।

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः ।
कुलीनाः शुद्ध कर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः ।२२।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।२३।
इत्यादिबहुवार्ता च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम् ।
प्रोवाच शंकरस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ।२४।
शिक्षितः शंखचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः ।
उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः ।२५।
त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः ।
तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ।२६।
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ।
तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो ।२७।
सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि विचार्य च ।
निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु संदेहभंजनम् ।२८।

साधारण प्राणियों के साथ भी विरोध भाव रखना अच्छा नहीं होता है फिर देवगण से विरोध रखने के बावत क्या कहा जावे ? ये सभी शुद्ध कर्मों के करने वाले परम कुलीन कश्यप ऋषि की सन्तान हैं ।२२। ब्रह्म-हत्या आदि जितने भी महाघोर पाप होते हैं वे सभी अपनी ज्ञाति से द्रोह करने के पाप की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते हैं ।२३। सनत्कुमार जी ने कहा—इस रीति से श्रुति एवं स्मृति के सिद्धान्त से अनुमत अनेक उपदेशमय बातें कहते हुये भगवान् शंकर ने उसे भली-भाँति समझाकर अपना ज्ञान स्वरूप सन्देश कहा ।२४। इसके अनन्तर शङ्खचूड़ के द्वारा समझाये हुये तर्क के जानने वाले उस दूत ने भवितव्यता से मोहित होकर नम्रतापूर्वक शिव से कहा ।२५। शङ्खचूड़ के दूत ने कहा—हे देव ! आपने जो कुछ भी मुझ से कहा वह सर्वथा सत्य है, किन्तु अब मैं जो भी निवेदन करना चाहता हूँ उसे भी आप सत्य-सत्य सुनने की कृपा करें ।२६। हे आदिदेव ! अभी आपने ज्ञाति के साथ द्रोह को एक महान् पाप बतलाया है । यह अक्षरशः सत्य

है किन्तु क्या यह बात केवल असुरों के लिये ही है देववृन्द के लिये नहीं हे ? ।२७। यदि दोनों पक्षों के लिये यह जाति-द्रोह के महान् पाप की बात है तो फिर मैं विचार करके कुछ निवेदन करता हूँ, आप मेरे सन्देह का निवारण करिये ।२८।

मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ।
शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री महेश्वर ।२९
त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः ।
भवांश्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम् ।३०
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः ।
सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः ।।३१
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ।
शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः ।३२
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ।
क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ।३३
क्रीडाभांडमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः ।
स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ।३४
देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा ।
पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ।३५

हे महेश्वर ! यदि ऐसा सभी के लिये है तो फिर आपने मधुकैटभ श्रेष्ठ दैत्य का मस्तक चक्र से क्यों काटा था जब अन्य कोई कारण न था ।२९। हे गिरीश ! आपने त्रिपुरासुर के साथ किस कारण से महायुद्ध किया था और फिर क्यों उसे भस्मीभूत बना दिया ? आपने देववृन्द का पक्ष लेकर उनका ही कल्याण किस लिये किया था ? ।३०। राजा बलि का सब कुछ हरण करने के पश्चात् भी उसको पाताल लोक में भेजने का क्या कारण था जहाँ कि सर्वथा गदा धारण किये हुए उसके द्वार पर स्थित रहा करते हैं ? ।३१। अपने सहोदर भाई के सहित देवताओं ने हिरण्याक्ष को किस कारण मार गिराया और देवों के ही द्वारा शुम्भादि महाबली दैत्य कैसे मार दिये गये ? ।३२। समुद्र मन्थन के महाप्रयास

में हम सभी ने अत्यन्त घोर श्रम के साथ क्लेश भोगा किन्तु अमृत का पान केवल देवों ने ही करके उस श्रम फल को प्राप्त किया ।३३। यह यह समस्त विश्व काल का एक खिलौना है । परमात्मा-स्वरूप यह काल जब भी जिसको देता है यह ऐश्वर्य उसे प्राप्त हो जाता है ।३४। देवता और दैत्यों के बीच में होने वाले युद्ध तथा बैर का कुछ न कुछ निमित्त रहा करता है । इन में जय और पराजय का होना काल के अधीन होता है ।३५।

तवानयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं भवेत् ।
समसम्बन्धिनां तद्वै रोचते नेश्वरस्य ते ।३६
सुरासुराणां सर्वषासीश्वरस्य महात्मनः ।
इयं ते रहिता लज्जा स्पर्द्धाऽस्माभिः सहाधुना ।३७
यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ।
तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ।३८
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सप्रहस्य त्रिलोचनः ।
यथोचित च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ।३९
वयं भक्तपराधीना न स्वतन्त्राः कदापि हि ।
तदिच्छया तत्कर्माण न कस्यापि च पक्षिणः ।४०
पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि ।
मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ।४१
नेवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा ।
प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ।४२

आपस में इन दोनों के विरोध में व्यर्थ ही आपको नहीं पड़ना चाहिए । विरोध भाव समान बल की शक्ति वालों का ही उचित हुआ करता है । हे शिव ! आपको विरोध करना शोभा नहीं देता है ।३६। आप तो देव और दैत्य सभी के स्वामी हैं । यह एक बड़ी लज्जा की-सी बात है कि आप जैसे महान् आत्मा वाले का हमारे साथ बैर-भाव रहता है ।३७। जिस जयलाभ में बहुत बड़ी कीर्ति और हार हो जाने पर महती हानि हो, वह बात आपके स्वरूप से सर्वथा विपरीत है । आप

स्वयं इसका विचार मन में करें ।३८। सनत्कुमार जी ने कहा—दानवेश्वर के ऐसे वचन श्रवण कर महेश्वर हँसते हुए समुचित एवं मधुर वचनों द्वारा उससे बोले ।३९। महेश ने कहा—हे दानवेश्वर ? मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, सर्वदा अपने भक्तजन के अधीन रहा करता हूँ। उनकी इच्छा के अनुसार ही मुझे कर्म करने को विवश होना पड़ता हैं। हम कभी किसी का भी पक्षपात नहीं किया करते हैं ।४०। सर्व प्रथम विधाता द्वारा प्रार्थना की जाने पर प्रलय-सागर में विष्णु भगवान् ने मधु कैटभ के साथ युद्ध किया था ।४१। देवगण की दीन प्रार्थना पर ही भक्त प्रहलाद की रक्षा के लिये और भक्तजन के हितार्थ हिरण्यकशिपु का वध विष्णु ने नृसिंह स्वरूप से किया था ।४२।

त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः ।
देवप्रार्थनयाऽकारि मयापि च पुरा श्रुतम् ।४३।
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा ।
आसीच्छुंभादभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ।४४।
अद्यापि त्रिदशः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
स सदेव हरिर्मां च देव शरणामागतः ।४५।
हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम् ।
सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु ।४६।
पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्णस्य च महात्मनः ।
ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपित्वया समाः ।४७।
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह ।
देवकार्यार्थमीशौऽहं विनयेन च प्रेषितः ।४८।
गच्छ त्वं शंखचूडं वै कथनीयं च मे वचः ।
स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ।४९।
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम महेश्वरः ।
उत्तस्थौ शंखचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदंतिकम् ।५०।

मैंने भी देवगण की प्रार्थना और अतिशय भक्ति की जाने पर त्रिपुरा-

सुर का संहार किया था—यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध ही है । ४३ । सबका वैभव और पद बलात् छीनने वाले तथा देवगण को अत्यन्त कष्ट देने वाले शुम्भ आदि का वध भी जब देवों ने बहुत बार प्रार्थना की थी, किया गया था ।४४। इस समय भी समस्त देवगण पहिले ब्रह्माजी की शरण गये और फिर ब्रह्मा विष्णु मेरी शरण में आये हैं ।४५। हे दूत ! मैं अब हरि तथा ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर ही यहां देवगण की ओर से संग्राम करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ ।४६। मैं पुनः तुमको बतला देना चाहता हूँ कि तुम भगवान् कृष्ण के परमोत्तम पार्षद हो, अब तक जितने भी असुर मारे गए हैं तुम्हारे सदृश उनमें एक भी कोई नहीं था ।४७। हे राजन् ! तुम्हारे साथ में संग्राम करने के कार्य में मुझे क्या लज्जा हो सकती है ? यह तो देवों का कार्य ही है जिसे पूर्ण करने के लिये विजय प्रार्थना से प्रेरित होकर मुझ ईश्वर को यहाँ आना पड़ा है । ४८ । अब यहाँ से जाकर तुम शंखचूड़ से स्पष्ट कह देना कि उसके मनमें जो भी रुचे वह वही करे । मुझे तो यहाँ अब देव-कार्य करना ही है । ४९ । इतना कहने के पश्चात् महेश्वर चुप होगये और शङ्खचूड़ के द्वारा प्रेषित वह दूत भी वहां से उठकर अपने स्वामी के समीप चला गया ।५०।

॥ देवता-दानवों का रोमहर्षण युद्ध ॥

स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह ।
सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्वतः ।१।
तच्छ्रुत्वा शखचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् ।
अंगीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ।२।
समारुरोह यानं च सहामात्यैश्च सत्वरः ।
आदि देश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शकरेण च ।३।
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः ।
स्वयमप्यखिलेशोऽपि संनद्धोऽभूच्च लीलया ।४।
युद्धारम्भो वभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ।
कोलाहलश्च संजातो बीरशब्दस्तथैव च ।५।

देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने ।
धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवोर्गणः ।६
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धं च वृषपर्वणा ।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तानां सह धर्मतः ।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—उस दूत ने वापिस जाकर अपने नृपेन्द्र को भगवान् शङ्कर से होने वाली पूरी बातें सुना दीं और उनके अन्तिम निश्चय को विस्तृत रूप से बतला दिया ।१। यह सब श्रवण करने के अनन्तर दानवों के राजा प्रतापी शङ्खचूड ने सप्रेम युद्ध करना स्वीकृत कर लिया ।२। शङ्खचूड अपने समस्त मन्त्रिगण के सहित विमान पर चढ़कर तैयार हो गया और शिव के साथ संग्राम करने का आदेश सेना को शीघ्र ही दे दिया ।३। उधर शङ्कर भगवान् भी समस्त देवताओं तथा सेना को प्रेरित लीला के सहित युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए ।४। उस समय तुरन्त ही युद्ध का आरम्भ हो गया । युद्ध क्षेत्र में बहुत प्रकार के वाद्यों का वादन तथा वीर योद्धाओं का महान कोलाहल सर्वत्र छा गया ।५। हे मुनिराज ! तब देव और दानवों का आपस में अत्यन्त घोर धर्म युद्ध होना शुरू हो गया ।६। इन्द्रदेव वृषपर्वा के साथ और भास्कर विप्रचित्ति के साथ धर्मयुद्ध में प्रवृत्त हो गए ।७।

दम्भेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम् ।
कालासुरेण कालश्च गोकर्णे हुताशनः ।८
कबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ।
भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ।९
कालम्बिकेन वरुणश्चंचलेन समीरणः ।
बुधश्च घटपृष्टेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ।१०
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसा गणैः ।
अश्विनौ दीप्तिमद्भ्या च धूम्रेण नलकूबरः ।११
धुरन्धरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मङ्गलः ।
शोभाकरेण वैश्वनः पिपिरेन च मन्मथः ।१२

गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्ना सुरेण च ।
धूम्रेण सह्लेनापि विश्वेन च प्रतापिना ।।१३
पलाशेन द्वादशार्का युयुधुधर्मतः परे ।
असुरैरमराः सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः ।।१४

विष्णु दम्भ दैत्य से, कालदेव कालासुर से और हुताशन गोकर्ण से घोर युद्ध करने लगे ।।८।। कुवेर ने कालकेय से, विश्वकर्मा ने मय नामक असुर से, मृत्यु ने भयंकर से, यमराज का संहारक से, वरुण का कालाम्बिक से, पवनदेव का चंचलासुर से, बुध का घटपृष्ठ से, शनिदेव का रक्ताक्ष नाम वाले असुर से, वर्चसगण तथा रत्नसार के साथ जयन्त का, अश्विनीकुमार का दीप्ति मानों के साथ और नलकूबर का धूम्र के साथ महान युद्ध हुआ ।।९-११।। धर्म और धुरन्धर का, मङ्गल और गणकाक्ष का, वैश्वानर और शोभाकार का तथा मन्मथ और पिपिर का धर्म-युद्ध होने लगा । द्वादश आदित्य गोकामुख, चूर्णखड्ग, असुर, धूम्र संहल, विश्वप्रतापी और पलाश के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये और भगवान शंकर की सहायता प्राप्त कर देवताओं ने दैत्यगण से अत्यन्त भयानक युद्ध किया ।।१२-१४।।

एकादश महारुद्राश्चैकादशभयंकरैः ।
असुरैर्युयुधुर्वीरै र्महाबलपराक्रमैः ।।१५
महामणिश्च युयुधे चोग्रचंडादिभिःसह ।
राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ।।१६
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवप्रवरैः सह ।
युयुधश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक् ।।१७
वटमूले तदा शभुस्तस्थौ काल्या सुतेन च ।
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने ।।१८
रत्नसिंहासन रम्ये कोटिदानवसंयुतेः ।
उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ।।१९
महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः ।
नानायुधानि दिध्यानि चलंतिस्म महामृधे ।।२०

गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुंडिप्रासमुद्गराः ।
निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखरपश्वधाः ॥२१
शरतोमरखड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रशः ।
भिंदिपालादयश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥२२

एकादश महारुद्रों ने महाभयंकर, महाबली, महापराक्रमी ग्यारह असुरों से युद्ध किया। महामणि और उग्रचण्ड चन्द्र और राहु, देवगुरु बृहस्पति और शुक्र परस्पर में युद्ध करने लगे ॥१५–१६॥ उस समय नन्दीश्वर प्रभृति समस्त शिव गण भी उन सभी दानवों के साथ महायुद्ध में प्रवृत्त हो गए।१७। भगवान् महेश्वर, महाकाली तथा अपने पुत्र के साथ वट वृक्ष के मूल के निकट विराजमान हो रहे थे और उनकी समस्त सेना निरन्तर युद्ध कर रही थी ॥१८॥ इसी तरह रत्नजटित रमणीय सिंहासन पर करोड़ों दैत्यों के साथ बहुमूल्य मणि एवं रत्नों के अनेक आभरणों से समलंकृत दानवेन्द्र शंखचूड विराजमान हो रहा था ॥१९॥ इस युद्ध भूमि में देवासुरों का प्राणों का संहारक महायुद्ध हो रहा था और उसमें विविध प्रकार के अनेक दिव्य आयुधों का प्रहार किया जा रहा था ॥२०॥ गदा, पट्टिश, ऋष्टि, भुशुण्डी, चक्र, मुद्गर, पाश, भल्ल निस्त्रिंश, परिध, शक्ति, परशु, सन्मुख, शर, तोमर, खड्ग, भिन्दिपाल और सहस्रों शतघ्नी (तोपें) आदि महावीरों के हाथों में शोभित होकर प्रयोग में लाये जा रहे थे ॥२१-२२॥

शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः ।
वीराणन्मुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥२२
गजास्तुरंगा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः ।
सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखंडिता ॥२४
निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगांघ्रयः ।
संछिन्नध्वजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥२५
समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिः सह कुंडलैः ।
संरंभनष्टै रास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥२६

महाभुजैः साभरणैः संछिन्नैः सायुधैस्तथा ।
अंगरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥२७
मृधे भटाः प्रधावतंतः कबंधान् स्वशिरोक्षिभिः ।
पश्यंतस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥२८

दोनों दलों के वीर योधागण महा गर्जना तथा तर्जन के साथ अपने अतुल पराक्रम से शत्रुओं के शिरों का छेदन कर रहे थे ॥२३॥ उस समय हाथी अश्व, रथ पैदल और रथादि अनेक सवारियाँ नष्ट भ्रष्ट होकर गिरने लगीं ॥२४॥ वीरों के भुज, उरु, कर, कटि, कर्ण और पैर आदि शरीर के अवयव छिन्न-भिन्न हो-होकर गिर रहे थे ॥२५॥ किरीट, कुण्डल आदि से भूषित मस्तकों, ध्वज, बाण, तलवार, बख्तर, टूटे हुए भूषण तथा हाथियों के सूँड आदि से सम्पूर्ण युद्ध भूमि ढक गई ॥२६॥ भूषण और हथियारों से युक्त वीरों की भुजायें यों ही कट-कटकर वहाँ गिर रही थीं और वह भूमि शिरों से मधुमक्खियों के छत्तों के समान व्याप्त हो गई थी ॥२७॥ उस देवासुरों के महान् भीषण युद्ध में योधागण कटकर गिरे हुए मस्तकों को आँखों से देखकर आयुध उठाते हुए धावमान हो रहे थे ॥२८॥

वल्गंतोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् ।
शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥२९
केचित्स्वर्णमुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे ।
व्यनदन् वीरसन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥३०
सवतः शरकूटेन वीरः सरथसारथिम् ।
वीरं संछादयामास प्रावृट्सूर्यमिवांबुदः ॥३१
अन्योन्यमभिसंसृत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ।
आह्वयंतो विशताऽग्रे क्षिपतो मर्मभिर्मिथः ॥३२
सर्वतो वीरसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः ।
व्यदृश्यत महासंख्ये कुर्वंतः सिंहसंरवम् ॥३३
महारवान्स्वशंखांश्च विदध्मुर्वै पृथक् पृथक् ।
वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥३४

एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् ।
बभूव युद्धं विकटं कराल वीरहर्षदम् ॥३५
महाप्रभोश्च लीलेयं शंकरस्य परात्मनः ।
यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३६

महा पराक्रम वाले वीर अनेक तरह के अस्त्र-शस्त्र उठाकर सिंहनाद करते हुए घोर युद्ध करने लगे ॥२९॥ उनमें कुछ वीर सुवर्ण पंख वाले बाणों से योधाओं का संहार करते हुए महामेघ के तुल्य गम्भीर गर्जनकर रहे थे ॥३०॥ तब तरफ से आने वाले बाणों के समूह से वीर, रथ और सारथी इस प्रकार ढक गये मानो मेघों की घटा ने आकर सूर्य को ढक लिया हो ॥३१॥ द्वन्द्व-युद्ध करने वाले भी एक दूसरे के मर्म स्थलों का भेदन करते हुए प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ॥३२॥ सभी ओर से वीरों के समूह नाना भाँति के आयुध हाथों में लेकर सिंह के समान घोर नाद करते हुए युद्ध स्थल में दिखलाई दे रहे थे ॥३३॥ वे बड़े-बड़े शंखों को बजा रहे थे, जिनकी महाध्वनि से आकाश व्याप्त हो रहा था। ऐसे अनेक शंख पृथक् पृथक् बजाते हुए वीर प्रसन्नता के साथ ताड़न और वेधन करने में तत्पर थे। ३४। इस रीति से बहुत समय पर्यन्त देव-दानवों का वह भीषण वीरों को प्रसन्नता देने वाला महाघोर युद्ध हुआ ॥३५॥ यह सब परमेश शंकर की ललित लीला है जिसने देव, दानव, मनुष्य सभी को मोहित कर दिया है ॥३६॥

॥ शंखचूड का कार्तिकेय आदि से युद्ध ॥

तदा देवगणाः सर्वे दानवैश्च पराजिताः ।
दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥१॥
ते परावृत्य विश्वेशं शंकरं शरणं ययुः ।
त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥२
दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शंकरः ।
सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥३
निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चाभयं ददौ ।

बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ।।४
शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणैः सह ।
युयुधे निर्भयः संख्ये महावीरो हरात्मजः ।।५
कृत्वा क्रोध वीरशब्द देवो यस्तारकांतकः ।
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ।।६
रुधिर पातयामास काली कमललोचना ।
तेषां शिरांसि सछिद्य बभक्ष सहसा च सा ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय सभी देवगण दानवों से पराजय प्राप्त कर उनके शस्त्रास्त्रों से क्षत विक्षत होते हुये भागने लगे ।।१।। देवगण युद्ध स्थल से पलायित होकर भगवान शंकर की शरण में पहुँचे और विह्वल वाणी के द्वारा "भगवान् ! हमारी रक्षा कीजिए"—इस तरह पुकार कर कहने लगे ।।२।। उस समय महेश्वर को देव वृन्द की हार देखकर और उनके भय से परिपूर्ण वचन सुनकर महान् क्रोध उत्पन्न हुआ ।।३।। शंकर ने कृपा की दृष्टि से देवों को देखकर उनका भय दूर कर दिया और अपनी तेजोमयी भक्ति के द्वारा अपने गणों में विशेष बल-पराक्रम की वृद्धि कर दी ।।४।। इसके पश्चात् स्कन्द शिव की आज्ञा प्राप्त कर महावीरता का प्रकाश भरते हुए निर्भय होकर दानवों के साथ युद्ध करने के लिये चल दिये ।।५।। उस समय तारक के संहार करने वाले महान् वीर स्कन्द महा गर्जन का घोर शब्द सुनाते हुए दानवों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का संहार करने लगे ।।६।। इधर महाकाली देवी समर भूमि में दानवों का नाश करती हुई उनके गर्म रुधिर का पान करने में तत्पर हो गई और शत्रु के शिरों को काट कर उनका भक्षण करने लगी ।।७।।

पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समंततः ।
युद्धं चकार विविधं सुरदानवभीषणम् ।।८
शतलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं नृणां तथा ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ।।९
कबंधानां सहस्रं च संननर्त रणे बहु ।

महान् कोलाहलो जातः क्लीवानां च भयंकरः ॥१०
पुनः स्कन्दः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षां चकार ह ।
पातयामास क्षयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥११
दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः ।
भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥१२
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंडश्चापि विकंपनः ।
स्कन्देन युयुधुः सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥१३
महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी ।
बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कन्दशक्तिप्रपीडिताः ॥१४

उस समय देव दानवों का ऐसा महा भयंकर युद्ध हुआ कि सभी तरफ से असुर दल के रुधिर का पान किया जाने लगा ॥८॥ सौ लाख महान् गजों और एक शत लक्ष वीर दानवों को हाथ से उठाकर महा काली लीला से ही अपने मुख में डालने लगी ॥९॥ सैंकड़ों धड़ जिनके मस्तकों का छेदन हो गया था उस रण-भूमि में नाच रहे थे । उस समय भीरु मनुष्यों के हृदय में महा भय की उत्पत्ति करने वाला महान् कोलाहल सब ओर हो रहा था ॥१०॥ ऐसा होते हुए भी कुमार स्कन्द ने क्रोध के साथ बाणों की महा-वृष्टि के द्वारा करोड़ों की संख्या में दानवों का संहार कर दिया ॥११॥ जो स्कन्द की बाण वर्षा से बच गये थे वे क्षत-विक्षत शरीर वाले होकर समर भूमि से भागने लगे ॥१२॥ स्कन्द के साथ क्रम से विप्रचित्ति, वृषपर्वा, दण्ड और विकम्पन ने युद्ध करना आरम्भ किया ॥१३॥ उधर महामारी संग्राम से पराङ् मुख न होते हुए युद्ध कर रही थी । स्कन्द की शक्ति से दैत्य क्षत-विक्षत हो रहे थे ।१४।

महामारीस्कन्दयोश्च विजयोऽभूतदा मुने ।
देवदुंदुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥१५
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम् ।
दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम् ॥१६
महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम् ।
चुकोपातीव सहसा सनद्धोऽभूत्स्वयं तदा ॥१७

वरंविमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम् ।
अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम् ॥१८
महावीरैः शंखचूडो जगाम रथमध्यतः ।
धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम् ॥१९
तस्य सा शरबृष्टिश्च दुर्निवार्य्या भयंकरी ।
महाघोरांधकारश्च वधस्थाने बभूव ह ॥२०
देवः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः ।
एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥२१

हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युद्ध में स्कन्द और भगवती की जीत हुई । इस विजय को देखकर स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी और आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई ॥१५॥ कुमार स्कन्द ने बहुत ही भीषण प्रकृति-कल्प के समान असुरों का नाश करने वाला युद्ध किया था और उस क्षय का हेतु महा-मारी ने प्रस्तुत किया था। यह देखकर दानवों के राजा को बड़ा भारी क्रोध हुआ और फिर वह स्वयं ही युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥१६-१७॥ दानवेन्द्र उस समय एक ऐसे विमान पर आरूढ़ हुआ जो सबको अभय देने वाला था और जिसमें नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे ॥१८॥ दानवराज शंखचूड बड़े-बड़े योधाओं को साथ में लेकर रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आ गया और कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा को तान कर बाणों की वृष्टि करने लगा ॥१९॥ उस असुरेन्द्र की घोर बाण वृष्टि निवारण करने के अयोग्य हो रही थी और इससे युद्ध भूमि में महान् अन्धकार छा गया ॥२०॥ नन्दीश्वर आदि को साथ लेकर सभी देवगण घबराते हुए वहाँ से भाग खड़े हुए और उस समय वहाँ अकेले कुमार कार्त्तिकेय ही रह गये थे ॥२१॥

पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा ।
राजा चकार बृष्टिं च दुर्निवार्यां भयंकरीम् ॥२२
तद्बृष्ट्या प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः ।
नीहारेण च सांद्रेण संबृतौ भास्करौ यथा ॥२३
नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम् ।

तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम ।।२४
तदैव शंखचूडश्च महामायी महाबलः ।
शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै ।।२५
बभंज तद्रथं दि यं चिच्छेद रथपीडकान् ।
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेन चकार सा ।।२६
शक्ति चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् ।
मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेग स क्षणम् ।।२७
पुनश्चा चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ।।२८
स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः ।
शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम् ।।२९

शंखचूड ने पर्वत, सर्प, नाग, और वृक्षों की भी दुर्निवारणीय भयानक वृष्टि देव सेना पर की ।।२२।। ऐसी भयंकर वर्षा से शिव पुत्र कार्त्तिकेय परम व्यथित एवं प्रताड़ित हुये । कुहरे के समय में भास्कर देव की भाँति उस समय दोनों महावीर दिखाई दे रहे थे ।।२३।। इस युद्ध में दानवेन्द्र ने मय दानव की बहुत-सी माया प्रकट की जिसकी देवता और शिव के गण कोई भी नहीं जान सके ।।२४।। उस समय महान् बलवान् अत्यन्त मायाधारी शंखचूड ने अपने एक बाण से स्कन्द के धनुष का छेदन कर दिया ।।२५।। दानवेन्द्र ने कुमार के रथ को छिन्न-भिन्न करके वाहन मयूर को भी अपने दिव्य बाण से जर्जरित कर दिया ।।२६।। असुरराज ने सूर्य तुल्य एक घातक शक्ति के द्वारा स्कन्द के वक्ष-स्थल में ऐसा भयानक प्रहार किया कि क्षण मात्र के लिये वे मूर्छित होगये ।।२७।। थोड़े ही समय के पश्चात् चेतना प्राप्त कर स्कन्द अपने महारत्न निर्मित वाहन पर आरूढ़ होगये और उस समय कुमार ने अपने माता के सहित पिता श्रीशिव का ध्यान करते हुये शस्त्रास्त्र ग्रहण कर महाघोर संग्राम किया ।।२८-२९।।

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा ।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ।।३०

वह्नि निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह ।
रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ।।३१
सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्वलम् ।
वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः ।।३२
चिक्षेप शक्ति सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ।
तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छां दीर्घतपेन च ।।३३
मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महाबलः ।
चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः ।।३४
शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम् ।
स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ।।३५

दानवेन्द्र के चलाये हुए सर्प वृक्ष, पर्वत और प्रस्तर आदि का अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा छेदन कर दिया ।।३०।। कुमार ने मेघास्त्र का प्रयोग कर असुरेन्द्र द्वारा प्रसारित अग्नि को शान्त शीतल कर दिया तथा लीला ही से शंखचूड के रथ और धनुष का छेदन कर दिया ।।३१।। कार्त्तिकेय ने असुरराज के कवच, वाहन और निर्मल किरीट कुण्डल सबको काट कर गर्जना के साथ बार-बार वीरता भरी ध्वनि की ।।३२।। कुमार ने सूर्य के समान जाज्वल्यमान एक शक्ति के द्वारा शंखचूड की छाती में ऐसा प्रबल प्रहार किया कि वह बहुत समय तक बेहोश हो गया ।।३३।। महा बलवान् वह दैत्यराज थोड़ी देर में ही क्लेश का निवारण कर सचेत होगया और तुरन्त फिर उठकर जोर से गर्जने लगा ।।३४।। उसने स्वामी कार्त्तिकेय पर पुनः शक्ति का प्रहार किया तो कुमार ब्रह्माजी के वचन को सफल करने के लिए भूमि पर गिर गये ।।३५।।

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ।
ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया ।।३६
ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ।
गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ।।३७
एतस्मिन्नंतरे वीरो वीरभद्रो महाबलः ।
शंखचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ।।३८

ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यानि च दानवः ।
चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैः शरैः ॥३९
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः ।
तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४०
अथातीव चुकोपोच्चैः शंखचूडः प्रतापवान् ।
शक्त्या जघानोरसि तं चकंपे पपात कौ ॥४१
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः ।
जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥४२
एतस्मिन्नंतरे काली जगाम समरं पुनः ।
भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छयः ॥४३
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ।
सर्वे देवाश्च गधर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ॥४४
वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ।
पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः ॥४५

उस समय महाकाली ने उन्हें गोद में उठाकर शिव के समीप में पहुँचा दिया और भगवान् शंकर ने अपने ज्ञान के बल से उनको लीला से ही जीवित कर दिया ॥३६॥ शिव ने कार्त्तिकेय को असीम बल का भी प्रदान किया इससे वे उठकर पुनः युद्ध-भूमि में जाने की इच्छा करने लगे ॥३७॥ इस बीच में गणेश्वर वीरभद्र ने दैत्यराज से घोर युद्ध किया ॥३८॥ उस समय युद्ध करते हुये दानवेश्वर ने जिन अस्त्रों की वर्षा की वीरभद्र ने उन सबको आसानी से ही काट गिराया ॥३९॥ तब शंखचूड को महान् क्रोध आया और उसने एक ऐसी शक्ति का प्रयोग किया कि वीरभद्र भी पृथिवी पर गिर गये। गणेश्वर ने चेतनायुक्त होकर हाथमें धनुष उठा लिया।४०-४२। महाकाली पुनः आकर कार्त्तिकेयकी रक्षा और दानवोंके भक्षणकी इच्छा प्रकट करने लगी।४३। उसके साथ नन्दीश्वर आदि महावीर योधा,देव,गन्धर्व,यक्ष,राक्षस,और पन्नग थे, जोकि विविध वाद्य तथा मधु के सैंकड़ों पात्र लिये हुये थे। फिर क्या था दोनों ही ओर के बलवान् योद्धा युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये ॥४४-४५॥

।। काली और शंखचूड़ में दिव्य अस्त्रों से युद्ध ।।

सा चा गत्वा हि संग्राम सिंहनादं चकार ह ।
देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छामायुश्च दानवाः ।।१
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः ।
तता पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्धनि ।।२
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ।
अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ।।३
महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा ।
जहृषुर्बहुः गर्जंतः सर्वे सुरगणादयः ।।४
दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समापयौ ।
दानवाश्च भयं प्राप्ता गजा तेभ्योऽभयं ददौ ।।५
काली चिक्षेपवह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
राजा जघात त शीघ्रं वैष्णवांकितलीलया ।।६
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम् ।
वृद्धि जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम् ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय भगवती काली ने युद्ध भूमि में पहुंचते ही बड़े जोर का सिंहनाद किया जिसे सुनते ही समस्त दानवों को मूर्च्छा होगई ।।१।। देवी ने इस तरह कितनी ही बार भयंकर सिंहनाद किया और वह बार-बार मधु का पान करती हुई समर-स्थल में नृत्य करने लगी ।।२।। काली की भयोत्पादक बड़ी दाढ़ें थीं, उनसे सबको डराती हुई दण्ड हाथ में ग्रहण करके मदिरा पान कर रही थी और उसके साथ वाली अन्य अनेक देवियाँ भी पान तथा नर्तन करती थीं ।।३।। काली के वहाँ आजाने पर दोनों दलों में महान् कोलाहल मच गया तथा देवगण उस ध्वनि को सुनकर हर्षोल्लास से भर गये ।।४।। महाकाली को युद्ध के मैदान आई देखकर शीघ्र शंखचूड वहाँ आगया और जो दानव भयभीत होगये थे उन्हें अभय देने लगा ।।५।। काली देवी ने प्रलयकालीन उद्दीप्त अग्नि के तुल्य अग्नि-शक्ति के द्वारा प्रहार किया किन्तु दानवेश्वर ने उसे वैष्णवास्त्र से तुरन्त ही शान्त कर दिया ।।६।।

इसके पश्चात् भगवती ने असुर पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया जो कि दानव को देखकर बढ़ने लगा ॥७॥

तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
पपात दंडवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ॥८
निवृत्ति प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् ।
ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् ॥९
तं दृष्ट्वा प्रज्वलंतं च प्रणम्य भुवि संस्थितः ।
ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिवारं चकार ह ॥१०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा ।
चिक्षेप दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मत्रपूर्वकम् ॥११
आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम् ।
जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥१२
काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायतम् ।
देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखंडं चकार सा ॥१३
स च वैष्णवमस्त्रं च चिक्षेप चंडिकोपरि ।
माहेश्वरेण काली च विनिवारं चकार सा ॥१४

शंखचूड इस अस्त्र को प्रलयकाल की अग्नि के समान देखकर भूमि पर गिर गया और उसे प्रणाम करने लगा ॥८॥ वह अस्त्रराज दानव की ऐसी विनम्रता देखते ही निवृत्त हो गया। फिर देवी ने मन्त्रपूर्वक सविधि ब्रह्मास्त्र को चोड़ा ॥९॥ इस अस्त्र को परम प्रज्वलित रूप में देखकर भूमि गत हो दानवेन्द्र ने उसे भी प्रणाम किया और उसके प्रहार से बच गया ॥१०॥ इसके पश्चात् दानवेन्द्र क्रोधपूर्वक बहुत ही वेग के साथ धनुष लेकर मन्त्रों के साथ देवी पर बाणों की घोर वृष्टि करने लगा ॥११॥उस समय देवी ने अपना मुख फैला दिया और उसने प्रयोग में लाये गये सभी अस्त्रों का भक्षण कर लिया और अट्टहास करती गर्जना करने लगी। इससे दानव अत्यन्त भय कातर हो उठे ॥१२॥ इसके अनन्तर दानवराज ने सौ योजन तक प्रभाव दिखाने वाली शक्ति

का प्रयोग काली पर किया तो देवी ने अपने परम दिव्य अस्त्रों से उस शक्ति को काटकर खण्ड खण्ड कर दिया ।।१३।। इसके बाद शंखचूड़ ने वैष्णवास्त्र छोड़ा जिसे देवी ने माहेश्वरास्त्र से हटा दिया ।।१४।।

एव चिरतरं युद्धमन्योन्यं संबभूव ह ।
प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ।।१५
अथ क्रुद्धा महादेवी कालसमा रणे ।
जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ।।१६
क्षेपात्पूर्व तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी ।
न क्षिपास्त्रमिमं देवि शंखचूडाय वै रुषा ।।१७
मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघादपि चंडिके ।
शंखचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय । १८
इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् ।
शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ।।१९
अत्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी ।
दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः ।।२०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् ।
ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यंतभीकरम् ।।२१
सा काली तं समालोक्यायांतं प्रज्वलितं रुषा ।
प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ।।२२

इस तरह इन दोनों का अधिक काल तक युद्ध चलता रहा, सब देव और दानव पारस्परिक युद्ध देखने में तत्पर होगये ।।१५।। उस समय भगवती को काल के समान महान् क्रोध हुआ और उसने पाशुपतास्त्र को लेकर मन्त्रों द्वारा पवित्र किया ।।१६।। वह अस्त्र का जैसे ही प्रयोग करना चाहती थी कि वहाँ आकाशवाणी हुई—हे देवि ! शखचूड़ पर इसका निक्षेप मत करो । यद्यपि यह महास्त्र निक्षेप ही अमोघ है किन्तु हे चण्डि के ! इसके द्वारा इसकी मृत्यु नहीं होगी । इसलिए इसके वध के लिये कोई दूसरा ही उपाय करो ।।१७-१८।। इस आकाशवाणी को सुन कर उस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया और लीला के साथ वैसे ही सौ लाख

दानवों का भक्षण कर डाला ॥१६॥ इसके बाद में जब काली शंखचूड़ को भक्षण करने को भागी तो उसने इसके इस भयंकर वेग को दिव्य रौद्रास्त्र के द्वारा रोका ॥२०॥ तब दानवेश्वर ने ग्रीष्मकाल के सूर्य के सदृश्य परम तीक्ष्ण धार वाले खग का देवी पर क्रोध के साथ प्रहार किया ॥२१॥ काली ने उस प्रज्वलित खंग को अपना मुख फैलाकर भक्षण कर डाला ॥२२॥

दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः ।
प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखंडानि तानि च ॥२३
पुनरत्तु महादेवी वेगतस्तं जगाह ह ।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानंतर्धानं चकार सः ॥२४
वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् ।
बभंज चरथं तस्य जघान किल सारथिम् ॥२५
अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः ।
भद्रकाल्यै शंखचूडः प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥२६
सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेव लीलया ।
जग्राह स्वमुखेनैवाहार चक्रे रुषा द्रुतम् ॥२७
मुष्ट्या जघानं तं देवी महाकोपेन वेगतः ।
बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥२८
क्षणेन चेतनां प्राप्त स चोत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह ॥२९

इस तरह दानवराज ने अनेक उत्तम से उत्तम अस्त्रों का काली पर प्रयोग किया किन्तु उसने सबको काटकर खण्ड-खण्ड कर दिया ॥२३॥ जिस समय भगवती शंखचूड़ को ही भक्षण कर डालने के लिये वेग से दौड़ी तो सर्व सिद्धों का स्वामी दानवेश्वर अन्तर्धान हो गया ॥२४॥ जब काली ने शंखचूड़ को वहाँ कहीं नहीं देखा तो उसने बडे जोर के साथ मुष्टि मारकर उसका रथ और सारथी का नाश कर दिया ॥२५॥ इसके बाद फिर उस माया से भरे हुए दानवेश्वर ने वहाँ शीघ्र ही आकर देवी पर चक्र का आघात किया जो कि प्रलय की अग्नि के तुल्य भयंकर था

॥२६॥ भगवती ने उसे भी बड़ी आसानी से बाँये हाथ से पकड़कर क्रोध पूर्वक खा लिया ॥२७॥ इसके अनन्तर बहुत कोप और अत्यन्त वेग से काली ने उस शंखचूड़ पर मुष्टि का प्रहार किया जिससे वह घूम गया और क्षणभर को उसे मूर्च्छा हो गई॥२८॥ थोड़ी ही देर के बाद मूर्च्छा से उठ बैठा किन्तु चण्डिका को मातृ-भाव से देखकर उससे उसने बाहु युद्ध करना उचित नहीं समझा ॥२९॥

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ।
उर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥३०
उत्पपात च वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ।
निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥३१
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानं सुमनोहरम् ।
आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे ॥३२
दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥३३
लक्षं च दानवेन्द्राणमशिष्टं रणेऽधुना ।
उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुंक्ष्व चेश्वरि ॥३४
संग्रामे दानवेन्द्रं च हंतुं न कुरु मानसम् ।
अवध्योऽयं शंखचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥३५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममंडलाद् ।
दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमाययौ ।
उवाच रणबृत्तांत प्रौर्वापर्येण सक्रमम् ॥३७

इसके पश्चात् भगवती ने उसे पकड़कर अनेक बार चारों ओर घुमाते हुए क्रोध पूर्वक बड़े वेग से ऊपर की ओर फेंक दिया ॥३०॥ प्रताप वाला शंखचूड़ वेगपूर्वक ऊपर की ओर कूद गया और पुनः नीचे आकर भद्रकाली को प्रणाम करते हुए युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गया ॥३१॥ उत्तम रत्न रचित विमान पर आरूढ़ होकर बिना किसी भ्रान्ति के परम प्रसन्नता से संग्राम के लिए तैयार हो गया ॥३२॥ इस ओर काली देवी

दानवों के रक्त का पान कर रही थी उस समय पुनः आकाश से वाणी सुनाई दी—हे चण्डिके ! अभी समर भूमि में एक लाख दानवों का रक्त शेष रह गया है । ये ही बड़े उद्धत भो हैं । अतः हे ईश्वरि ! इनको तुम शीघ्रातिशीघ्र भक्षण कर डालो ॥३३-३४॥ हे देवि ! इस संग्राम में शंखचूड़ के वध करने का बिचार ही त्याग दो । यह तुम्हारे द्वारा वध नहीं किये जाने वाला है-इसे निश्चय रूपसे समझ लेना चाहिए ॥३५॥ ऐसा वचन सुनकर देवी ने अन्तरिक्ष के मण्डल से बहुत से असुरों का रक्त तथा मांस निकल कर आते हुए देखा ॥३६॥ भगवती ने सानन्द उसका भक्षण एवं पान किया और भगवान् शंकर के पास उपस्थित होकर समस्त साद्यन्त युद्ध का समाचार उन्हें सुना दिया ॥३७॥

॥ शिव और शंखचूड़ का तुमुल संग्राम ॥

श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् ।
तत्त्व वद महाप्राज्ञ परं कौतूहल मम ॥१
काल्युक्तं वचनं श्रुत्वा शंकरः परमेश्वरः ।
महालीलाकारः शंभुर्जहासाश्वासयंश्च ताम् ॥२
व्योमवाणी समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह शंकरः ॥३
महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः ।
भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैः समन्वितः ॥४
रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च ।
विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवांतकः ॥५
शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः ।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दडवद्भुवि ॥६
तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः ।
तूर्णं चकार तन्नाहं धनुजग्राह सेषुकम् ॥७

व्यासजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे सनत्कुमार ! भद्रकाली के द्वारा संग्राम का वृत्तान्त सुनकर फिर भगवान शंकर ने क्या कहा तथा क्या

किया- यह बतलाइये । मुझे मन में इसके जानने का महान् कौतूहल हो रहा है ॥१॥ सनत्कुमार ने कहा—शंकरजी काली की कही हुई सारी कथा सुनकर हँसने लगे और उसे भली-भाँति लीलापूर्वक समझाया ॥२॥ शिव, तत्वों के ज्ञान के महापण्डित हैं । उन्होंने आकाशवाणी की बातें सुनते ही अपने गणों के सहित स्वयं युद्ध भूमि में जाने की प्रवृत्ति प्रकट की ॥३॥ शिव ने वृषभ पर सवारी की और वीरभद्र आदि गणों से संयुक्त हुए तथा अपने ही तुल्य भैरव और क्षेत्रपाल को साथमें लेलिया । अपना महान् वीर के समान स्वरूप बना कर युद्धस्थल में पहुँच गये । उस समय भगवान् परम शान्त स्वरूप वाले शिव काल के सदृश भयंकर प्रतीत होकर विराजमान थे ॥४-५॥ शिवजी को वहाँ आये हुए देखते ही शंखचूड़ विमान से नीचे उतर पड़ा और उससे परम श्रद्धा भक्ति की भावना से चरणों में मस्तक रखकर शिव को दण्डवत्प्रणाम किया ॥६॥ शंकर को प्रणाम करने के अनन्तर वह योग-मार्ग से विमान पर चढ़ गया और कवच धारण कर उसने धनुष-बाण हाथ में ले लिया ॥७॥

शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह ।
बाणवर्षमिवाग्रं तद्वर्षतोर्मोघयोस्तदा ॥८
शंखचूडो महावीरा शरांश्चिक्षेप दारुणान् ।
चिच्छेद शंकरस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥९
तदंगेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः ।
महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डः सतां गति ॥१०
दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वेगवान् ।
वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥११
ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया ।
खड्गं विच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥१२
छिन्नेऽसौ चर्माणि तदा शक्तिं चिक्षेव सोऽसुरः ।
द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां समुखागताम् ॥१३
कोपाध्मातः शंखचूडः चक्रं चिक्षेप दानवः ।
मुष्टिपातेन तच्चाप्यकूर्णयत्सहसा हरः ॥१४

सौ वर्ष तक निरन्तर शिव और शंखचूड़ का संग्राम चलता रहा और बराबर मेघों की अविरल धारा के सदृश बाणों की वृष्टि होती रही । ८ । यद्यपि यज्ञदानव एवं श्रेष्ठ वीर शंखचूड़ ने बहुत दारुण बाणों की वर्षा शिव पर की किन्तु शंकर ने लीला ही में अपने बाणों द्वारा सभी का खण्डन कर दिया । ९ । दुष्टों को दण्ड तथा सज्जनों को उद्धार देने वाले विरूपाक्ष शंकर ने बड़े ही कोप से दानव के अंगों पर शस्त्रों का प्रहार किया । १० । उसी समय दानवेन्द्र ने बड़ी तेजी से एक तेज धार वाले खंग से शंकर के वाहन के शिर पर आघात किया ।११। दानव के प्रहार करते ही शिव ने तीक्ष्ण नौंक वाले वाण से उसकी ढाल तथा तलवार का छेदन कर दिया । १२ । तलवार के छिन्न होने के बाद उसने शक्ति से प्रहार करना आरम्भ किया तो महादेव ने वाण से उसके भी खण्ड-खण्ड कर दिये । १३ । दानव के चक्र को मुष्टि के प्रहार से नष्ट भ्रष्ट कर उससे प्रहार के होने को निरर्थक कर दिया ।।१४।।

गदामाविध्य तरसा सचिक्षेप हरं प्रति ।
शंभुना साऽपिसहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ।।१५
तता परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः ।
धावति स्म हरं वेगाच्छंखचुडः क्रुधाकुलः ।।१६
समाहृत्य स्वबाणैर्धैरपतयत शंकरः ।
द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयाऽसुरम् ।।१७
ततः क्षणेन संप्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम् ।
धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ।।१८
आयांतं त निरीक्ष्यैव डमरुध्वनिमादरात् ।
चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुःसहं हरः ।।१९
पूरयामास ककुभः शृङ्गनादेन च प्रभुः ।
स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा ।।२०
त्याजितेभमहागर्वैर्महानादैर्वृषेश्वरः ।
पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ।।२१

शखचूड़ ने प्रहार करने को अपनी गदा जब उठाई तो उसको चलाते

ही शम्भु ने बाण द्वारा तोड़-फोड़कर चूर्ण कर दिया। १५। इन सब आयुधों के नष्ट हो जाने पर वह परशु लेकर शिव पर प्रहार करने को भागा तो महेश्वरने उसके हाथ सहित काट कर भूमि में निपतित कर दिया। १६-१७। थोड़े ही समय के पश्चात् वह दैत्य सचेतन होकर रथारूढ़ हुआ और दिव्यास्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो आकाश में व्यापक रूप से संस्थित हो गया। १८। इस रीति से पुनः आते हुए दानव को देखकर भगवान् शम्भु ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा और डमरू का भीषण शब्द किया। १९। शंकर के डमरू की ध्वनि से उस समय समस्त दिशा-विदिशायें भर गईं और दैत्यों को भयपूर्ण कर शिव गर्जना करने लगे। २०। शिव के गर्वपूर्ण इस महानाद से तथा वृषेन्द्र की उच्च ध्वनि से समस्त भूमण्डल और आकाश गूँज उठा ॥२१॥

महाकालः समुत्पत्य ताडयग्दां तथा नभः।
कराभ्यां तन्निनादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः ॥२
अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह।
भैरवोऽपि महानादं स चकार महारवे ॥२३
महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयंकरः।
वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समंततः ॥२४
सत्रेसुर्दानवाः सर्वे तैः शब्देर्भयदैः खरैः।
चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दाववेन्द्रो महाबलः ॥२५
तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन्व्याजहार यदा हरः।
देवैर्गणैश्च तैः शीघ्रमुक्तं जय जयेति च ॥२६
अथागत्य स दंभस्य तनयः सुप्रतापवान्।
शक्ति चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम् ॥२७
वह्निकूटप्रभाऽऽयांता क्षत्रपालेन सत्वरम्।
निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥२८

उस समय महा कालेश्वर ने भूमि एवं अन्तरिक्ष को अपने दोनों हाथों द्वारा प्रताड़ित किया। उससे भयंकर शब्द हुआ जिसे सुनकर सब असुर एकदम बेचैन हो गये। २२। इसी रीति से क्षेत्रपाल तथा भैरव

ने भी उस युद्धस्थल में महाशब्द किया था ॥२३॥ तब तो समस्त युद्ध के मैदान में चारों ओर महान् कोलाहल हो उठा और गणों के परिकर में सर्वत्र वीर-शब्दों की ध्वनि सुनाई देने लगी ॥२४॥ उस समय भय देने वाले परम तीक्ष्ण शब्दों को सुनकर समस्त दैत्यवृन्द व्याकुल हो गये और महा बलवान् दानेश्वर उन शब्दों को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गया ॥२५॥ तब शिवजी ने उससे कहा—'अरे दुरात्मा ! यहीं खड़ा रह, भाग कर मत जावे'। इतना शिव के कहने पर देवगण और असुरों के समुदाय ने जय-जयकार का उच्चारण किया ॥२६॥ उसके अनन्तर प्रतापी दम्भ के पुत्र ने वहाँ आकर ज्वाला की माला से युक्त एक भीषण शक्ति का प्रहार रुद्रदेव के ऊपर किया ॥२७॥ अग्नि की पूर्ण प्रभा के तुल्य उस छोड़ी हुई शक्ति को आते हुए देखकर प्रतापी क्षेत्रपाल ने आगे की ओर बढ़ते हुए अपने मुख की ज्वाला से उसे नष्ट कर दिया ॥२८॥

पुनः प्रवृते युद्धं शिवदानवयोर्महत् ।
चकपे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥२९
दांभिमुक्ताञ्छरान्शंभुः शरांस्तत्प्रहितान्स च ।
सहस्रशः शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा ॥३०
ततः शंभुः त्रिशुलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह ।
तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्छितः ॥३१
ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च तदाऽसुरः ।
आजघान शरै रुद्रं तान्सर्वानात्तकार्मुकः ॥३२
बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शंकरम् ।
चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः प्रतापवान् ॥३३
ततो दुर्गापतिः क्रुद्धो रुद्रो दुगतिनाशनः ।
तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैस्तमैद्रुतम् ॥३४
ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः ।
अभ्यधावत वै हतु बहूसेनावृतो हरम् ॥३५
गदां चिच्छेद तस्याशवपाततः सोऽसिना हरः ।
शिताधारेण संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥३६

इसके पश्चात् भी दानवेश्वर और भगवान् शम्भु का महान् घोर संग्राम हुआ। उस समय स्वर्ग-भूमि-पर्वत और समुद्र सब कम्पित हो उठे ॥२९॥ दम्भ के पुत्र द्वारा छोड़े गये बाणों को शम्भु ने अपनी परमोग्र बाण वृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥३०॥ इसके अनन्तर शिव ने अत्यन्त क्रोधावेश में आकर असुरेन्द्र पर अपने त्रिशूल का प्रहार किया जिससे वह असह्य वेदना होने के कारण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥३१॥ मूर्च्छा से जगकर एक क्षण के बाद ही वह असुर धनुष पर चढ़ा-चढ़ा कर बहुत ही तीक्ष्ण बाणों की वर्षा शिव पर करने लगा ॥ २ ॥ शंखचूड़ ने अपनी दश सहस्र भुजाओं से शिव को आच्छादित कर एक ही वार में एक सहस्र चक्र छोड़ दिए थे ॥३३॥ कठिन से कठिन दुर्गति के नाशक दुर्गा के पति भगवान शंकर ने उस पर महान् क्रोधित होते हुए अपने बाणों से उन समस्त चक्रों का छेदन कर दिया ॥३४॥ इसके अनन्तर दानवेश्वर अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ गदा लेकर बहुत ही वेग से शम्भु को मारने के लिए दौड़ा तो शिव ने अपने तीक्ष्णतम खंग से उसकी गदा को काट कर फेंक दिया और उस दुरात्मा दैत्य के बढ़े हुए गर्व को चूर-चूर कर दिया ॥१५-३६॥

छिन्नायां स्वर्गदायां च चुकोपातीव दानवः ।
शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुःसहं ज्वलत् ॥३७
सुदर्शनं शूलहस्तमायांतं दानवेश्वरम् ।
स्वत्रिशूलेन बिव्याध हृदि तं वेगतो हरः ॥३८
त्रिशूलभिन्नहृदयान्निष्क्रांतः पुरुषः परः ।
तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान् ॥३९
निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
चिच्छेद च शिरो भीममसिना सोऽपतद्भुवि ॥४०
ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तान् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा ॥४१
क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्याक्रुधाकुलः ।
केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथाऽपरे ॥४२

वीरभद्रोऽपरान्वीरान्बहून् क्रोधादनाशयत् ।
नंदीश्वरो जघानान्यन्बहूनमरमर्दकान् ।।४३
एवं बहुगणा वीरस्तदा संनह्य कोपतः ।
व्यनाशयन्बहून्दैत्यानसुरान् देवमर्दकान् ।।४४
इत्थं बहुतरं तत्र यस्य सैन्यं ननाश तत् ।
विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ।।४५

गदाके कट जाने से दानवेश्वर को बहुत भारी क्रोध हुआ और शत्रुओं को भय देने वाला प्रज्ज्वलित शूल प्रहार करने के लिए उसके उठाया । ३७ । सुदर्शन शूल को हाथ में ग्रहण कर आते हुए दानवेन्द्र को देखकर शिव ने वेगपूर्वक अपने शूल का आघात उसके हृदय में कर दिया ।३८। जिस समय त्रिशूल से उसका हृदय विदीर्ण हुआ तो उसमें से एक अन्य पुरुष निकल पड़ा । पराक्रमी शंखचूड़ ने उससे कहा—तुम यहाँ ही स्थित रहो, किन्तु जब बीर्यशाली शंखचूड़ का निष्क्रमण हो गया तो शब्द करने के साथ ही उसके मस्तक का भयावह खंग के द्वारा छेदन कर दिया गया और फिर वह भूमि पर गिर गया ।३९-४०। उसी समय महाकाली ने अपना मुख खोलकर भीषण-दंष्टाओं से उसको चबा डाला और साथ ही अन्य अनेक असुरों का भी भक्षण कर लिया ।४१। इधर क्षेत्रपाल ने क्रोधपूर्वक बहुतों का भक्षण किया तो बहुत-से भैरव के अस्त्र से छिन्न भिन्न होकर नाशवान् हो गये । ४२ । इसी तरह गणराज वीरभद्र तथा नन्दीश्वर ने क्रोधित होकर अनेक वीर असुरों का नाश कर दिया ।४३। उस समय उस सेना के महान् वीर अत्यन्त क्रोध कर देवों से द्रोह करने वाले असुरों के नाश करने में संलग्न हो गए । ४४ । ऐसे संहार से उस दैत्यराज की सेना के बहुत-से सैनिक नष्ट-भ्रष्ट हो गए और बचे-खुचे भयभीत होकर वहाँ से भाग गये । ४५ ।

।। शंखचूड़ का वध ।।

स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः ।
तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ।।१
उवाच वचनं शंभु तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।

किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य संमुखे समरं कुरु ।।२
इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धः समरे मुने ।
अगच्छन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शंकरस्य च ।।३
दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः ।
चकार शरवृष्टिञ्च तोयवर्ष्टि यथा घनः ।।४
मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः ।
अप्रतर्क्या सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ।।५
तां दृष्ट्वा शङ्करस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया ।
माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ।।६
तेजजा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा ।
दिव्यान्यस्त्राणि तन्तेव निस्तेजांस्य भवन्नपि ।।७

सनत्कुमारजी ने कहा—इस भाँति दानवेन्द्र ने अपनी प्रमुख सेना को नष्ट-भ्रष्ट होते हुए देखकर तथा प्राणों के तुल्य प्रिय बीरों के संहार का ध्यान करके बहुत भारी क्रोध किया । १ । उस समय उसने भगवान् शंकर के समक्ष में आकर उनसे कहा—मैं यहाँ बिल्कुल तैयार होकर आया हूँ, आप अच्छी तरह सम्हल जावें । इन विचारे सैनिकों को मार गिराने से क्या लाभ होगा, अब मुझ से युद्ध करें । २ । हे मुनीन्द्र ! इतना कहकर वह दैत्यराज युद्ध करने का पूरा निश्चय करके शंकर के सामने उपस्थित हो गया । ३ । दानवेन्द्र ने अपने बहुत से उत्तम अस्त्र-शस्त्रों का उस समय महारुद्र पर प्रहार किया । जैसे मेघ जल धारा की वृष्टि किया करता है उसी के समान दानवेश्वर ने बाणों की वृष्टि रुद्रदेव पर की । ४ । उस समय वह अदृश्य होकर अपनी दानवी माया फैलाते हुए अनेक प्रकार का भय दिखाने लगा जिसे देव-वृन्द में यथार्थ रूप से कोई भी न समझ पाया । ५ । प्रभु शंकर उसके इस माया जाल को देखकर लीलापूर्वक अपने अस्त्रों से उस पर प्रहार करने लगे और उसकी माया का नाश करने के लिए महान् दिव्य माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया । ६ । माहेश्वरास्त्र के दिव्य तेज के प्रभाव से उसकी सारी माया नष्ट हो गई और समस्त अस्त्र तुरन्त तेजहीन हो गये । ७ ।

अथ युद्धे महेशानस्तद्वधाय महाबलः ।
शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम् ॥८
तच्छूलं विजयं नाम शंकरस्य परात्मनः ।
संचकाशे दिशः सर्वा रोदसीं संप्रकाशयत् ॥९
कोटिमध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम् ।
दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥१०
तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनायकम् ।
सुरसुराणां सर्वेषां दुःसहं च भयंकरम् ॥११
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमवलंब्य च लीलया ।
संस्थितं परम तत्र एकत्रीभूय विज्ज्वलत् ॥१२
धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् ।
जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्तिम् ॥१३
विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शंखचूडोपरि क्षणात् ।
चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात् ॥१४
अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शंकरम् ।
ययौ विहायसा विप्र मनोयायि स्वकार्यकृत् ॥१५

उसी समय महाबलशाली महेश्वर भगवान् ने दानवेश्वर के वध करने के लिए बहुत से तेजस्वियों के द्वारा भी दुर्निवार्य शूल को ग्रहण किया ॥८॥ वह परमेश्वर शंकर का विजय नाम वाला शूल समस्त दिशाओं में और द्युलोक में अपना अतुल प्रकाश प्रसारित करता हुआ मध्याह्न समय के करोड़ों सूर्य तथा प्रलय काल की अग्नि-शिखा के सदृश निवारण न करने के योग्य, असह्य एवं अमोघ रूप वाला, शत्रुओं के नाश करने वाला था ॥९-१०॥ वह समस्त शस्त्रास्त्रों का साधक, तेज समूह के चक्र के स्वरूप वाला तथा सुरासुर सभी के लिये अति असह्य एवं अत्यन्त भयङ्कर था ॥११॥ वह तेजयुक्त अस्त्र लीलासे ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नष्ट कर देने की शक्ति वाला एवं समस्त प्रचण्डता का एक प्रज्ज्वलित स्वरूप था ॥१२॥ वह शूल एक हजार धनुष के बराबर लम्बा और सौ हाथ चौड़ा नित्य रूप वाले जीव-ब्रह्मके स्वरूप जैसा था जिसका

निर्माण किसी के द्वारा नहीं किया गया है ॥१३॥ ऐसा दिव्य अस्त्र एक क्षण में ही शिव के हाथ से छूटकर आकाश भ्रमण करते हुए शिवाज्ञा को पाकर अविलम्ब हो शंखचूड़ के मस्तक पर गिर गया और तुरन्त ही उसने दानवराज शंखचूड़ को भस्मीभूत बना दिया ॥१४॥ हे मुने ! वह दिव्यास्त्र त्रिशूल शीघ्र ही दैत्य को मार आकाश मार्ग से मनोवेग की तरह शिव के समीप में गया ॥१५॥

नेदुर्दुदुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ।
तुष्टुवमुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१६
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ।
प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा ॥१७
शंखचूड़ो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा ।
शापमुक्तो बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह ॥१८
अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ।
प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना ॥१९
विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महत्प्रियम् ।
संबंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ॥२०
तमित्थं शंकरो हत्वा शिवलोकं जगाम सः ।
सुप्रहृष्टो वृषारूढः सोमः स्कन्दगणैर्वृमः ॥

उस समय प्रसन्नता से स्वर्ग में दुन्दुभियाँ वजने लगीं, किन्नर और गन्धर्व गायन करने लगे, अप्सराऐं आनन्द से नर्तन करने लगीं और समस्त देवगण तथा मुनिवृन्द को अत्यन्त हर्षोल्लास हुआ ॥१६॥ भगवान् शिव पर पुष्प वर्षा हुई और ब्रह्मा, इन्द्रादि देव तथा सभी मुनिगण शंकर की प्रशंसा करने लगे ॥१७॥ दानवराज शंखचूड़ भगवान् शंकर की कृपा से शाप विमुक्त होकर अपने पहिले स्वरूप में स्थित हो गया ।१८। उस शंखचूड़ की अस्थियों से शंख जातियों का उद्भव हुआ । यह शंख का जल अन्यत्र सभी जगह तो प्रशस्त माना जाता है किन्तु शंकर पर नहीं चढ़ाया जाता है ॥१६॥ महालक्ष्मी और विष्णु को इस शंख का जल विशेष रूप से प्रिय होता है । इनसे सम्बन्धित देवादि को भी प्यारा

लगता है, किन्तु केवल एक शंकर ही ऐसे हैं जिन्हें यह प्रिय नहीं है।२०। इस तरह शिव उस दैत्यराज का वध कर वृष वाहन पर आरूढ़ हो उमादेवी, कुमार स्कन्द और गणों के सहित परम प्रसन्न होते हुये शिवलोक को चले गये ।२१।

हरिर्जगाम वैकुंठं कृष्णः स्वस्थो बभूव ह ।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ॥२२
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वं निर्विघ्नमाप कम् ।
निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिः सर्वा सुमंगला ॥२३
इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमुदावहम् ।
सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ॥२४
धन्य यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम् ।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥२५
य इदं शृणुयान्नित्य चरितं शशिमौलिनः ।
श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ॥२६
धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न शंशयः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति शिवभक्ति विशेषतः ॥२७
इदमाख्यानमतुल सर्वोपद्रवनाशनम् ।
परमज्ञानजनन शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥२८
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
धनाढ्यो वैश्यजः शूद्रः शृण्वन् सत्तमतांमियात् ॥२९

भगवान् अपने वैकुण्ठ में चले गये, कृष्ण भी स्वस्थ हो गये और सभी देवता अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥२२॥ इसके संहार होने से जगत् में पूर्ण स्वस्थता हो गई और सर्वतोभाव से विघ्नों का निवारण होगया, आकाश स्वच्छ हो गया और पृथ्वी मंगलमयी बन गई ॥ ३ ॥ मैंने यह परम पावन भगवान् शंकर के चरित्र का वर्णन किया है। यह समस्त दुःखों का हर्ता और परम सुख-सौभाग्य का देने वाला है। इसके सुनने तथा पढ़ने से लक्ष्मी की प्राप्ति और सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ॥२४॥ इससे धन और यश का लाभ होता है और यह समस्त विघ्न

बाधाओं को हटाने वाला है। भुक्ति और मुक्ति दोनों ही को यह देता है तथा मन की सब इच्छाओं को पूर्ण कर देता है। २५। जो भी कोई व्यक्ति इसको नित्य सुनता है या सुनाता है तथा कोई बुद्धिमान् स्वयं पढ़ता-पढ़ाता है यह धन-धान्य, सुख-समृद्धि और सन्तान को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। वह निस्सन्देह समस्त मनोरथों के साथ शिवकी भक्ति को भी विशेष रूपसे प्राप्ति करलेता है।२६-२७। यह एक अनुपम आख्यानहै। इससे सभी उपद्रवों का नाश होकर परम ज्ञान का तथा शिव-भक्ति की अति वृद्धि का लाभ होता है। २८। विप्र ब्रह्मतेज वाला, क्षत्रिय विजय लाभ से युक्त, वैश्य सम्पत्तिशाली और शूद्र इसके सुनने मात्र से श्रेष्ठ हो जाता है ॥२९॥

———

शतरुद्र-संहिता

।। शिवजी की आठ मूर्तियों का वर्णन ।।

शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो ।
सर्वकार्यकरांल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ।।१
तस्य शंभोः परेशस्म मूर्त्यष्टकमयं जगत् ।
तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ।।२
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रोभीमः पशोः पति ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः ।।३
भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यै रष्टरूपै शिवस्य हि ।।४
धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् ।
शंकरस्य महेशस्य शास्वस्यैवेति निश्चयः ।।५
संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ।।६
बहिरंतर्जगद्विश्वं विभर्ति स्पन्दते स्वयम् ।
उग्र इत्युच्यते सद्भी रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ।।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! तात ! हे प्रभो ! जब शिवजी के जो बड़े अवतार हुए हैं उनकी कथा सुनिये । ये इस लोक में समस्त कार्यों के पूर्ण करने वाले तथा प्राणिमात्र को सुख प्रदान करने वाले हैं ।।१।। यह समस्त संसार भगवान् शिवजी की आठ मूर्तियों से युक्त है । जिस प्रकार धागे में पिरोई हुई मणियों का एक समुदाय होता है उसी भाँति यह समस्त विश्व उसी में व्याप्त होकर स्थित हो रहा है ।।२।। भगवान् शिव की शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ये आठ मूर्तियाँ सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ।।३।। शिव के उक्त शर्व प्रभृति आठ रूपों से अधिष्ठित होने वाले भूमि, जल, अग्नि, पवन, अन्तरिक्ष क्षेत्रज्ञ, सूर्य

और चन्द्रमा हैं ॥४॥ शास्त्र का यह निश्चय है कि शिव महेश का विश्वम्भर स्वरूप वाला रूप इस सम्पूर्ण चर-अचर संसार को धारण किया करता है ॥५॥ इस समस्त संसार को जो वरदान देकर जीवित रखने वाला शिव का जल के स्वरूप वाला बताया गया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! सत्पुरुष ऐसा कहा करते हैं कि जो स्वयं बाहर भीतर सर्वत्र स्थित होकर इस संसार का पालन किया करता है तथा इसे चलाता रहता है वह शिव का उग्र नाम वाला रूप होता है ॥७॥

सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम् ।
रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्य भेदकम् ॥८
सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् ।
रूप पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥९
संदीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम् ।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥१०
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य तद्रूपं महादेवस्य चाह्वयम् ॥११
आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥१२
शाखाः पुष्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ।
तद्वदस्य विपुर्विश्वं पुष्यते च शिवार्चनात् ॥१३
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥१४

समुदाय का भेदन करने वाला सर्वव्यापक और सबको अवकाश प्रदान करने वाला आकाशात्मक भीम नाम वाला शिवका भीम रूप होता है ॥८॥ पशुरूप जीवों के पाश-बन्धन का छेदन करने वाला जो समस्त आत्माओं का अधिष्ठाता देव है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों की निवास भूमि है वह पशुपाति नाम वाला शिव का स्वरूप है ॥९॥ सूर्य के स्वरूप में रह कर जो सम्पूर्ण संसार को प्रकाश प्रदान करता है वह ईशान नाम वाला शिव का स्वरूप आकाश में फैला हुआ है ॥१०॥ अमृतमयी किरणों के

द्वारा समस्त जगत् को तृप्त एवं शीतल किया करता है अर्थात् चन्द्र स्वरूप में स्थित है वह शिव का महादेव नाम वाला रूप होता है ।११। आठवाँ परमात्मा शिव का आत्मा नाम वाला रूप होता है, जिसके मूर्त-अमूर्त सब में व्याप्त होने के कारण यह सम्पूर्ण संसार शिवरूपमय है ॥१२॥ वृक्ष की जड़ के सेचन से उसकी समस्त शाखा प्रशाखाओं की पुष्टि की भाँति शिव के शरीर स्वरूप यह सारा संसार है और उसका मूलस्वरूप साक्षात् शिव है । इसके अर्चन से सम्पूर्ण विश्व पुष्ट हो जाता है ॥१३॥ संसार में पुत्र-पौत्रादि के प्रसन्न रखने से पिता को परम प्रसन्नता होने के तुल्य ही समस्त संसारके साथ प्रीति भाव रखनेसे जगत् के पिता शिव स्वयं प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥१४॥

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः ।
अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः ॥१५
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥१६
इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टहिश्रुताः ।
सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥१७

देहधारी किसी भी प्राणी के बन्धन से शिव की अष्टमूर्ति स्वरूप अपने ही को बन्धन समझ कर अपना अनिष्ट मान लेते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१५॥ शिव अपनी अष्टमूर्ति स्वरूप आत्मा से इस सारे विश्व में अधिष्ठित होकर व्याप्त हैं । अतएव परमकारण रूप रुद्रात्मक शिव का सर्वभाव से भजनोपासन करना चाहिए ॥१६॥ हे सनत्कुमारजी ! मैंने परम प्रसिद्ध शिव के आठ स्वरूप, जो सबके उपकार करने के कार्य में सर्वदा तत्पर रहा करते हैं, उनका वर्णन कर दिया । अपने कल्याण की कामना वाले पुरुष इन सबकी सेवा करें ॥१७॥

॥ अर्द्धनारीश्वर शिव का प्रादुर्भाव ॥

शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ।
अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥१
यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धत वेधसा ।

तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुःखितः ॥२
नभोवाणी तदाऽभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥३
नारीणां कुलमीशानान्निर्गतं न पुरा यतः ।
ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शोके न पद्मभूः ॥४
प्रभावेण बिना शंभोर्नर्न जायेरन्निमाः प्रजाः ।
एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥५
शिवाय परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम् ।
संचिंत्य हृदये प्रीत्या तपेशं परमं तपः ॥६
तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः ।
अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥७

नन्दीश्वर ने कहा- हे महाप्राज्ञ ! हे तात ! अब मैं विधाता के मनोरथों के सफल करने वाले और अर्द्धनारीश्वर नाम वाले भगवान् शिव के परम श्रेष्ठ स्वरूप का वर्णन करता हूं उसे आप सुनिये ॥१॥ जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए ॥२॥ उस समय एक आकाशवाणी हुई कि "अब मैथुनी सृष्टि की रचना करो।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया ॥३॥ इसके पहिले शिव से स्त्रियों के कुल का प्राक्ट्य नहीं हुआ था, इसी कारण विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके ॥४॥ शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकेगी—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव के प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या करने को तत्पर हुए ॥५॥ पार्वती स्वरूपिणी परम प्रधान शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय में ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने में ब्रह्माजी लीन हो गए ॥६॥ कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी से शिव थोड़े ही समय में शीघ्र सन्तुष्ट हो गये ॥७॥

ततः पूर्णं चिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम् ।
अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥८

तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या परमयान्वितम् ।
प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ।।९
अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया ।
संभवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्त्ता महेश्वरः ।।१०
वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह ।
ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ।।११
प्रजानामेव वृद्धयर्थं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना ।
तपसा तेन तुष्टोऽस्मिन ददाति च तवेप्सितम् ।।१२
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावतधुरं वचः ।
पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ।।१३
तां दृष्ट्वा परमां शक्ति पृथग्भूतां शिवागताम् ।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ।।१४

इसके अनन्तर पूर्ण चिद्रूप ईश्वर ने अपनी काम प्रदायिनी मूर्ति में प्रवेश करते हुए आधी नारी और आधा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप में पदार्पण किया ।।८।। तब ब्रह्माजी ने भगवान् शिव को अपनी परम शक्तिसे संयुक्त देखकर दण्डवत्प्रणाम करते हुए करबद्ध होकर उनक स्तुति करने का आरम्भ किया ।।९।। उस समय समस्त देवों में परम श्रेष्ठ इस विश्व के रचने वाले महेश्वर शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहने ।।१०।। शिव ने ब्रह्माजी से कहा—हे वत्स ! हे मेरे पुत्र ब्रह्मा ! हे महाभाग ! मैंने तुम्हारे मनोरथ को तत्व रूप से समझ लिया है ।।११।। तुमने इस समय अपनी प्रजा की वृद्धि की इच्छा से ही यह उग्र तप किया है । मैं तुम्हारी तपस्या से अति सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर तुमको तुम्हारा अभीप्सित वरदान देता हूँ ।।१२।। शिवजी ने इस तरह परम उदारभाव से मधुर वाणी में ब्रह्माजी से ये वचन कहकर अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तब उनका शिव से पृथक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा ।१३। उस शिव भगवान की परम शक्ति को महेश से अलग स्थित देखकर विनीत ब्रह्माजी प्रणामपूर्वक प्रार्थना करने लगे ।।१४।।

देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे ।
प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शम्भुना परमात्मना ।१५।
मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः ।१६।
मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ।१७।
न निर्गतं पुरो त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारी कुलश्रेष्ठं मम शक्तिर्न विद्यते ।१८।
सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः ।
तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ।१९।
शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिं देहि नमोस्तु ते ।
चराचरं जगद्वृद्धि हेतोर्मातः शिवं प्रिये ।२०।

विधाता ने कहा—हे अम्बिके ! देवाधिदेव आपके पतिदेव महादेव ने मेरा सृजन किया और इस सम्पूर्ण प्रजा की भी सृष्टि उन्हीं ने की ।१५। हे शिवे ! मैंने इन समस्त देवों की रचना मन से की है। इनके पुनः पुनः निर्माण करने पर भी कुछ वृद्धि नहीं होती दिखाई दे रही है ।१६। अब इससे आगे मैथुन द्वारा उत्पन्न होकर जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा की रचना करने की और प्रजा बढ़ाने की मुझे इच्छा हुई है। यह सब मेरी ही प्रजा है ।१७। अब तक आपसे यह श्रेष्ठ नारी-कुल, जिसका विनाश नहीं है उत्पन्न नहीं हुआ था। अतः यह नारीकुल परम श्रेष्ठ है इसके सृजन की शक्ति मेरे अन्दर नहीं है ।१८। ब्रह्माजी ने कहा– हे जगज्जननी ! समस्त शक्तियों का उद्भव आपकी शक्ति के द्वारा ही होता है अतएव सबकी ईश्वरी आपकी सेवा में मेरा निवेदन है कि परमशक्ति स्वरूपिणी आप मुझे इस नारीकुल के सृजन करने की महाशक्ति प्रदान करने की कृपा कीजिए। मेरा आपको प्रणाम है। सम्पूर्ण चराचर जगत् का कारण एकमात्र भगवान् शिव ही हैं ।१९-२०।

अन्यः त्वत्तः प्राथयामि वरं च वरदेश्वरि ।
देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ।२१।

चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सवगे ।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ॥२२
एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरो ।
तथास्त्विति वचः प्रोच्यः तच्छक्ति विधये ददौ ।२३
तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी ।
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ।२४
तमाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्ति देववरो हरा ।
कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ।२५
तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ।२६
तमाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ।
ब्राह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत् ।२७
दत्त्वैवमतुलां शक्ति ब्रह्मणे सा शिवा मुने ।
विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ।२८

ब्रह्माजी ने कहा—हे वरदेश्वरी ! मैं आपसे एक अन्य वरदान के प्रदान करने की भी प्रार्थना करता हूँ उसे भी आप मुझ पर कृपा करती हुई देने की उदारता करें। हे जगत् की माँ ! मेरा आपको बार-बार प्रणाम है ।२१। एक उत्तम शक्ति के द्वारा ही इस समस्त चराचर जगत् की बढ़ोत्तरी के लिए आप मेरे पुत्र दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में प्रकट हो जावेंगी ।२२। इस प्रकार ब्रह्मा ने जब याचना की तो परमेश्वरी भगवती ने कहा—ऐसा ही हो जायगा—यह कहते हुए उस परम शक्ति को विधाता को दे दिया ।२३। जगदीश्वर जगन्मयी भवानी ने उसी शक्ति के द्वारा अपने भृकुटि के मध्य भाग से अपने ही सदृश कमनीय कान्ति वाली एक अन्य शक्ति का निर्माण कर दिया ।२४। देवों में परम कृपा के सागर लीलाधारी भगवान् शिव ने उस शक्ति को देखकर मुस्कराते हुए जगत् की माता से कहा ।२५। शिव ने कहा—हे देवि ! अब आप पितामह परमेष्ठी की घोर तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हो गई हैं। अतः इनकी आराधना से सन्तुष्ट होती हुई आप इनके सभी मनोरथों को

पूर्ण कर दो।२६। उसी समय देवी ने शङ्कर की आज्ञा को मानकर ब्रह्मा के द्वारा याचना की गई दक्ष की पुत्री होना अङ्गीकार कर लिया।२७। हे मुनीश्वर ! उस जगदीश्वरी शिवा ने उसी समय ब्रह्माजी को अपनी असीम एवं अनुपम शक्ति प्रदान कर दी और पुनः शिव के अङ्ग में प्रविष्ट हो गई और महाशक्ति के सिन्धु भगवान् शिव भी तब अन्तर्धान हो गये।२८।

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी।२९
एतत्ते कथितं तात शिवरूप मसोत्तमम्।
अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामङ्गलदं सदाम्।३०
एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छृणुयादपि।
स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम्।३१

उसी समय से इस जगत् में स्त्री का भाग देना कल्पित हुआ। ब्रह्माजी को महान् आनन्द हुआ और फिर इस संसार में मैथुन द्वारा होने वाली सृष्टि का आरम्भ हो गया।२९। हे तात ! शिव का यह अत्यन्त श्रेष्ठ स्वरूप तुमको बतला दिया है। यह अर्द्धनारी ओर नरार्द्ध स्वरूप सज्जन पुरुषों को परम मङ्गल का प्रदाता है।३०। जो इस कथा का पाठ या श्रवण करता है वह सब भोग भोगकर मोक्ष पाता है।३१।

श्वेतमुनि और ऋषभदेव के रूप में शिवावतार

सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा।
रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा।१
सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे।
कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः।२
मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति।
तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे।३
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च।
उत्पश्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके।४

युगप्रवृत्या च तदा तस्मिश्च प्रथमे युगे ।
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः ।५।
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।
भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ।६।
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे ।
तदा शिष्याः शिखायुक्त भविष्यन्ति विधे मम ।७।

नन्दीश्वर ने कहा— हे सब के ज्ञाता सनत्कुमार ! रुद्र द्वारा कथित यह भगवान् शंकर का चरित्र ब्रह्मा को सर्वदा सुख प्रदान करने वाला होता है ।१। शिव ने कहा—सप्तम मन्वन्तर के वाराह नामक कल्प में समस्त लोकों में प्रकाश प्रसारित करने वाले कल्पेश्वर भगवान् अवतीर्ण होंगे ।२। वे वैवस्वत मनु तेरे, प्रपौत्र रूप में होंगे । हे ब्रह्मा ! उस समय उस मन्वन्तर में चार युग होंगे ।३। हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! ब्राह्मणों का हित सम्पादन करने के लिये और समस्त लोकों पर कृपा करने के वास्ते द्वापर युग के अन्त समय में मैं अवतीर्ण होऊँगा ।४। हे विधाता ! जब युगों की प्रवृत्ति होने का कार्य आरम्भ हो जायगा तो जिस समय प्रथम बार द्वापर आयेगा उस वक्त व्यासजी स्वयं उसके प्रभु होंगे ।५। उस समय विप्रवृन्द की भलाई करने के लिए जब कलियुग का अन्त होगा तो मैं शिवा के साथ श्वेत नामधारी मुनिश्रेष्ठ होकर जन्म लूँगा ।६। उस समय ब्रह्मा स्वयं हिमाचल के रमणीय चोटी पर पर्वतोत्तम छागल में मेरे शिखा से युक्त शिष्य बनेंगे ।७।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।८।
ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ।
जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ।९।
द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहं ऋते ध्यानत्पितामह ।
दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैः कर्महेतुभिः ।१०।
द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः ।
तदा भविष्यामि सुतारोः नामतः कलौ ।११।

तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ।१२।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।
ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ।१३।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ।१४।

तब श्वेत, श्वेताश्व, श्वेत लोहित और श्वेतशिख ये चारों ध्यान योग से मेरे पुत्र होंगे ।८। उस समय तत्व दृष्टि से मेरे अव्यय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर मेरे अन्य अनेक भक्त बन जायेंगे और परब्रह्म के ध्यान में समाधि लगाकर आवागमन तथा वार्धक्य केशादि रहित होकर सुखी होंगे ।९। हे पितामह ! मैं ध्यान योग के बिना मनुष्यों को कभी भी दिखाई नहीं दे सकता हूँ । केवल दान-धर्म आदि सत्कर्म युक्त साधनों द्वारा मुझे प्राणी देखने में समर्थ हो सकते हैं ।१०। द्वितीय द्वापर युग में सत्य नाम वाले प्रजापति व्यास होंगे उस समय कलियुग में मैं 'सुतार' इस नाम से प्रसिद्ध होऊँगा ।११। उस वक्त भी दुन्दुभि, शतरूप हृषीक और केतु इन नामों वाले वेद के ज्ञाता ब्राह्मण मेरे शिष्य बनेंगे ।१२। ये चारों शिष्य मेरे अध्यक्ष अविनाशी स्वरूप को तात्विक रूप से जानकर मेरे लोक में पहुँच जायँगे और मुक्त हो जायँगे ।१३। तीसरे द्वापर में भार्गव मुनि व्यास बनेंगे उस समय मैं पुर के निकट ही दमन—इस नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करूँगा ।१४।

तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ।
विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ।१५।
शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन ।
निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्द्धयिष्ये कलाविह ।१६।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः ।
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ।१७।
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तत्रापि व्रवे विधे ।१८।

सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दुर्भो दुरतिक्रमः ।
शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ।१९
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ।
तदा योगी भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ।२०

उस वक्त वहाँ मेरे विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन इन नामों वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।१५। हे चतुरानन ! तब मैं व्यासजी के शिष्यों की पूर्ण सहायता करूँगा और कलियुग में भी मोक्ष प्राप्ति के सन्मार्ग को बताऊँगा ।१६। चौथे द्वापर युग में अंगिरा ऋषि व्यास जी के स्वरूप में आकर अवतीर्ण होंगे । उस वक्त मैं सुहोत्र नामधारी होकर प्रकट होऊँगा ।१७। हे विधे ! उस समय भी मेरे निम्न नामों वाले चार पुत्र योग के साधन करने वाले परम महान् आत्मा वाले जन्म लेंगे और उनके नाम ये होंगे ।१८। सुमुख, दुर्मुख, दुरतिक्रम और दुदर्भ ये नाम हैं । हे ब्रह्मा ! उस वक्त भी मैं हर तरह से व्यास के होने वाले शिष्य समुदाय का सहायक रहूँगा ।१९। पाँचवें द्वापर में सविता देव व्यास बनेंगे तब भी मैं कंक नाम धारण कर अति महान् योगी तथा तपस्वी के स्वरूप में प्रकट होऊँगा ।२०।

तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानिश्शृणुष्व मे ।२१
सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृति ।२२
तत्रापि कङ्कनामाऽहं साहाय्यं सवितुर्विधे ।
व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ।२३
परिवृत्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः ।
कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ।२४
तदाप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ।
व्यासस्य सुसाहाय्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ।२५
तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ।
सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ।२६

सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ।
तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ।२७
योगं संदृढयिष्यामि महायोगविचक्षणः ।
काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ।२८

उस समय भी योग की साधना करने वाले चार ही पुत्र महान् आत्मा वाले उत्पन्न होंगे जिनके नाम अधोलिखित हैं ।२१। सनक और सनातन के अतिरिक्त परम सामर्थ्य वाले सनन्दन तथा अहंकार से रहित, विभु और निर्मल हृदय वाले चौथे सनत्कुमार नामक होंगे ।२२। हे विधाता उस युग में मेरा नाम कङ्क होगा और मैं तब निवृत्ति के उत्तम मार्ग की वृद्धि करते हुए व्यास जी का सहायक बनूँगा ।२३। इसके पश्चात् जिस समय छठवाँ द्वापर युग का समय उपस्थित होगा तब मृत्यु नामक व्यास के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे जिन्होंने लोकी रचना तथा वेदों का यथाक्रम विभाजन किया है ।२४। उस वक्त भी मेरा आविर्भाव लोकाक्षि के नाम से होगा और व्यास की सहायता करते हुए निवृत्ति के मार्ग को ही बढ़ाने वाला रहूँगा ।२५। उस वक्त भी सुधामा, संजय, विरजा और विजय नाम वाले मेरे चार शिष्य बहुत ही दृढ़ व्रत के धारण करने वाले होंगे ।२६। हे विधिदेव ! जब सप्तम द्वापर युग आयेगा तब इन्द्र व्यास होंगे और मैं सर्वज्ञाता जैगीषव्य होकर प्रकट होऊँगा ।२७। उस समय मैं महान् योग में अत्यन्त निपुण होकर योग को सुदृढ़ बनाऊँगा और काशी में एक गुफा के अन्दर परम उत्तम स्थान की रचना कर कुशासन पर संस्थित रहूँगा ।२८।

साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः ।
उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ।२९
तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे ।
सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ।३०
अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ।३१
तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः ।

व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम ।३२।
कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः ।
चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ।३३।
नवमे परिवर्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ।
भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ।३४।
व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये ।
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ।३५।

व्यास स्वरूप में जो उस वक्त शतक्रतु होंगे उनकी सहायता करते हुए भक्तों का उद्धार करूँगा ।२९। उस समय भी मेरे सारस्वत-योगीश-मेघवाहन और सुवाहन नाम वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।३०। जब इसी क्रम से अष्टम द्वापर आयेगा तब वसिष्ठ मुनि व्यास होंगे और ये ही मुनि श्रेष्ठ उस वक्त वेदों के विभाग करने वाले बनेंगे ।३१। हे योग ज्ञान रखने वालों में परम श्रेष्ठ ! उस समय मेरा नाम दधिवाहन होगा और व्यास का सहायक रहूँगा ।३२। उस वक्त भी परम योगी कपिल-आसुरि-पञ्च-शिख और शाल्वल नाम वाले चार पुत्र होंगे जो सभी समान रूप से योग्यता रखने वाले होंगे ।३३। हे ब्रह्मा ! नवम द्वापर युग में मुनियों में अति श्रेष्ठ सारस्वत नामधारी व्यास होंगे ।३४। उस वक्त में होने वाले व्यास का ध्यान रखकर निवृत्ति मार्ग की वृद्धि के लिये ही मैं ऋषभ नाम से आविर्भूत होऊँगा ।३५।

पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ।
चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ।३६।
तैः साकं दृढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते ।
करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ।३७।
तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ।
उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ।३८।
सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यः सुयोगकृत् ।
सारस्वतव्यासमनः पूर्त्तो नानोतिकारकः ।३९।

अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ।
जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ।४०।
प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः ।
ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ।४१।
पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधिः ।
उपादिदेश तद्धर्मान्राज्ययोगान्प्रजापते ।४२।

उस समय मेरे पराशर-गर्ग-भार्गव और गिरीश नाम वाले चार परम श्रेष्ठ योगी शिष्य रूप में प्रकट होंगे ।३६। हे प्रजापते ! इनको साथ में लेकर मैं संसार योग के मार्ग को अति सुदृढ़ बनाते हुए व्यास का सहायक बनूँगा ।३७। मैं उस वक्त अत्यन्त दुःखित भक्तजनों का और तुम्हारा भी उद्धार करूँगा ।३८। मेरा यह अवतार ऋषभ के नाम वाला सुयोग करने के लिये सारस्वत व्यास मुनि का सहायक और बहुविध कल्याण का करने वाला होगा ।३९। उस समय मैंने अवतार लेकर भद्रासु नाम वाले एक नृप के बालक को जो छींक के दोष के कारण मृत्युगत हो गया था और पिता ने त्याग दिया था उसे पुनः जीवित कर दिया था ।४०। जब वह बालक सोलह वर्ष का हो गया उस समय उस राजा के घर में मेरी आत्मा ऋषभ के स्वरूप में हो गई थी ।४१। हे प्रजापते ! उस वक्त परम शोभित स्वरूप वाले कृपा के निधि उन मुनि का बहुत बड़ा आदर-सत्कार किया गया था । मुनिवर ने राजा को राजयोग से युक्त धर्म का उपदेश दिया था ।४२।

ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशम् ।४३।
तदङ्गभस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ।
स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ।४४।
इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम् ।
ययौ स्वैरगस्ताभ्यां पूजितो ऋषभः प्रभुः ।४५।
भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे ।
राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्त्तिमालिनीम् ।४६।

इत्थंप्रभाव ऋषभोवतारः शंकरस्य मे ।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ।४७
ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ।४८

ऋषभ देव ने परम प्रसन्न होकर राजा को एक दिव्य कवच-शङ्ख और समस्त शत्रु समुदाय का नाश करने वाला एक खड्ग प्रदान किया था ।४३। दीनजन पर दया की वृष्टि करने वाले ऋषभ मुनिराज ने उस राजा के समस्त अंगों में भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियों के समान बल प्रदान किया ।४४। उस समय माता के साथ भद्रायु को भलीभाँति समझा कर धीरज दिया और फिर माता एवं पुत्र द्वारा वंदित होकर ऋषभ मुनि अपने अभीष्ट स्थान को चले गये थे ।४५। हे विधे ! इसके अनन्तर राजर्षि भद्रायु समस्त शत्रुओं पर विजय पाकर कीर्त्ति-मालिनी नाम वाली एक सुन्दर कन्या के साथ विवाह कर धर्म के साथ राज-काज करने में तत्पर हो गये ।४६। मेरे इस नवम ऋषभ अवतार का ऐसा प्रभाव होता है जो सदा सत्पुरुषों का उद्धारक–दीनों का वन्धु-रूप हुआ है । मैंने तुमको इसे सुना दिया है । यह ऋषभ चरित्र मानवों को पवित्र बना देने वाला, स्वर्ग सुख प्रदाता और यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला है । इसे सब को यत्न के साथ अवश्य ही श्रवण करना चाहिए ।४७–४८।

ग्यारह रुद्रावतारों का वर्णन

एकादशावतारान्वै शृणवथो शङ्करान्वरान् ।
यान्छ्रुत्वा न हि बाध्येत बाधाऽसत्यादिसम्भवा ।१
पुरा सर्वे सुराः शक्रमुखा दैत्यपराजिताः ।
त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ।२
दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्तं कश्यपान्तिकम् ।
बद्ध्वा करान्नतस्कंन्धाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम् ।३
सुनुत्वा तं सुराः सर्वे कृत्वाविज्ञप्तिमादरात् ।
सर्वं किवेदयामासुः स्वदुःखं तत्पराजयम् ।४

ततः स कश्यपस्तात तत्पिता शिवशक्तधीः ।
तदाकर्ण्यामरार्कं वै दुःखिमोऽभूत्तदाऽधिकम् ।५
तानाश्वास्य मुनिः सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः ।
काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ।६
गङ्गांभसि ततः स्नात्वा कृत्वा तं विधिमादरात् ।
विश्वेश्वरं समानर्चं साम्बं सर्वेश्वरं प्रभुम् ।७

नन्दीश्वर ने कहा—अब भगवान् शिव के ग्यारह परम श्रेष्ठ अवतारों की कथा सुनो जिससे असत्य आदि के दोषों से उत्पन्न होने वाली बाधा मनुष्यों को कभी भी पीड़ित नहीं किया करती हैं ।१। पूर्व समय में इन्द्रादि देवगण दैत्यों से पराजित होकर सब भयभीत होते हुए अपनी अमरावती को छोड़कर इधर-उधर भाग गये ।२। असुरों से उत्पीड़ित होकर समस्त देवता कश्यप ऋषि के पास पहुँचे और भयाकुल होकर दोनों हाथ जोड़कर कन्धा झुकाते हुए उन्हें प्रणाम किया ।३। इसके अनन्तर अपने दैत्यों से होने वाले पराजय के दुःख के विषय में ऋषि से आदरपूर्वक प्रार्थना की ।४। हे तात ! देवगण के पिता भगवान् शिव में आसक्त होने के कारण उनकी उस प्रार्थना को सुनकर विशेष दुःखित हुए ।५। हे मुने ! तब परम शान्त बुद्धि वाले कश्यप ऋषि ने देवताओं को आश्वासन देते हुए धैर्य बधाया और प्रसन्नता के साथ विश्वनाथ की पुरी काशी को चले गये ।६। वाराणसी में गंगा स्नान कर विधिपूर्वक अपना नित्य नैमित्तिक कर्म सादर समाप्त कर उमा के सहित जगदीश्वर विश्वनाथ का अर्चन किया ।७।

शिवलिंगं सुसंस्थाप्त चकार विपुलं तपः ।
शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया ।८
महान्कालो व्यतीताय तपस्तस्य वै मुने ।
शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्य्यशालिनः ।९
अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वर दातुं तदर्षये ।
स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुः सतां गतिः ।१०
वरं ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नोमहेश्वरः ।

कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्त भक्तवत्सलः ।११।
दृष्ट्वाऽथ त महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः ।
तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः ।१२।
देवदेव महेशान शरणागतवत्सल ।
सर्वेशः परमात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः ।१३।
बलनिग्रहकर्त्ता त्व महेश्वरं सतां गतिः ।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ।१४।

काशीपुरी में कश्यप ऋषि ने शिव के लिंग की स्थापना करके देवगण की भलाई करने की इच्छा से शिव को प्रसन्न करने के लिये प्रेम भाव के साथ अत्यन्त कठिन तपस्या की ।८। हे मुनिवर ! इस तरह विश्वनाथ के चरणों में धीरज के साथ मन लगाकर तपश्चर्या करते हुए कश्यप मुनि का बहुत सा समय व्यतीत हो गया ।९। इसके पश्चात् ऐसे मनोयोग से कठिन तपस्या करने वाले ऋषि को परम सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता से वरदान देने के लिये सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले दीनबन्धु शिव प्रकट हो गये ।१०। उस समय शिव ने भक्तवत्सलता के कारण द्रवीभूत होकर परम भक्त कश्यप ऋषि से कहा—लो, मेरा यह वरदान ग्रहण करो ।११। भगवान् महेश्वर का साक्षात् दर्शन कर कश्यप ऋषि अत्यन्त हर्षित हुए और उत्तम बुद्धि वाले कश्यप ने साञ्जलि उनको प्रणाम कर स्तुति करना आरम्भ किया ।१२। कश्यप ऋषि ने निवेदन किया—हे देवदेव ! हे शरणागत वत्सल ! आप सब के स्वामी, परमेश और ध्यान-योग से प्राप्त करने के योग्य हैं । आप सर्वदा अविनाशी एवं अद्वैत रूप हैं ।१३। हे महेश्वर ! आप बल के अवरोधक, सज्जनों को सद्गति देने वाले, दीन-हीनों के बन्धु, दया के अगाध सागर और अपने भक्तजनों की रक्षा करने में कुशल हैं ।१४।

एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ।
दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ।१५।
असमर्थो रमेशोऽपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः ।
अतः सुरामच्छरणा देवयन्तोऽसुखं च तत् ।१६।

तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशक ।
त्वत्पूरितां तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ।१७।
शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाऽहं महेश्वर ।
कामं मे पूरय स्वामिन्देवदुःखं विनाशय ।१८।
पुत्रदुःखैश्च देवेशः दुःखितोऽहं विशेषतः ।
सुखिनं कुरु मामीश सहायस्त्वं दिवौकसाम् ।१९।
भूत्वा मम सुता नाश देवायक्षाः पराजिताः ।
दैत्यैर्महाबलैः शम्भो सुरानन्दप्रदो भव ।२०।
सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकृत् ।
यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो ।२१।

हे प्रभो ! ये समस्त देवगण आपके हैं और विशेष रूप से ये आपकी भक्ति करने वाले हैं । इस समय ये बिचारे असुरों से पराजित होकर महादुःखित हो रहे हैं । आप कृपा कर इनकी रक्षा कीजिए ।१५। भगवान् विष्णु भी स्वयं असमर्थ होकर आपको ही आकर कष्ट देते हैं । अतएव देवगण दुःखित होते हुए बार-बार मेरी शरण में आते हैं और अपने उत्पीड़न की बात कहा करते हैं ।१६। हे देवेश्वर ! देवों के दुःख विनाशक ! अपने इसी मनोरथ की पूर्णता के लिये आपको प्रसन्न करने को मैंने इस घोर तपस्या करने का अनुष्ठान किया है ।१७। हे स्वामिन् ! हे महामहेश्वर ! मैं सब प्रकार से अब आपकी शरण में आ गया हूँ । आप कृपा कर मेरी कामना सफल करते हुए देवगण की पीड़ा का निवारण करें ।१८। हे ईश ! मैं अपने आत्मजों के दुःख से विशेष दुःखित हो रहा हूँ । आप स्वयं सर्वदा देवों के सहायक रहे है अब इनका दुःख दूर कर मुझे सुख प्रदान करें ।१९। हे शम्भो ! हे नाथ ! देवगण मेरे पुत्र होते हुए इन दुष्ट दैत्यों से पराजित हुए हैं । आप सदा यक्ष और देवों को आनन्द देने वाले हैं ।२०। हे महेशान ! आप समस्त देवगण की सहायता करने वाले हैं । अतः अब ऐसा अपना अनुग्रह करें जिससे दैत्यों द्वारा देवताओं को कोई पीड़ा की बाधा उपस्थित न हो ।२१।

इत्युक्तस्य तु सर्वशस्तथेति प्रोच्य शंकरः ।

पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ।२२
कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद्द्रुतम् ।
देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात् ।२३
ततः स शङ्करः सर्वं सत्यं कर्तुं स्वकं वचः ।
सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान् ।२४
महोत्सवस्तदाऽऽसीद्धै सर्वं शिवमवं त्वभूत् ।
आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना काश्यपेन च ।२५
कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरूपाक्षो ४ विलोहितः ५।
शास्ताऽ६ जपाद ७ हिर्बुध्न्यः शंभु ९ श्चण्डो १० भवस्तथा ११।२६
एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः ।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाः शिवरूपाः सुखास्पदाः ।२७
ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः ।
दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः ।२८

नन्दीश्वर ने कहा—जब कश्पक ऋषि ने ऐसी दीन प्रार्थना की तो 'ऐसा ही होगा' इतना कहकर उनके देखते हुए ही भगवान् शङ्कर वहाँ ही अन्तर्हित हो गये ।२२। इसके अनन्तर कश्यप मुनि अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शीघ्र अपने स्थान पर लौट आये और यह समस्त वृतान्त प्रेम-पूर्वक देवगण को सुना दिया ।२३। इसके पश्चात् भगवान् शिव अपना वचन सत्य करने के लिये एकादश स्वरूप धारण कर कश्यप ऋषि से सुरभि में प्रकट हुए ।२४। उस समय विश्व में सर्वत्र आनन्दोल्लास छा गया । ऐसा प्रतीत होता था मानो यह जगत् सब शिव स्वरूप ही हो गया है । समस्त देवगण कश्यप जी से बहुत अधिक प्रसन्न हुए और उत्सव मनाने लगे ।२५। सुरभि के एकादश पुत्रों के नाम कपाली-पिंगल-भीम-विरूपाक्ष-विलोहित-शास्ता-अहिर्बुध्न्य-शम्भु-चण्ड और भव हुए थे ।२६। ये एकादश रुद्र सुरभि के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं और इन सबका उद्-भव केवल देवगण के कार्य सम्पादन करने ही के लिये हुआ था । ये सब सुख के आलय साक्षात् शिव के स्वरूप हैं ।२७। ये महान् बली एवं परम

पराक्रमी वीर थे । कश्यप के पुत्र रूप में उत्पन्न होकर सुरों की सहायता इन ग्यारह रुद्रों का प्रादुर्भाव हुआ । इन्होंने युद्धमें दैत्यों का संहार किया ।२८

तद्रुद्रकृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः ।
चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थमानसाः ।२९
अद्यापि ते महारुद्राः सर्वे शिवस्वरूपकाः ।
देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ।३०
ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः ।
विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ।३१
तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः ।
सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागशः ।३२
इति ते वर्णितास्तातावतारा: शङ्करस्य वै ।
एकादशमिता रुद्राः सर्वलोकसुखावहाः ।३३
इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ।३४
य इदं शृणुयात्तात श्रावणेद्वा समाहितः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति लभेत सः ।३५

इसके उपरान्त एकादश रुद्रों के अनुग्रह से दैत्यों पर विजय प्राप्त कर देवगण ने निर्भय होकर इन्द्रादि के सहित सुखपूर्वक अपने राज्य के आनन्द का अनुभव किया ।२९। आज तक भी शिव के स्वरूप वाले ये महारुद्र देवगण की रक्षा करने के लिये निरन्तर देवलोक में विराजमान रहते हैं ।३०। परम भक्तवत्सल विविध लीला-कुशल ये ईशान दिशा में सदा निवास करते हुए वहाँ रमण किया करते हैं ।३१। उसके अनुगामी सेवक करोड़ों की संख्या में हैं जोकि त्रिभुवन में सब जगह चारों ओर स्थित रहा करते हैं ।३२। हे तात ! हमने तुम्हारे समक्ष से भगवान् शिव के इन एकादश अवतारों का वर्णन कर दिया । यह चरित्र सबको अत्यन्त सुख देने वाला होता है ।३३। जो कोई भी इस परम पावन चरित्र को सुनता या सुनाता हैं वह इस लोक में समस्त लौकिक सुखों का उपभोग कर अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।३४-३५।

दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा का जन्म

अथान्यच्चरितं शम्भोः शृणु प्रीत्यामुने ।
यथाबभूव दुर्वासाः शंकरो धर्महेतवे ।१।
ब्रह्मपुत्रो बभूवात्रितपस्वी ब्रह्मद्वित्प्रभुः ।
अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः ।२।
सुनिर्देशाद्ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया ।
स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ।३।
प्राणानायम्य विधिवन्निविन्ध्यातटिनीतटे ।
तपश्चचार सुमहदन्दोऽव्दशतं मुनिः ।४।
य एक ईश्वरः कश्चिदविकारो महाप्रभुः ।
स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ।५।
बहुकालो व्यतीयाय तस्मिन्स्तपति सत्तपः ।
आविर्वभूव तत्मात्तु शुचिज्ज्वाला महीयसी ।६।
तयासन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः ।
तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ।७।

नन्दीश्वर ने कहा—हे महामुने ! अब आप भगवान् शिव का वह चरित्र प्रेमपूर्वक सुनो जिसमें शिव ने धर्म के निमित्त से दुर्वासा का स्वरूप ग्रहण किया था ।१। परम तपस्वी, पूर्ण ब्रह्म के ज्ञाता, महामनीषी, विधाता के अत्यन्त आदेश-पालक और अनसूया के पति अत्रि मुनि ब्रह्मा जी के पुत्र थे ।२। अपने पिता की आज्ञा मानकर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से अत्रि अपनी पत्नी के साथ त्र्यक्ष नामक गिरि पर तपश्चर्या करने के लिये चले गये ।३। विन्ध्य गिरि के निकट नदी तट पर अत्रि मुनि ने सविधि अपने प्राणों को रोक कर निश्चिन्त रूप से सौ वर्ष तक महाघोर तपस्या की ।४। उस समय अत्रि ने अपने हृदय में ऐसा ठान लिया था कि जो भी कोई अधिकारी एकमात्र परमेश्वर महाप्रभु हैं वे मुझे अवश्य ही श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने का वरदान देंगे ।५। इस तरह अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए जब अधिक समय व्यतीत हो गया तो उनके मस्तक से बहुत ही तीक्ष्ण पवित्र अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई ।६। उस अग्नि-

ज्वाला का ऐसा तीव्रतम तेज था कि समस्त इन्द्रादि देवगण, मुनिमण्डल, ऋषि समूह और लोक भस्म होकर पीड़ित होने लगे ॥७॥

अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ।
ब्रह्मस्थान ययुः शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥८
नुत्वा नुत्वा विधिन्देवास्तत्स्वदुःखन्न्यवेदयन् ।
ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोक ययादरम् ॥९
तत्र गत्वा रमानाथं नुत्वा नुत्वा विधिः सुरैः ।
स्वदुःखं तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ॥१०
विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ।
हरं प्रणम्य तत्रैत्यंतुष्टाव परमेश्वरम् ॥११
स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदुःखं च न्यवेदयत् ।
शर्वं ज्ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ॥१२
अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ।
मुने संमंत्रयाञ्चक्रु रन्योन्यं जगतां हितम् ॥१३
तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ।
जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरं दातुं तदर्षये ॥१४
स्वचिह्नचिह्नतांस्तान्स दृष्ट्वाऽत्रिर्मुनिसत्तमः ।
प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥१५

हे मुनिवर ! उस समत इन्द्रादि देववृन्द और मुनि आदि सभी उस अग्नि से संतप्त होकर शीघ्र ही ब्रह्माजी के निवास स्थान पर गये ॥८॥ हे तात ! वहाँ पहुंच कर सबने प्रणामपूर्वक स्तवन कर ब्रह्माजी से अपने दुःख का वृत्तान्त बताया । तब ब्रह्मा भी उन सबको साथ लेकर विष्णु-लोक को गये ॥९॥ हे मुनिराज ! वहाँ पहुंचकर सब देवों के सहित विष्णु को बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे अपने दुःख की प्रार्थना की ॥१०॥ इसके अनन्तर इन सबको अपने साथ लेकर भगवान् विष्णु शिव के समीप गये । वहाँ महेश्वर को प्रणाम करके सभी लोग भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ॥११॥ अधिक समय तक स्तुति करने के पश्चात् व्यापक शिव से अत्रि के तप द्वारा उत्पन्न अग्नि के तेज से होने वाला

अपने दुःख का निवेदन किया ।१२। हे मुने ! उस समय वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों ने परस्पर में मिलकर समस्त लोकों के कल्याण के लिये परामर्श करना आरम्भ करदिया ।।१३।। हे देव ! खूब सोच विचार कर ब्रह्मादि तीनों देवता अत्रि ऋषि को वरदान देने के लिए शीघ्रता से ऋषि के आश्रम में गये ।।१४। वहाँ उस समय अत्रि ने इन तीनों को अपने-अपने विशेष चिह्नों से अंकित देखकर सादर सबको परम प्रिय वाणी द्वारा प्रणाम किया और स्तुति करने लगे ।।१५।।

ततः स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ।।१६
हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः ।
प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्ष संहारकारकाः ।।१७
एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे ।
यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ।।१८
यूयं त्रयः सुराः कस्मादागता वरदर्षभाः ।
एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ।।१९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः ।
याद्दवक्तस्ते संकल्पस्तथैवाभून्मुनीश्वर ।।२०
वयं त्रयो भवेशानाः समाना वरदर्षभाः ।
अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ।।२१

इसके अनन्तर परम विनीत ब्रह्मा के आत्मज अत्रि विस्मित होकर ब्रह्मा विष्णु और महेश इन देवों से हाथ जोड़ कर कहने लगे ।।१६।। अत्रि मुनि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे महेश्वर ! आप लोग इस समस्त विश्व के परम पूज्य माने जाते हैं और इस जगत् के आप प्रभु ईश्वर तथा सृजन, पोषण और विनाश के करने वाले हैं ।।१७।। मैंने तो अपने पुत्र की प्राप्ति के लिए केवल शिव का ही स्त्री के सहित तप में ध्यान स्मरण किया था क्योंकि शंकर संसार में ईश्वर विख्यात हैं ।१८। हे वरदाताओं में श्रेष्ठ ! अब आप तीनों ही देवता यहाँ किस कारण से आये हैं ? पहिले मेरे संशय को मिटा कर फिर वरदान देने की कृपा

करें ॥१६॥ हे मुने ! अत्रि के इन वचनों को सुनकर इसका उत्तर उन तीनों देवों ने यह दिया कि हे अत्रि मुने ! तुमने जो भी हृदय में संकल्प किया है वह उसी तरह से पूर्ण होगा ॥२०॥ तीनों देवों ने कहा—हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश समान वर देने वाले हैं। इसलिए हमारे अंशों से जन्म ग्रहण करने वाले तुम्हारे एक नहीं तीन पुत्र होंगे ॥२१॥

विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः ।
इत्युक्त्वा ते त्रयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥२२
वरं लब्ध्वा मुनिः सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा ।
युतोऽनुसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥२३
अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः ।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः ॥२४
विधेरंशाद्विधुजज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात् ।
आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैः स एव हि ॥२५
विष्णोरंशात्स्त्रियां तस्यामत्रेर्दत्तो व्यजायत ।
सन्यासपद्धतिर्येन वर्द्धिता परमा मुने ॥२६
दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तमः ।
जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरधर्मप्रवर्तकः ॥२७
भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः ।
चक्रे धर्मपरीक्षाञ्च बहूनां स दयापरः ॥२८

वे तीनों पुत्र ऐसे होंगे जो अपने माता-पिता की कीर्त्ति की वृद्धि करेंगे इतना कह कर वे तीनों देव प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने निवास स्थानों को चले गये।२२। हे मुनिवर ! इसके उपरान्त अत्रि मुनिजी इच्छित वर पाकर आनन्द अनसूया के सहित प्रसन्नचित्त से अपने स्थानको चले गये और ब्रह्मानन्द को पाने लगे ॥२३॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु महेश अत्रि की पत्नी अनसूया के उदर से पुत्र रूप में परम प्रसन्न तथा विविध लीलाओं के रचने वाले उत्पन्न हुए ॥२४॥ अनसूया के गर्भ से अत्रि के द्वारा ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ जो कि देवों के द्वारा फैंके जाने पर फिर समुद्र से प्रकट हुआ था ॥२५॥ भगवान् विष्णु के अंग से अनसूया

में अत्रि के द्वारा दत्तात्रेय भगवान् उद्भूत हुए जिनने जगत् में संन्यास की विशाल पद्धति का प्रचार किया था ॥२६। हे मुनिवर ! भगवान् शंकर के अंश से अनसूया की कुक्षि से धर्म के श्रेष्ठ प्रवर्तक दुर्वासा उत्पन्न हुए ॥२७॥ भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मतेज की वृद्धि करने वाले दुर्वासा के स्वरूप से समुत्पन्न होकर दयालुता के साथ बहुतों की धर्मनिष्ठा की जाँच की थी ॥२८॥

सूर्य्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत् ।
तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ॥२६
सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः ।
नियमं हि चकारासावेकादश्यां व्रते दृढम् ॥३०
एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम् ।
करिष्यामीति सुदृढसकल्पस्तु नराधिपः ॥३१
ज्ञात्वा तन्नियमं तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तदन्तिकं गतिः शिष्यैर्बहुभिः शंकरांशजः ॥३२
पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् ।
कर्त्तुंव्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ॥३३
ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः ।
विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥३४
धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ।
जलं प्राश्य स्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया ॥३५

हे मुनीश्वर ! सूर्यवंश में समुत्पन्न परम धार्मिक राजा अम्बरीष की धर्म परीक्षा इन्हीं दुर्वासा मुनि ने की थी, उस चरित्र को मैं सुनाता हूँ। तुम उसे श्रवण करो ॥२६॥ राजा अम्बरीष विशाल सातद्वीप की भूमि का अधीश्वर था। एकादशी के दिन सविधि उपवास करने का उसका बहुत ही दृढ़ नियम था ॥३०॥ राजा अम्बरीष का ऐसा प्रण था कि मैं सदा एकादशी में उपवास करके द्वादशी में ही पारण किया करूँगा ॥३१॥ भगवान् शंकर के अंश से समुत्पन्न हुए

दुर्वासा मुनि ने राजा के इस दृढ़ संकल्प को जानकर अपने शिष्य-वर्ग के साथ राजा अम्बरीष के यहाँ पदार्पण किया ॥३२॥ अम्बरीष द्वादशी तिथि का थोड़ा सा ही शेष समय जानकर अपने एकादशी व्रत का पारण करने ही वाले थे कि वहाँ दुर्वासा पहुँच गये। राजा ने उनको निमन्त्रण दे दिया था ॥३३॥ राजा का निमन्त्रण स्वीकार कर दुर्वासा शिष्यों के सहित स्नानादि करने को चले गये। दुर्वासा मुनि ने राजा की दृढ़ता की परीक्षा करने के हेतु से वहाँ जान बूझकर अधिक विलम्ब कर दिया ॥३४॥ राजा ने अपने धर्म में विघ्न समझकर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार जल ग्रहण कर पारण कर लिया और दुर्वासा की प्रतीक्षा में भोजन नहीं किया ॥३५॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः।
कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥३६
चु क्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृषस्य सः।
प्रोवाच वचनं तूग्रं स मुनिः शंकरांशजः ॥३७
मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतं त्वयाधम।
दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥३८
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समुद्यतः।
समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम् ॥३९
प्रजज्वालाति तं चक्रंमुनिं दग्धुं सुदर्शनम्।
शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥४०
एतस्मिन्नंतरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी।
अम्बरीषं महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥४१
सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनाऽर्पितम्।
शांत कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥४२

उसी समय मुनिराज दुर्वासा वहाँ आगये और राजा को भोजन किया हुआ समझकर उस पर परीक्षा के लिए अत्यधिक क्रोधित हुए ॥३६॥ शिव के अंशावतार दुर्वासा मुनि धर्म की जाँच करते हुए राजा से रोषावेश में आकर कठोर वचन कहने लगे ॥३७॥ दुर्वासा ने राजा

अम्बरीष से कहा—अरे अधम नृप तूने ! मुझे तो भोजन का निमन्त्रण दे दिया और मुझे भोजन कराने के पूर्व ही जलपान कर लिया । मैं तुझे इसका फल दिखाता हूँ क्योंकि मैं तुझ जैसे दुष्टों को दण्ड देने वाला हूँ ।।३८।। क्रोध से अरुण नेत्र वाले ऋषि इतना कहकर राजा को भस्मीभूत करने को उद्यत हुए थे कि नृप के समीप स्थित सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर उसकी रक्षा की ।।३९।। शिव की माया से मोहित होकर दुर्वासा को शिव का ही रूप समझ कर मुनि को दग्ध करने के लिए सुदर्शन चक्र प्रज्ज्वलित रूप वाला हो गया ।।४०।। उसी समय परम वैष्णव और ब्राह्मणों के भक्त महात्मा अम्बरीष से बिना शरीर वाली व्योम वाणी ने कहा—हे नृप ! इस समय दुर्वासा को भस्म करने के लिये परम प्रज्ज्वलित शिव से ही प्राप्त भगवान् विष्णु के इस सुदर्शन चक्र को प्रार्थना द्वारा शान्त कर दो ।।४१–४२।।

दुर्वासाऽयं शिवः साक्षाद्यच्चक्रं हरयेऽर्पितम् ।
एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम ।।४३
तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः ।
शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ।।४४
इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ।
अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ।।४५
यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ।।४६
यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः ।
सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ।।४७
इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धीः ।।४८

हे नृपश्रेष्ठ ! यह दुर्वासा मुनि साक्षात् महेश्वर ही हैं । इन्हीं ने इस सुदर्शन चक्र को विष्णु के लिए दिया था । इन दुर्वासा को कोई सामान्य मुनि मत समझो ।।४३।। इस समय यह ऋषि तुम्हारी धर्म परीक्षा करने केलिए ही उपस्थित हुये हैं । अब तुम इनकी शरण में जाओ अन्यथा

प्रलय हो जायगा ॥४४॥ नन्दीश्वर ने कहा—हे मुनीश्वर ! इतना कह-कर आकाशवाणी शान्त हो गई और राजा अम्बरीष ने शिव के अंश स्वरूप दुर्वासा की स्तुति करनी आरम्भ कर दिया ॥४५॥ राजा अम्ब-रीष ने प्रार्थना की—यदि आपने मुझे वरदान प्रदान किया है किम्बा मैंने अपना धर्मोचित अनुष्ठान किया है, यदि मेरा कुल देवगण और ब्राह्मण वर्ग का भक्त है तो मेरा विनयपूर्ण निवेदन है कि भगवान् विष्णु का अस्त्र सुदर्शन चक्र अब शान्त हो जावे ॥४६॥ यदि मेरे ऊपर मेरे भक्त वत्सल भगवान् परम प्रसन्न हैं तो मेरी प्रार्थना है कि यह सुदर्शन देव विशेष रूप से अब शान्त हो जाय ॥४७॥ नन्दीश्वर ने कहा—हे बुद्धिशालिन् ! इस तरह शिव के समक्ष में अम्बरीष के द्वारा स्तुति किये जाने पर शिव के द्वारा प्रदान किया हुआ सुदर्शन चक्र दुर्वासा को शिव का अंश समझ कर उसी समय शान्त हो गया ॥४८॥

अथाम्बरीषः स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम् ।
शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥४६
सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजा ।
भुक्त्वा तस्मै वरं दत्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥५०
अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितं मुने ।
प्रोक्तमन्यच्चरित्रं त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥५१
पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै ।
मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥५२
तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ।
तं तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं प्रणवशान्मुने ॥५३
सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदितः ।
नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥५४
नियमं सुदृढ़ दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ।
दुर्वासाः सुप्रसन्नात्मा वरं तस्मै प्रदत्तवान् ॥५५
श्रीकृष्णनियमस्थापि परीक्षां स चकार ह ।
तां शृणुत्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम ॥५६

राजा ने इसके अनन्तर अपनी परीक्षा करने के लिए ही समागत दुर्वासा मुनि को भगवान् शिव का अंश समझ कर उन्हें सादर प्रणाम किया ॥४९॥ उस समय शिव के अंश से उत्पन्न होने वाले दुर्वासा अम्बरीष पर बहुत अधिक प्रसन्न हुए और उसके भोजन को स्वीकार कर अभीष्ट स्थान को वापिस चले गये ॥५०॥ हे मुनीश्वर ! मैंने अभी तो यह अम्बरीष की परीक्षा करने से सम्बन्धित दुर्वासा के चरित्र का वर्णन किया है। अब इनके अन्य चरित्र को मैं सुनाता हूँ। उसे श्रवण करो ॥५१॥ हे मुने ! इसके अनन्तर मुनिरूप को धारण करने वाले दुर्वासा ने भगवान् श्रीराम की परीक्षा करने का निश्चय किया। श्रीराम ने कालरूप मुनि से यह नियम निश्चित किया था कि हमारे आपके सम्वाद के समय में कोई भी न आने पावेगा ॥५२॥ दुर्वासा मुनि ने यह जानकर श्रीराम का नियम भंग करने के लिये हठ करके उनके समीप में लक्ष्मण को भेज दिया था और श्रीराम ने अपने किये प्रण के वशीभूत होने के कारण शीघ्र ही अपने भाई लक्ष्मण का परित्याग कर दिया ॥५३॥ यह कथा बहुधा मुनिगण के द्वारा कही हुई है और परम प्रसिद्ध भी है। इसे प्रायः सभी विद्वान भलीभाँति जानते हैं। अतएव विस्तार से मैं इसका वर्णन नहीं कर रहा हूँ ॥५४॥ श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त दृढ़ नियम को देखकर महर्षि दुर्वासा को बहुत ही प्रसन्नता हुई और इसके लिये श्रीराघवेन्द्र को वरदान भी दिया ॥५५॥ हे मुनिवर ! इसी प्रकार दुर्वासा मुनि ने एकबार श्रीकृष्ण के नियम की परीक्षा की थी। मैं उस कथा को आपको सुनाता हूँ। तुम श्रवण करो ॥५६॥

ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत् ।
धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥५७
हत्वा दुष्टान्महापापान्ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ।
ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥५८
ब्रह्मभक्तिं चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः ।
नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥५९
ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात ।

संद्रष्टुकामः स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ।।६०
रुक्मिणीसहितं कृष्णं मग्नं कृत्वा रथे स्वयम् ।
संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ।।६१
मुनी रथात्समुत्तीर्य्य दृष्ट्वा तां दृढतां पराम् ।
तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरं ददौ ।।६२

ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का भार हल्का करने और साधु पुरुषों की रक्षा करने के लिए वसुदेव के पुत्र होकर अवतार लिया था ।।५७।। श्रीकृष्ण वासुदेव ने महान् पापी दुरात्माओं तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले खलों का संहार कर समस्त साधु ब्राह्मणों का त्राण किया ।।५८।। वासुदेव श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के अत्यन्त भक्त थे और अनेकों ब्राह्मणों को प्रतिदिन सुन्दर स्वादिष्ट रस वाले भोजन कराया करते थे ।।५९।। हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण ब्राह्मणों की विशेष भक्ति करने वाले हैं ऐसी उनकी ख्याति सुन उनकी भी परीक्षा करने के उद्देश्य से दुर्वासा मुनि उनके पास पहुँचे ।।६०।। रुक्मिणी के सहित श्रीकृष्ण को अपने रथ में छोड़कर उसमें बैठ परम प्रसन्न होकर कहने लगे ।।६१।। दुर्वासा रथ से उतर आये और श्रीकृष्ण की इस अत्यन्त दृढ़ता से बहुत प्रसन्न होकर उनको वज्र तुल्य अंग हो जाने का वरदान मुनि ने दिया था ।।६२।।

द्युनद्यामोकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो वभूव ह ।
लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ।।६३
तज्ज्ञात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात् ।
तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वांचलदानतः ।।६४
तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः ।
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ।।६५
द्रौपद्यै च वरं प्रादात्तश्चलविवर्द्धनम् ।
पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ।।६६
सडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ ।
दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ।।६७

ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयामास भूतले ।
संन्यासपद्धतिञ्चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ॥६८
बहूनुद्धारयामास सूादेशं विबोध्य च ।
ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥६९
इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितं बहु ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतः सर्वकामदम् ॥७०
य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितं मुदा ।
श्रावयेद्वा परान्यश्च स सुखीह परत्र च ॥७१

हे मुने ! एकबार अत्यन्त कौतुक करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा बिल्कुल नग्न होकर भागीरथी में स्नान करने के कारण बहुत लज्जित हुए ॥६३॥ उस समय द्रौपदी भी वहाँ स्नान कर रही थी। इसने मुनि को लज्जायुक्त देखकर उन्हें अपना वस्त्र फाड़कर सादर समर्पित किया और उनकी लज्जा दूर की ॥६४॥ उस समय जल के बहाव में बहकर आते हुए वस्त्र को प्राप्त कर मुनि ने अपने योग्य अंग का आच्छादान किया और इस उपकार के लिए द्रोपदी पर बहुत प्रसन्न हुए ॥६५॥ दुर्वासा ने द्रौपदी को उसके वस्त्र की वृद्धि हो जाने का वरदान दिया। इस वरदान के प्रभाव से द्रौपदी ने पांडवों को सुखी बनाया था ॥६६॥ हंसडिम्भ नामक एक राजा था। वह बहुत दुष्ट और परम स्वाभिमानी था। इसको भगवान् विष्णु का सन्देश देकर महर्षि दुर्वासा ने नष्ट कर दिया ॥६७॥ दुर्वासा ने ब्रह्म तेज का विस्तार भूमि पर विशेष रूप से किया गया था और शास्त्रों के विधान के अनुकूल सांसारिक पद्धति का पूर्णतया प्रसार किया ॥६८॥ मुनि ने अपने सुन्दर उपदेशों द्वारा ज्ञान देकर अनेकों का उद्धार एवं विशेष रूप से मुक्त कर दिया ॥६९॥ दुर्वासा मुनि के इस प्रकार से अनेक अत्यन्त अद्भुत चरित्र हैं और सुनने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं ॥७०॥ जो पुरुष दुर्वासा मुनि के इस चरित्र को भक्ति के साथ आनन्दपूर्वक सुनता या सुनाता है वह इस लोक और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त किया करता है ॥७१॥

।। दधीचि का अस्थिदान ।।

एकदा निर्जराः सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर ।
वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ।।१
स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ।
निः क्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः ।।२
तदा सर्वे सुराः सेन्द्रा वध्यमानास्तथर्षयः ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ।।३
तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्ट श्चैव चिकीर्षितम् ।।४
भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्राऽयं तपसाऽसुरः ।
वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ।।५
अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा ।
तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ।।६
महामुनिर्दधीचिर्यः स तपस्वी जितेन्द्रियः ।
लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरम्पुरा ।।७

नन्दीश्वर ने कहा हे मुनिराज ! एकबार इन्द्र आदि समस्त देवगण वृत्रासुर की सहायता करने वाले दैत्यों से युद्ध में पराजित हो गये और सब ने अपने अस्त्रों को दधीचि मुनि के आश्रम में फैंक दिया था ।।१—२।। उस समय समस्त देववृन्द्र इन्द्र को साथ लेकर और अत्यन्त पीड़ित ऋषि लोग एकत्रित होकर शीघ्र ही ब्रह्मा जी के पास गए और सब ने ही अपने दुःख की ब्रह्मा जी से प्रार्थना की ।।३।। समस्त जगत् के पितामह ब्रह्मा जी देवगण के वचनों को श्रवण कर त्वष्टा द्वारा करने वाली इच्छा को तात्विक रूप से देवों को कहने लगे ।।४।। ब्रह्मा जी ने कहा—वृत्रासुर महान् तेजस्वी और समस्त दैत्यों का स्वामी है । इसको त्वष्टा दैत्य ने तुम सब को मारने के लिए ही तपस्ता करके पैदा किया है ।।५।। हे प्राज्ञ ! अब जिस रीति से इसका वध हो सकता है वही उपाय धर्म के हित के विचार से मैं तुम को बतलाता हूँ । तुम सब सुन

लो ।।६।। पहिले किसी समय में परम तपस्वी-जितेन्द्रिय महामुनि दधीचि ऋषि ने भगवान् महेश्वर की आराधना से वज्र के समान हड्डी वाला हो जाने का वरदान प्राप्त किया है ।।७।।

तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः ।
निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ।।८
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः ।
अगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ।।९
दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ।
ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्चतम् ।।१०
तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ।
स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम् ।।११
ततः सदेवराजश्चसामरः स्वार्थसाधकः ।
अर्थशास्त्रो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ।।१२
त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयं देवास्तथर्षयः ।
शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ।।१३
स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि ।
अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ।।१४

सो अब तुम किसी प्रकार से उनकी अस्थियों की याचना करो । वे निस्सन्देह अस्थियाँ दे देंगे । उन से दण्ड वज्र की रचना कर वृत्रासुर का बिना किसी सन्देह के वध करो ।।८।। नन्दीश्वर ने कहा—ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुनकर गुरु के सहित तथा समस्त देवों के सहित इन्द्र ने मुनि के आश्रम के लिये प्रस्थान कर दिया ।।९।। वहाँ अपनी सुवर्चा के साथ विराजमान दधीचि मुनि को देखकर सब ने आदरपूर्वक हाथ जोड़ कर प्रणाम किया ।।१०।। उस वक्त विद्वद्वर दधीचि ने उन के हार्दिक अभिप्राय को जान लिया और सुवर्चा को आश्रम के अन्दर भेज दिया ।।११।। उस समय परम स्वार्थी देव स्वामी इन्द्र अर्थशास्त्र में परायण होकर मुनि से प्रार्थना करने लगा ।।१२।। देवराज इन्द्र ने कहा—हम सब देवगण तथा ऋषि वृन्द त्वष्टा के द्वारा सताये हुए परम

दुःखित होकर अति दानशील महाशिवभक्त और शरण में आये हुओं पर दया करने वाले आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं ॥१३॥ हे विप्रवर ! आप अपनी वज्र तुल्य अस्थियाँ हमको प्रदान करें जिनसे हम वज्र दण्ड निर्माण कर देवशत्रु इस वृत्रासुर का वध कर सकें ॥१४॥

इत्युक्तस्तेन स मनिः परोपकरणे रतः ।
ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्जकलेवरम् ॥१५
ब्रह्मलोक गतः सद्यः स मुनिर्ध्वस्तबन्धनः ।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागता ॥१६
अथ गां सुरभि शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ।
अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्र निर्दिदेश तदस्थिभिः ॥१७
विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चक्लृपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः ।
तदस्थिभिर्वज्रामयैः सुदृढैः शिववर्चसा ॥१८
तस्य वंशोद्भवं वज्रं शरो ब्रह्मशिरोस्तथा ।
अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥१९
तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववचसा ।
वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥२०
ततः शक्रः सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण संद्रुतम ।
उच्चकर्त शिरो वार्त्रं गिरिश्रृंगमिवोजसा ॥२१
तदा समुत्सवस्नात बभूव त्रिदिवौकसाम् ।
तुष्टुवुर्निर्जराः शक्रम्पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥२२

देवों की इस प्रार्थना को सुनते ही परोपकार में तत्पर दधीचि मुनि ने भगवान् शंकर के चरणों का ध्यान करके तुरन्त ही अपने शरीर का त्याग कर दिया ॥१५॥ दधीचि मुनि समस्त बन्धनों से विमुक्त होकर शीघ्र हो ब्रह्मलोक में गये । उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी और सब को बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ॥१६॥ उसी समय महेन्द्र ने कामधेनु को आज्ञा देकर ऋषि की सब अस्थियाँ निकलवा लीं और उनसे वज्रदण्ड का निर्माण करने के लिये त्वष्टा को आदेश दे दिया ॥१७॥ विश्वकर्मा ने आज्ञा प्राप्त होते ही शिव के तेज से परिपूर्ण परम पुष्ट

वज्रमय अस्त्र उन अस्थियों से बना दिया ॥१८॥ उसके वंश से समुत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्मा के शिर का त्राण हुआ और उन अस्थियों से अपने और पराये अस्त्र बनाये गए ॥१९॥ हे मुने ! तब फिर इन्द्रदेव शिव के तेज से सुसम्पन्न होकर उस वज्र को उठाते हुये क्रोध में भरकर शिव के ही समान वृत्रासुर पर टूट पड़ा ॥२०॥ इन्द्र ने वलपूर्वक उस वज्र के द्वारा शीघ्र ही वृत्रासुर के मस्तक को पर्वत शिखर के तुल्य काटकर फैंक दिया ॥२१॥ हे तात ! वृत्रासुर का वध हो जाने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट होकर महाआनन्दोत्सव मनाने लगे और इन्द्रदेव के ऊपर अन्तरिक्ष से पुष्पों की वर्षा हुई ॥२२॥

॥ पिप्पलाद का विवाह और शनि पीड़ा निवारण ॥

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः ।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ॥१
येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना ।
दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम् ॥२
षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा ।
तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ॥३
अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित् ।
तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ॥४
इति तद्भयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः ।
तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद्ग्रहसत्तमः ॥५
इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुनेः ।
कथितं सुचरित्रं ते सर्वकामफलप्रदम् ॥६
गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामनिः ।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशतन्ति स्मृतास्त्रयः ॥७

यह महाप्रभु महेश्वर का पिप्पलाद के स्वरूप में लीलावतार हुआ क्योंकि वह नाना प्रकार की लीलाओं के करने वाला था ॥१॥ दयालु पिप्पलाद ने संसार में किसी से भी निवारण न करने के योग्य शनि की

पीड़ा को देखते हुए परम प्रीति के साथ मनुष्य को वरदान दिया था ।२। पिप्पलाद ने वर यह दिया कि जन्म से आरम्भ कर सोलह वर्ष की अवस्था तक शिव की भक्ति करने वालों को शनैश्चर की कोई भी पीड़ा नहीं सतायेगी, ऐसा मेरा वचन सत्य है ॥३॥ यदि मेरे वचन को न मानकर शनि किसी को भी पीड़ा देगा तो वह स्वयं भस्म हो जायगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥४॥ हे तात ! इस तरह इनके भय से विकृत होकर शनिग्रह उनको कभी भी भूलकर कोई पीड़ा नहीं दिया करता है ॥५॥ हे मुनिवर ! मैंने यह पिप्पलाद भगवान् की परम सुन्दर मानव लीला एवं रमणीय चरित्र तुमको सुना दिया है। यह समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला है ॥६॥ गधि, कौशिक और पिप्पलाद ये तीनों ही महामुनि हैं और शनिग्रह द्वारा उत्पन्न पीड़ा का उन्मूलन करने वाले होते हैं ॥७॥

॥ शिव का ब्रह्मचारी रूप में अवतार ॥

सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम् ॥१
पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देह पितुमखे ।
स्वपित्राऽनादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ॥२
सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः ।
शकरं पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥३
तत्तपः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः ।
तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ॥४
ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ।
तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥५
तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्त च निवेद्य तत् ।
तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥६
गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरः स्वयम् ।
परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—हे सनत्कुमार ! अब आप सर्वत्र व्यापक रहने

वाले परमात्मा शिव के जटिल नाम वाले परम पवित्र अवतार की कथा प्रीतिपूर्वक श्रवण करें ।।१।। पहिले सती नाम वाली दक्ष प्रजापति की पुत्री ने अपने ही पिता के द्वारा अनादर प्राप्त करने पर पिता के यहाँ पर ही यज्ञस्थली में अपने शरीर का त्याग कर दिया और पुनः हिमवान् पर्वतराज के द्वारा उनकी पत्नी मेना के कुक्षि से उत्पन्न हुई थी ।।२।। वह पार्वती अपने स्वामी शंकर को प्राप्त करने की इच्छा से सहेलियों के सहित घोर निर्जन एवं परम सघन वन में जाकर बहुत ही निर्मल तथा उग्र तपस्या करने में परायण हो गई ।।३।। उस समय विविध प्रकार की लीला करने में प्रवीण भगवान् शिव ने पार्वती की तपश्चर्या का परीक्षण करने के लिये उस तपोवन में सप्त ऋषियों को भेजा था ।।४।। वे ऋषि शिवाज्ञा को स्वीकार कर वहाँ पहुंचे और बहुत ही यत्नों द्वारा पार्वती की परीक्षा करने लगे किन्तु वास्तविक रूप से उस कार्य में वे समर्थ एवं सफल न हो सके ।।५।। इसके अनन्तर वे सप्तऋषि वापिस शिव के पास लौट आये और प्रणामपूर्वक समस्त वृत्तान्त शिव को सुना दिया तथा शंकर की आज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ।।६।। उत्पत्तिकर्त्ता प्रभु शिव ने उन ऋषियों के यथास्थान चले जाने के अनन्तर स्वयं ही पार्वती के मनोभाव की जाँच करने की इच्छा की ।।७।।

सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ।
ब्रह्मचर्य्यस्वरूपोऽभूत्तदाऽद्भुततरः प्रभुः ।।८
अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ।।९
धृत्वैवं जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् ।
अतिप्रीतियुतः शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः ।।१०
तत्रापश्यत्स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम् ।
वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम् ।।११
शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ।
उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्मुखो भक्तवत्सलः ।।१२

आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाऽद्भुतम् ।
अंगेषु लोमशं शांत दण्डचर्मसमन्वितम् ।१३
ब्रह्मचर्य्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् ।
अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ।१४

तब परम प्रसन्न चित्त तपस्वी प्रभु शङ्कर ने अपनी इच्छा के अनुसार शान्तिमय एक अति अद्भुत ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया ।८। बहुत वृद्ध ब्राह्मण का शरीर धारण करते हुए अपने तेज के प्रकाश से प्रज्ज्वलित तथा मन से प्रसन्न दण्ड तथा छत्र धारण कर बहुत ही उज्ज्वल वेष के धारी हुए ।९। ऐसे जटिल स्वरूप को धारण कर भक्त-वत्सल-कल्याण करने वाले शम्भु प्रीतिपूर्वक पार्वती के निकट तपोवन में गये ।१०। उस तपोवन में तपस्विनी पार्वती को वेदी के ऊपर विराजमान सखियों से घिरी हुई परम शुद्ध चन्द्रमा की कला के तुल्य संस्थित भगवान् शिव ने देखा ।११। एक ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण करने वाले भक्तों पर प्रेम करने वाले भगवान् महेश्वर अत्यन्त उत्कण्ठा रखते हुए वहाँ पार्वती को देखकर उसके समीप में पहुँच गये ।१२। उस समय जगदम्बा पार्वती ने अद्भुत तेजस्वी, रामयुक्त अङ्गों वाले, परम शान्त रूपधारी, मृग-चर्म और दण्ड से युक्त वहाँ आगमन करते हुए ब्राह्मण का दर्शन किया ।१३। पार्वती ने उस ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य से युक्त-वृद्ध और जटा एवं कमण्डलु धारण किये हुए देखकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अर्चना की और समस्त सामग्री के द्वारा उसका समुचित सत्कार किया ।१४।

ततः सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा ।
कुशल पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् ।१५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः ।
इदं वनं भासदति वद वेदविदां वर ।१६
इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
प्रत्युवाच द्रुतं प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ।१७
अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजश्च वै ।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ।१८

इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी च शङ्करो भक्तवत्सलः ।
तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन्रूपमात्मनः ।१९।
किं ब्रवीमि महादेवि कथनीयं न विद्यते ।
महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ।२०
नवे वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे ।
महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि ।२१
का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ।२२

इसके अनन्तर पूजा में परायण होते हुए पार्वती ने आदरपूर्वक सादर उन समागत ब्रह्मचारी से कुशल प्रश्न किया ।१५। पार्वती ने कहा— हे वेदज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! आप इस ब्रह्मचारी के स्वरूप में कौन हैं और इस समय कहाँ से पदार्पण किया है, जोकि इस वन को प्रकाश वाला कर रहे हो ? ।१६। नन्दीश्वर ने कहा—इस रीति से पार्वती के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने पार्वती की परीक्षा करने के कारण से शीघ्र ही उत्तर दिया ।१७। ब्रह्मचारी ने कहा—मैं स्वेच्छा से विचरण करने वाला तपस्वी तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण हूँ और दूसरों को सुखी बनाकर उनका उपकार किया करता हूँ ।१८। नन्दीश्वर ने कहा— इस तरह से भगवान् शङ्कर ने भक्तवत्सल ब्रह्मचारी के स्वरूप में अपने सही रूप को छिपाकर पार्वती के समीप में स्थिति की थी ।१९। उस समय ब्रह्मचारी ने पार्वती से कहा—हे देवि ! क्या बतलाऊँ ? कहने के योग्य बात नहीं है । मुझे यहाँ पर बहुत ही अनर्थपूर्ण महान् विकृत वृत्तान्त दिखाई दे रहा है ।२०। आप इस अपनी नई अवस्था में अत्यन्त सुन्दर एवं सुकोमल इस सुखोपभोगों के योग्य शरीर से महान् सुखोपचारों का त्याग कर व्यर्थ ही तपस्या कर रही हैं ।२४। क्या आप यह बता सकेंगी कि आप कौन हैं और किस उद्देश्य को लेकर इस भयावह निर्जन वन में जितेन्द्रियों के तुल्य कठिन तप कर रही हो ? ।२२।

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ।
उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम् ।२३

शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने ।
जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ।२४
पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी ।
योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातेन पतिनिन्दिना ।२५
अत्र जन्मनि संप्राप्तः सुपुण्येन येन शिवो द्विज ।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ।२६
प्रयाते शङ्करे तापाद्व्रीडिताऽहं पितुर्गृहात् ।
आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता ।२७
मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः ।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया ।२८

नन्दीश्वर ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्मचारी के वेषधारी शङ्कर के इन वचनों को सुनकर पार्वती ने मुस्कराते हुए बड़े ही प्रेम के साथ ब्रह्मचारी को उत्तर देते हुए श्रेष्ठ वचन कहे ।२३। पार्वती ने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! हे मुनिवर ! आप जब सभी जानना चाहते हैं तो मैं अपना सभी पूरा हाल बताती हूँ। इस समय तो मेरे इस शरीर का जन्म गिरिराज हिमवान् के घर में हुआ है ।२४। इसके पूर्व मैं प्रजापति दक्ष की आत्मजा थी और भगवान् शंकर की पत्नी हुई थी । मेरे पतिदेव शिव की बुराई करने वाले पिता के यहाँ पर ही योग द्वारा अपने शरीर का त्याग मैंने कर दिया था ।२५। अब हे विप्रवर ! इस जन्म में परम महान् पुण्य से प्राप्त भगवान् शिव मुझे त्यागकर और कामदेव को भस्म करके चले गये हैं ।२६। शिव के त्याग से अति लज्जित होकर बहुत ही दुःखित मैं अपने पिता के घर को छोड़कर गुरु के वचनोपदेश से नियम लेकर इस वन में शिव-प्राप्ति के लिए यह तप कर रही हूँ ।२७। यह मेरी तपस्या मन-वचन और कर्म के द्वारा साक्षात् शिव स्वरूप पतिदेव को पाने के लिए ही है । मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है । इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है । इसके लिये मेरे साक्षी साक्षात् शिव ही है ।२८।

जानामि दुर्लभं वस्तु कथं प्राप्य मया भवेत् ।
तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना ।२९

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुं ब्रह्माणमप्यहम् ।
पतिम्पिनाकरूपाणि वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ।३०
इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम् ।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत ।३१
हिमाचलसुते देव का बुद्धिः स्वीकृता त्वया ।
रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलं तपः ।३२
जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणुत्व प्रवदामि ते ।
वृषध्वजः स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ।३३
एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ।
तस्मात्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि ।३४
सर्वं विरुद्धरूपादि तव देवि हरस्य च ।
मह्यं न रोचते ह्येतद्यदीच्छसि तथा कुरु ।३५

मैं खूब अच्छी तरह समझती हूं कि वह परम दुर्लभ वस्तु मुझे कैसे प्राप्त हो सकेगी, तो भी मेरे मन में उत्कण्ठा है और मैं उसी के लिए यह तपश्चर्या कर रही हूँ ।२९। मैं इन्द्र आदि समस्त देव, ब्रह्मा और विष्णु सबको त्याग कर केवल पिनाकधारी शिव को ही अपना पूज्य पति प्राप्त करने की उत्कट इच्छा रखती हूँ ।३०। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! उस समय पार्वती के परम निश्चय से परिपूर्ण इन वचनों को सुनकर जटिल रूपधारी रुद्रदेव हँसकर कहने लगे ।३१। जटिल ने कहा—हे हिमवान् की पुत्रि ! हे देवि ! तूने यह क्या अपनी बुद्धि बनाई है कि समस्त ऐश्वर्य वाले देवों को छोड़कर केवल एक शिव को ही अपना पति बनाने के लिये ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो ? ।३२। हे देवि ! मैं भली भाँति उस रुद्र को जानता हूँ । वह रुद्र बैल पर तो सदा सवारी किया करता है और बहुत विकृत आत्मा वाला तथा जटा-जूट धारण करके रहा करता है ।३३। वह तो हमेशा अकेला ही रहता है और परम विरक्त है । इसलिए तुझको ऐसे वैरागी में अपना मन लगाना उचित नहीं जान पड़ता है ।३४। हे भगवति ! शिव का स्वरूप आदि सभी कुछ

तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के बहुत विपरीत है। मुझे तो बिल्कुल भी अच्छा नहीं प्रतीत होता है। आगे तुम्हारी जो भी इच्छा हो वही करो।३५।

इत्युक्त्वा च पुनः रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ।
निनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम् ।३६
तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासदम् ।
प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ।३७
एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद्वध्यो भविष्यति ।
परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना ।३८
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः ।
शिवनिन्दा कृता मूढ़ त्वया मन्युरभून्मम ।३९
शिवं त्वं च न जानासि शिवात्वं हि बहिर्मुखः ।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताऽभवम् ।४०

नन्दीश्वर ने कहा—इतना कहने के बाद भी ब्रह्मचारी के वेष में उपस्थित शिव ने पार्वती की और अधिक परीक्षा करने की इच्छा से अनेक प्रकार से अपनी खूब निन्दा से भरी बातें कहीं।३६। तब तो सर्वथा न सहन करने के योग्य निन्दापूर्ण ब्राह्मण के वचनों को सुनकर पार्वती को बड़ा भारी क्रोध आ गया अपने अभीष्ट देव शिव की निन्दा में तत्पर ब्राह्मण से पार्वती कहने लगीं।३७। हे ब्राह्मण! मैं तेरी इन बातों से इस निर्णय पर पहुँच गई हूँ कि तू मार देने के योग्य है किन्तु अब मैं बहुत कुछ विचार करके यह भी समझ गई हूँ कि इस समय तू अवध्य है।३८। हे मूर्ख! ऐसा मालूम होता है कि तू कोई बड़ा धूर्त है और ब्रह्मचारी बनकर यहाँ आ गया है। इस समय तूने भगवान् शिव की निन्दा की है अतएव इससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हो गया।३९। तू शिव के सच्चे स्वरूप को बिल्कुल नहीं जानता है और शङ्कर से सर्वथा बहिर्मुख है। मैंने इस समय तेरी अर्चना एक ब्राह्मण समझकर की, इसका भी मेरे मन में बहुत ही सन्ताप हो रहा है।४०।

रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शङ्करम् ।
निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ।४१

यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान् ।
मामाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सताम्प्रियः ।४२
इत्युक्त्वास्ते शिवा देवी शिवतत्वं जगाद सा ।
यत्र ब्रह्मतपा द्ररुः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ।४३
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
पुनर्वचनमादातं यावदेव प्रचक्रमे ।४४
प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम् ।
शिवासक्तमनोवृत्ति शिवनिन्दापराङ्मुखी ।४५
वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः ।
पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति ।४६
न केवलं भवेत्पापं निन्दातुः शिवस्य हि ।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ।४७

अरे दुष्ट ! तूने यह बिल्कुल असत्य ही कहा था कि मैं शिव को जानता हूँ । मैं कहती हूँ कि तू शिव को नहीं जानता है। शिव तो सर्वोपरि सबके बड़े स्वामी हैं ।४१। जैसे-तैसे कुछ भी हों—रुद्रदेव अपनी माया से बहुत से रूप वाले हैं । मैं खूब समझती हूँ कि वे मनोरथों को पूर्ण करने वाले विकारों से रहित और सत्पुरुषों के परम प्रिय हैं ।४२। नन्दीश्वर ने कहा—यह कहकर फिर पार्वती ने शिव के उस तत्व का वर्णन करना आरम्भ किया जिसमें ब्रह्मरूप से रुद्रदेव निर्गुण और अविनाशी कहे जाते हैं ।४३। यह पार्वती के वचन सुनकर वह ब्रह्मचारी वेषधारी ब्राह्मण जैसे ही कुछ कहने को प्रस्तुत हुआ वैसे ही उस समय में शिव के चरणों में आसक्त मन वाली शिव की निन्दा से रहित होकर अपनी सखी विजया से पार्वती शीघ्रता से कहने लगी ।४४-४५। पार्वती ने कहा—हे सखि ! यह नीच ब्राह्मण यहाँ से हटा देने के योग्य है । यह फिर भी कुछ कहना चाहता है । मैं चाहती हूँ कि आगे और कुछ शिव की निन्दा करने का अवसर इसे नहीं देना चाहिये ।४६। भगवान् शिव की निन्दा करने वाला तो महापापी होता ही है, जो उस निन्दा को केवल कानों से सुनता है उसे भी पाप का भागी होना पड़ता है ।४७।

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः ।
ब्राह्मणश्चेत्य वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थालम्द्रुतम् ।४८
अयं दुष्टः पुनर्निन्दा करिष्यति शिवस्य हि ।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ।४९
स्थलतेतद्द्रुत हित्वा यास्यामोऽन्यत्रमाचिरम् ।
यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ।५०
इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने ।
असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ।५१
कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा ।
दर्शयित्वा शवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ।५२
कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया शिवे ।
मया परीक्षितासित्वं दृढ़भक्तासि मेऽनघे ।५३
ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदोयकम् ।
तवोपकण्ठमागत्य प्रोवाचं विविधं वचः ।५४

जो शिव के सेवक हैं उनके द्वारा शिव की निन्दा करने वाले का वध कर देना चाहिए। हाँ, यदि दुर्भाग्य से ब्राह्मण जाति का हो तो उसे छोड़कर उस स्थान से जहाँ शिव की निन्दा होती हो अन्यत्र ही स्वयं शीघ्र चले जाना चाहिये ।४८। यह दुरात्मा फिर शिव की निन्दा करेगा क्योंकि यह विप्र है इसलिए वध करने योग्य नहीं है। यह त्याग देने के योग्य और सर्वथा दर्शन करने के लायक नहीं है ।४९। मैं अब इस स्थान का त्याग कर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान पर जाना चाहती हूँ। जिससे फिर इस मूर्ख के साथ भाषण करने का कोई अवसर ही न आवे ।५०। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! इतना कह कर पार्वती ने ज्यों ही स्थिति का त्याग करना चाहा वैसे ही भगवान् शिव ने उसके वस्त्र को धारण कर लिया ।५१। पार्वती जिस स्वरूप का ध्यान किया करती थी शिवजी ने उसी स्वरूप को धारण कर पार्वती को दर्शन दिया और भूमि की ओर नीचे देखती हुई पार्वती से बोले ।५२। शिवजी ने कहा—हे शिवे ! हे अनघे ! अब तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो ? तुम अब

मेरे त्याग करने योग्य नहीं हो। मैंने तुम्हारी अच्छी तरह परीक्षा कर ली है कि तुम्हारी मुझ में बहुत ही दृढ़ भक्ति है।५३। मैं इसीलिए यह एक ब्रह्मचारी का रूप धारण कर तुम्हारे समीप में आया और अनेक वचन भी कहे।५४।

प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः।
चित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव।५५
ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्।
प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जाऽधोमुखी शिवा।५६
यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि।
पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तः शिवया शिवः।५७
गृहीत्वा विधिवत्पाणि कैलासं स तया ययौ।
पति तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं चकार सा।५८
इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः।
शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः।५९

हे पार्वती ! मैं तेरी अनुपम दृढ़ भक्ति से विशेष रूप से प्रसन्न हुआ हूँ। अब तू अपने मनचाहे वर को माँग ले। तुझे अब कोई भी अदेय वस्तु नहीं है।५५। परम प्रसन्न पार्वती शिव के दिव्य स्वरूप का दर्शन कर लज्जा से नीचे की ओर अपना मुख करती हुई प्रेमपूर्वक शिव से प्रार्थना करने लगी।५६। पार्वती ने कहा—हे देवेश ! यदि परम प्रसन्न होकर मुझ पर कृपा करना चाहते हैं तो आप मुझको अङ्गीकार कीजिए।५७। उस समय शिवजी विधि-विधान के साथ पार्वती का पाणिग्रहण कर उन्हें अपने सङ्ग कैलाश पर्वत पर ले गये। पार्वती ने अपने अभीष्ट पति को पाकर देवों के कार्य सम्पन्न किये।५८। हे तात ! ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण कर पार्वती की परीक्षा करने वाले शिवजी के जटिल अवतार का वर्णन मैंने किया है।५९।

॥ प्रथम भाग समाप्त ॥

प्रकाशक :
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



संशोधित जनोपयोगी संस्करण
१९७२



मुद्रक :
हर्ष गुप्त
राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा।



12/-50

मूल्य [redacted] रुपये पचास पैसे

श्रीशिवपुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २४ गीता

योग वासिष्ठ, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों

के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, [वेद नगर] बरेली

श्री शिव पुराण

(द्वितीय खण्ड)



।। शिव का अश्वत्थामा के रूप में अवतार ।।

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ।१
बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने ।
भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ।२
धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिःसर्वशास्त्रवित् ।
बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ।३
धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः ।
वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ।४
कौरवाणां स आचार्य्यो आसीत्स्वबलतो द्विज ।
महारथिषु विख्यातः षटसु कौरवमध्यतः ।५
साहाय्यार्थं कोवारणां स तेपे विपुलं तपः ।
शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणाचार्यो द्विजोत्तम ।६
ततः प्रसन्नो भगवांच्छंकरो भक्तवत्सलः ।
आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ।७

नन्दीश्वर ने कहा हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार । अब आप सब में व्याप्त रहने वाले परमेश प्रभु शिव का 'अश्वत्थामा'-इस नाम से होने वाले उत्तम अवतार की कथा श्रवण करो ।।१। हे मुने ! महा मनीषा से सम्पन्न देवगुरु वृहस्पति के अंश में भरद्वाज ऋषि के द्वारा द्रोण-इस नाम वाला एक अयोनिज पुत्र उत्पन्न हुआ।।२।यह द्रोण संसार के समस्त धनुषधारियों में परम श्रेष्ठ अद्भुतवीर,विप्रर्षि,समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता,कीर्तिसम्पन्न महान् तेजस्वी और सभी शस्त्रास्त्रों के चलाने की विधि का जानने वाला हुआ था ।३। बुद्धिशाली द्रोण बाण विद्या का पारङ्गत पण्डित वेदार्थ ज्ञान का धुरन्दर विद्वान् एक से-एक अद्भुत कर्मों के करनेवाला अपने कुल का वर्द्धक वरिष्ठ परम प्रसिद्ध था ।४। हे द्विजवर्य ! यह महाबलवान् द्रोण कौरव कुल का आचार्य और छै महारथियों में अत्यन्त प्रसिद्ध थे ।५। ब्राह्मणों में अत्युत्तम द्रोणाचार्यने कौरव कुल की सहायता करनेकेलिए एकमहावीर पुत्रके उद्देश्य को लेकर शिवके प्रीत्यर्थ उग्र तपस्या की ६। द्रोणके तप से मुनि सत्तम! भक्तों पर कृपा रखने वाले भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य के समक्ष में प्रकट हो गये ।७।

तं दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणास्तुष्टावाशु प्रणम्य तम् ।
महाप्रसन्नहृदयो नतकः सुकृताञ्जलिः ।८
तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शङ्करः प्रभु।
वरं ब्रूहीति चोवाच द्रोणं तं भक्तवत्सलः ।९
तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः ।
स्वांशजं तनयं देहि सर्वाजेयं महाबलम् १०
तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ।
अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सखकृन्मुने ।११
द्रोणोऽपगच्छत्स्वं धाम महाहृष्टो गतभ्रमः ।
स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा ।१२

अथावसरमासाद्य द्ररुः सर्वान्तकः प्रभः ।
स्वांशने तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ।१३
अश्वष्थामेति विख्यातः स बभूव क्षितौ मुने।
प्रवीरः कन्जपत्राक्षः शत्रुपक्षक्षयङ्कर ।१४

भगवान् शिवका दर्शन कर ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्य ने हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ जोड़ते हुए नम्र भावनासे शिवको प्रणाम किया।८ द्रोण की स्तुति से तथा घोर तपश्चर्यासे भक्तवत्सल शिव ने प्रसन्नता पूर्वकद्रोणसे कहा-'जो चाहो वरदान माँगों।९। शिवके ऐसे आनन्दप्रद वचनोंको सुनकर द्रोणाचार्य ने नम्रता से प्रार्थना की कि सभी के द्वारा अजेय और अतुल बल शाली अपने ही अंश से उत्पन्न होने वाले पुत्र का वर दीजिये ।।१० हे तात हे मुनिवर द्रोणाचार्य की इस प्रार्थना को सुनकर शिव ने कहा-ऐसा होगा।'बस इतना कहनेके उपरान्त कौतुक करनेवालेसुखदायी शिवअंतर्धान होगये ।११।तबतो आचार्य द्रोण का संशय मिट गया और अत्यन्त प्रसन्नता के साथअपने निवास स्थानपर पहुँचकर शिवसे प्राप्त इस वरदानका समस्त वृत्तान्त अपनी पत्नी को कह सुनाया ।१२। इसके अन्तर समय आने पर जगत्के संहारक प्रभु शिव अपने अंशसे आचार्य द्रोणके यहाँ महाबलशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए।१३। हे मुनिराज ! वह कमल दलके तुल्य सुन्दर नेत्र वाले और शत्रुओं के बलके नाश करने वाले महाबली शङ्कर संसारमें अश्वत्थामा—इस नाम से विख्यात हुए ।।१४।।

यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ।
सहायकृद्बभूवाथ कौरवाणां महाबलः ।१५
यमाश्रित्य महावीरं कौरवाः सुमहाबला ।
भीष्म दयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ।१६
यद्भयात्पाण्डवाः सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः ।
आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ।१७

कृष्णोपदेशतः शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ।
प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ।१८
अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने ।
तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ।१९
विनाश्य पाण्डवसुताञ्शिक्षितानपि यत्नतः ।
कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः ।२०
पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ।
रथेनाच्युतवतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ।२१

इस महान् बलशाली अश्वत्थामा ने महाभारत के युद्ध में अपने पिता की आज्ञा से बड़ी ख्याति के साथ कौरव कुल के पक्ष की सहायता की थी ।। १५ ।। इसी महावीर अश्वत्थामा का आश्रय पाकर पराक्रमी कौरव और पितामह भीष्म आदि सभी देवों के द्वारा भी अजेय हो गये थे ।। १६ ।। जिस के भय होने के कारण बड़े भारी शूरवीर तथा परम विद्वान् पाण्डव कौरवों के जीत लेने में एकदम असमर्थ हो गये और प्रायः नष्ट भ्रष्ट से हो गये थे ।। १७ ।। तब भगवान् श्री कृष्ण के उपदेश को प्राप्त कर अर्जुन ने भगवान् शिव की अत्यन्त उग्र तपस्या की और उनकी कृपा से अनेक अमोघ अस्त्र प्राप्त कर कौरवों पर विजय प्राप्त की ।।१८।। हे मुनीन्द्र ! अश्वत्थामा ने साक्षात् भगवान् शङ्कर के अंश से उत्पन्न होकर कौरवों की भक्ति के वश में आकर संग्राम में अपने प्रताप का वैभव दिखलाया था ।। १९ । महान् बलशाली कृष्ण आदि शत्रुओं के द्वारा भी बड़े यत्न के साथ शिक्षा लिये हुए पाण्डवों के पुत्रों को अश्वत्थामा से मार गिराने पर भी उसकी बल-शक्ति को हटाया न जा सका था ।।२०।। अपने मृत पुत्रों के शोक से अत्यन्त व्याकुल अर्जुन को श्री कृष्ण के साथ रथ पर सवार होकर, दौड़कर आते हुए देखकर अश्वत्थामा भाग गया ।। २१ ।।

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि ।
ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ।२२

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोऽर्जुनः क्लेशसंयुतः ।
उवाच कृष्ण विक्लान्तो नष्टतेजा महाभय ।२३
किमिदं ह्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजश्चद सुदुःसहम् ।२४
श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णः शैवसत्तमः ।
दध्यौ शिव सदार च प्रत्याहार्जुनमादरान् ।२५
वेत्थेद द्रोणापुत्रस्य ब्राह्मस्श महोल्बणम् ।
न ह्यस्यान्यतम किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।२६
शिव स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुं भक्तरक्षकम्।
येन दत्त हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकर परम् ।२७
जह्यस्त्रतेज उन्नद्ध त्व तच्चैवास्त्रतेजसा ।
इत्युक्त्वा च स्वय कृष्णः शिवं दध्यौ तदर्थकः ।२८

उस समय भागकर जाते हुए भी अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिर नाम वाला अस्त्र अर्जुन पर छोड़ दिया था कि जिसके परम प्रचण्ड तेज का प्रकाश समस्त दिशाओं में प्रकट हो गया ।२२। उस वक्त प्राणों पर आई हुई इस विपत्ति को देखकर अर्जुन भय से व्याकुल हो उठा और उसके तेज से दुःखित होकर उसने श्रीकृष्ण से कहा ।२३। अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह कहाँ से किसका अति दुस्सह तेज सब ओर से चला आ रहा है और क्या है ? मैं इसको अभी तक नहीं समझ पा रहा हूँ ।२४। नन्दीश्वर ने कहा—उस समय कातर अर्जुन के इन खेद भरे वचनों को सुनकर पार्वती के सहित शङ्कर का ध्यान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा ।२५।—हे अर्जुन ! तुम जानते हो, यह आचार्यवर द्रोण के आत्मज अश्वत्थामा के द्वारा छोड़ा हुआ अत्यन्त तीव्रतम ब्रह्मास्त्र है संसार में इसके समान अन्य कोई भी अस्त्र इतना महान् घातक नहीं है।२६।अब तुम्हारा यही कर्त्तव्य हैकि बहुत शीघ्रतापने प्रभु और भक्तवत्सल शिवजी का आदर सहित ध्यान-स्मरण करो। उन्होंने तुम्हें भी समस्त कार्य पूर्ण करने बाला महान् अस्त्रप्रदान किया हैं।२७।अब तुम अपने उसी शैव अस्त्रसे इस ब्रह्मास्त्रके तेज का निवारण कर सकते हो।

यह कहते हुए श्रीकृष्ण भी स्वय इनकी रक्षा के लिये श्री शिव का मन में ध्यान करने लगे ।२८।

तच्छ्रुत्वा कृष्णबचनं पार्थः स्मृत्वा शिवं हृदि ।
स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रं ततो मुने ।२९
यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघश्चाप्रतिक्रियम् ।
शैवास्त्रतेजसा सद्यः समशाम्यन्महामुने ।३०
मंस्था मा ह्येतदाश्चर्यं सर्वचित्रमये शिवे ।
यः स्वशक्तयाऽखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यज ।
अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः ।३१
शैवं न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ।३२
अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम् ।
उत्तरागर्भगं वाल नाशितुं मन आदधे ।३३
ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ।
उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ।३४

हे मुने ! इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा पाते ही शिव के चरणों का स्मरण अपने मनमें किया और उनको प्रणाम करते हुए जल का स्पर्श करके शिवके द्वारा प्रदत्तशैवास्त्र को छोड़ दिया । ९। हे महामुने ! ब्रह्मशिर अस्त्र का तेज यद्यपि कभी भी निष्फल होने वाला नहीं थातो भी उस शैवास्त्र के तेज के द्वारा वह उसी समय शान्त हो गया था ।३०। इस प्रकारकी अत्यन्त विचित्र लीलाओंके दिखाने वाले श्रीशिव के विषयमें कभी भी आश्चर्य नहीं समझना चाहिए । वेपरम अजेयहैं और अपनी अजित एवं अपरिमित शक्तिके द्वारा इस समस्त ससारकीउत्पत्ति तथा नाश कियाकरते हैं।३१।हे मुनीश्वर ! उस वक्त शिव की अंश शक्ति से समुत्पन्न अश्वत्थामा ने शिव की इच्छा को जानकर सन्तुष्ट होते हुए उस शैवास्त्र का छेदननहीं किया ।३२। इसके अनन्तर आचार्य द्रोण के आत्मज अश्वत्थामाने समस्त संसार को पाण्डवहीनकर देने की इच्छासे उत्तरा के गर्भमें रहनेबालेबालक के संहार करने का विचार मन में स्थिर किया ।३३। इसके अनन्तर अश्व-

त्थामा ने परम कान्तिसे युक्त तथा अन्य किसी भी अस्त्रसे न हटाये जानेकी शक्ति रखने वाले उस ब्रह्मास्त्रका उत्तरा के गर्भपर प्रहार करदिया। ३४।

ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा ।
कृष्ण तुष्टाव लक्ष्मीश दह्यमाना तदस्त्रतः ।३५
ततः कृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा स्तुत्वा प्रणम्य च ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ।३६
स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा ।
सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ।३७
स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेणा ह ।
कृष्णेन चरित ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ।३८
ततः स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि ।
अपातयत्तदध्रयोस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ।३९
अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च ।
नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामाऽनुगृह्य च ।
इत्थं महेश्वर स्तात चक्रे लीलां परां प्रभुः ।
अवतीर्य्य क्षितो द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ।४१
शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ।४२
अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितः शङ्करप्रभोः ।
सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ।४३
य इदं शृणुयाद् भक्त्या कीर्त्तयेद्वा समाहित ।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टमन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।४४

इस ब्रह्मास्त्र के तेज से अत्यन्त व्याकुल मन वाली अर्जुन के पुत्र की भार्या उत्तरा जलकर भस्मीभूत होती हुई लक्ष्मी पति भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी। ३५। उत्तरा की स्तुति से सावधान होकर श्रीकृष्ण ने मन में शिवका प्रणामपूर्वक ध्यान एवं स्तवन करतेहुए यह समझ लियाकियह

पाण्डव कुल के पूर्ण विनाश करने के लिये अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र का प्रभाव है ।३६। उस समय श्रीशिव की ही आज्ञा से श्रीकृष्ण ने इन्द्र द्वारा अपनी सुरक्षा के लिये प्राप्त सुदर्शन चक्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की, जिस सुदर्शन चक्र का भी अति दुस्सह तेज था ।।३७।। यह समस्त चरित्र समझकर शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गर्भ को शिवाज्ञा से अपना ही रूप बना दिया तो वह ब्रह्मास्त्र शनैःशनैः शान्त हो गया ।३८। इसके पश्चात् शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर सब पाण्डवों को अश्वत्थामा की प्रसन्नता प्राप्त करके के लिये उसके चरणों में प्रणिपात के लिये गिरने की प्रेरणा दी ।३९। इससे आचार्य द्रोण के पुत्र शिव के अंशावतारी अश्वत्थामा बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण पर कृपा करके उन्हें अनेक उत्तम वरदान भी दिये ।४०। हे तात ! हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से जगत् के प्रभु शिव ने अश्वत्थामा के रूप में अवतीर्ण होकर पृथ्वीतल में अनेकानेक अति अद्भुत लीलाएँ दिखलाई थीं ।४१। महान् बल तथा प्रबल पराक्रम वाले अश्वत्थामा का अवतार ग्रहण करने वाले शिव त्रिभुवन को परम सुखदायी अब तक भी गङ्गा के तट पर विराजमान हैं ।४२। मैंने यह शिव के अश्वत्थामा नाम वाले अवतार का चरित्र आपको सुना दिया, यह समस्त सिद्धियों का दाता और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाला है ।४३। जो भी कोई मनुष्य इस पावन चरित्र को चित्त को सावधान करके सुनता है तथा भक्ति की भावना से इसका कीर्तन करता है । वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि प्राप्त कर अन्तिम काल में भगवान् शङ्कर के लोक चला जाता है ।४४।

।। द्वादश ज्योतिलिंगावतार का वर्णन ।।

अवताराञ्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्पराम् ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै परमोत्तमकान्मुने ।१
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करः ।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ।२
सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ।

उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ।३
वैद्यनाथश्चिताभूमो नागेशो दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ।४
अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः ।
सर्वानन्दकर पुंसा दर्शनात्स्पर्शनान्मुने ।५
तत्राद्यः सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयङ्करः ।
क्षयकुष्टादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ।६
शिवावतारः सोमेशो लिङ्गरूपेणा संस्थित ।
सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! अब आप मुझ से सब में व्यापक रहने वाले ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप वाले बारह उत्तम अवतारों की की कथा सुनिये ।१। इन अवतारों के पीठ-स्थान इस प्रकार से हैं—हिमाचल पर केदारनाथ, डाकिनी में श्री भीमशङ्कर, काशीपुरी में विश्वनाथ, गौतमी नदी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर, सौराष्ट्र देश में सोमनाथ स्वामी हैं । श्री शैल में मल्लिकार्जुन का स्वरूप है, उज्जयिनी में महाकालेश्वर, ओङ्कार में अमरनाथ, चिताभूमि में वैद्यनाथ भगवान्, दारुक वन में नागेश्वर, सेतुबन्ध में श्री रामेश्वर तथा शिवालय में घुश्मेश्वर अवतार है ।२-३-४। हे मुने ! परमेश भगवान् शिव के ये उक्त द्वादश अवतार हुए हैं । जिनके दर्शन एवं स्पर्श करने से मनुष्यों को परम आनन्द तथा सुख-सौभाग्य का लाभ होता है ।५। हे मुनिवर ! इन सब में प्रथम श्री सोमनाथ चन्द्रदेव के दुःख का नाश करने वाले हैं । इनके अर्चन करने से कुष्ठ और क्षय रोग का सर्वथा नाश हो जाता है ।६। श्री सोमनाथ इस पावन नाम से होने वाला अवतार सोराष्ट्र देश में हुआ था जो कि वहाँ लिङ्ग के स्वरूप में विराजमान है । इनका सर्वप्रथम पूजन चन्द्रदेव ने ही किया था ।७।

चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशम् ।
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।८
सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम् ।
दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।९

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारः शङ्करस्य वै ।
द्वितीयः श्रीगिरौ ताम भक्ताभीष्टफलप्रदः ।१०
संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने ।११
ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तद्दर्शनात्पूजनान्मुने ।
महासुखकरं चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः ।१२
महाकालाभिधस्तातावतारः शङ्करस्य वै ।
उज्जयिन्यां नगर्य्यां च बभूव स्वजनावनः ।१३

वह चन्द्र कुण्डके नाम से एक जलाशयहै । चतुर लोग वहाँ उस कुंड में स्नान करके समस्त रोगों से मुक्ति पा जाया करते हैं।८।श्रीसोमनाथ का लिङ्ग स्वरूप साक्षात् श्रीशिवकेआत्मरूप है । इस महालिङ्गके दर्शनसे पापों से छुटकारा पाकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति कर लेतेहैं ।९। हे तात!भगवान् शङ्कर का द्वितीय अवतार मल्लिकार्जुन नाम वालाहै और वह श्रीगिरि पर्वत पर विराजमान हैं तथा अपने भक्तजनों के मनचाहेफल प्रदान किया करते हैं ।१०।हे मुनिवर ! पुत्रके मुख को देखने के लिये वहाँ लिङ्ग के स्वरूपमें ही भगवान् शिव की स्तुति की गई थी।वहांसे फिरशिव प्रसन्नता के साथ कैलाश पर्वत के अपने निवास स्थानको चले गये हैं।११। हे मुने ! यह ही द्वादश अवतारों में द्वितीय ज्योर्लिङ्ग है । इसके दर्शन से महान् सुख और जीवन के अन्तिम काल में निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त होता है ।१२। हे मुनिराज ! हे तात ! अपने परिवार की रक्षा करने के लिये उज्जयिनी में महाकालेश्वर नाम वाला शिव का अवतार हुआ है ।१३।

दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् ।
उज्जियिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम् ।१४
वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् ।
भस्मसाकृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम् ।१५

तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
देवैः स प्रार्थितोऽतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ।१६
महामालाह्वयं लिङ्ग दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य प्रयत्नतः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ।१७
ओंकारः परमेशानो धृतः शम्भो परात्मनः ।
अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ।१८
विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिङ्गात्पार्थिवान्मुने ।
प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ।१९
देवैः सप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदो लिङ्गरूपो वै भक्तवत्सल ।२०
प्रणवे चैव ओंकारनामासील्लिंगमुत्तमम् ।
परमेश्वरनामाऽऽसीत्पार्थिवश्च मुनिश्वरः ।२१

महाकालेश्वर शिव ने उज्जयिनी में वेद एवं विप्रों से द्वेष करनेवाले आये हुए दुरात्मा दूषण नाम वाले दैत्य को एक हूँकार से ही नष्ट करदिया था। यहाँ वह वेद-विप्रके पुत्र का वध करने के लिये आया था जोकिरत्न माल देश में भगवान् शङ्कर के ध्यान में सर्वदा निरत रहा करता था।१४ ।१५। उसी समयमें दैत्य का संहार कर भक्तवत्सल शिवदेवगण से प्रार्थित होनेपर महाकालेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूप में उज्जयिनीनगरीमें विराजमान हुए हैं।१६।उज्जयिनीमें स्थित महाकालेश्वरके दर्शनका महान् फल होता है । जो इस ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन तथा सयत्न समर्चनकरताहै, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथ पाकर अन्त में निश्चय ही पर गतिकोप्राप्तकिया करता है।१७।शङ्कर का चतुर्थ अवतार ओङ्कारनाथ नाम वालाहै । यहभी भक्तोंके समस्त अभीष्ट फलों के प्रदान करने वाले हैं और अन्त में सद्गति दिया करते हैं ।१८। हे मुनिवर ! ओङ्कारनाथ पार्थिव लिङ्ग के अनुसार सविधि भक्तिपूर्वकसंस्थापित महादेव ने प्रकट होकर विन्ध्यके मनोरथोंको पूर्ण किया ।१९।देवताओं से प्रार्थना किये जाने पर वहाँ शिव ने अपने दो

स्वरूप धारण किये थे। भक्तों पर प्रेम करने वाले लिङ्ग रूप में विराजमान शिव भुक्ति-मुक्ति के देने वाले हैं ।२०। हे मुने ! ओङ्कार नाम प्रणव में सर्वोत्तम लिङ्ग है और वहाँ परमेश्वर नाम वाले पार्थिव रूप में प्रकट हुए हैं ।२१।

भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेया योऽपि छोर्द्दर्चितो मुने ।
ज्योतिर्लिगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ।२२
केदारेशोऽवतारस्तु पञ्चमः परमः शिवः ।
ज्योतिर्लिगस्वरूपेण केदारे संस्थितः स च ।२३
नरनारायणा रव्यौ यावतारौ हरेमुने ।
तत्प्रार्थितः शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ।२४
ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः ।
भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि ।२५
अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः ।
सर्वकामप्रदस्तात सोऽवतारः शिवस्य वै ।२६
भीमशङ्करसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः ।
अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः ।२७
सुदक्षिणाभिधं भक्तङ्कामरूपेश्वरं नृपम् ।
यो ररक्षाद्भुतं हत्वाऽसरं त भक्तदुःखदम् ।२८
भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितः स्वयम् ।
ज्योतिर्लिङ्गाय्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शङ्करः ।२९

हे मुने ! शङ्कर के इस स्वरूप के दर्शन तथा पूजन से भक्तों के सभी अभीष्टफल प्राप्त होते हैं। मैंने तुम्हारे सामने इस महान् दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन सुना दिया है।२। शिव का पञ्चम ज्योतिर्लिङ्ग केदारेश्वर के नाम से अवतीर्ण होकर केदारनाथ नामक स्थान में विराजमान है ।२३। हे मुनिवर ! भगवान् विष्णु के नर और नारायण नाम वाले अवतारों द्वारा हिमाचल पर शिव की प्रार्थना की गई थी।२४। इनके पूजित ही शिव केदारनाथ नाम से विख्यात हुए हैं । इनके दर्शन तथा अर्चनसे भक्तजन के सभी अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं ।२५। हे तात ! यह शङ्कर का अवतार सबका स्वामी एवं

समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला है और इस खण्ड का प्रभु है ।२६। महाप्रभु शङ्कर का षष्ठ अवतार भीमशंकर नाम वाला है जो अनेक लीलाओं के करने वाला तथा भीमासुर का वध करने वाला था ।२७। शिवभक्तों को सताने वाले इस दैत्य का वध कर कामरूप देश के सुदक्षिण नाम वाले राजा की भगवान् शिव ने इस अवतार में रक्षा की थी ।२८। तभी से शिव भीमशंकर इस नाम से विख्यात होकर डाकिनी में अपने भक्त सुदक्षिण नृप से स्तुति किये जाने पर स्वयं लिङ्गरूप में वहाँ विराजमान हो गये ।२९।

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ।
सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ।३०।
पूजितः सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिः सदा ।
कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ।३१।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ।
स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ।३२।
काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः ।
निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ।३३।
त्र्यम्बकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे ।
प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ।३४।
गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ।
स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ।३५।
तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्च महेशितुः ।
सर्वे कामाः प्रसिध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो ।३६।
शिवानुग्रहतस्तत्र गंगानाम्ना तु गौतमी ।
संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ।३७।

हे मुने ! शिवका सप्तम अवतार काशी में विश्वेश्वर इस नाम से हुआ था जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्वरूप है और भुक्ति-मुक्ति का प्रदान करने वाला है ।३०। उस समय भगवान् विष्णु आदि समस्त देवगणने उनकी स्तुति की । वह कैलाशके स्वामी यहाँ भैरव के एक रूप से स्थित हुए ।३१। और

एक अन्य ज्योतर्लिंगके स्वरूप से वहाँ विराजमान हैं जो मुक्ति प्रदान करने वाले स्वयं सिद्ध स्वरूप एवं अपनी पुरी के प्रभु हैं।३२। काशीपुरी तथा वहाँ के स्वामी भगवान् विश्वनाथ की भक्तिभाव से अर्चना करने वाले और उनके पावन नाम का जप करने वाले पुरुष कर्म बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष पद के अधिकारी हो जाते हैं।३३। शिव का त्र्यम्बक-इस नाम वाला अष्टम अवतार गौतम ऋषि की प्रार्थना से गौतमी नदी के तट पर हुआ है।३४। शशिशेखर शिव गौतम मुनिकी प्रेम-भक्ति और कामनासे समन्वित प्रार्थनाके होने के कारण ही ज्योतिर्लिंगके सहित अचल होकर वहीं विराजमान हुएहैं।३५ यहाँ पर भगवान् शिवके दर्शन और स्पर्श न करने से मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनायें परिपूर्ण हो जाती हैं और अन्त समय में मोक्षपद प्राप्त होता है।३६। गौतम मुनिकी उत्कृष्ट प्रीतिके कारणही शंकरभगवान्की कृपासे वहां गौतमी गंगा के नाम वाली परम प्रसिद्ध एवं अति पावन नदी स्थित रहती है।३७।

वैद्यनाथवतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः।
आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः।३८।
तदानयनरूप हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः।३९।
वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये।
दर्शनात्पूजनाद् भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि।४०।
वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम्।
पठतां शृण्वतां चारि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने।४१।
नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः।
अविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा।४२।
हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम्।
स्वभक्त वैश्यनायं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम्।४३।

शिव का नवम अवतार वैद्यनाथ के नाम वाला हुआ है जो लंकेश्वर रावणके हित सम्पादनके लिये नाना प्रकारकी लीलायें प्रकट करने वाले थे।३८। शिवभक्त रावण उन्हें अपने साथलिये जानेकी इच्छाकर रहा था तब

उस समय बहाना करके चिता भूमि में वे ज्योतिर्लिंग के स्वरूप से स्थितहो गये ।३९। उस स्थान पर भगवन् शिव वैद्यनाथेश्वरके नामसे सर्वत्र विख्यात होगये जिनके भक्तिपूर्वक दर्शन करनेपर तथा पूजन करनेपर अपनीपूर्ण भक्ति एवं मुक्ति वे प्रदान करते हैं।४०। हे मुनीश्वर ! वैद्यनाथेश्वर शङ्कर अपने इस अनुशासनयुक्त महात्म्य को पठन एवं श्रवण करने वाले पुरुष का भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्रदान किया करते हैं ।४१। भगवान् का दशम अवतार नागेश्वर नाम से प्रसिद्ध है जो अपने भक्तजनोंको अर्थ और दुष्टजनोंको दण्ड देने के लिये ही प्रकट हुए थे ।४२। इस अवतार में शिव ने दारुक दैत्यका वध कर सुप्रिय नाम वाले अपने परम भक्त एक वैश्य की रक्षा की थी ।४३।

लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपधृक् ।
सन्तस्थौ साम्बिकः शंभुर्बहुलीलाकरः परः ।४४।
तद् दृष्टवा शिवलिंगं तु मुने नागेश्वराभिधम् ।
विनश्यन्ति द्रुतं चार्य्य महापातकराशयः ।४५।
रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः ।
रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने ।४६।
ददौ जयवरं प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः ।
अविर्भूतः स लिंगस्तु शंकरो भक्तवत्सलः ।४७।
रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने ।४८।
रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ।४९।

नाना प्रकार की अद्भुत लीलायें करने वाले जगदम्बा भगवानोकेसहित शिव ज्योतिर्लिंग का स्वरूप धारण करके संसार के मनुष्योंकी भलाईके लिए वहाँ विराजमान हुए हैं ।४४। हे मुने ! नागेश्वर नाम वाले भगवान् शिवके लिंग का दर्शनार्चन करने से बड़े से बड़े महान् पातकों के समूहभी शीघ्र ही समूल नष्ट हो जाया करते हैं।४४।हे मुनिराज ! भगवान शिव का रामेश्वर नाम वाला ग्यारहवाँ अवतार हुआहैजिसको श्रीरामचन्द्र भगवानने स्थापित

किया था और उनका प्रिय कार्य करने वाले हुए हैं ।।४६।। ज्योतिर्लिंग के सुन्दर स्वरूप में संस्थित भक्तवत्सल भगवान् शम्भु श्री रामचन्द्र जी की भक्ति-भावना से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने श्रीराघवेन्द्र को विजय प्राप्त करने का वरदान दिया था ।४७। हे मुने ! सेतुबन्ध में भगवाण् श्रीरामचन्द्र ने उनकी अति सेवा की ओर उन्हीं की प्रार्थना से भगवान् शङ्कर ज्योतिर्लिंग के स्वरूप में विराजमान हुए हैं ।।४८।। इस भूमिमण्डल में श्रीरामेश्वर की बहुत अधिक तथा अत्यन्त अद्भुत महिमा है । रामेश्वर प्रभु भोग-मोक्ष और मन की सम्पूर्ण कामनाओं को पूरे करने वाले भक्तवत्सल हैं ।४९।

त च गंगाजलेनैव स्नानपयिष्यति यो नरः ।
राभेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ।५०।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्ल्लभानपि ।
अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ।५१।
घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशः शंकरस्य हि ।
नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ।५२।
दक्षिणस्यां दिशि मुने देवशैलसमीपतः ।
आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभु ५३।
सुदेह्यमारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने ।
तुष्टस्तद्भक्तितः शम्भर्योऽरक्षद्भक्तवत्सलः ।५४।
तत्प्रार्थितः स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः ।५५।
तं दृष्ट्वा शिवलिंग तु समभ्यर्च्य भक्तितः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति च विन्दति ।५६।

जो मनुष्य श्रीरामेश्वर महादेव को दृढ़ भक्ति की भावना से गंगाजल से स्नान कराता है वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाता है ।५०। ऐसा पुरुष संसार में देव दुर्लभ परम सुख-सौभाग्यका उपभोगकर अत्यन्त ज्ञानकी प्राप्ति करता है और अन्त में उसका मोक्ष हो जाता है ।५१। भगवान् शिव का बारहवाँअवतार घुश्मेश्वर नाम वाला हुआहै । यहअवतार अपने अनन्यभक्तो के ऊपर अत्यन्त दया करने वाला हुआ है और इसने घुश्माको महान् आनन्द

का प्रदान किया है ।५२। हे मुनीश्वर ! दक्षिण दिशा में एक देवशैल है, वहाँ पर ही एक सरोवर के निकट महाप्रभु शिव प्रकट हुए हैं। जिन्होंने घुश्मा का प्रिय कार्य किया था ।५३। हे मुने ! भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् शङ्कर ने सुदेह्य नामक दैत्य के द्वारा मारे हुए घुश्मा के पुत्र के प्राणों की रक्षा भक्ति से सन्तुष्ट होकर की था ।५४। घुश्मा की प्रार्थना पर कामना देने वाले प्रभु शिव वहाँ एक सरोवर के समीप में ही घुश्मेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूप में स्थित हो गये ।५५। इन ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप शिव के दर्शन एवं भक्ति समन्वित समर्चन से मनुष्य इहलौकिक सम्पूर्ण सुखों का आनन्दोपभोग करते हुए आगे चलकर मोक्षपद की सद्गति का लाभ प्राप्त किया करता है ।५६।

इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावली मया ।
द्वादशप्रमिता दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।५७।
एतां ज्योतिर्लिगकथां यः पठेच्छ्णुयादपि ।
मुच्यते सर्वपापभ्यो भुक्ति मुक्ति च विन्दति ५८।
शतरुद्राभिधा चेयं वर्णिता संहिता मया ।
शतावतारः सत्कीर्तिः सर्वकामफलप्रदा ।५९।
इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
सर्वान्कामनवाप्नोति ततो मुक्ति लभेद् ध्रुवम् ।६०।

हे मुनिराज ! मैंने तुम्हारे समक्ष में इन द्वादश संख्या वाले ज्योतिर्लिगों का पूरा वर्णन कर दिया जिनके दर्शन स्पर्शन श्रवण और पठन से भुक्ति मुक्ति दोनों की प्राप्ति निस्सन्देह ही होती है ।५७। जो कोई मनुष्य संसार में इस ज्योतिर्लिग की कथा को सुनता व सुनाता है वह समस्त पापों से छूटकारा पाकर भोग मोक्ष पाता है ।५८। हे मुने ! मैंने अब यह शतरुद्र संहिता का वर्णन सुना दिया है जो कि शिव के सौ अवतारों की कीर्तिस्वरूप है और सब मनोरथों का पूरा करने वाली होती है ।५९। जो पुरुष पूर्णतया सावधान चित्त होकर इस शतरुद्र संहिता को पढ़ता अथवा श्रवण करता है वह अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर निश्चय ही पीछे मुक्ति को प्राप्त करता है ।।६०।।

कोटिरुद्र संहिता

।। द्वादश ज्योतिर्लिंगों का माहात्म्य ।।

योधत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनः
तस्मै शैलसुताञ्चिताद्धं वपुषु शश्वन्नमस्तेजमे ।१।
कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं—
शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु—
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितमहो मङ्गलम् ।२।
सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ।
शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ।३।
पुनश्च कथ्यतां तात शिवमहात्म्यमुत्तमम् ।
लिंगसम्बन्धिसुप्रीत्या धन्नस्त्व शैवसत्तमः ।४।
शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्ताःस्मो वय प्रभो ।
शैव यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ।५।
पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तीर्थे तीर्थे शुभानि हि ।
अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ।६।
तानि तानि च दिव्यानि लिङ्गामि परमेशितुः ।
व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ।७।

समस्त प्रकार के विकारों से रहित, स्वकी भुवनमोहिनी माया से सब भुवनों को धारण करने वाले और जगदम्बा पार्वतीको अपने आधे अङ्ग में धारण करते हुए तेजमय स्वरूप वाले भगवान् शङ्करको सर्वदा प्रणाम करता हूँ जिनके करुणापूर्ण कटाक्षसे स्वर्ग तथा अपवर्गके सम्पूर्ण वैभव उनके भक्तों को प्राप्त हो जाया करते हैं और योगीजन जिनका पूर्ण बोध सुख सर्वदा अपने हृदय में देखा करते हैं ।१। आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक इन

तीनों तापों के संताप को शान्त कर देने वाले कृपा से परिपूर्ण सुन्दर दृष्टि-पात करने वाले, स्मित से मनोहर मुख कमल वाले, चन्द्रदेव की कला के परमोज्जवल स्वरूपयुक्त समस्त सुखों के दाता, स्फूर्तिमान्, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा भवानीकी भुजाओं से अलिंगित भगवान् शङ्कर का वपु हमारा सर्वदा मंगल करे।२। ऋषिवों ने कहा-हे सूतजी ! आपने लोकों को भलाई के लिए बहुत ही अच्छी बात कहने की कृपा की है। अब यह प्रार्थना की है कि आप अनेक सुन्दर आख्यानों से पूर्ण भगवान् शिव के अवतारों का माहात्म्य हमको बताइये।३। हे तात ! आप भगवान् शिवके भक्तों में सर्व श्रेष्ठ है और परम धन्य हैं। भगवान् शङ्कर के लिंगस्वरूप से सम्बन्धित माहात्म्यका वर्णन विस्तृत रूप से करने की कृपा करें ॥४॥ हे प्रभो ! आपके मुखाम्बुज से विस्तृत शम्भु के यशो मृत का श्रवणों द्वारा पान करते हुए हमारे मनको तृप्ति नहीं हो रही है अतएव आपसे निवेदन है कि उसे पुनः सुनाने का अनुग्रह करें।५। इस भूमण्डल में प्रत्येक तीर्थ में जहाँ पर भी जितने शिवके शुभ लिंग स्थापित किये हैं तथा अन्य स्थलों में जितने विख्यात शिव लिंग विराजमान हैं उन समस्त परमेश महेश के दिव्य लिंगों का आपको पूर्ण ज्ञान है। हे व्यासजी के शिष्य ! आप सब लोकों के कल्याण की कामना से ही हमारे समक्ष में इस समय वर्णन करने का अनुग्रह करें।६-७॥

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः।८।
सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिङ्गममी भूमिः सर्वं लिङ्गमयं जगत्।९।
लिंगयुक्तानि तीर्थानि सर्वंलिंगे प्रतिष्ठितम्।
संख्या न विद्यते तेषां तानि किञ्चिद् ब्रवीम्यहम्।१०।
यात्किंचिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किञ्चन।११।
तथापि श्रूतां प्रीत्या कथयामि यथा श्रुतम्।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह।१२।

पाताले चापि वर्थन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ।
सर्वत्र तूज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ।१३।
त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरेमानुषम् ।
अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गरूपेण सत्तमाः ।१४।

श्री सूतजी ने कहा–हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय आप लोगों ने समस्त लोकों के हित की भावना लेकर अच्छा प्रश्न किया है हे ब्राह्मणो ! मुझे आप लोगों से बहुत ही स्नेह है अतः मैं सब कुछ संक्षिप्त रूप से आपके सामने वर्णन करता हूँ ।८। हे मुनीश्वर ! भगवान् शिव के समस्त लिंगों की संख्या बतला देना असम्भव है और उन्हें पूर्णतया बतला देने की सामर्थ्य किसी में नहीं हो सकती है क्योंकि सारा भूमण्डल एवं जगत् लिंगमय ही है ।९। समस्त तीर्थ लिंगमय हैं और सभी कुछ लिंग के द्वारा ही प्रतिष्ठित है तथा लिंग में ही स्थित है । उनकी संख्या वर्णनातीत है तथापि मैं दिव्य ज्योतिर्लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१०। इस जगतीतल में जो कुछ भी दर्शनीय पदार्थ हैं तथा जिनका भी वर्णन किया जाता है और स्मरण किया जाता है वह सब भगवान् शङ्कर का ही स्वरूप है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।११। हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! तो भी पृथ्वी तल में जितने दिव्य लिंग हैं उनका वर्णने अपने श्रुत के अनुसार मैं करता हूँ। आप प्रेमपूर्वक सुनो ।१२। भगवान् शङ्कर के ज्योतिर्लिंग पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल में सर्वत्र विद्यमान हैं और वे देवे, असुर तथा मनुष्यों के द्वारा सभी स्थलों में पूजित एवं वन्दित होते हैं ।१३ हे ऋषिश्रेष्ठ ! देव, दैत्य और मानवों के सहित य त्रिभुवन महेश्वर से व्याप्त है और भगवान् शङ्कर संसार के कल्याण के लिये अनुग्रह करते हुए सर्वत्र लिंग स्वरूप में विराजमान रहते हैं ।१४।

अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गानि च महेश्वरः ।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ।१५।
यत्र यत्र यदा शम्भुर्भक्त्वा भक्तैश्च संस्मृतः ।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ।१६।
लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चात्यकल्पयत् ।
तल्लिङ्गं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ।१७।

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तेषां संख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रधानानि कथ्यते च मया द्विजाः ।१८।
प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ।१९।
ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पाप व्यपोहति ।२०।
सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ।२१।

भगवान् महेश्वर लोक कल्याणार्थ अनुग्रह करके समस्त तीर्थ स्थलों में विविध प्रकार के लिंगों का स्वरूप धारण करते हैं ।१५। जब जिस समय जहाँ जहाँ पर शिव भक्तों ने अपने अभीष्ट देव शिव का स्मरण किया है उसी समय वहाँ-वहाँ पर अवतार लेकर भक्त-कार्य पूर्ण करके महेश्वर विराजमान हो गये हैं ।१६। सांसारिक लोगों के उपकार करने के लिये महेश्वर ने अपना लिंग स्वरूप प्रकट कर दिया है । उसी लिंग प्रतिमा का समर्चन कर संसार में मनुष्य अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त किया करते हैं ।१७। हे द्विजवरो ! यद्यपि इस पृथ्वी तल पर विराजमान लिण भी गणना करने के योग्य नहीं हैं तथापि मैं कतिपय प्रमुख लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१८। इस भूमि मण्डल के प्रधान स्थलों में जहां-जहाँ पर भी मुख्य-मुख्य शिव की लिंग मूर्तियाँ विराजमान हैं मैं इस समय उन्हीं का वर्णन करना चाहता हूँ, जिनके आख्यानों का श्रवण कर मनुष्य उसी समय समस्त स्वविहित पापों से छुटकारा पा जाता है ।१९। हे सत्तम ! जितने भी मुख्य-मुख्य महेश्वर के ज्योतिर्लिंग हैं अब उनके ही विषय में कुछ वर्णन करता हूँ उसको सुनकर प्राणी पापों से विमुक्त हो जाता है ।२०। सौराष्ट्र में सोमनाथ, उज्जयिनी पुरी में महाकाल, श्री शैल में मल्लिकार्जुन और ओङ्कार में परमेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हैं ।२१।

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।२२।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ।२३।

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वसिद्धिफलं लभेत् ।२४।
यं यं काममपेक्ष पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
प्राप्यंति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वरा :।२५।
ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ।
तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति ।२६।
एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःख नाषनम् ।
इक लोमे परत्रापि मुक्तभ वति निश्चितम् :२७।
ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भाजनींयं प्रयत्नतः ।
तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात् ।२८।

हिमाचल पर केदारनाथ, डाकिनी में भीमशङ्कर, वाराणसी पुरी में विश्वनाथ और गौतमी नदी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग हैं। ।२२। चिताभूमि में वैद्यनाथ, सेतुबन्ध में रामेश्वरनाथ,दारुक वनमें नागेश और शिवालय में घुश्मेश्वर नाम वाम वाले शिवके ज्योतिर्लिंग संस्थितहैं२३ इन द्वादश शिव के नामों का जो प्रात कालमें उठते ही स्मरण करता हैं वह सब पापों से मुक्ति होकर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करताहै २४।हे मुनीश्वरो ! जो श्रेष्ठ मानव हृदयमें जिस-जिस मनोरथका उद्देश्य लेकर इन द्वादश शम्भु के शुभ नामों का पाठ एवं स्मरण करेंगे वे उन मनोरथों को इस लोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे ।२५। जो मानव निष्काम भावनासे ही अपना कर्त्तव्य समझते हुए उपास्य देव श्री महादेव के इन बारह नामों का स्मरण करेंगे उन्हें फिर संसार में माता के गर्भ में आकर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा ।२६। उपर्युक्त द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चन करने मात्रसे समस्त वर्णों के दुःख-दारिद्रय का नाश होजाता है और इस लोकमें सुखोपभोग तथा पर लोक में मोक्ष मिलता है ।२७। इन ज्योतिर्लिंग स्वरूप शिव प्रतिमाओं पर चढ़ा हुआ नैवेद्य (मिठाई) ग्रहण करनी चाहिए और उसे सयत्न खालेना भी उचित है। ऐसा करने वालों के समस्त पाप उसी समय भस्मीभूत हो जाया करते हैं ।२८।

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः ।
विशेषनः फलं वक्तुं शक्यते न नरैस्तथा ।२९।
एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम् ।
तस्य दुख न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम् ।३०।
हीनयौनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंग च पश्यति ।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ।३१।
सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः ।
शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्ति यात्यनपायिनीम् ।३२।
म्लेच्छो वाप्यन्तजो वापि षण्णो वापि मुनीश्वराः ।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेद् ।३३।
ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ।
ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ।३४।
सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशामुदाहृतम् ।
मह्याः सागरसयोगे तल्लिंगमुपलिंगकम् ।३५।

हे द्विजवरो ! इन द्वादश ज्योतिर्लिंग का वन्दनार्चन द्वारा प्राप्त फल का यथातथ वर्णन करने की सामर्थ्य ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं में भी नहीं है अन्य साधारण की तो बात ही क्या है ॥२९॥ जो पुरुष निरन्तर नित्य ही छँ मास तक किसी भी एक ज्योतिर्लिंग का पूजन करता है उसे फिर माता की कुक्षि में निवास करने की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती है ॥२०॥ जो किसी निकृष्ट योनि में जन्म लेकर भी शिव की लिंगमयी प्रतिमा का दर्शन करता है तो उसके अगले जन्म में श्रेष्ठकुल प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ इस तरह शुद्ध एवं श्रेष्ठ कुल में जन्म पाने के साथ धनाढ्य और वेद-शास्त्र का पारगामी विद्वान् भी हो जाता है जिससे श्रेष्ठ कर्म करके विनाश-विहीन विमुक्ति की प्राप्ति कर लेता है ॥०२॥ हे मुनीश्वरो ! चाहे कोई म्लेच्छ हो अथवा अन्त्यज हो तथा नपुंसक हो—कैसा भी कोई क्यों न हो, वह यदि शिवभक्त रोज शिव पूजन करता है तो दूसरे जन्म में द्विज होकर अवश्य ही मुक्त हो जाता है । अतएव महेश्वर के दर्शन हरएक को अवश्य ही करना चाहिए ।३३। हे श्रेष्ठ ऋषि-

गण ! तभी तक मैंने आप लोगों के सामने शिव के ज्योतिर्लिंग का पूजन एवं दर्शन के फल का वर्णन किया है। अब मैं उनके उप-लिंगों के फल का वर्णन करता हूँ आप उसे श्रवण करें ॥ ३४ ॥ भूमि और समुद्र के संयोग में सोमेश्वर का उपलिंग अन्तकेश नाम से प्रथित है।३५।

मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृमम् ।
रुद्रश्वेरमिति ख्यात भृगुकक्षे सुखावहम् ।३६।
महाकालभवं लिंग दुग्धेशमिति विश्रुतम् ।
नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ।३७।
ॐ कारज च यल्लिङ्गं कर्दमेशमिति श्रुतम्।
प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम् ।३८।
केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे ।
महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतां तथा ।३९।
भीमशङ्करसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् ।
सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ।४०।
नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् ।
मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम् ।४१।
रामेश्वरराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम् ।
घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ।४२।
ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः ।
दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ।४३।
एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च ।
अन्यायि चापि मुख्यानि श्रूयतामृषिसत्तमाः ।४४।

भृगु कक्ष में में मल्लिकार्जुन से प्रकट होने वाला परमसुख का दाता रुद्रेश्वर नाम वाला उपलिंग कहा गया है।३६। नर्मदा नदी के तट पर महाकाल ज्योतिर्लिंग से उत्पन्न हुआ दुग्धेश नाम वाला उपलिंग है जोकि समस्त पापराशि का हरण करने वाला बताया गया है।३७।श्रीओङ्कार से समुत्पन्न कर्दमेश नामक एक उपलिंग है जो कि विन्दु सरोवर में विख्यात है और सब कामनाओं का देने वाला बताया गया है।३८।श्रीसूर्य तनया यमुना

के तट पर केदारेश्वर ज्योतिलिंग से समुद्भुत होने वाला भूतेश नाम से विख्यात उपलिंग है जिसके दर्शन तथा पूजनार्चन करने से महापाप भी दूर हो जाया करते हैं।३९। भीम शंकर से समुत्पन्न भीमेश्वर नाम वाला उपलिंग है जो कि सह्य नामक पर्वत पर विख्यात है और बहुत भारी बल का प्रदान करने वाला है।४०। मल्लिका सरस्वती नदी के तट पर नागेश्वर ज्योतिलिंग से उद्भव प्राप्त करने वाला भूतेश्वर नामक शिव का उपलिंग है जिसके केवल दर्शन मात्र से ही पापों से छुटकारा हो जाता है।४१। श्री रामेश्वर भगवान् से उत्पन्न होने वाले गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश शम्भु के ज्योतिलिंग से उत्पन्न व्याघ्रेश्वर उपलिंग है।४२। हे द्विजगणों! अब यह मैंने आप लोगों के सामने ज्योतिलिंगों के समीपस्थ उपलिंगों का वर्णन किया है जिनके दर्शन का भी महान् पुण्य एवं फल होता है और समस्त पाप छूट करते हैं एवं सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो जाते हैं।४३। हे ऋषिश्रेष्ठो! ये वर्णित सभी उपलिंग बहुत ही प्रसिद्ध हैं और मुख्य रूप से कहे गये हैं। इसके अनन्तर अब अन्य विख्यात लिंगों का वर्णन भी करता हूँ जिसे आप लोग श्रवण करेंगे।४४।

।। अन्यान्य शिव लिगों का माहात्म्य ।।

गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा।
सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता।१।
लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम्।
कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो सृद्धबालकः।२।
तिलभण्डेश्वैवर दशाश्वमेध एव च।
गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः।३।
भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थिवः सदा।
नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्यः स समीपगः।४।
वर्तते गण्डकीतीरे वटुकेश्वर एव सः।
पूरेश्वर इति ख्यातः कल्गुतीरे सुखप्रदः।५।

सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम् ।
दरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा ।६।
शृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च ।
जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ।७।

श्री सूत जी ने कहा—भागीरथी के परम पावन तट पर बसी हुई मुक्ति के प्रदान करने वाली अति विख्यात काशी नाम की नगरी है वह समस्त लिंगमयी तथा भगवान् विश्वनाथ के निवास करने की भूमि कही गई है । ।१। काशीपुरी में मुक्ति के प्रदान करने वाली भगवान् शिव की मुख्य प्रतिमा विराजमान है और कृत्तिवास शिव भी वहाँ पर स्थित हैं । वहाँ काशी में नित्य निवास करने वाला, चाहे वृद्ध हो, बालक हो, साक्षात् शिव के तुल्य ही हो जाया करता है ।२। वहाँ तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्मेघ नाम वाले भी शिव हैं। गंगा सागर के संगम में संगमेश नामक शिव विराजते हैं ।३। भूतेश्वर एवं नारीश्वर नामों से विख्यात होने वाले शिव कौशिकी नदी के समीप में विराजमान हैं जो अपने भक्तों को निरन्तर समस्त वस्तुओं को प्रदान करने वाले हैं ।४। गण्डकी नदी के तट पर बटुकेश्वर नाम वाले महादेव हैं और फल्गु नदी के किनारे पर सुख के दाता पूरेश्वर नाम वाले भगवान् शङ्कर हैं। उत्तर नगर में सिद्धनाथेश्वर शिव हैं जो दर्शन मात्र से ही मनुष्यों को सिद्धि देने वाले प्रसिद्ध हैं और वहाँ पर ही दूरेश्वर नामक भी शिव विराजमान हैं । ।५-६। दधीचि मुनि के युद्धस्थल में प्रसिद्ध होने वाले शृंगेश्वर वैद्यनाथ तथा जप्येश्वर नामक शिवलिंग विराजमान है ।७।

गोपेश्वरः समाख्तो रगेश्वर इति स्मृतः ।
वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ।८।
व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि ।
भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुँकारेशस्तथैव च ।९।
सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम् ।
संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः ।१०।
ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च ।

सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ।११।
रामेश्वर इति प्रोक्तो कुंभेशश्च परो मतः ।
नन्दीश्वरश्च पुजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ।१२।
ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा ।
दशाश्वमेघतीर्थे हि चतुर्वर्गभलप्रदः ।१३।
तथा रामेश्वरस्तत्र सर्वापद्वि नवारकः ।
भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चः प्रवर्द्धकः ।१४।

वहाँ पर गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश और विमलेश्वर नाम वाली शिव की मूर्तियाँ स्थित हैं ।८। इनके अतिरिक्त व्यासेश्वर, सुकेश, भाण्डेश्वर, हुँकारेश नाम की प्रतिमाएँ भी है ॥ ९ ॥ और भी सुरोचन, भूतेश्वर, तथा संगमेश नाम से परम विख्यात भगवान् शम्भु के ज्योतिर्लिंग हैं जिनके दर्शनार्चन से मनुष्यों के पापों का क्षय हो जाता है ॥१०॥ तप्तका नाम की नदी के तट पर शिव की सिद्धेश्वर, कुमारेश्वर और सेनेश नाम वाली प्रसिद्ध प्रतिमाऐं हैं ॥ ११ ॥ पूर्णा में रामेश्वर, कुम्भेश, नन्दीश्वर; पुंजेश और पूर्णक नाम वाले भगवान् शिव की मूर्त्तियाँ हैं ॥१२॥ प्रयाग में प्राचीन समय में ब्रह्माजी के द्वारा संस्थापित दशाश्वमेध तीर्थ पर ब्रह्मेश्वर नामक शिव कर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों को देने वाले विराजमान हैं ॥१३॥ वहाँ पर सोमेश्वर नामधारी शिव समस्त आपत्तियों के हटा देने वाले हैं और भारद्वाजेश्वर ब्रह्मतेज के प्रदान करने वाले हैं ॥१४॥

शूलटकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः ।
माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ।१५।
नागेशाख्यः प्रमिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः ।
सूर्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः ।१६।
पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशः सुसिद्धिदः ।
लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ।१७।
कामेश्वरः शंभुर्लिंगो गगेशः परशुद्धिकृत् ।
शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ।१८।

तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः ।
सिंधुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्वपापहा ।१९।
धौतपापेश्वरः साक्षादशेन परमेश्वरः ।
भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः ।२०।
नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः ।
नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः ।२१।

सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले शूलटकेश्वर महादेव हैं तथा भगवान् माधवेश्वर अपने भक्तों की रक्षा करने वाले विराजमान हैं ।१५। हे विप्रवृन्द ! अयोध्यापुरी में नागेश नामक परम प्रसिद्ध शिव हैं जो सूर्य वंशमें उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को विशेष रूपसे सुख-सौभाग्य प्रदानकिय करते हैं ।१६। पुरुषोत्तमपुरी में श्री भुवनेश शिव की प्रतिमा बहुत प्रसिद्ध है और वहाँ लोकेश नाम वाले महालिंग मनुष्योंको पूर्ण आनन्द देने वाले हैं ।१७। भगवान् शम्भु की कमेश्वर नामक मूर्ति ज्योतिर्लिंग के रूप में है तथा गंगेश शुद्धि करने वाले और शुक्रेश्वर एवं शुक्र सिद्ध भगवान्शिव लोकों की हित सम्पादन करने की इच्छा से वहाँ स्थापित हुए हैं ।।१८।। भगवान् वटेश्वर नामक परम प्रसिद्ध शिव समस्त कामनाओंके फलको प्रदान करने वालेहैं तथा सिन्धु नदीके तट पर श्रीकपालेश्वर और वक्त्रेश समस्त पापों का हरण करने वाले हैं ।१९। साक्षात् शिव के स्वरूप वाले वहाँ धौत पापेश्वर, भीमेश्वर और सूर्येश्वर नाम से प्रसिद्ध प्रतिमाएं विराजमान हैं ।।२०।। समस्त संसार में पूजित नन्देश्वर शिव ज्ञान के प्रकान करने वाले-नमस्कार महान् पुण्य के प्रदाता तथा रामेश्वर भगवान् महान् पुण्य के फलों के देने वाले स्थित हैं ।। २१ ।।

विमलेश्वरनामा वैकंटकेश्वर एव च ।
पूर्णसागरसयोगे धतुकेशस्तथैव च ।२२।
चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः ।
सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ।२३।
बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च ।
यत्र वा अन्धको दैत्यः शङ्करेण हतः पुरा ।२४।

अयं स्वरूपमशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः ।
शरणेश्वरविख्यातो लोनांक सुखदः सदा ।२५।
कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटिशश्चः बुंदाचले ।
अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा ।२६।
नागेश्वरवस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः ।
अन्तेश्वरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ।२७।
योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा ।
कोटोश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः ।२८।
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम् ।
चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च ।२९।

पूर्ण सागर के संयोग के निकट में विमलेश्वर, कटकेश्वर और धर्तुकेश शिव के ज्योतिर्लिंग विराजमान हैं ।। २२ ।। चन्द्रमा के समान कान्ति प्रदान करने वाले चन्द्रेश्वर और सब मनोरथ दाता सिद्धेश्वर शिव बताये गये हैं ।। २३ ।। जिस स्थान पर प्राचीन काल में भगवान् शिव के अन्धक नाम वाले दैत्य का वध किया था वहाँ अन्धकेश तथा बिल्वेश्वर नाम से प्रथित हैं ।।२४।। भगवान् शम्भु ने अपने अंश से यही स्वरूप धारण करके यहाँ पर शरणेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर अपनी स्थिति की है जो संसार के प्राणियों को परम सुख प्रदान करने वाले हुए हैं ।।२५।। अर्बुद (आबू) नामक पर्वत पर सदा मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाले कर्दमेश कोटीश और अचलेश नाम से भगवान् शिव विराजमान हैं ।। २६ ।। कौशिकी नामक नदी के तट पर नागेश्वर तथा अनन्तेश्वर नाम से विख्यात शिव प्रतिमाऐं कल्याण करने वाली हैं । ।।२७।। इनके अतिरिक्त यंगेश्वर, वैद्यनाथ, सप्तेश्वर और कोटिश्वर नाम वाले शिव परम विख्यात हैं ।। २८। भद्र नामक साक्षात् शिव भद्रेश्वर इस नाम से एवं चण्डीश्वर और संगमेश्वर नामों से विख्यात हैं ।।२९।।

।उत्तर दिशा के चन्द्रभाल पशुपति शिवलिङ्ग माहात्म्य।

श्रृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः ।
नाहात्म्य शिवलिगानां प्रवदामि समासतः ३०।

गोकर्णं क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम् ।
महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्तरम् ।२।
तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ।
रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ।३।
तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनिश्वराः ।
सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च ।४।
स्नानं कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं समर्च्य च ।
शिवलोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।५।
चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाऽद्भुता ।
न शक्या वर्णितुं व्यासाद् भक्तिस्नेहतरस्य हि ।६।
चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् ।
यथाकथंचित्संप्रोक्ता परलिंगस्य वै श्रृणु ।७।

श्री सूतजी ने कहा–हे विप्रवृन्द ! अब मैं आपके सामने उत्तर दिशा में विराजमान शिव के ज्योतिर्लिगों के माहात्म्य का वर्णन संक्षेपसे करता हूँ उसे आप सभी परम आदर तथा प्रेम से श्रवण करो ।।१।। महान् पातकों का नाश करने वाला अन्य गोकर्णनाम वाला क्षेत्रहैऔर वहाँ अत्यन्त विशाल विस्तृत तथा परम पवित्र वन है ।।२।। उस स्थान पर चन्द्रभाल नाम से विख्यात शिवका एकश्रेष्ठ ज्योतिर्लिग रावण के द्वारा भक्तिसे सहित स्थापित किया हुआ है जो समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाला है ।३। हे मुनिश्वर वृन्द ! समस्त संसार की भलाई के लिये दया के सागर भगवान चन्द्रभाल शिव के लिंग की वैद्यनाथ के तुल्य ही स्थिति है ।४। यह सर्वथा पूर्ण सत्य हैऔर नितान्त निस्सन्देह है कि गोकर्णमें स्नानकर चन्द्रभाल शिवलिंग का अर्चन-वदन करने वाले पुरुषों को शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है ।।५।। अत्यन्त भक्त-वत्सल चन्द्रभाल शङ्करकीमहिमा परम अद्भुतहैजिसका यथार्थ वर्णन करने में स्वयं व्यास मुनि भी असमर्थ होते है ।६। यद्यपि चन्द्रभाल शिव की महिमा बहुत ही बड़ी है तो भी मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ वर्णन करता हूँ आप लोग उसको श्रवण करें ।।७।।

दाधीचं शिवलिंग तु मिश्रर्षिवरतीर्थके ।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ।८।
तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
शिवलिंग समर्चेद्व दाधीश्वरमादरात् ।९।
दधीचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् ।
शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्राफलार्थिभिः ।१०।
एवं कृते मुनिश्रेष्टाः कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र पतिम प्नुयात् ।११।
नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्टितमे ।
ऋषिश्वरमिति ख्यातं शिवलिंग सुखप्रदम् ।१२।
तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि ।
भुक्त्रिर्मुक्तिश्व तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ।१३।
हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम्
पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम् ।१४।

मिश्र (मिश्र ऋषिनामक तीर्थ पर दाधीच नाम वाला शिव का लिंग बिराजमान है जिसको दाधीच मुनि ने परम प्रीति एवं भक्ति के साथ वहाँ स्थापित किया था ।८। वहाँ पहूँच कर सविधि स्नानादि करने के पश्चात् दाधीकेश्वर शिव की अर्चना करनी चाहिए ।९। अतिशीघ्र तीर्थ-यात्रा के फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वालोंको भगवान् शिवके प्रसन्न करनेके लिए दाधीच ऋषि की संस्थापित प्रतिमा का विधिपूर्वक पूजन करमा आवश्यकहै ।१०। हे श्रेष्ठ मुनिय ! इस रीति से शिवार्चन करने से मनुष्य इस लोक में कृत-कृत्य होकर अन्त समयमें परलोककी सद्गतिको प्राप्त होजाया करता है ।११। नैमिषारण्य की पवित्र तपो भूमि में वहाँ के तपोनिष्ठ ऋषिगण के द्वारा संस्थापित ऋषीश्वर नामधारी शिव का ज्योतिर्लिंग है, जो मनुष्योंको सदा सुख प्रदान किया करते हैं ॥१२॥ हे मुनिवृन्द ! भगवान् ऋषीश्वर के दर्शन से पापात्मा मनुष्यों का भी उद्धार हो जाता है और वे भी अपने समस्त पाप राशिसे उन्मुक्त होते हुए इस लोकमें भुक्ति और परलोकमें मुक्ति

की प्राप्ति प्राप्त कर लिया करते हैं ।। १३ ।। हत्याहरण नामक तीर्थ में सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले और खासतौर से करोड़ों हत्याओं के बिनाशक परम पूज्य का लिङ्ग विराजमान है ।।१४।।

देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम् ।
शिवलिंगं सदा पूज्य नरैः सर्वाघनाशनम् ।१५।
नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ।
लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम् ।१६।
शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंग तदस्ति हि ।
तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ।१७।
तदारान्मुक्तिनाथाख्यं शिवलिंगं महाद्भुतम् ।
दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ।१८।
इति वश्च समाख्यातं लिङ्गवर्णनमुत्तमम् ।
चतुर्दिक्षु मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।१९।

देवप्रयाग नामक तीर्थ के स्थान में सब पापों का क्षय करने वाले ललितेश्वर नाम वाले शिव का सब पुरुषों को पूजन अवश्य ही करना चाहिए ।१५। परम विख्यात नयपालपुरी में अर्थात् नैपाल में पशुपतीश्वर नाम वाले अति प्रसिद्ध तथा समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाले ज्योतिर्लिङ्ग विराजमान हैं ।।१६।। यह शिव का लिंग शिर के भाग के स्वरूप में ही संस्थित है । इनकी कथा का वर्णन मैं केदारेश्वर के इतिहास में बतलाऊँगा ।। १७ ।। इनके समीप में ही मुक्तिनाथ वाले परम अद्भुत शिव का लिंग है जो दर्शन देकर एवं पूजित होकर भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्रदान किया करते हैं ।।१८।। हे श्रेष्ठ मुनिगण ! इस प्रकार से चारों दिशाओं में विराजमान भगवान् शिव हैं । अब क्या श्रवण करना चाहते हो ? ।।१९।।

।। विष्णु द्वारा शिव सहस्त्र नाम का कीर्तन ।

श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः ।
तदहं कथयाम्यद्य शव नामसहस्त्रकम् ।१।

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्पलोचनः ।
अर्थिगस्यः सदाचारः सर्वः शंभुर्महेश्वरः ।२।
चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः ।
वेदान्तसारसदोहः कपाली नीललोहितः ।३।

श्री सूतजी ने कहा—हे श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ! जैसा हमने सुना है वही अब बतलाते हैं । आप लोग इसका श्रवण ध्यानपूर्वक करें । विष्णु भगवान् की प्रार्थना से श्री शिव जिससे परम सन्तुष्ट हुए थे वह परम पवित्र सहस्रनाम मैं आपको सुनाता हूँ ॥१॥ भगवान् विष्णु ने कहा—"शिवः"—यह भगवान् शङ्कर का नाम त्रिगुण से रहित परम मङ्गल वाचक होकर मङ्गल करने वाला है । शिव का "हर" यह नाम सृष्टि के अन्त में सब का संहार करने के कारण ही से पड़ा है । "मृड"–यह सुख का प्रदान करने से शिव का नाम पड़ गया है । "रुद्रः"—यह शिव का पवित्र नाम प्रजा को अन्त समय में सहार करते हुए रुलाने से हुआ है । अथवा समस्त दुःखों को दूर भगा देने से रुद्र नाम पड़ गया है । या दुष्टों को दुखों के दायक होने से रुद्र कहे जाते हैं । "पुष्कर"—यह पुष्टि करने से शिव का नाम हुआ है । 'पुष्पलोचनः"—यह नाम पुष्प अर्थात् कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले होने से हुआ है । "अर्थिगम्यः"—यह शिव का शुभ नाम भक्तों को स्वर्ग-मोक्षादि की कामना पूरी करने के कारण हुआ है । "सदाचारः"—यह नाम सत्पुरुषों के आचरण रखने वाले होने से हुआ है । "शर्व"—यह शिव का नाम समस्त प्रजा के अन्त करने से हुआ है । "शम्भुः"-यह शिव का शुभ नाम भक्तों को सुख देने से हुआ है । 'महेश्वर'-यह नाम अर्थात् परमेश्वर 'यः परः स महेश्वरः'–इस श्रुति वचन के अनुसार जो सबसे ऊपर है वह महेश्वर होता है सबसे बड़े स्वामी होने के कारण ही हुआ है ॥२॥ भगवान् शिव का "चन्द्रापीड"—यह शुभ नाम अपने मस्तक में चन्द्रमा धारण करने के कारण से हुआ है । "चन्द्रमौलि"-यह नाम अपने मस्तक का चन्द्रमाभूषण बनाने के कारण हुआ है । 'विश्वम्:-यह नाम शिवको परब्रह्म स्वरूप बतलाता है । "विश्वम्भरेश्वरः"-यह नाम संसार और समस्त देवों के स्वामी होने के कारण हुआ है । 'वेदान्त सार

सन्दीह:"—यह नाम वेदान्त शास्त्र के पूर्ण रूप से ज्ञाता होने से पड़ा है। "कपली" कपाल धारण करने से तथा 'नील लोहित'—यह नीले और लाल रंग वाली जटा धारण करने से नाम हुए हैं ।।३।।

ध्यानाधरोऽपरिच्छेद्यो गोरीभर्त्ता गणेश्वर: ।
शष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्ग: सर्गसाधन: ।४।
ज्ञानगम्यो दृढप्रजो देवदेवत्रिलोचन: ।
वामदेवो महादेवो पटु: परिवृढ़ो दृढ: ।५।
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीश: सुरसत्तम: ।
सर्वप्रमाणसवादी वृषाको वृषवाहन: ।६।

'ध्यानाधार:'—यह नाम योगियों के ध्यान का आधार बनने से हुआ है। "अपरिच्छेद्य"—यह नाम देश और काल से परिच्छिन्न न होने के कारण शिव का हुआ है। 'गौरीभर्त्ता"—यह पार्वती के पति होने से और प्रमथादि गणों के नियन्त्रण करने वाले होने से "गणेश्वर"—यह नाम हुआ है। आकाश आदि आठ मूर्तियों में स्थिति रखने के कारण शिव का "अष्ट मूर्ति" नाम हुआ है। समस्त जगत् ही मूर्ति स्वरूप होने से 'विश्वमूर्ति' नाम है। "त्रिवर्ग स्वर्गसाधन:"—यह शिव का शुभ नाम धर्म-अर्थ और काम एवं स्वर्ग के अचिन्त्य सुख के देने वाले होने के कारण हुआ है ।।४।। "ज्ञान गम्य"—यह नाम ज्ञान मात्र से ही वेदान्त के अर्थ जानने योग्य होने के कारण शिव का है। "दृढ प्रज्ञ:"—यह नाम सर्वदा ज्ञान से युक्त-"देवदेव:"—यह देवों को भी कर देने वाले देवता अथवा शक्ति प्रदान कर उनको पूर्ण प्रकाश तथा आनन्द देने वाले—"त्रिलोचन"—तीन नेत्रों के धारण करने वाले अथवा तीन गुण तीन लोक और तीन वेदों के ज्ञान से युक्त किम्वा अकार उकार और मकार ओम् ये तीन अक्षर के नेत्र वाले यद्वा शास्त्र आचार्य और ध्यान त्रिदर्शन इन साधन स्वरूपी तीन नेत्रों वाले होने से यह नाम पड़ा है। महाभारत ग्रन्थ की टीका के रचयिता नीलकण्ठ ने भी वही इसका अर्थ लिखा है। 'वामदेव"—यह नाम शिव का इसलिये हुआ है कि ये दुरात्माओं के मद को निकलवा देने वाले हैं अवथा लोकोत्तर एवं सुन्दर देवता हैं किम्बा कर्म फलों के विभाजन

करने के कारण सुन्दर देवता हैं "महादेव" इसका अर्थ ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय बड़े देव हैं। "पटु" यह नाम दुःखों के नाश करने वाले अथवा अपने भक्तवर्ग के कल्याण करने में परम कुशल होने से हुआ है। "परिवृढ" जगत् के प्रभु— दृढ़— महाबलवान्–होने के कारण ये नाम हुए हैं ॥५॥ 'विश्वरूप' समस्त जगत्स्वरूप— 'विरूपाक्ष' विषम नेत्र वाले— 'वागीश' वेद वाणी के स्वामी— 'शुचि सत्तम' तीनों माया के गुणों से रहित होने के कारण परम विशुद्ध— सर्व प्रमाण संवादी'—वेदादि के समस्त प्रमाणों के वेत्ता – 'वृषाङ्क' वृष के चिन्ह को धारण करने अथवा धर्मयुद्ध और 'वृषवाहन नन्दीश्वर नामक वृष के वाहन वाले होने से ये सब शिव के नाम हुए हैं ॥६॥

ईशपिनाकी खट्वांगी चित्रवेषश्चिरन्तनः ।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माण्डहृज्जटी । ७
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणतात्मक' ।
उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्धासाः पुरशासनः ॥८
दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः ।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥९

'ईश'–सम्पूर्ण जगत् के स्वामी–'पिनाकी' पिनाक नाम वाले धनुष को धारण करने वाले–'खट्वांग' खाट के एक अंग को अपना आयुध बनाने वाले—"चित्र वेष" समय पर कार्य के अनुकूल अनेक वेषों के धारण करने वाले—'चिरन्तन' तीनों कालों से बाधा न पाने वाले अर्थात् परम प्राचीन– 'तमोहर' अज्ञान के अन्धकार को हरण करने वाले अर्थात् अविद्या नाशक– 'महायोगी' यम-नियम प्राणायामादि योग के आठों अंगों के तत्व ज्ञाता– 'गोप्ता' सर्वप्रकाश से रक्षा करने वाले – 'ब्रह्मा' जगत् में सभी कुछ की उत्पत्ति करने वाले और महान् समस्त गुणगणों से परिपूर्ण होने से उक्त सभी नाम भगवान् शिव के हुए हैं (५०) 'धूर्जटि'—सारभूत जटाओं वाले अथवा गंगा को जटाजूट में धारण करने वाले हैं ॥७॥ 'काल-कल:' अर्थात् मृत्यु और यम के काल अर्थात् संख्या करने वाले—'कृत्तिवासा'

अर्थात व्याघ्र चर्मके वस्त्र धारण करने वाले शिव हैं। "पिनाक हस्त, कृत्ति-वासः" यह श्रुति का भी वचन आता है अर्थात शिव पिनाक हाथ में धारण करने वाले तथा चर्म वस्त्र वाले हैं। 'सुभग'—सुन्दर स्वरूप वाले अथवा अत्यन्त ऐश्वर्यधारी --'प्रणवात्मक' ओंकर के स्वरूप धारण करने वाले—यहां "ओमित्येकाक्षर ब्रह्म" यह श्रुति भी यही बतलाती है।'उन्नध्र'अर्थात् पापात्मा पुरुषों को पाश से बांधने वाले 'पुरुषः—यह शिव का नाम इसलिए हुआ है कि शिव सब के शरीर में व्याप्त हैं अथवा अन्तर्यामी रूप से शयन करते हैं, अथवा सब प्रकार से परिपूर्ण होने से भी शिव का नाम पुरुष है। 'जुष्य सबके मन वचन और कर्म के द्वारा सेवा करके के योग्य हैं—,दुर्वासा' यह नाम वल्कलादि के वस्त्रधारण करने से हुआ है अथवा दुर्वासा नाम अत्रि के यहाँ पुरुष रूप से अवतार होने वाले होने से नाम है। 'पुरुशासन' त्रिपुर नामक असुर के संहारकर्त्ता हैं। (६०) 'दिव्यायुध' पिनाक प्रभृति अत्युत्तम आयुधों के धारण करने वाले हैं। 'स्वन्द गुरु' अर्थात् षडानन कार्तिकेय के पिता हैं। 'परमेष्ठी' अपनी अनन्त गुणमयी महिमा से युक्त और आकाश में स्थित होने से शिव के नाम हुए हैं।परात्पर' अर्थात् अव्यक्त, पर से भी परे हैं 'अनादि मध्य निधनः' अर्थात् देश और काल से भी अपरिछिन्न हैं। 'गरीश' अर्थात् मेरु आदि समस्त पर्वतों के स्वामी हैं। 'गिरिजाधवः' अर्थात् शिव हिमाचल की पुत्री पार्वती के स्वामी हैं ॥८॥९॥

कुवेरबन्धुः श्रीकण्ठो योकवणोत्तमो मृदुः।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकंठः परश्वधी ॥१०
विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः।
धर्माध्यक्षः क्षमाक्षेत्र भगवाग्भमनेगभित् ॥११
उग्रः पशुपतिस्ताक्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥१२

'कुबेरबन्धु' अर्थात् यक्षाधिपति कुबेर के भाई हैं। 'श्रीकण्ठ' अर्थात् अपने कण्ठ में सुषमा किम्बा वेद को रखने वाले हैं। यहाँ इसे शिव के शुभ नाम की पुष्टि—'ऋचः सामानि यजु ऋषि सा हि श्रीरमृतास तास' वह

श्रुति के वचन से होती है। 'लोक वर्णोत्तम' अर्थात् शिव के भास्वद् रूपको लोक द्वारा देखा जाता है अथवा लोकमें ब्राह्मणादि से भी श्रेष्ठ है (७०) 'मृदु' अर्थात् भक्तों के लिये सौम्य रूप वाले हैं। 'समाधि वेद्य' अर्थात् धनुर्धारी हैं। 'नीलकण्ठ' अर्थात् प्राणीमात्र के त्राण के लिये महाविष के पान करने से नीले कण्ठ वाले हैं। 'परश्वधी' अर्थात् अपना सर्वस्व धन देकर भक्तों को सुख पहुचाने वाले हैं, किम्बा भक्तों में अपनी जैसी बुद्धि प्रदान करने वाले हैं। (८०) 'विशालाक्ष' बड़े नेत्रों से युक्त-मृगव्याध—मृग पशु के समान जीव के संहार करने के लिये व्याध के सदृश अथवा अर्जुन पर कृपा करने के लिये व्याध का स्वरूप रखने वाले सुरेश—अर्थात् समस्त देवों के स्वामी। 'सूर्य तापन'—अर्थात् दुर्जनों को सूर्य की भाँति ताप प्रदान करने वाले किम्वा सूर्य को भी तपा कर भय देने वाले हैं। इस बात का पूर्ण पोषण करने वाला— भीषोदेति सूर्य'' यह श्रुति का वचन भी है। धर्माध्यक्ष—अर्थात् वर्ण और आश्रम प्रभृति धर्मों के स्थान हैं (८०) 'क्षमा क्षेत्रम्'—अर्थात् क्षमा के उद्भव के स्थान हैं। 'भगवान्' अर्थात् भग नाम छै प्रकार के ऐश्वर्यों से संयुक्त हैं। भगनेत्रभित्—अर्थात् शिव दक्ष के यज्ञ में भग नामक देवता के नेत्रों का भेदन करने वाले हैं। उग्रः—अर्थात् महाप्रलय के समय में समस्त सृष्टि का संहार करने के कारण शिव उग्र रूप वाले हैं। पशुपति'—पशु—जीवों के पालन कर्त्ता शिव का स्वरूप होने से उनका यह नाम हुआ है। 'तार्क्ष्यः' अर्थात् कश्यप का स्वरूप हैं। 'प्रिय भक्तः'.— अर्थात् अपने भक्तों के ऊपर अत्यन्त प्यार करने से उनके परम प्रिय शिव हैं। 'परन्तपः'—अर्थात् शत्रुओं को ताप देने वाले हैं। 'जहाँ प्रिय-माह ऐसा पाठ है वहाँ प्रिय भाषण करने वाले हैं। 'दाता—इसका मतलव है कि शिव भक्तों को ऐश्वर्य के देने वाले हैं। दयाकरः— भक्तजनों के उद्धार करने के लिये पूर्ण अनुग्रह करने वाले हैं 'दक्षः'— इस जगत् के स्वरूप में वृद्धि पाकर समस्त कर्म-कलाप के करने में कुशल हैं। कपर्दी अर्थात् संन्यासी किम्बा कपर्दी मुनीकृत भिक्षु सूत्रके जानने वाले अथवा कपर्दी के रूप से प्रकट होकर ज्ञान का दान करने वाले शिव हैं काम शासन' —अर्थात् कामदेव को भस्म करने वाले हैं॥ १२॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः ।
लोककर्त्ता मृगपतिर्महाकर्त्ता महौषधिः ॥१३
सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥१४
उत्तमो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमतरः सुखी ॥१५

"श्मशाननिलयः" — अर्थात् श्मशान भूमि में अपना निवास बनाने वाले शिव होते हैं। "सूक्ष्मः" — इनका अर्थ है शिव शब्दादि के स्थूल कारण से रहित हैं। यहाँ श्रुति का वचन 'सर्वगतं सुसूक्ष्यम्'-यही बात पुष्टकर देता है। 'श्मशानस्थः'अर्थात् श्मशानमें ठहरने वाले हैं। 'महेश्वर'-सबसे बड़े स्वामी 'लोककर्त्ता'--इस विश्व के बनाने वाले 'मृगपतिः' अर्थात् पशुओं की रक्षा करने वाले और'महाकर्त्ता'-अर्थात् पाँच महाभूतोंके निर्माण करने वाले हैं। इस विषय के पोषक "विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" इत्यादि आगमों के वचन भी हैं। यहाँ पर भगवान् शिवके सहस्र नामोंका एक शतक पूरा होता है। (१००) शिव का नाम 'महौषधि' भी है। इसका अर्थ होता है शिव ब्रीहि यवादिके रूप वालेहैं अथवा संसार बन्धन स्वरूप रोगके छुड़ादेने वाले हैं। 'सीमपः' यज्ञादिमें देव स्वरूपसे सोमके पान करने वाले हैं। किम्बा धर्म की मर्यादा को दिखाते हुए यजमान के स्वरूप से सोमपान करने वाले हैं। 'अमृतपः'-अर्थात् अपनी ही आत्मा का अमृतपान करने वाले हैं। 'सौम्यः'-भक्तों के लिये परम सौम्य शान्य स्वरूप वाले हैं। 'महातेजाः'-इसका अर्थ है परम तेजस्वीहैं जिनसे सूर्यादि तेजोनिधि भी तपतेहैं। यहाँ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' यह श्रुति का वाक्य भी इसकी पुष्टि करने वाला है। 'महाद्युतिः'-अर्थात् महान् कान्ति वाले हैं। यहाँ भी 'स्वयज्योतिः' यह श्रुति वचन है। कहीं पर 'महानीतिमहामतिः' ऐसा भी पाठान्तर है। "तेजोमयः"--अर्थात् विश्व को प्रकाशित करने वालेहैं। किंबा तेजसे युक्तहैं। "अमृतमयः"-अर्थात् मरणसे रहित या जलमयहै। 'अमृतवा आपः'-यह श्रुति वचनहै। शिवकी अष्टमूर्ति के अन्तर्गत एक जल का स्वरूप भी है अथवा मोक्ष के आनन्द से परिपूर्ण है। "कन्नमय" — अर्थात् अन्न के स्वरूप वाले हैं। यहाँ पर भी

'अन्नमय आत्मा'—'अन्नं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति के वचन हैं। 'सुधापति'—अर्थात् देवोंको अमृत का पान कराने के लिये उसकी रक्षा करनेवाले स्वामीहैं 'उत्तम'--इसका अर्थ है शिव संसार में आवागमन के समूह से पार करने में सर्वोत्कृष्टहैं। यहाँ 'विश्वस्म दिद्र उत्तरः' यह श्रुति का वचन भी इसका पोषक होता है। गोपतिः—अर्थात् पृथ्वी-स्वर्ग-पशु, वाणी, रश्मी और जल के स्वामी हैं।

"गोप्ता"—समस्त भूतों के पालन करने वाले हैं। 'ज्ञानगम्य'—इस शिव के नाम का तात्पर्य होता है भगवान् शम्भु केवल कर्म से प्राप्त करने के पश्चात् समुत्पन्न ज्ञान से प्राप्त करने के योग्य हैं। 'पुरातनः'--काल से अपरिच्छिन्न होने के कारण परम प्राचीन हैं। 'नीति'—दण्ड के योग्य व्यक्तियों को दण्ड के प्रणयन करने वाले हैं। "सुनीति"—अर्थात् निर्मल चित्त वाले,'सोमः' अर्थात् चन्द्र के स्वरूप से औषधियों की पुष्टि करने वाले अथवा उमाके सहित रहने वाले हैं। ११०। 'सोमरतः'—चन्द्र अमृत या सोमलता के रस में अनुराग करने वाले हैं। "सुखी"—अर्थात् आनन्द से युक्त हैं। किम्बा भक्तों को सुख प्रदान करने वाले हैं। यहाँ—"एषह्य्नानन्दयति" यह श्रुति का वचन भी है॥ ३-१४-१५ ॥

अजातशत्रुरालोकसंभाव्यो हव्यवाहनः ।
सीकंकरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ।।१६
महर्षिः कपिलाचार्य्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः सुकृतः सुधीः ।।१७
धातृधामा धामकरः सर्वदः सर्वगोचरः ।
वह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः ।।१८

"अजातशत्रु"—शत्रु से रहित है क्योंकि आप शिव स्वयं ही सबके शासक हैं। "आलोकः'—अर्थात् स्वयं ही प्रकाश स्वरूप हैं। "संभाव्यः"—अर्थात् समस्त देव असुरों के माननीय हैं। "हव्यवाहन"—अर्थात् शिव अग्नि स्वरूपसे समस्त देवों को हवि के पहुँचा देने वाले हैं। यहाँ पर'देवेभ्योहव्य वाहनः प्रजानम्" यह श्रुति का वाक्य भी प्रमाणित करता है।

'लोककरः'—लोकों के सृजन करने वाले, 'वेदकरः'—ऋग्वादि वेदों के

प्रकाश करने वाले, 'सूत्रकारः'—व्यासादि के रूप में होकर सूत्रों की रचना करने वाले और "सनातनः"—सदा सर्वदा रहने वाले शिव हैं। "महर्षि कपिलाचार्यः"—सांख्य दर्शन के द्वारा शुद्ध आत्मा के जानने वाले कपिल के रूप में अवतीर्ण होने वाले हैं। जो वेद के एक ही देश को जानते हैं वे महर्षि कहे जाते हैं। यहाँ पर—"ऋषि प्रसूतं कपिलं महान्तम्" यह श्रुति वाक्य भी इसकी पुष्टि करता है। 'विश्वदीप्ति'—अर्थात् यह समस्त संसार शिव की ही दीप्ति का रूप है। यहाँ—'यस्य भासा सर्वमिदम्' यह वेद का वचन भी इसका पोषक है।

'त्रिलोचनः'—अर्थात् तीन नेत्रों वाले हैं। 'पिनाकपाणिः'—अर्थात् पिनाक धनुष अथवा त्रिशूल को हाथ में धारण करने वाले हैं। 'भूदेव'—भूमि में दुर्वासा आदि ब्राह्मण के स्वरूप से अवतीर्ण होने वाले हैं। 'स्वस्तिदः'—भक्तों को कल्याण प्रदान करने वाले हैं। सुकृतः—अर्थात् भक्तों के मङ्गल करने वाले हैं। 'सुधीः'—श्रेष्ठ जान से परिपूर्ण हैं॥१७॥ धातृधामा'—अर्थात् विश्व के धारण करने वाले तेज से युक्त हैं। 'धामकरः'—सूर्यादि तेज और समस्त प्राणियों की देह के बनाने वाले हैं। 'सर्वग;'—सब में व्याप्त रहने वाले शिव हैं। 'सर्वगोचरः'—सम्पूर्ण जगत् को प्रत्यक्ष करने वाले हैं। 'ब्रह्म सृक्'—अर्थात् ब्रह्मा अथवा वेद के सृजन करने वाले हैं। 'विश्वसृक्'—अर्थात् संसार की रचना करने वाले हैं। 'सर्गः'—स्वयं सृष्टि के स्वरूप में होने वाले, 'कविः'—सभी कुछ के ज्ञाता हैं। यहाँ पर श्रुति का वचन है—'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' इत्यादि। 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादि॥ १६।१७।१८॥

शाखो शिशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः।
गंगाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः॥१९
विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥२०
कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः॥२१

'शाखः'—इसी नाम वाले ऋषि का स्वरूप, 'विशाखः' एक ऋषि के स्वरूपधारी अथवा स्कन्द के स्वरूप से उत्पन्न होने वाले हैं। 'गोशाखः शिवः—

अर्थात् वेदों की शाखा के अश्रय स्वरूप, अथवा इस सम्पूर्ण जगत् के शयन करने का आधार किम्बा त्रिगुण रहित होने के कारण शिव हैं। यहाँ दोशब्दों का एक ही शिव का नाम है। यहाँ पर 'स ब्रह्मा स शिवः' इत्यादि श्रुतिका वचत है। 'भिषक्'–धन्वन्तरि के स्वरूपमें अवतीर्ण होकर संसार के समस्त रोगों के नाशक हैं। यहाँ पर भी–'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि इत्यादि श्रुति के वचन हैं जो उक्त नाम की पूर्ण पुष्टि करते हैं। अनुत्तमः'-अर्थात् संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं यहाँ जिससे उत्तम कोई नहीं-ऐसा बहुव्रीहि समाज होता है। यहाँ 'यस्मात्परं नायमस्ति किंचित्' यह श्रुति का वचन समर्थक है।

'गंगाप्लवोदकः' —भागीरथी गंगा के जल-प्रवाह के समान हैं। 'जन तारकः'–अर्थात् भक्तों के उद्धारक हैं। 'भव्य'-समस्त कल्याण से परिपूर्ण हैं। 'पुष्कलः'–सब में व्यापक रहने वाले हैं। 'स्थपतिः स्थिरः'–अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डों के रचने वाले अथवा माया के कंचुकी हैं। यहाँ पर ये दोनों शब्द मिलकर शिव का एक ही नाम बतलाते हैं।'विजितात्मा'–आत्मा को जीत लेने वाले हैं। 'विषयात्मा'–समस्त इस प्रपञ्च जगत् की आत्मा हैं। कहीं 'विधेयात्मा' यह पाठान्तर भी होता है। 'भूत वाहन सारथिः'–प्राणियों के कर्मफलों को प्राप्त करने वाले ब्रह्मा को अपना सारथी रखने वाले हैं। 'सगणः'-अर्थात् प्रथमादिगणों से युक्त रहने वाले। 'गणकाय'–गणों के शरीर वाले किम्बा अपरिच्छेद्य काया वाले। 'सुकीर्ति'–सुन्दर कीर्ति से युक्त। छिन्न संशयः–सर्वज्ञता के कारण सब प्रकार के संशयों से रहित हैं॥ १६।२०॥

'कामदेवः'–अर्थात् धर्मार्थादि पुरुषार्थों की इच्छा रखने वाले शिव हैं। 'कामपालः'–कामिजन की कामनाओं को पूरा करने वाले। 'भस्मोद्धूलित विग्रहः'–भस्म लगाने से धूलित शरीर वाले। 'भस्म प्रियौ भस्मशायी'-भस्म-प्यारी लगनेके कारण उसी में शयन करने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द मिलकर एक ही शिव का नाम बतलाते हैं। 'कामी —पूर्णकाम अर्थात् जिनकी सभी कामनायें स्वतः परिपूर्णहैं। 'यहाँ-'सोऽकामाय'इत्यादि श्रुतिवाक्यभी उनको कामना रहित बतलाता है। 'कान्त'-मनोहर किम्बा द्विसीय परार्ध में ब्रह्मा के भी अन्त करने वाले हैं। 'कृतागमः'–श्रुति तथा मृत आदि आगम स्वरूप लक्षण के व्यक्त करने वाले हैं॥ २१॥

समावर्त्तो निवृत्तत्मा धर्म पुंजः सदा शिवः ।
अकल्मषश्च पुण्यात्मा चतुर्वाहुर्दु रासदः ॥२२॥
दुर्लभो दुगमा दुर्गः सर्वायुधविशारदः ।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतंतुस्तस्तु वर्द्धनः ॥ २३
शुभांगो लोकसारङ्गी जगदीशो जनार्दनः ।
भस्मशुद्धिकरोऽ भीरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥२४

शिव का एक नाम 'समावर्त्त' होता है । इसका अर्थ संसार रूपी चक्र के घुमाने वाला होता है । अनिवृत्तात्मा —अर्थात् सर्वत्र व्याप्ति के कारण उनकी विद्यमानता रहती है । अतः अनिवृत्त आतमा वाले हैं । धर्म पुञ्ज धर्म की राशि रूप है सदाशिव -अर्थात् शिव सर्वदा कल्याणस्वरूप वाले हैं ।

शिव का एक नाम अकलमष है इसका अर्थ होता है नित्य शुद्ध रहने वाले । , चतुर्बाहु ' --अर्थात् चार भुजाओं वाले विष्णु का -सा स्वरूप वाले । 'दुरावासः'-- योगिजनों की समाधिमें भी बड़ी कठिनाई से ध्यानगत होने वाले । यहाँ 'सर्वावास ऐसा भी पाठान्तर मिलता है उसका अर्थ है सर्वत्र सब में निवास करने वाले शिव हैं । दुरासद बड़ी कठिनता से प्राप्त होने के योग्य शिव हैं ।। २।। 'दुर्लभ : अर्थात् अत्यन्त भक्ति से ही प्राप्त होने वाले हैं। दुर्गम बड़ी कठिन मेहनत से जानने के योग्य (१८० दुर्ग :- अर्थात् बहुत ही दुख उठाकर पाने के योग्य । सर्वायुधविशारद :-- समस्त शस्त्रास्त्र की विद्याओं के पूर्ण पण्डित ।

"अध्यात्म योग निलयः" --अर्थात् असंप्रज्ञात समाधि के स्थान सार की वृद्धि वा छेदन करने वाले ।। २३ ।। 'शुभांग' श्रेष्ठ अंगों वाले । लोक सारङ्ग-- सारग के सदृश लोक का सार ग्रहण करने वाले किम्बा ओंकार के द्वारा जानने के योग्य । जगदीश समस्त जगत् का नियन्त्रण करने वाले 'जनार्दनः' — इस जगत् के संहार करने वाले । भस्म शुद्धिकरः अर्थात् भस्म से शुद्धि करने वाले । (१९०) ।। मेरु -- पर्वत के स्वरूप में संस्थित । औजस्वी -आत्मा के बल ओज से परिपूर्ण । 'शुद्धि विग्रहः'—अर्थात् चित्स्वरूप वाले ॥ २२॥ २३॥ २४॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥२५
महाह्रदो महागर्तः सिद्धो वृन्दारवन्दितः ।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्यालो महाभूतो महानिधिः ॥२६
अमृतोऽमृतपः श्रीमान्पाञ्चजन्यः प्रभंजनः ।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परात्परः ॥२७

'असाध्यः'—चरित्रहीन पुरुषों के द्वारा प्राप्त न होने वाले। 'साधु साध्यः'—सच्चरित एवं साधु वृत्ति वाले भक्तोंके द्वारा प्राप्त होने के योग्य है। 'भृत्यमर्कट रूप धृक्' अर्थात् हनुमान के स्वरूप में स्थित होने वाले। हिरण्य रेताः'-अग्निके सम स्वरूपवाले अर्थात् परम तेजस्वी। पौराण'-समस्तपुराणों के द्वारा ब्रह्म के रूप से प्रतिपादन करने के योग्य। 'रिपु जीव हरः'—शत्रुओं के प्राणों का हरण करने वाले। 'बलः'-महान् बल की शक्ति धारण करने वाले॥(२००)॥(यहाँ शिव के नामों का द्वितीय शतक समाप्त हो गया है।) 'महाह्रदः'-ऐसे महान् सरोवर का स्वरूप जिसमें योगी विश्रामलेकर सर्वदा आनन्द में मग्न रहा करते हैं। 'महागर्त्तः'-महागर्त्ता वाले किम्बा महान् दुरत्यय माया से युक्त। 'सिद्ध वृन्दारवन्दितः'—परम सिद्ध और देव समूह के द्वार वन्दना किये जाने वाले। 'व्याघ्र चर्माम्बरः'-अर्थात् बाघ के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले। 'व्याली'—अर्थात् महान् विषधर वासुकि आदि अनेक सर्पों के भूषण धारी। 'महाभूतः'-महान् विराट्को उत्पन्न करनेवाले अथवा तीनों कालों में अवच्छिन्न महत्तत्त्व स्वरूप वाले। यहाँ यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वकम्'—यह श्रुति का वचन भी पोषक होता है। 'महानिधि'-ऐसेविशाल स्वरूपके धारणकर्त्ता जिसमें समस्तप्राणी समा जाते हैं।२५।२६। 'अमृताशः'—अपने आत्मानन्द रूपी अमृतका सदा पान करने वाले। 'अमृत वपुः'—मृत्यु रहित शरीर के धारण करने वाले। यहाँ—'अजरोऽपरः'—यह वेदका वाक्य भी शिवके मरणाभावकी पुष्टि करता है। 'पाञ्चजन्यः'-अर्थात् पांच जनों में रहने वाले अग्नि स्वरूपी। यहाँ पर भी-'अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः'—यह श्रुति वाक्य है। किसी जगह 'पञ्चयज्ञ'-ऐसा भी

पाठान्तर मिलता है । वहाँ इसका अर्थ यज्ञों के उत्पादक शिव हैं । 'प्रभञ्जन:' –भक्तों के मायात्मक आवरण के नाशक अथवा वायु के स्वरूप में संस्थित । 'पञ्चविंशति तत्त्वस्थ:'-अर्थात् प्रकृति आदि पच्चीसतत्त्वोंमें विराजमान रहने वाले । यहाँ–'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'–यह श्रुति का वचन उक्तार्थ का समर्थक है । 'पारिजात:'-अर्थात् मनुष्यों के मनोवांछित फल देने वाले कल्प वृक्ष के स्वरूप से युक्त । परात्पर:':ब्रह्म तथा जगत् के रूप वाले हैं ॥२७॥

सुलभ: सुव्रत: शूरो वांग मयैकनिधिर्निधि: ।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापन: ॥२८

आश्रम: श्रमण: क्षामो ज्ञानवानचलेश्वर: ।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेय: सुपर्णो वायुवाहन: ॥२९

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुण: शशिगुणाकर: ।
सत्य: सत्यपरोऽदीनो कर्मो गोधमशासन: ॥३०

'सुलभ:'—पत्र पुष्पादि के अत्यन्त साधारण उपचारों से पूजित होने पर प्राप्त होने वाले ।'सुव्रत: शूर: अपने भक्तों की रक्षा करने का अच्छा व्रत लेने वाले किम्बा भोजन नियत करने वाले शूर अर्थात् सूर्यके स्वरूप में स्थित यहाँ इन दोनों शब्दों से शिव का एक ही नाम व्यक्त होता है। 'ब्रह्म वेद निधि:'–वेदों के प्रादुर्भाव होने का स्थल । यहाँ—'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वासितमेतदृग्वेद:'-अर्थात् इस महान् देवकाजो नि:श्वास है वही ऋग्वेद है यह श्रुतिका वचनभी उक्त नामार्थ की पुष्टि करताहै। 'वाङ्मयैक निधि:' कहीं ऐसा भी पाठान्तर मिलता है । वर्णाश्रम गुरु:–अर्थात् योगिजन द्वारा स्थापित ब्राह्मण आदिवर्णोंऔर ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके उद्भव करने वाले अथवा उपदेशक ॥२८॥'वर्णी'-ब्रह्मचारी के स्वरूपमें रहने वाले॥(२२०)। 'शत्रुजिच्छत्रु तापन:'—देव शत्रु को जीतने तथा उन्हें सन्ताप देने वाले । यहाँ भी दोनों शब्दों द्वारा एक हो शिव का नाम होता है । 'आश्रम:'-आश्रम के सदृश संसार में भ्रमणशीलों को विश्राम प्रदान करने वाले । 'श्रमण:'—निज भक्तों के पापों का क्षय करने वाले । 'क्षाम:'–प्रलयकालमें प्रजा को क्षीण करने वाले । 'ज्ञानवान्'–नित्यज्ञान से युक्त । 'अचलेश्वर:'–पृथ्वी पर्वत प्रभृति के स्वामी । 'प्रमाण भूत:'—प्रत्यक्षानुपानादि प्रमाणों के

उत्पादक। 'दुर्ज्ञेय:'-अत्यन्त घोर श्रम से जानने के योग्य। 'सुवर्ण:'-धर्म अधर्म रूपी पक्षों से युक्त अथवा गरुड़ के स्वरूप में संस्थित किम्बा सबके उत्पन्न करने वाले यहाँ—'सुपर्णा विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति' इत्यादि श्रुति वचन है जो उक्त नाम के अर्थ को बतलाता है। अथवा छन्द स्वरूप पर्ण वाले । 'वायु वाहन:'—वायु सोपान से युक्त रथ वाले अथवा जिसके भय से वायु समस्त प्राणियों का वहन करता है। वहाँ उसका पोषक—'भीषा स्माद्वात: पवते' इत्यादि श्रुति का वाक्य है। 'धनुर्धरो धनुर्वेद:—अर्थात् धनुर्वेद को प्रकट करने वाले पिनाक के धारक। यहाँ पर ये दोनों शब्द एक ही शिव नाम के वाचक होते हैं। 'गुणराशिर्गुणा कर:'—योगादि गुणों के संघात वाले और योग, साँख्य, तप, विद्या, विधि, क्रिया' ऋत, सत्य, दया, श्रेष्ठ मति, अहिंसा, शांति, दम, ध्येय, ध्यान, मति, धृति, प्रथा, मेधा, नीति, कान्ति, दृष्टि, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, सरस्वती, प्रासाद, क्रिया, प्रतिष्ठा आदि अनेक गुणों की खान। यहाँ भी दोनों शिव का एक ही नाम बतलाते हैं। 'सत्य: सत्यपर:'—साधुओं के समाज में सत्य स्वरूप वाले और यथार्थ कथन करने में निष्ठा रखने वाले। यहाँ पर भी दोनों शब्द एक ही नाम को प्रकट करते हैं। 'दीन:'—सामान्य बाह्य दृष्टि रखने वाले के लिये श्मशान में निवास करने से एक दरिद्र के समान दिखलाई देने वाले किम्बा अदीन अर्थात् सर्वदा परम सन्तुष्ट रहने वाले। 'धर्माङ्गो धर्म साधन:'—अर्थात् यज्ञादि के धार्मिक अंगों वाले। जैसा कि हरिवंश पुराण में प्रथम पर्व २१ अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है और लिखा है—वेद रूप चरण, यज्ञ स्तम्भ स्वरूप दंष्ट्रा, यज्ञ रूप हाथ वाला वाराह मूर्तिरूप है और जिसका चिति रूप मुख, अग्नि स्वरूप जिह्वा, डाभ (कुशा) रूप रोम, ब्रह्मात्मक शिव, दिनरात्रि स्वरूप नेत्र, दिव्य वेदान्त तथा श्रुति रूप आभरण, घृत रूप नासिका, स्रुवा स्वरूप तुण्ड, साम-वेदात्मक शब्द, धर्म सत्य स्वरूप शोभा, कर्म-विक्रम सत्क्रिया संयुत, प्रायश्चित रूपी नख और पशु रूप जानु और विकृत भुजा, उग्रता से युक्त होम स्वरूप वाला लिंग, फल बीज महौषधि वायु से समन्वित अन्त-रात्मा वाला वेदरूप फिचौं से हुआ सोम स्वरूप रक्त, वेदी रूप स्कन्ध, हवि रूप गन्ध, हव्य-कव्य स्वरूप वेगवान्, प्राग्वंश रूपी शरीर विचित्र

दीक्षाओंसे समर्पित, दक्षिणा रूपी हृदय, योगी और महायज्ञ से युक्त उपकर्म रूपी ओष्ठ,प्रवर्गावर्त्त रूप भूषण तथा अनेक प्रकारके वेदरूप गमन,गुप्त उपनिषद् रूपी आसन और छाया पत्नीके सहित मेरु शृंगके तुल्य उन्नत बाराह रूप है एवं धर्म के साधनोंके विधाता हैं। यहाँ पर भी दोनों शब्दों से एक ही शिव के नाम की व्यक्ति होती है ॥२८ से ३०॥

अनंतदृष्टिरानन्दो दंडो दमयिता दम।
अभिचार्यो महामायो विश्वकर्मविशारद ॥३१
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामो जितेद्रियः ॥३२
कल्याण प्रकृति कल्प सर्वलोकप्रजापति।
तपस्वी तारको धीमान्प्रधान प्रभुरव्यय ॥३३

'अनन्त दृष्टिः'—अर्थात् असख्य दृष्टियों वाले। 'आनन्दः'—अर्थात् अत्यन्त सुख के स्वरूप हैं। यहाँ—'आनन्द ब्रह्म' इत्यादि श्रुति से भी उनका नाम व्यक्त होता है 'दंडो दमयिता'—दमन करने वालों को भी दण्ड रूप और इन्द्रादि के रूप से प्रजा के दमन करने वाले हैं। यहाँ भी दोनों का एक ही नाम होता है। 'दमः'-इन्द्रियों के निग्रह के स्वरूप वाले। 'अभिवाद्यो महामायः'-सुरासुरों द्वारा वन्दित और मायासंयुतों को मोहने वाले हैं। ये दोनों भी एक ही हैं।२४०। 'विश्वकर्मा विशारदः'-विश्व की रचना करने वाले और सकल कलाओंमें प्रवीण जिनके द्वारा श्रेष्ठ सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ है। ये दोनों एक ही हैं। 'वीतरागः'-भक्तों के राग-द्वेष को मिटाने वाले। 'विनीतात्मा'-भक्तोंके स्वभाव को विनम्र बना देने वाले। 'तपस्वी' अर्थात् तप से युक्त। 'भूत भावन'-प्राणियों की वृद्धि के लिये सम्पादक। 'उन्मत्त वेष, प्रच्छन्न'—दिगम्बर (नग्न) होने के कारण गूढ रूप वाले। यहाँ भी दोनों से एक ही नाम का प्रकाशन होता है। 'जितकामः'-कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले। 'अजित प्रियः'—विष्णु के प्यारे।

किसी स्थान में—'जितरोचिः प्रियाकविः' ऐसा पाठान्तर भी है। 'कल्याण प्रकृति'-अर्थात् उत्तम स्वभाव से युक्त। 'कल्प'-सब चराचर के

आदि कारण।(२५०)। 'सर्वलोकप्रजापतिः'—सम्पूर्ण लोकों तथा समस्त प्रजा के पालक स्वामी। 'तपस्वी'-अपने भक्तों को रक्षा करने के कार्यमें वेग सहित शीघ्रता करने वाले। 'तारकः'-इस संसार रूपी सागर से तार देने वाले। 'श्रीमान'-श्रेष्ठ बुद्धि एवं ज्ञान से युक्त। 'प्रधान प्रभु'-उस चराचर प्रकृति के स्वामी। 'अल्यपः'—नाश से नहित।३१—३३।

लोकपालोऽन्तरात्म च कल्पादिः कमलेक्षणः।
चेदशास्त्रर्थतत्वज्ञो नियमी नियमाश्रयः।३४।
चन्द्रः सूर्य्यः शनि केतुर्वरांग विद्रुमच्छविः।
भक्तवश्यः परं ब्रह्म मृगबाण र्पणोऽनघः।३५।
अद्रिरद्रयालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृतः।३६।

'लोकपालः'—लोकों के पालन-पोषण करने वाले। 'अन्तरात्मा'—माया के प्रभाव से अपने स्वरूप को छिपा कर रखने वाले। 'कल्पादिः'—समस्त शास्त्रों के आदि कारण। 'कमलेक्षणः-कमल के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाले किम्बा अपनी दृष्टि में लक्ष्मी का निवास रखने वाले।(२५०)। 'वेद शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञः'-मुनियों को वेदों एवं शास्त्रों का असली तत्त्वार्थ का ज्ञान प्रदान करने वाले या स्वयं वेद शास्त्रों के तष्वार्थ के ज्ञाता। 'अनियम'—स्वयं शिक्षा से रहित अथवा सबको सिक्षा देने वाले। नियताश्रम' सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूप ॥ ३४ ॥ 'चन्द्रः' सबको प्रसन्नता देने से चन्द्र के स्वरूप वाले। 'सूर्यः'-कर्मों में सब लोकों को प्रेरित करने वाले आदित्य स्वरूप। 'शनि'--शनि के रूप वाले। 'केतु'--केतुवा धूमकेतु का स्वरूप वाले। वराँगः' शोभापूर्ण अंगों वाले। कहीं 'विरामः' ऐसा भी पाठान्तर होता है। 'विद्रुमच्छवी'-मूंगे के समान कान्ति वाले अर्थात् मंगल स्वरूप। 'भक्ति वश्यः'-- भक्ति के द्वारा बस में हो जाने वाले ॥ (२७०) ॥ 'परब्रह्म'-परात्पर ब्रह्म के स्वरूप वाले। 'मृग बाणापूर्ण'-अर्थात् अपनेभक्तों के लिये मृग के अन्वेषण में मन रूपी बाण का अर्पणकरने वाले। 'अनघ'-

सब प्रकार के पापों से रहित। 'अद्रि:' — मेरु आदि पर्वत के स्वरूप वाले। अद्रयालय:,-कैलास पर्वत के निवास करने वाले। कान्त:'— अत्यन्त सुन्दर अथवा ब्रह्मा को अपना सारथि रखने वाले। 'परमात्मा'- सब में व्यापक होकर निवास करने से सर्वोत्कृष्ट महान् आत्मा वाले अर्थात् सर्वत्र विद्यमान। जगद्गुरु' - सम्पूर्ण जगत् को हित का उपदेश देने वाले। सर्व कर्मालय:'—अर्थात् सबके नित्य के तथा नैमित्तिक कर्मों के अर्पण करने के आधार। 'तुष्ट:' - परम सन्तोष तथा आनन्द के स्वरूप। 'मगल्यो मंगलावृत:'—अपने भक्तों के मंगल में हित स्वरूप तथा अनेक मंगलों से युक्त ये दोनों शब्द एक ही शिव के शुभ नाम के द्योतक हैं ॥ ३४-३५३६॥

महातपा दीदीर्घतपा: स्थविष्ठ: स्थविरो ध्रुव: ।
अह: संवत्सरो व्याप्ति: प्रमाणं परमं तप: ॥३७
संवत्सरकरो मन्त्र: प्रत्यय: सर्वतापन: ।
अज: सर्वेश्वर: सिद्धो महातेजा महाबल: ॥३८
योगी योग्यो महारेता: सिद्धि: सर्वादिरग्रह: ।
वसुर्वसुमना: सत्य: सर्वपापहरो हर: ॥३९

'महातपा:'—संसार के समुत्पन्न करने से महान् तप करने वाले। यहाँ 'यस्य ज्ञान मयं तप:'—इत्यादि वेद के वचन का प्रमाण है। 'दीर्घतपा:'—स्वयं अजर अमर होने से दीर्घतम तपस्या करने वाले भगवान् शिव हैं।

'स्थविष्ठ:'—अत्यन्त स्थूल। 'स्थविर:'—अत्यन्त वृद्ध अर्थात् सबसे प्राचीन बड़े। ध्रुव:' — अटल स्वरूप वाले। 'अह:'—प्रकाश स्वरूप। 'संवत्सर:'-वर्षात्मक काल के स्वरूप से युक्त। 'व्याप्ति:'-सर्वत्र विद्यमानता रखने के स्वरूप वाले। 'प्रमाण:'-प्रमित स्वयं प्रमाण रूप। यहाँ श्रुति वचन इसका पोषक—'प्रज्ञान ब्रह्म' होता है। 'परमम्'— पर शोभा से समन्वित अथवा मुक्ति स्वरूपिणी लक्ष्मी के दाता। 'तप:'-ऋत सत्य आदि के स्वरूप से युक्त। 'ऋत तप:'—इत्यादि श्रुति वाक्य हैं। ३७। संवत्सर कर:'-काल 'चक्र के प्रवर्त्तक अथवा प्रभव प्रभृति वत्सरों के उत्पन्न करने वाले। 'मन्त्र 'प्रत्यय:'-अर्थात् ऋग्यजु: साम स्वरूप मन्त्रोंके द्वारा प्रतीत होने वाले। 'सर्व

दर्शन:'--सभी कुछ का प्रत्यक्ष करने वाले। यहाँ 'विश्वतश्चक्षुर्विश्वाक्षम्' इत्यादि श्रुति के वचन इस उक्त अर्थ की पुष्टि करने वाले हैं।

'सर्वेश्वर:'--ईश्वरों के भी परमेश्वर।' एष सर्वेश्वर ! इत्यादि वेद के वाक्य यहाँ पर पोषक हैं। सिद्ध'--अर्थात् नित्य निष्पन्न स्वरूप। 'महा-रेता.' महान् वीर्य वाले। यहाँ 'ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्'--यह श्रुति वचन है। 'महाबल'—महान् पराक्रम वाले ॥३८॥ 'योगी योग्य:,—नित्य योग से युक्त अर्थात् योग में प्रवृत्त होने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द एक ही नाम को प्रकट करने वाले है। (शिव नामों का यह तृतीय शतक समाप्त हो गया।) तेजो:'--महान् प्रभाव से युक्त किम्बा दुष्टों के अत्याचार न सहन करने वाले। 'सिद्धि:'—-अनन्त काल का स्वरूप होने के कारण सिद्धियुक्त। 'सर्वादि:'—-समस्त के आदि कारण। 'अग्रह:'——पुण्य से हीनों के द्वारा न ग्रहण करने के योग्य। 'वसे:'—अर्थात् समस्त प्राणियों को अपने अन्दर निवाह देने वाले। वसुमना:' राग द्वेषादि से कालुष्य रहित चित्त वाले। 'सत्य:' अर्थात् आवर्तक स्वरूप। यहाँ-'सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह वेद वचन इसका पोषक है। 'सर्व पाप हरोहर' अर्थात् कायिक प्रभृति समस्त पातकों के हरण करने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द एक ही नाम को बतलाने वाले हैं।३९।

सुकीर्तिः शोभनः स्रग्वी वेदांगो वेदविन्मुनिः।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः।४०।
अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्।
कमंडलुधरो धन्वी ह्यवाङ्मनसगोचरः।४१।
अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः।४२।

'सुकीर्ति:' सुन्दर समुज्ज्वल यश से युक्त। शोभन–विविध प्रकार के वैभवोंसे युक्त शोभा वाले। (३०)। श्रीमान्-ऐश्वर्य ,लक्षण शोभा की समस्त सामग्री से युक्त। 'अवाङ्' मनस गोचर:'--चक्षु आदि का तो कथन ही क्याहै वाणी और मनसे परे यहाँ, यतो वाचौ निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इत्यादि श्रुति वचन पोषक हैं। 'अमृत: आश्वत:-अमर और नित्य। यहाँ पर भी--'अजरोऽमृत:' इत्यादि श्रुति वाक्य हैं। ये भी दोनों एक ही

होते हैं ॥४८॥ 'कमण्डलु घर:,-कमण्डलु हाथ में धारण करने वाले 'धन्वी'-धनुष के धारक। वेदांग;—वेद के बोधक अंग रूप। 'वेदवि न्मुनि:,-वेदों के ज्ञाता मुनि स्वरूप।

'भ्राजिष्णु:'—एक रस प्रकाश के स्वरूप वाले। 'भोजनम् -इस भुवनमोहिनी माया का भोजन करने वाले। 'भोक्ता' पुरुष स्वरूप से भोग करने वाले। 'लोकनाथ'—सम्पूर्ण लोकों के स्वामी किम्बा सबका शासन करने वाले। 'दुराधर:'—दैत्यादि के द्वारा आराधना करने के अयोग्य एवं अशक्य ॥४१॥ अतोन्द्रियो महामाय'—शब्दादि का स्वरूप न होने के कारण इन्द्रियों के अविषय। यहाँ—'अशब्द सम्पर्कम्' इत्यादि श्रुति के वचन पुष्टिकारक हैं। जो स्वयं माया किया करते हैं उन पर भी माया का प्रभाव डालने वाले। यहाँ इन दोनों शब्दों से एक ही नाम की अभिव्यक्ति होती है। 'सर्व वास'— सव में निवास करने वाले। 'चतुष्पथ:'—चारों पदार्थों के साधक मार्ग वाले। कालयोगी'-कर्म के परिपाक होने के समय प्राणियों को भोग की प्रेरणा देने वाले। 'महा: नाद,—अयि गम्भीर ध्वनि से युक्त। 'महोत्साह:,-इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहृति करने के कार्य में उत्साहपूर्वक सर्वदा उद्यत रहने वाले। 'महाबल:'—बड़े मारी बल वालों से भी बली ।४२।

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचार पुरन्दरः।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ।४३।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वावार्यो मनोगतिः।
बहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ।४४।
तेजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासनः।
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रशाशकः ।४५।

'महाबुद्धि:'—अर्थात् महान् बुद्धि के भण्डार। 'महावीर्य:'—इस जगत् के बड़ी भारी उत्पत्ति के कारणरूप वीर्य को धारक करने वाले।

'भूतचारी'-भूत पिशाच आदि के साथ सदा विचरण करने वाले। 'पुरन्दर:'--त्रिपुरासर का विदारण करने बाले। निशाचर:'--रात्रि के

समय में विचरण करने वाले। 'प्रेतचारी'—प्रेतों को साथ में लेकर गमन करने वाले। 'महाशक्तिर्महाद्युतिः—महान् शक्ति एवं महान् ज्योति के धारण करने वाले। यहां 'ज्योतिषाः' ज्योतिः' इत्यादि श्रुति का अर्थ भी यही है कि वह प्रकाशकों की भी ज्योति है। ये दोनों एक ही हैं।४३। 'अनिर्देश्य वपुः'-:ऐसे शरीर धारण करने वाले जिसका ज्ञान किसी को भी नहीं होता है। 'श्रीमन्' ऐश्वर्य की शोभा से युक्त ॥ (३४०) ॥ 'सर्वाचार्य मनोगतिः' समस्त आचार्यों के मन में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले। वहुश्रुतः'----अनेक शास्त्रों का उद्भव करने वाले 'महामायः'----बहुत बड़ी माया को उत्पन्न करने वाले। 'नियतात्मा ध्रुवः'--नियत आत्मा स्वरूप में स्थित निश्चल। 'अध्रुवः'--ध्रुव जिससे नहीं है। 'ओजस्तेजो द्युतिधरः'--प्राण, बल, शौर्यादि गुणों की दीप्ति को धारण करने वाले। 'नर्तकः'----ताण्डव नामक नृत्य के करने वाले सर्व शासकः.'----समस्त प्राणियों के नियन्ता। यहाँ--'अन्त प्रविष्ट शास्त जनानां सर्वात्मा' यह श्रुति वचन है। इसका अर्थ है अन्दर प्रविष्ट होता हुआ जीवों का शासक सबकी आत्मा है। 'नृत्य प्रियो नित्य नृत्य'... नाच की प्रिय लगने के कारण नित्य ही शिव भक्तों के द्वारा उनके निकप नृत्य दिखाये जाने वाले। इन दोनों शब्दों के द्वारा एक ही नाम होता है। 'प्रकाशात्मा प्रकाशक.'----स्वयं तो प्रकाश स्वरूप है अत सबको प्रकाशित करने वाले हैं। ये दोनों एक ही हैं (३५०) ॥४४॥४५॥

स्पष्टाक्षरो बुद्धो मन्त्रः समानः सारसंप्लवः।
युगादिकृतद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः।४६।
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः।४७।
अपां निधिरधिष्ठानं दुर्जतो जयकालवित्।
प्रतिष्ठमः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः।४८।

'स्पष्टाक्षर,--ओङ्कार लक्षण वाले। 'बुध'--सबका ज्ञान रखने वाले शिथृणिता से रहित। 'सार सप्लव' वेदान्तके स्वरूपमेंस्थित होकरसंसार सागरसे पाप उतारनेमें साधना'युगादि कृत युगावर्त्त'--स्वयं काल स्वरूप

होने के कारण युगादि के भेद करने वाले तथा युगोंके आवर्तन कर्त्ता ये दोनों शब्द भगवान् शिव का ही नाम व्यक्त करते हैं। 'गम्भीरः—ज्ञान तथा ऐश्वर्य प्रभृति बल से अति गहन। 'वृष वाहनः' नन्दीश्वर नामक वृष को वाहन रखने वाले ॥४६॥ 'इष्ट'—अतिशयानन्द स्वरूप होने के कारक प्रिय किम्बा यज्ञादि के द्वारा समर्चित। 'विशिष्टः'--सबसे उत्कृष्ट।(३६०)। शिष्टेष्टः' महापण्डितोंको प्रिय लगने वाले किम्बा शिष्ट पुरुषोंके द्वारा पूजित। 'शलभः' सर्वत्र गमन करने वाले। 'शरमः'—शरभ के अवतार धारण करने वाले। 'धनुः'-पिनाक धनुष के धारण कर्त्ता। 'तीर्थरूपः'-सर्व विद्याओं के स्वरूप से युक्त।'तीर्थनामाः'-सांसारिक जीवों को सद्गति करने के लिए भागीरथी आदि के लाने वाले। 'तीर्थादृश्य.'--गंगादि तीर्थोंके द्वारा भी दुष्प्राप्य होने वाले। स्तुतः'--अर्थात् ब्रह्मादि देवों के द्वारा स्तुति तथा वन्दना किये हुए। 'अर्थवः'--पुरुषार्थों के प्रदान करने वाले ॥४७॥ 'अर्णोनिधिः'-समुद्र के स्वरूप वाले।'अधिष्ठानम्.'-उपादान कारण से समस्त प्राणियों के आधार।'विजय;' ज्ञान-वैराग्य आदि तथा ऐश्वर्य प्रभृति गुणों के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करने वाले।'जयकाल वित्'-दैत्य तथा असुरों के नाश और देवों के विजय के समय का ज्ञान रखने वाले। 'प्रतिष्ठितः'-अर्थात् अपनी महिमामें स्थित। यहाँ 'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्निं इत्यादि श्रुत वचनसे उसके प्रतिष्ठित होने की पुष्टि होती है।

'प्रमाणज्ञः'-प्रत्यक्षादि प्रमाणों मथा समस्त प्राणियोंके प्रमाके ज्ञाता। 'हिरण्य कवच' हेम के निर्मित कवच को धारण कयने वाले।'नमोहिरण्य वाहवे हिरण्य वर्णाय हिरण्य रूपाये, इत्यादि श्रुतिके महा वचन से उक्त नाम के अर्थ का वर्णन होता है। 'हरिः'-समस्त पापों को हरण करने वाले ॥४८

विमोचनः सुरगणो विद्यशो बिन्दुसंश्रयः।
वातारूपोऽमलोन्मायी विकर्ता गहनो गुहः ।४९।
कारणं कारणं कर्त्ता सर्वबन्ध विमोचनः।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ।५०।
गुरुदो ललितो भेदो नवात्मात्मनि संस्थितः।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः ।५१।

'विमोचन:'—आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के नाशक । 'सुरगण:'-सर्व देव स्वरूप ।'विद्येश:'-सम्पूर्ण विद्याओं के प्रवर्तक स्वामी ।(३८०)।'बिन्दु-संश्रय:'–प्रणव (ओङ्कार) के आत्मभूत । 'बालरूप:'-ब्रह्माके ललाट से समुत्पन्न बालक के स्वरूप में स्थित । 'बलोन्मत्त:'–बल द्वारा समस्त शत्रुओंके नाशक। :विकर्त्ता:'–विचित्र भवन के करने वाले । 'गहन::अपूर्व एव अद्भुत सामर्थ्य रखनेवाले ऐसे गम्भीरजिसे कोईभी जान नहीं सकता ।'गुह:'-अपनी प्रवल मायाके द्वारा अपने सत्यस्वरूप का छिपाने वाले ।'करणम्'-इस जगत् के उद्भव में साधक स्वरूप । 'कारणम्'—सृष्टि की रचना में उपादान तथा निमित्त कारण स्वरूप । 'कर्त्ता'-परम स्वतन्त्र अर्थात् सभीकुछ करने वाले ।

'सर्वबन्धविमोचन:'-अपने ज्ञान के प्रदान से अविद्याकृत समस्त बन्धनों से विमुक्त कर देने वाले । 'व्यवसाय:'–सत्-चित् और आनन्द के स्वरूप में स्थित ।'व्यवस्थान:'-वर्णों और आश्रमोंके विभाग कर व्यवस्था करनेवाले । 'स्थानद:'-सबको उनके कर्मों के अनुसार स्थान के दाता । 'जगदादिज:'–हिरण्यगर्भ के स्वरूप से इस जगत्के आदिमें होने वाले ॥५०॥'गुरुद:'-शत्रुओं को अधिक रूप से खण्डन करने वाले । 'ललित:'–सर्वाधिक सुन्दर स्वरूप वाले । 'अभेद:'-अद्वैत स्वरूप में स्थित । 'भावात्मात्मनि संस्थित:'-प्राणियों के पाँच भूतों द्वारा बने हुए शरीर और जीवात्मामें अन्तर्यामी रूपसे स्थित । 'वीरेश्वर:' शूरों के पति । 'वीरभद्र:'-वीरभद्र नाम वाले एक शिवके गण के स्वरूप में स्थित। (४००) (यहाँ चतुर्थ शतक नमों का समाप्त होता है ।) 'वीरासन निधि:'-बीरों के आसन में विधान वाले 'विराट्'-समस्त जगत् के स्वरूप में संस्थित ॥५१॥

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नन्दीश्वरः ।
आज्ञाधरस्त्रिशली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥५२
बालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुर्बंधिरः खगः ।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापति ॥५३
मघवा कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः ।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्र भृत्॥५४

'वीर चूड़ामणिः—अर्थात् वीरों के शिरोभूषण। 'वेत्ता' – सब के ज्ञाता। 'तीव्रानन्दः'—अत्यन्त आनन्द स्वरूप। 'नदीधरः'—मस्तक पर भागीरथ के धारण करने वाले समुद्र स्वरूप। दाज्ञाधारः'—सन्तति स्वरूप जगत् के द्वारा अविच्छिन्न रूप से आज्ञा के आश्रय। 'त्रिशूली'—त्रिशूल आयुध के धारक। 'शिपिविष्टः'—यज्ञ में विष्णु के रूप से विराजमान। 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एवं पमुषु प्रविश्य तिष्ठति' इत्यादि श्रुति का वचन प्रमाण है अथवा रश्मि में रहने वाले। 'शिवालयः' कल्याणयुक्त मंगलमय स्थानमें निवास करने वाले ॥४१०।५२

'वालखिल्य'—बालखिल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित। महाचापेः' विदेह राजा जनक के द्वारा अर्थित धनुष वाले। 'तिग्मांशु'—सूर्य स्वरूप में स्थित। 'वधिरः'—श्रोत्रेन्द्रिय से रहित। 'खग-'-अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले। 'अभिरामः'—समस्त योगियों के समूह रमण का आधार। सुशरणः' पीड़ित प्राणियों की शरण (रक्षक) रूप में हो कर त्रास देने वाले 'सुब्रह्मण्यः'—समस्त वेद ज्ञाति तथा ज्ञान के ज्ञाताओं के हित-सम्पादक। 'सुधापतिः'--अमृतके स्वामी ।५३। 'मघवान् कौशिकः-इन्द्र के स्वरूप में विराजमान। यहाँ ये दीनों एक ही नाम के द्योतक हैं। (४२०) 'गोमान्' – ससार रूपी गौ वाले। इनकी कथा लिंग पुराण में वर्णित है। 'विरामः'—प्राणियों के अवसान का आधार। सर्व साधनः'—समस्त पुरुषार्थों के देने वाले साधनयुक्त। ललाटाक्षः' मस्तक में तृतीय नेत्र धारण करने वाले। 'विश्वदेहः'—जगत् स्वरूपी देह वाले। सारः'-महाप्रलय काल में भी स्थित रहने वाले। 'संसार चक्र भृत्'—सम्पूर्ण जगत् के प्रपञ्चरूपी चक्र को धारण करने वाले ॥५४॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हरिणो ब्रह्मवर्चसः।
परमार्थः परमाय संचयो व्याघ्रकोमलः ।५५
रुचिर्बहुरुचिर्वैद्यो वाचस्पतिरहस्पतिः
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥५६
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः पुरञ्जनः।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥५७

'अमोघ दण्ड:'—सफल दण्ड वाले। 'मध्यस्थ:'—न्याय में स्थित रहते हुए पक्षपात से रहित रहने वाले। 'हिरण:'—सुवर्ण अथवा तेज के स्वरूप में विराजमान। 'ब्रह्म वर्चस्वी'— ब्रह्म अथवा ब्रह्म की दीप्ति का प्रकाश वाले। परमार्थ.—मोक्ष स्वरूप अर्थ की सिद्धि प्रदान करने वाले। 'परोमायी'—उत्कृष्ट माया वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं।

'शम्बर:'- परमोत्कृष्ट कल्याण के दाता किम्बा जल के स्वरूप में स्थित। 'व्याघ्र लोचन:'. अर्थात् वाघ के समान दुष्टों पर क्रूर नेत्र वाले ॥५५॥ 'रुचि:'-दीप्ति स्वरूप वाले। 'विरंच:'-ब्रह्माके स्वरूप में विराजमान 'स्वन्धु:'-स्वर्ग लोक में बन्धु भाव के रूप में फल प्रदान करने वाले। 'वाचस्पति:'-समस्त विद्याओं केस्वामी। ईशान: सर्व विद्यानाम्' इत्यादि श्रुति वचन उनके स्वामी होने का समर्थन करता है। 'अहर्पति:' सूर्य स्वरूप में स्थित। (४००) 'रवि:'-रसों कों किरणों द्वारा ग्रहण करने वाले। विरोचन:'-अग्नि अथवा सूर्य स्वरूप में स्थित। स्कन्द:'-प्रमृत के रूप में सब में और वायुके रूप में शोषणकर्त्ता। ।शास्ता वैवस्वतो मुनः' सब पर शासन करने के लिये सूर्यपुत्र धर्मराज के तुल्य। यहाँ तीनों शब्दों के द्वारा एक ही को बतलाया जाता है। 'युक्तिरुन्नतकीर्ति:'-आठ अंगों वाले योग से युक्त किम्बा न्याय स्वरूप महती कीर्ति वाले। यहाँ दोनों एक हैं। 'सानुराग:'-भक्तों पर प्रीति रखने वाले। 'परञ्जय:'-शत्रुओं को युद्ध में जीतने वाले। कैलाआधिपति:'-कैलास गिर के स्वामी। 'कान्त:'-परम सुन्दर। 'सविता'-समस्त जगत् को प्रसूत करने। (४५०) 'रविलोचन:'-सूर्य रूपी नेत्रों को धारण करने वाले। 'अग्नि मूर्धा चक्षुपी चन्द्रसूर्यौ:' इत्यादि श्रुतिका समर्थन यहाँ वचग है ॥५६॥

विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता: ।
नित्यो निगत कल्याण:पुण्यश्रवणकीर्तन: ।।५८
दूरश्रवो विश्वसहो ध्येय दु:स्वप्ननाशन: ।
उत्तारणोदुष्कृतिहा विज्ञेयो दु:सहो धव: ।।५९
अनादिर्भूवोलक्ष्मी:किरीटी त्रिदशाधिप : ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिरांगद: ।।६०

'विश्वोत्तमः' शतिशय श्रेष्ठता से युक्त। 'वीतभयः'—संसार के समस्त भय से शून्य। 'विश्वभर्त्ता'—समस्त विश्व के भरण-पोषण करने वाले। 'अनिवारितः'—कर्मफल देने में किसी के भी द्वारा न निवारण करने के योग्य। 'नित्यः'- उत्पत्ति एवं विनाश से रहित सर्वदा एक रस रहने वाले। -नियत कल्याणः'—निश्चित कल्याण से युक्त। 'पुण्य श्रवण कीर्तनः'—परम पावन श्रवण और कीर्त्तन वाले ॥५८॥ 'दूरश्रवाः'-सुदूर देश में भी श्रवण करने वाले। 'विश्वसहः'—संसार के सहने वाले (४६०)। 'ध्येयः'— ध्यान तथा विचार करने योग्य। 'दुःस्वप्न नाशनः' — बुरे दिखलाई देने वाले स्वप्नों के नाशक। 'उत्तारणः'— संसार से पार कर देने वाले। 'दुष्कृतिहा'—दुष्टों के नाश करने वाले। 'विक्षेपः'— विशेष रूप से जानने के योग्य। 'दुःसहः'- दुख के साथ भी असुरादि के द्वारा सहन न करने योग्य। 'अभवः'— जन्म से रहित ॥५९॥ 'अनादिः'—सब चराचर के कारण होने आदि से रहित। 'भूर्भुवो लक्ष्मीः'--भूर्भुवस्वःस्वरूप लोक की लक्ष्मी की आत्म-विद्या वाले 'किरीटी' —किरीट नामक शिरोभूषण धारण करने वाले। (४४०)। 'त्रिदशाधिपः' देवगण के स्वामी। 'विश्वगोप्ता'-समस्त जगत् के रक्षक। 'विश्व कर्त्ता'—इस जगत् के उत्पन्न करने वाले। 'सुवीरः'—अनेक तरह की गति वाले। 'रुचिरांगदः' सुन्दर बाजूबन्द धारण करने वाले ॥६०॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्ध्रुवः।
वसिष्टः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥६१
प्रणवः सत्यथाचारी महाकोशो महाधनः।
जन्माधिपो महादेवः शकलागमपारगः ॥६२
तत्वं तत्वविदेधात्मा विभूर्विष्णुविभूषणः।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्य्य जन्ममृत्युजरातिगः ॥६३

'जनन'- समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। जन-जन्मादिः'- समस्त प्राणियों के जन्म के आदि कारण। 'प्रीतिमान्'-नित्यही प्रीतिसे पूर्ण। 'नीतिमान्'- सर्वदा नीति से युक्त। 'ध्रुवः'-सबके स्वामी।४८०। 'वसिष्ठः'- प्रलय के समय में भी विद्यमान। 'कश्यपः'-कश्यप नामक ऋषि के स्वरूप में अवस्थित। 'भानुः'-प्रकाश से युक्त। 'तमेव मान्तमनु भागि सर्वम्'- इत्यादि

श्रुति का वचन भी यहाँ इसका प्रतिपादक है। 'भीम:'– दुष्टों के लिये भय कारणस्वरूप। 'भीम पराक्रम:'—असुरादि दुरात्माओं को भययुक्त पराक्रम वाले ॥६१॥ 'प्रणव:'–ओंकार स्वरूप। शिव अथर्वशीर्ष में लिखा है—'अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण एवर्चो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसश्च यज्ञे ब्रह्म ब्राह्मणेभ्य: प्रणमयति तस्मादुच्यते प्रणव:'। अर्थात् ओङ्कार कणव क्यों कहा जाता है—वह प्रश्न पूर्वक उत्तर में कहते हैं कि जिससे ऋचाओं यजुवद के तथा सामानि अथर्वाङ्गिरसम् के मन्त्रों के उच्चार्यमाण होने पर यज्ञ में ब्रह्म-ब्राह्मणों के लिये प्रणाम करवाता है अतएव इसे 'प्रणव' कहते हैं।

'सत्याद्याचार:'--अर्थात् सन्मार्ग में गमन करने वाले। 'महाकोश:'—अन्नमय प्रभृति महाकोशों से युक्त। 'महाधन:'— असीम धनैश्वर्य वाले। 'जन्माधिप:'—जन्म और उत्पत्ति के स्वामी। (४००) । 'महादेव:'—समस्त भावों को त्यागते हुए आत्म ज्ञान के ही ऐश्वर्य में पहुँचने से महान् देव हैं। 'सकलागमपारग:'–सम्पूर्ण वेदों के अन्त तक ज्ञान रखने वाले ॥६१॥ 'तत्वमू–ब्रह्म के स्वरूप में स्थित। 'तत्ववित्'—ब्रह्म के स्वरूप को ठीक-ठीक जानने वाले। 'एकात्मा'—एक ही आत्मा स्वरूप। 'आत्मा वा इदनेव एवाग्र आसीत्'—इत्यादि श्रुदि वचन उक्तार्थ का पूर्ण पोषक है। 'विभु:'— सबमें व्यापक। 'विश्वभूषण:'—जागत् के भूषण अथवा जगत् के आभरण वाले। 'ऋषि:'—इन्द्रियों से पर ज्ञान रखने वाले अर्थात् जो अगोचर है उसे भी जानने वाले। यहाँ 'विश्वाधिपो रुद्रो महर्षि:'—इत्यादि वेद वाक्य इसको प्रमाणित करता है। 'ब्राह्मण:'—उत्तर वर्ण स्वरूप। ऐश्वर्य जन्म मृत्यु जरातिग:'—अपने ऐश्वर्य से जन्म प्रभृति षट् विकारों का अतिक्रमण करने वाले शिव हैं। (५००) । (यहाँ पाँचवाँ शतक समाप्त हो गया) ॥ ६३॥

पञ्चतत्व समुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदय:।
अनाद्यन्तो ह्यात्मयोनिर्वत्सलो भूतलोकधृक् ॥६४
गायत्रीवल्लभ: पार्शविश्वावास: प्रभाकर:।
शिशुर्गिरिरत: सम्राट् सुषेण: सुरशत्रुहा ॥
अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वर:।
स्वयंज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचंचल: ॥६६

'पञ्चयज्ञ समुत्पत्तिः'-देवादि पञ्च यज्ञों की उत्पत्ति करने वाले। 'विश्वेशः'—समस्त विश्व के स्वामी। 'विमलोदयः'—समस्त मङ्गलोंके उदय करने वाले। आत्मयोनिः'—सब चराचरके कारण स्वरूप। अनाद्यन्तः' —आदि तथा अन्त दोनों से रहित। वत्सलः'-सब पर प्यार करने वाले अर्थात् प्रिय। 'भक्तलोकधृक्'-भक्तजनों के धारण करने वाले ॥६४॥ गायत्री वल्लभः' शिव गायत्री रूपिणी प्रिया वाले। प्रांशुः'—सुषुम्ना प्रभृति किरणों के प्रकृष्ट स्वरूप से युक्त। 'विश्वावास'—संसार में व्याप्त। (५१०)

'प्रभाकरः'-अत्यन्त दीप्ति का प्रकाश करने वाले। 'शिशुः'—बालक के स्वरूप में स्थित रहने वाले। इस सम्बन्ध में एक कथा लिंग पुराण में पार्वती स्वयम्वर के प्रकरण में लिखित है। 'गिरिरतः'—कैलास पर्वत के निवास को प्रिय समझने वाले। 'सम्राट्'—सबके अधिपति प्रभु किम्बा नियन्ता। 'सुषेणः सुरशत्रुहा'– गणों की एक विशाल एवं सुन्दर सेना के स्वामी और देव शत्रुओं के संहारक। यह दोनों एक ही हैं। 'अमोघोऽरिष्टनेमिः'—स्तुति करने पर प्रसन्न होकर सब कुछ फल देने वाले। 'सत्यसंकल्पः'—यह श्रुति इसको प्रमाणित करती है। शुभाशुभ फल दान रूपी—अर्थात् शुभ और बुरे फलों के दान करने वाले स्वरूप में स्थित। ये दोनों शब्द एक ही हैं। 'कुमुदः'—भार को हटाकर पृथ्वी को परम प्रसन्नता देने वाले। यहाँ मुकुन्दो मुक्तिदः'—ऐसा पाठान्तर मिलता है।

'विगतज्वरः'—समस्त तापों के सन्ताप से पृथक् रहने वाले। 'स्वयं ज्योतिस्तनु ज्योतिः'-स्वप्रकाशात्मक सूक्ष्म तेज के स्वरूप वाले शिव हैं। यहाँ 'नीवार शूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा। तस्याः शिखाया मध्ये च परमात्मा व्यवस्थितः'-इत्यादि श्रुति वचन से से इस उक्तार्थ की पुष्टि स्पष्ट है। ये दोनों एक ही हैं। 'आत्मज्योतिः'—आत्मा स्वरूप ज्योति वाले। 'येन सूर्यः तपति तेजसेद्धः'—इत्यादि श्रुति के वचन से यह समर्थितार्थ है। (५२०)। 'अचञ्चलः' स्थिर स्वरूप वाले। 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठति'—इत्यादि श्रुति वाक्य है जिससे स्थिरता की पुष्टि हो जाती है ॥६५–६६॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः।
ज्ञानस्कन्धा महानोतिविश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥६७

भयो विवस्वानादित्यो गतपारो बृहस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ।।६८
उदारकीर्त्तिरुद्योगी सद्योगी सदतत्त्रप, ।
नक्षत्रमाली नाकेशः' स्वाधिष्ठानः षडाश्रय ।।६९

पिंगलः'-बाघ के चर्माम्बर धारण करने के कारण पिंगल वर्ण वाले। 'कपिलश्मश्रुः'-पिंगल वर्ण की दाढ़ी-मूंछ रखने वाले। 'भाल-नेत्रः-मस्तक में तृतीय नेत्र रखने वाले। 'त्रयी तनुः'—बेदमय शरीर के धारी। 'ज्ञान स्कन्दो महानीतिः'-अर्थात् ज्ञान के दान द्वारा भक्तों को मोक्षदाता और संसार रूपी समुद्र के शोषक। इस जगत् स्वरूप यन्त्र की निर्वाह साधन करने वाली नीति रखने वाले प्रभु शिव हैं। 'विश्वो-त्पत्तिः'—इस समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले। उपप्लवः'—दुष्टों को पीडित करने वाले।

'भगोविवस्वानादित्यः'—भग-विबस्वान् और आदित्य देवों के स्वरूप रखने वाले। यहाँ ये तीनों शब्दों के द्वारा एक ही शिव का नाम होता है। 'योगपारः'-योग के साँग ज्ञान रखने से सम्पूर्णता वाले। 'योगाधारः' अर्थात् योग के पूर्ण आश्रय ऐसा ही पाठान्तर होता है। (५३०)। 'दिवस्पतिः'— स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के स्वरूप वाले। 'कल्याण गुणनामा' शिव शम्भु आदि मंगल वाचक नामों वाले। 'पापहा'-भक्तों के पापों का नाश करने वाले। 'पुण्य दर्शनः'— परम पावन पुण्यस्वरूप दर्शन वाले ।६७-६८।।

'उदार कीर्त्तिः'—वन्दनीय सुन्दर कीर्त्ति वाले। 'उद्योगी'—जगत् को सृष्टि-रचना करने के कार्य में अतिशय उद्योग करने वालो। 'सद्योगी' सर्वदा सुन्दर योग के साधन में परायण। 'सदसन्मयः-भले बुरे इस जगत् के स्वरूप में अवस्थित। 'नक्षत्र माली'—आकाश के स्वरूप में विराजमान होकर नक्षत्र रूपी मालाओं के धारण करने वाले। 'नाकेशः' स्वर्ग के अधिपति। कहीं 'लोकेश'—ऐसा भी पाठान्तर मिलता है (५४०) 'स्वाधिष्ठान षडाश्रयः'-निज स्वरूप में लय स्थान वालों के आधारभूत ।६९

पवित्रः पापनाशश्च मणिपूरो नभोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तिर्वृषाकपिः ।।७०

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ॥७१
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागः ॥७२

पवित्रः पापहारी'—परम पुनीत और भक्तों के पापों के हरण करने वाले । 'मणिपूर'-रत्नादि के द्वारा भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले । 'नभोगति'-आकाश में विचरण करने वाले । 'हृत्पुण्डरीकमासीन'-योगिजनों के हृदय रूपी कमलमें सर्वदा निवास करने वाले । 'शक्र'-इन्द्र के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'शांतः'-सर्वदा शांतिमय स्वरूप वाले । वृषाकपिः'—धर्म की स्थिरता रखने के कारणभूत ॥७०॥ 'उष्ण' हलाहल महा विष के पान करने के कारण उष्णता से पूर्ण । 'गृहपतिः-सब गृहों के पालन करने वाले । (५५०) । 'कृष्णः'-काले कंठ वाले अथवा कृष्ण गोचर स्वरूप । 'समर्थः'-समस्त कार्यों के करने की सामर्थ्य वाले । अनर्थ नाशनः-संसार के समस्त दुःखों का नाश करने वाले ।

'अधर्म शत्रु'-अधर्म करने में तत्पर पापियों के नाशक किम्बा दुष्टों पर शासन करने वाले । 'अज्ञेय'-योगिजन के द्वारा भी न जानने योग्य किम्बा अगम्य । 'पुरुहूतः पुरुश्रुतः'-बहुतों के द्वारा उपासना में रहने वाले । कहीं 'पुरुहत पुरुष्टतः'-ऐसा भी पाठान्तर है । अर्थात् बहुतसे गुरुओं के द्वारा श्रवण होने वाले । यहां ये दोनों एकही नाम बताने वाले हैं ॥७१॥ब्रह्मगर्भ' अपने गर्भ में वेदों की स्थिति रखने वाले । वृहद्गर्भः-इस महान् ब्रह्माण्ड को गर्भ में धारण करने वाले । 'धर्मधेनुः'-धर्मोत्पत्ति के स्थान स्वरूप । 'धनागमः'-समस्त प्रकार के धन-वैभव के आगम करने वाले । (५६०) । 'जगद्धितैषी'-इस समस्त जगती तलके कल्याण करनेकी कामना रखनेवाले । 'सुगतः'-संसार का मोह न करने के कारण भगवान् बुद्ध के स्वरूपमें अवतीर्ण होने वाले । 'कुमारः':बाल स्वरूप में स्थित किम्बा अपने सम्मुख कामदेवको पराजित कर देने वाले । 'कुशलागमः-'अर्थात् समस्त कल्याणों के प्रदान

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
आराज्ञो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥७३
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्धामा महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वानभस्वान्नागहारधृक् ॥७४
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ।
निरावरणनिर्वारौ वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥७५

'हिरण्य वर्णः' — स्वर्ण के समान कान्ति वाले । नमो हिरण्य वर्णा-श्रुतेः' ये दोनों एक ही हैं । 'नानाभूत रतः'-- अर्थात् भूत पिशाचादि में रमणानन्द लेने वाले ।'ध्वनिः' — नारद स्वरूप वेषधारी । 'अरागः' — राग से रहित । 'नयनाध्यक्षः' —समस्त लोकों के नेत्रों वर्तमान रहेंने के कारण चक्षुओं के प्रवर्त्तन कराने वाले । 'विश्वामित्रः' —अर्थात् विश्वामित्र नाम वाले गाधितनय के स्वरूप में प्रवस्थित ऋषि रूप वाले । (५००) 'धनेश्वरः' —कुवेर के स्वरूप में विराजमान । 'ब्रह्म-ज्योतिः' —सबको प्रकार देने वाले ब्रह्म स्वरूप । 'वसुधामा' — धन रूपी तेज वाले । महाज्योतिरनुत्तमः' --अति महान् तेज वाले होने के कारण सबसे परमोत्कृष्ट । ये दोनों एक हैं । 'मातामहः' ---जगत् की माता के भी पिता । 'मातरिश्वान्'भास्वान्---वायु के स्वरूप में स्थित । 'नाग-हार धृक्' —सर्पों के हारों को धारण करने वाले ॥७३।७४॥ 'पुलस्त्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'पुलहः' — पुलह नामधारी ऋषि के स्वरूप में स्थित । 'अगस्त्यः' --अर्थात् अगस्त्य नाम वाले ऋषि के रूप में स्थित । (५८०) 'जातूकर्ण्यः' —जातूकर्ण्य ऋषि के स्वरूप में स्थित ।'पराशरः' पराशरके स्वरूप में रहने वाले । 'निरावरण निर्वादः' अर्थात् माया के बन्धन से परे होने के कारण वारण करने में अशक्य । 'निरावरण विज्ञानः' —कहीं ऐसा भी पाठान्तर होता है । 'वैरंच्यः' — अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप में प्रादुर्भूत । 'विष्टरश्रवाः' --विष्णु के स्वरूप में स्थित ॥७५॥

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकनीराग्रणीर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ॥७६
व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णर्विक्रमोन्नतः ॥७७

आयुः शब्दपतिर्वाग्मी प्लवनः शिखिसारथिः।
असस्पृष्टोऽतिथिः शत्रुः प्रमाथी पादपासनः ।७८।

'आत्मभूः'—स्वयं प्रकाश स्वरूप। 'अनिरुद्धः'–किसी भी आदुर्भाव में कभी किसीके द्वारा निरुद्ध न होने वाले। 'अत्रि' अत्रि नामक ऋषि के स्वरूपमें स्थित। 'ज्ञान मूर्त्तिः'-ज्ञानके स्वरूप वाले। यहाँ 'सत्यज्ञान मनन्त ब्रह्म' इत्यादि श्रुति वाक्य इसका पोषक है। 'महायशाः' अतुल कीर्तिधारी। (५९० 'लोक वीराग्रणीः'लोक के वीर विष्णु आदि से भी परम श्रेष्ठ एवं प्रमुख। 'वीरः'—महान् शूर। 'चण्ड'–दुष्ट जीवों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले। 'सत्य पराक्रम'–सफल शक्तिके धारणा करने वाले ।७६। 'व्याल कल्पः'-महाविषधर सर्पोंके भूषणोंसे विभूषित। 'महाकल्पः'--अत्यन्त सामर्थ्य वाले। कल्पवृक्षः–भक्तोंके मनकी कामनाओंको पूर्ण करने वाले। 'कलाधरः'–भक्तजनोंके मन प्रसन्न करने के कारण चन्द्रके स्वरूप वाले। 'अलङ्करिष्णु'–अलंकृत करने के कारण विशेष कान्ति वाले। 'अचलः'–स्थिर स्वरूप वाले। (६००) यहाँ भगवान् शिवके नामों का छठवाँ शतक समाप्त होगया है।) 'रोचिष्णु'–-अत्यन्त दीप्ति वाले। विक्रमोन्नतः' – नाना प्रकारके पराक्रमसे युक्त होने के कारण सबसे बड़े हैं ।७७। 'आयुः शब्दपतिः'–अर्थात् समस्त प्राणियों को आयु और वेदकी वाणीके नियन्त्रण करने वाले। वाग्मीप्लवनः'— अर्थात् बहुत शीघ्रताके साथ भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले। यहाँ ये दोनों एक ही को बताते हैं। 'शिखिसारथिः'–अग्नि की सहायता वाले। 'असस्पृष्ट'—अर्थात् माया के सब तरहके संसर्गसे शून्य। 'अथितिः'- अपने भक्तजनकी अर्चा अतिथिके स्वरूप से ग्रहण करने वाले। 'शत्रु प्रमाथि'—असुरोंको सेनाके विलोडन करनेमें पूरी तरह समर्थ। 'पादपासनः'—वृक्षके समीप अपना आसन जमाकर बैठने वाले ।।७८।।

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः।
जप्यो जरादिशमनो लोहितश्च तनूनपात् ।७९।
वृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा।

निदाघस्तपनो मेघभक्षः परपुरञ्जयः ।८०।
सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहना ।८१।

'वसुश्रवाः'—मधुर श्रवणसे युक्त । (६१०) 'हव्यवाहः'—देवगणों के समीप हविको प्राप्त कराने वाले अग्नि के स्वरूप में समवस्थित । 'प्रतप्तः'-उग्र तपस्या करने वाले । 'विश्वभोजनः'—समस्त विश्व का पोषण करने वाले । 'जप्य' – जप तथा उपासना करने के योग्य । 'जरादि शमनः' वार्धक्य-आदिकी पीड़ाको शान्त करने वाले । 'लोहितात्मा तनूनपात्'—भक्तोंके शरीरको न गिराने वाले रक्त वर्णसे युक्त अग्नि के स्वरूपमें स्थित । यह ये दोनों शब्द एक ही को बताने वाले हैं ।७९।

'वृहदश्व'—बड़े अश्वोंसे युक्त वाले । 'निभोयोनिः'—सभी के कारण होनेके कारण आकाशके भी कारण है । 'सुप्रतीक'–सुरम्य अवयवोंसे संयुक्त । 'तमिस्र हो'—अज्ञानके अन्धकार को दूर भगा देने वाले । (६२०) 'निदाघस्तपन'-ग्रीष्मके और सूर्यके स्वरूपमें स्थित । ये दोनों एक ही हैं । 'मेघ'—मेघके स्वरूपमें विद्यमान रहने वाले । 'स्वक्ष'–परम सुन्दर नेत्रों वाले । पर पुरकजय'–शत्रुओके पुरको जय करने वाले ।।८०।। 'सुखानिल' सुखप्रद वायुके समुत्पन्न करने वाले । 'सुनिष्पन्न'– इस परम सुन्दर जगत् को उत्पन्न करने वाले । 'सुरभिः शिशिरात्मकः'–अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता के प्रदान करने वाले शिशिर ऋतुके स्वरूप में स्थित । यहाँ दोनों एक ही हैं । वसन्तो माधव'–मकरन्दसे युक्त बसन्त ऋतु स्वरुप में स्थिर रहने वाले । 'ग्रीष्म' – समस्त रसोंके शोषण करने वाले ग्रीष्म ऋतुके स्वरूप में अवस्थित । 'नभस्य'–श्रावण मास में होने वाली वर्षा ऋतु के रूप में संस्थित । (६३०) 'बीज वाहन'–धान्यकी प्राप्ति कराने वाले शरद और हेमन्त ऋतुओं के स्वरूप में स्थित ।।८१।।

अङ्गिरागुरुरात्रेयो विमलो विश्वाहनः ।
पावनः पुरजिच्छक्रस्त्रैविद्यो नववारणः ।८२।
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।

जमदग्निर्जलनिधिर्विगालौ विश्वगालव: ।८३।
अघोरोऽनुत्तरो यज्ञ: श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रद: ।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिन्दम: ।८४।

'अङ्गिरा'—अंगिरा नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले। 'गुरुरात्रेय:'—दत्तात्रेय के स्वरूप में स्थित गुरु । यहाँ ये दोनों शब्द एक ही शिव के नाम को प्रकट करने वाले हैं।'बिमल:'—मलसे रहित परम शुद्ध। 'विश्व वाहन:'—सम्पूर्ण जगत् के निर्वहन करने वाले। 'पावन:'--पापों का नाश कर पवित्र बना देने वाले। 'सुमतिर्विद्वान्'—श्रेष्ठबुद्धि वाले होने के कारण सभी कुछ के ज्ञाता। ये दोनों एक ही हैं। 'त्रैविद्य:'—ऋग्—यजु और साम—इन तीनों वेद विद्याओं के ज्ञाता। 'नरवाहन:'--यक्षराज कुबेर के रूप में स्थित ॥८२॥ 'मनोबुद्धि:'—मन के सहित बुद्धि स्वरूप । (६४०) 'अहङ्कार:'—अहंकार नामक तत्व के रूप में स्थित रहने वाले। क्षेत्रज्ञ:—लिग शरीर स्वरूप क्षेत्र के ज्ञाता। 'क्षेत्र पालक:'— सिद्ध स्थानों की रक्षा करने वाले। जमदग्नि:'—जम-दग्नि नाम बाले ऋषि के रूप में स्थित। 'बल निधि:—समस्त शक्तियों के अधिष्ठान स्वरूप में स्थित। 'बिगाल.'—मोक्षरूपी अमृत का विशेष रूप से स्रवण करने वाले। 'विश्वागालव:'—संसार में गालव नाम वाले ऋषि के स्वरूप में स्थित ॥८३॥ 'अधीर:'--धीरता से रहित होकर अति अभयंकर। 'अनुत्तर:'—सबसे महान् अर्थात् जिनके आगे अन्य कोई भी बड़ा नहीं है। 'यज्ञ:'--ज्योतिष्टोम प्रभृति यज्ञों के स्वरूप वाले। (६५०) 'श्रेय:'—कल्याण स्वरूप वाले । 'निःश्रेयसां पथ-—समस्त कल्याणों के मार्ग स्वरूप। 'शैल:'—शिला से समुत्पन्न अर्थात् नर्मदा नदी में लिंगात्मक। 'गगन कुन्दाभ.'—गमन कुन्द के पुष्प के समान कान्ति वाले। 'दानबारि.'---दैत्य दानवों के संहारक। 'अरि—न्दम;'----अपने भक्तजन के शत्रुओं के नाशक ॥८४॥

रजनी जनकश्चारुर्निःशल्यो लोकशल्यधृक् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरप्रिय: ।८५।
आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेव: शिवालय: ।
बहुरूपो महारूप: सर्वरूपश्चराचर: ।८६।

न्यायनिर्मायिको नेयो न्यायगम्यो निरञ्जनः।
सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभंजनः ॥८७

'रजनी जनकः'— कालरात्री रूपिणी शक्ति के उत्पादक। 'चारु विशल्यः'—दुःखों से रहित रखने वाली सूक्ष्म बुद्धि से युक्त। 'लोक कल्प भृक्'—लोकों की-सृष्टि पुष्टि आदि के धारण करने वाले । 'लोक शल्य-धृक्' ऐसा भी कहीं पाठान्तर प्राप्त होता है। यहाँ लोकों के दुःखों का हर्त्ता अर्थ होता है। 'चतुर्वेदः'—चारों वेदों का प्रादुर्भाव करने वाले। (६६०)॥ 'चतुर्भावः'-धर्म अर्थ आदि चारों भावों को प्रकट करने वाले ,चतुरश्चतुर प्रियः'—परम प्रवीण और कुशलों से प्रेम करने वाले। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं ॥८५॥ 'आम्नायः'—वेद स्वरूप। समाम्नायः:-वेद के भी प्रमाणभूत किम्बा वह जिससे सबके प्रमाण स्वरूप वेद का प्राकट्य है अथवा वेद के तुल्य। 'तीर्थ देव शिवालयः'—तीर्थों में स्थित देवों के कल्याण के स्थान। ,बहुरूपः'—असंख्य स्वरूप वाले । 'महारूपः'--महान् एवं पूज्य स्वरूप के धारण करने वाले। 'सर्व रूपः'—जगत् की समस्त वस्तुओं के स्वरूप वाले। 'चराचरः'—अस्थित लक्ष्मी के आश्रय स्वरूप ॥८६॥

'न्याय निर्मायिकों न्यायी'–सदा सत्पक्ष के निर्वाह करने वाले और नीति से युक्त। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं ॥(६७०)॥ 'न्याय गम्यः'—नीति से जानने के योग्य । 'निरन्तरः'—भेद से रहित। 'सहस्रमूर्धा--एक सहस्र अथवा असंख्य शिरों वाले। देवेन्द्रः--समस्त देवगण के स्वामी। 'सर्व शस्त्र प्रभंजनः' समस्त प्रकार के शस्त्रों के जोड़ने वाले ॥८७॥

मुंडी विरूपो विकृतो दंडी दानी गुणोत्तमः।
पिंगलाक्षो हि बव्हक्षो नीलग्रीवो निरामयः।८८
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक्।
पद्मासनः परंज्योतिः पारम्पर्य्य फलप्रदः।।८९
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः।
परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः ॥९०

मुण्डः'--लुंचित केशों वाले । 'विरूपः'--सबसे श्रेष्ठ रूप—लावण्य

वाले। 'विक्रान्त'--अत्यन्त महान् बल-विक्रम वाले। 'दण्डी'—काल दण्ड को धारणा करने वाले। 'शान्त'—दमनशील अर्थात् इन्द्रियोंको जीतने वाले। (६८०) 'गुणोत्तम'—श्रेष्ठ गुण-गण से युक्त। 'पिङ्गलाक्षः'—पिंगल वर्णके नेत्रों वाले। 'जनाव्यक्ष'—समस्त मनुष्योंके स्वामी। 'नीलग्रीव'—हलाहल महाविषको कण्ठमें रख लेने के कारण नीले रंग की गर्दन वाले। 'निरामयः'--समस्त रोगोंसे शून्य अर्थात् परम स्वस्थ ।८८। 'सहस्रबाहु'--एक सहस्त्र अथवा असंख्य भुजाओं वाले। सर्वेश'--सबके अधिपति। 'शरण्य' सबके रक्षक अर्थात् शरणागति में समागतके पालक। 'सर्वलोकधक'--भू प्रभृति समस्त लोकोंके धारणकर्त्ता।, पद्मासन' विद्यासनसे विराजमान अथवा हृदय कमलमें पद्मासनसे स्थित। (६९०) 'पर ज्योति--सर्वाधिक तेज वाले। 'परम्पार'--संसार दुःखसे अत्यन्त खिन्नोंको पार लगा देने वाले। 'परं फलम्'--परम पुरुषार्थ (मोक्षपद) स्वरूप ।८९।

'पद्मगर्भ'—समस्त संसार को अपने गर्भमें रखने वाले अथवा हृदय कमलकी कणिका में उपासकोंके ध्यानके लिये विराजमान। 'महागर्भः--महा वन्दनीय विराट् स्वरूप। 'विश्वगर्भ' सम्पूर्ण जगतको अपने गर्भ में रखने वाले। 'विचक्षणः'--विशेष रूपसे वेदादिके ज्ञान का कथन करने वाले। 'वरद'--भक्तोंको अभीष्ट वरदान देने वाले। 'बरेश'—वरदान के प्रदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ (७००) (यहाँ श्री शिवके नामोंका यह सप्तम शतक समाप्त हो गया) 'महाबल' समस्त महा शक्तियोंके समुत्पादक ।९०।

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः ।९१।
देवासुरेश्वरो दिव्यो देव सुरमहाश्रयः।
देवदेवोऽनयोऽचिंत्यो देवतात्मात्मसम्भवः ।९२।
सद्योनिर्ह्यसुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः।
विबुधाग्रवरः श्रेष्टः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ।९३।

'देवासुर महाश्रयः' देवगण और असुर समूह के महान् आधार

स्वरूप से स्थित। देवासुर गुरुर्देव:'—देव और असुरों को उपदेश देने वाले वे भी ज्ञानदाता गुरु। यहाँ ये दोनों एक ही हैं। 'देवादिदेव:'—ब्रह्मादिक के भी उत्पन्न करने वाले देवों के आदि देव। 'देवाग्नि:'—अग्नि को प्रकाशवान् करने वाले। 'देवाग्निसुखद: प्रभु:'—देवगण को अग्नि के द्वारा सुख प्रदाता और स्वतन्त्र। ये दोनों एक ही शिव नाम को बताते हैं ॥९१॥ 'देवासुरेश्वर:'-देवगण और मसुर वर्ग के स्वामी। 'दिव्य:'-अलौकिक उत्तम स्वरूप वाले। 'नेवासुरमहेश्वर:'—देवगण और असुरों के परम पूजनीय प्रभु स्वरूप। 'देवदेवमय:'—देवताओं के पूज्य देव ब्रह्मादि स्वरूप वाले ॥(७१०)॥

'अचिन्त्य:'-ध्यान करने पर भी चिन्तन में न आने वाले। 'देव देवात्म सम्भव:'—ब्रह्मादिक देवों के भी देवता जिस ब्रह्मा से समस्त जीवों की सृष्टि हुई है ॥९१॥ 'सद्योनि:'-संसार की समस्त वस्तुओं के कारण। ,असुर व्याघ्र'—असुरों के लिने बाघ के तुल्य भयंकर प्रहारक। 'देवसिंह:-देवगण में सिंह के सदृश। विवाकर:—दिन के बनाने वाले सूर्य स्वरूप। 'विबुधाग्रवर श्रेष्ठ हैं शिव उन ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ हैं।९२।९३।

शिवज्ञानरत: श्रीमांछिखी श्रीपर्वतप्रिय: ।
वज्रहस्त: सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातन: ।९४।
ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिप: ।
नन्दीं नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नवृत्तिधर: शुचि: ।९५।
लिङ्गाध्यक्ष: सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगापहाँ ।
स्वर्धामा स्वर्गत: स्वर्गी स्वर स्वरमय स्वन. ।९६।

'शिवज्ञानरत:'—अपने स्वरूप के ज्ञान में सदा तत्पर। 'श्रीमासे'-त्रवर्ण सम्पत्ति से युक्त होने वाले ॥७२०॥ 'शिखि श्री पर्वत प्रिय:'—चूड़ाधारी कुमार कार्तिकेय के लिए श्री पर्वत से प्रेम करने वाले। यह कथा 'ज्योतिर्लिंग माहात्म्य' में देखनी चाहिए 'वज्रहस्त:'-हाथ में वज्र-व धारी इन्द्र के स्वरूप में स्थित। 'सिद्धिखड्गी'-समस्त सिद्धियों से समन्वितखड्गकोधारण करनेवाले।'नरसिंहनिपातन:'-शरभके रूपसेनृसिंहकाग

चूर-चूर करने वाले ॥९४॥ 'ब्रह्मचारी'—वेद में शील सम्पन्ना 'लोक चारी' —भूप्रभृति लोकों में विचरणशील। 'धर्मचारी'—धर्म के कार्य करने वाले। 'धनाधिप:'—समस्त प्रकार के धन वैभवों के स्वामी। 'नन्दी'--नन्दीश्वर नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित। 'नन्दी-श्वरूप नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित। 'नन्दीश्वर-'--नन्दियों के स्वामी ॥(७३०)॥ 'अनन्त:'--देश और काल के परिच्छेद से शून्य। 'नग्न व्रतधर:'—दिगम्बर रहने के वृत (नियम) को रखने वाले अर्थात् सब भूत वेष को धारण करने वाले। 'शुचि:'--सम्पूर्ण दोषों से हीन अर्थात् पुर्ण निर्दोष ॥९५॥ 'लिगाध्यक्ष:'—वाण आदि लिग (चिन्ह) रूप में सबके अध्यक्ष अथवा लिग रूप देह में अधिष्ठित। 'सुराध्यक्ष:' समस्त देवों के स्वामी। 'योगाध्यक्ष:' योग शास्त्र के प्रव-र्तक परमाचार्य। 'युगावह:' – सतयुग त्रेता आदि युग प्रभृति की सम-यानुसार प्राप्ति करने वाले। 'स्वधर्मा' - जगत् की रचना करने के अपने धर्म से युक्त। 'स्वर्गत:' स्वर्ग में निवास करने वाले। 'स्वर्ग स्वर:' स्वर्ग लोक में गमन वाले। 'स्वरमय:स्वन:' षडज ऋषभादि संगीत के सात स्वरों के समुत्पत्ति कारक ध्वनि वाले ॥ ९६॥

वाणाध्यक्षो बीजकर्त्ता कर्मकृद्धर्मसम्भव:।
दम्भो लोभोऽथ वै शम्भु: सर्बभूतमहेश्वर: ॥९७
श्मशाननिलयस्त्र्यक्ष: सेतुरप्रतिमाकृति:।
लोकोत्तरस्फुटो लोकस्त्र्यम्बको नागभूषण: ॥९८
अन्धकारिर्मद्वेषी विष्णकन्धरपातन:।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारि: पूषदन्तभित् ॥९९

'वाणाध्यक्ष:'—बाणासुर के अधिपति। 'बीजकर्त्ता'—शुक्र के उत्पादक। 'धर्मकृद्ध र्मसम्भव:'--परम पुण्य करने वालों के धर्म का प्रादुर्भाव करने वाले 'दम्भ:'—अपने भक्तों की परीक्षा करने के लिये माया से विविध रूप धारण करने वाले। 'अलोभ:' लोभ से रहित। 'अर्थ-विच्छम्भु:'–वेदशास्त्र आदि धर्म के ज्ञाताओं को सम्भावना करने वाले 'सर्वभूत महेश्वर:'—समस्त प्राणियों के सबसे बड़े स्वामी ॥९७॥ 'श्मशाव निलय:'—समस्त मृत्युगत प्राणियों के महा अनिष्ठा स्वरूप महा द्रलय के नाशक स्थान में निबास करने वाले: 'त्र्यक्ष:'—तीन नेत्रों को धारण करने वाले ।(७३०)॥

'सेतु:'—इस संसार रूप सागर से तारने के लिए सेतु रूप। 'अप्रतिमाकृति:'—उपमा से शून्य आकृति वाले। 'लोकोत्तरस्फुटालोक:'—अति उत्तम आत्म-स्वरूप वाले जिसे नेत्रों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। 'त्र्यम्बक:—तीन नेत्रों से युक्त। 'नागभूषण:' सर्पों के विविध भूषणों से भूषित जिनमें शेषनागादि प्रमुख सर्प भी हैं ॥९८॥ "अन्धकारि:'—अन्धक नामक दैत्य के मारने वाले। 'मखद्वेषी'—प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले। 'विष्णु कन्धर पातन:'—दक्ष के यज्ञ में विष्णु के कन्धर का निपात कर देने वाले। 'हीनदोष:'विषमतादि दोषों से रहित। 'अक्षयगुण:'—नाशशून्य अनेक अद्भुत गुणगण से युक्त। (७६०)। 'दक्षारि:'—अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के शत्रु। 'पूषदन्तभित्' पूषा के दाँतों के तोड़ने वाले ॥९९॥

पूर्ण: पूरयिता पुण्य: सुकुमार: सुलोचन:।
सन्मार्गप: प्रियो धूर्त्त: पुणकीर्त्तिर नामय: ॥१००
मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो नियमेश्वर:।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रद: ॥१०१
सद्गति: सिद्धद: सिद्ध: सज्जाति: खलकंटक:।
कलाधरो महाकालभूत: सत्यपरायण: ॥१०२

'पूर्ण:'– सम्पूर्ण कलाओं से युक्त। 'पूरयिता'—सबको अतुल सम्पति प्रदान कर पूर्ण बना देने वाले। 'पुण्य:'—स्मरण मात्र से पापों से छुटकारा देने वाले। 'सुकुमार:'—स्कन्द के सदृश सुन्दर पुत्र वाले। 'सुलोचन:'—सुन्दर नेत्रों वाले। 'सामगेय प्रिय:'—सामवेद का गायन करने वालों को अत्यन्त प्रिय लगने वाले। 'अक्रूर:'--क्रूरता से रहित। 'पुण्य कीर्त्ति:' पाप नाशक यश वाले। (७८०)। 'अनामय:'—व्याधियों से रहित ॥१००॥ 'मनोजव:'—भक्तों के दु:ख दूर करने के कार्य में मन के समान वेग वाले। 'तीर्थकर:'—शास्त्रों के प्रमाणों के निर्माता। 'जटिल:'—शिर पर सुन्दर जट जूट धारण करने वाले। 'जीवितेश्वर:'—समस्त प्राणियों को प्राणों का दान करने वाले स्वामी। 'जीवितान्तकरो नित्य:'-सब प्राणियों के संहारक तथा नित्य। 'वसुरेता:' सुवर्ण के वर्ण तुल्य वीर्य वाले। 'वसुपद:'—अपने भक्तों के विविध

रत्नों को प्रदाता ॥१०१॥ 'सद्गतिः'—प्राणियों को अव्यभिचारिणी अच्छी गति के प्रदान करने वाले अथवा ब्रह्मादि सन्तों के द्वारा प्राप्त होने वाले। यहाँ पर 'सन्तमेनं ततो विदुः'— इत्यादि श्रुति का वचन इस अर्थ को प्रमाणित करता है। 'संस्कृतिः— जगती तल के रक्षक करने वाली आकृति से युक्त (७६०)। 'सिद्धिः'—समस्त वस्तुओं में संचित रूप अथवा अत्यन्त फल रूप। 'सज्जातिः'—साधु लोगों की जाति को जन्म देने वाले। 'कालकण्टकः'—काल के भी वेधन करने वाले। 'कलाधरः' शिल्पादि चौंसठ कलाओं से युक्त। 'महाकालः'— काल के भी काल। भूत सत्य परायणः'— समस्त प्राणियों के परम आश्रय ॥१०२॥

लोकलावण्यकर्त्ता च लोकोत्तरसुखालयः।
चन्द्रसंजीवनः शास्ता लोकग्राहो महाधिपः ॥१०३
लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषितः।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥१०४
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमानी घृणार्णवः।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा ह्यजेयो दुरतिक्रमः ॥१०५

'लोक लावण्य कर्ता—लोकों की सुन्दरता के निर्माता। 'लोकोत्तर सुखालयः'—सबसे उत्कृष्ट सुख- सौभाग्य को अपने अधीन रखने वाले। 'चन्द्र संजीवनः'--चन्द्र को संजीवन देकर लोक-पीड़ा के नाशक। 'शास्ता'—दुरात्माओं को शिक्षा देने वाले। (८००) यहाँ शिव के नामों का अष्टम शतक समाप्त हो गया। 'लोक गूढः' मानवों की बुद्धि रूपिणी गुहा के आश्रय होने कारण अप्रत्यक्ष। 'महाधिपः'—सबसे महान् स्वामी ॥१०३॥ 'लोकबन्धु'— लोकों के लिये बन्धु के तुल्य। 'कृत्य' जोकि श्रुति और स्मृति के स्वरूप में स्थित हैं, उसको हिताहित के रूप में उपदेश करने वाले। 'लोकनाथः'— चौदह भुवनों के ईश्वर। 'कृतज्ञः- प्राणियों के द्वारा किये हुये पुण्य और अपुण्य कर्मके ज्ञाता। कीर्ति- 'भूषणः'- यश रूपी भूषण से विभूषित। अनपायोक्षरः'- नाशरहित होने के कारण नित्य स्वरूप। यहाँ दोनों एक ही नाम को बताते हैं। 'कान्तः'- यमराज के भी नाशक। 'सर्वशस्त्र भृतां वरः'- समस्त शस्त्रधारियों में अति श्रेष्ठ ॥१०४॥ 'तेजोमयो द्युतिधरः'- अतिशय तेज की कान्ति के धारण करने वाले। (८१०)

'लोकानामग्रणी:'—सब लोकों में परम श्रेष्ठ। अणु:'—अत्यन्तसूक्ष्म स्वरूप। यहाँ 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:'—इत्यादि श्रुति बचन है जो इस अर्थ वाले नाम को बताता है। 'शुचिस्मित:'—मन्द हास से युक्त। 'प्रसन्नात्मा'—प्रसाद युक्त स्वभाव वाले। 'दुर्जेय:,—महा—बलबान् शत्रुओं के द्वारा भी न जीते जाने वाले। 'दुरतिक्रम:'—दुख से भी अतिक्रमण के अयोग्य अर्थात् भय के कारण सूर्यादि को भी भीति देने वाले। यहाँ 'भयादस्माद वात: पवते भयात्तपति: सूर्य भया—दिन्द्रश्चाग्नश्च मृत्युर्धावति पर्जन्य:'—इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है ॥१०५॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वर: ।
तुम्बवीणो महाकोप: विशोक: शोकनाशन: ॥१०६
त्रिलोकपस्त्रिलोकेश: सर्वशुद्धिरधोक्षज: ।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तोऽव्यक्तो विशांपति: ॥१०७
पर: शिवो वसुर्नासासारो मानधरो मय: ।
ब्रह्मा विष्णु: प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वय: ॥१०८

'ज्योतिर्मय:'— तेज के पुंज। 'जगन्नाथ:'-अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अधीश्वर। 'निराकार:'- बिना आकार वाले अथवा निर्गुण स्वरूप। 'जलेश्वर:'- भौतिक जल अथवा सुर नदी भागीरथी के स्वामी। (८२०)। तुम्बवीण:' तुम्बी फल की निर्मित वीणा से युक्त। 'महाकोप:'- सृष्टि के सहार करने की बेला में महान् क्रोध करने वाले। 'शोकनाशन:'- भक्तों के शोक नाश करने वाला ॥१०६॥ 'त्रिलोकप:-त्रिभुवनों के पालक। त्रिलोकेश:'- त्रिभुवन को अपनी आज्ञा से कर्मों में प्रवृत्त कराने वाले प्रभु। 'सर्वशुद्धि:'- समस्त प्राणियों की शुद्धि करने वाले। 'अधोक्षज:'- इन्द्रिय जन्य ज्ञान को नीचे पतित करने वाले। 'अव्यक्त लक्षणो देव:'—अस्पष्ट चिन्ह वाले तेज पुंज के स्वरूप में अवस्थित देव। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। 'व्यक्ताव्यक्त:'—साकार स्वरूप में गुण- उपाधि व्यक्त होते हुये भी निर्गुण निराकार रूप होने से अव्यक्त। (८३०)। 'विशांपति:'—समस्त प्रजा के पालक स्वामी ॥ १० ॥ 'वरशील:'—सर्वोत्तम शीलयुक्त किम्बा

श्रेष्ठ शील के दाता। 'वरगुण:'—सर्वश्रेष्ठ गुण-गण से अलंकृत। 'मारो-मानधन:' अत्यन्त बल वाले और दुष्टों के नाश करने के मान को धन समझने वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं। 'मय:'—सुख के स्वरूप में स्थित। 'ब्रह्मा'—अपनी विभूति रूप चतुरानन के स्वरूप में स्थित करने वाले। 'विष्णु: प्रजापाल:'—व्यापक होते हुए प्रजा का शासन करने के कारण विष्णु स्वरूप में स्थित। ये दोनों एक ही नाम के बोधक हैं। 'हस:'—अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मा के स्वरूप में विराजमान। 'हँस-गति:'—योगिजन की गति अर्थात् उद्धारक। 'वय:'—पक्षी के स्वरूप में स्थित। यहाँ 'एक: सुपर्ण: स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भवन विचष्ठे द्वा सुपर्णा'—इत्यादि श्रुति वचन प्रमाण है ॥(८४०)॥१०८॥

वेधाविधाता धाता च सृष्ठा हर्त्ता चतुर्मुख.।
कैलासशिखरावासी सर्वावामी सदागति.।१०९
हिरणयगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपति:।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्रह्माणप्रिय:॥ ११०
देवप्रियो देवनाथो देवकी देवचिन्तक:।
विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्द्धन.॥ १११

'वेधा विधाता धाता'—शिव इस जगत् की उत्पत्ति करने के कारण वेधा नाम वाले, सांसारिक मानवों के कर्म तथा उनके फल का दान करने के कारण विधाता कहे जाते हैं और विविध रूप से समस्त जगत् को धारण करने के कारण धाता हैं। यहाँ ये तीनों शब्द एक ही नाम के बोधक होते हैं। 'सृष्टा' संसार को उत्पन्न करने वाले। 'हर्त्ता'—जगत् के संहारक। 'चतुर्मुख:'—हिरण्य गर्भ के स्वरूप से अवस्थित कैलासशिखरवासी'—कैलास नामक गिरि की चोटी पर निवास करने वाले। 'सर्वावासी:'—सब में अन्तर्यामी स्वरूप से वास करने वाले। सदागति:'—सब जीवों को गति देने वाले ॥१०९॥

'हिरण्य गर्भ:'—हिरण्य गर्भ को उत्पन्न करने वाले किम्बा हिरण्य-मय में व्याप्त होने से हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा के स्वरूप में अपनी ही आत्मा से स्थित। यहाँ 'हिरण्यगर्भ' समवर्त्ताग्रे:—इत्यादि श्रुति वचन उक्तार्थ को प्रमाणित करता है। द्रुहिण:'—ब्रह्मा के स्वरूप में

स्थित। 'भूतपालः'—प्राणियों के पालक ॥ (८५०) ॥ 'भूपतिः'—भूमि के स्वामी। 'सद्योगी'---सत्कर्मों की योजना करने वाले। 'योग-विद्योगी'--योग के पूर्ण ज्ञाताओं को भी योग में प्रवृत्त कराने वाले। 'वरदः'--प्राणियों को वरदान देने वाले। 'ब्राह्मणप्रियः'-- विप्रों पर अत्यधिक प्यार करने वाले किम्बा विप्रों को प्रिय लगने वाले ॥ ११० ॥ 'देवप्रियः'--देवगण के प्यारे अथवा देवों पर प्यार करने वाले। 'देवनाथः'---देवगण के स्वामी।

'देवज्ञः'---देवों को ज्ञानी बनाने वाले। 'देव चिन्तकः'--देवताओं के द्वारा चिन्तित होने वाले। 'विषमाक्षः'--विषम अर्थात् तीन नेत्र वाले। (८६०) 'विशालाक्षः'--बड़े नेत्रों वाले। 'वृषदो वृष वर्द्धनः'—उपदेशक के द्वारा धर्म के वर्धक तथा जिनसे धर्म समृद्ध होता है। यहाँ दोनों एक ही हैं ॥ १११ ॥

निर्ममो निरहङ्कारो निर्मोही निरुपद्रवः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वर्तु परिवर्त्तकः ॥११२
सहस्रार्चिर्भूतिभूषः स्निग्धाकृतिरदक्षिणः।
भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशनः ॥११३
अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः।
निष्कंटकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥११४

'निर्ममः'—ममता के भाव से शून्य। 'निरहङ्कारः'—अहङ्कार से रहित। 'निर्मोहः'—बिना मोह वाले। 'निरुपद्रवः'—उपद्रवों से रहित। 'दर्पहा दर्पदः'—सबके अभिमान का हनन करने वाले तथा शत्रुओं के दर्प के दलनकर्त्ता। ये दोनों एक ही हैं। 'दृप्तः'—अपने ही आत्मा के सुधार-सास्वाद से सदा परम प्रसन्न। 'सर्वर्तु परिवर्त्तकः'—समस्त ऋतुओं के परिवर्तनकर्त्ता ॥ १२ ॥ 'सपत्नजित्'—अनन्त असंख्य शत्रुओं पर जय प्राप्त करने वाले। (८७०) 'सहस्रार्चिः'—असंख्य दीप्तियों से युक्त। 'स्निग्ध प्रकृति दक्षिणः'—स्वाभाविक स्नेह के कारण कुशल एवं सरल। 'भूत भव्य भवन्नाथः'—त्रिकाल के स्वामी। 'प्रभवः'—संसार को अकृष्टता से उत्पन्न करने वाले। 'भूति नाशनः'—शत्रुओं की सम्पत्ति के नाशक ॥११३॥ 'अर्थः'—सबके द्वारा प्राथनीय। 'अनर्थः'—सब प्रकार के प्रयोजनों से रहित। 'महाकोशः'—महान् धन सम्पन्न।

परकार्येकपण्डित:'—मोक्ष प्रदान करने के कार्यमें महापण्डित। 'निष्कण्टक;'—कामादि क्षुद्र शत्रुओं से रहित। (८८०) कृताधुन्द:'—अविच्छिन्न परमानन्द से युक्त। 'निर्व्याजो व्याज मर्दन:'—स्वयं कपट के दूषित भाव से दूर रहते हुए अन्य के कपट के नाशक। ये दोनों एक ही हैं ॥ ११४॥

सत्त्यवान्सात्त्विक: सत्य: कृतस्नेह: कृतागम: ।
अकम्पितो गुधाग्रहो नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥११५
सुप्रीत: सुखद: सूक्ष्म: सुकरो दक्षिणानिल: ।
नन्दिस्कन्ध धरो धुर्य्य: प्रकट: प्रीतिवर्धन: ॥ ११६
अपराजित: सर्वसहो गोविन्द: सत्त्ववाहन: ।
अधृत: स्वधृत: सिद्ध: पूतमूर्तिर्यशोधन: ॥ ११७

'सत्त्ववान्:'- शौर्य वीर्यादि गुणों से युक्त। 'सात्त्विक:'— सत्त्व गुण की प्रधानता रखने वाले। 'सत्य कीर्त्ति:'—वास्तविक कीर्ति से युक्त। 'स्नेह कृतागम:'—अपने भक्तोंपर अमित स्नेह होने के कारण उनके हित के लिये ही शास्त्रों का प्रकाश करने वाले। 'अकम्पित:'—कम्पसे रहित अर्थात् निश्चल। 'गुणग्राही'—अपने भक्तजनों के सामान्य गुणों को भी आदर से ग्रहण कर कृपा करने वाले। 'नैकात्मा नैक कर्मकृत्'-अनेक स्वरूपों से युक्त तथा समस्त कर्मों के कर्त्ता ॥११५॥ सुप्रीत;-श्रेष्ठ प्रीति से युक्त रहने वाले। 'सूक्ष्म:'—अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपसे सब में व्याप्त रहने वाले। यहाँ सर्वगतं सुसूक्ष्मम्: इत्यादि श्रुति वाक्य इस कवितार्थ में प्रमाण हैं। 'सुकर:'- भक्तों को वरदान देने के कारण सुन्दर कर (हाथ) वाले। 'दक्षिणानित:'—आनन्द करने के कारण मलयाचल से समात वायु के स्वरूप में अवस्थित।

'नन्दिस्कन्धधर:'—नन्दी के कन्धे पर विराजमान। धुर्य:—समस्त प्राणियों के जन्म प्रभृति लक्षणों को धारण करने वाले। प्रकट;—सूर्यादि के स्वरूप से सबको प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले। यहाँ पर—उतैन गोपा अदृशान्ना दहार्य—यह श्रुति का वाक्य है जो उक्तार्थ का समर्थन करता है। 'प्रीति वर्द्धन:'—भक्तों के प्रेम को बढ़ाने वाले ॥११६॥ 'अपराजित:'—शत्रुओं से कभी भी न हारे जाने वाले।

'सर्वसत्त्व:'—समस्त प्राणियों का उद्भव करने वाले। (९००) यहाँ श्री शिव के नाम का नवम शतक समाप्त हो गया है।)'गोविन्द:'—स्वर्ग अथवा गो-भक्तों को देने वाले। 'सत्त्व वाहन:'—मोक्ष के उपयोगी 'पराक्रम के प्रदाता। 'स्वधृत:'—अपनी आत्मा से धारण किये हुए। 'अधृत:'—अनन्य आधार। 'सिद्ध:'—समस्त प्रकार की सिद्धियों से पूर्ण।

'पूतमूर्त्ति:'—पवित्र एवं विशुद्ध मूर्ति वाले। 'यशोधन:'—यश रूपी धन से सम्पन्न ॥११७॥

बाराह श्रृङ्गधृक् श्रृङ्गी बलवानेकनायक: ।
श्रुतिप्रकाश: श्रुतिमानेकबन्धुरनेक धृक् ॥ ११८
श्रीवत्सल:, शिवारम्भ: शान्तभद्र: समो यश: ।
भूशयो भूषणो भूतिर्भूतिकृद् भूतभावन: ॥ ११९
अकपो भक्तिकायस्तु कालहानि कालविभु: ।
सत्यव्रती महात्यागी नित्य: शान्ति परायण: १२०

'वाराह श्रृङ्ग धृक्छृङ्गी'—वाराह का दन्त शिखर तथा श्रृङ्ग धारण करने वाले श्रृङ्गी। ये दोनों एक ही नाम को व्यक्त करते हैं। 'बलवान्'—सब प्रकार की शक्तिसे युक्त। 'एक नायक:'—अद्वितीय स्वामी ॥९१०॥ 'श्रुति प्रकाश:'—वेदों के द्वारा प्रकाशित। यहाँ-तन्त्वौपनिषदं पुरुष पृच्छामि' इत्यादि श्रुति वाक्य इसको प्रमाणित करता है।

'श्रुतिमान्'—सर्वदा वेदों से युक्त। 'एकबन्धु:'—अद्वितीय बन्धु। 'अनेककृत्'—अपने आपके स्वरूप को अनेक बना लेने वाले। यहाँ पर 'बहुस्यां प्रजायेति तदात्मानं स्वयम् कुरुत' इत्यादि वेद बचनसे पुष्टि होती है ॥११८॥ 'श्री वत्सल: शिवारम्भ:'—लक्ष्मी के प्रिय विष्णुके मंगल के लिये आरम्भ करने वाले। 'शान्त भद्र:'—सत्पुरुषों के मङ्गल के कर्त्ता। 'समोयश:'—समस्त प्राणियों में समान किम्बा सब ऐश्वर्य लक्ष्मी के सहित यश वाले। यहाँ दोनों शब्दों द्वारा एक ही शिव का नाम बताया गया है। कहीं 'समज्जस:'—ऐसा पाठान्तर दिखलाई देता है। 'भूशय:'—भूमि में शयन करने वाले। 'भूषण:'—सबको भूषित बनाने वाले। 'भूति:'— समस्त सम्पत्तियों के स्वरूप में स्थित। (९२०)

'भूतकृत्'—समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। 'भूतवाहनः'—सम्पूर्ण जीवों का यथातथा निर्वाह करने वाले ॥११६॥ 'अकम्प;'—कम्प अर्थात् चञ्चलता से रहित स्थिर स्वरूप में स्थित। 'भक्तिकायः'—भक्तिरूपी काया के धर्त्ता। 'कालहा'—सबको भक्षण कर जाने वाले महाबली काल के भी नाशक। 'नीललोहितः'—कण्ठ में नीलवर्ण होने पर स्वयं वर्ण वाले। 'सत्यव्रत महात्यागी'—सत्यव्रत से सम्पन्न तथा समस्त पुरुषार्थों को देकर अत्यन्त त्याग करने वाले। नित्य शान्ति परायणः'—त्रिकाल में अवाध्य शान्ति के आगार ॥१२०॥

परार्थबृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः।
शुभदः शुभकर्त्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥१२१
अनर्थितो गुणग्राही ह्यकर्त्ताकनकप्रभः।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नोविघ्ननाशनः॥१२२
शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली।
अमृत्युः सर्वदृक् ।सहस्तजोराशिर्महामणिः ॥१२३

'परार्थ बृत्तिर्वरदः'—प्राणियों को परार्थ वरदान देने वाली वृत्ति से युक्त माया के आवरण को खण्डित करने वाले अथवा वरदाता। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। यहाँ पर 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है। अथवा भक्तों के हृदय में सर्वदा प्रवेश की इच्छा रखने वाले ॥(६३०)॥ 'विशारद;—समस्त विद्याओं की कलाओं में नितान्त निपुण। 'शुभदः'—अपने भक्तों को शुभ का दान करने वाले। 'शुभ कर्त्ता' भक्तों के कल्याण के उत्पादन करने वाले। 'शुभ नामा शुभः'—शुभ नाम के धारण करने वाले होने के कारण स्वयं भी परम कल्याण से सम्पन्न। यहाँ दोनों शब्द एक ही के बोधक हैं ॥१२१॥ 'अनर्थितः'—याचना से रहित रहने वाले। 'अगुणः'—गुण रहित अर्थात् निराकार स्वरूप। 'साक्षी ह्यकर्त्ता'—इस समस्त चराचर जगत् के द्रष्टा होने के कारण अकर्त्ता हैं और मायाकी उपाधि से युक्त होने के कारण ईश्वर को जगत् का कर्त्ता होना माना जाता है। अतः ईश्वर स्वयं कर्त्ता नहीं है। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। 'कनक प्रभः—स्वयं

के तुल्य दिव्य एवं ज्वलन्त कान्तिके धारण करने वाले। 'स्वभाव भद्रः—स्वकीय भक्तोंकी भावनाके कारण ही मंगल स्वरूप अथवा मंगलों के दाता। 'मध्यस्थः'—ब्रह्मा और विष्णुके मध्यमें संस्थित। (९४०)। 'शीघ्रगः'–निज भक्तोंके कार्य सम्पादनके करनेके लिये शीघ्रतासे गमन करने वाले। 'शीघ्रनाशना'—भक्तोंके दुःखोंको अति शीघ्र नाश कर देने वाले ॥१२२॥ 'शिखण्डी, कवची, शूली चूड़ा, कवच और त्रिशूल धारण करने वाले। यहाँ तीनों शब्द एक ही नामका बोध कराते हैं।

'जटी, मुण्डी, कुण्डली'- शिरपर जटा-जूटसे युक्त, मुण्डित शिर वाले और सर्पोंके कुण्डल धारण करने वाले। तीनों शब्द यहाँ एकही शिव नाम के बोधक हैं। 'अमृत्युः'—मौतसे रहित रहने वाले। 'सर्वदृक् सिंहः'–सबके द्रष्टा तथा दुष्टोंके संहार करने में सिंहके स्वरूप वाले। यहाँ ये दोनों एकही नामके बोधक हैं। 'तेजो राशिर्महामणिः'–तेजका स्वरूप होने के कारण महान्मणि कौस्तुभ आदिके रूप वाले। यहाँ दोनों एक हैं ॥१२३॥

असंख्येयोऽप्रमेथात्मा वीर्य्यवान् वीर्यकोविदः।
वेद्यश्च वै वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥१२४
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः।
सुरेशः स्मरणः शर्व शब्दः प्रतपतां वरः ॥१२५
कालपक्षः कालकालः सुकृती कृतवासुकिः।
महेष्वासो महीभर्त्ता निष्कलङ्को विश्रृङ्खलः ॥१२६

'असंख्येयः प्रमेयात्माः'—अपार एवं अपरिच्छेद्य स्वरूप वाले। 'वीर्य वान्वीर्य कोविदः'—वीर्य सम्पन्न तथा समस्त पराक्रमोंमें परम प्रवीण। वेद्यः'–मुक्तिके इच्छुक पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य ॥ (९५०) ॥ वियो— गात्मा'–विशिष्ट योगसे युक्त आत्मा अर्थात् स्वरूप वाले। 'परावर मुनी— श्वरः' पर अवर और मुनिगणके भी ईश्वर।१२४। अनुत्तमो दुराधर्षः' - सबसे उत्तम अर्थात् परम श्रेष्ठ और असह्य तेजयुक्त जिसके तेजको कोई भी आसानीसे सहन नहीं कर सकता है। 'मधुर प्रिय दर्शनः'—परमसौम्य एवं मधुर स्वरूप वाले तथा सबको प्रिय दर्शन वाले। 'सुरेशः'–देवगणके

स्वामी । 'शरणम्'–सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले । 'पर्व:'–विश्वके स्वरूप वाले विराजमान । 'शब्द ब्रह्म सतां गतिः' वेदके स्वरूपमें संस्थित तथा साधु पुरुषों की गति अर्थात् उद्धारक । यहां दोनों एकही हैं ॥१२५॥ टकालपक्ष:'—सृष्टिकी रचनादि के कार्य में-कालकी सहायता वाले । 'कला-कारी'—सबके उत्पादक कालको उत्पन्न करने वाले । (९३०) 'कङ्कणीकृत वासुकि:—वासुकि सर्पको अपना कङ्कण बना लेने वाले । 'महेश्वास:'—अक्षय महान् धनुष के धारी । 'महीभर्त्ता'—इस समस्त जगत् के धारण करने वाले । 'निष्कलङ्क:'—अविद्याके दोषसे रहित । 'विशृ—ङ्खल:'— मायाके बन्धनसे मुक्त ॥१२६॥

द्युतिमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदःसिद्धिसाधनः ।
विश्वतः सम्द्रवृत्तस्तु व्यूढोरस्को महाभुजः ॥१२७
सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः ।
निर्लेपो यतिसङ्गात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः ॥१२८
स्वतः स्तुतिप्रियः स्तोताव्याप्तमूर्तिनिराकुलः ।
निरवद्यमयोपायो विद्याराशिश्च सत्कृतः ॥१२९

'द्युमणि स्तरणि'—सूर्यके स्वरूपमें स्थित होकर संसाररूपी सागरसे तारने वाले । 'धन्य:'— परम कृतत कृय । 'सिद्धिद: सिद्ध साधन:'-अणिमा महिमादि अष्ट सिद्धियोंके प्रदाता होनेके साधनों द्वारा समस्त पुरुषार्थों के प्रदान करने वाले । ये दोनों एक ही हैं । 'विश्वत: सवृत:'–सब ओरसे मायाके द्वारा आच्छादित स्वरूप वाले । 'स्तुल्या'—देव, दनुज और मानवों द्वारा स्तुति करनेके योग्य ॥९७०॥ 'व्यूढोरस्क:'–परम विस्तृत वक्ष:स्थल वाले । 'महाभुज:'—लम्बी भुजाओं से युक्त ॥१२७॥ 'सर्वयोनि:'—सम्पूर्ण उत्पन्न करनेके स्थल तथा कारण । 'निरातङ्क:' सांसारिक व्याधि अथवा लौकिक सन्तापसे रहित । 'नर:नारायण प्रिय:'—नर-नारायण मुनियों पर अतिशय प्यारकरने वाले । 'नर्लेप: निष्प्रपञ्चात्मा'-कर्मके बन्धनोंसे विमुक्त होते हुक पञ्चभूतादिके समुदाय स्वरूप प्रपञ्चसे शून्य शरीके धारण करने वाले । यहाँ ये दोनों एकही शिवनामके प्रकाशक हैं । 'निर्व्यंग:'—विशिष्ट अङ्गयुक्त प्राणियोंके उत्पादक । 'व्यङ्गनाशन:'— व्यंग कर्मोंके नाश करने

वाले ॥११८॥ 'स्तवा:'-स्तवन करने के योग्य। 'स्तव प्रिय:'-स्तुति से प्रेम (प्यार) करने वाले।९८०। 'स्तोता'-प्रेम पूर्वक भक्तों के द्वारा स्तुत होने वाले। 'व्यास मूर्त्ति:'-व्यास महर्षि की मूर्ति के स्वरूप में विराजमान। निरंकुश:-मायास्वरूप अंकुश से शून्य। 'निरवद्यमयोपाय:'-अनिन्द्य स्वधन स्वरूप मोक्ष से सम्पन्न। 'विद्या राशि:'-समस्त विद्याओं के समूहके स्वरूप में संस्थित। 'रस प्रिय:' भक्ति रस पर प्यार करने वाले ॥१२९॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्ण: संग्रहो नित्यसुन्दर:।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीश: शाकल्य: शर्वरीपति: ॥१३०
परमार्थगुरुर्दत्त: सूरिराश्रितवत्सल:।
सोमो रसज्ञो रसद: सर्वसत्वावलम्बन: ॥१३१
एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हरं हरि:।
प्रार्थयामास शम्भुं वै पूजयामास पंकजै: ॥१३२

'प्रशान्त बुद्धि: - परम शान्त एवं सौम्य बुद्धि वाले। 'अक्षुण्ण:'— दूसरों के द्वारा तिरस्कृत न होने वाले। 'सग्रह:'-भक्तजनों के संग्रह करने वाले। 'नित्य सुन्दर:' सर्वदा सुन्दर दिखाई देने वाले ॥९९०॥ 'वैयाघ्र-धुर्य:'-बाघम्बर को सदा धारण करने वाले। 'धात्रीश:'-समस्त भूमण्डल के अधीश्वर। 'शाकल्य:'-शाकल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थिति करने वाले। शर्वरी पति:'-रात्रियों के सर्वेश्वर ॥१३०॥ 'परमार्थ गुरु:'-तापक मन्त्र का उपदेश करते हुए मुक्ति पद प्राप्त कराने वाले गुरु। 'दृष्टि:'-चक्षु के अधिष्ठाता देवता के स्वरूप वाले। 'शरीराश्रित वत्सल:'-शरीरधारी जीवों पर अतिशय दया करने वाले। 'सोम:'—उमाके सहित सर्वदा विराजमान। 'रसोज्ञपक:'-हलाहल महाविषके स्वादके ज्ञाता तथा वीर्य के प्रदान करने वाले। 'सर्वसत्वावलम्बन:'-संसार के समस्त प्राणियों के आश्रय भूत ॥१०००॥ यहाँ श्री शिवके एक सहस्र नामोंका वर्णन समाप्त होता है ॥१३१॥ इस तरह इन उक्त शिवके सहस्रनामों के द्वारा भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुतिकी और पद्म दलोंसे अर्चना करके उनकी प्रार्थना की ॥१३२॥

।। शिव सहस्रनाम स्तोत्र का फल ।।

श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम् ।
सहस्रनाम स्वस्तोत्र प्रसन्नोऽभून्महेश्चरः ।१।
परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः ।
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः ।१।
पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु बभूव च ।
न्यूननेकं तदा विष्णुर्विकलः शिवपूजने ।३।
हृदा विचारितं तेन कुतो वै कमलं गतम्
यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न निम् ।४।
ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्वावलम्बनात् ।
पूजयामास भावेन स्तवयामास तेन च ।५।
ततः स्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूत हरो हरिम् ।
मामेति व्यापरन्ननेव प्रादुरासांज्जगद्गुरुः ।६।
तस्मादवततारा‌‌शु मंडलात्पार्थिवस्य च ।
प्रतिठितस्य हरिणा स्वलिंगस्य महेश्वरः ।७।

सूतजी ने कहा—उस समय विष्णु द्वारा निर्मित सुन्दर नामों से विभूषित अपने सहस्रनाम नाम स्तोत्रका श्रवण कर शिवको परम प्रसन्नता हुई ।।१।। समस्त लोकों के स्वामी महेश्वर ने विष्णु भगवान्‌की परीक्षा करने के लिए उन सहस्र कमलों में से एक कमल को छिपा लिया ।।२।। शिव समर्चनके लिए लायेगये सहस्र कमलोंमें जब एक कमल कम हुआ तो विष्णु भगवान् पूजाकी साङ्ग सम्पूर्णता के अभावसे पहिले कुछ व्याकुल हुये और सोचाकि एक कमल कहाँ गया ? यदि कम है तो रहे उसकी पूर्तिके लिये मेरा नेत्ररूपी कमल उपस्थित है ।।३-४।। भगवान् विष्णु ने ऐसा जानकर तुरन्त अपना नेत्र उखाड़ डाला और विविध सत्व के अवलम्ब शिव का स्वभाविक रूप से पूजन एवं स्तवन किया ।।५।। इस प्रकार से विष्णु को स्तवन करते हुए देखकर जगत्‌के गुरु महेश्वर ने ऐसा मत करो··ऐसा मत

करो।' यह कहके हुए समक्ष में अपना आविर्भाव किया।६।भगवान् विष्णुके द्वारा प्रतिष्ठित अपने पार्थिव लिंगसे मण्डल शम्भु शीघ्रही प्रकट हो गये।७।

यथोक्तरूपिणं शम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम्।
नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः।८।
तदा प्राह मादेवः प्रसन्नः प्रहसन्निव।
सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृतांजललिपुटं स्थितम्।९।
ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे।
देवकार्य्यं विशेषेण देवकार्य्यरतात्मनः।१०।
देवसार्य्यस्य सिद्धयर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम्।
सुदर्शसाख्यं चक्रं वै ददामि तव शोभनम्।११।
यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम्।
हिताय तव देवेश धृतं भावय तद्द्ध्रुवम्।१२।
रणाजिरे स्मृतं तद्वै देवानां दुःखनाशनम्।
इदं चक्रमिदं रूपमिदं नामसहस्रकम्।१३।
ये श्रृण्वन्ति सदा भक्त्वा सिद्धिः स्यादनपाथिनो।
कामनां सकलां चैवं प्रसादान्मम सुव्रत।१४।

शास्त्रमें लिखेहुए स्वरूपमें स्थित परमोज्ज्वल तेजके पुञ्ज समक्षमेंप्रकट हुए शिवका दर्शन कर विष्णु ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर विशेष रूपसे उनकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त होगये।८। उस समय परमप्रसन्न शिव हाथजोड़कर समक्षमें भगवान् विष्णुको देखकर हंसते हुए कहने लगे। ।९। शिवने कहा–हे विष्णो ! आपके मनमें जोभी कुछ विचारहै वह मैंने सब समझ लिया है तुत इस समय देवगणके कार्य उत्पादन में तत्पर होते हुए उनका समस्त कार्य पूरा करनेके इच्छुक हो ।१०। देवगण के कार्योंकी सिद्धि के लिये और बिना श्रम के दैत्योंका संहार करने के लिये मैं प्रसन्न होकर आपको 'सुदर्शन' नाम वाला परम शोभन चक्र देता हूँ ॥११॥ हे देवेश ! हे विष्णु ! आपने समस्त लोकों का सुखदायक जो स्वरूप देखा है उसका निश्चय ही ध्यान करो। इससे आपका परम हित होगा ॥१२॥

रणभूमि में यदि उस रूपकाका ध्यानकिया जावेतो देवताओंका सम्पूर्णदुःख दूर हो जाता है । यह सुदर्शनचक्र यह रूप और सहस्रनाम स्तोत्र महान् फल देने वाले हैं ॥१३॥ हे सुव्रत ! जोभी कोई पुरुष दृढ़ भक्तिके साथ इस स्तोत्रका श्रवण किया करते हैं और नित्य ही सुनते हैं उनको मेरी कृपा से समस्त अभीप्सितोंकी अक्षय सिद्धि अवश्य ही हो जाती है ।१४।

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम् ।
सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ।१५।
विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा ।
नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवी ।१६।
श्रृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो ।
दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशङ्कर ।१७।
इति पृष्ठस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् ।
प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ।१८।
रूपं ध्येय हरे मे हि सर्वानर्थ प्रशान्तये ।
अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ।१९।
धार्य्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये ।
त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ।२०।
अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः ।
तेषां दुःख न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ।२१।

सूत ने कहा--शिव ने ऐसा कहते हुए सहस्रों सूर्यों के तुल्य कान्ति वाले अपने चरणसे समुत्पन्न सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक सुदर्शनचक्र को दे दिया ॥१५॥ इसके अनन्तर उस समय उत्तर दिशाकी ओर अपना मुख करके भली-भाँति संस्कारके साथ सुदर्शनचक्रको ग्रहणकिया और भगवान् महेशको नमस्कार करके विष्णु ने प्रार्थना की ॥१६॥ विष्णु ने कहा हे प्रभो ! हे देव ! हे लोकोंके कल्याण करनेवाले ! मेरे ध्यानकरने के योग्य क्या है और मेरेद्वारा पढ़नेकेयोग्य क्या २ है ? यह सभी दुःखोंके निवारण [illegible] कृपया बतला देवें ।३७। सूतजी ने कहा-विष्णु भगवान

के द्वारा इस तरह पूछने पर शिव मनमें परम प्रसन्न एव अत्यन्त सन्तुष्ट होकर देवोंकी सहायता करनेवाले वचन विष्णुने करने लगे ।।१८।। शिवने कहा-हे विष्णो ! समस्त उपद्रवोंकी शांतिकेलिये मेरे मङ्गलमय स्वरूप का ध्यान करना चाहिए और समस्त दुःखो के नाश होनेकेलिये मेरे सहस्रनाम स्तोत्रका पाठ करना चाहिये ।।१९।। हे विष्णो ! समस्त कामनाकों की सिद्धिके लिये चक्रोमें परमश्रेष्ठ मेरे चक्रको जिसका नाम सुदर्शन है सर्वदा प्रयत्न पूर्वक धारण करना चाहिए ।।२०।। जो मानव मेरे इस शिव सहनाम वाले स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करेंगे या श्रवण करायेंगे उनको कभी स्वप्नमें भी दुःख नहीं सतायेंगे-इसमें तनिकभी संदेह नहीं है ।२१।

राज्ञां च संकटे प्राप्ते शतावृत्ति चरेद्यदा ।
साङ्गं च विधिसयुक्तं कल्याणं लभते नरः ।२२।
रोगनाशंकर ह्येतद्विद्यावित्तदमुद्यमम् ।
सर्वकामप्रद पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा ।२३।
यदुद्दिश्य फलं श्रेष्टं पठिष्यन्ति नरास्त्विह ।
यप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ।२४।
यश्च प्रातः समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् ।
पठने मत्समक्ष वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ।२५।
ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम् ।
अन्ते सायुज्यमुक्ति वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ।२६।
एवमुक्त्वा तदा विष्णु शंकरः प्रीतिमानसः ।
उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः ।२७।
वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ट वरान्वृणु यथेप्सितान् ।
भक्त्या यशीकृनो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत ।२८।
इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ।
सुप्रसन्नतरो विष्णुः सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ।२९।
यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः पराः ।
कार्य्या चैब त्रिशेषेण कृपालुत्वात्वया प्रभो ।३०।

यदि भूपतियोंके द्वारा सङ्कट आनेका अवसर आवे तो सविधि अङ्ग-न्यास पूर्वक सहस्रनाम की एकशत आवृत्ति करने पर दुःख दूर होकर निश्चय ही कल्याण होता है ।।२२। यह शिव सहस्रनाम स्तोत्र रोगनाशक विद्या और वैभवका दाता तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करने वाला एवं निरन्तर पवित्र शिवकी भक्तिके प्रदान करने वाला है ।।२३।। मनुष्य जिस किसी भी श्रेष्ठ फल प्राप्त करने के उद्देश्य से इसका पाठ करेंगे वे निस्सन्देह इस लोक में उस श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति करेंगे ।।२४।। जो भी कोई मनुष्य नित्य बहुत तड़के उठकर मेरी अर्चा करके इस स्तोत्रका पाठ करेंगे उनसे सत्सिद्धि दूर नहीं रहती है ।।२५।। जो सहस्रनामका नित्य पाठ करता है वह लोकमें समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाली सम्पत्ति पाता है और अन्त में सायुज्य मुक्ति का पद प्राप्त करता इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ।।२६ । सूत जीने कहा-इस तरह विष्णु के कहने के पश्चात् शङ्कर प्रसन्न मन होकर विष्णु भगवान की अपने दोनों हाथों से स्पर्श करते हुए कहने लगे ।।२७।। शिवने कहा-हे देवगण में श्रेष्ठ विष्णो ! मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम अपने मनोवाञ्छित वरोंको स्वीकार करो । हे परम शोभन व्रत वाले ! भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र रत्नके पाठसे निश्चय ही शिव वशीभूत हो जाते हैं ।।२८।। सूतजीने कहा—इस प्रकार से देवों के भी पूज्य देव महादेवके कहने पर उनको प्रणाम करके परम प्रसन्न विष्णु उनसे हस्थ जोड़कर फिर प्रार्थना करने लगे ।।२९।। भगवान् विष्णु ने कहा-हे नाथ ! हे प्रभो ! इस समय आपने जैसा अनुग्रह किया है, हे दयालो वैसी ही कृपा आगे भी आपको करनी चाहिए ।।३०।।

।। नारद का शिवतत्व श्रवण ।।

सूत सूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत ।
पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात् ।।१
पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा ।
आराधनञ्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि ।।२
साधुपृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि किम् ।
चरित्रं शङ्करं रम्यं शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम् ।।३

एतदेव पुरा पृष्ठो नारदेन पितामहः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ।।४
श्रृणु नारद सुप्रीत्या शंकरं चरितं वरम् ।
प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम् ।।५
रभवा सहितो विष्णु शिवपूजां चकार ह ।
कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवाप हि ।।६
अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः।
तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरः सदा ।।७

ऋषियोंने कहा हे महान् भाग्य वाले ! हे सुव्रत ! हे सूतजी ! आप अत्यन्त ज्ञान वाले हैं, अतएव हमारी विनीत प्रार्थना है कि आप अब भगवान् शङ्करके चरित्रका विस्तारके सहित वर्णन करें ।।१।। पहिले होने वाले राजा लोगों ने एवं ऋषिगण और देववृन्दने सर्वश्रेष्ठ भगवान् शिव का ही आराधन किया है ।।२।। सूतजीने कहा-हे ऋषिप्रवर ! इस समय आपने अति उत्तम प्रश्न किया है । मैं आपके सामने अब परम सुन्दर एवं श्रोताओंको भोग और मोक्ष दोनों ही के दाता भगवान् शिवका विस्तृत चरित्र सुनाता हूँ । आप सब ध्यानके साथ सुनिये ।।३।। यही बात पहिले एक समय नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछी थी । परम प्रसन्न होकर ब्रह्मा जीने नारदजीसे कहा था ।।४।। ब्रह्माजीने कहा-हे नारद ! तुम प्रेम पूर्वक सुनो, मैं आपके स्नेह से वशीभूत होकर ही महापातकों का नाशक शिवेश्वरके चरित्रका वर्णन करता हूँ ।।५।। अपनी प्रिय लक्ष्मी को साथ में लेकर भगवान् विष्णुने एकबार शिवका पूजन किया था तब उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे ।।६।। हे तात ! मैं जगत् का विधाता ब्रह्मा भी शिव-समर्चन के अतुल प्रभाव के कारण ही उनकी कृपा से इस सुविस्तृत संसार की रचना किया करता हूँ ।।७।।

शिवपूजाकरा नित्यं मत्पुत्राः परमर्षयः।
अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजन कारकाः ।।८
नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः।
सप्तर्षयो वसिष्ठायाः शिवपूजनकारकाः ।।९

अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च ।
अहल्या गोतमस्त्री च शिवपूजनकारका: ।१०।
दुर्वासाः कौशिकः शक्तिर्दधीचो गोतमस्थता ।
कणादो भार्गवो जीवो वैशपायन एव च ।११।
एते च मनुयः सर्वे शिवपूजाकरा मताः ।
तथा पराशरो ध्यासः शिवपूजारतः सदा ।१२।
उपमन्युर्महाभक्तः शिवस्य परमात्मनः ।
याज्ञवल्क्यो महाशंवो जैमिनिर्गर्ग एव च ।१३।
शुकश्च शौनकाद्याश्च शंकरस्य प्रपूजकाः ।
अन्येऽपि बहवः सन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ।१४।

हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! मेरे पुत्र भी नित्यप्रति भगवान्‌शिवका पूजनकरते हैं तथा अन्यभी बहुतसे ऋषिगण शिवकी पूजा करने वाले हुए हैं ॥८॥ हे नारदजी ! तुमभी विशेष रूपसे भगवान्‌शिवका पूजनकरने वाले हो और अन्य ऋषि लोग भी शिवके समाराधक हुए हैं ॥९॥ परम पतिव्रत धर्मके पालन करने वाली अरुन्धती, लोपामुद्रा और गौतम की पत्नी अहिल्या भी शङ्करकी पूजा-अर्चन करने वाली हैं ॥१०॥ इनके अतिरिक्त दुर्वासा विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशम्पायन आदि ये समस्त ऋषि, मुनि भगवान्‌शिवकी पूजोपासना करने वाले हैं यथा पराशर और व्यासमुनि निरन्तर शिवको आराधनामें परायण रहा करते हैं ॥११-१२॥ उपमन्यु महर्षि भी परमेश्वर शिवके महान्‌भक्त हुए है । याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा गर्ग भी परम शैव थे ॥१३॥ शुक्र एवं शौनक आदि भी भगवान्‌शिवके पूजक हैं । हे मुनिश्रेष्ठो ! अन्य भी बहुत से ऋषि हैं जो एक मात्र शङ्कर भगवान् की पूजा करने वाले हैं ॥१४॥

अदितिर्द्देवमाता च नित्य प्रीत्या चकार ह ।
पार्थिवीं शैवपूजां वै सा वधूः प्रेमतत्परा ।१५।
शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा ।
महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजकाः ।१६।

गन्धर्वाः किन्नराद्याश्चोपसुराः शिवपूजकाः ।
तथाऽसुरा महात्मानः शिवपूजाकरा मताः ॥१७
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः सानुजः ससुतो मुने ।
शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा ॥१८
महाशैवः स्मृतो बाणो हिरण्याक्षसुतास्तथा ।
वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः ॥१९
शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथाऽपरे ।
शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ॥२०
सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यां वंशप्रवर्त्तकौं ।
शिवसेवारतौ नित्य सर्वंश्यां तौ मुनीश्वर ॥२१

देवगणकी माता अदितिने अपनी वधूके सहित परम प्रेम मग्न होकर प्रीति-भक्तिके साथ पार्थिव शिवका पूजन किया था ॥१५॥ इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंने—आठ वसुयोंने और सभी देवताओंने महाराजिकगण के साथ एव साध्योंके सहित भगवान् महेश्वरका पूजन किया था ॥१६। इनके अतिरिक्त किन्नर गन्धर्व, प्रभृति तथा महान्आत्मा वाले दैत्यलोग भी सब शिवके उपासक हुए हैं ॥१७॥ हे मुनिवर ! महान् दैत्यराज हिरण्य-कशिपु अपने भाई एवं पुत्रके साथ नित्यही शिवका पूजन किया करता था। विरोचनभी शिव-पूजक हुआ है ।१८। हे तात ! वाणासुर और हिरण्याक्ष पुत्र वृषपर्वा, दुनुदैत्य और उसकेपुत्र ये सभी शिवकी आराधना करने वाले हुए हैं ॥१६॥ भगवान् शेष, वासुक, तक्षक और अन्यभी नागजातिके बड़े बड़े नाग एव गरुड आदि पक्षीभी शिवकी उपासना करने वाले परम शिव भक्त हुए हैं ॥३०॥ हे मुनीश्वर ! इस भूमण्डलपर सोम और सूर्य ये दोनों अपने-अपने महान् वंशके चलाने वाले माने गये हैं वे भी सभी स्वकीय वशजोंके साथ शिवके अनन्य उपासक एवं परम भक्त हुए हैं ॥२१॥

मनवश्च तथा चक्रः स्वायंभुवपुरसराः ।
शिवपूजां वित्रेषेण शिववेशधरा मुने ॥२२
प्रियव्रतश्च तत्पुत्रस्तथा चोत्तानपात्सुतः ।
तद्वंशाश्चैव राजानः शिवपूजनकारकाः ॥२३

ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नवयोगिनः ।
तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकः ।२४।
वैवस्वतसुतास्तार्क्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ।
शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः ।२५।
ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरः शैवसत्तमः ।
मुचकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च ।२६।
भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः ।
शिवपूजाकरा ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ।२७।
खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः ।
विधितः पार्थिवीं मूर्ति शिवस्यापूजयत्सदा ।२८।

हे मुने ! स्वायम्भुव आदि जो मनु हुए हैं वे सब नित्य शिवकी वेष-भूषा धारण करके ही शिवका पूजन किया करते थे ॥२२॥ महाराज प्रियव्रत तथा उसके पुत्र और उत्तानपाद के पुत्र एवं उनके वंश में जो भी राजा हुये वे सभी शिवके पूजनको करने वाले हुए है ॥२३॥ इनके अति-रिक्त ध्रुव, ऋषभ, भरत नवयोगी तथा अन्य उनके समस्त भाई ये सब परम शिव-पूजक हुए हैं ॥२४॥ वैवस्वत मनुके पुत्र तार्क्ष्य तथा इक्ष्वाकु, प्रभृति नृपगण भी शंकर की पूजा के प्रेमी और इसीके प्रभावसे निरन्तर सुखके भोक्ता हुए हैं ।२५। ककुत्स्थमान्धाता, राजा सगर, मुचुकुन्द, राजा हरिशचन्द्र और कल्माषपाद भी शैवों में परम श्रेष्ठ हुए हैं ।२६। भगीरथ आदि अनेक महान् पुरुषार्थी राजा शिवका वेष धारण करने वाले तथा शिवके पूजन करने वाले हुए में ।२७। देवोंके सहायक राजा खट्वाङ्गने सविधि शिवका पार्थिव पूजन किया था ॥२८॥

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा ।
रघुस्ततनयः शव सुप्रीत्या शिवपूजकः ।२९।
अजः शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत ।
जातो दशरथो भूपो महाराजो विशेषतः ।३०।
पुत्रार्थे पार्थिवी मूर्तिशैवीं दशरथो हि सः ।
समानर्च विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ।३१।

पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान् ।
ऋष्यश्रृंगमुनेराज्ञां सम्प्राप्य नृपसत्तमः ॥३२
कौसल्या तत्प्रिया मूर्ति पार्थिवी शांकरीं मुदा ।
ऋष्यश्रृंगसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ॥३३
सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा ।
पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ॥३४
शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुः शुभकरान् ।
महाप्रतापिनो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ॥३५

इसी वंशमें उनके पुत्र महाराज दिलीप एवं इनके पुत्र राजा रघुशैव होकर परम प्रीति से शिवका वेष रखकर उनका पूजन किया करते थे। ॥२९॥ महाराज रघुके पुत्र अज नृप जिन्होंने धर्मसे युद्ध किया था वे शिव के परम प्रिय भक्त हुये थे इसके अनन्तर राजादशरथ तो विशेष रूपसे शिव की उपासना करने वाले हुए हैं ॥३०॥ राजा दशरथ अपने गुरु वसिष्ठ मुनिकी आज्ञा से पुत्र-प्राप्ति के लिये शिवकी पार्थिव मूर्तिका निर्माणकर विशेष रूपसे नित्य ही महादेवका पूजन किया करते थे ॥३१॥ भक्तिमन् महाराज दशरथने ऋशि श्रृङ्ग मुनिकी आज्ञासे पुत्रेष्टि योग किया था ।३२। दशरथकी पत्नी कौशल्याने ऋष्य श्रृङ्ग मुनिकी आज्ञासे रोज ही शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाकर अपने पुत्र की प्राप्तिके लिये शिवका पूजन किया था ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दशरथ नृपकी अन्य महारानी सुमित्रा तथा कैकेईने भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिकी कामनासे शिवका अर्चन किया था ।३३। हे मुने ! उन सभी रानियोंने भगवान् महेशके प्रसादसे महान् प्रताप वाले, परम वीर, सन्मार्गगामी एवं अतिशय कल्याणकारी पुत्रोंको प्राप्त किया था ।३५।

ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञः स्वय हरिः ।
चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ॥३६
कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मण ।
शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सव्रताः ॥३७
रामः ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् ।
भस्मरुद्राक्षधारी च विरजो योगमास्थितः ॥३८

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने ।
ते सर्व पार्थिवं लिंग शिवस्य समपूजयन् ।३९।
सुद्युम्नश्च महाराजः शैवों मुनिसुतो मुने ।
शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ।४०।
पार्थिवेशसमर्चातः पुनः सोऽभूत्पुमान्वरः ।
मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं त्यवर्त्तत ।४१।
ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः ।
शिववेषधरो भक्तया दुर्लभ मोक्षमाप्तवान् ।४२।

इसी शिव-पूजनके प्रभाव से शिवकी आज्ञा पाकर विष्णु महाराज दशरथके द्वारा चतुर्भुजी मूर्तिके स्वरूपमें श्रीरामचन्द्र रूपसे प्रकट हुए थे। ।।३६।। इस प्रकार से दशरथ की तीनों रानियों के पुत्र हुए। महारानी कौशल्याके श्रीराम, सुमित्राके लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयीके भरत नामवाले पुत्र प्रकट हुए थे ।।३७।। भगवान् श्रीरामचन्द्रभी नित्यही पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवका बड़ेही प्रेमके साथ पूजन किया करते थे ओर भस्म तथा रुद्राक्षमाला धारणकरके विरक्तिके मार्गमें स्थित रहा करते थे ।३८। हे मुने ! इसके पश्चात् भी उनके वंशमें जोभी राजा हुए हैं वे सभी शिव का पार्थिव पूजनकरने वाले थे ।३९। हे मुनीश्वर ! ऋषिके पुत्र परम शिव के भक्त महाराज सुद्युम्न शिवके शापसे अपनी स्त्री और समस्त अनुचरों के साथ स्त्रीके रूपमें होगये थे ।।४०।। राजा सुद्युम्नने नित्य पार्थिव शिवके पूजनका नियम ग्रहण किया और इसके प्रभावसे पुनः पुरुष रूप हुए किन्तु महेशके शापका फिर भी इतना प्रभाव रहा कि एकमास पर्यन्त पुरुष और एकमास तक स्त्री रहते थे। इस तरह स्त्रीत्वसे उन्होंने छूटकारा पाया था। इसके पश्चात् वे अपना राज्य त्यागकर शिवोपासनामें तत्पर होकर अन्त में मोक्षपदकी प्राप्ति के अधिकारी हो गये थे ।।४१-४२।।

पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजः सुपूजकः ।
शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ।४३।
भरतस्तु महापूजाँ शिवस्यैव सदाऽकरोत् ।
नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ।४४।

ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् ।
अजीजनत्सुतान्पञ्च शिवधर्मपरायणान् ॥४५
तत्सुता यदुमुख्याश्च पञ्चापि शिवपूजकाः ।
शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥४६
अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुः शिवं हिते ।
तद्वंश्या अन्यवश्यश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥४७
कृष्णेन च कृतं नित्य बदरीपर्वतोत्तमे ।
पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥
प्रसन्नाद् भागवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः ।
सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात् ॥४९

राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्र शिवके पूजक एवं परम भक्त हुए हैं। शिवके पूजनके अतुल प्रभावसे उनके सभी मनोरथ पूर्ण भी हुए थे।४३। राजा भरत शिवकी महासमर्चा किया करते थे तथा महाराज नहुष महा शैव थे और निरन्तर शिवके समाराधनामें तत्पर रहा करते थे ॥४४॥ राजा ययातिने भी भगवान् शङ्करकी पूजाके प्रभावसे अपनी समस्त कामनाओंकी प्राप्तिकी और शिव धर्ममें तत्पर पाँच पुत्रोंको जन्म दिया था ॥४५॥ यदुवंशमें मुख्य उनके पाँचपुत्र शिवके परम पूजक हुए और भगवान् शिवकी कृपासे अपनी समस्त अभीष्ट कामनाओंकी उन्हेंने प्राप्ति की थी ॥४६॥ हे मुने ! इनके अतिरिक्त अन्य भी जो महान् भाग्यशाली राजा इस संसारमें हुए हैं उन सबने भी शिवका पूजन किया था। उनके वंशज सभी राजाओंने भोग और मोक्षके प्रदाता शिवका समर्चन किया था। ॥४७॥ महात्मा श्री कृष्ण ने बदरी गिरिपर सातमास पर्यन्त स्वयं बड़ी तत्परताके साथ शिवका पूजन किया था ॥४८॥ उस समय परम प्रसन्न होने वाले शिवसे श्री कृष्ण ने अनेक दिव्य वरदान प्राप्त किये और उन्हींके प्रभावसे समस्त जगत्को अपने वशमें कर लिया था ॥४९॥

प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरः सदा ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रबराः साम्बाद्याः शिवपूजकाः ॥५०

जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा ।
निमि शैवश्च जनकस्तत्पुत्राः शिवपूजकाः ।५१।
नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै ।
पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ।५२।
यातिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः ।
स्वय व्याघ्रदिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात् ।५३।
तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् ।
चक्रवर्ती महाराजो दमयन्तीप्रियोऽभवत् ।५४।
इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवताऽनघः ।
शांकर चरित दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ।५५।

हे तात ! भगवान् श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नजी सदा शिवकी पूजा किया करते थे और साम्ब प्रभृति सभी श्रीकृष्णके वंशजोंने शिवकी परम भक्तिका आश्रय लिया था ।५०। महान् शिव भक्त राजा जरासन्ध तथा उनके अण्य वंशज सभी शिवोपासक थे । राजा निमि और जनक तथा उनके पुत्र सभी लोग शिवके परम भक्त हुए हैं ।।५१।। वीरसेन राजा के पुत्र नल राजा ने भी शिवकी पूजाकी थी जोकि अपने पहिले जन्ममें वनके भील रहकर वन-मार्गकी रक्षा किया करते थे । ५२।। भील के जीवन में उसने एक बार शिवके समीपमें स्थित एक सन्यासी की रक्षा की थी और भाग्य वश ही बाघ के भक्षण करने से उसका रक्षणकरनेके कारण मृत्युगत होगया था ।५३। इसी महान् पुण्य कार्य के प्रभाव से अपने दूसरे जन्ममें राजा नल के रूप में उत्पन्न हुआ और चक्रवर्ती राजा नल दमयन्तीरानी के परम प्रिय पति हुए ।।५४।। हे तात ! हे पापशून्य आपने जो प्रश्न मुझसे पूछा सो मैंने महेश्वर शिवका अनिदिव्य चरित्र तुम्हारे सामने वर्णनकर दिया । अब तुम बताओ और मुझसे क्या-क्या पूछना चाहते हो ।५५।

।। शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य ।।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं स फल तव ।
यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ।१।

बहुभिश्चर्षिभिः सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् ।
सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ।२।
केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् ।
कुशलः शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ।३।
भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येन व्रतेन वै ।
तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।४।
सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः ।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं कथयामि यथाश्रुतम् ।५।
यथा भवद्भिः पृच्छयेत तथा पृष्टं हि वेधसा ।
हरिणा शिवया चैव तथा वै शङ्करं प्रतिः ।६।
कस्मिश्चित्सतये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने ।
केन श्रुतेन सन्तुष्टो भुक्ति मुक्ति च यच्छसि ।७।

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी ! आप भगवान् शिवकी शुभ कथाका श्रवण कराते रहते हैं ॥१॥ हे सूतजी ! हमने अन्य बहुतसे ऋषियों के द्वारा अनेक उपाख्यान सुने हैं किन्तु उनसे हमारे हृदयके संशयका नाश नहीं होसका इसी कारणसे हम अब आपसे प्रार्थना करते हैं ॥२॥ आपतो परम कुशल शिव भक्त और उनके कृत्योंके ज्ञाता है । इसीलिये हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि भगवान् शङ्कर किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर सच्चा सुख प्रदान किया करते हैं ॥३॥ हे व्यासजीके प्रमुख शिष्य सूतजी ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति किया करता है अब आप उसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये । हम आपको नमस्कार करते हैं ॥४॥ सूतजीने कहा-हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! सांसारिक प्राणियों पर दया करते हुए आपने बहुत ही सुन्दर बात पूछी हैं । मैंने जैसाभी सुना है वही भगवान् शिवके चरण कमलका स्मरण करके आपको सुनाता हूँ ॥५॥ आज आप लोगोंने जैसी बात पूछी है वैसा ही प्रश्न एकबार ब्रह्मा, विष्णु और जगदम्बा पार्वतीने भी शिवसे पूछा था ॥६॥ किसी समय शिवको प्रसन्न देखकर इन सबने परमेश शिवसे पूछा था कि हे शिव ! किस व्रत से सन्तुष्ट होकर आप भोग-मोक्ष दोनों दिया करते हैं ॥७॥

इति पृष्टास्तदा तैस्तु हरिणा तेन वै तदा ।
तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम् ।८।
भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्ति मुक्तिप्रदानि च ।
मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै ।९।
दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः ।
तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैः सदा ।१०।
प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम् ।
कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ।११।
एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णोऽह्नि भोजनम् ।
असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे ।१२।
त्रयोदश्यां सिताया तु कर्तव्यं निशि भोजनम् ।
असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ।१३
निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे ।
उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिवव्रतपरैः ।१४।

इस प्रकार सबके और विशेष रूपसे विष्णुके द्वारा किये गये इस प्रश्न को सुनकर उस समय शिवजीने जो उत्तर दिया था, मैं श्रोताओंके उसी पापनाशक उपायको बतलाता हूँ ।८। श्रीशिवने कहा-हे देववृन्द ! यों तो भोग और मोक्ष दोक्ष दोनोंको प्रदान करने वाले मेरे विविध व्रत हैं किन्तु उन सबमें दशव्रत परममुख्य होते हैं ।९। वेदोंके पारगामी जाबाल आदि मुनियों ने ये दशही व्रत बतलाये हैं । इन दशव्रतोंको द्विजाति मात्रको यत्नपूर्वक करना चाहिए ।१०। हे विष्णो ! प्रत्येक अष्टमीके दिन एकबार रात्रिमें ही भोजन करना चाहिए । कालाष्टमीकेदिन तो खासतौरसे रात्रिके भोजनका भी त्याग करदेना चाहिए ।११। हे विष्णुदेव ! मासके शुक्लपक्षकी एकादशीकेदिन विशेषरूपसे भोजनको सर्वथा छोड़ ही देना चाहिए । हे हरे ! कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन मेरा पूजनकरके रात्रिमें एकबार भोजन करना उचित है ।१२। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन रात्रिमें एकबार भोजनकरे और कृष्णपक्षकी त्रयोदशीके दिन तो शिवके व्रत धारण करने वालोंको सर्वथा

कदापि भोजन नहीं करना चाहिए।१६। हे विष्णो ! कृष्ण और शुक्ल दोनोंपक्षोमें जो भी सोमवार पड़े उनमें शिव व्रतियों को केवल एकबार रात्रिमें ही यत्नके साथ भोजन करना उचित है।१४।

व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः ।
यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रत संपूर्त्तिहेतवे ।१५।
व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः ।
व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः ।१६।
मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति ।
मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम् ।१७।
शिवार्चनं रुद्रजप उपवासः शिवालये ।
वाराणस्यां च मरण मुक्तिरेषा सनातनी ।१८।
अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे ।
तस्मात्तदेव कर्त्तव्य भुक्तिफलेप्सुभि ।२०।
एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां हितावहम् ।
एतद् व्रतं तु सर्वेषा धर्मसाधनमुत्तमम् ।२१।

हे द्विजवरो ! इनसब व्रतोंमें शिव सेवियोंको यथाशक्ति व्रतकी समाप्ति परही भोजन करना चाहिये।१५। हे द्विजवृन्द ! ये समस्तव्रत द्विजातियों को बहुतही नियमके साथ करने चाहिये। जो लोग इन व्रतोंका त्यागकर दिया करते हैं वे दूसरे जन्ममें चोर होते हैं ॥१६॥ जो मुक्तिके मार्ग को जाना चाहते हैं उन्हें ये व्रत नियमपूर्वक अवश्य ही करने चाहिए। इसका कारण यही है कि ये चारोंबातें मोक्ष के देनेवाली होती हैं।१७। शिवका समर्चन रुद्रका जप शिवालयमें रहकर उपवास,और काशीपुरीमें मृत्यु इनसे सनातनी मुक्ति होती है ॥१८॥ कृष्णपक्ष में सोमवारसे युक्त अष्टमी तथा चन्द्रवारसेयुक्त चतुर्दशी होतो येदोनों भगवान्शिवके परमप्रसन्नता देनेवाले दिन होते है। इसमें कुछभी चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥१९॥ हे भगवन् !

ऊपर बतलाये हुए चारों व्रतोंसे भी शिवरात्रिका व्रत बहुत अधिक बलवान् होता है। अत एव भोग-मोक्षके दोनों फल प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह व्रत अवश्य ही करना चाहिये ॥२०॥ शिवरात्रिके व्रतके दिनसे अधिक अन्य कोई भी व्रत मनुष्यों के हित करने वाला नहीं है। यह व्रत मनुष्यके समस्त उत्तम धर्मोका साधन है ॥२१॥

निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणां तथा।
वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे ।२२।
दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च।
शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद् व्रतं वरम् ।२३।
माघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा साति कीर्तिता।
निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटि विनाशिनी ।२४।
तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातरारम्य केशव।
श्रूयतां तन्मनो दत्वा सुप्रीत्या कथयामि ते ।२५।
प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः।
समाचरेन्नित्यकृतं स्नानादिकमतन्द्रितः ।२६।
शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि।
मनस्कृत्य शिवं पश्चात्सङ्कल्पं सम्यगाचरेत् ।२७।
देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोस्तु ते।
कर्त्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ।२८।

हे विष्णो ! यह व्रत सकाम तथा निष्काम मनुष्योंके-चारोंवर्णों व ले तथा चारोंआश्रमों वाले मानवोंके-स्त्री-वर्ग और बालक वृन्दके धर्मका श्रेष्ठ साधन माना गया है ॥२२॥ यह ऐसा शिवका श्रेष्ठव्रत है जो समस्त दास दासियोंका सब देवता आदिका तथा सम्पूर्ण देहधारी मनुष्यों का हित सम्पादन करने वाला है ॥२३॥ माघ मासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथि किसी अन्य तिथिसे मिश्रित तथा रात्रिमें व्याप्त होने वाली होतो उसे ग्रहण करना चाहिए क्योंकि ऐसी त्रयोदशी अत्यन्त श्रेष्ठ कही गई है और ऐसी तिथि कोटि (करोड़) हत्याओं के पापोंकी भी नाशकारणी बताई गई

है ॥२४॥ हे केशव ! शिव चतुर्दशीके दिन प्रातःकालके समयसे लेकर जो-जो भी कर्तव्य पालन करने चाहिये उन्हें अब मैं तुमको बतलता हूँ आप सब ध्यानपूर्वक श्रवण करो ॥२५॥ धर्मरत बुद्धिमान् मनुष्यको प्रातःकालमें शिवरात्रिके दिन सानन्द शय्यासे उठकर आलस्यका त्याग करते हुए स्नान आदि नित्य-कर्म करना चाहिये ॥२६॥ इस अपने आह्निक कर्मके सांग सम्पन्न होने पर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक भगवान् शिवका अर्चन करे और अन्तमें नमस्कार करके पीछे सम्यक् रीतिसे सत्संकल्प करे ॥२७॥ हे देवोंके देव ! हे नीलकण्ठ ! आपको मेरा प्रणाम है। मैं आपके इस शिवरात्रिके व्रतको करनेकी सदिच्छा रखता हूँ ॥२८॥

तव प्रभावाद् देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति ।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ॥२९
एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत् ।
सुस्थले चैव यल्लिगं प्रसिद्धं चागमेषु वै ॥३०
रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा संपाद्य विधिमुत्तमम् ।
शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे ॥३१
निधाय चैव यद् द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ ।
पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ॥३२
परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वासः शुभं तथा ।
आचम्य च त्रिवारं हि पूजारम्भ समाचरेत् ॥३३
यस्य मंत्रस्य यद्द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत् ।
अमंत्रक न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च ॥३४
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितः ।
पूजन प्रथमे याम कृत्वा मंत्रं जपेद् बुधः ॥३५

हे देवेश ! मेरी प्रार्थना है कि आपके प्रभावसे मेरा यह व्रत निर्विघ्न होजावे और काम, क्रोधादि महाशत्रु मुझे पीड़ा न देवें ॥२९॥ इस रीतिसे सङ्कल्पकरके पूजनकी समस्त वस्तुयें एकत्रितकरे और इसके पश्चात् शास्त्रोंमें प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगकी सुरम्भ स्थलमें स्थापना करनीचाहिए ।३०। रात्रि

में वहाँ स्वयं जाकर श्रेष्ठ विधानके साथ भगवान्‌शिवके दक्षिण भागमें अथवा पश्चिमभागमें स्थलमें उनसमस्त पूजाके उपचारोंको शिवके समीप रक्खे और फिर ब्रतकरने वालेको स्नान करना चाहिए। ये कार्य समुचित विधिसे ही करनेचाहिए।३१-३२। अन्दरके वस्त्रके साथ शुभ वस्त्र धारण कर तीनबार आचमन करनेचाहिए इसके पश्चात् शिवके पूजनका आरम्भ करे ॥३३॥ जो पूजनका द्रव्य अर्पितकरे वह उसीके मन्त्रके सहित समर्पित करनाचाहिए। मन्त्रोंके बिना शिवका पूजन वैसेही कभी नहीं करे।३४। गायन-वादन तथा नर्तनके साथ परमभक्तिकी भावनासे बुद्धिमानको प्रथम प्रहरमें शिवका पूजन करके फिर 'ॐ शिवाय नमः' अथवा 'ॐ नमः शिवाय:' इस पञ्चाक्षरी मन्त्रका जाप करना चाहिए ॥३५॥

पार्थिव च तदा श्रेष्ठं विदध्यान्मंत्रबान्यदि ।
कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत् ।३६।
प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्च त्स्थापनमाचरेत् ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद्वृषभध्वजम् ।३७।
माहत्म्यं ब्रतसंभूत पठितव्यं सुधीमता ।
श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया ।३८।
चतुर्ष्वपि च यामेषु मूर्तिनां च चतुष्टयम् ।
कृत्वाऽवाहतपूर्वं हि विसर्गावधि वै क्रमात् ।३९।
काय जागरणं प्रीत्या महोत्सवसमन्वितम् ।
प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिनम् ।४०।
ततः सम्प्राथयेच्भुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ।
कृतसंपूर्णब्रतको नृत्वा तं च पुनः पुनः ।४१।
नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया ।
विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम् ।४२।

इस प्रकारसे इस उक्त मन्त्रका जपकरते हुएही परमश्रेष्ठ पार्थिवलिंग का निर्माणकरे फिर उसे स्थापितकरे और नित्य-क्रिया करके पार्थिवलिंग का पूजनकरे और अनेक प्रकार के स्तोत्रों द्वारा स्तवन करके भगवान्‌शिव

को सन्तुष्ट एवं प्रसन्नकरे ॥३६-३७॥ इसके अनन्तर बुद्धिमान शिव-भक्त को व्रत सम्बन्धी याहात्म्यका पाठ करनाचाहिए। व्रतकी साङ्ग समाप्तिकी इच्छासे व्रत माहात्म्यका श्रवण करे ॥३८॥ इस प्रकार शिव महारात्रिके चारों प्रहरोंमें आदिमें आवाहनसे लेकर क्रमशः विसर्जन पर्यन्त भगवान् शिवकी चारोंमूर्तियोंका अर्चनकरना चाहिए ॥३९॥ इसमहारात्रिमें बड़ेही उत्साहकेसाथ विशेष उत्सव करते हुए प्रीति और भक्तिके सहित जागरण करना चाहिए,और दूसरेदिन प्रातःकाल होनेपर पुनः शिवकी स्थापनाकर पूजनकरना चाहिए ॥४०॥ इसके अनन्तर अपनेकाधोंको झुकाकर विनम्र भावसे हाथों को जोड़ते हुए सदाशिव की प्रार्थना करे। इस तरह सम्पूर्ण व्रत विधिको समाप्तकर भगवान्शिवको बारम्बार नमस्कार करके प्रार्थना करनी चाहिए ॥३१॥ हे स्वामिन् ! हे महादेव ! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रतका नियम ग्रहण किया था वह अब समाप्त हो गया है। अब मैं आपका विसर्जन करना चाहता हूँ ॥४२॥

व्रतेनानेन देवेश यथाशक्ति कृतेन च।
सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि ।४३।
पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्वा दद्याद्दान यथाविधि।
नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ।४४।
यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः।
भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ।४५।
यामे यामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैर्हरे।
शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते ।४६।
प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे।
पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ।४७।
पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हर सदा।
तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ।४८।
तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां ददेत वै।
पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद् बुधः ।४९।

हे देवेश्वर ! हे सर्वाद्य ! आप मेरे यथा शक्ति किये हुए इस व्रतसे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर मुझ सेवकपर कृपाकी दृष्टि करें ॥४३॥ इसके पश्चात् भगवान् शंकरको पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित करके सविधि दान देवे तथा शिवको प्रणामकरके अपने गृहीत नियमका विसर्जन करे ।४४। शिव के भक्त एवं उपासक ब्राह्मणोंको और विशेष रूपसे संन्यासियोंको अपनी शक्तिकेअनुसार तृप्तिपूर्वक भोजनकराकर पूर्ण सन्तुष्टकरे । और फिर स्वयं भी भगवान् के प्रसाद के स्वरूप में प्राप्त भोजन करे ॥४५॥ हे विष्णो ! शिवके श्रेष्ठभक्तोंको जैसे प्रत्येक प्रहरमें महाशिवरात्रिके दिन विशेष पूजन करनाचाहिए, उसपूजनके विधानको आपको सुनाता हूँ ।४६। हे विष्णुदेव ! पहिले प्रहरमें संस्थापित पार्थिव शिवलिंगका अनेक उपचारोंके द्वारा परम भक्तिपूर्वक अर्चन करे ।४७। सर्वप्रथम पाँचकृत्यों द्वारा शिवकापूजन करे प्रत्येक वस्तुके मन्त्रसे उसे समर्पित करना चाहिए, प्रत्येक द्रव्यका पृथक् २ समर्पण करे ।४८। पूजनके द्रव्योंके समर्पणके साथ प्रत्येक द्रव्यके पश्चाद् जलकी धारा चढ़ानी चाहिए । इसके अनन्तर विद्वान व्रत करने वालेको जलकी धारासे ही समर्पण किये हुए द्रव्यको उतारना चाहिए ॥४९॥

शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया ।
पूजयेच्च शिवं तत्रनिर्गुणं गुणरूपिणम् ॥५०
गुरुदत्तेन मंत्रेण पूजयेद् वृषभध्वजम् ।
अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ॥५१
चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः ।
कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शंभोः परात्मनः ॥५२
कुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः ।
अष्टभिर्नाममंत्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे ॥५३
भव शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा ।
उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ॥५४
श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यन्तैर्नामभि पूजयेच्छिवम् ।
पश्चाद् धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ॥५५

आद्ये यामे च नैवेद्यं पक्वान्नं कारतेद् बुधः ।
अर्घं च श्रीफलं दत्वा ताम्बूलं च वेदयेत् ।५६।

उस समय एकसौ आठबार ॐ नमःशिवाय:' इस परमविख्यात पञ्चाक्षरी मन्त्रको पढ़कर निर्गुण एवं सगुणस्वरूप शिवका पूजनकरना चाहिए ।५०। गुरुसे उपदिष्ट मन्त्रके द्वारा अथवा नाम मन्त्रसे सदाशिवका समर्चन करना चाहिए ।।५१।। शिवका पूजन सुन्दर चन्दन अखण्डित अक्षत (चावल) काले तिलोंसे करना उचित है।।५२।। कमलके दल, सौर और कनेरसे शिवका पूजन करे और शिव भगवान्के ऊपर शिवके आठों नाम मन्त्रोंके द्वारा पुष्प चढ़ावे ।।५३।। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, महान् भीम, उग्र ईशान-ये शिव भगवानके आठ नाम हैं ।।५४।। 'श्री' पहिले लगाकर नामके आगे चतुर्थी विभक्ति लगावे । तथा 'ॐ श्री भावय नमः इत्यादि वत् सब नामोंसे शिवकी अर्चना करे । इसके पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़ाना चाहिए ।।५५।। प्रथम प्रहरमें बुद्धिमान् भक्तोंको पक्वान्न सहित नैवेद्यका समर्पण करना चाहिये तथा अर्घ, श्रीफल, विल्व, नारियल चढ़ाकर अन्तमें ताम्बूल समर्पित करे ।।५५।।

नमस्कारं ततो ध्यानं जपःरप्रोक्तो गुरोर्मनोः ।
अन्यथा पञ्चवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम् ।५७।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याय सुजलेस्तर्पणं चरेत् ।
पञ्चब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ।५८।
महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद् यामो भवेदिह ।
ततः पूजाफल तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत् ।५९।
पुनर्द्वितीये यामे च संकल्पं सुसमावरेत् ।
अथवैकत्रैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम् ।६०।
द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजां कृत्वा धारां समर्पयेत् ।
पूर्वतो द्विगुणं मन्त्रं समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ।६१।
पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम् ।
बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम् ।६२।

अर्घ्यं च बीजपूरेण नैवेद्यं पायसं तथा ।
मन्त्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन ।६३।

इसके पश्चात् नमस्कार और ध्यान करके गुरूदिष्ट मन्त्रका अथवा मेरे मन्त्रका जापकरना चाहिए । किम्बा पञ्चाक्षरी मन्त्रसे शिवको सन्तुष्ट करे ।५७। इसके पश्चात् धेनुमुद्राको प्रदर्शित कर निर्मल जलके द्वारा महेश्वरकी तृप्ति करे और अपनी शक्तिके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।५८। इसके पश्चात् शेष जितनाभी समय रहे महोत्सव करता रहे। इसके अनन्तर समस्त पूजाके फलोंको देकर देवका विसर्जन करना चाहिए ।५९। यहाँ तक प्रथम प्रहरको पूजा हुई । अब द्वितीय प्रहरके आरम्भमें भली-भाँति सङ्कल्प करे अथवा आरम्भमें एकहीबार सङ्कल्प करे पूजनका आरम्भ करे जोकि पूर्ववत् ही होवे ॥६०॥ पूर्वकी भाँतिही प्रथम द्रव्योंसे पूजाकरके फिर जलकी धारा समर्पित करे । इस दूसरे प्रहरमें प्रथम प्रहर की अपेक्षा द्विगुण मन्त्रोंकाजाप करते हुए शिवार्चन करना चाहिए ॥६१॥ प्रथम प्रहरके पूजनसे शेष रक्खे हुए तिल, जौ, चावल और कमलोंसे और विशेषरूपसे बिल्वपत्रोंसे सदाशिवका पूजनकरना चाहिए ।६२। हे विष्णो ! बिजौरा नीबूका अर्घ्य तथा खीरके नैवेद्यका अर्पण करे और पहिलेसे भी दुगुने मन्त्रोंका जाप करना चाहिए ॥६३॥

ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत् ।
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि ।६४।
यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजनं चरेत् ।
यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि च ।६५।
धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि ।
नैवेद्यापूपकैर्विष्णोः शाकैर्नानाविधैरपि ।६६।
कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारातिक्रविधिं चरेत् ।
अर्घ्यं च दाडिमं दद्याद् द्विगुणं जपम चरेत् ।६७।
ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम् ।
उत्सवं पूर्ववत्कुर्याद्यावद्यामावधिर्भवेत् ।६८।

यामे चतुर्थ संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् ।
प्रयोगादि पुना कृत्वा पुजां विधिवदाचरेत् ।६६।
माषैः प्रियंगुभिर्मुद्रगै सप्तधान्यैस्तथाथवा ।
शङ्खीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम् ।७०।

इसके पीछे योग्य ब्राह्मणोंके भोजन करनेका सङ्कल्प करे बाकी सम्पूर्ण पूजनको प्रथमप्रहरके समान द्वितीय प्रहरकी समाप्तितक करता रहे ॥६४॥ यहाँ द्वितीय प्रहरकी अर्चना समाप्त हो जाती हैं और अब तीसरे प्रहरके पूजनका विधान आरम्भहोता है । इस प्रहरमें भी पूर्ववत् पूजनका क्रम करना चाहिये । यज्ञोके स्थानमें गेहूँ तथा आकके पुष्प चढ़ावे ॥६५॥ हे विष्णुदेव ! तीसरे प्रहरमें अनेक तरहकी उत्तम धूप ,बहुतसे दीपक पुआ का नैवेद्य और अनेक भाँतिके शाकोंसे पूजन करे ॥५६॥ इस तरह पूजन करके शिवकी आरती कपूरसे करे । अनारनका अर्घ्य देवे और पहिले की अपेक्षा द्विगुणित मन्त्र जाप करना चाहिए ।६७। इसके अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्रह्मभोज करानेका सङ्कल्प करे और तृतीय प्रहरकी समाप्तिके पर्यन्त पहिले की तरह उत्सव करता ही करे ॥६८॥ यह तीसरे प्रहरकी पूजा समाप्त होती है अब चौथेप्रहरकी अर्चन का आरम्भ होजाता है जब चतुर्थ प्रहरकी पूजाका अवसर आवे तो पहिलेका विसर्जनकर देवे और फिर नये सिरेसे आवाहन आदि करके पूर्ण बिधि-विधानसे पूजन करे ॥६९॥ अब उड़द, मूंग, काँगनी अथवा सात धान्यों, शङ्खी-पुष्प और विल्वपत्रोंसे शिवका अर्चन करना चाहिए ॥७॥

नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि ।
अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ।७१।
अर्घं दद्यात्कदल्यश्च फलेनैवाथ वा हरे ।
विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च ।७२।
पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मन्त्रजापं नरोत्तमः ।
सकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद् बुधः ।७३।
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः ।

मयौत्सववैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ।७४।
उदये च तथा जाते पुनः स्नात्वार्चयेच्छिवम् ।
नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ।७५।
नानाविधानि दानानि भोज्यं च विविध तथा ।
ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया ।७६।
शंकराय नमस्कृत्यञ्जलिमथाचरेत् ।
प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मंत्रैरेतैर्विचक्षणः ।७७।

इसके पश्चात् अनेक प्रकारके मिष्ठान्न नैवेद्योंको शिवके लिये समर्पित करे अथव, उड़दके बने हुए पक्वान्नसे शिवको सन्तुष्ट करना चाहिए ।७१। हे हरे ! इस समय वेलाकी गैरका अर्घ्य देवे किम्बा ऋतुके विविध फलों मे भगवान् शिवको अर्घ्य देना चाहिए ।।७२।। इसके पश्चात् विद्वान् शिवव्रती व्यक्तिको पहिलेसे दुगुना मन्त्र जापकर अपनी शक्तिके अनुकूल ब्राह्मण-भोजन करानेका सङ्कल्प करना चाहिए ।।७३।। भक्तिपूर्वक गायन, वाद्य, नर्तन आदिको करते हुए भक्तोंके सहित महान् उत्सवका समारोह अरुणोदय पर्यन्त करके समयके शेष भागको व्यतीतकरना चाहिए ।।७४।। भुवन भास्करके समुदित होने पर स्नान करके पुनः शिवका अर्चन करना चाहिए । तत्पश्चात् अनेक पूजाके योग्य भेंटोके द्वारा अपना अभिषेक करना चाहिए ।।७५।। इसके अनन्तर प्रहरोंके अनुसार अर्थात् प्रहरोंकी संख्याके अनुकूल विविध तरहके दान, विभिन्न प्रकारके भोजन ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको अपने संङ्कल्पानुरूप समर्पित करने चाहिए ।।७६।। इसके पश्चा शिवको प्रणामकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे और फिर सुबुद्धि भक्तको निम्नप्रकारके मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिए ।।७७।।

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ।७८।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजामिकं मया ।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूनाथ प्रसीद मे ।७९।
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च ।

तैनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ८०।
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं न हि देवता।८१।
पुष्पाँजलिं समर्प्येव तिलकाशिष एव च
गृह्णीयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च ततः शम्भुं विसर्जयेत्।८२।
एव व्रतं कृतं येन तस्माद् दूरो हरो न हि।
न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम।८३।
अनायासतया चेद्वै कृतं व्रतमिद परम्।
तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा।८४।

हे कृपानिधे ! हे शिवजी ! मैं आपका हूँ और आपकेही प्राणों वाला हूँ तथा आपकेही चित्त वाल हूँ - यही समझकर जो भी उचित हो वही आप करें।७८। हे भूतनाथ ! मुझ सेवक के द्वारा अज्ञानवश पूजन तथा जप आदि किया गया है उससे आप अपनी स्वाभाविक दयालुता के कारण से मुझ पर प्रसन्नहोवें।७९ इस परमपावन व्रतसे जोभी उत्तम फल होता है। उससे आप सनस्त सुखों के प्रदान करने वाले मुझपर प्रसन्नता करें।८०। हे महादेव ! मैं यही चाहता हूँ कि मेरे कुल में सदा आपका भजन पूजन करते रहें और मैं कभीभी ऐसे वशमें न होऊँ जिसमें आपका नाम संकीर्तन न होता हो।८१। इस रीति से निवेदन करके पुष्पाँजलि समर्पित कर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद के तिलोंका ग्रहण करे और इसके अनन्तर शिव का विसर्जन कर देवे।८२। इस प्रकार से जो भी व्रत करते, उनसे भगवान शम्भु कभी दूर नहीं रहा करते हैं। इस व्रतका पूर्ण फल मैं नहीं कह सकया हूँ। ऐसे भक्त को मुझे कुछ भी अदेय वस्तु नहीं होती।८३। यदि बिना कुछ श्रमके भी यह परम श्रेष्ठ व्रत किया गया हो, उसकोभी मोक्ष बीज अवश्य होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।८४।

प्रतिामसं वृतं चैव कर्तव्यं भक्तितौ नरैः।
उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगभलं लभेत्।।८५।
व्रतस्य करणान्न नं शिवोऽहं सर्वदुःखहा।

ददामि भुक्तिं मुक्तिं च सर्वां वै वाञ्छितं फलम् ।८६।
इति शिववचनं निशाम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम ।
तदनु व्रतमुत्तमं जनेषु समचरदात्महितेषु चैतदेव ।८७।
कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतन्त्विदम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ।८८।

संसारमें मनुष्योंका कर्तव्य है कि शिवदेवको प्रसन्नकरनेके लिये प्रत्येक मासमें चतुर्दशीके दिन इस व्रतको करना चाहिए और भक्तिके साथ पीछे उद्यापन करके पूर्ण अङ्गोंवाला इसके फलका लाभ प्राप्त करे ।।८५।। इस व्रतके करने वालेका निश्चत रूपसे अवश्यही मैं सारा दुःख दूर भगा देता हूँ और उसे भुक्ति मुक्ति दोनों प्रदानकर सम्पूर्ण अभीप्सित फल दिया करता हूँ ।८६। सूतजीने कहा-भगवान् विष्णुदेव महेश्वरके इस प्रकार के परम हितप्रद बचनोंको श्रवणकर अद्भुत एवं अतुल तेजको प्राप्तहुए और इसके उपरान्त उन्होंने अपने हित चाहने वाले मनुष्योंके निकटमें उपस्थित होकर यह शिवका परम श्रेष्ठ व्रत किया ।८७। एकबार इसी दिव्य शिवके व्रतके विषयमें भगवान् विष्णुने श्रीनारदजी से कहा था कि यह भोग मोक्ष दोनों का देने वाला सर्वोत्तम व्रत है ।।८८।।

।। शिवरात्रि व्रत का उद्यापन

उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च ।
यत्कृत्वा शंकरः साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ।
श्रूयतामृषयो भक्तया तदुद्यापनमादराद् ।
यस्यानुष्ठानतः पूर्णं भवति तद् ध्रुवम् ।२।
चतुर्शाब्दं कर्तव्य शिवरात्रिव्रतं शुभम् ।
एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् ।३।
शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्य संपाद्य वै विधिम् ।
शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ।४।
ततश्च करायेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः ।

गौरीतिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥५
तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतोभद्रमण्डलम् ।
अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रल्पयेत् ॥६
कुंभास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया ।
सर्वस्त्रा सफलास्तत्र दक्षिणासिताः शुभ्यः ॥७

ऋषियोंने कहा—अब आप महाशिवरात्रिके व्रतकी उद्यापनकी विधि का वर्णन करें जिसके करने से साक्षात् भगवान् शिव निश्चित रूपसे प्रसन्न होजाया करते हैं ॥१॥ सूतजीने कहा— हे ऋषिगण ! अब आप पूर्ण भक्तिके साथ आदरपूर्वक महाशिवरात्रिके व्रतके उद्यापन करनेके विधान को परम प्रेमपूर्वक श्रवण करो जिसके कर देनेसे यह महाव्रत निश्चिय ही पूर्ण हो जाया करता हैं ॥२॥ इस परम शुभ शिवरात्रिका व्रत चौदहवर्ष तक करना चाहिये । इस व्रतमें त्रयोदशीके दिन एकबार भोजन करे और चतुर्दशीकेदिन उपवास करनाचाहित॥ ३॥ शिवरात्रिके दिन नैत्यिक विधि को समाप्त करके भगवान् शिवके मन्दिरमें जाकर सविधि उनका अर्चन करना चाहिए ॥४॥ इसके अनन्तर भगवान् शम्भुके समीपमें यत्नके साथ दिव्य मण्डलकी रचना करानी चाहिए जिस मण्डल की त्रिभूवनमें गौरी-तिलकके शुभ नामसे ख्याति है ॥५॥ इसके मध्यमें सुन्दर लिंगतोभद्र-मण्डलको बनावे अथवा उस मंडलके अन्दर सर्वतोभद्र चक्रका निर्माण करना चाहिये ॥६॥ उस जगह प्राजापत्यके नामसे वस्त्र फल और दक्षिणा के सहित शुभ घटोंकी स्थापना करे ॥७॥

मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः ।
मध्ये चक्रश्च संस्थाप्यः सोवर्णो वापरो धटः ॥८
तत्रोमासहितां शंभुमूर्ति निर्माय हाटकीम् ।
पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्तयाऽथवा व्रती ॥९
निधाय वामभागे तु शिवामूर्तिमतन्द्रितः ।
मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ॥१०
आचार्यं वरयेत्तत्रर्त्विग्भिः सहितं शुचिम् ।

अनुज्ञातश्च तैर्भक्तया शिवपूजां समाचरेत् ॥११
रात्रौ जागरण कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन् ।
रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती ॥१२
एवं सम्पूज्य विधिवत्संतोष्य प्रतिरेव च ।
पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि ॥१३
यथाशक्ति विधान च प्राजाप्रत्यं समाचरेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ॥

उस मण्डपके समीप मध्यमें एक या दो सुवर्ण कलशोंकी स्थापना करनी चाहिए जहाँकि शिवके व्रत करनेवाले व्यक्ति एक अथवा आधेपल की सुवर्णकी पार्वतीकेसाथ शिवकीप्रतिमा स्थापित करे ॥८॥९॥ आलस्य का त्यागकर वहाँपर वामभागमें जगदम्बा पार्वतीकी प्रतिमा और दक्षिण भागमें भगवान् शिवकी मूर्तिकी स्थापना सविधिकर रात्रिमें उनका अर्चन करना चाहिए ॥१०॥ उस मण्डप योग्य ऋत्विजों और आचार्यका वरण भी करे जिनकी आज्ञाके अनुसारही भक्ति-भावके साथ शिवकी वन्दनार्चन करना चाहिये ॥११॥ प्रत्येक प्रहरमें पूजन करते हुई रात्रिका जागरण करे और बड़े उत्साहके साथ गीत भजन तथा नृत्य आदिसे उस रात्रिका समय व्यतीत करे ॥१२॥ इस रीतिसे रात्रिको सविधि शिवपूजनकर शिव को सन्तुष्ट करे और फिन प्रातःकालमें पुनः शिवार्चन कर हवन करना चाहिये ।१३॥ इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार प्राजापत्य व्रतका विधान करे और इसके उपरान्म प्रेमपूर्वक ब्रह्मभोज कराके दान देवे । इस समस्त विधानमें पूर्ण भक्तिकी भावना होनी चाहिये ॥१४॥

ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालकारभूषणैः ।
अलंकृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ॥१५
गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम् ।
उक्त्वा चार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ॥१६
ततः सकुम्भां तन्मूर्ति सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् ।
वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ॥१७

ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम् ।
कृतांजलिर्नतस्कन्धः सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ।१८।
देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।
व्रतेनानेन देवेशं कृपां कुरु ममोपरि ।१९।
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रासाद्रात्तव शङ्कर ।२०।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शङ्कर ।२१।
एवं पुष्पाञ्जलिं दत्वा शिवाय परमात्मने ।
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनाँ पुनरेव च ।२२।
एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते ।
मनोऽभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ।२३।

जो बरण किये हुए ऋत्विज हों उन्हें सपत्नीक वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित कर विधिके साथ पृथक् पृथक् उन्हें दान देना चाहिए ।।१५।। सवत्सा दूध देने वाली गौका दान समस्त वस्तुओं के साथ आचार्यको देवे और यह कहकर देना चाहिए कि भगवान्शिव मुझपर प्रसन्न होवें ।।१६।। इसके उपरान्त कलश तथा वस्त्रादिके साथ वृषभपर विराजामान शिवकी प्रतिमाको वस्त्राभूषणों से युक्त आचार्य को समर्पित कर देवे ।।१७।। इसके पश्चात् अपने कन्धोंको नीचेकी ओर झुकाकर विनम्र भावसे दोनों हाथ जोड़कर शिवके समीप गद्गद् वाणी से प्रार्थना करे।१८। हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे शरणागत वत्सल ! हे देवेश ! आप अब इस व्रत से मेरे ऊपर प्रसन्नहोकर कृपाकी दृष्टि करें ।।१९।। हे शिव ! भक्तकी भावनाका आश्रयलेकर मैंने इसव्रतको किया है सो हे शङ्कर ! इसमें कुछ न्यूनताभी रह गई हो तो आपकी प्रसन्नता से पूर्णताको प्राप्त हो ।।२०।। हे शङ्कर ! मैंने ज्ञान या अज्ञानसे जो कुछभी आपका पूजन तथा जप आदि किया है सो सव आपकी अपनी कृपासे सफल होवे ।।२१।। इसविधिसे नम्र प्रार्थना के सहित पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित कर शिवको प्रणाम करे ।।२२।। इस

तरह जिसने भी इस व्रतको किया है उसमें कोई भी न्यूनता नहीं रहा करती है और वह शिवव्रती मनकी चाही हुई सिद्धि ही प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२३॥

व्याध-कथा प्रसंग में शिवरात्रि माहात्म्य वर्णन

सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः ।
विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम् ।१।
कृतं पुरा च केनेह सूत तद् व्रतमुत्तमम् ।
कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ।२।
श्रूयतामृषयः सर्वे कथयामि पुरातनम् ।
इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।३।
पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद् गुरुद्रुहः ।
कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ।४।
निरन्तरं वने गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः ।
चौर्य्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन् ।५।
बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि ।
महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ।६।
कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना ।
न दुरात्मा स्म जानाति महष्टननिवासकृत् ।७।

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी ! आपके वचन सुनकर हम सबको अत्यन्त आनन्द हुआ है। अब आप कृपाकर उसी परम श्रेष्ठ व्रतको प्रीत-पूर्वक विस्तारसे कहिए।१। हे सूतजी ! इस संसारमें सर्व प्रथम यह व्रत किसने किया था और अज्ञानसे भी इस श्रेष्ठ व्रतको करनेसे क्या फल प्राप्त होता है ? कृपाकर यहसब बताइये।२। सूतजीने कहा-हे ऋषिगण ! इस सम्बन्ध में मैं एक परम प्राचीन तथा समस्त पापोंका नाशक निषादका आख्यान तुमको सुनता हूँ।३। बहुतपहिले पुरानेसमयमें गुरुद्रुह नामसे विख्यात, बहु कुटुम्बी और अतिबलवान् एकभील बनमें रहाकरता था जोकि सर्वदा हत्या आदि करने के बुरेसे बुरे कर्मोंमें तत्पर रहता था ॥४॥ उसका यह नित्य

का काम था कि बनमें मृगोंकी शिकार करे और वहाँ आते-जाते लोगोंके धनका अपहरण करे।५। उसने अपने बचपनसे लेकर युवावस्थातक कोई भी शुभ कर्म कभी नहीं किया और इसी रीतिसे वनमें रहते हुऐ उस दुरात्माका बहुत समय व्यतीत हो गया।६। इस तरह रहते हुए उसे शुभ महाशिवरात्रिका समय आ गया किन्तु उस दुष्ट बुद्धिको इस परम पावन दिनका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ ॥७॥

एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा।
प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर।८।
इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम्।
जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम्।९।
दवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचदेव हि।
अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यः स वै दुःखमुपागतः।१०।
किं कर्तव्यं क्व गतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन।
वाल श्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति।११।
मीदय वै कलत्रं च तस्याः किंचिद् भविष्यति।
किंचिद् गृहीत्वा हि मया गन्तव्यं नान्यथा भवेत्।१२।
इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः।
जलावतरण यत्र तत्र गत्वा स्वयं स्थितन।१३।
अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति।
त हत्वा स्वगृहं प्रीत्या यास्यामि कृतकार्यकः।१४।

उसी समय उसके माता-पिता और पत्नीने उससे कहा—हम भूखसे अत्यन्तही व्याकुल होरहे हैं,हमको कहींसे भोजन दो।८। माता-पिता और पत्नीकी इस बातको सुनकर वह अपना धनुष उठाकर शीघ्रही मृग मारने के लिये घोर वनमें गया और चारों और बहुत घूमा-फिरा किन्तु दैवयोग से उसदिन उसे कुछ शिकार नही मिली। जब सूर्य अस्ताचलगामी होगए तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह अत्यन्त दुःखित हुआ ॥९-१०॥उसने बनमें सोचा-क्या करूं और अब कहाँ जाऊं ? खेदकी बात है कि आज

मुझे कुछभी भोजनकासाधन नहीं मिला है । में अपने माता-पिताऔर पुत्र पत्नीको क्या खिलाऊँगा? ॥११॥ मेरी स्त्री गर्भवती है अतः उसके लिये अवश्यही कुछ खानेकी वस्तु लेजाना आवश्यक है । अतः अब मैं भोजनका सामान लिये बिना घरको नहीं वापिस लौटूंगा ।१२। ऐसा विचार करके वह भील एक सरोवरके तटपर जाकर बैठ गया ॥१३॥ उसने सोचा यह जलपीनेका घाट है इसलिये यहाँ अवश्य ही कोई न कोई जीव आवेगा। उसका वध करके सफल होकर ही आनन्दसे घरमें जाऊंगा । १४॥

इति मत्वा स वै वृक्षमेकं विल्वेमिसंज्ञकम् ।
समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ।१५।
कदा यास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः ।
इति बुद्धि समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ।१६।
तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागत ।
तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ।१७।
तां दृष्ट्वा च तदा तेद तद्वधार्थमथो शरः ।
संहृष्टेन द्रुतं बाणं धनुषि स्वे हि संदधे ।१८।
इत्येवं कुर्वतस्तस्य जलं बिल्वदलानि च ।
पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिगमभूत्ततः ।१९।
यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च ।
तन्महिम्ना हि तस्यैव पातक गलितं तदा ।२०।
तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वां सा हरिणी भिया ।
व्याधं दृष्ट्वा व्याकुल हि तचनं चेद्मब्रतीत् ।२१।

वह भील अपने दिलमें एसा विचार करके जल लेकर एक बेलके वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ बैठगया ॥१५॥ कब कोई जीव आवे और कब मैं उसे मारूँ-यही मनमें विचार करके भूखा-प्यासा वह भील वहां प्रतीक्षामें स्थित हो गया ॥१६॥ जब रात्रिका प्रथम प्रहर हो गया तो एक हिरनी प्याससे वेचैन होकर हाँपती हुई वहाँ आई ॥१७॥ हे विष्णुदेव ! उसी मृगीको देखकर उस व्याधको नहुत प्रसन्नता हुई और उसने हिरनीको

मारनेके लिए तुरन्त ही धनुषपर बाण चढ़ा लिया ।१८। धनुष और तीर को साधनेके प्रयत्नमें उनके हाथसे बेलपत्र और जल नीचे गिरगये जहाँकि एक शिवका ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित था ।।१९।। इस तरह से अनजाने ही उसके द्वारा अनायास भगवान् शिवके प्रथम प्रहरका अर्चन हो गया। इस महारात्रि में शिव-पूजनके प्रभावसे उसके समस्त पापोंका क्षय हो गया। ।।२०।। उसके धनुषकी ध्वनिको सुनकर और भीलको वधके लिये प्रस्तुत देखकर वह हिरनी अत्यन्त भयभीत होकर उससे कहनी लगी ।२१।

किं कर्तु मिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः ।
तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ।२२।
कुटुम्ब क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वं तर्पयाम्यहम् ।
दारुणं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम् ।२३।
किं करोमि क्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम् ।
इत्थं विचार्य्य सा तत्र वचन चेदमब्रवीत् ।२४।
मन्मांसेन सुखं ते स्याद्देहस्यानर्थकारिणः ।
अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ।२५।
उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह ।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ।२६।
परं तु शिशवौ मेऽद्य वर्तन्ते स्वाश्रमेऽखिलाः ।
भगिन्यौ तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेऽथवा ।२७।
न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर ।
आयास्येह पुनश्चाहं समीप ते न संशयः ।२८।

हिरनीने कहा-हे व्याध ! तुम्हारी क्या करनेकी इच्छा है ? मेरे सामने अपना सत्य विचार प्रगट करो, मृगीकी इस बातको सुनकर वह भील कहने लगा ।।२२।। व्याधने कहा-आज मेरा समस्त कुटुम्ब भूखा है, तुझे मारकर अपने परिवार वालोंके प्राणोंकी रक्षा करूँगा। भीलके इस उत्तर को सुनकर और भीषण व्याध के स्वरूप को देखकर हिरनी अपने मन में सोचने लगी ।२३। इस प्राणोंकी बाधाका समय उपस्थित होजानेपरमैं कहाँ

जाऊं और क्या करूं ! अच्छा कोई उपायरचता हूँ-ऐसा मनमें विचारकरके उसने कहा-।२४। मृगीने कहा-आज महान् अनर्थ करनेवाले इसमेरे शरीर से यदि आपको सुखमिले तो मेरा इससे अधिक और क्या महान् पुण्य हो सकता है । मैं आज बिना किसी संदेहके निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी हूँ ।२५। इसलोकमें उपकार करनेवाले प्राणिका जितना पुण्य होता है उसका वर्णन एक सौ वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है ।।२६।। किन्तु केवल यही प्रार्थना हैकि इस समय मेरे सबबच्चे अपने स्थानमें अकेले हैं मैं उन्हें अपनी भगिनी अथवा स्वामीके पास सौंपकर तुरन्त आपके समीप में आ जाऊँगी ।२७। हे वनचर ! आप मेरे इस वचनको असत्य मत मानना, मैं तुम्हारे पास निश्चय ही आऊँगी-इसमें कुछ सन्देह नहीं ।२८।

स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारधिः ।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ।२९।
इत्युक्तोऽपि तथा व्याधो न मेने तद्वचो यदा ।
तदा सुविस्मिता भीता वचन साब्रवीन्पुनः ।३०।
शृणु व्याधप्रवक्ष्यामि शपथ हि करोम्यहम् ।
अगच्छेयं यथा ते न समीप स्वगृहाद्गता ।३१।
ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम् ।
स्त्रियः स्वस्वामिनो ह्याज्ञां उल्लंध्य क्रियान्वितः ।३२।
कृतघ्ने चैव यत्पापं यत्पाप विमुखे हरेः ।
द्रोहिणश्चैव यत्पापं यत्पाप धर्मलघने ।३३।
विश्वासघातके यच्च तथा वै छलकर्तारि ।
तेन पापेन लिम्पामि यद्यह नागमे पुनः ।३४।
इत्याद्यनेकशपथं मृगी कृत्वा स्थिता यदा ।
तदा व्याधः स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत् ।३५।
मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् ।
तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गत ।३६।

सत्यके प्रभावसे यह भूमि स्थित है और सत्य ही से सागर तथा जल

धारा स्थित है, निष्कर्षार्थ यही है कि सत्यमें सभी कुछ स्थित है।२९।सूतजी ने कहा-उस हिरनीकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भी व्याधने नहीं माना तो वह अति आश्चर्यान्वित होकर बहुत डर गई और उसने फिर कहा ॥३०॥ मृगीने कहा-हे व्याध मैं जो भी कुछ निवेदन करती हूँ उसे आप सुनो मैं आपके समक्षमें शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं अपने बचनकापालन अवश्य करूंगी अर्थात् मैं अवश्य ही वापिस आऊंगी ।३१॥ वेदों के बेचने वाले और त्रिकालमें सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मणकोजो पापहोता है तथा कामों में आसक्त हुई स्त्रियों को अपनी स्वामी की आज्ञाके उल्लंघन में जो पाप होता है एवं विश्वास घात करने वाले-कृतघ्नी-छल करने वाले और शिवसे विमुख रहने वालेको जोभी पाप होता है और धर्मको तोड़ने वाले को जोभी पातक लगता है मैं भी उसी पापकी भागिनी होऊंगी यदि मैं कहकर आपके पास लौटकर वापिस न आऊं ॥३२-३३-३४॥ इस तरह बहुत सी शपथ खाकर वह जब स्थित हुई तो व्याधने हिरनी से कहा, मैं विश्वास करता हूँ तू चली जा ॥३५॥ इसके पश्चात् जब तक वह हिरनी जल पीकर प्रसन्न हो अपने स्थानको गई तब तक प्रथम प्रहर बिना नींद लिये उस व्याधका व्यतीत हो गया ॥३६॥

तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता ।
तस्या मार्ग विचिन्वन्तो ह्याजगाम जलार्थिनी ।३७।
तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद् वाणस्य कर्षणम्
पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ।३८।
यामस्य च द्वितीयस्य तेन शम्भोर्महात्मनः ।
पूजा जाता प्रसगेन व्याधस्य सुखदायिनी ।३९।
मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि वनेचर ।
पूर्ववत्कथितं तेव तच्छुत्वाऽहं मृगी पुनः ।४०।
धन्याऽहंव्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम् ।
अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भवष्यति ।४१।
परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्टन्ति चार्भकाः ।
भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः ।४२।

इसके उपरान्त मृगीकी एक दूसरी बहिन उसकी खोज करने हुई जलपीनेको वहाँ आ पहुँची ।।३७।। इस दूसरी हिरनी को देखकर भीलने इसका वध करनेके लिए फिर ज्यों ही धनुष खींचा कि उसके हाथसे पुनः पूर्ववत् बेलपत्र और जल शिव लिंग पर गिर पड़े ।।३८।। यह इस प्रकारसे द्वितीय प्रहरका शिवार्चन व्याध का अनजाने ही सुसम्पन्न हो गया जो कि महान् सुख देनेवाला होता है ।।३९।। उस समय वह हिरनी भीलको देख कर कहने लगी-यह आप क्या करना चाहते हैं ? व्याध ने पूर्ववत् उसके वध करने का उत्तर दिया। यह सुनकर मृगी कहने लगी ।।४०।। मृगीने कहा-हे व्याध मैं परम धन्य हूँ, मेरा यह शरीर धारण करना आज सफल हो गया क्योंकि इस नाशवान् मेरे शरीर से आपका उपकार होगा-परन्तु केवल छोटीसी प्रार्थना यही है कि मेरे बच्चे सब एकाकी घर पर मेरी प्रतीक्षामें होंगे, मैं उन्हें अपने स्वामीके सुपर्द कर आऊं और फिर आपके समीप बहुत शीघ्र वापिस आती हूँ ।।४१-४२।।

त्वया चोक्तं न मन्येऽहं हन्मि त्वां नात्र संशयः ।
तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरे ।४३।
शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि ।
वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम् ।४४।
परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुनाम् ।
वेदधर्म समुल्लंघ्य कल्पितेन च तो ब्रजेत् ।४५।
विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः ।
पित्रो क्षयाहमासाध शून्यं चौवाक्रमेदिह ।४६।
कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः ।
तेन पापेन लिम्पामि नागच्छेय पुनर्यदि ।४७।
इत्युक्तश्च तथा व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः ।
सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टाऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।४८।
तावद् द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां बिना गतः ।
एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ।४९।

भीलने कहा यह तेरा कथन मैं नहीं मान सकता-मैं अब अवश्यही मारूंगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे हरे ! यह व्याधके वचन सुनकर वह मृगी शपथ करती हुई कहने लगी ।४३। मृगीने कहा-हे व्याध ! यदि मैं वापिस लौटकर आपके समीप न आऊं तो वचन के विधान से मेरा समस्त पुण्य चला जायगा ।४४। जो मनुष्य अपनी विवाहिता पत्नी का त्यागकर अन्य स्त्री से भोग करता हैतथा जो वेद विहित धर्मका उल्लंघन करके कल्पित मार्गका अनुगमन करता है-जो विष्णु भक्त बनकर शिव की निन्दा करता है, जो माता-पिता की दाह तिथि को बिना ब्राह्मण भोजनके खाली जाने देता है, जो दूसरेको दुख:देकर पीछे मधुर बचन बोलता है मैं उस पापसे लिप्त हो जाऊं यदि मैं वापिस लौटकर आपके पास न आऊं ।४५-४६। सूतजी ने कहा—उस भील ने इस तरह शपथ पूर्वक कहने पर मृगीसे कहा—'तू चली जा'। तब वह मृगी परम प्रसन्न होकर जल पान करके अपने घर चली गई ।४७। तब तक उस व्याध को विना निद्रा लिये दूसरा प्रहर व्यतीत हो गया और फिर तीसरे प्रहर के आरम्भ होने पर उसने देखाकि वे हिरनियाँ वापिस नहीं आई हैं ।४९।

ज्ञात्वा विलबं चकितस्तदन्वेषणातत्पर: ।
तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः ।५०।
पुष्टं मृगं तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरः स वै ।
शरं धनुषि संधाय हन्तुं तं हि प्रचक्रमे ।५१।
तदैवं कुर्वतस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित् ।
तत्प्रारब्धवशाद्विष्णो पतितानि शिवोपरि ।५२।
तेन तृतीययामस्य तदात्रौ तस्य भाग्यतः ।
पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम् ।५३।
श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः ।
कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोऽब्रवीत् ।५४।
तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः ।
द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत् ।५५।

धन्योऽहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति।
यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥५६

हिरनियों के वापिस आने में विलम्ब देखकर व्याध चकित होकर उनकी खोज करनेमें तत्पर होगया किन्तु उसी समय उसने जलके मार्गमें आता हुआ एक हिरण देखा ॥५०। उस परम पुष्ट शरीर वाले हिरणको देखकर व्याधने अपने धनुष पर वाण चढ़ा लिया और वह उसका वध करनेको उद्यत होगया ॥५१॥ हे विष्णुदेव ! जब उसने धनुष-वाणका सन्धान किया तो भाग्यवश कुछ बेलपत्र शिवके ऊपर उसके हाथसे गिर गये। उसने उस रात्रिमें भीलके भाग्यसे तीसरे प्रहरकी शिवकी पूजा सम्पन्न होगई। इस तरह उस व्याध पर शिवने अपनी कृपालुता दिखलाई थी ॥५२।५३॥ धनुषके शब्दको सुनकर मृगने कहा—हे भील ! यह तुम क्या कर रहे हो ! व्याधने कहा—मैं अपने कुटुम्बके पोषणके लिये तुझे मारना चाहता हुँ॥५४॥यह भीलके वचन सुनकर हिरन परमप्रसन्न चित्तसे व्याधसे कहने लगा—॥५५॥ मृगने कहा-मैं आज अतिशय धन्य भाग्य वाला हूं, मैं पुष्टि वाला हूँ क्योंकि मेरे शरीरसे आपकी तृप्ति होगी। जिसके शीरीरसे दूसरेका कोई उपकार नहीं बनता, उसका शरीर धारण करना ही सर्वथा निष्फल है ॥५६॥

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥५७
परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननी शिशून ।
आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः ॥५८
इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मतोऽतीव चेतसिः।
मताक् शुद्धमना नष्टपापपुञ्जो वचोब्रवीत् ॥५९
ये ये समागताश्चात्र ते ते सर्वे त्वया यथा।
कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि बन्धका ॥६०
त्वं चापि सङ्कटे प्राप्तो व्यलीकं गमिष्यसि।
मम संजीवनं चाद्य भविष्यति कथं मुधा ॥६१

श्रृणु व्याथ प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि ।
सत्येन सर्व ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ॥६२
यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलित क्षणात् ।
तथापि श्रृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ॥६३

जिस प्राणी में सामर्थ्य हो और उससे वह दूसरों की भलाई नहीं करता है तो उसकी समस्तसमर्थता व्यर्थही है । ऐसाप्राणी परलोकमें नरक का गामी होता है ॥५७॥ किन्तु सिर्फ कुछक्षण आपसे चाहता हुँकि अपने बालकोंको माताको सोंपतेहुए धीरजबंधाकर शीघ्र आपकी सेवामेंउपस्थित हो सकूं ।५८। मृगके इस तरह कथनसे व्याधको बड़ा आश्चर्य हुआ और शिवार्चनके प्रभावसे कुछ मनकी शुद्धि हो जानेसे तथा पापोंका क्षय होनेसे उस भीलने कहा—॥५९॥ व्याधने कहा-हे मृग जो-जो भी जीव यहाँ आये सब तेरी भाँतिही कहकर यहाँसे चलेगये और वे सब अभी तकभी वापिस नहीं आये हैं ।६०। हे मृग ! उसी तरह तू भी प्राण सङ्कटमें प्राप्त होकर असत्य का आश्रय लेकर समय निकालेगा, तू ही बता ! मेरा जीवन इस तरह कैसे रहेगा । ॥६१॥ मृगने कहा-हे व्याध ! मैं जो कुछ भी आपसे कहता हूं उसेआप सुनिये । मैं कभी असत्य नहीं बोलता हूं । सत्यके प्रवल प्रभावसे ही यह चराचरमय समस्तब्रह्माण्ड स्थित होरहा है ।६२। जिसकी वाणीमें असत्यता रहती है उसका सारा पुण्य तुरन्त ही नष्ट होजाता है । हे भील ! अब आप मेरी सत्यतापूर्ण प्रतिज्ञाका श्रवण करिये ॥६३॥

सन्ध्यायां मैथुने धस्त्रे शिवरात्र्यां च भोजन ।
कूटसाक्ष्ये न्यासंहारे सन्ध्याहीने द्विजे तथा ॥६४
शिवहीनं मुख यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन् ।
पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे ॥६५
असपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः ।
एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ॥६६
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज ।
स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ॥६७

ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः ।
धृत्तांतं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम् ।५८।
गन्तव्य निश्चयेनेति सत्यपाशेन यंत्रिताः ।
आश्वास्या बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ।६९।
मृगी ज्येष्टा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीद् ।
त्वां विना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यन्ति वै मृग ।७०।

संध्याके समय मैथुनकरनेसे, शिवरात्रिको दिनमें भोजन करनेसे झूँठी गवाही देनेसे, किसीकी रक्खी हुई धरोहरको मारकर पचा जानेसे तथा ब्राह्मण को सन्ध्यावन्दन न करने से जो पाप होता है तथा जिसका मुख शिव भजनसे रहित है, जो सर्वसमर्थ होकरभी उपकार नहीं करता है, पर्व के दिन बेल तोड़ने और अभक्ष्यका भक्षण करनेसे, शिवार्चनके पूर्व भोजन करनेसे, भस्म रहित अङ्ग रहनेसे जो जो महापातक होते हैं वे सभी मुझे लगें अगर मैं वचनदेकर आपके पास वापिस न आऊं ।६४। ६६। श्रीशिवने कहा—ऐसे उस मृगके बचनों को सुनककर व्याधने कहा—'चले जाओ' शीघ्र वापिस आना'। तब वह हिरन जल पीकर सकुशल अपने निवास स्थानपर चला गया ।६७। इसके उपरान्त वे सब हिरनी और हिरन अपने रहनेके स्थानमें एकत्रितहोकर मिले औरएकदूसरेने परस्परमें प्रणाम करके व्याघ्र की वातचीतका समस्त हाल कहा और सुना, फिर वे कहने लगे ।६८। हम सबको अवश्यही अब वहाँ उस व्याधके पास जानाही चाहिए। इस प्रकार सत्य पाशके बन्धनमें बंधे हुए उन्होंने अपने बच्चोंको धीरज बंधाकर वहाँ जानेका निश्चय किया ।६८। उनमें जो सबसेबड़ी हिरनी थी उसने अपने पतिसे कहा—हे मृग ! आपके बिना ये बच्चे वहाँ कैसे रह सकेंगे ।७०।

प्रथमं ते मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो ।
तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ।७१।
इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्टा वाक्यमब्रवीत् ।
अहं त्वेत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ।७२।
तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया ।
भवत्यौ तिष्टतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम् ।७३।

तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः ।
प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवित च धिक् ।७४।
बालानाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः ।
गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ।७५।
ते वाला अपि सर्वे वै विलोक्यानु समागताः ।
एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माक सा भवत्विति ।७६।
तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो वाणं धनुषि संदधे ।
पुनश्च जलपत्राणि पतितारि शिवोपनि ।७७।
तन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा ।
तस्य पाप तदा सर्व भस्मसादभवत् क्षणात् ।७८।

हे पतिदेव ! सबसे प्रथम मैंने ही वहाँ पहुँचने का बचन दिया है । इसलिये मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिए । आप दोनों यहाँपर ही रहें ।७१। बड़ी मृगीके इस बचन को सुनकर सबसे छोटी कहने लगी-मैं तो आपकी टहलनी हूँ । मैं वहाँ जाती हूँ । आप सब यहीं रहें ।७२। मृगियों के यह बचन सुनकर हिरन ने कहा मैं जाता हूँ, तुम सब यहाँ रहो क्योंकि बच्चों की रक्षा करने वाली माता ही हुआ करती है ।७३। अपने पति के बचन श्रवणकर उन दोनों मृगियोंने अपने धर्मका ध्यानकरते हुए उस बातको न स्वीकार कर प्रेमके साथ पतिसे कहा-वैधव्यमें जीना स्त्रीके लिये धिक्कार जैसा है ।७४। इस तरह बातचीत करके अपने बच्चोंको धीरज देकर पड़ोसियोंके सुपर्दकरते हुए सभी वहाँ चलेगये जहाँ व्याध बैठा था ।७५। पीछे से सबबच्चे भी वहीं चल दिये और मनमें ठानलिया कि हमारे माता-पिता की जो दशा होगी वही दशा हमभी भोग लेंगे ।७६। उससमय उन सबको आये हुए देखकर व्याध मनमें बहुतही प्रसन्न होते हुए अपने धनुषपर वाण चढ़ाने लगा । उस समय भी उसके धनुषके सन्धान करनेमें हाथसे शिवकी मूर्तिपर जल तथा बेलपत्र गिर गये ।७७। इससे भगवानशिवके चौथे प्रहर का भी अर्चन सम्पन्न होगया और इसके प्रभावसे व्याधके समस्त पापोंका समूल विनाश हो गया ।।७८।।

मृगी मृगी मृगश्चोचुः शीघ्रं वै व्याधसत्तम ।
अस्माकं सार्थकं देहं कुरु त्वं हि कृपा कुरु ।७९।
इति तेषां वचः श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ।
शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ।८०।
एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनाः सुसंमताः ।
स्वीयेनव शरीरेण परोपकरणे रताः ।८१।
मानुष्यं जन्म सम्प्राप्य साधितं किं मयाधुना ।
परकीय च सपीडय शरीर पोषितं मया । ८२
कुटुम्ब पोषितं नित्यं कृत्वा पापन्यनेकशः ।
एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यतिः ।८३।
कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम् ।
इदानीं चिन्तयाम्येवं धिग्धिक् जीवनं मम ।८४।

उस समय वहाँ पहुँचकर मृग और मृगी शीघ्र व्याधसे बोले-हे व्याध श्रेष्ठ ! अब आप हमारे सबके शरीरोंको सार्थक बनादो और कृपा करो । ।७९। शिवने कहा—उन सबके इन बचनों को सुनकर उस भील को बड़ा विस्मय हुआ और शिवपूजनके प्रभावसे उसे देव-दुर्लभ ज्ञानप्राप्त होगया । ।८०। उसने मनमें सोचा-परस्पर मिले हुए ज्ञान रहित इस पशु योनि में उत्पन्न मृग परम धन्य हैं जो अपनेनश्वर शरीरसे परोपकार करनेमेंतत्पर होरहे हैं ।८१। इस मनुष्य देह को प्राप्तकर मैंने क्या फल प्राप्तकिया, जो दूसरे प्राणियोंके शरीरको पीड़ा देकर जन्मभर अपना शरीर पाला ।८२। मैंने सदा बहुतसे पापकर्म करके अपने कुटुम्बका पालन किया ! ऐसे-ऐसे बुरे पापकर्म करने वाले मेरी क्या गति होगी ।८३। मैं नहीं समझता मेरी क्या दुर्गति होगी । क्योंकि जन्मसे ही पाप कर्म किये आज मैं ऐसी चिन्ता कर रहा हूँ । मेरे जीवनको धिक्कार है !।८४।

इति ज्ञान समापन्नो वाणं संवारयंस्तदा ।
गम्यतां च मृगश्रेष्टा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ।८५।
इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नः शङ्करस्तदा ।
पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास सम्मतम् ।८६।

संस्पृश्य कृपया शम्भुस्त व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् ।
वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक ।८७।
व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात् ।
पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन ।८८।
शिवोऽपि प्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च ।
विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरानदात् ।८९।
शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुंक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् ।
राजधानीं समाश्रित्य शृङ्गवेरपुरे पराम् ।९०।
अपनाया वंशवृद्धिः श्लाघनीयः सुरैरपि ।
गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ।९१।

इस तरह ज्ञानके उदयसे सद्विचार वाले उस व्याधने धनुषसे वाण हटालिया और कहने लगा-हे मृगबरो ! तुम सब परमधन्य एवं सत्यनिष्ठ हो, अब आप सब अपने निवासस्थानको चलेजाओ ।८५। शिवजीने कहा-उससमय जब उसभीलने मृगोंसे यह कहा तो भगवान्शंकर बहुतही प्रसन्न हुए औरफिर उन्होंने उसभीलको शास्त्रानुमत अपना पूज्यस्वरूप दिखलाया ।।८६।। शिव कृपासे पूर्ण होकर भीलके शरीरको हाथसे स्पर्श करते हुए प्रीतिपूर्वक वाले-हे भील ! मैं तेरे इसव्रत एवं जागरण तथा अर्चनसेबहुत ही प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ, तू अब वर माँग ले ।।८७।। तब भगवान् शिवके स्वरूपका दर्शनकर व्याधभी क्षणमात्रमें मुक्तहोगया और 'हे भगवन् मैंने सभी कुछ प्राप्तकर लिया -यह कहते हुए शिवके चरणोंमें गिर पड़ा ।८८। अत्यम्त प्रसन्न शिवने उसका 'गुह'-यह नाम देकर कृपाभरी दृष्टिसे देखते हुए उसे दिव्य वरदान दिये ।८९। शिवजीने कहा-हे व्याधर्षे ! अब तू मनोऽभिलषत दिव्य भोगोंका उपभोगकर तथा शृगवेरपुरमें अपनी उत्तम राजधानी बनाकर वहाँ राजाके रूपमें निवासकर ।९०। हे व्याध ! तुम्हारी वंशवृद्धि कभी नाशको प्राप्त नहीं होगी और उसकी प्रशंसा देवगण भी करेंगे । नेतामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् तुम्हारे घर पर पधारेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।९१।

करिष्यति त्वया मैत्री मद्भक्तसहकारकः ।
मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यसि दुर्लभाम् ।९२।
एतस्मिन्नन्तरे ते तु कृत्वा शङ्करदर्शनम् ।
सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं मृगयोनेः प्रपेदिरे ।९३।
विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा ।
शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गता ।९४।
व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले ।
दर्शनात्पूजनात्सद्यो मुक्ति मुक्तिप्रदायकः ।९५।
व्याधोऽपि तद्दिमान्नून भोगान्स सुरसत्तम ।
भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान् ।९६।
अज्ञानत्स व्रतञ्जैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्तवान् ।
किं पुनर्भक्तिसम्पन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम् ।९७।
विचार्य सर्वशास्त्राणि धर्मांश्चैवाप्यनेकशः ।
शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम् ।९८।

मेरे भक्तोंपर विशेष कृपा वाले श्रीराम तुम्हारे साथ मैत्री भाव रक्खेंगे और तुम मेरी सेवामें चित्तलगाकर दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्तकरोगे । ।९२। इसी समयमें उन मृग और मृगीने भी साक्षात् शिव के दर्शन प्राप्त किये और उनको प्रणामकरके वे भी मुक्तहोगये । उनकी वह मृगयोनि छूट गई ।९३। फिर वे दिव्यदेह धारण करके विमानारूढ़ होकर शिवके दर्शन मात्रसे शापसे छुटकारा पा गये और शिव लोकके दिव्य धाम में चले गये ।९४। उस समयसे अर्बुदाचलको मुक्त करनेवाले शिव 'व्याधेश्वर' इसनाम से प्रसिद्धहोकर स्थापित होगये और और वे दर्शनार्चनसे मनुष्योंको तुरन्त भोग-मोक्ष प्रदान किया करते हैं ।९५। हे देवोंमें श्रेष्ठ ! उस समय से वह भीलभी संसारके समस्त भोगोंको भोगकर श्रीरामचन्द्रकी कृपासे शिवको सायुज्य मुक्तिके पदको प्राप्त हो गया ।९६। भीलने तो अज्ञान से शिवका व्रतकिया और विवशतामें व्रत बनपड़ा तब उसे भुक्ति मुक्तिमिलगई तोजो भक्तिवाले इसकेद्वारा शुभगतिको पालेवें तो क्या आश्चर्यकी बात है ।९७।

सम्पूर्ण शास्त्रोंका मंथन कर और विविध धर्मोंका विवेचन करके सर्वोत्तम महाशिवरात्रिके व्रतको बतलाया गया है ॥६८॥

व्रतानि विधिधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च ।
दानानि क विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा ॥९९
तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः ।
नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥१००
तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः ।
शिवरात्रिव्रतं दिव्यं भुक्ति मुक्तिप्रद सदा ।१०१
एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रत शुभम् ।
ब्रतराजेति विख्यात किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१०२

यों तो इस लोक में विविध व्रत, अनेक तीर्थ, सैकड़ों प्रकार से दान बहुत से यज्ञ नाना भाँतिके तप एवम् जप हैं परन्तु इस महाशिवरात्रि के व्रतोपवास तथा शिवार्चनकी समताको कोईभी प्राप्तनहीं होसकते हैं ।९९-१००॥इसीलिये अपना कल्याणचाहने वालोंको यह परमश्रेष्ठ,भोग-मोक्ष का दाता शिवरात्रि का व्रत अवश्यही करनाचाहिए ।१०१।अव तक हमने शिवरात्रिके व्रतका आख्यान और महान्फल भली भाँति बतला दिया है । यह सबव्रतोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ही 'व्रतराज' कहा है। अब और आप क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥१०२॥

॥ मुक्ति निरूपण ॥

मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह ।
अवस्था कीदृशी भवेदिति सर्वं वदस्व नः ॥१
मुक्तिश्चर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः ।
संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ।२।
सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा ।
सायज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् ।३।
मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठा केवलं शिव उच्यते ।
ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः ।४।

ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाः शिवस्त्रिगुणतः परः ।
निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः ।।५
ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयः स्वयम् ।
कैवल्यमुक्तिदः सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ।६।
कैवल्याख्या पञ्चमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् ।
तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ।७।

ऋषियों ने कहा—आपने जो मुक्ति का होना बतलाया है,उसमें क्या हुआ करता है और मुक्तिपाने पर क्या दशा होजातीहै-यह सब कृपाकर हमको बताइये ।१। सूतजीने कहा-मोक्ष चार तरहकी होती है । वह मोक्ष साँसारिक क्लेश,पीड़ाकी हर्त्ता होती है और पूर्णआनन्दप्रिय है । मैं उसका स्वरूप आपको बतलारहा हूँ ।२। चारों प्रकार की मुक्तियोंके नाम—सारूप्य, सालोक्य सान्निध्य और सायुज्य हैं जोकि शिवके क्रमसे प्राप्तहुआ करती हैं ।३।हे मुनिश्रेष्ठो! ब्रह्मा और विष्णुआदि वेदधर्म-अर्थ और काम इन तीन पदार्थोंके वर्गको ही दे सकते है मुक्ति को नहीं । मोक्ष परम पुरुषार्थको देने वाले तो केवल एकमहेश्वरही हैं ।४। ब्रह्मादिकदेव तो तीनोंगुणोंके स्वामी हैं और भगवान् तीनोंगुणोंसे परे हैं तथा जो निर्विकारी परब्रह्महैं वे चतुर्थ हैं जो प्रकृतिसे भी परे हैं ।५। वे ज्ञान स्वरूपी महानदेव अविनाशी, साक्षी ज्ञानसे जानने योग्य, अद्वैत,कैवल्य मुक्तिके दाता और धर्मादि त्रिवर्गके भी देनेवाले हैं ।६। हे ऋषिश्रेष्ठो ! यह पाँचवीं "कैवल्य" नाम वाली मुक्ति होती है जो सभीप्रकार के मनुष्योंको दुर्लभ हुआकरती है । अब हम उसके पूरे लक्षण बताते हैं उन्हें आप लोग श्रवण करें ।।१४।।

उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् ।
यस्मिश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।८।
तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ।
सकलं निष्फलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ।।९
विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा ।
कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ।।१०

शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः ।
तत्पूर्वैश्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि ॥११
सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसञ्ज्ञितम् ।
निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः ॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च ।
न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च ॥१३
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसञ्ज्ञकम् ॥

जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है और जिसके द्वारा उस समस्त जगत् का पालन-पोषण होता है तथा जिसमहान् मेंजाकर इसजगत्कालय होता है एवं जिसशक्तिने इस सबका पूर्णविस्तारकिया है, हे मुनिगण ! वे शिवरूप कहे जाते हैं। वेदने उनको कलाओंसेपूर्ण तथा कलाओंसेरहित दो प्रकारका वर्णनकिया है। ८-९। वह ऐसा विलक्षणस्वरूप है जिसकाज्ञान ब्रह्मा विष्णु कुमार चतुष्टय और देवर्षि नारदजीको भी नहीं है।१०। यही नहीं किन्तु उसे व्यासपुत्र शुकदेवमुनि, अन्यमहामुनिश्वर,समस्तदेवगण और वेद-शास्त्र आदि किसीनेभी नहीं जानपाया है।११। यहसत्य,ज्ञान, अनन्त, सत्-चित् आनन्दस्वरूप है तथा बिना उपाधिवाला,निर्गुण,अव्यय,शुद्ध और निरञ्जन है।१२। वह परमात्म तत्व रक्त,श्वेत,पीत और नीलनहीं हैं और ह्रस्व,दीर्घ,स्थूल और सूक्ष्मभी नहीं होता है।१३। जहाँ मनके सहित वाणी की पहुँच नहीं होती वही शिवसंज्ञावाला परब्रह्म कहा जाता है।१४।

आकाशं व्यापकं यद्वत्तथैव व्यापकं त्विदम् ।
मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥१५
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम् ।
भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥१६
ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् ।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्तयर्थमपि सत्तमाः ॥१७
शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः ।

भक्त्यैव ब्रह्वः सिद्धां मुक्ति प्रायुः परां मुदा ॥१८
ज्ञानमाता शम्भुभक्तिर्मुक्तिप्रदा सदा ।
सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुरलक्षणा ॥१९
सा भक्तिर्विविधा ज्ञेया सगुणा द्विजाः ।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा सा स्मृता परा ॥२०
नैष्ठिक्यनैष्टिकी भेदाद् द्विविधैव हि कीर्तिता ।
षड् विधा नैष्टिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता ।२१

यह परमब्रह्म आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है और मायासे परे द्वन्द्व-रहित और मत्सरता से हीन यह परम आत्मतत्व होता है ।१५। हे द्विज-गण ! इस संसार में भगवान् शिवके ज्ञान का उदय हो जाने पर अथवा भक्ति-भावसे शिवकाभजन करनेसे या सत्पुरुषों जैसी सूक्ष्म मतिसे उनकी प्राप्ति हुआ करती है ।१३। हे मुनिश्रेष्ठो ! इस संसारमें ज्ञानका प्राप्त कर लेना अतिकठिन है और भजनोपासना करना सुगम बताया गया है। इस-लिये मुक्तिपानेके लिए शिवका भजन ही करनाचाहिए ।१७। भगवान्शिव भजनके अधीन रहा करते हैं। वे ज्ञानकी आत्मा तथा मोक्षके दाता पर पुरुष हैं। अनेक सिद्ध भक्ति के द्वारा ही सानन्द परम मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ।१८। महेश्वरकी भक्तिको ज्ञान उत्पन्न करने वाली जननी और नित्य मुक्ति एव भोगदात्री कहा जाता है। जिस परम प्रसाद से वह सुलभ हुआ करती है वह सत्य प्रेमके अहङ्कारवाले लक्षणयुक्त बताई गई है ।१९। हे द्विजगण ! वह भक्ति निर्गुण तथा सगुण आदिके भेद से बहुत प्रकार की होती है। इनमें जो वैधी और स्वाभाविक हो वही श्रेष्ठ और अधिक समझनी चाहिए ।२०। फिरभी वह नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो तरहकी होतो है। इनमें अनैष्ठिकी तो एकही प्रकारकी होती है किन्तु नैष्ठिकी भक्ति छै प्रकारकी होती है ।२१।

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ।
तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते ॥२२
ते नवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः ।

सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ।२३
भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शम्भुना वर्णिते द्विजाः ।
तस्माद् भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् ।२४
विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः ।
शम्भुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ।२५
तस्माद् भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः ।
तथैव निखिलं सिद्धं भविष्यवि न संशयः ।२६
इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया ।
तच्छ्रुत्वा सर्वपातेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।२७

इसमें भी शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् लोग विहिता और अविहिता इन भेदों वाली उसे अनेक तरहकी बतलाते हैं इन दोनोंके भेद-प्रभेद करने से बहुतसे प्रकारकी हो जाती हैं, जिसके विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।२२। ये दोनों प्रकारकी भक्ति श्रवण, कीर्तन अर्चनादि के भेदों से नौ नौ अङ्गोंवाली होती हैं । ये सब शिवकी प्रसन्नताकेबिना प्राप्तकरना अत्यन्त कठिन है । केवल शिवके प्रसादसे ही इनका पाना सुगम होता है ।२३। हे द्विजो ! शिवने वर्णनकरके बतलाया हैकि भक्ति औरज्ञान आपस में भिन्न नहीं होते हैं । अतएव भक्ति तथा ज्ञान वालों को नित्य सुख की प्राप्ति होती है । इन दोनोंमें भेदका मानना उचित नहीं हैं ।२४। हे विप्र-गण ! जोभक्तिका विरोध करने वाला होता है, उसे विशेषज्ञान कभी नहीं होता है । शिवकीभक्तिसे ज्ञानकाउदय शीघ्रही होजाता है ।२५। हे मुनी-श्वरो ! इस कारण से भगवान् महेश्वर की भक्ति सबको अवश्य ही करनी चाहिए । उसीके करनेसे सभीकुछ सिद्धहोता है । इसमें कुछभी सन्देहनहीं है ।२६। आपने जोकुछभी मुझसे पूछा है, वहसभी मैंने वर्णनकरके आपको सुना दिया है । इसके श्रवणकरनेसे मनुष्योंके समस्तपापोंका क्षयहोता है, यह सुनिश्चित बात है ।२७।

शिवका सगुण निर्गुण स्वरूप

शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्चकः ।
एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ।।१

यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः ।
तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदांतिनो विदुः ॥२
तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता ।
ताभ्यां तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधाः ॥३
पञ्चक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा ।
व्याप्तं च सकलं ह्येतत्तज्जलं विश्वतो गतम् ॥४
संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरि सः वै ।
नारायणेति विख्यातः प्रकृतिर्नारायणी मता ॥५
तन्नाभिकमले यो व जातः स च पितामहः ।
तेनैव तपसा दृष्टः स वै विष्णुरुद हृतः ॥६
उभयोर्वामिशमने यद्रूपदर्शित बुधाः ।
महादेवेति विख्यातं निर्गुणं शिवेत हि ॥७

ऋषियोंने कहा—शिव कौन हैं, विष्णु कौन हैं और रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं? इनसबमें निर्गुण कौन हैं। हमारेमनमें इनके विषयमें बहुत बड़ा सन्देहरहता है,सो आप कृपाकरके यहसब बतलाकर संशयको दूरकरें ।१। सूतजी ने कहा-इस विश्वकी सृष्टिके आरम्भ जो निर्गुण निर्विकार परमात्मासे उत्पन्न हुल हैं उन्हेंही वेद वेदान्तके ज्ञाताओंने 'शिव'इस नाम वाला बतलाया है ।२। हे ज्ञानियो ! उन्हीं शिवसे पुरुषकेसहित प्रकृतिका उदभव हुआ है । फिर वहाँ पर उन दोनों ने मूल में स्थित होकर जल में तपस्याकी है ।३। वही 'पञ्चकोसी' इस नामसे विख्यात् होने वाली काशी है जो सबको अत्यन्तप्रिय है । उसका जल सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होगया है ।४। यह जानकर विष्णु अपनी मायाकरके उसी जलमें शयनकर गये और वे हरि'नारायण'के नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी'नामसे विख्यात हुई ।५। उनकी नाभिमें उत्पन्न कमलसे उद्भूत होने वालेका नाम ब्रह्मा पड़ाऔर उन ब्रह्माजीने अपनी तपस्यामें जिनके दर्शन कियेवे विष्णु हैं ।६। हे पण्डितो ! निर्गुण स्वरूपवाले शिवने ब्रह्मा और विष्णु के मध्यमें उठे हुए पारस्परिक विवाद को शान्त करनेके लिए जिस स्वरूप का प्रदर्शन कराया वही महादेव नामसे विख्यात हुए हैं ।७।

तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कपालतः ।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ।८
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपवानभूत् ।
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः ।९
शिवे त्रिगुणसम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि ।
वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तन्भूषणे यथा ।१०
समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ ।
समानाखिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ ।११
सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपराक्रमः ।
उत्पन्नो भक्तकार्यार्थी हरिब्रह्मसहायकृत ।१२
अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतो लयम् ।
यांति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते ।१३
ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे ।
इमान् रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम् ।१४

उन्होंने कहा था मैं शम्भु विधाताके मस्तकसे प्रकटहोऊंगा उससमय लोकोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले वे ही शंभु 'रुद्र'-इस नामसे प्रसिद्ध हुए ।८। अपने भक्तोंपर अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव स्वयं रूपसे रहित होतेहुए भी सबके ध्यानमें आनेके लिये रूपवान् हुए ।९०। माया के तीनों गुणों से रहितहोकर स्थितशिवमें तथा सगुण रुद्रमें वस्तुतः कुछभी भेदनहीं है जिस प्रकार स्वर्णमें और स्वर्ण से निर्मित भूषणमें कुछभी अन्तर नहीं होता है ।१०। ये दोनोंही समान स्वरूप और समानकर्मवाले अपनेभक्तोंको समान रूपसे ही गति देने वाले हैं और सबके द्वारा तुल्य भावसे ही सेवन करनेके योग्य हैं तथा ये दोनों अनेकप्रकारकी लीलायें करनेवाले हैं ।११। अत्यन्त पराक्रम वाले रुद्र सबतरहसे शिवकेही स्वरूप हैं । ये ब्रह्मा और विष्णुकी सहायताकरनेवाले अपने भक्तोंकेलिये उनकाकार्य पूराकरनेकोही अवतीर्ण हुए हैं ।१२। संसार में जोभी उत्पन्न हुए हैं वे सभी क्रमके अनुसार लय को प्राप्त होते हैं । उस तरह रुद्रका लय कभी नहीं होता वे केवल शिवके स्वरूप ही लय होते हैं ।१३। वे सब सामान्य हुए रुद्रमेंमिलकर लय होते

हैं, परन्तु वह रुद्र विष्णु आदिमें मिलकर कभी लयकोप्राप्त नहीं होते हैं इस विषयमें शास्त्र यही आज्ञा देता है ।१४।

सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कंचिद् भजेन्न हि ।
स्वात्मना भक्तवात्सल्याद् भजत्येव कदाचन ।१५
अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिस्ते लीनतां गताः ।
तेनैव रुद्रं प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ।१६
रुद्रभक्तास्तु ये केचितत्क्षणं शिवतां गताः ।
अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ।१७
अज्ञानं विविधं ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि ।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजा ।१८
ब्रह्मादितृणपर्यन्त यत्किंचिद् दृश्यते त्विह
तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना ।१९
सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ।
सृष्टेरन्तो शिवः प्रोक्तः सर्वशून्ये सदाशिवः ।२०।
तस्साच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वरा ।
स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्वाद् द्विधापि सः ।२१।

ये सब रुद्रको भजते हैं परन्तु रुद्र किसीको भी नहीं भजते हैं । कभी-कभी अपने भक्तजनपर दया करनेके कारणसे अपने आपकोही भजा करते हैं ।१५। हे विद्वद्गण ! जोसर्वदा अन्यदेवोंका भजनकियाकरते हैं वे अन्त में उसीसे लयभी होते हैं और इसतरह बहुतसमयके पश्चात् रुद्रकी प्राप्ति कर पाते हैं ।१६। किन्तु जो रुद्रकोही भक्ति भावसे भजते हैं, वे उसी समय शिवकेभावको प्राप्तकरलिया करते हैं । उन रुद्रदेवकी किसीभी अन्यदेवता की आवश्यकता नहीं हुआ करती है—यह सनातनी अर्थात् सदा चले आने वालीश्रुति है ।१७। हे द्विजगण ! संसारमेंअज्ञान तो बहुत तरह का होता है,किन्तु विज्ञान अनेक प्रकारका कभीनहीं होता । अबउसी के भेद तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ । आप उसे श्रवण करो ।१८। इस लोक में ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जोकुछभी दिखलाई देता है वहसब शिवकाही स्वरूप है ।

इसमें विविधभाँतिकी कल्पनाकरना मिथ्या एवं व्यर्थही है ।१९। सृष्टिकेपूर्व शिव हैं तथा इस संसारको रचनाके मध्यकालमें भी शिव हैं और सृष्टि के अन्तमेंभी शिवही रहते हैं । जब सर्वशून्य होता है तबभी सदाशिव विद्यमान रहते हैं ।२० हे मुनीश्वरो ! इसरीतिसे भगवान्‌शिव चारगुणों वाले हैं । वे दोप्रकारके स्वरूपमें स्थित होते हुए भी सबप्रकारकी शक्तिसे पूर्णता रखनेके कारण सगुणही हैं–ऐसा हो समझना चाहिए ।२१।

येनैव विष्णवे दत्ताः सर्वे वेदाः सनातनाः ।
वर्णा माता ह्यनेकाश्च ध्यान स्वस्य च पूजनम् । २२
ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी ।
वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छम्भुरुदाहृतः ॥२३
स एवं शङ्करः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः ।
कर्त्ता भर्त्ता च हर्त्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ॥२२
अन्येषां कालमानं च कालस्य कलनाः न हि ।
महाकालः स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः ॥२५
तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा काली प्रचुक्षते ।
सर्वं ताभ्यां ततः प्राप्तमिच्छया सत्यलीलया ॥२६
न तस्योत्पादकः कश्चिद् भर्त्ता न तस्य हि ।
स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूतच्युतादयः ॥२७
स्वयं च कारण कार्यं स्वस्य नैव कदाचन ।
एकोऽप्यनेकतां यतोऽप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् ॥२८

जिनने भगवान् विष्णुको समस्त सनातन वेदोंका उपदेश, अनेक वर्ण वाला तथा मात्राओंसे युक्त अपना ध्यान एवं अर्चन बताया है, इससे शिव समस्त विद्याओंके स्वामी,वेदोंकेनिर्माता और वेदोंके अधीश्वर कहे हैं ।२२-२३। वे साक्षात् शिवही सबपर दयाकरने वाले, सबके उत्पादक, पालनकर्त्ता और विनाश करनेवाले साक्षी एवं निर्गुण हैं ।२४। इस सृष्टिमें सबकेसमय का प्रमाणहोता है, किन्तु यहकाल ऐसा है जिसकीकोई कलनाही नहींहोती है । वह स्वयं महाकालीके सेवित साक्षात् महाकाल हैं ।२५। ब्राह्मण लोग

रुद्र तथा महाकालीकोही ऐसा कहाकरते हैं। उन्होंने (दोनोंने) अपनी सत्य लीलाके सहित इच्छासे सभीकुछ प्राप्तकिया है ।२६। इनका कोई भी अन्य उत्पादक, पालक और विनाशकरनेवाला नहींहोता है किन्तु वे स्वयंही सबके कारण हैं और विष्णुआदि अन्य समस्तदेवता कार्यभूत हैं।२७।भगवान्शिव तो स्वयं कारण और कार्यस्वरूप हैं। इनका अन्यकोईभी कारण नहींहोता है। वे एक होते हुएभी अनेकस्वरू धारणकरलेते हैं तथा अनेक होकरभी फिर एकही स्वरूपमें स्थित होजाते हैं ॥२८॥

एकं बीजं बहिर्भूत्वा पु बींजं च जायते ।
लहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ।२९
एतत्परं शिवज्ञानं तत्वतस्तदुदाहृतम् ।
जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः ॥३०
ज्ञानं सलक्षणं ब्रूहि यज्ज्ञात्वा शिवतां व्रजेत् ।
कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्ववा शिव एव च ॥३१
एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः ।
स्मृत्वा शिवपदाम्भाजं मुनींस्तानब्रवीहचः ॥३२

एक बीज फलसे बाहिर होकर फिर वह बीज होता है। इसी तरह बहुत होनेपर भी सभीकुछ वस्तु रूपसे स्वयं शिवके रूप वाले महेश्वर ही हैं ।२९। हे ऋषीश्व वृन्द ! यह शिवका ज्ञान अत्यन्त श्रेष्ठ है । इसे मैंने तुम्हारेसामने यथार्थरूपसे बतादिया है । इस भगवान्शिवके ज्ञानको ज्ञानी हीसमझता या जानता है अन्यकोई साधारणव्यक्ति इसेनहीं जानसकता है ।३०। मुनियोंने कहा—इस शिव ज्ञानके ठीक लक्षण और स्वरूपको भली-भाँति बताइये जिसको प्राप्तकर शिवका स्वरूप प्राप्त होता है ।अब आप खुलासाकरके समझाइयेकि किसतरह वे शिव सभीकुछ हैं और किसप्रकार से संसार की सभी वस्तुयें शिव स्वरूप हैं ? ।३१। व्यासजी ने कहा—यह सुनकर पौराणिक विद्वानोंमें श्रेष्ठ सूतजी भगवान्शिवके चरण कमलों का स्मरणकरके उन मुनियोंसे कहने लगे ।३२।

ज्ञाननिरूपण और शिव-विज्ञान

श्रूयतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं तथा श्रुतम् ।
कथयामि महागुह्यं परमुक्तिस्वरूपकम् ।१
श्री नारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च ।
एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम् ।२
इति ज्ञानं सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत् ।
शिवः सर्वमयो ज्ञेयः सर्वज्ञेन विपाश्चता ।३
आब्रह्मतृणपर्यन्त यत्किंचिद् दृश्यते जगद् ।
तत्सर्वं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते ।४
यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम् ।
सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन ।५
रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतः स्थितः ।
न तत्र च प्रविष्टोऽसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान् ।६
यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंबता ।
वास्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् ।७

सूतजी ने कहा-हे ऋषिवृन्द ! शिव का ज्ञान अत्यन्त गोपनीय और मोक्षपद स्वरूपवाला है । मैंने इसे जितनाभी सुना एवं समझा वह तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, आप सब सावधान होकर सुनो ।१। शौनक,स्वामि कार्तिके, नारद, वेदव्यासजी और कपिलदेव, इन सबके समक्षमें उन्होंने शास्त्रोंसे निश्चय करके कहा है ।२। यह समस्त चराचर जगत् शिवमयही है ऐसा ज्ञान सदा रखना चाहिए जो सर्वज्ञाता विद्वान् है उसे शिवको भी सर्व जगन्मय ही जानना चाहिए ।३। परब्रह्मके स्वरूपसे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछभी इस संसारका स्वरूप दिखाईदेता है वह समस्त शिवही का एक रूप है अर्थात् शिवही हैं । इस तरह वे शिव कहलाते हैं ।४। जबभी कभी उनके हृदयमें रचनाकरनेकी इच्छा उत्पन्न होतीहै तभी इस समस्त विश्व का निर्माण कर दिया करते हैं । वे स्वयं सबको खूब अच्छी तरह जानते हैं किन्तु उनको कोईभी नहीं जानपाता है ।५। इस सम्पूर्ण जगत्की रचना

करके स्वयं इसमें प्रविष्टहोते हुयेभी सबसेपृथक् स्थितरहाकरते हैं। वे इसमें प्रविष्ट नहीं होते हैं और न कभी उनका लयही होता है वेतो केवल ज्ञानके स्वरूप वाले हैं ।६। जिस तरह जलमें अग्नि प्रभृति के तेजकी परछाईका भान ऐसाही होता हैकि यह उसके अन्दर विद्यमान है किन्तु वास्तवमेंजल में उसका प्रबेश सर्वथा नहीं होता है,उसीतरह इसजगत्में साक्षात् शिवका भान मात्र ही होता है और वे इसमें लिप्त नहीं होते हैं ।७।

वस्तुतस्तु स्वयं सर्वः क्रमो हि भासते शुभः ।
अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयं पुनः ।८
दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते ।
पर वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते ।९
स्वस्याप्यशस्य जीवोंशो ह्यविद्यामोहितोऽवशः ।
अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः ।१०
सर्वं व्याप्य शिवः साक्षाद् व्यापाकः सर्वजन्तुषु ।
चेतना चेतनेशोऽपि सर्वत्र शङ्करः स्वयम् ।११
उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थी विचक्षणः ।
वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत् ।१२
यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्टे काष्टे च तिष्ठति ।
यो वै मन्थति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम् ।१३
भक्त्यादिसाधनानीह यः कपोति विचक्षणः ।
स वै पश्यत्यवश्यं हि तं शिवं नात्र संशयः ।१४

अर्थात् रूपसे वह शुभ परब्रह्म वेदाक्रमणकरके सबको भासते हैं।बुद्धि के भ्रमको ही अज्ञान कहाजाता है अन्य कुछ भी नहीं है ।८। समस्त दर्शन शास्त्रोंमें मतिका भेदस्पष्ट दिखलाई दिया करता है क्योंकि प्रत्येक सिद्धान्त भिन्न स्वरूप वाले होते हैं,किन्तु वेदान्ती लोग नित्य परमेश्वरको अद्वैतही कहा करते हैं ।९। अपने ही अंशके स्वरूपमें स्थित् यह जीवात्मा अविद्यासे मोहितहोकर 'मैं और तू'-ऐसा समझता है,परन्तु शिव उसअविद्यासे सर्वथा रहित हैं ।१०। सबमेंव्यापक साक्षात् भगवान्शिव सबकोव्याप्तकरके समस्त

जीवोंमें स्थितरहाकरते हैं और समस्तचराचरके प्रभुशिव साक्षात् कल्याण के करनेवाले होते हैं।११। जो बुद्धिमान् मानव शिवके दर्शनप्राप्त करनेके लिये उपाय करता है वह वेदान्तके मार्गका आश्रय ग्रहण करके ही उनके दर्शन प्राप्त किया करता है।१२। जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में अग्नि व्याप्त होकरही स्थित रहाकरती है किन्तु जो कोई उस काष्ठका मन्थन करता है वही उसमें अग्निके दर्शनका फल प्राप्त कर पाता है।१३। इसी प्रकारजो विद्वान्मानव भक्तिआदिके साधनोंसे आगे बढ़ता है वह अवश्यही उनशिव का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।१४।

शिवः शिवः शिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन।
भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शंकरः सदाः।१५
यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः।
उपाधितो हि नानात्वं लभते शङ्करस्थता।१६
कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते।
केवलं भ्रान्तिबुद्धयव तदभावे स नश्यति।१७
तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत्।
अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च न नश्यति।१८
ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतिर्मता।
तन्निवृतौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा।१९
सर्व शिवः शिवः सर्वो नास्ति भेदश्च कश्चन।
कथं च विविध पश्यत्येकत्वं च कथं पुनः।२०
तथैक चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाधिभं जनैः।
जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः।२१

शिव-भक्तकी भावना ऐसीही होनी चाहिए कि सर्वत्र शिवही हैं शिव के अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछभी नहीं हैं,भ्रान्तिवश वहीशिव यहाँ नाना स्वरूप में भासमान होते हैं जिस तरह मिट्टी, सागर और सुवर्ण विभिन्न उपाधियोंके कारण अनेक रूपमें दिखलाई दिया करते हैं वैसेहीशिव उपाधियोंके कारण नाना स्वरूप में रहते हैं।१५-१६। वास्तवमें विचार करके

देखा जावे तो यहाँ कारण और कार्यमें कुछभी भेद नहीं होता हैं। यहभेद जो प्रतीत होता है वह केवल अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिके होनेसे ही होता है। जब यह बुद्धिकी भ्रांति स्वरूपअज्ञान न नष्ट होजाता है तो यह अन्तरफिर नहीं दिखाईदेता है और दूर हो जाता है।१७। कारणस्वरूप बीजसेहीवृक्ष अनेकरूपताका प्राप्तक्रिया करता है किन्तु अन्तमें वहवृक्ष तो नष्ट होजाता है और बीजही शेष रहता है।१८।यहां ज्ञान सम्पन्न जीवात्मा बीजस्वरूप है और वह समस्त प्रकृति स्वरूपिणी विकृति वृक्षके तुल्य है। फिर भी उसकी निवृत्तिमें ज्ञानीही होता है इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।१९। यह समस्त जगत् शिव है तथा शिवही में सम्पूर्ण जगत् है। इन दोनोंमें वस्तुतः कोई भी भेद नहीं होता है। यह कैसे अनेक स्वरूप में दिखाईदेता है और कैसे फिर एकता दिखलाई दिया करतीहै-इसे समझाते हैं।२०। जिस प्रकार एक ही सूर्य के स्वरूप जलमें मनुष्यों को अनेक सूर्य दिखाई देते हैं उसी तरहसे वह शिव एक होते हुए भी भ्रान्तिके कारणही अनेक रूप में भासमान हुआ करते हैं।२१।

सर्वत्र व्यापकश्चैव स्वर्शत्वं न विबध्यते।
तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै।२२
साहंकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शङ्करः स्वयम्।
जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्विप्तः शङ्करो महान्।२३
यथैकं च सुवर्णादि मिलिपं रजतादिना।
अल्पमूल्यं प्रजायेत तथाजीवोऽप्ब्रह्युतः।२४
यथैव हि सुवर्णादि क्षारादेः शोधितं शुभम्।
पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जोवोऽपि संस्कृतेः।२५
प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः।
शिवबुद्धया करोत्युच्चैःपूजनं स्मरणादिकम्।२६
तद्बुद्धया देहतो याति सर्वपापादिको मलः।
तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा।२७
तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान्।
शङ्करस्य प्रसादेन याति शङ्करतां पुनः।२८

जिसतरह आकाश व्यापकहोकर भी किसीके स्पर्शकरनेमें नहीं आता है, उसीप्रकारसे वह सर्वव्यापक परमात्माभी कहीं बद्ध नहीं होता है।२२। यह जीवात्मा अहङ्कारसेयुक्त है और शिव स्वयं उस अहङ्कारसे रहित हैं। जीवएकतुच्छ और कृत शुभाशुभ कर्मोंका भोगनेवाला है किन्तु शङ्करपरम महान् और निरन्तर नितात निर्लिप्त है।३। शुद्धजीवभी अहङ्कारसे युक्त होनेकेकारण तुच्छबनजाता है जैसे सुवर्ण मूल्यवान् होतेहुएभी चाँदी आदि के मिल जानेपर स्वल्प मूल्य वाला बनजाता है।२४। तेजाब और अग्नि एवं क्षार आदिसे शोधित किए जानेपर जिसतरह सुवर्णकी शुद्धि होजाती और पूर्ववत् समुचित मूल्य वाला बनजाता है, उसी भाँति संस्कारोंके द्वारा यह अहकारी जीवात्माभी शुद्धस्वरूप वाला होजाया करता है।२५। जीव का कर्तव्य है कि सर्वप्रथम किसीसुयोग्य श्रेष्ठगुरुसे ज्ञानकीदीक्षा प्राप्तकरे, फिर परम भक्ति के भाव से शिव बुद्धि से उनका पूजन तथा उच्च स्वरसे उनके नामका स्मरण करना चाहिए।२६। इस प्रकार की बुद्धिबना लेनेपर इस देहके समस्त पाप एवं मलदूर होजाया करते हैं और साराअज्ञान नष्ट होकर ज्ञानउत्पन्न होता है।२७। जबयह जीवात्मा ज्ञानसम्पन्न होजाता है और अहंकारसे छूटजाता है तो उसकीबुद्धि अत्यन्तनिर्मल होजाती है तथा शिवके प्रसादसे शिवके स्वरूप को प्राप्त कर लिया करता है।२८।

यथाऽदर्शस्वरूपे च स्वीयं रूपं प्रदृश्यते।
तथा सर्वत्रगं शम्भुं पश्यतीति सुनिश्चितम्।२९।
जीवन्मुक्तः स एवासौ देहः शीर्णः शिवे मिलेत्।
प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः।३०।
शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं नहि।
द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः।३१
आत्मयोगेन तत्वानामथवा च विवेकतः।
यथा शरीरतो यास्याच्छरीरं मुक्तिमिच्छता।३२
सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च।
ज्ञानमूलं तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिः शिवस्य च।३३

भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवण तथा ।
श्रयणाच्चापि सत्सङ्गः सत्सङ्गाच्च गुरुबुधः ।३४
सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् ।
इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शम्भुमेव सदा भजेत् ।३५

जिस तरह दर्पण में अपना स्वरूप दिखाई देता है उसी तरह शिव को सर्वत्र व्यापक जानते हैं, यह निश्चय ही समझ लेना चाहिये ।२९। वह जीवात्मा फिर मुक्तहोकर देहसे रहितहोकर शिवकेही स्वरूपमें जाकरमिल जाया करता है । यह देह प्रारब्धके वशीभूत होनेके कारणही मिलाकरता है किन्तु ज्ञानीका शरीरके रहते हुएभी उससे रहितही मानागया है ।३०। ज्ञानवान्‌जीव वही है जो अपनी प्रियवस्तुसे परमहर्षित नहीं होता है और किसीभी अप्रियवस्तु या दशा में शोकयाक्रोध नहींकरता है और सुख तथा दुःखमें जो समान ही भावना रखता है ३१। मुक्तिका इच्छुक पुरुष अपने आत्माके योगसे या तत्वोंके विचारसे अपने शरीरसे शरीरका त्यागकिया करता है ।३२। जो सदाशिवमें लीनहोजाता है,वह समस्त व्यथापीड़ाओंसे छुटकारा पाकर ज्ञानके मूल स्वरूप अध्यात्मकी प्राप्ति करता है और फिर उसे शिवकी अनपायिनी भक्ति मिलती है ।३३। भक्ति से प्रेम उत्पन्नहोता है, प्रेमसे श्रवण और श्रवण से सत्सङ्ग का लाभ होता है और सत्सङ्गसे संसारमें विद्वान् उद्धारक गुरुदेव की प्राप्ति हुआकरती है ।३४। गुरुसे जब ज्ञानप्राप्त होता हैं तो निश्चयही मुक्ति हो जाया करती है । जो नित्य निरन्तर शिव की उपासना करता है वह इसी रीति से ज्ञान सम्पन्न हो जाया करता है ।३५।

अन्याया च भक्त्या वै युतः शम्भु भजेत्पुनः ।
अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा ।३६
अतोधिको न देवोस्ति मुक्तिप्राप्त्यौ च शङ्करात् ।
शरणं प्राप्य यञ्चैव संसाराद्विनिवर्तते ।६७
इति मे विविधं वाक्यमृसीणं च समागतैः ।
निश्चित्य कथितं विप्रा धिता धार्यं प्रयत्नतः ।३८

प्रथमं वष्णवे दत्तं शंभुना लिंगसम्मुखे ।
विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु ।३९
नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः ।
व्यासाय नारदेनोक्तं तेन मह्यं कृपालुना ।४०
मया चैव भवद्भयश्च भविद्भर्लोकहेतवे ।
स्थापनीय प्रयत्नेन शिवाप्राप्तिकरं च तत् ।४१
इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।४२

जो मानव अत्यन्त भक्ति की भावना से शिवका भजन करता है वह निश्चयही अन्तमें मुक्तिके परमपदकी प्राप्तिकिया करता है ।३६। भगवान् शङ्कर से अधिक अन्य कोई भी देवता नहीं जिसकी शरण में जाकर यह जीवात्मा संसार के समस्तबन्धनोंको तोड़कर विमुक्त हो जाता है ।३७। हे ब्राह्मणो ! मैंने ऋषियों के समागम से ही यह ज्ञान प्राप्त होने वाले अनेक वाक्य पूर्ण निश्चय करके तुमसे कहे हैं। सब आपको यत्नपूर्वक अपनी बुद्धिमें धारण करने चाहिए ।३८। सर्वप्रथमभगवान्शिवने अपने ज्योति लिङ्गके समक्षमें भगवान् बिष्णुदेवको यहज्ञान प्रदानकियाथा। इसके अनन्तर विष्णुने ब्रह्माजी को इसका उपदेश दिया और ब्रह्माने सनकादिक ऋषियों को इस ज्ञान का उपदेश दिया था ।३९। सनकादिकने इसी दिव्य ज्ञानका उपदेश नारदजीको दिया था। देवर्षि नारद ने व्यासजीको और वेदव्यास महर्षि ने मुझे यह ज्ञान प्रदान किया है ।४०। अब मैंने आपकी उत्कट जिज्ञासा जानकर इसज्ञानको आपको दिया है। आप सबको संसारके हित के लिए इस ज्ञान को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये। यह ज्ञान शिवके चरणों की प्राप्ति करा देने वाला है ।४१। हे मुनीश्वरो ! आपने जिस प्रकारसे मुझसे पूछा वह मैंने भली भाँति सभी आपको बतला दिया है। आप इस ज्ञान को यत्नपूर्वक छिपाकर रखें। अब आप मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ।४२।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय आनन्द परमं गताः ।

हर्षगद्‌गदया वाचा नत्वा तुष्टुवुर्मुहुर्मुदः ।४३
व्यास नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ।
श्रावित नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तम् ।४४
अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव ।
सन्तुष्टाः शिवसज्ज्ञानं प्राप्यस्ततो विमुक्तिदम्।४५
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ।
अभक्ताय महेशस्य न चाशुश्रूषवे द्विजाः ।४६
इतिहासपुराणानि वेदांछास्त्राणि चासकृत् ।
विचार्योद्धृतत्सार मह्यं व्यासेन भाषितम् ।४७
एतच्छुत्वा ह्येकवारं भवेपाप हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम् ।४८
पुनःश्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुतेः पुनः ।
तस्मात्पुनः पुनः श्राव्यं भुक्ति मुक्तिफलेप्सुभिः ।४९

व्यासजीने कहा-यह सुनकर उन सब ऋषियों को बहुतही प्रसन्नताहुई और हर्षातिरेकसे गद्‌गदवाणीसे नमस्कारपूर्वक बारम्बार स्तुति करने लगे ।४३।ऋषियोंने कहा हे व्यासमहर्षिके शिष्य सूतजी ! तुम शिवके उपासकों में परमश्रेष्ठ एवं धन्यहो । आपने बड़ाभारी अनुग्रह करके हम सबको परम तत्वरूपी शिव सम्बन्धी ज्ञानका श्रवण कराया है ।४४। आपके अनुग्रह से हमारे मनकीभ्रान्ति एकदम हटगई और आपके सुखसे मुक्तिदायक शिवका ज्ञानपाकर हम लोग पूर्ण सन्तुष्ट हुए हैं ।४५। सूतजीने कहा-हे द्विजवरो ! इस तत्व तथा इतिहास को आप लोग किसी नास्तिक-शिव-भक्ति रहित श्रद्धाहीन—शठ और जो सुनकर अनुराग नहीं रखता है उससे कभी मत कहना । यह परम गोप्य है ।४६। यह सारा वृतान्त अनेक इतिहास-पुराण— शास्त्र और वेदोंका बार-बार मनन करके उनके सारांश स्वरूप व्यासजी ने मुझसे कहा है ।४७। इसका एक ही बार श्रवण करने से समस्तपाप भस्मीभूत होज ते हैं । यह अभक्तको भक्तिदेत है और जोभक्त हैं उनकी भक्तिको विशेष बढ़ा देता है ।४८। इनके दोबार श्रवण करने से

परम श्रेष्ठ भक्तिकी प्राप्ति होती है और इसके भी आगे सुनने से मोक्ष पद मिल जाता है। अतएव भोग-मोक्ष के इच्छुक जीवों को इसका बार-बार श्रवण करना चाहिए।४६।

आवृत्तयः पञ्च मार्याः समुद्दिश्य फलं परम्।
तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यास्य वचनं त्विदम्।५०
न दुर्लभ हि तस्यैव येनेद श्रुतमुत्तमम्।
पञ्चकृत्वास्तदा वृत्या लभ्यते शिवदर्शनन्।५०
पुरातनाश्च राजानो विप्रा बैश्याश्च सत्तमाः।
इदं श्रुत्वा पञ्चकृत्वो धिया सिद्धि परां गता :।५२
प्रोष्यत्यद्यापि यश्चेद मानवो भक्तितत्परः।
विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्ति मुक्ति लभेच्च सः।५३
इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दसागताः।
समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात्।५४
नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः सन्तुष्टाश्छिन्नसंशया।५५
परस्परं च सन्तुष्टाः सूत ते च सुबुद्धयः।
शम्भुं देव पर मत्वा नमन्ति स्म भजन्ति च।५६

यदि किसी विशेष फल का उद्देश्य चित्तमें हो तो इसकी पाँच बार आवृत्ति अवश्यहीकरे। व्यासजीने कहा हैकि जो ऐसाकरते हैं उनकेउद्देश्य की सिद्धिके साथही उन्हें मुक्ति भी अवश्य मिलती है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है।५०। जिस किसी ने भी इसपरमउत्तम इतिहासको श्रवण किया है उसको कोईभी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। इसका पाँचवार पाठ करने से भगवान्शिवके दर्शनभी प्राप्त होजाते हैं।५१। प्राचीनकालमें अनेक राजा, ब्राह्मण तथा वैश्यलोग इसकी पाँचआवृत्ति इसी बुद्धिसे करलेने के पश्चात् परम सिद्धियों का लाभ उठा चुके हैं।५२। इस समय में भी जो मनुष्य भक्ति-भावमें तत्परहोकर इसका श्रवण करेगा वह शिव-विज्ञानको भुक्ति और मुक्तिको प्राप्त कर लेगा।।५३।। व्यासजी ने कहा सूतजी के ऐसे

वचन सुनकर ऋषियों को अत्यधिक आनन्द हुआ और बड़े आदर के साथ अनेक पूजोपचारोंसे सूतजी का वे अर्चन करने लगे ।५४। परमसन्तुष्ट और सन्देहरहितहोकर स्वस्तिवाचन करतेहुए नमस्कारों तथा आशीर्वादोंसे उन्हें बढ़ाने लगे ।५५। तबसे बुद्धिशाली वे ऋषिगण तथा सूतजी शिवको ही सर्वोपरि शिरोमणिदेव मानकर उन्हें नमस्कार करते हुए पूजने लगे ।५६।

एतच्छिवतसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् ।
भुक्ति मुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ।५७
इयं हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा ।
चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा ।५८
एतां यः श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ।
स भुक्त्वेहाखिलान्भोगान्नते परगतिं लभेत् ।५९

यह भगवान् शिवका विज्ञान शिवको अत्यधिक प्रसन्न करने वाला है भुक्ति एव मुक्तिका दायक तथा दिव्य भक्तिको बढ़ाने वाला है ।५७। यह अत्यन्त 'कोटि रुद्र' नाम वाली शिवपुराणकी संहिताका वर्णन मैंने किया जो महान् आनन्द की देने वाली है ।५८। जो मनुष्य सावधान चित्त से भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है वह नित्य ही समस्त भोगों का उपभोग कया करता हे और अन्त समय में परमगति कोप्राप्त होता है ।५९।



उमा--संहिता

सनत्कुमार का महापातक वर्णन

ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
भगवंस्तान्समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ।१
ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
ते समासेन कथ्यन्ते सावधानतया श्रृणु ।२
परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसाऽनिष्टचिंतनम् ।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम् ।३
अविबद्धप्रलापत्वमसत्य चाप्रिथं च यत् ।
परोक्षतश्च पैशुन्यं चतुर्द्धा कर्म वाचिकम् ।४
अभक्ष्यभक्षण हिंसा मिथ्याकार्यनिवेशनम् ।
परस्वानामुपादनं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ।५
इत्येतद् द्वादशविध कर्मप्रोक्तं त्रिसाधनम् ।
अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनंतकम् ।६
ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम् ।
सुमहत्पातक तेषां निरयार्णवगामिनाम् ।७

श्रीव्यासजीने कहा–हे भगवन् ! हे ब्राह्मपुत्र ! अब आप कृपाकर उन जीवोंका वर्णनकीजिये जो महापापी हैं और नरक गमनकरनेके अधिकारी होते हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं ।१। सनत्कुमारजी ने कहा जो जीवात्मा सर्वदा पापकर्मोंमें परायणहोकर महाघोरनरक के अधिकारी हैं उनका वर्णन मैं अति संक्षेप के साथ करता हूँ। आप सावधान होकर श्रवण करें ।२। मानसिक कर्म भी चार प्रकार का होता है। दूसरों के धन तथा स्त्रीके प्राप्त करनेकी इच्छा करना, अपने चित्तमें दूसरों का बुरा विचारना, काम-वासना विचार तथा अभिनिवश करना-ये चार मनके कर्म

कहे गये हैं ।३। इसी तरह चारही प्रकारका वाचिक कर्म भी होता है— असङ्गत सम्भाषण करना,असत्य तथा अप्रियबातें कहना, पीठपीछे चुगलखोरी करना-ये वाणीके कर्म हैं ।४। ऐसेही चार तरहके शारीरिक कर्म हैं-अमक्ष्यका भक्षण करना,हिंसा करना,झूठे कार्य करना और दूसरों का धन उड़ालेना-ये शरीरके कर्म कहेजाते हैं ।५। यहाँ तक शारीरिक,वाचिक और मानसिक बारहतरहका कर्म बतलाया है । इसकेआगे इनभेदोंके प्रभेद बतलाते हैं जिनकाकि अनन्त फल हुआकरता है ।६। जोमनुष्य इस संसार रूपी महान् अगाधसागरसे तारनेवाले महादेवकी निन्दाकरते हैं उनका यह महापाप नरकके समुन्द्रमें जानेके लायक होता है ।७।

ये शिवज्ञानवक्तारं निन्दन्ति च तपस्विनन् ।
गुरुन्पितृनथोन्मत्तास्ते यांति निरयार्णवम् ।८
शिवनिन्दा गुरोनिन्दा शिवज्ञानस्य दूषणम् ।
देवद्रव्यापहरणं द्विजद्रव्यविनाशम् ।९
हरन्ति ये च समूढ़ाः शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ।
महांति पातकान्याहुरनन्तफलदानि षट् ।१०
नाभिनन्दति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम् ।
न नभत्यर्चितं दृष्ट्वा शिवलिङ्गं स्तुवति न ।११
स्थानसंस्कापूजां च ये न कुर्वंति पर्वसु ।
विधिवद्धा गुरुणां च कर्मायागव्यवस्थिताः ।१२
यचेष्टचेष्टा निःशङ्काः सतिष्टन्ति रमति च ।
उपवारनिनिमुक्ताः शिव ग्रे गुरुसन्निधौ ।१२
ये त्यजति शिवा व र शिवभक्तान्द्विषन्ति च ।
असंपूज्य शिवज्ञान येऽधीयन्ते लिखन्ति च ।१४

जो महा उन्मत्त पुरुष शिव की गाथा कहने वाले तपस्वी तथा अपने गुरुकी एवं पितरोंकी निन्दाकिया करते हैं वे दुरात्मा जीव भी नरकगामी होते हैं ।८। शिवकी निन्दा--गुरुकी निन्दा,शिव-ज्ञानमें दोष लगाना और ब्राह्मणोंके धनका अपहहण या नाश करना,शिव-ज्ञानीकी पुस्तकका हरण

ये छः अनन्त फल देने पातक बताये गये हैं ।९-१०। जो कल्पित हुई शिव-पूजाको देखकर भी हर्षित नहीं होते है अथवा शिवके पार्थिवलिङ्गको पूजित देखकर भी उन्हें प्रणाम नहींकरते हैं तथा उनका स्तवन नहीं करते हैं ।११। जो सर्वदा अपनीइच्छा के अनुकूलही निस्सन्देह स्थितिरखते हैंतथा रमण कियाकरते हैं और शिवजीके आगे एवं गुरुके निकट उपचारसे भ्रष्ट होते हैं। ।१२। जो पर्वोंमेंस्नान और संस्कार-पूजानहींकरते है तथाकर्मयोग में व्यवस्थितरहकर सविधिअपने गुरुजनकाअर्चन नहीं कियाकरते हैं।१३। जो शिवाचारसेयुक्त शिवके भक्तोंसे द्वेषभावरखते हैं और जो शिव-विज्ञान का बिनापूजनके ही पाठकिया करते हैं या लिखते हैं ।१४।

अन्यायतः प्रयच्छन्ति श्रण्वन्त्युच्चारयन्ति च ।
विक्रीडन्ति च लोभेन कुशाननियमेन च ।१५
असस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयन्ति च ।
शिवज्ञानकथाऽक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते ।१६
न ब्रवीती च यः सत्यं न प्रदानं करोति च ।
अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति श्रृणोति ।१७
गुरुपूजामकृत्वैवः यः शास्त्रं श्रोतुमिच्छति ।
न करोति च शुश्रूषामास्थां च भक्तिभावतः ।१८
नाभिनन्दति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति ।
गुरुकर्मण्यसाध्यं यत्तदुपेक्षां करोति च ।१९
गरुमार्तमशक्तं च विदेशं प्रस्थितं तथा ।
वैरिभिः परिभूतं वा यः संत्यजति पापकृत ।२०
तद्भार्य्यापुत्रमित्रे यश्चावज्ञां करोति च ।
एवं सुवाचकस्यापि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः ।२१

जो अन्यायसे दान करते, सुनते तथा उच्चारण करते हैं एवं लालच के वशीभूत होकर कुत्सित ज्ञानके नियमसे बुरी-बुरी क्रीड़ा करते हैं ।१५। जो लोग अपनीहीइच्छासे असंस्कृत स्थानों में सोते या सुलाते हैं औरशिव की ज्ञान-कथामें विक्षेपकरते या आक्षेपकरके कुछकुतर्क करते हैं ।१३।जो

कभी सत्य नहीं बोलते हैं, कभी कुछ प्रदान नहीं करते हैं और स्वयं पवित्र हो या अपवित्र हों ऐसे स्थानमें कुछ कहते या सुनते हैं ।१७। जो बिना गुरुके पूजन किये ही शास्त्रोंको सुनते हैं या श्रवण करना चाहते हैं औरजोअपने गुरुकी सप्रेम भक्तिकेसाथ सेवा नहीं करते हैं याउनकी आज्ञाकापालन नहीं करते हैं ।१८।जो गुरुजनोंके वाक्योंका आदर नहीं करतेहैं या उनको उत्तर देदेते हैं और जो गुरुके कार्यको असाध्य बताकर उसकी लापरवाही किया करते हैं ।१९। जो पापीगुरु,रोगी,असमर्थ तथा परदेशमें स्थित या शत्रुओं द्वारा घिरेहुए या तिरस्कृत मनुष्यको छोड़देते हैं ।२०। जो उनकी स्त्री,पुत्र और मित्रोंका तिरस्कार करते हैं तथा श्रेष्ठवक्ता,धर्म दर्शक गुरुकी भार्या, पुत्र और मित्रकी अवज्ञा किया करते हैं ।२१।

एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम ।
सुमहत्पातकान्याहुः शिवनिन्दासमानि च ।२२
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ।२३
क्रोधाल्लोभाद् भयाद् द्वेषाद् ब्राह्मणस्य वधे समः ।
मर्मांतिक महादोषमुक्त्वा स ब्रह्महा भवेत् ।२४
ब्राह्मण यः समाहूय दत्वा यश्चाददाति च ।
निर्दोष दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत् ।२५
यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम् ।
उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ।२६
मिथ्यागुणैयं आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात् ।
गुणानापि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत् ।२७
गवां बृषाभिभूतानां द्विजानां गुरुपूर्वकम् ।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।२८

हे मुनिश्रेष्ठ ! ये उपर्युक्त समस्तकर्म शिवकी निन्दाके तुल्यही महापाप कहे जाते हैं।१२। ब्राह्मण की हत्या करने वाला मदिराका पान करने वाला, चोरीकरने वाला और अपने गुरुकी पत्नीका गमन करने वाला तथा

पाँचवाँ इनके साथ मेल मोहब्बत रखने वाला ये सब महापापी कहेजाते हैं ।२३। क्रोधसे,भयसे, द्वेषसे जो ब्रह्माण के बधमें मर्मोंको भेदन करने वाले महादोषोंको कहता है वहभी ब्रह्म-हत्यारा माना जाता है ।२४। जोब्राह्मण को बुलाकर दियेहुए दानकोभी फिर वापिस लेलेता है और जो दोषरहित पवित्र व्यक्ति को भी दोषलगाता है वह भी ब्रह्म हत्यारा कहाता है ।२५। जो मनुष्य अपनी पठित विद्या के अभिमान में चूर होकर किसी उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको निस्तेज करता है वहभी ब्रह्म-हत्यारेके तुल्य ही महापापी माना जाता है ।२६। जो अपने मिथ्यागणों से बलात् अपने ऐसे गुणों का प्रकटकरके आरही उन्नतिके पदकीप्राप्ति कियाकरता है वहभी ब्रह्म-हत्यारे के समान ही कहा गया है ।२७। बैल आदि से तिरस्कृत हुई गायोंको तथा गुरु के सहित ब्राह्मणों को विघ्न उपस्थित करता है वह भी ब्रह्म-हत्यारा माना गया है ।२८।

देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः ।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।२९
देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत् ।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशय ।३०
अधीत्य यो द्विजो वेदं ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम्।
यदि त्यजति यो मूढः सुरापानस्य तत्समम् ।३१
यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियमं यजनं तथा ।
संत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम् ।३२
पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम् ।
आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।३३
वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातनम् ।
द्विजार्थं प्रक्षिपेत्साधुर्न धर्मार्थं नियोजयेत् ।३४
गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्नि प्रदीयते ।
इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च ।३५

जो देवता, विप्र और गौओंके लिये कृष्णार्पण की हुई भूमि को काल-

वश नष्ट होनेपर भी हरणकर लेता है उसमनुष्यको भी ब्रह्म-हत्यारा कहा जाता है ।२९। किसीभीदेव तथा ब्राह्मणकेधनका हरणकरना तथा अनीति से धन एकत्रित करना-यहभी कर्म ब्रह्म-हत्याके समानहोते हैं और इनका पाप भी ब्रह्म-हत्यारे के तुल्य ही लगता है इसमें तनिक भी सन्देहनहीं है ।३०।जोमहामूढ़ विप्रवेदोंको पढ़करभी शिवके ब्रह्मज्ञानका त्यागकरदेता है वह मदिरा पानके समान पाप बतलालागया है ।३१। किसी भी नियम या ब्रतको ग्रहणकरके पञ्च-महायज्ञका त्यागककरदेना भी मदिरा-पानकेसमान महापाप माना गया है ।३२। अपने पूज्य माता-पिताका त्याग कर देना, मिथ्या भाषण करना, शिवके सेवक भक्तोंके माँसका सेवन करना और जो भक्षणके अयंग्यवस्तु है उसका भक्षणकरना ।३३। वनमें निरपराधबिचारे पशुओंका वध करता और साधु- ब्राह्णों के लिये तथा धर्मके कार्यके लिये प्राणोंका मोह करना ।३४। गौओंकी राहमें तथा ग्राममें आग लगा देना- ये सभी ब्रह्म-हत्याके तुल्यही महापाप कहे जाते हैं ।३५।

दीनसर्वस्वहरण नरस्त्रीगजवाजिनाम् ।
गोभूरजतवस्त्राणामोषधीनां रसस्य ।३७
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ।
विक्रयस्त्वविपत्तौ यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः ।३८
हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे ।३८
पुत्रमित्रकलशेषु गमनं भगिनीषु च ।
कुमारीसाहसं घोरं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।३९
सवर्णायाश्च गमनं गुरुभार्यासमं स्मृतम् ।
महापापापि चोक्तानि श्रृणु त्वमुपप तकम् ।४०

किसी भी दीन-हीन का सर्वस्व हरण कर लेना—पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ा,गो-भूमि,चाँदी वस्त्र,औषध,रस,चन्दन अगर,कपूर, कस्तूरी और पट्ट वस्त्र आदि के बेचनेका काम करना और द्विजातियोंके द्वारा ही इन कामों का ज्ञानपूर्वक कराना ।३६। हाथ से रखी हुई किसी धरोहरको मार लेना

सुवर्णके चुराने के समान है। जो कन्याएं वरके देने योग्य हैं उन्हें उनके समान वरोंको न देना, पुत्र-मित्रकी स्त्रियोंकेसाथ तथा बहिनोंकेसाथ गमन करना,कुमारीके साथ बलात्कार करना,मदिरा-पान करनेवाली स्त्रीकेसाथ गमन करना,सवर्ण स्त्रीके साथ गमन करना गुरु-पत्नीके गमन के समानही होता है-ये सभी ऊपर बतायेहुए महाघोरपाप कहे गये हैं, इसके आगे में अब उपपातकों का वर्णन करता हूँ उनको आप सुनें ॥३७-३८-३९-४०।

विभिन्न पापों का स्वरूप वर्णन

द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यातिक्रम ।
अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिकत्वं कृतघ्नतः ।१
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरम् ।
परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम् ।२
परिवित्तिःपरिवेत्ता च यया च परिविद्यते ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।३
शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम् ।
यः पीडामाश्रमस्थानामचरेदल्पिकामपि ।४
सभृत्यपरिवारस्या पशुधान्यधनस्ध च ।
कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा ।५
यज्ञारामतडागानां दारापत्यास्त विक्रयम् ।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्मिणाम् ।६
स्त्रीधनान्युपजीवंतिस्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ।
अप्क्षण च नारीणां मायथा स्त्रीनिषेवणम् ।७

श्रीसनत्कुमारजीने कहा-ये नीचे बताये हुए सभी उपपातक कहे जाते हैं-ब्राह्मणोंके धनकोछीन लेना, किसी भी अन्यके भागको स्वयं पचाकर उसे नहीं देना,अत्यन्त घमण्डकरना,अति पाखण्डकरना और किसी के किए हुए उपकारको न मानना ।१। सांसारिक विषयों में ज्यादा मनकी प्रवृत्ति रखना,कंजूसी करना,सज्जन मनुष्यों के साथ ईर्ष्याका भावरखना,दूसरोंकी स्त्रीके साथ गमन करना तथा श्रेष्ठ कन्याओंमें कोई भी दोष लगाना ।२।

पर-वित्ति परवेत्ता तथा जिसके द्वारा जाना जाता है इन दोनों को कन्या का दानकरना इन दोनोंन यज्ञकराना ।३। शिवके आश्रममें स्थित वृक्ष बाग या पुष्पोंको नष्ट करना,आश्रममें रहने वाले मनुष्यों को पीड़ा देना-ये सभी उपपातक कहे जाते हैं ।४ सेवक परिवार के सहित पशु,धान्य,धनका दान तथा धान्य पशुओं का चुराना, जलको अपवित्र करना ।५। यज्ञ बाग, सरोवर, स्त्री और अपनी सन्तानको बेचडालना,तीर्थ यात्री तथा तीर्थ-स्थल आवास, व्रत,उपनयन करने वालोंको विक्रय करदेना भी उपपातक होते हैं ।६। स्त्री के धनसे वृत्ति करना, स्त्रियों के द्वारा जीते हुए होना, स्त्रियों के रक्षण करने कपटसे धनभोग करना ।७।

कलागलाप्रदानं च धान्यवृष्ट्युपसेवनम् ।
निन्दिताच्च धनादानं पण्यानां कूटजीवनम् ।८
विषमारण्यपत्राणां सततं वृषवाहनम् ।
उच्चाटनाभिचारं च धन्यादान भिषविक्रया।९
जिह्वाकामोपभोगाथ यस्यारम्भः सुकर्मसु ।
मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत् ।१०
ब्राह्मयादिव्रतसत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ।
असच्छास्त्रागि नं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।११
देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दया ब्राह्मणस्य च ।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामानि।१२
उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये ।
दु शीला नास्तिकाः पापाः सदा वाऽसत्यवादिनः ।१३
पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु ।
रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यः समाचरेत् ।१४

समय पर आयेहुए को भी कुछ न देना धान्य वृद्धिका सेवन करना,निन्दित धनको लेना और व्यापार में कूट-जीवन बिताना भी उपपातक बताये गये हैं ।८। विषम जङ्गलों के पत्तोंका तोड़ डालना, बैलका वाहन करना किसी के उच्चाटन या मारण का प्रयोग करना, धान्य का छीन लेना तथा वैद्य

वृत्तिका करना-ये सभी उपपातक होते हैं ।९।अपनी जिह्वाके रसभोग की कामनासे बुरे कर्ममें प्रवृत्तहोना और वेदज्ञान आदिमें केवल मूलको पढ़ाना भी उपपातक होता है ।१०। ब्राह्म आदि व्रतका त्याग कर देना, अन्योंके आचारका सेवन,बुरे शास्त्रोंका अध्ययन और शुष्क तर्कका सहारा लेनाभी उपपातक है ।११। देवता,ब्राह्मण,अग्नि,साधु और चक्रवर्ती राजाकी पीछे मे निन्दा करना,पितृयज्ञ,देवयज्ञका त्याग करना, अपने स्वाभाविक कर्मका त्यागकर देना, दुराचरण करना, नास्तिक भावरखना,पाप-वृत्तिकरना और मिथ्या बोलना-ये सभी उपपातक कहेगये हैं ।१२-१३। पर्वके समममें, दिन के समयमें जलके मध्यमें, वियोनि में, पशु योनिमें और रजस्वला योनिमें गमन करना उपपातक होते हैं ।१४।

स्त्रीपुत्रमित्रसंप्राप्तौ आशाच्छेदकराश्च ये ।
जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयवेदिनः ।१५
भेत्तारं तडागकूपानां संक्रयाणां रसस्य च ।
एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ।१६
इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपातकिनः स्मृताः ।
युक्ता एभिस्तथान्येऽपि श्रृणु तांस्तु ब्रवीमिते।१७
ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
विनाशयन्ति कर्माणि ते नरा नारकाःस्मृता ।१८
परस्त्रियाऽभितप्यंते ये परद्रव्यसूचकाः ।
परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः ।१९
द्विजदुःखकरा ये च प्रहारं चोद्धरति ये ।
सेवन्ते तु द्विजाःशूद्रां सुरां बध्नति कामतः ।२०
ये पापनिरताःक्रूरा येऽपि हिंसाप्रिया नरा ।
वृत्त्यर्थं येऽपि कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाःक्रियाः ।२१

जो स्त्री-पुत्र और मित्रों के प्राप्त होने पर आशा को तोड़ देते हैं-तथा मनुष्योंकेसाथ सर्वदा कटुभाषणकरते हैं और क्रूर,समयकाज्ञान नहीं रखते हैं,ये सभीउपपातकी मानेजाते हैं ।१५।तालाब-कूपतथा किसीभी जलाशय

और रसोंका भेदनकरना एव एकही पंक्तिमें बैठेहुए लोगोंके भोजनमें भेद-भावकरना भी उपपातक होते हैं ।१६। इन सभी ऊपर बताये हुए कर्मोंके करने से स्त्री हो या पुरुषहो सब उपपातकी कहे जाते हैं। जोभी कोई इन पातकोसे युक्त हैं तथा अन्यपापोंसे भी युक्तहोते हैं उन सबका वर्णन करते हैं आपलोग श्रवणकरें ।१७। जो पुरुष गौ,ब्राह्मण,कन्या,स्वामी,मित्र और तपस्वियों के कार्यों को बिगाड़ डालते हैं वे निश्चयही नरकके गामी हुआ करते हैं।१८। जो अन्योंकी स्त्रियों से दुःखित होते हैं तथा जो पराये धन के सूचक हैं एवं नित्यही दूसरोंके धनका हरण करने वाले हैं और मिथ्या तोल करने वाले होते हैं, वे नरक के अधिकारी हैं ।।१९।। जो ब्राह्मणोंको सताते हैं और उन पर प्रहार किया करते हैं-जो सिद्ध होकर शूद्र की स्त्री का सेवन किया करते हैं और कामसे मदिराको बाँधते हैं ।।१०।।जो सदा पापमय कर्मों में ही परायण रहा करते हैं—जो अत्यन्त क्रूर हैं—जो सर्वदा हिंसा किया करते हैं और जो अपनी जीविकाके लिए ही दान यज्ञ आदि किया करते हैं ।२१।

गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेष ।
त्यजन्ति ये पुरीषाद्यानारामायतनेषु च ।२२
लज्जाश्रमप्रसादेषु मद्यपानरताश्च ये ।
कृतकेलिभुजगाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।२३
वंशेष्टकालिकाकाष्ठैः शृंगैःशंकुभिरेव च।
ये मार्गमनुरुंधति परसीमां हरन्ति ये ।२४
कूटशासनकर्त्तारः कूटकर्मक्रियारतः ।
कूटपाकान्नवस्त्राणां कूटसंव्यवहारिणः ।२५
धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्त्ता यःक्रयविक्रयी।
निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः ।२६
मिथ्या प्रवदतो वाचआकर्णयति या शनैः।
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठ।२७
ये यार्य्यापुत्रमित्राणिबालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबधूंश्च त्यक्त्वाश्ननति बुभुक्षितान् ।२८

जो गोशाला, अग्निकुण्ड, जलाशय, गलीकी राह, वृक्षोंकीछाया,पर्वत शिखर और निवासस्थान में लल-मूत्र करते हैं या फेंकते ।२२। जो लज्जा के आश्रम तथा महलोंमें मद्यपान किया करते हैं। दूसरोंकेछिद्रों की खोज करने में तत्पर सर्पोंकेसमान क्रीड़ा करते हैं-वे सभी नरकगामी होते हैं । ।१२। जो पुरुष बांस,ईंट,पत्थर,काष्ठ,सींग और कालों से मार्ग को रोकदेते हैं तथा दूसरोंकी सीमाका हरण करलेते हैं ये सभी नरकके अधिकारी होते हैं।२४। जो कटपसे शिक्षा देने वाले, छल भद कर्म एवं व्यापारमें तत्पर रहा करते हैं और कपटपूर्ण पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका व्यवहार करनेवाले होते हैं-वे सब नरकगामी है।२५। जो पुरुष धनुष, शस्त्र और शल्यों के निर्माण करने वाले हैं तथा इनकी खरीद फरोख्त किया करते हैं—अपने भृत्यों (नौकरों)केसाथ निर्दयताका व्यवहार कियाकरते हैं और जो पशुओं को बुरी तरहसे मारते हैं-ये सब नरककेगमन करनेवाले होते हैं।२६। जो मनुष्य भूँठी बातको धीरे-धीरे सुनाता है-अपने मित्र, स्वामी और गुरुसे द्रोहकरने वाले हैं कपट व्यवहारकरने वाले,ठग और चपल हैं-ये सब नरक के अधिकारीहोते हैं।२७। जो मनुष्य अपनी स्त्री-पुत्र,मित्र, बान्धव, वृद्ध दुर्बल,रोगी,भृत्य,अतिथि और बान्धवोंको न खिलातेहुए,भूखा ही छोड़ कर भोजनकर लिया करते हैं-ये सभी नरकके जाने वाले उतपातकी होते हैं।२६।

यः स्वयमिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न प्रयच्छति ।
वृथापकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ।२९
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ।
प्रव्रज्यावासिता ये सरस्यास्य प्रभेदकाः ।३०
ये ताडयन्ति यां क्रूरा दमयते मुहुर्मुहुः ।
दुर्बलान्ये न पुष्णन्ति सततं यं त्यजन्ति च ।३१
पीडयंत्ययिभारेणासहतं वाहयंति च ।
योजयन्नकृताहारान्न विमुचंचि संयतान् ।३२
ये भारक्षतरोगार्तान्गोवृषाँश्च क्षुधातुरान् ।
न पालयन्ति यन्नेन गोघ्नास्तेनारकाःस्मृता ।३३

वृषाणां वृषणास्ये च पापिष्ठा गालयन्ति च ।
वाहयंति च गां बन्ध्यां महानारकिणोनराः ।३४
आशया समनुप्राप्तान्क्षुत्तृष्णाश्रमकर्शितान् ।
अतीथींश्च तथा नाथान्स्वतन्त्रान्गृहमागतान्।४५
अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान्।
नानुकपति ये मूढ़ास्ते यांति नरकार्णवम् ।३६

जो स्वयं नियमोंको स्वीकारकरके इन्द्रियोंको जीतनेवाला नर है और स्वीकृतनियमोंका त्यागकरदेते है और संन्यासग्रहणकरके घरमें रहते हैं तथा शिव प्रतिमाका भेदन करते हैं ये सब नरकगामी होते हैं ।२९-३०। जो अत्यन्य क्रूरतासे गायोंको मारते है तथा बारम्बार दमनकिया करते है,जो दुर्बलोंका पोषण नहीं कियाकरते हैं तथा उनको सर्वदा त्यागदेते हैं-वे नरकगामीहोते हैं ।३१। जो अत्यन्तबोझालादकर पीड़ादेते हैं,न सहनकरने वाले पशुकीभी बरावर जोततेरहाकरते हैं और जिनपशुओंको खाना न मिलाहो ऐसे भूखे पशुओंको भी जोतते या बधाहुआ रखते है वे मनुष्य नरक यातना भोगनेके अधिकारी हुआ करते हैं ।३२। जो अत्यन्त असह्य भार से पीड़ित एवं घायल, रोगी और क्षुदा पीड़ित गाय, बैलोंका समुचित रूपसे पालन पोषण नहीं कियाकरते हैं-वे निस्सन्देह गौ हत्यारे,महापापी नरक के दुःख भोगनेवाले होते हैं ।३३। जो पापात्मा विचारेबैलोंके अण्डकोशोंको पिटवा कर उन्हें बधिया बनाया करते हैं तथा बाँझ गौओंको भी जोताकरते हैं-वे पुरुष महान्नरककी यातनाभोगते हैं ।३४। कुछ आशालेकर प्राप्तहोनेवाले, भूख-प्यास और परिश्रमके कारण विकल, अभ्यागत तथा अनाथोंको, अन्न पानेकीइच्छासे समागतोंका दीन,बालक वृद्ध,दुर्बल और रोगियों पर जो दया नहीं करते हैं, वे महान् मूर्ख अवश्य ही घोरनरकमें जाते हैं ।३५-३६।

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानादपि बांधवाः ।
सुकृत दुष्कृत चैव गच्छन्तमनुगच्छति ।३७
आजीविको माहिषिकः सामुद्रो वृषलीपतिः ।
शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः ।३८

यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्करम् ॥३६॥
नरके पच्यते सोऽपि योपि दण्डरुचिर्नरः ॥४०॥
उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः ॥४१॥
ये द्विजा परिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः ।

मनुष्य मृत्युगत होजानेपर साराधन एश्वर्य घरमेंही पड़ाछोड़जाता है, उसे श्मशानमें पहुँचाकर भाई-बन्धुभी सब घर लौट आते हैं। केवल वही एक जीवात्मा अकेला किये हुए पाप तथा पुण्यों को साथ लेकर परलोक में जाया करता है। वहाँ अपने कर्मोंका भोग भोगना पड़ता है। अतः सदा सत्कर्म ही करना चाहिये, यही इसका तात्पर्यार्थ है।३७। बकरी, भैंसका क्रय-विक्रय करनेवाला नीच ब्राह्मण, समुद्र पर रहनेवाला, शूद्रा स्त्री का पति, शूद्रकेतुल्य और क्षत्रियको वृत्ति करनेवाला महानीच होकर नरकगामी होता है।३८। जो शास्त्रोक्त उचित करना उल्लंघन करके अपनी ही इच्छा से कर वसूल या हरण करता है और जो सर्वदा दण्ड देनेकी रुचि रखता है वह अवश्यही नरकको भोगता है।३६-४०। जिस राजाके राज्य में प्रजाजन घूँसखोर और अपनी इच्छाके ही अनुसार क्रय विक्रय करने वाले हों तथा प्रजाके लोग तस्कारोंसे उत्पीड़ित रहते हों, वह राजाभी नरकगामी होता हैं।४१। जो ब्राह्मण अन्यायी राजा का दियाहुआ दान लेते हैं, वे भी घोर नरकमें निश्चयही जायाकरते हैं।४२।

ते प्रयांति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ॥४२॥
अन्यायात्समुपादाय द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति ।
प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा ॥४३॥
पारदारिकचौराणाँ चण्डानाँ विद्यते त्वघम् ।
पारदारितस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः ॥४४॥
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाऽचौररूपिणाम् ।
अविचार्य्यं नृपस्तमाद्घातयन्नरकं व्रजेत् ॥४५॥
घृततैलान्नपापानि मधुमांससुरासवम् ।
गुडेक्षुशाककदुग्धानि दधिमूलफलानि च ॥४६॥

तृणं काष्ठं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम् ।
उपानच्छत्रशकटमासनं च कमंडलुम् ॥४७॥
ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् ।
वैद्यं च वैणवं चान्यद् गृहोपरकरणानि च ॥४८॥
और्णं कार्पास कौमेय पट्ट सूतोद्भवानि च ।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरन्ति च ॥४९॥

जो राजा प्रजाको दबाकर अन्यायपूर्वक धनलेकर ब्राह्मणोंको दानरूप में देता है वह राजा अपनी अनीतिसे युक्त पापसे कारण नरकगामी होता है ।३४। पराई स्त्रियों के साथ भोग तथा चोरी करने वाले पुरुषोंको तथा नित्य ही पर-स्त्रीमें रत राजाको बड़ा पाप लगता है और उसके लिए वह नरक की यातना भोगते हैं ।४४। जो राजा चोरी न करने वाले चोर और चोरीकाकाम करनेवाले तस्करपुरुषोंको सत्पुरुष समझता है और बिना-भली भाँति विचारकियेही ताड़ना एवं दण्डदेता है, वह नरकगामो होता है ।४५। जो निम्न वस्तुओंके चोरहोते हैं वे नरकगामी होते हैं यथा-घी, तेल, पीनेकी वस्तु-अन्न,शराब,माँस,अर्क,ईख,गुड़,शाक,दूध,दही,फल,मूल, घास,काष्ठपत्र, फूल, औषध, अपनी भोजन जूता, छाता, गाड़ी,कमण्डल, आसन,लोहा,ताम्र,सीसा,रांग,शस्त्र,शङ्ख,जलसे उत्पन्न वस्तु-वैद्य लकड़ी, घरके काममें आने वाली वस्तु-ऊनी, सूती, रेशमी, रामवास आदि एवं छालके निर्मित मोटे व बारीक वस्त्रोंको जो भी कोई लालच वश चुरा लेते हैं-वे निश्चय ही नरककी यातना भोगते हैं ।४६-४७-४८-४९।

एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।
नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्याल्पकानि च ॥५०॥
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ।
अपहृत्य नरा यान्ति नरकं नात्र संशयः ॥५१॥
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रांतसमनन्तरम् ।
शरीर यातनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात् ॥५२॥
यमलोक व्रजन्त्येते शरीरेण यमाज्ञया ।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिता ॥५३॥

देयतिर्यङ्मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम् ।
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥५४॥
नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ।
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न बुधैरिष्यते यमः ॥५५॥
परदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्मराट् ॥५६॥
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥५७॥
य करोति स्वयं कर्म कारयेच्चानुमोदयेत् ।
कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम् ॥५८॥

इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के बहुत से द्रव्य हैं, जिनका हरण करनेसे चाहे स्वल्प मात्रामेंही क्यों न हो, निश्चयही नरकगामीहोते हैं।५० कुछभी क्यों न हो, पराई वस्तु तो चाहे सरसोंके दानेके बराबर भी चुराई जावेतो इसका बुरा परिणाम नरकयातना अवश्यही सहनापड़ता है, इसमें तनिकभी संशय नहीं है।५१। मनुष्य उपर्युक्त चोरी करनेके पापोंसे नरक भोगनेके पीछे शारीरिक कष्टउठानेके लिए समस्त आकारकी प्राप्तिकरता है।५२। ऐसे पापकर्म करने वाले पापी शरीरको लेकर मेरे आदेशसे भीषणवपु वाले यमदूतों के द्वारा पकड़े हुए अत्यन्त दुःखसे भरकर यमराज के लोकको जाते हैं।५३। धर्मराज अनेक प्रकारके वधोंके द्वारा देव-मनुष्य और पक्षी सबको जो अधर्म करते हैं, दण्ड दिया करता है।५४। जो नियम और सदाचारों में तत्पर रहा करते हैं, कभी अज्ञानवश गिरजाते हैं तो ऐसे लोगों को अनेक प्रकार के प्रायश्चितों द्वारा गुरु ही शिक्षा दे दिया करते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा पाने के लिए धर्मराजके पास नहीं जाना पड़ता है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं।५५। पराई स्त्रियों से प्रसङ्ग करने वाले—चोर और अन्याय से व्यवहार करने वालों को दण्ड देकर शिक्षा देने वाला राजा बताया गया है। जो गुप्त महापाप किया करते हैं, उनको यमराज ही दण्ड देते हैं।५६। इसलिये किये हुए पापों से शुद्धि प्राप्त करने को प्रायश्चित अवश्य ही करना चाहिए

अन्यथा पापोंका फल बिना भोगेहुए करोड़ों कल्पों में भी नष्ट नहीं होता है ।५७। पापकर्म स्वयं करे या मन वाणी या शरीरके द्वारा पापकर्म करावे अथवा इनका अनुमोदन करे-उसको उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है ।५८।

नरकलोकका मार्ग और यमदूतोंका स्वरूप वर्णन

अथ पापैर्नरा यांति यमलोकं चतुर्विधः ।
संत्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः ॥ १ ॥
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ।
स्त्रीपुन्नपुंसकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुषु ॥ २ ॥
शुभाशुभफल चात्र देहिनाँ संविचार्यते ।
चित्रगुप्तादिभिः सर्वैर्वसिष्ठप्रमुखैस्तथा ॥ ३ ॥
न केचित्प्राणनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम् ।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम् ॥ ४ ॥
तत्र ये शुभ कर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः ।
ते नरा यान्ति सौम्येन पूर्वं यमनिकेतनम् । ५ ॥
पे पुनः पापकर्माणः पापा दानविवर्जिताः ।
ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमलायम् ॥ ६ ॥
षडशीतिसहस्त्राणि योजनानामतीत्य तत् ।
वैवस्वतपुर ज्ञय नानारूपमवस्थितम् ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमारजी ने कहा- समस्तप्राणी चार तरहके पापोंमें त्रासपैदा करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर यमराजके लोकको जाया करते हैं और मजबूर होकर उन्हें वहाँ अवश्य हीं जाना पड़ता है ।१। गर्भमें स्थित रहकर जन्म धारण करने वाले बालक युवा, प्रौढ़ और वृद्ध तथा स्त्री एवं पुरुष और अपुंसक सभीको यह बात भलीभाँति जान व समझलेनी चाहिए ।२। वहाँ पर लेखा-जोखा रखनेवाले धर्मराजके मंत्री चंद्रगुप्तआदि तया महर्षि वशिष्ठ आदि मुनियों द्वारा समस्त जीवोंके शुभाशुभ कर्मका विचार कियाजाता है ।३। अपना किया हुआ कर्म सभीको अवश्यही भोगनापड़ता है । इसलिये

ऐसे कोई भी प्राणी नहीं है जो यमराज के लोकको नहीं जाते हैं। शुभ-अशुभ कर्मोंका निर्णय वहाँ परही होता है।४। इन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले और सौम्य चित्तवाले कृपापूर्ण मनुष्य होते हैं वे वहाँ यमलोक में सौम्य मार्ग से पूर्वद्वार को जाया करते हैं।५। जो अनेक पापकर्म करने वाले महपापी एवं दानशून्य प्राणी होते हैं, वे घोर दक्षिण दिशाके मार्गसे यमराज के लोकको जाया करते हैं।६। वह वैवस्वतपुर अनेक रूप में स्थित हैं और वहाँ जानेके लिए छियासीहजार योजन कोसों का फासला तय करके जाना पड़ता है।७।

समोपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम् ।
पापिनामतिदूरस्थं यथा रौद्रेण गच्छताम् ॥ ८ ॥
तीक्ष्णंकटकयुक्तेन शर्कराबिचितेन च ।
क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणै रचितेन च ॥ ९ ॥
क्वचित्पंकेन महता उरुतोकैश्च पातकैः ।
लोहसूचीनिभैर्दर्भैः सम्पन्नेन पथा क्वचित् ॥१०॥
तटप्रायातिविषयैः पर्वतवृक्षसंकुलैः ।
प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखिता ॥११॥
क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्टैः सुदुष्करैः ।
सुतप्तबालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शकुभिः ॥१२॥
अनेकशाखाविततैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित् ।
कष्टेन तमसा मार्गे नानालम्बेन कुत्रचित् ॥१३॥
अयः शृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः ।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥१४।

यही यमलोक पुण्यात्माओंको तो अत्यन्त समीपमें स्थित जैसा प्रतीत होता है और पापियोंको अत्यन्तही दूरमें स्थितजैसा लगता है। पापीप्राणी बड़ेभयङ्कर मार्गसे होकर इस लम्बी यात्राको पार करतेहुए वहाँ पहुँचपाते हैं।७। मार्गमें कहीं भयानक काँटे बिछेहुए हैं तो कहीं बालू रेतही रेत भरी पड़ी है। किसी जगह छुरेकी तीखीधारके तुल्य चीरदेने वाला पाषाण बिछे

हुए हैं ऐसे मार्गसे जानापड़ता है ।६। वह मार्ग कहींतो बहुतभारी दल-दल से युक्त कीचड़वाला होता है-किसीजगह उरुतोक पापोंसेयुक्त तो कहीं लोहे की सुईकेसमान तीखी कुशाओं से युक्त होता है ।१०। उस मार्ग में कहीं-कहीं तटप्राय प्रदेशोंके अत्यन्त कठिक पर्वतहोते हैं और किसीजगह घने वृक्षों का भयानक जंगल होता है । किसी स्थान पर तपेहुए अंगार भरे होते हैं । ऐसे मार्गमें प्राणी बहुतही दुःखित होते हुए जाया करते हैं ।११। यमलोक के मार्गमें किसीजगह बहुत भारी गहरे गर्त आते हैं, कहीं ऊँचे टीलेहोते हैं और कहींपर खूब तपीहुई बालू होती है तथा तीखे कीले गड़े होते हैं ।१२। यमपुरका रास्ता बहुतही कठिन होता है, कहीं भयानक शाखायुक्त बाँसोंका जंगलहोता है और किसीजगह घोर अन्धकार छाया रहता है तथा उसमार्ग में ऐसे बहुतसे आधार रहाकरते है ।१३। वह रास्ता कहीं लोहेके सिंघाड़ों से व्याप्त रहता है जो बहुतही तीखेहोते हैं । किसी जगह दावानलसे व्याप्त रहता है, किसी स्थानपर तपीहुई पाषाण शिलाएँ मिलती हैं, तो कहीं बहुत ठण्डी बर्फ जमी हुई रहती है ।१४।

क्वचिद्वालुकया व्याप्तामाकण्ठांशः प्रवेशया ।
क्वचिद् दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना ॥१५॥
क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणैः ।
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैस्तथा ॥१६॥
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणैः ।
मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१७॥
पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः ।
तीक्ष्णशृंगैश्च माहिषैः सर्वभूतैश्च श्वापदैः ॥१८॥
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ।
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडयमाना व्रजंति हि ॥१९॥
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ।
महापाषाणवर्षेण हन्यमानानिराश्रया ॥२०॥
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति ।
महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वतः ॥२१॥

उस यमपुरके मार्ग में कहीं कण्ठ पर्यन्त गड़ जाने वाली तप्तबालू हैं तो किसी जगह दूषित गन्दाजल भरारहता है। किसी स्थानपर करीषकी अग्नि व्याप्त रहा करती है।१५। मार्गमें किसी स्थान पर सिंह-बाघ और और भेड़ियाआदि हिंसक एवं भयानक जीव होते हैं। कहीं पर अजगर भरेहुए हैं तो कहीं भयानक मच्छर तथा जोंक मिला करती हैं।१६। यमपुरका मार्ग विषैली मक्खी, सर्प और मतवाले बलोन्मत्त हाथियों से पूर्ण रहता है जोकि बीच-बीचमें जहाँ-तहाँ मिलाकरते हैं और भयदेते हैं।१७। यह रास्ता सब ओर भयावह जीवोंसे भरा-पूरारहता है। कहीं तीक्ष्णदाढ़ों से जमीन खोदने वाले जंगलीशूकर हैं तो कहीं पैनेसींगों वाले भैंसे रहाकरते हैं। सभी प्रकार के हिंसक जानवर वहाँ मिला करते हैं।१८। मार्गमें बहुतविकट डाँकिनी, विकरालराक्षस दिखाईदेते हैं। इस-तरह उस मार्गमें अत्यन्तघोर व्याधियोंसे पीड़ितहोकर जायाकरते हैं।१९ इस यमपुरके मार्गकी प्राणी भयानक धूल से व्याप्त होकर प्रचण्ड वायुके झोंकों से झकझोरते हुए होकर और बृहत्पाषाण वृष्टिसे निराश्रय एवं परम क्लेशित होकर बड़ी कठिनाईसे तय किया करते हैं।२०। किसी जगह बिजलीके सन्ताप से झुलसते हुए और किसी जगह चारों ओर से होने वाली बाणों की वर्षा से पीड़ित होते हुए इस यमपुर के मार्ग को पूरा करते हैं।२१।

पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः।
प्रदीप्तांगारवर्षेण दह्यमानाश्च संति हि ॥२२॥
महता पांसुवर्षेण पूर्यमाणा रुदंति च।
महामेघरवंघोरैस्त्रस्यते च मुहुर्मुहुः ॥२३॥
निशितायुधवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजंति च ॥१४॥
महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च।
समताद् बाध्यमानाश्च शुष्यते संकुचन्ति च ॥२५॥
इत्थ मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च।
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥२६॥

विषमेणैव महता निर्ज्जनापाश्रयेण च ।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च ॥२७॥
नीयते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्म्मिणः ।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८॥

कहींपर प्राणियोंपर वज्रपात होता है,कहीं अत्यन्त दारुण उल्काग्नि का पातहोता है और किसी जगह अङ्गारोंकी एकदम वर्षा होती है जिससे शरीरमें भस्मीभूत होनेका कष्ट होता है ।२२। प्राणी मार्गमें धूलसे व्याप्त होकर रुदनकरते हैं और भयानक मेघोंसे भयभीत होते हैं ।२३। पापात्मा प्राणी यमपुरके मार्गमें चारों ओरसे तीखे शस्त्रोंकी वृष्टिसे भेदित होते हुए और महाखारी समुद्रकी लहरोंसे सिंचित होकर जाया करते हैं ।२४। मार्ग में बहुत रूखी व कठोर वायु लगती है, जिससे शुष्क और सुकड़े हुए हो जाते हैं ।२५। इसरीतिसे वह मार्ग बहुतही अधिक भयङ्कर होता है जिसमें न कुछ चबेना है और न कोई आधार ही । उसमें पीनेके लिये जल भी प्राप्त नहीं होता है ।२६। बड़े ही विषम, निर्जन आश्रयहीन, अन्धकार पूर्ण तथा दुरात्माओं से घिरा हुआ यमपुरीका मार्ग है, जिससे पापीजीव जाया करते हैं ।२७। जो मूर्ख पापात्मा प्राणी होते हैं उन्हें यमराज के आज्ञाकारी महाघोर दूतों के द्वारा बलात्कार से लेजाया जाता है ।२८।

एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदंतश्च मुहुर्मुहुः ॥२९॥
प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतलुकाः ।
असौम्या भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः ॥३०॥
बद्धाः शृङ्खलया केचिदुत्तनपादका नराः ।
कृष्यते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥३१॥
उरसाऽधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाः सुदुःखिताः ।
केशपाशनिबन्धेन संकृष्यन्ते च रज्जुना ॥३२॥
ललाटे चाँकुशेनान्ये भिन्ना दुष्यंति देहिनः ।
उत्तानाः कटकपथा क्वाचदगारवर्त्मना ॥३३॥

पश्चाद्वाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः ।
पूरिता शृङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः ॥३४॥
ग्रीवापाशेन कृष्यन्ते प्रयांत्यन्ये सुदुःखिताः ।
जिह्वाँकुशप्रवेशेन रज्ज्वाऽऽकृष्यन्त एव ते ॥३५॥
नासाभेदेन रज्ज्वा च व्याकृष्यन्ते तथापरे ।
भिन्ना कपोलयो रज्ज्वा कृष्यतेऽन्ये तथौष्टयोः ॥३६॥

पापी जीव यमदूतों के द्वारा पकड़े हुए अकेले-पराधीन-विवश-मित्र तथा बन्धु-बान्धवों से विमुक्त होकर अपने कुकर्मों पर चिन्ता करते हुए और बारम्बार रोते हुए मार्ग में जाया करते हैं ।२९। पापीप्राणी जब प्रेत होते हैं तो वस्त्ररहित उनका गला होता है, ओठ और तालू सूखे हुए हैं, सौम्यता से रहित भयभीत-परम सन्तप्त और भूखसे परम क्लेशित होकर यमपुरी की यात्रा करते हैं ।३०। उन पापियों में कुछ साँकलोंसे बंधेहुए हैं तो कुछ ऊपरको पैर कियेहुए हैं । उन्हें बलवान् यमदूत जबर्दस्तीसे खींचकर लेजाते हैं ।३१। पापी जीवों में कुछ उत्तान होकर मस्तकपर अंकुश से विदीर्ण होते हुए परम दुःखित है तो कोई हृदय से नीचे मुख कियेहुए घिसटे चले जाते हैं, कुछ काल की पाशों से बंधी हुई रस्सीसे खिंचे हुए ले जाये जाते हैं । कोई अत्यन्त क्लेशित हैं जोकि कण्टकाकीर्ण तथा अङ्गारपूर्ण मार्ग से ले जाये जाते हैं ।३२-३३। कुछ पापियोंको यमदूतोंके द्वारा मार्ग में भुजाओं को बाँधकर लेजाया जाता है । कोई शृङ्खलाओंसे खूब कसकर बंधेहुए उदर से पोड़ित होकर जाते हैं कुछके हाथों में कीलें ठुकी हुई रहा करती हैं ।३४। कोई कोई पापात्मा गर्दन के फाँसेसे खींचे जाते हैं । कोई जिह्वाँकुश प्रवेश वाली रस्सीसे खींचेहुए परमदुःखित होकर यमपुरीके मार्गमें जाते हैं । कुछ लोग नासिकाके भेदन वाली रस्सीके द्वारा तथा कुछ कपोल और होठोंको भेदन वाली रस्सी के द्वारा मार्गमें यमके दूतोंसे खींचेहुए होकर जाया करते हैं ।३५-३६।

छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णोष्टनासिकाः ।
संछिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नांगसंधयः ॥३७॥

आभिद्यमानाः कुंतैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः ।
इतश्चेतश्च धावतः क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥३८॥
मुद्गरै र्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहूर्मुहुः ।
कंटकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥३९॥
भिन्दिपालैर्विभिद्यंते स्रवंतः पूयशोणितम् ।
शकृतांकृमिदिग्धाश्च नीयते विवशा नराः ॥४०॥
याचमानाश्च स लिलमन्नं वापि बुभुक्षिताः ।
छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानल पुनः ॥४१॥
दानहीनाः प्रयांत्येवं प्राथयंतः सुखं नराः ।
गृहीतदानपाथेयाः सुखं यांति यमालयम् ॥४२॥

उन पापात्माओंमें कुछ आगेके हाथ-पैरोंसे छिन्न होते हैं-कोई कान-ओठ और नाकसेछिन्न तथा कुछ अण्डकोष एवं लिंगसेछिन्न और कुछ अंगों के जोड़ोंसे छिन्न-भिन्नहोकर लेजाये जाते हैं ।३७। यमदूतोंके द्वारा अत्यन्त त्रासको प्राप्त पापात्मा यमपुरीके मार्गमें अलकोंसे विद्यमान होकर वाणोंसे विदीर्ण-निराश्रय और इधर-उधर के। रोकर दौड़ते भागते हुए लेजाये जाते हैं ।३८। कुछपर मुग्दर से तथा लाहेके डन्डोंसे बारम्बार प्रहार किये जाते हैं और वे घोरपरम सन्तप्तसूर्यके समान काँटोंसे पीड़ित होते हैं ।३९। वहाँ मार्गमें कुछपापी भिन्दिपाल अस्त्रोंसे भेदित किये जाते हैं । विष्ठाके कीड़ों से, जिनसे रुधिर ओप मवाद टपकता रहता है, कुछ पापात्मा नोंचे जाते हैं जिनके कष्टसे विवश होते हुए यमपुरीको जाया करते हैं ।४०। यमपुरके मार्गमें उन पापियोंको खानेको अन्न तथा पीनेको जल नहीं मिलता है इसलिये वे अत्यन्त व्याकुल होकर अन्नकी और जल की याचना करतेहुए तथा शीताधिक्य से बेचैन अग्नि तापको माँगते हुए यमदूतों द्वारा ले जाये जाते हैं ।४१। जिन्होंने संसारमें कभी कुछभी दान नहीं दिया, वे दान हीन मनुष्यही ऐसी याचना भूख निवारणके लिये करते हुए जाते हैं । जिन्होंने दानदिया है वे चवेना ग्रहणकर सुखसे यम-लोकको जाया करते हैं ।४२।

एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा ।
प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यते यमाग्रतः ॥४३॥

तत्र ये शुभकर्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः ।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च ॥४४॥
धन्या यूय महात्मानो निगमोदितकारिणः ।
यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥४५॥
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ।
स्वर्गं गच्छध्वममलं सर्वकामसमन्वितम् ॥४६॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य संक्षयात् ।
यत्किंचिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥४७॥
धर्मात्मानो नरा ये च मित्रभूता इवात्मनः ।
सौम्य मुखं प्रपश्यति धर्मराजानमेव च ॥४८॥
ये पुनः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ॥४९॥

इस प्रकारसे वहाँ मार्गमें ही कर्मोंका न्याय प्राप्त करते हुए जीवात्मा कष्टके साथ प्रेतपुरोमें पहुँचते हैं और यमदूत उन्हें बताकर यमराजकेसमक्ष में खड़ा करते हैं।४३। उन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले होते हैं उनका धर्मराजभी स्वागतकरते अर्घ्य पाद्य और आसनदेकर सम्मानकिया करते हैं।४४। उन धार्मिक प्राणियोंसे यमराज कहा करते हैं-आप सब शास्त्रके अनुकूल कर्म करने वाले परममहात्मा और धन्यहो। आप लोगोंने दिव्य सुख प्राप्य करनेके लिएही पुण्य कर्म किये हैं।४५। यमराज धार्मिक प्राणियोंसे कहते हैं आपलोग दिव्यविमानोंपर आरूढ़होकर दिव्यांगनाओं के उपभोगका आनन्दस्वाद करतेहुए समस्त कामनाओंके प्रदान करने वाले निर्मल स्वर्गमें जाओ। वहाँ महाभोगोंके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जाने पर जो कुछ थोड़ा पाप शेष रहा होगा तो उसे यहाँ भोगोगे।४६-४७। जो धर्मात्मा मित्रस्वरूप ऐसीआत्माके पुण्यपुरुष हैं वे धर्मराजकेरूपमेंभी सौम्य मुख पाते हैं।४८। जो क्रूर तथा बुरे पापकर्म करनेवाले पुरुषहोते हैं उन्हें यमराजका स्वरूपही अत्यन्त डरावना और विकराल दिखलाई देता है। उनके सामने तो यमराज बड़ी भयानक दाढ़ों से युक्त विकराल मुखकृति

वाले और चढ़ी हुई टेड़ी भृकुटियों से कुटिल दृष्टि वाले दिखलाई दिया-करते हैं ।४६।

उर्ध्वकेशं महाश्मश्रु मूर्द्धप्रस्फुरिताधरम् ।
अष्टादशभुजक्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ॥५०॥
सर्वायुधोधोद्धृतकरं सर्वं दण्डेन तर्जयन् ।
सुमहामहिषारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥५१।
रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम् ॥५२॥
ग्रसंतमिव शैलेन्द्रमुद्गिरन्तमिवानलम् ।
मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभः ।५३॥
कालश्चांजनसंकाशः कृतांतश्च भयानकः ।
मारी चोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा ॥५४॥
विविधा व्याधमः कुष्ठा नानारूपा भयावहाः ।
शक्तिशूलांकुशधराः पाशचक्रासिपाणय: ॥५५॥
वज्रतुंडधरा रुद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः ।
नानायुधधराः सर्वे प्रहार्वीरा भयङ्कराः ॥५६॥

पापियोंके समक्ष उनका स्वरूप शिरपर लम्बे केश-बड़ी दाढ़ी-मूंछ-फड़-फड़ाते हुए अधर-अठारह भुजा क्रोधसे पूर्ण और अञ्जनके समान वर्ण वाला होता है ।५०। पापात्मा जीवोंके सामने तो धर्मराज समस्त शस्त्रों से सुसज्जित हाथों वाले-सब प्रकारके दण्ड देने फटकार देने वाले-महा महिषपर आरूढ़ और जलतीहुई आगके समानरक्त एवं तेजपूर्ण नेत्रों वाले दिखाई देते हैं ।५१। पापी प्राणियोंके लिये यमका स्वरूप रक्तमाला और वस्त्रतुल्य भयानक घोरगर्जना करने वाले और समुद्रका पान करते हुए से स्थित दिखाईदेते हैं ।५२। उस समय यमराज ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे हिमाचल पर्वतको निगल रहे हैं-अग्निका वमन कररहे हैं ऐसे स्वरूप में धर्मराज स्वयंस्थित रहते हैं और उनके समीपमें कालानलके तुल्य कांति वाले मृत्यु स्थित रहते हैं। यमराज के दूतभी इधर-उधर रहते हैं जिनका

स्वरूपभी भयाभह होता है और इनके अतिरिक्त अञ्जनके समान कृष्ण वर्ण वाला काल-भयानक राजमारी-उग्र महामारी तथा दारुण कालरात्रि भी वहाँ यमके निकटमें विद्यमान रहते हैं।५३-५४। वहाँ अनेक रूपवाले रोग, नाना विधि कुष्ठादि, शक्ति, त्रिशूल, अंकुश, पाश, चक्र खड्ग हाथों में धारण करने वाले दूत उपस्थित रहते हैं।५५। यमदूतोंके पास वज्र, तुण्डधारी रुद्र, छुरे तकस और धनुष होते हैं। ये सभी नाना भाँतिके अस्त्रों को धारण करने वाले हैं, महान् वीर और अत्यन्त भयानक होते हैं।५६।

असंख्याता महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः॥५७॥
अनेन परिचारेण वृत त घोरदर्शनम्।
यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त च भीषणम्॥५८॥
निर्भर्त्सयति चात्यन्तं यमस्तान्पापकर्मणः।
चित्रगुप्तश्च भगान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत्॥५९॥

यमदूतों की संख्या ही नहीं है अर्थात् असंख्य होते हैं। वर्णसे बिल्कुल काजलके तुल्य काले और सभी हाथों में अस्त्र-शस्त्र रखने वाले परम भयानक होते हैं।६७। ऐसे परिकरसे घिरे हुए धर्मराजके भयानक स्वरूप को, अति भयङ्कर चित्रगुप्त को पापी प्राणी देखाकरते हैं।५८। उस समय पापियों के सामने आतेही यमराज बुरीतरह ललकारके साथ डाँटते हैं। चित्रगुप्त अनेक धर्मके बचनोंसे बोधन किया करते हैं।५९।

नरकों के विभिन्न भेद वर्णन

भो भो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारकाः।
गर्विता रूपीवीर्य्येण परदारावमर्द्दकाः॥ १ ॥
यत्स्वयं क्रियते कर्म तदिद भुज्यते पुनः।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दूष्कृतं कृतम्॥ २ ॥
इदानीं कि प्रलप्यध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः।
भुज्यताँ स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्॥३॥

एवं ते पृथिवीपालाः सप्राप्तास्तत्समीपतः ।
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्कर्मबलदर्पिणः ॥ ४ ॥
तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः ।
संशिक्षयति धर्मज्ञो यमराजानुशिक्षया ॥ ५ ॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वसकारिणः ।
अल्पकालस्य राज्यस्कृते कि दुष्कृतं कृतम् ॥ ६ ॥
राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः ।
यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः ॥ ७ ॥

महाराज चित्रगुप्त ने पापात्मा प्राणियोंसे कहा-अरे महान् पाप-कर्म करने वालो ! दूसरोंके धनका हरण करने वालो ! अनेक रूप-लावण्य तथा वीर्य-पराक्रम से गर्वित होने वालो ! दूसरोकी स्त्रीसे रमण करने वालो ! तुमनेजो संसारमें ऐसे बुरेकर्म किये हैं अब उनके दण्डभोग भोगने पड़ेंगे। बताओ तुमने ही क्लेश के उत्पन्न करने के लिये ऐसे पाप क्यों किये थे ? ।१-२। इस समय तुम अपनेही कर्मोंसे उत्पीड़ित होतेहुए क्यों रोते चिल्लाते हो ? अब कर्मोंके फलोंको भोगो, इसमें अन्य किसीका कुछ भी दोष नहीं है ।३। सनत्कुमारजी ने कहा-इसी प्रकारसे अपने महाघोर बुरे कर्मोंसे युक्त और बलका घमण्ड रखने वाले राजालोग भी यमराजके सामने खड़े कियेजाते हैं ।४। महाप्रभु धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराजके आदेश से अत्यन्त क्रोधके साथ उन राजाओं को शिक्षा देते हैं ।५। चित्रगुप्त कहते हैं-अरे दुराचारमग्न ! प्रजाकासर्वनाश करनेवाले राजाओ ! तुमने बहुतही स्वल्प समयतक राज्यभोग करनेमें भी ऐसा पाप क्यों किया ? ।६। हे नृपवृन्द ! आप लोगोंने राज्य भोगनेके कारण अन्याय और बलसे प्रजाकोदण्ड किया है । अब प्रजाके सतानेका फल भोगो ।७।

क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभ कृतम् ।
तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥ ८ ॥
पश्यामि तत्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः ।
यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ॥ ९ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते ।
स्वानि कर्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठंति पार्थिवा ॥१०॥
इति कर्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्मराडयमः ।
तत्पापपंकशुद्ध्यर्थमिदं दुतानब्रबीत् च ॥११॥
भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीन्बलात् ।
नियमेन विशुद्धयध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥१२॥
ततः शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः ।
भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥१३॥
सर्वप्रायेण महताऽतीव तृप्ते शिलातले ।
आस्फलय ते तरसा वज्रेणेव महाद्रुमा ॥१४॥

अब वह तुम्हाराज्य और स्त्री कहाँ हैं जिनके लिये तुमने महान् पाप किये थे? अब यहाँपर तो तुम सबको छोड़कर अकेलेही उपस्थित हो ।८ मैं इससमय तुम्हारा वह समस्तबल नष्टहुआ देखरहाहूँ जिससे तुमने अपनी प्रजाका विध्वंस करडाला था । अबतो यमदूतोंके द्वारा अपराधीकी भाँति बँधेहुए कैसे हो ।९। सनत्कुमारजी ने कहा-यमराज के ऐसे अनेक बचन सुनकर राजा लोग चुपचाप अपने कर्मोंको सोचते और पछताते हैं ।१०। धर्मका न्याय करने वाले यमराज राजाओंके उन कर्मोंके उद्देश्यको लेकर उनके पापपंकसे शुद्धि पानेके लिये अपने दूतोंको आदेशदेते हैं । यमराजने कहा-हे चण्ड ! हे महाचण्ड ! तुम जबर्दस्ती इन राजाओं को पकड़ कर क्रमसे नरकरूपी आगमें डालदो और इनकी शुद्धिकरो और नियमका पूर्ण पालन करो ।११-१२। सनत्कुमारजीने कहा-यमराजकी आज्ञापातेही दूतों ने बलात्कार से राजाओंको पकड़ लिया और उनके दोनों पैरों को पकड़ कर जोरसे घुमाया और ऊपर उठाकर नीचे फेंक दिया ।१३। यम-दूत विशाल सन्तप्त शिलाओं को तलपर उन्हें पटककर महावृक्षके समान वज्र से बड़े बेगके साथ ताड़न करते हैं ।१४।

ततः सः रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः ।
निसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टः संप्राजायते ॥१५॥

ततः स वायुना स्पृष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः ।
ततः पापबिशुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥१६॥
अष्टाविंशतिसंख्याभिः क्षित्यध सप्तकोटयः ।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः ॥१७॥
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी ॥१८॥
षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी च भयानका ।
अष्टमी कालरात्रिश्च नवमो च भयोत्कटा ॥ १९ ॥
दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः ।
चण्डकोलाहला चान्या प्रचडा चंडनायिका ॥२०॥
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका ।
कराला दिकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता ॥२१॥

उस समय जब उनके कानोंसे रक्त टपकता है तब प्राणी जर्जर होकर चेतनाशून्य हो जाता है ।१५। फिर वायुका स्पर्शपाकर पुनः उनके द्वारा जीवित करके पापसे शुद्धि पानेके लिये नरकमें डाल दिया जाता है ।१६। वह नगर पृथ्वीके नीचे सातकरोड़ अट्ठाईसयोजन दूर सातवेंतलके अन्तमें घोर अन्धकारोंमें स्थित है ।१७। उन नरकोंके नाम इस प्रकार हैं प्रथम कोटि 'घोर' नामक है । उसके नीचे 'सुघोर' फिर क्रमसे अतिघोर, महाघोर और पांचवीं यातना का नाम घोर रूप है ।१८। छटी तलातल, सातवीं भयानक आठवीं कालरात्रि और नवमी यातनाका नाम भयोत्कटा है ।१९। इसकेभी नीचे दशवीं चण्ड,फिर महाचण्ड,चण्ड कोलाहल, प्रचण्ड चण्ड नामक हैं ।२०। इसी तरह फिर आगे पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषण नायिका, कराला, विकराला और बीसवीं वज्रा नामक है ।२१।

त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा ।
समा भीमबलात्युग्रा दीप्तिप्रायेति चाष्ठमी ॥२२॥
इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः ।
अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मकाः ॥२३॥

तासां क्रमेण विज्ञेयाः पञ्च पञ्चैव नायकाः ।
प्रत्येक सर्वकोटीनां नामतः सन्निबोधत: ॥२४॥
रौरवः प्रथमस्तेषां रुवते यत्र देहिनः ।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदति च ॥२५॥
ततः शीतं तथा चोष्णं पंचाद्या नायकाः स्मृताः ।
सुघोरः सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः ॥२६॥
महातमो विलोमश्च विलोश्चापि कंटकः ।
तीव्रवेगः करालश्च विकरालः प्रकंपनः ॥२७॥
महावक्रश्च कालसूत्रः प्रगर्जनः ।
सूचीमुखः सुनेतिश्च खादकः सुप्रपीडनः ॥२८॥

इनके बाद में त्रिकोणा, पञ्चकोना, सुदीर्घा, अखिलार्त्तिदा, समा-भीमबला, अभोग्रा और अन्तिम दीप्तमाया है ।२२। इस तरह घोर नरक कोटि के नामों वाली ये अट्ठाईस पापों की यातनायें होती हैं ।२३। उनमें से क्रम पाँच-पाँच नायक यातना समझनी चाहिये । इनमें से सब कोटियों में प्रत्येक नामसे विख्यात हैं ।२४। उनमें से प्रथम 'रौरव' है जहाँ जाकर सभी प्राणी पीड़ित होकर रोया करते हैं । महा रौरव की पीड़ा तो ऐसी विकट होती है कि बड़े पुरुष भी रुदन किया करते हैं ।२५। इसके बाद शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक हैं जिन्हें सुघोर, सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा गया है ।२६। महातम, विलोम, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकपन । ।२७। महावक्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन ।२८।

कुम्भीपाक सुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुणः ।
अङ्गारराशिभवन मेदोऽसृक्प्रहितस्ततः ॥२६॥
तीक्ष्णतुंडश्च शकुनिर्महासंवर्तकः क्रतुः ।
तप्तजतुः पङ्कलेपः प्रतिमांसस्त्रपूद्भवः ॥३०॥
उच्छ्वासः सुनिरुच्छ्वासो सुदीर्घः कूटशाल्मलिः ।
दुरिष्टः सुमहावादः प्रवाहः सुप्रतापनः ॥३१॥

ततो मेघो वृषः शाल्मः सिंहव्याघ्रगजाननः ।
श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकाननाः ॥३२॥
ग्रहकुंभीननक्राख्याः सर्पकूर्माख्यवायसाः ।
गृध्रोभूकजलौकाख्याः शार्दूलक्रथकर्कटाः ॥३३॥
मण्डूकः पूतिवक्त्रश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकः ।
कणधूम्रस्तथाग्निश्च कृमिगन्धिवपुस्तथा ॥३४॥
अग्नीध्रश्चाप्रतिष्ठश्च रुधिराभः श्वभोजनः ।
लालाभक्षान्त्रभक्षौ च सर्वभक्षः सुदारुणः ॥३५॥

कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित ।२९। तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्त्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव ।३०। उच्छ्वास, सुनिच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन, ।३१। और मेघ वृष, शाल्म, सिंह, व्याघ्र, हाथीके मुखवाले ।३२। मगर, कुम्भीन, नक्र नामवाले, सर्प, कच्छप, काग नामक, गिद्ध, उल्लू जलौका नाम वाले, गीदड़, ऊंट, कैंकड़े धाम वाले ।३३। मेंढ़क, प्रतिवक्त, रक्ताक्ष, पूति, मृतिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धि वपु । ।३४। अग्निध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्र भक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण ।३५।

कंटकः सुविशालश्च विकटः कटपूतनः ।
अम्बरीषः कटाहश्च कष्टा वैतरणी नदी ॥३६॥
सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः ।
असितालवनं घोरमस्थिभंगः सुपूरणः ॥३७॥
विलातसोऽसुयंत्रोपि कूटपाशः प्रमर्द्दनः ।
महाचूर्णः सुचूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा ॥३८॥
पर्वतः क्षुरधारा च तथा यमलपर्वतः ।
मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूपश्च शीतलः ॥३९॥
मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलांगलम् ।
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम् ॥४०॥

समोहमस्थिभगश्च तप्तचलमयोगुडम् ।
बहुदुखं महाक्लेशः कश्मलं शमल मलम् ॥४१॥
हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः ।
एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः ॥४२॥

कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक, वैतरणी, नदी ।३६। सुतप्त, लोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर अस्थिभङ्ग, सुपूरण ।३७। विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय ।३८। पर्वत, क्षुरधारा, यमल, पर्वत, मूत्र, विष्ठा, अश्रुकूप, क्षारकूप, शीतल ।३९। मूसल ऊखल, शिला, शकट, लांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशटक मण्डप ।४०। समोह, अस्थिभंग, तप्त, चलमय, गुड़, बहुदुःख, महाक्लेश, शमल, मलात, ।४१। हलाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर, तम ।४२।

अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पंचपंचकम् ।
कोटीनामानुपूर्व्येण पंच पंचैव नायकाः ॥४३॥
रौरवाय प्रबोध्यन्त नरकाणां शतं स्मृतम् ।
चत्वारिंशच्च्यतं प्रोक्तं महानरकमण्डलम् ॥४४॥
इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया ।
प्रसंख्यानाच्च वैराग्य शृणु पापगतिं च ताम् ॥४५॥

ये उपर्युक्त क्रमसे सात सौ नरक हैं और प्रतिकोटि में से पाँच-पाँच नायक हैं ।४३। रौरव के ही सौ नरक कहे गये हैं और चालीस सौ महानरक मण्डल कहा गया है ।४४। हे व्यासजी ! इस तरह मैंने आपको नरकों की स्थिति संख्याके सहित कही है । अब वैराग्य और उसकी पाप गति को भी सुनो ।४५।

नरक यातना वर्णन

एषु पापात्माः प्रपच्यन्ते शोष्यन्ते नरकाग्निषु ।
यातनाःभिर्विचित्राभिरास्वकर्मक्षयाद् भृशम् ॥ १ ॥

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धावतः ।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः ॥ २ ॥
सुगाढं हस्तयोर्बद्धा ततः श्रृङ्खलया नराः ।
महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३ ॥
ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलन्ति किंकरैः ।
दोल्यन्तश्चाति वेगेन विसञ्ज्ञा यांति योजनम् ॥ ४ ॥
अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः ।
पादयोर्बध्यते तेषाँ यमदूतैर्महाबलैः ॥ ५ ॥
तेन भारेण महता प्रभृश ताडिता नराः ।
ध्यायन्ति स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥६॥
ततोऽकुंशैरग्निवर्णैर्लोहदंडैश्च दारुणैः ।
हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकर्मिणः ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमार जी ने कहा-इन उक्त नरकों में पापात्मा प्राणी गिराये जाते हैं और वे वहांपर अनेक प्रकारकी यातनाओं द्वारा अपने कृत दुष्कर्मों के नाशहो जानेकर अत्यन्त तीव्र नरककी अग्नियोंमें सुखाये जाते हैं ।१। धातुओं के मैल को हटने के लिये जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्निमें रखते हैं उसी तरह पापी प्राणियोंको पाप-नाशके उद्देश्यसे ही अपने कर्मोंके अनुसारही नरकोंमें गिराया जाता है । २। वहाँ यमराज के दूत पापियोंके हाथों को श्रृङ्खलासे मजबूतीके साथ बाँधकर इसके पीछे महावृक्षकी शाखों में उन्हें लटकाते हैं ।३। तब वे पूर्ण यत्नद्वारा यमकिंकरों के फेंके हुए काँप उठते हैं और चेतना रहित होकर योजनों तक चले जाते हैं ।४। फिर महा बलवान यमदूत आकाशमें स्थितहोकर उनके पैरों में सौ भार लोहा बाँध देते हैं ।५। उस भारी बोझ से अत्यन्त ताड़ित मनुष्य अपने किये हुए दुष्कर्मों का स्मरण करते हैं और निश्चल एवं मौन रह जाया करते हैं ।६। इसके पश्चात् यमके दूत चारों ओर से अंकुशों तथा अग्नि के तुल्य दारुण लोहे के दण्डों से पीटते हैं ।७।

ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः ।
समन्ततः प्रलिप्यन्ते तीव्रेण तु पुनः पुनः ॥ ८ ॥

द्रुतेनात्यंतलिप्तेन कृत्तांगा जर्जरीकृताः ।
पुनर्विदार्य्यं चांगानि शिरसः प्रभृति क्रमात् ॥ ९ ॥
वृंताकवत्प्रपच्यते तप्तलोहकटाहके: ।
विष्ठा पूर्णे तथा कूपे कृमीणां निचये पुनः ॥१०॥
मेदोऽसृक्पूयपूर्णायां वाप्यां क्षिप्यति ते पुनः ।
भक्ष्यंते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥११॥
श्वभिर्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रै रौद्रैश्च विकृताननैः ।
पच्यन्ते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्तांगारराशिषु ॥१२॥
भिन्नाः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्मणा ।
तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः ॥१३॥
तिला इव प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये जनपिंडकाः ।
भ्रज्यते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा ॥१४॥

इसके अनन्तर बार-बार अत्यन्त जलते हुए आगके अङ्गारों से उनका सारा शरीर लिप्त किया जाता है।८। अत्यन्त लिप्त होने के कारण छिन्नाङ्ग और अति जर्जरी भूत होकर क्रमशः मस्तक के विदीर्ण होनेपर पके हुए बैंगन के सदृश लोहे के संतप्त बड़े कड़ाह में पकाये जाते हैं। इसी तरह पुनः विष्टासे भरे हुए कूपमें और क्रीड़ोंके समुदाय में डाल दिये जाया करते हैं।९-१०। इसके अनन्तर उन पापी मनुष्यों को चर्बी, रुधिर और मवादसे परिपूर्ण बावड़ी में फेंक दिया जाया है। वहाँ से बुरी तरह बहुत ही तीक्ष्ण कीड़ोंके द्वारा तथा लोहे जैसी चोंचवाले कौओं से काटे और खाये जाते हैं।११। इसी तरह कुत्ते डाँस, भेड़िये, भयानक और अत्यन्त विकट मुँह वाले बाघ आदि हिंसक पशुओं से काटे जाते हैं तथा जलते हुए अङ्गारों में मछली की भाँति पकाये जाते हैं।१२। वहाँ फिर ये प्राणी अपनेही किये हुए बड़े-बड़े पापों के कारण अत्यन्त तेज त्रिशूल के छेदन हुए कोल्हू में डाल दिये जाते हैं।१३। वहां तिलों के समान उनके शरीर पीसे जाते हैं और खूब सन्तप्त एवं आग से तपे हुए लोहे के पात्रों में उनकी भुनाई की जाती है।१४।

तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः ।
बहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीडयोरसि पादयोः ॥१५॥

यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्यापि सर्वतः ।
निःयेषनरकेष्वेवं क्रमन्ति क्रमशो नराः ॥१६॥
नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा यमयातनाः ।
याम्यंश्च दीयये व्यास सर्गेषु सुकष्टदाः ॥१७॥
ज्वलदंगारमादाय मुखमापूर्य ताड्यते ।
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनः पुनः ॥१८॥
घृतेनात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम् ।
इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य हन्यते ॥ १९ ॥
विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि पूर्यमाणाः क्वचित्क्वचित् ।
परिष्वजति चात्यग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् ॥२०॥
हन्यन्ते पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः ।
दन्तुरेणातिकुंठेन क्रकचेन बलीयसो ॥२१॥

तेलमे पूर्ण गर्म-गर्म कड़ाहमें बार-बार उनके पैर और हृदय में पीड़ा देकर जिह्वाको पकाया जाता है ।१५। इसी प्रकारसे नरकों की बड़ी ही भयानक तीव्र यातनायें पाकर पापी मनुष्य समस्त नरक में क्रम से भेजे जाते हैं ।१६। हे व्यासजी ! इन सम्पूर्ण नरकोंकी यातनायें अत्यन्त कष्ट देने वाली बहुत ही अद्भुत होती है । वहाँ जबर्दस्ती से उन यमके दूतों के द्वारा मनुष्य के सभी अंगोंको महान कष्ट दिया जाता है ।१७। जलते हुए अंगारे और कोयले मुँह में भरकर ताड़ना दी जाती है और संतप्त अंगारों से तथा तामे की शलाकाओं से जलाया जाता है ।१८। कभी-कभी गर्म तेल या घृत मुख में भरकर खूब पीड़ा देकर पीटा जाता है ।१९ कहींपर मल और कीड़ों से भरे हुए अत्यन्त उग्र लोहे की शाल्मली को लिपटा देते हैं ।२०। इसके पश्चात् सुर्ख गर्म लोहे की घनों से पीठ में चोट दीजाती है और बड़े-बड़े दाँतोंवाले आरोसे चिराई की जाती है ।२१

शिरः प्रभृति पीडयन्ते घोरैः कर्मभिरात्मजैः ।
खाद्यंते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम् ॥२२॥
अन्नं पानं न दत्तं यैः सर्वदा स्वात्मपोषकैः ।
इक्षुवत्ते प्रपीडयते जर्जरीकृत्य मुद्गरैः ॥२५॥

अमिताालवने घोरे छिद्यंते खण्डशस्ततः ।
सूचीभिर्भिन्नसर्वांगास्तप्तशूलाग्ररोपिताः ॥२४॥
संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यंते न म्रियंति च ।
तथा च तच्छरीराजि सुखदुःखसहानि च ॥२५॥
देहादुत्पाट्य मांसानि भिद्यंते स्वैश्च मुद्गरैः ।
दंतुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥२६॥
निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके चिरम् ।
उत्ताडयन्ते तथोच्छ्वासे वालुकासदने नराः ॥२७॥
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैर्वधैः ।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदंति च ॥२८॥

उनके ही घोर दुष्कर्मोंके कारण उनके मांस खाये तथा उनका रुधिर पीया जाता है । वहाँ नरकोंमें पापात्मा पुरुष इसी भाँति परम पीड़ित किये जाते हैं ।२२। जिन्होंने कभी किसीको अन्न का दान न देकर केवल अपने ही शरीर का पोषण किया था वे वहाँ बड़े-बड़े मुगदरों से खूबही कूटे तथा गन्ने के समान पेरे भी जाते हैं ।२३। फिर महाघोर असिताल वन में खण्ड खण्ड करके छेदित होते हैं और सुईयों से उनके समस्त अंग भिन्न हो जाते हैं । इसके पश्चात् तपाये हुए त्रिशूल पर रख दिया जाता हैं ।२४। इस तरह वहाँ उन पापी प्राणियों को अत्यन्त कष्ट का अनुभव होता है किन्तु मरते नहीं उनको तो केवल दुःखका अनुभव करनेके लिये ही ऐसी पीड़ा दी जाती है और उनका शरीर वह सभी सहन करनेके योग्य होता है ।२५। अति बलवान् दन्तुर आकार वाले घोर यमदूतों के द्वारा मुगदरों से देहका मांस उखाड़ कर भेदन किया जाता है ।२६। निरुच्छ्वास नाम वाले नरकमें बिना साँस लिये ही स्थिर रहना पड़ता है । उच्छ्वास नामक नरक में मनुष्य बालूके घर में ताड़ित किये जाते हैं ।२७। रौरव नामक नरक में रुदन करते हुए पापी मनुष्य अनेक वधों से पीड़ित होते हैं और महारौरव नरक में तो बड़े-बड़े पुरुष भी रो पड़ते ।२८।

पत्सु वक्त्रे गुदे मुण्डे नेत्रयोश्चैव मस्तके ।
निहन्यंते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशंकुभिः ॥२९॥

सुतप्तवालुकायां सु प्रयोज्यंते मुहुर्मुहुः ।
जतुपके भृशं तप्ते क्षिप्ताः कृन्दन्ति विस्वरम् ॥३०॥
कुम्भीपाकेषु पच्यते तप्ततैलेषु वै मुने ।
पापिनः क्रूरकर्माणोऽस्मह्यॆषु सर्वथा पुनः ॥३१॥
लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यंते दुःखदेषु वै ।
नानास्थानेषु च तथा नरकेषु पुनः पुनः ॥३२॥
सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः ।
पापी पुण्यविहीनश्च ताड्यते यमकिंकरैः ॥३३॥
लोहकुम्भे विनिक्षिप्ताः श्वसन्तश्चशनैः शनैः ।
महाग्निना प्रपच्यते स्वपापैरेव मानवा ॥३४॥
दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्ध्वा प्रपीड्यते शिलासु च ।
क्षिप्यंते चान्धकूपेषु दश्यते भ्रमरैर्भृशम् ॥३५॥

पैरोंमें, गुदामें, मुखमें, शिरमें, नेत्रोंमें सर्वत्र अत्यन्त तपी हुई लोहेकी शलाकाके द्वारा अत्यन्त ताड़ना दीजाती है ।२९। वहाँ खूब तपीहुई रेतमें उन्हें डालदिया जाता है तथा जीवोंसे परिपूर्ण कीचड़में फेंकदेते हैं जहाँकि स्वरहीन होकर वे रुदन कियाकरते हैं ।३०। वे मुने ! कुम्भीपाक नामवाले नरकमें अत्यन्त तपाये हुए तेलमें पापी लोगों को डालकर पकाते हैं । यह यातना उनको दीजाती है जो बहुत ही क्रूरतासे पूर्ण करनेवाले इस संसार में रहे होते हैं ।३१। नरकोंमें ऐसे उग्र दुष्कर्म करने वाले पापात्मा मनुष्यों को अत्यन्त कष्टदायक लालाभक्ष नरकों में तथा अनेक ऐसे ही भीषण नरकोंमें बारम्बार गिराया जाता है ।३२ सर्वथा पुण्यसे हीन महापापी प्राणियोंको महान्क्लेश देनेवाले सूचीमुख नामक नरकमें यमदूतोंके द्वारा बलात् गिरा दियाजाता है और वहाँ अनेकतरहकी ऊारसे ताड़नाभी दी जाती है ।३३। लोहकुम्भमें पतितपापी धीरे-धीरे साँस लिया करते हैं । अपने पाप कर्मों के कारण वहाँ मनुष्य महाग्नि के द्वारा पकाये जाते हैं ।३४।दृढ़ रस्सीसे बाँधकर शिलाओं पर यातना दीजाती है तथा अन्ध कूपों में डाल दिये जाते हैं जहाँ भ्रमरोंसे वे खूब ही डसे जाया करते हैं ।३५।

कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः ।
सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ॥३६॥
महाज्वालेऽत्र नरके पापाः क्रन्दन्ति दुःखिताः ।
इतश्चेतश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्चिषा ।३७॥
पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्यां विन्यस्तस्कंधयोजिते ।
तयोर्मध्येन चाकृष्य बाहुपृष्ठेन बाढतः ॥३८॥
बद्धाः परस्पर सर्वे सुभृशं पाशरज्जुभिः ।
बद्धपिण्डास्तु दृश्यते महाज्वाले तु यातनाः ॥३९॥
रज्जुभिर्वेष्टिताश्चैव प्रलिप्ताः कर्द्दमेन च ।
करीषतुषवह्नौ च पच्यंते न म्रियंति च ॥४०॥
सुतीक्ष्ण चरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च ।
आस्फाल्य शतशः पापाः रच्यते तृणवत्ततः ॥४१॥
शरीराभ्यंतरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः ।
भक्ष्यते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद् भृशम् ॥४२॥

जब कीड़ों से काटे हुए होकर उनके सब अङ्ग छिन्न एवं विदीर्ण हो जाते हैं तो फिर उन्हें अत्यन्त तपी हुई भूमलमें फेंक देते हैं ।३६। इस महान् ज्वालावाले नरकमें पापी परम उत्पीड़त एवं दुःखित होकर रोया करते हैं और इधर-उधर लपट से भस्मीभूत होकर दौड़ लगाया करते हैं ।३७। मुखों द्वारा पीठपर लाकर कन्धे पर रखके बाहु तथा पीठ से या दोनोंके मध्यभाग से अत्यन्त वेगसे खींचकर पाशकी रस्सोसे बंधेहुए समस्त प्राणी महा-ज्वाल नामक नरकमें बद्ध पिण्ड हुए सब यातनाओं को देखा करते हैं ।३८-३९। नरक में पापी पुरुष रस्सी से बद्ध तथा कीचड़ से लिप्त आरण्यक उपलों व भुस की अग्नि में पकाये जाते हैं और मरते नहीं हैं, कष्टका घोर अनुभव किया करते हैं ।४०। कठोरतम शिलाओं पर बड़ी तेजीसे जाते हुए सैकड़ों स्थानों में ताड़न करके तिनकों की तरह भूने जाते हैं ।४१। शरीरके अन्दर प्रविष्ट तीव्र मुख वाले कीड़ोंसे अपने देहके होने के कारण खूबही खाये जाते हैं ।४२।

क्रमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसस्थिराशिषु ।
तिष्ठत्युद्विग्नाहृदया पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥४२॥
तप्तेन न वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते ।
अधोमुखोर्ध्वपादश्च तातप्यंते स्म वह्निना ॥४३॥
वदनांतः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम् ।
ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताड्यन्ते च मुद्गरैः ॥४४॥
इत्थं व्यास कुकर्माणो नरकेषु पचंति हि ।
वर्णयामि विवर्णत्वं तेषां तत्त्वाथ कर्मिणाम् ॥४५॥

कीड़ों के समुदाय में फैंके हुए तथा पीब माँस और अस्थियों के मध्यमें डालेहुए अत्यन्त दुःखित मनमें उन्हें रहना पड़ता है ।४२। तपेहुए वज्रलेप से उनका शरीर लिप्त रहता है और उनका मुख नीचे की ओर और पैर ऊपर करके फिर ताप दिया जाता है जिसके कारण बड़ी वेदना होती है ।४३। वहाँ पापी पुरुषों के मुखमें अन्दर अत्यन्त तप्त लोहेकी गदा दी जाती है जिसे वे विवश होकर खाते हैं और यमके दूतोंके द्वारा ऊपरसे खूब ही ताड़ित भी किया जाता है ।४४। हे व्यासजी ! इस संसार में बुरे कर्म करने वाले प्राणी परलोक में जाकर महान् से महान् नरकों की यातनायें भोगा करते हैं । अब मैं पापी पुरुषों के तत्त्व का वर्णन करता हूँ ।४५।

नरक के विशेष कष्टों का वर्णन

मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति ।
जिह्वार्द्धकोशविस्तीर्णैर्हलैस्तीक्ष्णैः प्रपीड्यते ॥ १ ॥
निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम् ।
विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखामापूर्य हन्यते ॥ २ ॥
ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान् ।
विद्रवंति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमन्ति च ॥ ३ ॥
काममुद्वर्तनाभ्यंगं स्नानपानाम्बुभोजनम् ।
क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः ॥ ४ ॥

पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयंत्रादिपीडनैः ।
तिरयाग्निषु पच्यंते यावदाभूतसंप्लवन् ॥ ५ ॥
तेन तेनैव रूपेण ताडयन्ते पारदारिकाः ।
गाढमालिंग्यते नारी सुतप्तां लोहनिर्मिताम् ॥ ६ ॥
पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्वि समंततः ।
दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिंगन्ति रुदति च ॥ १० ॥

श्री सनत्कुमार जी ने कहा-मिथ्या शास्त्रमें प्रवृत्ति रखने वाला पुरुष द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है और वहाँ जीव के समान आधे कोस तक फैले हुए हलों से पीड़ित होता है ।१। जो अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाला पुरुष अपने माता-पिता को ललकारता है । तथा गुरुको फटकार देता है वह वहाँ कीड़ों से पूर्ण विष्ठा मुखमें भरकर पीटा जाता है ।१। जो शिव के मन्दिर-बाग-बावड़ी तथा कूाको तोड़ते हैं या सरोवर को नष्ट करते हैं अथवा ऐसे स्थान का नाश किया करते हैं जहाँ मनुष्य रमण करते हैं किम्बा किसी ब्राह्मण के स्थान को नष्ट भ्रष्ट करते हैं वे प्रलय काल तक नरक की अग्नि में पड़े रहा करते हैं ।३। जो मनुष्य काम क्रीड़ा के मदमें डूबे हुए उद्वर्त्तन (उबटन) स्नान-पान-अल-भोजन क्रीड़ा और मैथुन तथा द्यूत करते हैं वे अनेक तरह के कोल्हू के घोर उत्पीड़िन से वहाँ नरक में क्लेशित किये जाया करते हैं और प्रलयके समय पर्यन्त नरक की महाग्नि में पड़े हुए दुःख भोगते रहते हैं ।४-५। जो पराई स्त्री के साथ भोग करते हैं वे वहाँ नरक में उसी प्रकार से ताड़ित किये जाते हैं । लोहे की संतप्त स्त्री से उन्हें आलिंगन कराया जाता है जिससे उनका सारा शरीर झुलसा जाता है ।६। पूर्व के आर आकार वाले पुरुष सब ओर से जलते लगने लगते हैं और व्यभिचारिणी का बड़े बेग से आलिंगन करके रोते जाते है ।७।

ये शृण्वंति सतां निंदां तेषां कर्णप्रपूरणम् ।
अग्निवर्णैभ्यः कीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥ ८ ॥
त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः पुनः ।
सुतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा पुनः ॥ ९ ॥

क्रमादापूर्य कर्णास्तु नरकेषु च यातना: ।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवंत्येता: समतत: ॥१०॥
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातना: ।
भवन्ति घोरा: प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च ॥११॥
स्पर्शदोषेण ये मूढ़ा: स्पृशंति च परस्त्रियम् ।
तेषाँ करोऽग्निवर्णाभि: पांसुभि, पूर्यते भृशम् ॥१२॥
तेषां क्षारादिभि: सर्वै: शरीरमनुलिप्यते ।
यातनाश्च महाकष्टा: सर्वेषु नरकेषु च ॥१३॥
कुर्वन्ति पित्रोर्भृकुटिं करनेत्राणि ये नरा: ।
वक्त्राणि तेषां सींतानि कीर्यंते शंकुभिर्दृढम् ॥१४॥

जो यहाँ सत्पुरुषोंकी निन्दा किया करते हैं उनके वहाँ नरक में आगके तुल्य तप्त लोहे तथा तामेकी कीलोंसे कान भर दिये जाते हैं ।८। इसके अनन्तर रांग और पीतल गलाकर जल-दूध या तप्त तेज तेलसे किम्बा बज्र लेपसे क्रमश: कानों को भरकर यह अत्यन्त वेदना सभी नरकों में क्रमसे दी जाती है ।९-१०। इसीतरह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वारा किये गये पापों से तथा प्रत्येक शरीर के अंगोंसे किये गये पापों के क्रम के अनुसार नरकमें बहुत सख्त यातना मिलती है ।११। जो पुरुष केवल मूढ़ता वश स्पर्शके दोषसे ही पराई स्त्री का स्पर्श हाथ से किया करते हैं उनके हाथ अग्नि के समान सन्तप्त लाल धूलि से भरकर जलाये जाते हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर गर्म राख आदिसे दिप्त किया जाता है । इस तरह सभी नरकों में बहुत ही कष्टदायक पीड़ा दी जाती है ।१२-१३। जो मनुष्य संसारमें अपने माता-पिता को हाथ या आखें दिखाया करते हैं उनके मुँह ऊपर तक दृढ़ता के साथ कीलों से भर दिये जाते हैं ।१४।

यैरिन्द्रियैर्नरा ये च विकुर्वंति परस्त्रियम् ।
इन्द्रियाणि च तेषाँ वै विकुर्वंति तथैव च ॥१५॥
परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धा: स्तब्धेन चक्षुषा ।
सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम् ॥१६॥

क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वा इहैव यमयातनाः ।
भवन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न संशयः ॥१७॥
देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते ।
लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्यते ॥१८॥
ये देवारामपुष्पाणि लोभात्सगृह्य पाणिना ।
जिघ्रन्ति च नरा भूयः शिरसा धारयन्ति च ॥१९॥
आपूर्यते शिरस्तेषां तप्तैर्लोहस्य शकुभिः ।
नासिका वातिबहुलैस्ततः क्षारादिभिर्भृशम् ॥२०॥
ये निंदन्ति महात्मान वाचकं धर्मदेशिकम् ।
देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्मशास्त्रं च शाश्वतम् ॥२१॥
तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दंतसन्धिषु ।
तालुन्योष्ट नासिकायाँ मूर्ध्नि सर्वांगसन्धिषु ॥२२॥
अग्निवर्णास्तु तप्ताश्च त्रिशाखा लोहशंकवः ।
आखिद्यते च बहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ॥२३॥

जिस अपनी इन्द्रियों से मनुष्य पराईस्त्रीको दूषित कियाकरते हैं उनकी वही इन्द्रिय विकृत होजाती है ।१५। रूपके लालची जो पुरुष चंचल नेत्रों से पराई स्त्रीको देखते हैं उनके नेत्र नरक में अग्नि के समान लाल गर्म सुईयोंसे तथा गर्म राखसे भर दिये जाते हैं ।१६। हे श्रेष्ठ मुनिवर ! नरक में इस प्रकारसे यमराजके द्वारा दी हुई यातनायें प्राप्यहोती है-यह सर्वथा अक्षरशः सत्य है-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१७। जो पुरुष देवता-अग्नि-गुरु और ब्राह्मणों को दिये बिना ही स्वयं खा लेते हैं, उनकी जीभ और मुँह लोहे की सैंकड़ों कीलों से भर दिये जाते हैं ।१८। जो मनुष्य देवता और बागके पुष्पों को हाथ से लेकर सूंघते हैं और फिर शिर पर धारण कर लेते हैं उनका शिर तप्त लोहे की कीलोंसे ठोका जाता है और उनकी नासिका में गर्म राख आदि भरदी जाया करती है ।१९-२०। जो पुरुष महात्मा-धर्मात्मा-उपदेशक-देवता-अग्नि-गुरु और भक्तोंकी तथा सनातन धर्मकी एवं धर्मशास्त्रकी निन्दाकरते हैं उनके हृदय, कंठ तथा जिह्वा

में तथा दाँतों की सन्धियों में, तालु में, ओटों में, नासिका में, मस्तक में तथा समस्त अंगों के जोड़ों में अग्नि के तुल्य तप्त तीन शिखा वाली कीलें मुद्गरों से ठोक दी जाती हैं ।२१-२२-२३।

ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्यंते हि समंततः ।
यातनाश्च महत्यो वै शरीरस्याति सर्वतः ॥२४॥
अशेषनरकेष्वेव क्रमन्ति क्रमश पुनः ।
ये गृह्णन्ति परद्रव्य पद्म्यां विप्र स्पृशंति च ॥२५॥
शिवोपकरण गां च ज्ञानादिलिखित च यत् ।
हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्यंते समंततः ॥२६॥
नरकेशु च सवेषु विचित्रा बहुयातनाः ।
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादेसमुद्भवाः ॥२७॥
शिवायतनपयन्ते देवारामेषु कुत्रचित् ।
समुत्सृजति ये पापाः पुरीष मूत्रमेव च ॥२८॥
तषाँ शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यंते लोहमुद्गरैः ।
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तथा त्वापूर्यंते पुनः ॥२९॥

इसके पश्चात् जलती हुई राखसे समस्त अंग में लेपन किया जाता है जिससे सम्पूर्ण शरीरमें पूरी यातना होती है ।२४। जो कोई पराये धन को ले लेते हैं तथा पैरोंसे ब्राह्मण के शरीर का स्पर्श करते हैं वे क्रम से सभी नरकों में जाकर पूरी यातना भोगते हैं ।२५। जो शिव या किसी भी देवता की पूजा की वस्तुओं को, गायको मथा ज्ञान के लेख एवं ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ को पैरों से छूते हैं उनके हाथ पैर आदि कीलों से ठोके जाते हैं ।२४ उनको अन्य सभी नरकों में जाकर हाथ-पैरों की बहुत कड़ी यातनायें भोगनी पड़ती हैं जिनसे अत्यन्त कष्ट होता है ।२७। जो पापात्मा पुरुष शिव-मन्दिर की सीमा में देवोद्यान में किसी भी स्थान पर मल या मूत्र का त्याग किया करते हैं उनकी अण्डले सहित उपस्थेन्द्रिय लोहे के मुद्गरों से पीसी जाती है तथा अग्निके समान तप्त सुइयोंसे पीसी जाती है ।२८-२९

ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनः पुनः ।

द्रुतेन पूर्यंते गाढं गुदे शिश्ने च देहिपः ॥३०॥
मना सर्वेन्द्रियाणाँ च यस्माद् दुःखं प्रजायते ।
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया ॥ ३१॥
अतिथि चावमन्यंते काले प्राप्ते गृहाश्रमे ।
तस्मात्ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ ॥३२॥
येऽन्नं दत्वा हि भुजति न श्वभ्यः सह वायसैः ।
तेषाँ च विवृत्तं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम् ॥३३॥
कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ।
उपद्रवैर्बहुविर्धरुग्रैरंतः प्रपीडयते ॥३४॥
श्यामश्च शवलश्चैव यममार्गानुरोधकौ ।
यो स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥३५॥
ये वा वरुणवायव्यायाम्या नैर्ऋत्यवायासाः ।
वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णान्तु मे बलिम् ॥३६॥
शिवमभ्यर्च्य यत्नेन हुत्वाग्नो विधिपूर्वकम् ।
शैवैर्भन्त्रैर्बलि ये च ददन्ते न च ते यमम् ॥३७॥

इसके अनन्तर उस पापीकी गुदा और लिगमें बहुत ही गर्म राख या खारी बस्तु भर दीजाती है ।३०। इसमें उन्हें ऐसी तीव्रवेदना होती है कि जिससे मन तथा समस्त इन्द्रियों को बड़ाही अधिक कष्टहोता है । जे। मनुष्य अपने पाप धन होने परभी तृष्णा या कृपणतासे बिल्कुल दान नहीं किया करते हैं और समयपर घरमें आये हुए अतिथिका तिरस्कार देते हैं इससे उन्हें बड़ाभारी पापलगता है और उस पापसे वे नरक में जाते हैं ।३१-३२ जे। कुत्ते और काकोंको बलि न देकर स्वयं भोजनकर लेते हैं उनका कंठ और मुख दोनों कीलों के द्वारा ताड़ित किये जाते हैं।३३। ऐसे पापी प्राणी कोड़े, हिंसक जन्तु, लोहेके समान सख्त चोंच वाले काकोंसे पीड़ित होते हैं और अन्य अनेक उपद्रवों से खूब ही नरकमें सताये जाते हैं।३४। यमराज के श्याम और सबल नाम वाले दो श्वान हैं जो उनके मार्ग को रोका करते हैं—मैं उन दोनों को बलि समर्पित करता हूँ—वे दोनों इन

बलि को ग्रहण करें। इस प्रकार से ही जो पश्चिम-वायव्य दिशाके तथा उत्तर-नैऋत्य दिशाके पुण्यात्मा कहे हैं वे मेरा बलिदान ग्रहण करें। जो यत्न पूर्वक शिव की पूजा कर और विधि सहित अग्निसे हवन करके शिव मन्त्रों द्वारा बलिदान किया करते हैं वे फिर यमराज का मुख नहीं देखते हैं ।३५-३६-३७।

पश्यंति त्रिदिवं यांति तस्माद्द्द्यादिदने ।
मण्डलं चतुरस्त्रं तु कृत्वा गंधादिवासितम् ।।३८।।
धन्वन्तर्यर्थमीशान्यां प्राच्यामिंद्राय नि क्षिपेत् ।
याम्यां यमाय त्वारुण्या सुदक्षोमाय दक्षिणे ।।३९।।
पिपृभ्यस्तु विनिःक्षिप्य प्राच्यामर्यमण ततः ।
धातुश्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिक्षिपेत् ।।४०।।
श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद् भुवि ।
देवः पितृमनुष्यश्च प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैं ।।४१।
वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते ।
स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः ।

ऐसा विधान नित्य नियमसे करने वाले लोग सीधे स्वर्ग लोक को ही चले जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन चार हाथका मण्डल बनाकर उसे गन्धाक्षतादिसे सुगन्धित करे। फिर ईशानदिशामें धन्वन्तरि वैद्य और पूर्वदिशा में इन्द्रदेवको बलिदानदेवे। उत्तरमें यमको और पश्चिममें सुदक्षोमको तथा दक्षिणमें पितरोंको बलिदेवे।३८-३९। प्राच्य दिशामें सूर्यको भाग देवे-द्वार देशमें धाता तथा विधाताको भाग देवे।४०। श्वानोंके लिये तथा श्वपतियों के वास्ते एवं पक्षियों के लिये जो भाग देना है उसे भूमि पर ही रख देना चाहिये। देवोंसे पितर और मनुष्यों से प्रेत-भूतों से गुह्यकों से पक्षी कृमि-कीटोंसे गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होते हैं।४१-४२।

हंतकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्ठयम ।
स्वहाकारं स्तने देवाः स्वधां च पितरस्तथा ।।४३।।
वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा ।

हुंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ॥४४॥
यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्विकाम् ।
करोति सतत काले साग्नित्वायोपकल्प्यते ॥४५॥
यस्तां जहाति वा स्वस्थस्तामिस्रे स तु मज्जति ।
तस्माद्दत्वा बलिं ताभ्यो द्वारस्थश्चिंतयेत्क्षणम् ॥४६॥
क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम् ।
भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात् ॥४७॥
अतिथियस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥४८॥
ततोऽन्नं प्रियमेवाश्नन्नरः श्रृङ्खलवान्पुनः ।
जिह्वावेगेन विद्धोऽत्र चिरं कालं स तिष्ठति ॥४९॥

स्वाहाकार–स्वाधाकार–वषट्कार तथा हन्तकार ये चारों गायकों स्तनों में रहते हैं। इस स्तन में से देवता स्वाहाकार को-पितृगण स्वधा को-देवता वषट्को और भूतेश्वर भी इसी को एवं मनुष्य हन्तकार को निरन्तर पान करते हैं ।४३-४४। जो मनुष्य गाय को श्रद्धाके साथ निरन्तर समय पर स्वभोजन देता है उसकी कल्पना साग्नित्व की जाती है ।४५। जो गाय को त्याग देता है, वह अस्वस्थ रहता है और तामिस्र नामक नरक में जाया करता है इसलिये इन उपर्युक्त सबको बलि देकर एक क्षण के लिए अपने द्वार पर स्थित होकर विचार करना चाहिये ।४६ प्रत्येक मनुष्य का परम आवश्यक कर्तव्य है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अपने भोजनमें से किसी एक भूखे अभ्यागत को या किसी भी ग्रामके निवासीको सविधि श्रेष्ठ अन्नसे भोजन करावे ४७। जिसके घरमें कोई अभ्यागत निराश लौटजाता है वह उस गृहस्थी को पापका पुञ्ज प्रदान समस्त पुण्य के सञ्चय को लेकर चला जाया करता है ।४८। अभ्यागत के निराश हो लौटजाने पर जो स्वयं भोजन करता है और स्वाद लिया करता है वह बहुत समय तक श्रृङ्खलायुक्त जीभ के वेग से विंधा हुआ रहता है ।४९।

यतस्तन्मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः ।

खादितुं दीयते तेषां भित्त्वा चैव तु शशोणितम् ॥५०॥
निःशेषतः कशाभिस्तु पीड्यते क्रमशः पुनः ।
बुभुक्षयातिकष्टं हि तथा चातिपिपासया ॥५१॥
एवमाद्या महाघोरा यातनाः पापकर्मणाम् ।
अन्ते यत्प्रतिपन्नं हि तत्संक्षेपेण सम्शृणु ॥५२॥
यः करोति महापापं धर्मं चरति नै लघु ।
धर्मं गुरुतरं वापि तथाबस्थे तयोः शृणु ॥५३॥
सुकृतस्य फल नोक्तं गुरुपापप्रभावतः ।
न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वितः ॥५४॥
तथोद्विग्नोऽतिसंतप्ता न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम् ।
अभाववादग्रतोऽन्यस्थ प्रतिकल्यं दिने दिने ॥५५॥
पुमान्यो गुरुधर्माऽपि सोपवासी यथा गृही ।
वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थितः ॥५६॥
तानि पापानि घोराणि सन्ति यैश्च नरो भुवि ।
शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥५७॥

नरक में ऐसे पापात्मा प्राणी के जीभके मांस को उचेल कर तिल भर प्रमाण के जन्तुओं को खानेको दिया जाता है । फिर उसके रुधिरको भेदन करके सारे शरीरको क्रमशः पीड़ित एवम् ताड़ित कियाजाता है । तब उस प्राणी से भूख-प्यासके कारण अत्यन्त कष्टके साथ चलाजाता है ।५०-५१ इस रीति से संसार के जीवन में पापकर्म करनेवालों की बहुतसी यातनायें होती हैं । अन्त में जो भी कुछ उन्हें प्राप्त होता है उसको बतलाताहूँ,उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।५२।जो पुरुष पापतो बहुत बड़ा और पुण्यबहुतही स्वल्प करता है या बहुत धर्म करता है -इन दोनोंकी दशा बतलाता हूँ उसे श्रवण करो ।५३। बड़े पापका प्रभाव भी बड़ा होता है और उससे थोड़े धर्म का फल नहीं मिला करता है । उस पापके प्रभावसे बहुत भोगोंमें फँसाहुआ भी उनमें सुख का अनुभव नहीं कियाकरता है ।५४। ऐसा पुरुष परम दुःखित एवं हृदयमें जलता हुआ रहकर भोजनके योग्य पदार्थोंमें कभी भी सुख नहीं

माना करता है। वह सर्वदा अपने लिये उनका अभाव ही माना करता है और दूसरों के आगे देख कर उसे दुःख होता है ।५५। जो अधिक धर्म करने वाला है वह उपवास करने वाले एक गृहस्थ के तुल्य धनवान् होकर सर्वदा नियममें स्थित रहकर अपनी पीड़ाका होना मानता ही नहीं है ।५६। ऐसे भी अत्यन्त महा घोर पाप हैं जिनके कारण मनुष्य पृथ्वी पर वज्रसे तड़ित हुए पर्वतके समान सैकड़ों ही भेद वाला हो जाता है ।५७।

॥ तर्पण तपस्या आदि परमार्थ का फल ॥

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा ।
सर्वेषाँ जीवपुंजानां तर्पण जीवनं स्मृतम् ॥ १ ॥
प्रपादानमतः कुर्यात्सुस्नेहाद्दनिवारितम् ।
जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकरं भवेत् ॥ १ ॥
इह लोके परे वापि सत्यं सत्यं न संशयः ।
तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागान्कारयेन्नरः ॥ ३॥
अर्द्धं पापस्य हरति पुरुषस्य विकर्मणः ।
कूपः प्रवृत्तपानायः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥ ४ ॥
सर्वं तारयते वंश यस्य खाते जलाशये ।
गावः पिवंति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ॥ ५ ॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् ।
सुदुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते ॥ ६ ॥
तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः ।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमाजी ने कहा-जलका दान समस्त दानों में बहुत ही श्रेष्ठ एवं बड़ा दान है। यह सदा समस्त जीवोंकी पूर्णतृप्ति करनेवाला होता है। यह जीवन देनेवाला मानागया है ।१। इसलिये बड़े ही प्रेम के साथ प्याऊ लगाकर जलका दान करनाचाहिए। जलाशयोंका निर्माण कराना बहुत ही आनन्दका देने वाला होता है ।२। मनुष्यको कूपतथा बावड़ी का निर्माण अवश्यही करना चाहिए। इससेइस लोक और परलोकदोनों स्थानों में परम

आनन्दकी प्राप्ति होती है यह अक्षरशः सत्य है। इसमें कुछ भी किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए ।३। जल परिपूर्ण कूप नित्यही पापकर्ममें प्रवृत्त होनेवाले पुरुषका आधापाप नष्टकर देता है ।४। जिसके द्वारा निर्मित झील या सरोवरमें गौ,ब्राह्मण,साधु और मनुष्य सदा जलपीते हैं उसका वंशतर जाया करता है ।५। ग्रीष्म कालमें जिसका जल बिना रोके हुए ही स्थित रहता है वह निर्माणकर्त्ता कभी-कभी घोर कठिनता तथा बड़ा दुःख नहीं पाया करता है ।६। बनाये हुए सरोवरोंके जो गुण बतलाये गये हैं अब मैं उनका वर्णन करता हूँ। जो तालाबके निर्माण करानेवाला मनुष्य होता है वह तीनों लोकों में सर्वत्र आदर के सहित पूजित होता है ।७।

अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्राविवर्जितम् ।
कार्तिसंजननं श्रेष्ठ तडागानां निवेशनम् ॥ ८ ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।
तडागः सुकृतो येन तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ९ ॥
चतुर्विधानां भूतानां तडागः परमाश्रयः ।
तडागादीनि सर्वाणि दिशन्तिश्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयंति जलाशयम् ॥११॥
प्रावृड्तौ तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्याह चात्मभूः ॥१२॥
शरत्काले तु शलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
गोसहस्रफल तस्य भवेन्नवात्र संशय ॥१३॥
हेमन्ते शिशरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति ।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥१४॥

तालाबोंका निर्माण करना, मित्रके घर में मित्रसे दुःख रहित मित्रता तथा कीर्त्तिका विस्तारकराने वाला अत्यन्तश्रेष्ठ होता है ।८। जिस व्यक्ति ने अपने किये हुए शुभ कर्मसे सरोवर बनवाया है उसका अनन्त पुण्य उसे मिलता है। बुद्धिमान मनुष्य धर्म अर्थ और कामको इस कारणसेही सफल

कहा करते हैं ।९। सरोवर चारप्रकार के प्राणियोंका परमआश्रय होता है। तड़ाग आदि समस्त जलाशय उत्तम लक्ष्मी के प्रदान करने वाले होते हैं ।१०। देव, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस, स्थावर, भूत (प्राणी) आदि सब जलाशय को आपका आश्रय बनाया करते हैं ।११। जिसके द्वारा निर्मित जलाशयमें वर्षा ऋतुमें जल रहता है उसकी अग्नि-होत्र करने के तुल्य पुण्य होता है ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ।१२। जिसके बनायेहुए सरोवरहे शरत्काल में जल भरा रहता है उसे एक सहस्र गोदान के समान पुण्यकी प्राप्ति हुआ करती है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।१३। जिसके सरोवरमें हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में जल ठहरता है वह अत्यधिक सुवर्ण के दान के समान पुण्य का फल प्राप्त करता है ।१४।

वसंते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥१५॥
मुने व्यासाथवृक्षाणां रोपणे च गुणाच्छृणु ।
प्रोक्तं जलाशयफलं जीवप्रीणनमुत्तमम् ॥१६॥
अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशांस्तु तारयेत् ।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत् ॥१७॥
तत्र पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।
परं लोकं गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान् ॥१८॥
पुष्पैः सुरगणान्सर्वान्फलैश्चापि तथा पितृन् ।
छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयन्ति महीरुहाः ॥१९॥
कन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवः ।
तथैवर्षियणाश्चैव संश्रयंति महीरुहान् ॥२०॥
पुष्पिताः फलवंतश्च तर्पयतीह मानवान् ।
इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥२१॥

बसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें जिसके निर्मित सरोवर में जल रहता है उसे अतिरात्रि तथा अश्वमेध यज्ञोंका फलप्राप्त होना मनीषी लोग करते हैं ।१५ हे मुने ! हे व्यास महर्षे ! मैंने जीवोंको संतुष्ट करनेवाले जलाशयके निर्माण

का पुण्य फल बता दिया है। अब वृक्षों के पुण्य के विषयमें वर्णन करते हैं उसे आप श्रवण करें।१६। जो कोई व्यक्ति वन में वृक्षोंको लगाता है वह व्यतीत हुए तथा आगे आनेवाले समस्त पितृ-वंशोंका उद्धार करदेता है। इसलिये वृक्षारोपण का पुण्य कार्य अवश्यही करना चाहिये।१७। ये लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्म में उस लगाने वाले के पुत्र सम होते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वह वृक्षारोपण कर्त्ता भी मृत्युगत होकर अक्षय लोकों को प्राप्त होता है।१८। लगाये हुए वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगण को, फलों से पितरों को, छाया से अतिथियों के इस तरह सबमें पूजक होते हैं।१८। किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषिगणसे सभी वृक्षों को अपना आश्रय बनाया करते हैं।२०। लोक में पुष्पित तथा फलित वृक्ष मनुष्योंको पूर्ण मानसिक एवं शारीरीक तृप्ति प्रदान कियाकरते हैं। इसलिये वे इस लोक तथा परलोक में धर्मके पुत्र कहे जाते हैं।२१।

तडागकृद् वृक्षरोपी चेष्टयज्ञश्च यो द्विजः।
एते स्वर्गान्न हीयते ये चान्ये सत्यवादिनः॥२२॥
सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः।
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव पर श्रुतम्॥२३॥
सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्।
सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सव प्रतिष्ठितम्॥२४॥
तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने।
आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥२५॥
सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च॥२६॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः।
सत्येनाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥२७॥
पालनं सर्व वेदानां सवतीर्थावगाहनम्।
सत्येन वहते लोके सर्व माप्नोत्यसंशयम्॥२७॥

जो द्विज सरोवर, बाग बनाने वाला तथा पंच महायज्ञ करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्गलोकसे नीचे नहीं पतित होता है।२१। सत्य ही

परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम आदरणीय शास्त्र है ।२३। सत्य ही सोने वालोंको जगाता है, सत्यही परम पद है, इस सत्य ने ही पृथ्वी मंडल को धारण कररखा है,इस परम श्रेष्ठ सत्य ही में कुछ विद्यमान रहता है ।२४। तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि, पितृ,पूजन,जल और विद्या आदि सभी इस एक सत्य ही में प्रतिष्ठित होते है ।२५। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, ब्रह्मचर्य है । सत्य ही ओंकार है और सत्य ही मन्त्रों वाली देवी सरस्वती है ।२६। सत्यके प्रभाव से यह वायु चलता है । सत्यकी शक्तिसे सूर्य देव संसारमें तपा करते हैं । सत्यसेही अग्नि जलती है और सत्यसेही स्वर्गकी प्राप्ति हुआकरती है ।२७। समस्त वेदोंकी प्राप्ति तथासमस्त तीर्थोंमें स्नानकरने का फलकेवल एक सत्यसेही प्राप्त हो जाता है। सत्यसे सभीकुछ मिलजाता है, इसमें कुछभी संशय नहीं है ।२८।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ।।२९।।
सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः ।
प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सचराचराः ।।३०।।
सत्यमाहुः परं धर्मः सत्यमाहुः परं पदम् ।
सत्यमाहुः प ब्रह्म तस्मात्सत्य सदा वदेत् ।।३१।।
मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
सत्यधर्मरतः सिद्धास्ततः स्वर्वं च ते गताः ।।३२।।
अप्सरोगणसंविष्टैर्विमानैः परिमातृभिः ।
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ।।३३।।
अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचि ह्रदे ।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं तत्परमं स्मृतम् ।।३४।।
आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।३५।।

सहस्त्रों अश्वमेधों का फल तथा लाखों अन्य यज्ञों का पुण्य तराजू में एक ओर रखो और एक ओर दूसरे पलड़ेमें सत्यको रखो तो सत्य वाला

पलड़ा ही नीचेकी ओर झुकेगा । अतः सत्य इन सबसे विशेष होता है ।२६
सत्यसे देवता, पितृगण, मनुष्य, सर्प, राक्षस आदि चर एवं अचरके सहित सम्पूर्णलोक प्रसन्न होते हैं ।३०। सत्यही सबसे श्रेष्ठ परम धर्म कहा गया है, सत्यही सर्वोत्तम परमपद बतायागया है और सत्यहीको साक्षात् परब्रह्मका स्वरूप माना गया है । इसलिये सर्वदा सत्यका ही भाषण करना चाहिये ।३१। सत्यमें परायण मुनि अति कठिन तपश्चर्या करके तथा सत्य स्वरूप धर्ममें प्रवृत्त सिद्ध सभी स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ।३२। अप्सराओं से प्रविष्टहुए विमानों के सहित परिमाताओंको सदा सत्य कहना चाहिये क्यों कि सत्य से अधिक धर्म कुछभी नहीं है ।३३। सत्यरूपी तीर्थका ह्रद परम अगाध, परम सिद्ध एवं अतिपवित्र है इनमें मनसहित स्नान करके अतुल सुख प्राप्त करना चाहिए । इसे सर्वोपरि परम स्थान कहागया है ।३४। जो सत्पुरुष अपने लिए, पराये काज के लिये या अपने पुत्र के हित के लिए झूंठ नहीं बोलते हैं वे मनुष्य निश्चय ही स्वर्ग के गामी होते हैं ।३५

वेदा यज्ञास्तथा मंत्राः संति विप्रेषु नित्यशः ।
नो भांत्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्य समाचरेत् ।।३६।।
तपसो मे फल ब्रूहि पुनरेव विशेषतः ।
स्वर्षां चैव वर्णानां ब्रह्मणाना तपोधने ।।३७।।
प्रवक्ष्यामि तपोऽध्याय सर्वकामार्थधकम् ।
सुदुश्वरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु ।।३८।।
तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम् ।
तपोरता हि ये नित्य मोदत सह दैवतैः ।।३९।।
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।
तपसा प्राप्यते कामस्तपः सर्वार्थसाधनम् ।।४०।।
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विंदते महत् ।
ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ।।४१।।
नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः ।
तपसा लभते सर्व मनसा यद्यदिच्छति ।।४२।।

वेद, यज्ञ तथा मन्त्र आदि असत्य बोलने वाले ब्राह्मणों में कभी शोभा नहीं दियाकरते हैं। इसलिये सदा सत्यही बोलना चाहिये।३६। व्यासजी ने कहा-हे तपोधन ! अब समस्त वर्णोंके तथा ब्राह्मणोंके तपस्याके फलका वर्णन कीजिये। मेरी पुनः एकबार सुननेकी इच्छाहोती है।३७। सनत्कुमार जी ने कहा-अब मैं समस्तकाम और अर्थका साधक और द्विजातियों द्वारा कठिनतासे करनेयोग्य तपके अध्यायका वर्णन करता हूँ। आपसब मुझसे श्रवण करिये।३८। तपको सबसे बड़ा बताया गया है, तपस्यासे ही विशेष फलकी प्राप्ति हुआ करती है,जो नित्यही तपश्चर्यासे अपनी प्रवृत्ति रखते हैं, वे देवताओं के सहित आनन्द का लाभ लिया करते हैं।३९। तपसे स्वर्ग मिलता है, तपहीसे यशकी प्राप्ति होती है,तपसे समस्त कामनाओंका लाभ होता है और तप ही सम्पूर्ण अर्थों का साधन होता।४०। तप से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है। तपसे ज्ञान तथा विज्ञान की सम्पत्ति मिलती है तपसे परम सौभाग्य और लोकोत्तर रूप-लावण्य प्राप्त होता है।४१। मनुष्य तपके द्वारा अनेक तरहकी वस्तुओं को पा लेता है, अधिक क्या-क्या बताया जावे तपका ऐसा विलक्षण प्रभाव है कि इसमें रत व्यक्ति मन से जो-जो भी इच्छा करता है सो उसे मिल जाता है।४२।

नातप्ततपसो यांति ब्रह्मलोकं कदाचन।
नातप्ततपसां प्राप्यः शङ्करः परमेश्वरः॥४३॥
यत्कार्यं किंचिदास्थाय पुरुषस्तपते तपः।
तत्सव समवाप्नोति परत्रेह च मानवः।४४।
सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुंगति॥४५॥
अपि सर्वेश्वरः स्थाणुर्विष्णुश्चेव सनातनः।
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्विताः।४६॥
अष्टाशिति सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तपसा दिवि मोदन्ते समेता दैवतैः सह॥४७॥
तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्रः सुरश्चरः।

तपसाऽपालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा ॥४८॥
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहिते रतौ ।
तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥४६॥

तपस्या के बिना न तो कभी ब्रह्म को पा सकते हैं और न परमेश्वर शिव ही प्राप्त किये जासकते हैं ।४३। मनुष्य जिस कार्य का उद्देश्य लेकर तप किया करता है वह सभी इसलोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त हो जाता है ।४२। मदिरा पान करने वाला, पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला ब्रह्म-हत्यारा और गुरु-पत्नीसे गमन करने वाला महा पातकी भी तप से तर जाया करता है और समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है ।४५। सबके स्वामी शिव, सनातन विष्णु, जगत्स्रष्टा ब्रह्मा, देवेन्द्र, इन्द्र, अग्नि आदि सब तपसे युक्त हैं ।४६। ऊर्ध्वरेता अट्ठासी सहस्र मुनिगण देवताओं के सहित सभी स्वर्ग लोक में तप से ही आनन्द करते हैं ।४७। तपके अतुल-असीम प्रभाव से राज्य की प्राप्ति होती है । तपसे सुरराज इन्द्र देव प्रति दिन सबका पालन किया करते हैं ।४८। समस्त लोकों के हित करने वाले सूर्य और चन्द्र देव, नक्षत्र, ग्रहादि सभी तप से ही नित्य प्रकाशित होते हैं ।४६।

न चास्ति तत्सुखं लोके यद्विना तपसा किल ।
तपसैव सुखं सर्वमिति वेदविदो विदुः ॥५०॥
ज्ञानं विज्ञानमारोग्य रूपवत्त्वं तथैव च ।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम् ॥५१॥
तपसा सृज्यते विश्वं ब्रह्माविश्वं बिना श्रमम् ।
पाति विष्णुर्हरोऽप्येति धत्ते शेषोऽखिलां महीम् ॥५२॥
विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ।
क्षत्रियोऽथाभवद्वि प्रः प्रसिद्धं त्रिभवे त्विदम् ॥५३॥
इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्यमुत्तमम् ।
श्रृण्वध्ययनमाहात्म्यं तपसोऽधिकमुत्तमम् ॥५४॥

संसार में ऐसा कोईभी सुख नहीं है जो बिना तपके प्राप्तहोजाताहो । तपसे ही सब सुख मिलता है वेदके ज्ञाता ऐसा ही कहते हैं ।५०। तपस्यासे

ज्ञाव-विज्ञान, आरोग्य, रूपवत्ता और सौभाग्य, सुखादि निरन्तर प्राप्त हुआ करते हैं।५१। तप से ब्रह्मा बिना किसी परिश्रम के संसार की विशाल रचना किया करते हैं, विष्णु इस महान् जगत्‌का रक्षण एवं पोषण करते हैं, शिव इस समस्त विश्व का संहार करते हैं और शेष इस भूमण्डल को धारण कियाकरते हैं।५२हे महामुने ! तपसेही गाधिके पुत्र विश्वामित्रजी ने क्षत्रिय जातिसे ब्राह्मणत्वको प्राप्तकिया और तीनोंलोकोंमें विख्यात होगये ।५३। हे महाप्राज्ञ! मैंने यह तपका उत्तम महात्म्य बतादिया, अब तप से अधिक श्रेष्ठ अध्ययनका माहात्म्य वर्णनकरताहूं उसेआप श्रवण करें।५४।

पुराण माहात्म्य वर्णन

तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः ।
योऽधीते ऋचमेकां हि फल स्यात्तत्समं मुने ॥ १ ॥
श्रुतेरध्यनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः ।
तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते ॥ २ ॥
जगत्तथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ।
बिना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥ ३ ॥
तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः ।
सम्बोधयति लोकं तं तस्मात्पूज्यः पुराणग ॥ ४ ॥
सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठ पुराणवित् ।
पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम् ॥ ५ ॥
यंबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञ कदाचन ।
पुराणज्ञः सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः ॥ ६ ॥
धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च ।
देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्मणे ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमारजी ने कहा-हे मुने ! वन में कन्द, मूल, फल खाकर तप करने के तुल्य एक वेद की ऋचा के पढ़ने का फल होता है ।१। श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके अध्ययनसे जो पुण्य प्राप्त करता है उसकेपाठ करनेसे दुगुना फल प्राप्त कियाकरता है ।२। हे मुने ! जिस तरह बिना दिवाकर औरचंद्र

के जगत् प्रकाशहीन रहता है, उसी तरह बिना पुराणके ज्ञानके यह सारा संसार प्रकाशशून्य-सा रहता है। अतः सदा पुराणों का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए।३। सर्वदा अज्ञानसे परिपूर्ण लोक को शास्त्र के द्वारा ही समझा जाता है। पुराण अज्ञान का भली भाँति निराकरण कर देता है। इसलिये पुराणों का वक्ता सदा पूजा के योग्य होता है।४। समस्त प्रकार के पात्रों के मध्य में पुराणों का ज्ञाता अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यह वस्तुतः पतनसे रक्षा किया करता है इसलिये इसे पात्र कहा जाता है।५। पुराणों के ज्ञान रखने वाले ब्राह्मण में मनुष्य बुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पुराणों का ज्ञानी विद्वान् सर्वज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, शिव गुरु होता है।६। परलोक तथा इस लोक में अपने कल्याणके लिये पुराण के ज्ञाता विद्वानको धन धान्य, सुवर्ण और वस्त्रादि देने चाहिए।७।

यो ददाति महीप्रीत्या पुराणज्ञाय सज्जनः।
पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम्॥ ८॥
महीं गांवा स्यदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान्।
यः प्रयच्छति पात्राय यस्य पुण्यफलं शृणु॥ ९॥
अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्मनि।
अश्वमेधफल चापि स फल लंभते पुमान्॥१०॥
महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टां फलवती शुभाम्।
स तारयति वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान्॥११॥
इह भुक्त्वाखिलान्कामानते दिव्यशरीरवान्।
विमानेन च दिव्येन शिवलोकं स गच्छति॥१२॥
न यज्ञैस्तुष्टिमायाति देवाः प्रोक्षणकैरपि।
बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः॥१३॥
शंभोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम्।
विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फलम्॥१४॥
राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः।
सूर्यलोकं च भित्वाशु ब्रह्मलोकं स गच्छति॥१५॥

जो सत्पुरुष पुराणवेत्ता को जो कि सच्चा सुपात्र होता है, श्रेष्ठ पदार्थ सप्रेम अर्पण करता है वह परम गतिको प्राप्त कियाकरता है ।८। जो कोई उत्तम सुपात्रको भूमि, गौ, रथ, अश्व और शोभन हाथीदेता है उसके महापुण्य का फल यह है कि दातामनुष्य इस जन्ममें तथा परलोकमें अक्षय मनोरथों की प्राप्तिके साथ-साथ अश्वमेघ यज्ञके पुण्यका फलभी प्राप्तकिया करता है ।९-१०। जो जुतीहुई सूफल देनेवाली भूमिका दानकरता है वह दश पहिले और दश अगले वंशजोंको तार दिया करता है ।११। इस जन्म में समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें सुन्दर शरीर धारण करके दिव्य विमानके द्वारा वह शिव लोकमें चला जाता है ।१२। सभी देव प्रोक्षणयुक्त यज्ञादि से तथा भेटोंसे और पुष्पादि उपचारों से, पूजा से इतने सन्तुष्ट नहीं होते जैसे कि पुराण-वाचनसे प्रसन्न होते हैं ।१३। शिवालय अथवा विष्णुदेवालय तथा सूर्य या अन्य किसीभी देव-मन्दिर में धर्म पुस्तक पुराण आदि का वचन जो कोई भी व्यक्ति करता है उसका फल यह होता है कि वह राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंके पुण्यका फल प्राप्त करता है और सूर्यलोक का भेदन करके अन्त में ब्रह्मलोक को चला जाता है ।१४-१५।

स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले ।
भुंक्ते निष्कटक भोगा न्नात्र कार्या विचारणा ॥१६॥
अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ॥१७॥
इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोरायतने शुभे ।
नान्यत्प्रीतकर शम्भोस्तथान्येषां दिवौकसाम् ॥१८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् ।
तथास्य श्रवण प्रेम्णा सवकामफलप्रदम् ॥ ९ ॥
पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाच्छिवलोकमवाप्नुयाम् ॥२०॥
राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ।
तत्पुण्य लभते शभोः कथास्रवणमात्रतः ॥२१॥

वह व्यक्ति ब्रह्मलोकमें सैकड़ों कल्पोंतक निवास कर फिर पृथ्वी पर राजाहोता है और निष्कंटकरूपसे भोगोंका उपभोग किया करता है। इसमें तनिक भी सन्देहका कोई अवसरनहीं है ।१६। देव प्रतिमाके सामनेबैठकर जोकोई जाप करता है वहभी सैकड़ों अश्वमेधोंके फलके तुल्यही पुण्य का भागी होता है ।१७। शिवालयमें इतिहास पुराणों की गाथाके प्रवचन के बिना शिव तथा अन्यकिसी देवताको प्रसन्न एवं सन्तुष्टकरनेका अन्यकोई उपाय ही नहीं है ।१८। इसीलिए पूर्ण प्रयत्न से पुराण ग्रन्थों का वाचन तथा श्रवण हरएक कल्याणकामी को करना चाहिए, क्योंकि यह एक ही उपाय ऐसा जो समस्तकामनाओंकी पूर्ति करदेनेवालाहोता है ।१६। शिव पुराणश्रवण करनेसे मनुष्य पापरहितहोजाता है और समस्तभोगोंकोपाकर शिव लोकको जाता है ।२०। राजसूय यज्ञ से तथा सौ अग्निष्टोम यज्ञों के करनेसेजो पुण्य मिलता है वही पुण्य शिवकीकथा सुनने से होता है ।२१।

सव तीर्थावगाहेन गवां कोटिप्रदानतः ।
तत् फलं लभते शम्भोः कथाश्रवणतो मुने ।।२२।।
ये शृण्वन्ति कथां शम्भोः सदा भुवनपावनीम् ।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः ।।१३।।
शृण्वतां शिवसत्कीर्ति सतां कीर्तयतां ताम् ।
पदाम्बुजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ।।२४।।
गतुं निःश्रेयप्तं स्थानं येऽभिवाँछन्ति देहिनः ।
कथां पौराणिकीं शैवीं भक्त्या शृण्वन्तु ते सदा ।।२५।।
कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तः सदा भवेत् ।
नियतात्मा प्रतिदिन शृणुयाद्वा मुहुर्टकम् ।।२६।।
यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्ता मानवी भवेत् ।
पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छांकरीं कथाम् ।।२७।।
शैवी कथां हि शृण्वानः पुरुषो हि मुनीश्वर ।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ।।२८।।

हे मुने ! समस्त शुभ तीर्थोंमें स्नान से तथा करोड़ गोदानसे जो महा- पुण्यका उदयहोता है वही फल मनुष्य शिवकी गाथाके सुनने या बांचनेसे

प्राप्त कर लेता है।२२। जो कोई लोक पावनी शिव-कथा सुनते हैं वेदर असल मनुष्य नहीं माने जाने चाहिए, किन्तु वे तो साक्षात् रुद्रही हैं— इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।२३। भगवान् शिव की सुन्दर कीर्त्ति का श्रवण करने वालों तथा कहने वालों के चरण की धूलि को मुनिगण ने पवित्र तीर्थ बताया है।२४। जो मनुष्य किसी भी कल्याणकारण स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि सदा नियम पूर्वक शिवपुराण की कथा का श्रवण या वाचन किया करें।२५-२६। यदि सदा पुराण-कथा सुनने में किन्हीं कारणों से असमर्थ हों तो किसी पुण्य मास में एक बार अवश्य ही कथा का श्रवण करें।२७। हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य शिव कथा सुनते हैं वे अपने कर्म रूपी विशाल वन को भस्म करके संसार से तर जाते हैं।२८।

कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा क्षणं च वा ।
ये श्रृण्वंति नरा भक्त्या य तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥२६॥
यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शंभोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चल भवेत् ॥३०॥
विशेषतः कलौ व्यास पुराण श्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ॥३१॥
पुराणश्रवणं शंभोर्नामसंकीर्तनं तथा ।
कल्पद्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः ॥३२॥
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम् ।
हिताय विदधे शंभुः पुराणाख्यं सुधारसम् ॥३३॥
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नवामृतं पुमान् ।
शंभोः कथामृतापोनात्कुलमेवाजरामरम् ॥३४॥
या गतिः पुण्यशीलानां यज्विनां च तपस्विनाम् ।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु ॥३५॥

जो पुरुष क्षणमात्र भी भक्तिपूर्वक शिवकी कथा सुनते हैं उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है।२६। हे मुने जो समस्त दानोंमें या सम्पूर्ण यज्ञों में पुण्य होता है वह फल भगवान् शिवके पुराणके सुननेमात्रसेही होजाता

है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।३०। हे व्यासजी ! कलयुग में खास तौर से पुराण स्रवण के बिना मनुष्यों को मुक्ति दान में परायण अन्य कोई भी धर्म नहीं कहा गया है ।३१। मनुष्यके लिये शिवपुराणका स्रवण और नाम-संकीर्तन कल्पबृक्ष के फलके समान सुन्दर बताया गया है,इसमें कुछभी संशय नहीं है ।३२। इस कलियुग में धर्माचार के त्याग देने वाले दुर्बुद्धि मानवों के हितके लिये भगवान् शिवने अपने नाम वाला पुराण नामक अमृत रसका विधान किया है ।३३। अमृत के पान से केवल पान करने वाला एकही मानव अजर-अमर हो जाता है, किन्तु शिव-कथारूपी अमृत के पान करनेसे समृत के पान करने से समस्त कुलही अजर-अमर होता है ।३४। हे तात ! पुण्यात्माओं की तथा यज्ञकर्त्ता और तापसों की जो गतिहोती है वही गति एकबार पुराणके स्रवण करने से होती है ।३५

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ।
अध्येतव्यानि पौराणां शास्त्र श्रोतव्यमेव च ॥३६॥
पापं संक्षीयते नित्य धर्मश्चव विवर्द्धते ।
पुराणस्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥३७॥
अतएव पुराणानि स्रोतव्यानि प्रयत्नतः ।
धर्माथिकमलाभाय मोक्षमार्गाप्तिये तथा ॥३८॥
यक्षैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणस्रवणान्नरः ॥३९॥
न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु ।
यद्यत्र यद्व्रती स्थाता चात्र पारत्रिकीं कथाम् ॥४०॥
षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽप्येकं शृणोति यः ।
पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ॥४१॥

अन्यो न दृष्टः सुखदा हि मार्गः पूराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ।
शास्त्रं बिना सर्वमिदं न भाति सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ।४२।

ज्ञानकी प्राप्ति के अभावमें यत्न सहित योग-शास्त्रों को पढ़ना चाहिए और परायण शास्त्रोंका स्रवण करना चाहिये ।३६। पुराणके स्रवणसे पाप

छूटते हैं,धर्म नित्यबढ़ता है । उससे यहहोता है कि वह ज्ञानीहोकर संसार के आवागमनसे मुक्त होजाता है ।३७। इसीसे धर्म,अर्थ,काम एवं मोक्ष की प्राप्तिके लिये यत्नपूर्वक पुराणोंका श्रवण प्रत्येकको करना चाहिये ।३८। यज्ञ,दान, तप तथा तीर्थ सेवन से जो फल मिलता है वही पुराण श्रवण से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।३९। यदि धर्म के मार्ग दर्शक पुराण न होते तो इस लोक और परलोक की कथा सुनाने वाला कोई व्रती न रहता ।४०। छब्बीस पुराणों में किसी एक भी कोई श्रवण कर लेता है अथवा भक्ति के साथ पढ़ लेता है तो वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता हैं ।४१। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सुखप्रद मार्ग देखने में नहीं आता है । पुराण श्रवण का मार्ग ही परम श्रेष्ठ है । बिना शास्त्र के यह संसार भी इस तरह शोभायुक्त नहीं है, जिस प्रकार बिना सूर्य देव के यह जीव लोक शोभा नहीं पाया है ॥४२॥

किस पाप के फल से किस नरक में जाना पड़ता है तथा प्रायश्चित वर्णन

तेषां मूर्द्धोपपरिष्टाद्वै नरकास्ताञ्छृणुष्व च ।
मत्तो मुनिवरश्रेष्ठ पच्यन्ते यत्र पापिनः ॥ १ ॥
रौरवः शूकरो राधस्ताला विवमनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽपि विलोहितः ॥ २ ॥
वैतरणी पूयवहा कृमिणः कृमिभोजनः ।
असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षश्च दारुणः ॥ ३ ॥
तथा पूयवहः प्रायो वह्निज्वालो ह्यधशिराः ।
सदशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरोधनः ॥ ४ ॥
श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली ।
इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकाः ॥ ५ ॥
पच्यते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ।
क्रमद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया शृणु ॥ ६ ॥

कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुराश्च गाः ।
सदाऽनृतंवदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमारजीने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! उन लोगोंके ऊपर जो नरक हैं उनका वृत्तान्त अब आप मुझसे श्रवणकरो जहाँपर पापात्माजीव जाकर दुःख भोगा करते हैं ।१। रौरव,शूकर, रोध,ताल तथा विवसन,महाज्वाल, तप्तकुम्भ,लवण विलोहित,वैतरणी,पूयवहा,कृमी-कृमि भोजन,घोर असिपत्र-वन,दारुण, लालाभक्ष, पूयवह,बहिज्वांल, अधश्शिर, सदश कालसूत्र, तमश्चावी, चिरोधन, श्वभोजन, रुष्ट,महारौरव,शाल्मि,इत्यादि वहाँ बहुत से परमदुःखदायक नरक हैं ।२-५। हे व्यासजी ! इन नरकोंमें जोभी पापात्मा पुरुषोंका पातनकियाजाता है मैं उनके विषयमें क्रमसे सबसुनाता हूं । आप सावधान चित्तसे श्रवणकरें ।६। जो मनुष्य बिना ब्राह्मण,बिना देवता और बिना गौ के कूटसाक्ष्य अर्थात् झूठी गवाही देता है और सर्वथा मिथ्या बोलता है वह रौरव नामक नरक में डाला जाता है ।।७।।

भ्रूणहा स्वर्णहर्त्ता च गोरोधी विश्वघातकः ।
सुरापो ब्रह्महंता च परद्रव्यापहारकः ॥ ८ ॥
यस्तत्सङ्गी स वै याति मृतो व्यासगुरोर्णधात् ।
ततः कुम्भ स्वसुर्मातुर्गोश्चव दुहितुस्तथा ॥ ९ ॥
साध्व्या विक्रयकृच्चाथ वार्द्धकी केशविक्रयी ।
तप्तलोहेषु पच्येत यश्चा भक्तं परित्यजेत् ॥१०॥
अवमंता गुरूणां यः पश्चाद् भोक्ता नराधमः ।
देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्चा यः ॥११॥
अगम्यगामी यश्चांते याति सप्तबलं द्विज ।
चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा ॥१२॥
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।
स याति कृमिभक्षं वै कृमिमत्ति दुरिष्टकृत् ॥१३॥
पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यश्नाति नराधमः ।
लालाभक्ष स य त्यज्ञो यः शास्त्रकूटकृन्नरः ॥१४॥

जो भ्रूण हत्यारा, सुवर्ण चोर, विश्वासघातक, मद्यपी, ब्रह्म हत्यारा परधनापहारी और गायको रोकनेवालाहोता है तथा हे व्यासजी! जाइनका सङ्ग-साथ देने वाला होता है ये सब और गुरुके वधकर्त्ता,बहिन,माता, गौ पुत्रीके वधकरने वाला तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाते हैं।८-९।साध्वी स्त्री को बेच देनेवाला,व्याज खानेवाला,केशोंका बेचनेवाला और भक्तोंकात्याग करनेवाला ये सब 'तप्तलोह' नामक नरकमें जायाकरते हैं।१०।जो गुरुजन का तिरस्कार करने वाला पीछे भोजन करने वाला,मनुष्योंमें नीचदेवताओं को दूषित बताने वाला और जो देव प्रतिमाओंका विक्रय करनेवाला है,हे द्विज ! जो अगम्य स्त्रीमें गमनकरता है-ये सब तप्त बलके अन्तमें जाते हैं। चोर,गौ हत्या करने वाला, पतित, मर्यादा तोड़ने वाला,देव, ब्राह्मण और पितरोंसे द्वेषकरनेवाला और रत्नोंमें मेलमिलाप करनेवाला-ये सब कृमि-भक्ष नामक नरकमेंजाते हैं और वहाँ कीड़ोंको खाते हैं ।११-१३। जोनीच मनुष्य देवता, पितर, मनुष्य और अतिथियों के बिना स्वयं खाता है तथा शस्त्रकूट है, वह लालाभक्ष नामक नरक में जाता है ॥१४॥

यश्चांत्यजेन ससेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो दिजः ।
अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्यभक्षकः ॥१५॥
रुधिरौधे पतंत्येते सोमविक्रयिणश्च ये ।
मधुहा ग्रामहा याति कूरां वैतरणी नदीम् ॥१६॥
नवयौवनमत्ताश्च मर्यादाभेदिनश्च ये ।
ते कृम्य यांत्यशौचाश्च कुलकाजीविनश्च ये ॥१७॥
असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः ।
क्षुरभ्रका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतंति तेः ॥१८॥
भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ।
यात्यंते दिज तत्रैव यः श्वकाकेषु वह्निनयः ॥१९॥
व्रतस्य लोपका ये च स्वाश्रमादिच्युताश्च ये ।
संदशयातनामध्ये पतंति भृशदारुणे ॥२०॥

वीर्यं स्वप्नेषु स्कन्देयुर्ये नरा ब्रह्मचारिणः ।
पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतित श्वभोजने ॥२१॥

ब्राह्मण होकर अन्त्यज के साथ सेवन करने वाला दुर्जनों से ग्रहण करने वाला, बिना याचकों के यज्ञ कराने वाला तथा अभक्ष्य पदार्थों को खाने वाला सोम रसको बेचने वाला—ये सब रुधिरौध नामक नरक में जाते हैं। मधुका हरण करने वाला, ग्राम की हत्या करने वाला—ये क्रूर वैतरणी नदी में जाया करते हैं ।१५-१६। जो अपने नये यौवन मे उन्मत्त होकर मर्यादा तोड़ने वाला अपवित्र हैं—जो स्त्री क द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं वे सब कृम्य नामक वाले नरक में जाया करते हैं ।१७। वृथाही वृक्षों को काटने वाले जो होते हैं वे असिपत्रवन नामक नरक में जाते है। जो क्षरम्रक और मृग हिंसक व्याघ्र हैं वे वहिन-ज्वाला नाम वाले नरक में जाते है ।१८। हे द्विज ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य अपने आचार से भ्रष्ट हैं श्वपाक में आग देने वाले हैं वे सब अन्तमें उक्त नरकों में जाया करते हैं ।१९। जो व्रत के लोप करने वाले तथा जो अपने आश्रम से भ्रष्ट है ये सब अति कठोर नामक तथा सदृश यातना में जाकर पड़ते हैं ।२०। जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्न में वीर्य को स्खलित करते हैं वे श्वभोजन नामक नरक में पड़ते हैं ।२१।

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
येषु दुष्कर्मकर्माणः पच्यते यातनागताः ॥२२॥
तथैव पापन्युक्तानि तथान्यनि सहस्रश ।
भुज्यते यानि पुरुषैनरकांतरगोचरैः ॥२३॥
वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वन्ति ये नराः ।
कर्मणा मनसा वाचा निरये तु पतन्ति ते ॥२४॥
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नरका दिवि दैवतैः ।
देवानधोमुखान्सर्वानधः पश्यन्ति नारकाः ॥२५॥
स्थावराः कृमिपाकाश्च पक्षिणः पशवो मृगाः ।
धार्मिक स्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥२६॥

यावंतो जंतवः स्वर्गे तावंतो नरकौकसः ।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥२७॥
गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा ।
प्रायश्चित्तानि ह्यन्येच मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥२८॥

ये पूर्वोक्त तथा अन्य सैकड़ों एवं सहस्रों नरक हैं जिनमें पापात्मा मनुष्य यातना भोगने के लिये पटके जाते हैं ।२२। पापभी सहस्रों प्रकार के होते हैं । ये बताये गए तथा अन्यभी बहुतसे हैं जिनके कारण मनुष्य नरकों में पड़कर उनका फल भोगा करते हैं ।१२। जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अपने वर्ण तथा आस्रम के विपरीत कर्म किया करते हैं वे निश्चय हीं नरकगामी होते हैं ।२४। ऐसे नरकों में निवास करने वाले पुरुष देवों के द्वारा नीचेकी ओर मुख करके देखे जाते हैं और नरकवासी स्वयं नीचेकी ओर मुख करके देवों को देखा करते हैं ।२५। जिस तरह स्थावर कृमिपाक पक्षी मृग है इसी तरह क्रमसे वार्षिक स्वर्ग–मोक्ष वाले जीव हैं ।२६। जितने जीव-जन्तु स्वर्ग में रहते हैं ठीक उतने ही नरक में स्थित होते हैं । जो मनुष्य अपने किए हुए दुष्कर्मों का कोई भी प्रायश्चित शास्त्रानुसार नहीं किया करते हैं वे ही पापात्मा प्राणी नरक में जाया करते हैं ।२७। स्वायम्भुव मनुने तथा अन्य महर्षियों ने भी बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित और छोटे-छोटे पाप कर्मों के छोटे प्रायश्चित बतलाये हैं ।२८।

यानि तेषामशेषाणां कर्मण्युक्तानि तेषु वै ।
प्रायश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम् ॥२९॥
प्रायश्चित्तं तु यस्यैवं पापं पुंसः प्रजायते ।
कृते पापेऽनुतापोऽपि शिवसंस्मरणं परम् ॥३०॥
महेश्वरमवाप्नोति मध्याह्न दिषु संस्मरन् ।
प्रातर्निशि च सन्ध्यायां क्षीणपापो भवेन्नरः ॥३१॥
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम् ।
शिवस्य स्मरणादेव तस्य शंभोरुमापतेः ॥३२॥
पापास्तरायो विप्रेन्द्र जपहोमार्चनादि च ।
भवत्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ॥३३॥

महेश्वरे मतियस्य जपहोमार्चनादिषु ।
यत्पुण्य तत्कृत तेन देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।।३४।।
पुमान्न नरकं याति यः स्मरेद् भक्तितो मुने ।
अहर्निशं शिवं तस्मात्स क्षीणाशेषहातकः ।।३५।।

उनमें जितनेभी कर्म बतलाये हैं उन सभीके सम्पूर्ण प्रायश्चित भी हैं, किन्तु भगवान्‌शिवका स्मरणार्चनकरना समस्तप्रायश्चित्तोंसे बड़ा है । इसी रीतिसे जिसव्यक्तिको प्रायश्चितकरना है उसे पापकर्म कियेजानेका पश्चात्ताप करके शिवका स्मरण करना बतलाया गया है ।२९-३०। जो प्राणी प्रातःकालमें सन्धामें,रात्रिमें और मध्याह्नकेसमयमें किसीभी समयमें नित्य नियमसे भगवान्‌शिवका स्मरणकरता है वह समस्तपापोंसे विमुक्तहोजाता है ।३१। ऐसा दुष्कर्मकर्त्ता पापात्मा प्राणी उमेश्वर शिवके केवल स्मरणसे ही समस्त दुःखोंसे दूर होकर स्वर्ग या मोक्ष पदको पहुंच जाता है ।३२। विपेन्द्र ! हे मुनिवर ! त्रिभुवनों में कहींभी पापोंका प्रायस्चित जप, होम और अर्चन आदि कुछभी नहीं होते हैं और जिसकी बुद्धि शिवके चरणोंमें संलग्नहो उसको जप,होम अर्चनादिसे जो पुण्यमिलता है वह सबपुन्यऔर देवराजइन्द्रका पद फल प्राप्त करता है ।३३-३४। हे मुनिराज ! जो मनुष्य अहर्निश भक्तिपूर्वक शिवकास्मरण कियाकरता है वहकभी नरकगामीनहीं होता है, क्योंकि इससे ही वह पापरहित हो जाया करता है ।।३५।।

नरकस्वर्गसंज्ञायै पापपुण्यै द्विजोत्तम ।
दयोस्त्वेक तु दुःखायान्यत्सूखायोद्भवाय च ।।३६।।
तदेव पीयते भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न किंचित्सुखात्मकम् ।।३७।।
मनसः पारणामोऽयं सुखदुःखोपलक्षणः ।
ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं तत्वाय कल्पते ।।३८।।
ज्ञानात्मकामिद विश्वं सकलं सचराचरम् ।
परविज्ञानतः किंचिद्विद्यते न परं मुने ।।३९।।

हे द्विजोत्तम ! ये पाप और पुन्य ही नरक और स्वर्गके नामोंके अर्थ हैं । इन दोनों स्थानों में पाप दुःखोंके भोगके वास्ते और पुन्य सुखोपभोग

के लिये हुआ करते हैं ।३६।ऐसा भी होता है कि वही पुन्य प्राप्तिके लिये होकर फिर दुखके लिये भी हो जाता है। इस कारणसे न कुछ दुःख देने वाला है और कुछ सुख देनेवाला है ।३७। यह प्राणियोंके मनकापरिणाम ही दुःख-सुखका लक्षण होता है । इसलिये ज्ञान ही परब्रह्म का स्वरूप है और ज्ञानहीकी तत्वके लिये कल्पना की जाती है ।३८। हे मुनिवर ! यह चराचरात्मक समस्त संसार ज्ञानात्मक है परा विज्ञानसे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है ।।३९।।

तप से शिव लोक की प्राप्ति तथा मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता

सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्तिं वद सत्तम ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शिवभक्तियुता नरः ।। १ ।।
पराशरसुत व्यास शृणु प्रीत्या शुभां गतिम् ।
व्रतं हि शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम् ।। २ ।।
ये शिवं शुद्धकर्माणः सुशुद्धतपसान्विताः ।
समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते सर्वथान्वहम् ।। ३ ।।
नातप्ततपसो यान्ति शिवलोकमनामयम् ।
शिवानुग्रहसद्धेतुस्तप एव महामुने ।। ४ ।।
तपसा दिवि भोगन्ते प्रत्यक्षं देवतागणः ।
ऋषयोमुनयश्चैव सत्यं जानीहि मद्वचः ।। ५ ।।
सुदुर्द्धरं दुराध्यं सुधूरं दुरतिक्रमम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ।। ६ ।।
सुस्थितस्तपसि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा ।
देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तस्तपसा दुर्लभं फलम् ।। ७ ।।

श्री व्यासजीने कहा-हे सनत्कुमारजी ! अब आपकृपाकर उस पदकी प्राप्तिके विषयमें वर्णनकररें जहाँ प्राप्तहोकरश्रीशिवकी परम भक्तिमेंपरा-यण प्राणी नहीं लौटा करते हैं ।१। सनत्कुमारजीने कहा-हे पराशर पुत्र श्री व्यासजी ! अच्छा अब आप मुझसे वही शुभगति तथा शुद्ध एवं पवित्र भक्त और तपस्वियों के व्रतके विषयमें श्रवण करें।२। जो भी शुद्ध कर्मोंवे

करने वाले तथा शुद्ध तपस्या में युक्त मनुष्य शिवका अर्चन कियाकरते हैं वे सर्वदा सभीके बन्दनीय और पूजा करने के योग्य होते हैं ।२। हे महा-मुने ! बिना तप किये नीरोग भी शिवलोक नहीं जाया करते हैं शिवकी कृपा भी तपश्चर्यासे बतलाईगई है ।४। आप सब मेरे इस कथनको सर्वथा सत्य समझें कि तपसे ही देवगण प्रत्यक्ष होकर स्वर्गमें आनन्दोपभोग किया करते हैं और तपश्चर्या से ही ऋषि-मुनि भी परमहर्षितहोते हैं ।५। जो सबसे कठिन, दुराराध्य और धुरधारी तथा अत्यन्त कठिनाई से अतिक्रमण करने के योग्य होता है, वह सब तपस्यासे साध्य हो जाता है किन्तु यह तपही एक परम दुस्साध्य वस्तु है ।६। इसी तपमें ब्रह्मा स्थित रहा करते हैं—तपमें ही विष्णु मग्न रहते हैं और तपस्या में शिव सदा प्रवृत्त रहते हैं तथा समस्त देवगण और देवियोंने भी तपके प्रभावसे ही दुर्लभ फलकी प्राप्ति की है ।।७।।

येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तपः ।
ततः संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशयः ।। ८ ।।
सात्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविध स्मृतम् ।
विज्ञेयं हि तपो व्यास नून हि सर्वसाधनम् ।। ९ ।।
सात्विकं दैवतानां हि यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च ।।१०।।
त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तिवः शुभम् ।।११।।
सात्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम् ।
इह लोके परे चैव मनोभिप्रेतसाधनम् ।।१२।।
कामनाभलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते ।
निजदेह सुसंपीड्य देहशोषकदुःसहैः ।।१३।।
तपस्तामसमुद्दिष्टं मनोऽभिप्रेतसाधनम् ।।१४।।

यह तप जिस-जिस भावना से स्थित होकर किया जाता है वही फल इस लोकमें उन करने वालोंको निश्चय ही मिलता है । इस कथनमें संशय नहीं करना चाहिए ।८। हे व्यासजी ! यह तप सात्विक-राजस और तामस

तीन तरहका होता है। तपही सबका साधन है,देवगण तथा संन्यासियों का एवं ब्रह्मचारियों का तप सात्विक अर्थात् सतोगुणी होती है। दैत्य और मनुष्यों का तप राजस अर्थात् रजोगुणी होता है और राक्षस लोग तथा दुष्ट कर्म करने वालोंका तप तामस हुआ करता है।१०। तत्वदर्शी मुनियोने तप का फलभी तीन प्रकार का ही बतलाया है। जप-ध्यान और भक्ति के सहित देवताओं का अर्चनकरना यह सात्विकतप समस्त फलों का प्रदाता एवं साधक बतलाया गया है। यह इसलोकमें एवं पर-लोकमें मानवों की मनोकामनाओं का पूर्ण करने वाला होता है।११-१२। कामना के फलका उद्देश्य करके देह के शोषक तपस्या से जो शरीर को पीड़ित किया जाता है वह राजस तपकहा गया है।१३। जो केवल अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए ही तप किया जाता है वह तामस तप कहा जाता है।१४।

उत्तमं सात्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला।
स्नान पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम् ॥१५॥
व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दानं क्षांतिर्दमो दया ॥१६॥
वापीकुपतड़ागादेः प्रासादस्य च कल्पना।
कृच्छ चान्द्रायणं यज्ञः सुतीर्थान्याश्रमाः पुनः ॥१७॥
धर्मस्थानानि चैतानि सुखदानि मनीषिणाम्।
सुधर्मः परमोः व्यास शिवभक्तिश्च कारणम् ॥१८॥
संक्रांतिविषवद्‌योगो नादमुक्ते नियुज्वताम्।
ध्यानं त्रैकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा ॥१९॥
रेचकः पूरकः कुम्भः प्राणायामस्त्रिधा स्मृतः।
नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम् ॥२०॥
तुरीयं तदधो बुद्धिरणिमाद्‌यष्टसंयुतम्।
पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम् ॥२१॥

सात्विक तप सबसे उत्तम तप समझना चाहिए। इसमें निश्चय धर्म की बुद्धि,स्नान पूजा, जप, होम,शुद्धि शौच, अहिंसा ये होते हैं।१५। इस

तप में व्रत, उपवासचार्या, मौन, इन्द्रिय,निरोध,बुद्धि,विद्या,सत्य,अक्रोध, दान,शांति,क्षम और दया का भाव होता है।१६। सात्विक तपमें बावड़ी कूप, सरोवर एवं महल आदिका निर्माण, कृच्छ्रचान्द्रायण, यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थोंका अटन और आश्रय करना होता है।१७। हे व्यासजी! ये सब धर्म के स्थान हैं, बुद्धिमानोंको सुख देने वाले और शिवकी भक्तिके कारण स्वरूप होते हैं १८। संक्रान्ति विषुवत् योग नादयुक्त हृमें प्रयोग करना चाहिए, तीनों कालोंमें ध्यान,ज्योति,उन्मनी-भाव यह धारण करी जाती है।१९ रेचक, पूरक और कुम्भक ये तीन प्रकार का प्राणायाम कहा जाता है। नाड़ी सञ्चारका ज्ञानकरना तथा प्रत्याहारका रोकनाहोता है २०। चतुर्थ अणिमा आदि आठ सिद्धियोंके सहित अधोबुद्धि करना यह पूर्ति, परम ज्ञानका साधन बताया गया है। २१।।

काष्ठावस्था मृतावस्था हरितावेति कीर्तिता: ।
नानोपलब्धयो ह्येता: सर्वपापप्रणाशना: ।।२२।।
नारी शय्या तथा पानं वस्त्रधूपविलेपनम् ।
ताम्बूलभक्षणं पंच राजैश्वर्यविभूतय: ।।२३।।
हेमभारस्तथा ताम्र गृहाश्च रत्नधेनव: ।
पांडित्यं वेदशास्त्राणां गीतनृत्य विभूषणम् ।।२४।।
शङ्खवीणामृदङ्गाश्च गजेन्द्रश्छत्रचामरे ।
भोगरूपाणि चैतानि एभि: सन्तोऽनुरज्यते ।।२५।।
आदर्शवन्मने स्नेहैस्तिलवत्प न पीड्यते ।
अरं गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहित: ।।२६।
जानन्नपि हि संसारे भ्रमते घटियन्त्रवत् ।
सर्वयोनिषु दुखार्तः स्थावरेषु चरेषु च ।।२७।।
एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु ।
कालांतरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् । २८।।

काष्ठावस्था,मृतावस्था और हरितावस्था ये तीन अवस्थायें कही गयी है। ये अनेक तरहकी उपलब्धियां और समस्त पापोंको नाश करने वाली

होती है ।२२। नारी-शय्या-पान-वस्त्र-धूप-लेपन और ताम्बूल भक्षण-ये पाँच राजैश्वर्य विभूतियाँ होती हैं ।२३। हेम भार-ताम्र-गृह-रत्न-धेनु-वेद-शास्त्रोक पाण्डित्य-गीत-नृत्य-आभूषण-शंख-वीणा-मृदंग-गजेन्द्र-छत्र-चामर ये सब उपादान भोगस्वरूप हैं । इनमें आरक्तहुआ मानव अनुरागको प्राप्त होजाया करता है ।२४-२५। हे मुनिवर ! जो संसारी प्राणी हैं वे दर्पणके तुल्य तथा तेलके तिलोंकी भाँति पेरेजाते हैं । भ्रमणको प्राप्तहोकर इनको ज्ञानसे मोहित करता है ।२६। सब कुछ ज्ञान रखता हुआ भी इस संसारमें घड़ीके यन्त्रके समान भ्रमण किया करता है और स्थावर एवं चर स्वरूप समस्त योनियोंमें परम दुःखित होकर विचरण करता रहता है ।२७। इस तरह समस्त योनियों में पर्यटन करके कालान्तर में जाकर कहीं उसे यह मनुष्य योनि प्राप्त हुआ करती है । यह मानव-जन्मका प्राप्तकरना अत्यन्त दुर्लभ होता है ।२८।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात् ।
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।।२९।।
मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ।
न चरत्यामनः श्रेयः स मृतः शोचते चिरम् ।३०।
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यं चातिदुर्लभम् ।
तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।३१।
स्वर्गाग्विगलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः ।
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं बृथा तज्जन्म कीर्तितम् ।३२।
सर्वास्य मूलं मानुष्यं चतुर्वर्गस्य कीर्तितम् ।
संप्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्नादनुपालयेत् ।३३।
धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्बार्थसाधकम् ।
यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षोत्स्वय ततः ।३४।
मानुष्येऽपि च विप्रत्वं यः प्राप्य खलु दुर्लभम् ।
नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तमादचेतनः ।३५।

व्युत्क्रम से भी पुण्य की गुरुता से यह मानव-जन्म प्राप्त किया जाता

है। कर्मोंके बड़ेहोने तथा छोटेपनकी अत्यन्त अद्भुतगति बतलाई गई है। ।२६। जो जीवात्मा स्वर्ग प्राप्ति तथा मोक्ष के साधक इस अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीरमें जन्मपाकर भी अपने कल्याणकारक कर्म नहीं कियाकरता है वह मृत्युके पश्चात् बहुत समय तक शोक एवं चिन्तामें डूबा रहता है ।३ समस्त देवगण और असुरोंमें भी यह मनुष्यशरीरका जन्मपरदुर्लभ होता है। इस मानवशरीरको सौभाग्यसे प्राप्तकरके ऐसाही करना चाहिये जिससे नरकों में गमन न करना पड़े ।६१। यदि इस परम दुर्लभ मनुष्य के जन्मका लाभ प्राप्तकरके भी स्वर्ग तथा अपवर्गकी प्राप्तिकेलिए कुछ उद्यम नहींकिया जावे तो यह मानव-जन्मही व्यर्थ समझनाचाहिए ।३२। हे व्यासजी ! समस्त धर्म-अर्थ, काम और मोक्षका आदिकारण मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करना ही बतलाया गया है। इसलिये इस प्राप्तकरके अवश्यही धार्मिक-पद्यति से यत्नपूर्वक इसका यथोचित उपयोग करतेहुए पालन करना चाहिए ।३३। यदि समस्त पदार्थोंके साधन स्वरूप एवं धर्मकेपालक तथा मलभूत मनुष्य के जन्मको प्राप्तकर अपने लाभके लिये यत्न किया जावे तो स्वयं मूलकी रक्षा होजावे ।३४ इस मानव जन्म में भी ब्राह्मण का शरीर प्राप्त करना महान् दुर्लभ होता है। इसे पाकर भी जो अपने कल्याण कारक कर्म नहीं किया करता है उससे अधिक मूढ़ एवं जड़ और कौन होगा ? ॥३४॥

द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूरियमुच्यते ।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः ॥३६॥
देशेऽस्मिन्भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।
न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वंचितः ॥३७॥
कर्मभूमिरियं विप्र फलभूमिरसौ स्मृता ।
इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते ॥३८॥
यावत्स्वास्थ्य शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित्कर्तुमुत्सहेत् ॥३९॥
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं यो न प्रसाधयेत् ।
ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च ॥४०॥

आयुषः खंडखंडानि निपतंति तदग्रतः ।
अहोनात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ॥४१॥
यदा न ज्ञायते मृत्यु. क.ा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विंदति कस्तथा ॥४२॥

समस्त द्वीपों में इस भूमि को कर्म करने का क्षेत्र बतलायागया है । यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष का अर्जन कियाजाता है।३६। इस भारतवर्ष में इस अति अस्थिर मानव शरीर को प्राप्त कर यदि अपना कल्याण नहीं किया जाता है तो यही कहनाचाहिए कि निश्चितरूपसे उसनेअपनी आत्मा को वञ्चित किया है ।३७। हे विप्र ! यह कर्मभूमि बतलाई गई है और यही फलभूमि भी बताई गई है । यहाँ पर जो सत्कर्म किया जाता है वह स्वर्ग में जाकर भोगा जाया करता है ३७।जब तक यह सत्कर्म का साधन भूत शरीर स्वस्थता प्राप्ति किये हुए रहे तभी तक धर्म के कृत्य करे, क्योंकि स्वस्थताके अभाव में औरों की प्रेरणाप्राप्त करतेहुयेभी फिर कुछ भी नहीं कर सकता है और अस्वस्थ शरीर में कोई भी उत्साह शेष नहीं रहा करता है ।३९। जो मनुष्य इस अनिश्चित क्षण.भगुर शरीर के द्वारा परम स्थिर एवं निश्चल धर्म की सिद्ध नहीं करता है उसका ध्रुव धर्म तो नष्ट हो ही जाता है और अध्रुव यह शरीर है वह तो निश्चय ही नष्ट होने वाला होता ही है ।४०। इस मानव शरीर की आयु के खण्ड २ होकर यों ही उसके आगे नष्ट होते चले जाते हैं । दिन और रात सदा उपदेश दे रहे हैं फिर भी नहीं जगते है ।४१। जब कि यह नहीं ज्ञात रहता है कि कब किसकी मृत्यु होती है फिर अचानक मृत्यु हो जाने पर कौन ऐश्वर्य की खोज करता है ।४२।

परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम् ।
न ददाति कदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥४३॥
गृहीतदानपाथेयः सुखं याति यमालयम् ।
अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहिते पथि ।४४॥
येषां कालेय पुण्य नि परिपूर्णानि सर्वतः ।

गच्छतां स्वर्गदेशं हि तेषां लाभः पदे पदे ।४५।
इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ।४६।
ये मनागपि देवेश प्रपन्ना शरणं शिवम् ।
तेऽपि घोरं न पश्यति यमं न नरकं तथा ।४७।
किंतु पापैर्महामोहैः किंचित्काले शिवाज्ञया ।
वसंति तत्र मानुष्यास्ततो यान्ति शिवास्पदम् ।४८।
ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्नाः महेश्वरम् ।
न ते लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।४९।

मृत्यु के प्राप्त होने पर प्राणी अपनें समस्त धनादि वैभव को यहीं त्याग करके अकेला निश्चय ही चला जायेगा तो फिर मार्गमेंअपने पाथेय के लिये धनका दान क्योंनहीं करताहै?।४३। जिस प्राणीने दानरूपी चबेना अपने साथ बाँध लिया है वह सुखपूर्वक यमलोककी यात्राकियाकरता है। अन्यथा यहदान पुण्यके बिना यमलोककी यात्रामें बहुत दुःखहोता है।४४। हे व्यासदेव ! जिन पुरुषों के पुण्यसभीओरसे परिपूर्ण हैं स्वर्गलोकमें जाने वाले उन प्राणियों को पद-पदमें लाभहोता है।४५। यही समझकर मनुष्य को सर्वदा पुण्य-कार्य अवश्य ही करने चाहिए। मानवको पाप कभी नहीं करने चाहिये। पुण्य से ही देवत्वकी प्राप्ति होती है औरपापकर्मोसे नरक की प्राप्ति हुआ करती है।४६। जो मनुष्य किसी भी प्रकार से भगवान् शिव की शरण में प्राप्तहोजाते हैं वे फिर कभी भी यमराजको तथा उसके द्वारा दिये जाने वाले नरक को नहीं देखतेहैं।४७। पापों से और महामोह के कारण थोड़े से समय के लिये शिवकी आज्ञासे नरक में निवास किया करते हैं और इसके पश्चात् वे शिव लोक की प्राप्ति किया करते हैं।४८। जो अपने सम्पूर्ण भाव से भगवान् शिव को प्राप्त किया करते हैं, वे जलसे कमल की भाँति अर्थात् कमल पत्रके समान पापोंसे लिप्त नहींहोते हैं।४९।

उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च ।
न तेषाँ नरकाद् भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ।५०।

परलोकस्य पाथेयं मोक्षोपायमनामयम् ।
पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।५१।
शिवनामैव संसारमहारोगैकशमाकम् ।
नान्यत्संसार रोगस्य शामकं दृश्यते मया ।५२।
ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कशः ।
शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ।५३।
तस्माद्विवर्द्धयेद् भक्तिमीश्वरे सततं ब्रुधः ।
शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्ति मुक्ति च विंदति ।५४।

जिन्होंने कभी भी अपने मुख से भगवान् शिव का नाम या 'हर-हर' ऐसा कहा है, हे मुनिसत्तम ! उनको नरकों का और यमराजका कुछ भी भय नहीं रहता है ।५०। परलोक का चबेना और निरामय मोक्षका उपाय,पुण्य समुदायका एकमात्र स्थान'शिव' ये महेश्वर नामके दो अक्षर ही होते हैं—ऐसा शास्त्र बताते हैं ।५१। यह भगवान् शिवका परम पावन नाम ही संसार के समस्त महारोगों को शान्तकरनेका एकमात्र उपाय है । इसके अतिरिक्त संसार के महारोगों के शमन करने वाला अन्य कोई भी उपाय नहीं देखाजाताहै ।५२। प्राचीनसमयमें सहस्रोंकी सँख्यामें ब्रह्महत्या जैसा पाप करने वाले लोगोंने 'शिव-शिव'—यह निर्मल नाम का श्रवण करके मोक्षपद की प्राप्तिकी है ।५३। हेमहाप्राज्ञ । इसलिए विद्वान् व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह निरन्तर शिवकी भक्तिको हृदयमें बढ़ावे । शिव भक्तिसे भुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है ।५४।

।। मृत्यु काल का ज्ञान ।।

भगवन्स्त्वप्रसादेन ज्ञातं मे सकलं मतम् ।
यथाचौन तु ते देव यो मन्त्रश्च यथाविधि । १ ।
अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्र प्रति प्रभो ।
मृत्युचिह्नं यथा देव किं प्रमाणं तथायुषः । २ ।
सर्वं कथय मे नाथ यद्यहं वल्लभा ।
इति पृष्ठस्तया देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः । ३ ।

सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये ।
येन न शास्त्रेण देवेशिनरैः कालः प्रबुध्यते ॥ ४ ॥
अहः पक्षं तथा मासमृतुं चायनवत्सरौ ।
स्थूलसूक्ष्मगतंश्चिहनं वाहरंतर्गतौस्तथा ॥ ५ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्वेन सुन्दरि ।
लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना ॥ ६ ॥
अकस्मात्पांडुर देहमूर्ध्वराग समंततः ।
तदा मृत्यु विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ ७ ॥

पार्वतीजी ने कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने सबज्ञान प्राप्त कर लिया है । हे देव ! यन्त्रोंसे तथा मन्त्रों से जिस तरह विधि के सहित आपका अर्चन किया जाता है वह अब कृपा करके मुझे बतलाइये ।१। हे प्रभो ! हे देव । इस काल चक्रके विषयमें मुझे अभीतक संशय होता है । मृत्यु का चिन्ह और आयुका प्रमाण जिस तरह होता है वह मुझे बताने की कृपा करें ।।२। हे स्वामिन ! यदि आप मुझपर अपनी परम प्रिया समझ कर प्यार करते हैं तो मुझे सब बातें बताइये । इस रीतिसे देवी के द्वारा कहे जाने पर शिवजी ने कहना प्रारम्भ किया ।३। शिवजी ने कहा–हे प्रिये ! हे देवेशि ! मैं अब तुमको उस परम सत्य शास्त्र का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा मनुष्यों के काल का ज्ञान हो जाता है ।४। जिस तरह मृत्युके चिह्नों का ज्ञान होता है वे चिह्न दिन, पक्ष, मास ऋतु,अयन और वत्सर आदि होते हैं । ये बाहरी तथा भीतरी स्थूल तथा सूक्ष्म हुआ करते हैं ।५। हे सुन्दरी ! हे पार्वती ! मैं ये सभी लोकों के उपकार तथा वैराग्य के लिये तुम्हें बतलाता हूँ सो तुम भलीभाँति श्रवण करो ।६। हे प्रिये ! यदि अकस्मातही चारों ओरसे पीत वर्ण वाला शरीर ऊपरसे लाल होजावे तो छः महीने के अन्दर मृत्यु जाव लेनी चाहिये।७।

मुख कर्णौ तथा चक्षुर्निह्वास्तम्भो यदा भवेत् ।
तदा मृत्यु विजानीत्यात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ ८ ॥
रोरवानुगतं भद्रे ध्वनिं नाकर्णयेद्द्रुतम् ।
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्ज्ञातव्यः कालवेदिभिः ॥ ९ ॥

रविसोमाग्नि संयोगाद्यदोद्योतं न पश्यति ।
कृष्णं सर्वं समस्तं च षण्मासं जीवितं तथा ।१०।
वामहस्तो यदा देवि सप्ताहं स्पंदते प्रिये ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशय ।११।
उन्मीलयंति गात्राणि तालुकं शुष्यते यदा ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेक न संशयः ।१२।
नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम् ।
वक्त्रं कठ चा शुष्येत षण्मासांते गतायुषः ।१३।
स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजाः क्लिद्यन्ति भामिनि ।
षण्मासाज्जायते मृत्युश्चिन्हैस्तै रुपलक्ष॰त् ।१४।

हे प्रिये ! जिस समय मुख,कान,आँख और जिह्वाका स्तम्भ होजावे तो उस समय भी यह समझ लेना चाहिये कि छः मासके भीतर मृत्यु हो जायगी ।८। हे भद्रे ! यदि कोई व्यक्ति मनुष्योंके समुदायके द्वारा की हुई ध्वनिको शीघ्रता से सुनने में असमर्थ होतो सालके ज्ञाताओंको छः मासके अन्दर उसकी मृत्यु जानलेनी चाहिये।९।जो कोई सूरज,चाँद और अग्निके संयोगसे होने वाले प्रकाश को न देख पावे और सभी वस्तु काले वर्ण की दिखाईदें तो उसके जीवनके केवल छैमासही शेष समझ लेने चाहिए।१०। हे प्रिये ! हे देवि ! जो किसीका वामहस्त बराबर एकसप्ताहतक फड़कता रहे तो उस व्यक्ति का जीवन काल केवल एक मासका ही होता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।११। जब शरीरके सभीअवयोंमें टूटनसी होवे और तालु बराबर सूखतारहे तो समझलेना चाहियेकि उसप्राणीका जीवनकाल एकमासही शेष रहगया है इसमें तनिकभी संशय नहीं है ।१२। बातपित्त कफ इन तीनोंके दूषित होने वाले त्रिदोष रोगमेंजिस प्राणीकी नाकबहती हो तो एकपक्ष उसका क्षेष जीवन कालहोता है और यदि मुख तथा गला सूखतारहता है छैमासकी शेष आयु समझलेनी चाहिये ।१३। हे भामिनी हे द्विजगण ! जिस मनुष्यकी जीभ स्थल होजावे और दाँत एकसाथ कीट को प्राप्त हो जावे छैमासकी शेष आयु रहती है ।१४।

अंबुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वरवर्णिनि ।
न पश्यति यदात्मानं विकृतं पलमेव च ।।१५।।
षण्मासायुः स विज्ञेयः कालचक्रं विजानता ।
अन्यच्च शृणु देवेशि येन मृत्युर्विशुद्ध्यते ।।१६।।
शिरोहीनाँ यदा छायाँ स्वकीय भुपलक्षयेत् ।
अथवा छायया हीनो मासमेकं न जीवति ।।१७।।
आङ्गिकानि मयोक्तानि मृत्युचिन्हानि पार्वति ।
बाह्यस्थानि प्रवे भद्रे चिन्हानि शृणु साँप्रतम् ।।१८।।
रश्मिहीनं यदा देवि भवेत्सोमार्कमण्डलम् ।
दृश्यते पाटलाकारं मासार्द्धेन विपद्यते ।।१९।।
अरुंधती महायानमिंदुं लक्षणवर्जितम् ।
अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति ।।२०।।
दृष्टे ग्रहे च दिड.मोहः षण्डमासाज्जायते ध्रुवम् ।
उतथ्य न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम् ।।२१।।
रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्यान्हे चोल्कपातनम् ।
वेष्ट्यते ग्रध्रकाकैश्च षण्डमासायुर्न संशयः ।।२२।।

जिस आदमी को जल, तेल और घृतमें अथवा निर्मल दपणमें अपना मुख न दिलाई दे किम्वा उसको अपनी शक्ल विकृत रूप में दिखलाई देवे तो काल-चक्रके ज्ञाता पुरुषको ऐसे व्यक्तिकी आयु सिर्फ छैमासकी हीबता देनीचाहिये। हे देवि ! मैं अब इनकेअतिरिक्त अन्यभी मौतहोजानेके लक्षण या चिह्न तुम्हें बताता हूं उन्हे सुनो।१५-१६। जिस मनुष्यको अपनीछाया विना शिरके दिखलाईदेवे किम्वा उसेअपनी परछाँई बिल्कुल दिखलाईहीन देवे तो समझलो कि ऐसा व्यक्ति एकमहीना भी जीवित नहीं रहेगा।१७। हे गिरिजे ! हे भद्रे ! यहाँतक मानवके अङ्गोंसे सम्बन्धित मृत्युके चिह्न मैंने बतलाये हैं अब मैं अन्य बाहरीचिह्नभी बतलाता हूं। उन्हे तुमश्रवण करो।१८। हे देवि ! जिसको सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल बिनाकिरणोंके लाल आकार वाला दिखलाई देवे तो वह पन्द्रह दिनमें मर जायगा।१९।

जो व्यक्ति अरुन्धती महायान, नागवीथी चन्द्रमा और तारागणको न देख सके वह एकमासही और जीवित रहाकरता है ।२०। जिसे ग्रहोंके दिखाई देनेपर भी दिशाओंका भ्रम होजावे तो उसकी छैमासमें मौत आजाती है। यदि उतथ्य अथवा ध्रुव एवं सूर्य-मण्डलको देखने में भी असमर्थ हो और रात्रि में धनुष दिखाई दे या मध्यान्ह के समय उल्कापात दृष्टिगत हो एवं गिद्ध और काकों से लिपटा दिखाई दे तो वह निस्सन्देह छैमासमें अवश्य मर जायेगा । २१-२२।।

ऋषयः स्वर्गपथाश्च दृश्यते नैव चाम्बरे ।
षण्मासायुर्विजानीव त्प्ररुषैः कालवेदिभिः ।।२३।।
अकस्माद्राहुणा ग्रस्तं सूर्यं वा सोममेव च ।
दिक्चक्रं भ्राँतवत्पश्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम् ।।२४।।
नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद्वेष्ट्यते पुमान् ।
मासमेकं हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ।।२५।।
मूर्ध्नि काकः कपोतश्च शिरश्चाक्रम्य तिष्ठति ।
शीघ्रं तु म्रियते जतुर्मासैकेन न संशयः ।।२६।।
एव चारिष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः ।
मानुषाणां हितार्थाय संक्षेपेण वदाम्यहम् ।।२७।।
हस्तयोरुभयोदेवि यथा कालं विजानते ।
वामदक्षिणयोर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम् ।।२८।।

यदि किसी व्यक्तिको स्वर्गके मार्ग वाले ऋषिगण आकाशमें न दिखलाईदेवें तो कालकेज्ञान रखने वालोंको उसकी छः मासकी आयु समझलेनी चाहिये ।२३। जो अकेलाही राहुसेग्रस्त चन्द्रमा अथवा सूरजको देखाकरता है या दिक्चक्रको भ्रान्तिके साथ देखता है तो निश्चय रूपसे ही छः मास में मर जाया करता है ।२४। जिस मानवका शरीर अचानकही नीले रंग की मक्खियों से व्याप्त हो जाता है वह एक मासकी ही आयु वाला होता है ।२५। जो मनुष्य गिद्ध काक और कबूतरोंके द्वारा आक्रमण करके शिर पर बैठते देखे तो निस्सन्देह उसे समझ लेना चाहिये कि वह एक मास में

अवश्य ही मृत्युके मुखमें चला जायगा ।२६। इस रीतिसे मानवोंके हितार्थ ये बाहरी मौत के चिह्न तुम्हें बतला दिये हैं अब मैं संक्षेप में बतलाता हूं ।२७। हे देवि जिस तरह वाम और दक्षिण दोनों हाथों के मध्यमें काल प्रत्यक्ष है सो बतला दिया ।२८।

एवं पक्षौ स्थितौ द्वौ तु समासात्सुरसुन्दरि ।
शुचिर्भूत्वा स्मरूदेवं सुस्नातः संयतेन्द्रियः ।२९।
हस्तौ प्रक्षाल्य दुग्धेनालक्तकेन विमर्दयेत् ।
गंधैःपुष्पौ करो कृत्वा मृगयेच्चा शुभाशुभम् ।३०।
कनिष्टामादितःकृत्वा यावदगुष्ठकं प्रिये ।
पर्वत्रायक्रमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ।३१।
प्रतिपदादि विन्यस्य तिथि प्रतिपदादितः ।
सम्पुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिङमुखः संस्थितः ।३२।
स्मरेन्नवात्मक मंत्रं यावदष्टोतर शतम् ।
निरीक्षययेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतः ।३३।
तस्मिन्पर्वाणि सा रेखा दृश्यते भृङ्गसन्निभा ।
तत्तिथौ हि मृतिज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ।३४।
अधुना नादजं वक्ष्ये संक्षेपात्काललक्षणम् ।
गमागमं विदित्वा तु कर्म चुर्याच्छृणु प्रिये ।३५।

हे सुरसुन्दरि ! इसतरह जब दोनोंही पक्ष स्थित हों उस समय पवित्र होकर भगवान्शिवका स्मरणकरता हुआ अच्छी तरह स्मानकर जितेन्द्रिय होवे ।२९। उस समय हाथ धोकर दूध अथवा अलक्तसे केशोंको मले तथा गन्ध और फूलोंसे हाथोंकोभरकर शुभऔरअशुभ चिन्तवनकरना चाहिये। ।३०।हे प्रिये ! अपनी कनिष्ठिकाअगुलीसे लेकर अंगुष्ठतक अपने दोनोंहाथों में तीन पर्वके क्रमसे प्रतिपदा आदि तिथियोंकी गणना करके पूर्व दिशाकी ओर मुखकरलेवे और सम्पुटाकार हाथोंसे एकसौ आठबार नौअक्षर वाला मन्त्रका जाप करे ओर प्रत्येक पर्वमें यत्नके सहित हाथोंको देखे।३१-३२। ।३३।जिस पर्वमें भ्रमरके तुल्य वहरेखा दिखाई देवे,कृष्णपक्षहो या शुकल

पक्ष हो, हे देवि ! उसही तिथि में उसकी मौत समझ लेनी चाहिये।३४। हे प्रिये ! अब नादकेद्वारा प्रकट होजाने वाले कालचक्रका वर्णन करता हूं जोकि अतिसंक्षिप्त ही होगा। उसका श्रवणकरो। गमन और आगमनका ज्ञान करके ही कर्म करना चाहिये।३५।

आत्मविज्ञानं सुश्रोणि वारं ज्ञात्वा तु यत्नतः ।
क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेषं काष्टकालिकम् ॥३६॥
मुहूर्तक त्वहोरात्रं पक्षमासर्तु वत्सरम् ।
अब्दं युगं तथा कल्पं महाकल्पं तथैव च ॥३७॥
एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः ।
वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम् ॥३८॥
दिनादि पञ्च चारभ्य पञ्चविंशद्दिनावधिः ।
वामाचारगतौ नादः प्रमाणं कथितं तव ॥३९॥
भूररंध्रं दिशश्चैत्रः स्वजश्च वरवर्णिनि ।
वामचारगतो नादः प्रमाणं कालवेदिनः ॥४०॥
ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि ।
प्रमाणं दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्य द्राणवेदिभिः ॥४१॥
भूतसंख्या यदा प्राणान्वहते च इडादयः ।
वषस्याभ्यंतरे तस्य जीवितं हि न संशयः ॥४२॥

हे सुश्रोणि ! आत्म विज्ञान को चार तरह के यत्नसे जानना चाहिए अर्थात् क्षण त्रुटि,लव,निमेष और काष्ठकालिक। मुहूर्त्त,दिनरात,पक्ष,मास ऋतु,वत्सर,अब्द,युग,कल्प और महाकल्प यह परिपाटी है।३६-३७। इसी उपर्युक्त परिपाटीसे सदाशिव कालहरण कियाकरते हैं। वाम और दक्षिण के मध्यमें तीन मार्ग बतलाये गये हैं।३८। पाँच दिन से आरम्भ करके पच्चीसदिन पर्यन्त वामाचारगतिमें नादहोता है। यह नादका प्रमाण मैंने तुमको बतला दिया है।३९। हे परमसुन्दर वर्णवाली ! कालके वेत्ता पुरुष को वामचारगतिमें भूत, रन्ध्र,दिशा और स्वजाख्य नादजान लेना चाहिए। ४०। हे भामिनि ! यदि उसमें ऋतु के विकार वाले गुण प्रतीत होते

होंतो उसे प्रमाणके ज्ञानरखने वालोंके द्वारा दक्षिण प्रमाणवाला नादकहा गया है ।४१। जिससमय भूत सव्यक इडाआदि नाड़ी प्राणोंका वहनकिया करती है तो एकवर्षके अन्दरही उसकी मृत्यु होजाया करती है,इसमें कुछ भी संशय नहीं होता है ।।४२।।

दशघस्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति ।
पञ्चदसप्रवाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम् ।।४३।।
विंशद्दिनप्रवाहेण षण्मासं लक्षयेत्तदा ।
पञ्चत्रिंशद्दिनमितं वहते वामनाडिका ।।४४।।
जीनितं तु तदा तस्य त्रिमासं हि गत युषः ।
षड् विंशद्दितमानेन मासद्वयमुदाहृतम् ।।४५।।
सप्तविंशद्दितमितं वहते त्वत्यविश्रमा ।
मासमेकं समाख्यातं जीवितं वामगोचरे ।।४६।।
एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः ।
सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः ।।४७।।
चतुःस्थाने स्थिता देवि षोडशैताः प्रकीर्तिताः ।
तेषाँ प्रमाणं यक्ष्यामि सांप्रतं हि यथार्थत ।।४८।।
षड् दिनान्यादितः कृत्वा संख्यायाश्च यथाविधि ।
एतदन्तर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम् ।।४९।।

दश दिन पर्यन्त बराबर चलते रहने से वह वर्षभर तक जीजित रहा करता है और पन्द्रह दिनतक चलनेसे एकवर्षकी उसकी शेषआयु जानलेनी चाहिए ।४३। बीसदिनकेप्रवाहसे छःमासकी आयुही शेषसमझनीचाहिए । यदि वामनाड़ी पच्चीसदिन तक वहनकरती है तो तीनमास और छब्बीस दिनके मानसे दो मास शेष आयु होती है ।४४-४५। और यदि वामभाग से अविश्रान्त रूपसे सत्ताईस दिनतक नाड़ी चलतीरहे तो एकमासका ही शेष जीवन होता है ।४६। इसी रीतिसे वाम वायुके प्रमाण से नाद को प्रमाण समझ लेना उचित है तथा दाहिनीं ओरके क्रमसे चारदिन तकही जीवन समझे ।४७। हे देवि ! चारस्थानोंमें नाडीस्थित हुआकरती है। इस

तरह वे सभी सोलह नाड़ियाँ बतलाईगई हैं । अब मैं उन सबका यथातथ्य ठीक प्रमाण बतलाता हूँ ।४८। छः दिनसेलेकर विधिकेसाथ संख्याके अन्तर्गत दिनों में वाम रन्ध्र में प्राण प्रकाशित होता है ।४९।

षड् दिनानि यदारूढं द्विवर्षं स च जीवति ।
मासानष्टौ विजानीयाद्दिनान्यष्ट च तानि तु ॥५०॥
प्राणाः सप्तदशे चैव विद्धि वर्षं न संशयः ।
सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः ॥५१॥
अष्टघस्त्रप्रभेदेन द्विवर्षं हि स जीवति ।
चतुर्मासा हि विज्ञेयाश्चतुर्विंशद्दिनावधि ॥५२॥
यदा नवदिनं प्राणा वहंत्येव त्रिमासकम् ।
मासद्वयं च द्व मासे दिना द्वादश कीर्तिताः ॥५३॥
पूर्ववत्कथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम् ।
अवांतरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते ॥५४॥
एकादशप्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति ।
मासा नव तथा प्रोक्ता दिनान्यष्टनितान्यपि ॥५५॥
द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति ।
मासान् सप्त विजानीय त्षड् घस्त्रांश्चाप्युदाहरेत् ॥५६॥

जिस समय छः दिनतक नाद प्राणचढ़ा रहे तो समझो वह आदमी दोवर्ष आठमहीने और आठदिनतक जीवित रहेगा ५०। जो सत्रह दिवस तक प्राण आरूढ़रहे तो वह प्राणी एकवर्ष सातमास, छः दिन तक जिन्दारहा करता है इसमें कुछभी सन्देह नहीं होता है ।५१। यदि आठ दिन बराबर चलेतो वह दोवर्ष चारमास और चौबीसदिनतक जीवित रहता है ।५२। जबकि नौ दिनतक इसीओर प्राणवायु चले और पाँचमहीने बारहदिनतक इधरही प्राण चले तो दो मासका जीवनशेष रहाकरता है ।५३। जो प्राण पहलेकेतुल्य कहे हैं उनका काल पहिलेकेतुल्य बतायागया है और जोअन्तर्गत दिन बताये हैं उनसे मास कहेजाते हैं ।५४। इधर ग्यारहदिन चलनेपर वह मनुष्य एकवर्ष नौमास और आठदिन तक जिन्दारहा करता है ।५५।

बारह दिन तक इधर चलने पर एक वर्ष सात मास छै दिन पर्यन्त जीवित रहना उसको होता है ।५६।

नाडी यदा च वहति त्रयोदशदिनावधि ।
संवत्सरं भवेतस्य चतुर्मासाः प्रकीर्तिताः ।।५७।।
चतुर्विशद्दिन शेषं जीवंति च न संशयः ।
प्राणवाहा यदा वामे चतुर्दश दिनानि तु ।।५८।।
संवत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः ।
चतुर्विशद्दिनान्येव जीवितं च न संशयः ।।५९।।
पञ्चदशप्रवाहेण नव मासान्स जीवति ।
चतुर्विशद्दिनान्येव कथितं कालवेदिभिः ।।६०।।
षोडशाह प्रवा ण दशमासांस जीवति ।
चतुर्विशदिनाधिवयं कथितं कालवेदिभिः ।।६१।।
सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम् ।
अष्टादश दिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि ।।६२।।
वामाचारं यदा देवि ह्यष्टादश दिनावधि ।
जीवितं चाष्टमासं तु घस्रा द्वादस कीर्तिताः ।।६३।।

जब तेरहदिनतक इधरही नाड़ीचलती है तो फिर उस व्यक्तिकी आयु एकवर्ष चारमास और चौबीस दिनकी शेष रहती है । इसमें कुछभी संशय नहीं है जब वाम भागमें चौदह दिन पर्यन्त प्राण वहन किया करते हैं तो उसका जीवन काल एक वर्ष छै मास चौवीस दिन तकका शेष रहता है-इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं है ।५७-५८-५९। कालके ज्ञाता लोगों का कथन है कि पन्द्रह दिनके प्रवाहमें मनुष्य नौ मास और चौवीस दिन तक जीवित रहा करता है ।६०। सोलह दिनके प्रवाहमें दश मास चौवीस दिन का जीवन काल शेष रहता है ।६०। हे साधकेश्वरि ! सत्रह दिन तकके प्रवाह होनेपर नौमास अट्ठारह दिनतक जीवन शेष बताया गया है ।६१। हे देवि ! अठारह दिन तक यदि वामाचार होता है तो आठ मास बारह दिन तक जीवन रहता है ।६३।

चतुर्विंशद्दिनान्यत्र निश्चयेन वधारय ।
प्राणवाहो यदादेवि त्रयोविंशद्दिनावधिः ॥६४॥
चत्वारः कथिता मासाः षड् दिनानि तथोत्तरे ।
चतुर्विंशप्रवाहेण त्रीन्मासांश्च स जीवति ॥६५॥
दिनान्यत्र दशाष्टौ च संहरत्येव चारतः ।
अवांतरदिने यस्तु संक्षेपात्तो प्रकीर्तिताः ॥६६॥
वामचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम् ।
अष्टाविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति ॥६७॥
प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते ।
त्रिंशद्धस्रप्रवाहेण पञ्चाहेन बिपद्यते ॥६८॥
एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम् ।
दिनत्रयं तदा तस्य जीवित हि न सँशयः ॥६९॥
द्वात्रिंशत्प्राणसंख्या च यदा हि वहते रविः ।
तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि सँशयः ॥७०॥
दक्षिणः कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते ।
एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले ॥७१॥
धावमानप्रवाहेण दिनमेकं स जीवति ।
चक्रमेतत्परासोर्हि पुराविद्भिरुदाहृतम् ॥७२॥
एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः ।
लोकानाँ च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥७३॥

हे देवि ! तेईसदिन पर्यन्त प्राणप्रवाह होता है तो केवल चौवीसदिन तकका ही जीवन शेष रहता है यह निश्चित है ।६४। यहाँ चारमास और छःदिन अधिक बताये गये हैं । चौवीस दिनके प्रवाहमें वह तीन मास और अठारह दिन तक जीवित रहा करता है ।६५। इस रीतिसे प्राणके सञ्चार से अवान्तरके दिनके कालवर्णन तुम्हारे सामने करदिया है ।६६। अबतक वाम सञ्चार का वर्णनकिया अब दक्षिण संचार का वर्णन करते हैं उसका श्रवण करो । यदि अट्ठाईस के प्रवाहसे दक्षिणसंचार होता है तोवहव्यक्ति

पन्द्रह दिन तक जीवित रहा करता है ।६७। दशदिनके प्रवाहमें दश ही दिनमें और तीसदिनके प्रवाहमें पाँच दिनमें मृत्युको प्राप्त होजाया करते हैं ।६८। हे देवि ! जिस समय इकत्तीस दिनतक प्राणचलते हैं तो निश्चयही तीनदिनतक उसका जीवन शेषरहता हैं ।६९। जब सूर्य बत्तीसकी संख्यामें वहनकिया करता है तो उसकाजीवन निस्सन्देह दोदिन शेषरहता है ।७०। अबतक दक्षिण प्राणके संचारका वर्णनकिया था अब आगे मध्यस्थ प्राण के विषयमें वर्णन किया जाता है जबकि वायुका प्रवाह एक भागसे मुखमें छोड़तेहुए प्रवाहसे रहता है तो वह व्यक्ति केवल एकही दिन जीवित रहा करता है । पूर्व वेत्ताओंने इसीप्रकारका कालचक्र बताया है ।।७१-७२।। हे देवि ! आयुके गतहोजाने वाले पुरुषोंका इस तरहका काल-चक्र लोकोंसे कल्याण के लिए ही वर्णित किया गया है, इसके आगे अन्य जो कुछ तुम सुनना चाहती हो सो मुझे बतलाओ ।।७३।।

ज्ञान,क्रिया,भक्तियोग तथा नवरात्रिकी श्रेष्ठता का वर्णन

व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ।
अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः ।। १ ।।
उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम् ।
प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने ।। २ ।।
धन्या यूयं महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः ।
पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्यं शृणुतावरात् ।। ३ ।।
सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते ।
उमायाः श्रोतुमिच्छामि क्रियायोग महाद्भुतम् ।। ४ ।।
कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत् ।
प्रियं यच्च पराम्बायास्तदशेष वदस्व मे ।। ५ ।।
द्वैपायन यदेत्तत्वं रहस्यं परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं मे सर्वं वर्णयिष्यतः ।। ६ ।।
ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च ।
त्रयो मार्गाः समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ।। ७ ।।

मुनिगण ने कहा—हे व्यासजीके शिष्य ! हे महाभाग ! हे पौराणिकोत्तम, हे सूतजी ! अब हमारी इच्छा शिवजीके और इतिहासके सुननेकी होती है ।१। सनत्कुमारजीके जगज्जननी पार्वतीजीका परम श्रेष्ठ क्रिया-योग व्यासजीसे कहा था । हम अब आपके मुखसे उसे ही श्रवण करनेकी इच्छा रखते हैं ।२। सूतजी ने कहा—तुम सब लोग पूरे महात्मा एवं परम धन्यहो तथा देवीकी दृढ़भक्ति करनेमें भी दृढ़व्रतहो । अब में आपके समक्ष में पराशक्तिके अत्यन्त गुप्तरहस्यकी वर्णनकरता हूँ । आपलोग आदरपूर्वक सुनें ।३। व्यासजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे महामते ! मैं पार्वतीके परम सुन्दर क्रिया योगके सुननेका इच्छुक हूँ ।४। आपकृपाकरके मुझे यहबतानेकी उदारता अवश्यकरेंकि उसका क्यालक्षण है एवं उसके करनेसे क्या फलहोता है ? जोकि पराम्बाको अत्यन्तप्रिय है ।५। सनत्कुमारजी ने कहा हे व्यासजी ! हे महाबुद्धे ! आप जिस तरहके विषयमें पूछ रहे हैं में अब उसे पूर्ण रूपसे वर्णनकरता हूँ सो सब श्रवण करो ।६। जगदम्बा श्रीमाताके भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले ज्ञान योग, क्रिया-योग और भक्ति योग के तीन मार्ग होते हैं । ७ ।

ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः ।
यस्तु वाह्यार्थसंयोगः क्रियायोगः स उच्यते ॥ ८ ॥
भक्तियोगो यतो देव्या आत्मनश्चैक्य भावनम् ।
त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगः स उच्यते ॥ ९ ॥
कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञान प्रयायते ।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥१०॥
प्रधानं कारणं यागो विमुक्तेर्मुनिसत्तम ।
कियायोगस्तु योगस्य परमं ध्येयसाधनम् ॥११॥
मायाँ तु प्रकृतिं विद्यान्मायावि ब्रह्म शश्वतम् ।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१२॥
यस्तु देव्यालय कुर्यात्पाषाणं दारवं तथा ।
मृन्मयं वाथ कालेय तस्य पुन्यफलं शृणु ।
अहन्यहनि योगेन यजतो यन्महाफलम् ॥१३॥

प्राप्नोति तत्फलं देव्या यः कारयति मन्दिरम् ।
सहस्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्रकम् ।
स तारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धाम कारयन् ॥१४॥

मानवके चित्तका आत्माकेसाथ जो संयोग होजाता है यही ज्ञानयोग के नामसे कहा जाता है । जिसमें बाहरी अर्थोका सँयोग है वह क्रियायोग कहागया है ।५८। भगवतीदेवी और आत्माका एक होजाना ही भक्तियोग के नामसे विख्यात है । इन तीनों योगोंको क्रियाभोग कहते हैं ।९। कर्मसे ही भक्तिका उदय होता है और भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति हुआ करती है—ऐसाही शास्त्रकारोंने निश्चय किया है।१०। हे मुनिवर ! योगही मुक्तिका प्रमुख कारण होता है और क्रियायोग,योग का परमध्येय साधन होता है ।११। प्रकृतिको मायाजानकर और सनातन ब्रह्म को मायावी समझकर तथा इन दोनों के अभिन्न शरीरका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाता है ।१२। हे व्यासजी ! जो कोई मनुष्य पाषाण—काष्ठ अथवा मिट्टीसे देवीके मन्दिर का निर्माण करायाकरता है उसके पुण्यका महान्‌फल होता है । प्रतिदिन यजनकरनेसे जो पुण्य-फल मिलता है वही इस मन्दिरके निर्माण करानेसे होता है।१३। देवीके मन्दिरके करानेका फल नैत्यिक योग-यजनके ही तुल्य हुआ करता है । श्रीमाता के धामका निर्माता धर्मात्मा पुरुष अपने अतीत और आगामी एक-एक सहस्र कुलको तार दिया करता है ॥१४॥

कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
श्रीमातुर्मन्दिरारम्भक्षणादेव प्रणश्यति ॥१५॥
नदीषु च यथा गंगा शोणः सर्वनदेषु च ।
क्षमायां च यथा पृथ्वी गांभीर्य्ये च यथोदधिः ॥१६॥
ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्यो विशिष्यते ।
तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराऽम्बा विशिष्यते ॥१७॥
सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्यः कारयेद् गृहम् ।
प्रतिष्टां सपवाप्नोति स जन्मनि जन्मनि ॥१८॥

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा ।
गंगासमुद्रतीरे च नैमिषेऽमरकण्टके ॥१९॥
श्रीपर्वने महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते ।
मथुरायामयोध्यां द्वारावत्यां तथैव च ॥२०॥
इत्यादिपुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ।
कारयन्मातुरावासं मुक्ता भवति बन्धनात् ॥२१॥

करोड़ों जन्म के किये हुए पाप तो माता के मन्दिर के निर्माण का आरम्भ करते ही नष्ट हो जाया करते हैं ।१५। समस्त नदियोंमें गङ्गा सम्पूर्ण नदोंमें शोण,क्षमामें भूमि और गाम्भीर्य में समुद्र सर्वोत्तम शिरोमणि होता है । इसी प्रकार समस्त ग्रहों में भुवन भास्कर कहा गया है वैसेहीसमस्त देवताओंमेंपराम्बासभीसे अधिक मानी गईहै'१६-१७।समस्त देवों में परम प्रधान देवीके धामका निर्माण कराने वाला प्रत्येक जन्म में प्रतिष्ठा की प्राप्ति किया करता है ।१८। वाराणसी,कुरुक्षेत्र,प्रयाग,पुस्कर में तथागङ्गायाँ समुद्र तटपर,नैमिषारण्य में अमरकंटक में,महापवित्र पर्वत पर, गोकर्ण में ज्ञान पर्वत पर,मथुरा,अयोध्या और द्वारका इत्यादि परम पवित्र स्थलोंमें अथवा अन्यकिसीभी समुचित स्थानमें जो देवी के मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य निश्चयहीं संसार के बन्धनों से विमुक्त होजाता है ।।१९-२१-२२॥

इष्टकानां त विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते ॥२२॥
प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलक्षणलक्षिताः ।
स उमायाः परं लोकं निर्भयो ब्रजति ध्रुवम् ॥२३॥
देवीमूर्ति प्रतिष्टाप्य शुभतु ग्रहतारके ।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः ॥२४॥
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पात्पुरुषाःकुले ।
तांस्तांस्तारयते देव्या मूर्ति संस्थाप्य शोभनाम् ॥२५॥
त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद् भवेन्मुनिपुंगव ।
तत्कोटिगुणित पुण्यं श्रीदेवीस्थापनाद् भवेत् ॥२६॥

मध्ये देवी स्थापयित्वा पंचायतनदेवता: ।
चतुर्दिक्षु स्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते ।।२७।।
विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो: ।
यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तरम् ।।२८।।

मन्दिर की चुनाई में जो ईंट लगीहैं वे जितनेवर्षतकटिकी रहती हैं उतने वर्षोंके सहस्र पर्यन्त निर्माता मनुष्य मणिद्वीपमें निवासकिया करता है ।२२। जो सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न देवीकी प्रतिमा निर्माण करता है वह निडर होकर पार्वतीके परमलोककी प्राप्ति किया करता है । शुभ ऋतु,ग्रेह, नक्षत्रादि के शुद्ध समय में जो देवीकी प्रतिमा को प्रतिष्ठितकरके विराजमान करता है वह योगमायाके प्रसाद से कृतकृत्य होजाताहै ।२३। २४। कल्प के आरम्भसे लेकर जो भी वंशमें उत्पन्न हुयेथे या भविष्य में भी उत्पन्नहोंगे उन सबको देवीकी सुन्दर मूर्तिकी स्थापना करने वाला पुरुष तार देता है ।२५। हे मुनि श्रेष्ठ ! इस त्रिभुवनके स्थापन करने से जितना पुण्य होता है उससे एककरोड़ गुना पुण्य केवल भगवती देवी की मूर्ति की स्थापनासे हुआ करता है ।२६। जो कोई बीच में देवी को स्थापित करके उनके चारों ओर गणेश-गौरी आदि की पचायतन स्वरूप देवताओं की स्थापना किया करता है उसका कोई भी पुण्य नहीं समझा जा सकता है ।२७। चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के समय में विष्णु के एक करोड़ नाम से जो फल मिलता है उससे सौ कोटि गुना फल प्राप्त होता है ।२।

शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटिगुणोत्तरम् ।
श्रीदेवीनामजापत्तु ततः कोटिगुणोत्तरम् ।।२९।।
देव्या: प्रासादकरणात्पुण्यं तु समवाप्यते ।
स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रयीमयी ।।३०।।
न तस्य दुर्लभं किंचिन्छोमात: करुणावशात् ।
वर्द्धन्ते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम् ।।३१।।
मनसा ये चिकीर्षन्ति मूर्तिस्थापनमुत्तमम् ।
तेऽप्युमाया: परं लोकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम् ।।३२।।

क्रियमाणं तु यः प्रेक्ष्य केतसा ह्यनुचिन्तयेत् ।
कारयिष्याम्यहं यर्हि संपन्मे सभविष्यति ॥३३॥
एवं तस्य कुलं सद्यो याति स्वर्ग न संशयः ।
महामायाप्रभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रये ॥३४॥
श्रीपराम्बां जगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः ।
ते मनुष्या न मन्तव्याः साक्षाद् देवीगणाश्च ते ॥३५॥
ये ब्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम् ।
उमेति द्व्यक्षरं नाम ब्रुवते ते शिवागणाः ॥३६॥

शिव नाम के जपने से जो पुण्य-फल होता है। उसके करोड़ गुना फल श्रीदेवी के नाम के जाप से प्राप्त होता है।१६। तीनों देवताओं के स्वरूप वाली देवी को स्थापित किसी ने किया, उसका प्रसाद बनाने का भी पुण्य मिलता है। जिस पर श्री माता की कृपा हो जावे उसके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है। देवी के प्रसाद से समस्त पापों का क्षय और पुत्रपोत्रादि की बृद्धि होती है।३०-३१। जो मन में भी कभी श्री माताकी उत्तममूर्त्ति की स्थापना करने की इच्छा रखते हैं वे मुनियों को भी अत्यन्त दुर्लभ पार्वती के लोक की प्राप्ति किया करते हैं।३२। जो मनुष्य किसी अन्य के द्वारा विनिर्मित मन्दिर को देखकर अपने चित्त में भी यह विचार करता है कि अगर मेरे पास धन हो जायगा तो मैं भी देवी का मन्दिर बनवाऊँगा, ऐसे मन के संकल्प से ही उसका समस्त कुल शीघ्र ही स्वर्ग को निस्सन्देह चला जाता है। श्री महामाया का ऐसा प्रभाव है कि उसे तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है।६६-३४। जो इस मानव जगत् को उत्पन्न करने वाली श्री पराम्बा भगवती का केवल आश्रयही ग्रहण करते हैं उनको सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वे तो साक्षात् भगवती के गण ही होते हैं।३५। जो मनुष्य रात दिन स्थिति होतेहुये सोते-जागते उमा के दो अक्षरों के नाम का उच्चारण करते रहा करते हैं ये शिवा के गण होते हैं ॥३६॥

नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम् ।
पुष्पधूपैस्तथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥३७॥

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाऽथवा ।
उपलिम्पन्ति मार्जन्ति ते प्रयास्यत्युमालयम् ॥३८॥
येर्देव्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम् ।
तत्कुलानाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति ॥३९॥
मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाजनाः ।
नापदामयनानीत्थं श्रीमातावक्त्यहर्निशम् ॥४०॥
येन मूर्तिर्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा ।
नरायुत तत्कुलजं मणिद्वीपे महीयते ॥४१॥
स्थापयित्वा महामायामूर्ति सम्यक्प्रज्य च ।
य य प्राथयते काम तं त प्राप्नोति साधकः ॥४२॥

जो नित्य ही तथा नैमित्तिक कर्ममें पुष्प, धूप, दीप से पराश्री शिव का पूजनकिया करतेहैं, वे अन्त समयमें पार्वतीके धामको प्राप्तकियाकरते हैं ।३७। जो प्रतिदिन देवीके मन्दिर या मण्डपको गोमय मिट्टीसे लीपते हैं तथा मण्डपका मार्जनकरते हैं वे पुरुषभी उमा के लोक को प्राप्तहोतेहैं ।३८। जिन्होंने माता के परम सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया है, उन कुलीन मनुष्यों को माता भगवती प्रसन्न होकर बहुत-से आशीर्वाद दिया करती है ।३९। भगवती ऐसेभक्तोंके लिये आशीष देतीहैकिमुझमेंअनुराग रखने वाले मेरे भक्त सौ वर्षतक बिना आपत्तिके जीवितरहें।४०। जिसने जगदम्बाकी शुभमूर्तिका निर्माण कराया और उसे स्थापित कियाहै उसके कुलके मनुष्य दशसहस्र वर्षतक मणिद्वीपजाकर निवासकियाकरतेहैं ।४१। भगवती महामायाकी प्रतिमाकी स्थापना करके भलीभाँति उसका अर्चन किया करतेहैं, वेमनमें जो-जो भी कोईमनोरथकरतेहैं उन्हें निश्चित रूप से प्राप्तकिया करते हैं । देवी की मूर्तिकोऐसाअद्भत चमत्कार है ।४२।

यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूतिमुत्तसाम् ।
घृतेन मधुनाऽऽक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः ॥४३॥
चन्दना गुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलः ।
एकवर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ॥४४॥

धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ।
नीराजनं चरेद् देव्याः साज्यकर्पूरवर्तिभिः ।४५
कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वाऽमायां वा पचदिक्तिथौ।
पूजयेज्जगतां धात्री गंधपुष्पविशेषतः ।४६
सपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथवा पठन् ।
देवीसूक्तमथो वाऽपि मूलमन्त्रमथापि वा ।४७
विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाऽखिलं शुभम् ।
वीप्रातिकरं ज्ञेयं कमलं तु विशेषतः ।४८
अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा ।
स याति परमं धाम सिद्धकोटिभिरन्वितम् ।४९

जो जगदम्बा भगवती की प्रतिमा की स्थापना कर उसका मधु घृत आदि से स्नान कराता है उसका ऐसा महान् फल होता है कि उसे कोई बता नहीं सकता है ।।४३।। भगवती के स्नान का विधान है कि चन्दन कर्पूर,अगर जटामांसी,नागरमोथा आदि परम सुगन्धित पदार्थों सेसमन्वित सलिलसेकिम्बा एकहीरंगवालीगाय केदूधसेपरमेश्वरीका स्नानाभिषेक करना चाहिए। ४४।। फिर इसके अनन्तर अठारह वस्तुओं सप्रस्तुत धूप की आहुतियाँ देनी चाहिये और घृत तथा कपूर की बत्तियों से भगवती जगदम्बा की आरती करनी चाहिए ।। ४५ ।। कृष्णपक्ष की अष्टमी अथा नवमी एवं अमावस्या वा पंच दिक्पालों की तिथियोंमें गन्धपुष्पोंसे जगद्धारिणी देवी का विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये।।४६।। देवीसूक्त अथवा श्रीसूक्तका पाठ करके या देवी के मूलमन्त्र (नवार्ण) का जाप करके विष्णुक्रान्ता या तुलसी दलोंको चढ़ाते हुए विशेष रूपसे कमलोंको देवी पर चढ़ा देवें कि ये सब पुष्प देवी को प्रसन्नता के देनेवाले हैं ।।४७-४८।। जो कोई भक्त देवीकीसेवासे स्वर्ण पुष्प या राजनिर्मित कुसुम समर्पित किया करता है वह करोड़ों सिद्धोंके सहित परम धाम को प्राप्त होता है । ४९।।

पूजान्ते सदा कार्यं दासैरेन क्षमापनम् ।
प्रसीद परमेशानि जगदानददायिनि ।५०

इति वाक्यैः स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः।
ध्यायेत्कण्ठीरवारूढ़ां वरदाभयपाणिकाम् ।५१
इत्थं ध्यात्वा महेशानी भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ।
नानाफलानि पक्वानि नैवेद्यत्वे प्रकल्पयेत् ।५२
नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः।
स निर्धूयाखिल पङ्कं निर्मलो मानवौ भवेत् ।५३
चैत्रशुक्लतृतीयायां या भवानीव्रतं चरेत् ।
भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम् ।५४
यस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः।
पूजयेज्जगतां धात्रीमुमां शंकरसंयुताम् ५५
कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः।
धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैः स्रग्गन्धैरपरैरपि ।५६

जब पूजनकी समाप्ति हो उस समय देवीके किंकरो को हाथ जोड़कर सर्वदा पापोंका क्षमापनकराना उचित हैकि हे परमेशानि ! हे जगदानन्ददायिनी ! आप हमपर प्रसन्नहोवें ।५ । मन्त्रोंकेपाठक इन उपर्युक्तवाक्यों के द्वारा देवीका स्तवनकरें और परमभक्ति भावमें तत्परहोते हुए मयूरपर समारूढ़ वर प्रदात्री तथा अभय धन देनेवालीं भगवती जगदम्बाका ध्यान करना चाहिए ।५१। इस रीतिसे भक्तोंके अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेवाली महेश्वरीका ध्यानकर विविधफल तथा नैवेद्य अर्पणकरे ।५२। जोपरमेश्वरी जगदम्बाके प्रसाद स्वरूप नैवेद्यको भक्षण करता है वह अपने समस्त पाप रूपी कीचड़को धोकर निर्मल चित्त होजाता है ।५३। जो कोई चैत्र शुक्ला तृतीयाको भवानीके व्रतकोकरता है वह समस्तसाँसारिक बन्धनोंसेविमुक्ति होकर परमपदका लाभ कियाकरता ।५४ पार्वतदेवी उसे अभीष्ट फलदिया करती है जो पूर्वोक्त तृतीयाकेदिन देवीका सुन्दर दोलोत्सवकरे और जगत् के धारण करनेवाली पार्वतीकेसहित शिवका पूजनकरता है ।५५। पार्वती का अर्चन पुष्प,कुंकुम वस्त्र, कर्पूर,अगर चन्दन, धूप, दीप नैवेद्य तथा और भी अनेक अन्य सुन्दर गन्धों से करना चाहिए ।।५६।।

आनन्दोलयेत्ततो देवी महायाँ महेश्वरीम् ।
श्रीगौरीं शिवसंयुक्तां सर्वकल्याणकारिणीम् ।५७
प्रत्यब्द कुरुते योऽस्या व्रतमान्दोलनं तथा ।
नियमेन शिवा तस्मै सर्वमिष्ट प्रयच्छति ।५८
माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याऽक्षयाभिधा ।
तस्याँ यो जगदम्बाया व्रतं कुर्यादतन्द्रितः ।५९
मल्लिकामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ।
कुसुमै पूजयेद् गौरीं शङ्करेण समन्विताम् ।६०
कोटिजन्मकृत पापं मनोवाक्कायसम्भवम् ।
निर्धूय चतुरो वर्गानक्षयानिह सोऽश्नुते ।६१
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां व्रत कृत्वा महेश्वरीम् ।
योऽर्चयेत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ।६२
आषाढ़शुक्लपक्षीयतृतीयायां रथोत्सवम् ।
देव्याः प्रियतम कुर्य्याद्यथावित्तानुसारतः ।६३

इसके अनन्तर महामाया महेश्वरी श्री शिव से श्री गौरी की जो कि समस्त कल्याणोंकेप्रदान करनेवाली देवी हैं आन्दोलनाकरे ।५७। जो पुरुष इस तिथिमें हर एक वर्ष में नियमपूर्वक व्रत तथा आन्दोलन कियाकरता है परमप्रसन्न पार्वतीदेवी उसके समस्त अभीष्टोंको प्रदानकियाकरती हैं ।५८। बैसाखमासके शुक्लपक्षमें होनेवाली अक्षय तृतीयाके दिन निरालस्य होकर जगदम्बाका व्रत जो कोईभी करता है और मालती, मल्लिका, जपा, चम्पा बन्धूक और कमलों से कुसुमों से शिवके सहित भगवती पार्वतीकी अर्चना करता है वह मनुष्य करोड़ों जन्मके कियेहुए मनवचन और शरीरके महा-पापोंको नष्टकरधर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का लाभ करता है ।५९-६०-६१। ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को जो मानव इस माहेश्वरी व्रतको करतेहुए देवीकाअर्चन कियाकरता है उसको इस संसारमें कुछभी असाध्य एवं अप्राप्य नहीं रहता है ।६२। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि आषाढ़ शुक्लकी तृतीया तिथिकेदिन भगवतीके परम प्रिय रथोत्सवको अपनी धन शक्ति अनुसार करे ।६३।

रथं पृथ्वीं विजानीयाद्रथाँगे चन्द्रभास्करौ ।
वेदानश्वान्विजानीयात्सारथिं पद्मसम्भवम् ।६४
नानामणिगणाकीर्णं पुष्पमाला विराजितम् ।
एवं रथ कल्पयित्वा तस्मिन्संस्थापयेच्छिवाम्।६५
लोकसंरक्षणार्थाय लोकं द्रष्टुं पराम्बिका ।
रथमध्ये संस्थितेति भावयेन्मतिमान्नरः ।६६
रथे प्रचलिते मन्दजयशब्दमुदीरयेत् ।
पाहि देवि जनानस्मान्प्रपन्नान्दीनवत्सले ।६७
इति वाक्यैस्तोषयेच्च नानावादित्रनिःस्वनैः ।
सीमांते तु रथं नीत्वा तत्र संपूजयेद्रथे ।६८
नानास्तोत्रैस्ततःस्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववेमनि ।
प्रणिपातशत कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम् ।६९
एवं यः कुरुते विद्वान्पूजाव्रतरथोत्सवम् ।
एवं यः कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ।७०

इस भूमिको रथ समझकर तथा चन्द्र एवं सूर्यको इस रथ के पहिये जानकर वेदोंको उसमें जोते जाने वाले अश्व तथा ब्रह्माजीकोउसकाहांकने वाला सारथि समझ कर अनेक मणि-रत्नों से परिपूर्ण पुष्प-मालाओं से सुशोभित होनेवाले रथकी इसीभाँति कल्पना करके उसमेंभगवती पार्वती का विराजमानकरना चाहिये।।६४-६५।।बुद्धिमानभक्तको चाहिये कि उस समय अपने मनमें ऐसी भावनाकरेकिभगवतीपराम्बिका लोकों के कल्याण, रक्षाऔर देखनेकेलियेही रथके मध्यमें आजविराजमानहो रहीहैं ।६६। रथ जब धीरे-धीरे चलनेलगे तो जयकार'का उच्चारणकरे औरमुखसे यह भी कहे-हेदेवि ! हेदीनवत्सले। हम सबतुम्हारीशरणागतिमेंआये हैं, आप हमारी सबकी रक्षाकरें ।६७। इस सुन्दर रीति से वाक्यों को कहतेहुए अनेकवाद्यों को वजाते-गाते भगवतीको पूर्ण सन्तुष्ट करे और रथ कोसीमाके अन्तिम स्थल तक ले जाकर फिर उसका पूजन करे ।६८। वहाँ अर्चन के पश्चात् अनेकों स्तोत्रोंके द्वारा देवी का स्तवन करना चाहिए । इसके उपरान्त देवीको घर लौटाकरलावेऔर प्रणाम करे एवंजगज्जननीकी प्रार्थनाकरनी

चाहिए ।।६९।। जो प्रवीण भक्त इस विधिसे जगदम्बाका पूजन व्रत और रथोत्सव को किया करते हैं वह निस्सन्देह इस लोक में समस्त भोगों का उपभोग करके अन्त में देवीके पदको प्राप्त किया करता है ।।७०।।

शल्कायां तु तृतीयायामेवं श्रावणाभाद्रयोः ।
यो व्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजन च यथाविधि ।७१
मोदिते पुत्रपौत्राद्यैर्धनाद्यैरिह सन्ततम् ।
सोऽन्तौ गच्छेदुमालोक सर्वलोकोपरि स्थितम् ।७२
आश्विने धवले पक्ष नवरात्रव्रतं चरेत् ।
यत्कृते सकलाः कामाः सिद्धयन्त्येव न सशय।७३
नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभाव वक्तुमीश्वरः ।
चतुरास्योन पञ्चास्यो न षडास्यो न कोऽपर।७४
वरात्रव्रतं कृत्वा भूपालो विरथात्मजः ।
हृतं राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः ।७५
ध्रुवसंधिसुतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः ।
सदर्शना हृतं राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः ।७६
व्रतराजमिमं कृत्वा ममाराध्य महेश्वरीम् ।
संसारबन्धनान्मुक्तः समाधिर्मुक्तिभागभूत् ७७

इसी तरह से श्रावण मासतथा भाद्रपद मासकी शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके दिन जो मानव श्रीमातादेवीका व्रत तथासविधि समर्चनकरता है वह संसारमें अपने पौत्र-पौत्रादिके परमसुखतथा धन-धान्यादि की समृद्धि काअनुपम आनन्दप्राप्तकरजीवनके अन्तमे समस्तलोकोके ऊपरस्थित उमा के लोककोजायाकरताहै।७१ ७२। आश्विनमासको नवरात्रिकी तृतीया के दिन व्रत अवश्यही प्रत्येक को करनाचाहिये । इस व्रत के करने से समस्य मानव मनोरथोंकी सिद्धि हुआकरतीहै इसमेंकुछभी सन्देहका अवसर नहीं है ।७३। नवरात्रिके व्रतका ऐसा अतुल एवम् अद्भुत माहात्म्यहोताहै जिसे ब्रह्मा,शिव,स्वामिकार्तिकेय तथा अन्य कोई देवभी वर्णनकरने में असमर्थ होतेहैं।।७४।। हे मुनिश्रेष्ठो । इस नवरात्रिके व्रतको करके पहिलेविरथ के

पुत्र राजा सुरथने अपने आहृत राज्यकी प्राप्ति की थी ।७५। इसी महाव्रत के प्रभावसे महामनीषी ध्रुवसन्धिके पुत्र अयोध्याके अधीश्वर राजा सुदर्शन ने छिने हुए राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया था ।७६। इसी व्रत को करके समाधि नामक वैश्य महेश्वरी भगवतीकी कृपासे उसकी आराधनाके द्वारा संसारके बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो गया था ७७।

तृतीयायां च पञ्चम्यां प्रसम्यामष्टमीतिथौ ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ।७८
आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः ।
तस्य सर्वमनोभीष्टं पूरयत्यनिश शिवाः ।७९
यः कार्तिकस्य मार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा ।
तपसस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् ।८०
लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैर्धूपै सुगन्धितैः ।
पूजयेन्मङ्गलां देवीं स सर्वमङ्गलं लभेत् ।८१
सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यमेतन्महाव्रतम् ।
विद्याधनसुताप्त्यर्थं विधेयं पुरुषरपि ।८२
उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यन्यानि यान्यपि ।
देवीप्रियाणि कार्याणि स्वभक्त्यैवं मुमुक्षभि ।८३

जो मनुष्य तृतीया पञ्चमी सप्तमी, अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी को भगवती महामायाका अर्चन करता है और आश्विनके शुक्लपक्षमें पूर्ण विधि-विधानके साथ व्रत किया करता है उसके सब मनोरथों की पूर्ति भगवती जगदम्बा सर्वदा पूर्ण किया करती है ।७८-७९। जो कार्तिक मार्गशीष पौष और माघ मासोंकी कृष्णपक्षकी तृतीयाको व्रत करता है और रक्त करवीर आदिके पुष्पोंसे तथा सुगन्धित धूपादिसे मङ्गलादेवीका यजन किया करता है, उसे समस्त मङ्गलोंका लाभ अवश्यही हो जाता है ।८०-८१ यह महान् व्रत सौभाग्य सुख पाने के उद्देश्य सर्वदा स्त्रियों को करना चाहिए और विद्या धन एवं सन्तान पानेके लिए पुरुषोंको करना चाहिए ।८२। इसी तरह इनके अतिरिक्त सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको भक्ति-भावकेसाथ ही करना चाहिए । इससे बड़ा लोकोत्तर कल्याण होता है ।८३।

संहितेयं महापुण्या शिवभक्ति विवर्द्धिनी।
नानाख्यान समायुक्ताभुक्तिमुक्तिप्रदाशिवा।८४
य एनां शृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम्।८५
यस्य गेहे स्थिता चेय लिखितालतिताक्षरैः।
संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स ओप्नुयात्।८६
भूतप्रेतपिशाचादिदुष्टेभ्यो न भयं क्वचित्।
पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिर्लभेदेव न संशयः।८७
तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा।
श्रोतव्या पठतव्या च शिवभक्तिमभीप्सुभि।८८

इस शिवकी भक्तिको बढ़ाने वाली और बहुत से ऐतिहासिक बातोंसे परिपूर्ण तथा भोग एवं मोक्ष दोनों दुर्लभवस्तुके प्रदानकरने वाली महान् पुण्यदायक संहिताका जो श्रवण किया करता है या सुनता है-पढ़ता है या पढ़ाता है वह परम गतिकी प्राप्ति किया करता है।८४-८५। जिसके घरमें अत्यन्त सुन्दर अक्षरोंसे लिखीहुई यह संहिता विराजमानहो और नित्यही विधि के साथ इनकी पूजा की जाती हो वह घर का स्वामी अपने समस्त अभीष्ट मनोकामनाओं की प्राप्ति किया करता है।८६। उस गृह स्वामीको कभी भी भूत,प्रेत, पिशाच आदि दुष्टोंसे तनिक भी भय नहीं हुआ करताहै और पुत्र-पौत्र,धन-धान्य आदिको सम्पत्तिका विस्तार अधिक होजाता है- इसमें कुछभी संशय नहीं है।८७। इसलिये शिव-भक्तिके इच्छुक पुरुषोंको इस महान् पुण्यवाली उमा-संहिता को नित्य ही नियमपूर्वक सुननी तथा पढ़नी चाहिए।८८।



कैलास-संहिता

मुनियों को व्यास के प्रति ओंकार जिज्ञासा

साधु साधु महाभागा मुनयः क्षीणकल्मषाः ।
मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा साऽपि दुष्कृताम् ।१
पाराशर्येण गुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ।
मुनीनामुपदिष्टं यद्वक्ष्ये तन्मुनिपुंगवाः ।२
यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ।
सावधाना भवतोऽद्य शृण्वन्तु परयामुदा ।३
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं तपस्यन्तो दृढव्रताः ।
ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते ।४
दीर्घ सत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम् ।
प्रीणयन्तः परं भावमैश्वर्यं ज्ञातुमिच्छवः ।५
निवसन्ति स्मस्ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः ।
शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणाः ।
तेषां भावं समालोक्य भगवान्वादरायणाः ।
प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पराशरतपः फलम् ।७

श्री सूतजी ने कहा-हे निष्पाप मुनिवृन्द ? आप लोग सभी परमधन्य एवम महान् भाग्यशाली हो इसमें कुछ भी सन्देह नहींहै। तुम्हारी ऐसी दृढ़ मति कभी भी दुष्कर्म करने वालों की नहीं हुआ करतीहै ।१। हमारे परम गुरुवर्य व्यासजी ने नैमिषारण्य के निवासीमुनियोंको जोउपदेशदियाथावही उपदेश में आपलोगोंको श्रवणकराताहूं।२।यह ऐसा अद्भुत उपदेश है कि इसके श्रवणकरने मात्रसे ही मनुष्योंके हृदयोंमें भगवान् शिवकी भक्ति का सञ्चार होजाता है । आपलोग सावधान चित्तहोकर सुनें और प्रसन्नता के साथ मनमें धारणकरें ।३। स्वारोचिष मन्वन्तरके अन्तसमयमें समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले नैमिषारण्य में दृढ़व्रत धारण कर तपश्चर्या

भी यही कहती है और यह एक परम निश्चत बात है।।३।। मैंने यह खूब देख व समझ लिया है कि आप लोगोंने यहां एक दीर्घ याग भगवान् शिव की, जो अम्बिका के स्वामी हैं, उपासना आरम्भ करदी है ।४। इसलिये मैं आप लोगों को एक परम प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ हे आस्तिको ! यह परम पवित्र उमा-महेश का ही सुन्दर सम्वाद है।५ पुरातन समय में प्रजापतिदक्ष की पुत्री जगन्मातासती ने शिव की निन्दा सुनकर पिता यज्ञ में ही अपने शरीर का त्याग कर दियाथा ।६। इसके अनन्तर अपनी तपस्या के प्रभाव से हिमाचल के यहां दूसरा जन्म ग्रहणकिया औरदेवर्षि नारदकेउप देश से शिव कीप्राप्ति के लिए अति उग्र निश्चलतपस्याकी थी ।७। उस हिमाचल गिरिराज ने गिरिजाका स्वयम्बर विधानकीपद्धति से शिवके साथ विवाह कर दिया ।८।

उपदिष्टास्त्वया देव मन्त्राः सप्रणवा मताः ।
तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चतम्।९
कथं प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणाव उच्यते ।
मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते।१०
देवता कति च प्रोक्ताः कथं वेदादि भावना।
क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम् ।११
ब्रह्माणि पञ्च मन्त्रेऽस्मिन्कथं तिष्ठन्त्यनुक्रमात् ।
कलाः कति समाख्याताः प्रपचात्मकता कथम् ।१२
वाच्यावाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव ।
कोऽत्राधिकारी विज्ञेयो विषयः क उदाहृतः १३
सम्बन्धः कोऽत्र विज्ञेयः किं प्रयोजनमुच्यते ।
उपासकस्तु कि रूपः किंवा स्थानमुपासनम् ।१४

पार्वती ने कहा हे देव ! आपने ओंकार के सहित मन्त्रों का उपदेश किया है ।९। इस कारण से मैं सर्व प्रथम प्रणव के अर्थ के ज्ञान को प्राप्त करनेकी इच्छा रखती हूँ ।३। प्रणव की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई ? वह प्रणव'-इस नाम से क्यों विख्यातहुआ ? प्रणव में वस्तुतः कितनी मात्रायें

बाणीसे गम्भीरतापूर्वक उन ऋषियों से कहा व्यासजी बोले-हे ऋषियो ! आपके इस यज्ञमें सबतरहसे कुशलता तो हैं न ! क्या आप लोगोंनेयज्ञपति का भली भाँति सविधि पूजन कर लिया है ।९ १०। जो महेश्वर अपनी प्रिया पार्वतीके सहित इस संसारके भयसे मुक्तकर देने वाले हैं उनका इस यज्ञमें आप लोगों ने किस इच्छा से प्रेरित होकर भक्तिभावके साथ पूजन किया है ! ।११। मैं ऐसाजानता हूं कि यह आप लोगोंकी प्रवृत्ति तथासेवा पहिले ही से हैं जिससेकि अब मुक्तिकी भावनासे आपने शिवकी आराधना की है ।१२। महातेजके धारणकरने वाले महर्षि व्यासजीने जब इस तरह कहा तो नैमिषारण्य के निवासी—महापराक्रमी ऋषि अत्यन्त तेज पूर्ण पराशरकेपुत्र तथा शिवके प्रेममें परायण महात्माव्यासजीको प्रणामकरके कहने लगे ।१३-१४।

भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज ।
कृपानिधे महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो १५
त्वं हि सर्वजगद्भर्तुर्महादेवस्य वेधसः ।
साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधिः स्वयम् ।
त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ।
कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात् ।१७
त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम् ।
दुर्लभं लब्धमस्माभिस्तस्मात्सुकृतिनी वयम् १८
अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसंज्ञके ।
दीर्घसत्रान्विताः सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः ।१९
श्रोतव्यः मरमेशान इति कृत्वा विनिश्चिता ।
परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितुः ।२०
अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद् भवान्प्रभो ।
छेतुमर्हसि तान्सर्वान्संशयानल्पचेतसाम् ।२१

ऋषियों ने कहा-हे भगवान् ! हे मुनि शार्दूल ! हे कृपासागर । हे साक्षात् नारायणके अंशसेसमुत्पन्न । हे महाप्राज्ञ ! हे समस्त विद्याओं के

अधिपति ! हे प्रभो ! आपतो सबजगत्के स्वामी, सृष्टिके करनेवाले महादेव की माया शक्ति तथा गणोंके प्रसादके पूर्णसमुद्र हैं ।१५-१६। आपके चरण कमलोंके मधुर मकरन्दके अनुपम आस्वादन के लोलुप भ्रमरके स्वरूपवाले हम सब अब आपके चरणकमलके दर्शनपाकर आनन्दमत्त एवं कृतकृत्यहो गये हैं ।१७। आपके चरणों के दर्शन पापियों के लिये बहुत ही दुर्लभ हैं। आज हमलोग उसे प्राप्तकर अत्यन्त ही कृतकृत्य होगये ।१८। हे महाभाग ! हमलोग इस समय इस नैमिषारण्यमें ओंकारके अर्थ का प्रकाशक दीर्घ यज्ञ का अनुष्ठान कररहे हैं १९। परमेश्वरको सुनना तथा जाननाचाहिए ऐसा विचारकर परस्परमें महेश्वरका परमभाव विचारकरते हैं ।२०। हे प्रभो ! हम उसको भलीभाँति नहीं जानते हैं इसलिए अब आपकीशरणागतिमेंप्रस्तुत हुए हैं । आप समर्थ हैं कृपा करके हमारे अल्प बुद्धि वाले मनकेसन्देहका निवारण कर दीजिये ।२१।

त्वदन्यः संशयस्यास्याच्छेता न हि जगत्त्रये ।
तस्मादपारगंभीरव्यामोहाब्धो निमज्जतः ।२२
तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे ।
शिवसद्भक्तितत्त्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम् ।२३
एवमभ्यर्थितस्तत्र मुनिभिर्वेदपारगैः ।
सर्ववेदार्थविन्मुख्यः शक्रजातो महामुनिः ।
वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणवं परमेश्वरम् ।२४
ध्यात्वा हृत्कर्णिकामध्ये सांब ससारमोचकम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्याजहार महामुनिः ।२५

इस त्रिभुवनमें आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस तरहके सन्देहका निवारण करने वाला नहीं है अतएव हे दयाके सागर ! आप भ्रमके समुद्र में डूबते हुये हम सबको शिवके ज्ञान रूपिणी नौका से तार दीजिये । हम सबके हृदयमें शिवकी भक्तिके तत्वको जाननेकी उत्कट अभिलाष है और उसमें परम श्रद्धा भी है ।२२-२३। उस समय वेद के ज्ञाता ऋषियों ने इस प्रकारसे महर्षि व्यासजी से प्रार्थना की तब जो सम्पूर्ण वेदों के संपूर्ण

अर्थ के—तत्व के ज्ञाता शुकदेवजीके पिता महामुनि व्यासजी ने वेदान्त शास्त्र सार स्वरूप एवं ओंकारके स्वरूपमें स्थित तथा संसार से विमुक्त करने वाले उमा के सहित परमेश्वर शिव का अपने हृदय कमल में ध्यान करके परम प्रसन्न मनसे उन ऋषियोंसे कहना आरम्भकिया ।२४-२५।

शिवजी का पार्वती को मन्त्र दीक्षा देना

साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमै ।
दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थ प्रकाशकम् ।१
येषाँ प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरायुधः ।
तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थ प्रकाशकम् ।२
जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः ।
शिवभक्तिविहीनानाममिति तत्वार्थनिश्चय ।३
दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिकापतिः ।
उपासित इतीद मे दृष्टमद्य विनिश्चतम् ।४
तस्म द्वक्ष्यामि युष्माकमितिहास पुरातनम् ।
उमामहेशसंवादरूपपद्भुतमास्तिकाः ।३
पुराऽखिलजगन्माता सती दाक्षायणी तनुम् ।
शिवनिन्दाअसगेन त्यक्त्वा च जनकाध्वरे ।६
तपः प्रभावात्सा देवी सुताऽभूद्धिमवद्गिरेः ।
शिवार्थमतपत्सा वै नारदस्योपदेशतः ।७
तस्मिन्भूधरवर्ये तु स्वयंवरविधानतः ।
देवेश च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा ।८

महर्षि व्यासजी ने कहा हेमहान् भाग्य वाले ब्राह्मणो ! आपलोगों ने इस समय बहुतही अच्छाप्रश्न पूछा है । प्रणवके अर्थका प्रकाशक शिव का ज्ञान संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है ।१। जिनके ऊपर त्रिशूल धारण करने वाले भगवान् शिवकी कृपाहोती है उन्हींको प्रणवके अर्थकाप्रकाश करने वाला शिवका ज्ञान प्राप्तहोताहै ।२। इसमें कुछभी सन्देह नहींहै कि शिव के ज्ञानका प्रकाश शिवकी भक्तिसेरहित लोगोंकोकमीनहीं होता है । श्रुति

करने वाले ऋषिगण यज्ञों के स्वामी रुद्रदेव का एक सहस्र वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ करने में प्रवृत्त हो गये और ऐश्वर्य के जानने की इच्छा से भावनःपूर्वक प्रणाम किया ॥४-५॥ महर्षि व्यासजी के दर्शन पाने की इच्छा से वे वहाँ निवास करने लगे और शिव-भक्ति में परायण होकर भस्म तथा रुद्राक्ष की माला धारण करने लग गये ॥ ६ ॥ उन समस्त ऋषियों की प्रीति भावना को समझकर भगवान् व्यासजी जोकि नारायण के अंश से उत्पन्न समस्त जगत् के गुरु,पराशरऋषि के तपस्या के फल स्वरूप और सर्वात्मा हैं, वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये ॥७॥

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे प्रहृष्टवदनेक्षणाः ।
अम्युत्थानादिभिः सर्वेरुपचाररुपाचरन् ।८
सत्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शभम् ।
सुखोपविष्टः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे ।
प्राह गम्भीरया वाचा पाराशर्य्यो महामुनि ।९
कुशलं किं नु युस्माकं प्रब्रूतास्मिन्महामखे ।
अर्जितः किं नु युष्माभिः सम्यंगध्वरनायक ।१०
किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः ।
स्वर्चितो भक्तिभावेन साम्बः संसारमोचकः ।११
युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भात्ति शुश्रूषाऽपूर्वमेव हि ।
परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोः शिवस्य च ।१२
एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यसेनामिततेजसा ।
मुनया नेमिषारण्यवासिनः परमौजसः ।१३
प्रणिपत्य महात्मानं पराशर्यं महामुनिम् ।
शिवानुरागसहृष्टमानसं च त ब्रुवन् ।१४

उनका दर्शनकर मुनियों के मनमें और नेत्रों में अत्यन्त आनन्द हुआ और उनका आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करते हुए सबने पूजन किया ।७।वहाँ सबमुनिगण ने महर्षिव्यासजी को विराजमान करनेके लिए सुवर्ण निर्मित्तआशन दिया।उसहेमासनपरबैठकर महामुनिव्यासजीनेअपनीपरममधुर

होती हैं? यह कितने वेदके आदि में कहा जाता हैं।१०। प्रणवके कितने देवता होते हैं। किस रीतिसे वेद आदि की भावना की जाया करती है। क्रियायें कितने प्रकार की होती हैं और इसकी व्यापकता व्यापकता किस प्रकार से होती।११। इन आपके उपदिष्ट मन्त्रों में अनुक्रम से किस तरह पाँच ब्रह्म स्थित रहा करते हैं। कलायें कितनी होती हैं और प्रपञ्चात्मकता का क्या स्वरूप है।१२। हे शिव! वाच्य-वाचक का सम्बन्ध और स्थान किस रीति से होता है। आप यह बताने की कृपा करें कि इसका अधिकारी कौन है और विषय क्या है।१३। हे महेश्वर! कृपा कर यह समझाइये कि इसका सम्बन्ध और प्रयोजन क्या है। यह भी बताइये कि इसका उपासक कैसा व्यक्ति होता है और उपासना करने का स्थान कौन-सा उचित होता हैं॥१४॥

उपास्यं वस्तु किंरूपं किंवा फलमुपासितुः।
अनुष्ठानविधिः कोवा पूजास्थान च किं प्रभो।१५
पूजायां मण्डल किंवा किंवा ऋष्यादिकं हर।
न्यासजापविधि का वा को वा पूजाविधिक्रम।१६
एतत्सर्वं महेशान समाचक्ष्व विशेषतः।
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा।१७
इतिदेव्या समापृष्टो भगवानिन्दुभूषणः।
तां प्रशस्य महशानीं वक्तुं समुपचक्रमे।१८

इसकी उपास्य वस्तु किस प्रकार की होती है और इसकी उपासना करनेवाले को क्या फल मिला करता है। इसके अनुष्ठान करने की विधि क्या होती है और पूजा का कौन सा उपयुक्त स्थान हुआ करता है।१५। इसकी पूजा के मण्डल और उनके ऋषि आदि कौन होते हैं उसके न्यास आदि करने की विधि किस प्रकार की होती है और उसका क्रम क्या होता है।१६। हे शिव! यदि आप मुझपर पूर्ण कृपा रखते है तो मेरे सामने यह सब वर्णन कीजिए। मेरी तत्वोंके विषयों में श्रवण करने की बड़ी ही तीव्र अभिलाषा

है ।१७। जगदम्बा पार्वतीने महेश्वरसे इस तरह बहुत-सी बातेंपूछीं तो महादेवजी पार्वतीके प्रश्नोंको सुनकर उनकी प्रशंसा करतेहुए कहो लगे ।१८

ओंकार का स्वरूप तथा विरजा होम विधि

श्रणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण जीवः साक्षाच्छिवो भवेत् ।१
प्रणपार्थपरिज्ञा मेव ज्ञान मदात्मकम् ।
बीजं तत्सर्वविद्यानां मत्रं प्रणवनामकम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेय तद् वटबीजवत् ।
वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः ।३
देवो गुणत्रयातीत सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ।
ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सवगःशिवः ।४
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणाप्राधान्ययोगतः ।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ।५
सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्म तदक्षरम् ।
तेनौमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः ।६
शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवःस्मृत।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंत वित्तते यतः ।७

शिवजीने कहा- हे देवि ! तुमने जितनी भी बातें पूछी हैं वह तुमसे सब कहता हूँ । इसके श्रवणकरने भरसे ही यह जीवात्मा साक्षात् शिवके स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।१। प्रणवका अर्थ जान लेना ही मेरा ज्ञान प्राप्तकरा देता है, वहमन्त्र समस्त विद्याओंका बीज होता हैं ।२।वह प्रणव वटका वृक्ष और उसके बीजके तुल्य महान् सूक्ष्म तथा बहुतही स्थूलहोता है । वही प्रणव वेदकाआदि सारतया मेरा रूपहोता है ।३। वहीदेव तीनों गुणों से परे-सर्वज्ञ और सबका सृजन करने वाला है ॐ'-इस अक्षर वाले मन्त्र में सर्वगत शिवजी विद्यमान रहते है ।४। यह जो कुछभी वस्तुहै वह सवगुण और प्रधानके सयोगसे सतस्तसमष्टिरूप विराट् और व्यष्टि स्वरूप स्थावर जङ्गमात्मक प्रणव का अर्थही होता है ।५। इस कारण से वहएक

अक्षर वाला ब्रह्म ही सम्पूर्ण अर्थ का साधक है । इसी सर्वार्थ साधकता से ॐ ऐसे आकार वाले प्रणवसे भगवान महेश्वर सर्वप्रथम इस समस्त जगत् का निर्माण किया करते हैं ।।६।। भगवान् शिव प्रणव स्वरूप हैं और प्रणव साक्षात् शिव स्वरूप हैं । वाच्यार्थ और उसके वाचक में कुछ भी भेद नहीं होता है ।७।

तस्मादेकाक्षरं देवं माँ च ब्रह्मर्वयो विदुः ।
वाच्यवाचः कयोरक्य मन्यमाना विपश्चितः ।८
अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम् ।
निर्विकारी मुमक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम् ।९
एनमेव हि देवेशि सर्वमन्त्रशि रोमणिम् ।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे ।१०
तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत् ।११
निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम् ।
कालं समुद्धरेत्पश्चाद्दण्डमीश्वरमेव च ।१२
वर्णपञ्चकरूपोऽयमेवं प्रणवउद्धृतः ।
त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा ।१३
ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ।
प्राणः प्रणव प्रवाय तस्मात्प्रणव ईरितः ।१४

इसी कारण से ब्रह्म ऋषि गुरु को एकाक्षर स्वरूप कहा करते हैं । वाच्य और वाचक की एकता को मानते हुए जो विद्या होते हैं, मैं भी उन्हींके द्वारा प्राप्त होनेवाला होताहूँ ।८ हे परमेश्वरि । इसलिये प्रणव को सबका कर्त्ता माननाचाहिए । जो मुमुक्षु या मुक्तहोतेहैं वे निर्गुणपरमेश्वरको निर्विकार अर्थात् समस्त विकृतियों से रहित जानतेहैं ।९।हे देवि । काशीमें अपना प्राणत्याग करनेवालेप्राणियोंकोअन्यमपथमें मैं इस समस्त मन्त्रोंके शिरोमणि ओंकारकाही उपदेशकियाकरताहूँ ।१०। हे अम्बिके । मैं अब तुम्हारे सामने सबसे पहिले प्रणवके उद्धारकोवर्णनकरता हूँ जिसके

विज्ञान मात्रसेही परम सिद्धि प्राप्त हुआकरती है ।११। सर्वप्रथम ओङ्कार में अकारके आश्रित निवृत्ति कलाका उद्धारकरना चाहिए । उकारमें ईधन कलाका-मकारमें काल कलाका--नाद में दण्ड कलाका और बिन्दुमें ईश्वर कलाका उद्धारकरना चाहिए ।१२। इस रीतिसे उक्त पाँचवर्णोंके रूपवाले प्रणव का उद्धार होता है । यह प्रणव तीन मात्रा और बिन्दु नाद स्वरूप जपने वालोंको महामुक्ति प्रदान करने वाला होता है ।१३। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यह सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण होता है, इसी से इसका नाम 'प्रणव'-यह होता है ।१४।

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः ।
मकार मध्यतश्चैव नादांतं तस्य चोमति ।१५
जलवद्वर्णमाद्यं तु दक्षिणे चोत्तरे तथा ।
मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम ।१६
अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात् ।
तिस्रो मात्राः समाख्याता अर्द्धमात्रा ततः परम् ।१७
अर्द्धमात्रा महेशानि बिन्दुनास्वरूपिणी ।
वर्णनिया न वै चाद्धा ज्ञेया ज्ञानभिरेव सा ।१८
ईशानः सर्वविधानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये ।
मत्त एव भवन्तीति वेदाः सत्यं वदति हि ।१९
तस्माद् वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः ।
वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते ।२०
अकारस्तु महद् बीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुख ।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्वं पालयिता हरिः ।२१

अकार, उकार और मकार के क्रमसे से तीन मात्रा और पीछे आधी मात्रा होती है । इस तरह से 'ओम' होता है ।१५। हे पार्वति । यह जल के तुल्य दक्षिण-उत्तरमें स्थित है । हे मुनिश्रेष्ठ ! इसकेमध्यमें मकारहोता है । इस तरह से इस ओंकार की स्थिति होती है ।१६। हे महेशानि ! अकार,उकार और मकार ये तीनमात्रायें है इसके पीछे आधी मात्रा होती

है ।१७। हे परमेश्वरि ! वह आधी मात्राही नाद बिन्दु स्वरूप वाली है। यहाँपर 'ईशानः: सर्व विद्यानां ईश्वर:सर्वभूतानाम्' और 'यो वै ब्रह्माण विदधाति पूर्वम्' इत्यादि श्रुतिवचन प्रमाणहोते हैं ।१८। ये सब मुझसेही होते हैं, वेदोंने यह बात बिल्कुल सत्य प्रतिपादित की है ।१९। इस कारणसेवेद के आदिमेंओंकारात्मक भी मैं ही विद्यमान रहा करता हूँ। ओंकार मेरा वाचक होने से वेद के आदि मे कहा जाता है ।२०। अकार इसका महान् बीज है। इसी के रजोगुण से ब्रह्मा हुआ करते हैं। उकार उसकी प्रकृति योनि है। सत्व गुण के पालन करने वाले हरि होते हैं ।२१।

मकार: पुरुषो बीजी तमः संहारकोहरः ।
विन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृतः ।२२
नादः सदा शिव प्रोक्तः सर्वानुग्रहकारकः ।
नादमूर्द्धनि सचिन्त्य- परात्परतर शिवः ।२३
स सर्वज्ञ सर्वकर्त्ता सर्वशो निर्मलोऽव्ययः ।
अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः ।२४
अकारादिषु वर्णेषु व्यापक चोत्तरोत्तरम् ।
व्याप्यं त्वधस्तनं वर्णमेव सर्वत्र भावयेत् ।२५
सद्यादोशानपर्यतान्यकारादिषु पञ्चसु ।
स्थितानि पञ्च ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात् ।२६
अष्टौ कलाः समाख्याता अकारे सद्यजाः शिवे ।
उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः ।२७
अष्टावघोररूपिण्यो मकार संस्थिता कलाः ।
बिन्दौ चतस्र संभूता कला पुरुषगोचराः ।२८

इसमे मकार पुरुष बीज होता है। इसके तमोगुणसेयुक्त सृष्टिकेसंसार करनेवालेशिव हैं। बिन्दुस्वरूप साक्षात्महेश्वरदेव हैं,उससे तिरोभावहोता है ।२२। नाद स्वरूप सबके अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव हैं। नाद का मस्तकमें विचारकरतेही वहाँ शिवध्यान करनेके योग्यहोते हैं। वे परात्पर मंगल स्वरूप वाले हैं ।।२३।। वे सर्वज्ञ हैं, सबके कर्त्ता--सबके स्वामी —

निर्मल-अविनाशी और अद्वैत हैं। निर्देशनकरनेमें अयोग्य सत्आसनसे भी परे साक्षात् परब्रह्म है ।२४। अकार जिनके आदिमें है उन सब अक्षरों में क्रमसे व्यापक हैं,अकारकी अपेक्षा ओंकार व्यापक है, उकारसे अकार वर्ण नीचेके भागमें व्याप्त है। इसी तरहसे इनवर्णोंमें भी भावना करनीचाहिए ।२५।अकारादि पाँचवर्णोंमें ब्रह्मके स्वरूप वाले सद्यः-वाम देव घोर-पुरुष ईशान हैं वे सब क्रमसे से मे गी ही मूर्तियाँ हैं ।२६। सद्यः-इससे होने वाले अकारके स्वरूप शिवमें आठकलाओं का वर्णन कियागया है और उकार में वाम देव रूप तेरह कलायें हैं ।२७। मकार में अघोर रूपिणी आठ कलायें विद्यमान हैं और बिन्दुमें पुरुष गोचर चार कलायें होती हैं ।२८।

नादे पंच समाख्याताः कला ईशानसभवाः ।
षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपचात्मकतोच्यते ।२९
मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपचो गुरुरेव च ।
शिष्यश्च षट्पदार्थानामेषामर्थं श्रृणु प्रिये ।३०
पचवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः ।
स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम् ।३१
यन्त्रं तु देवमारूप देवता विश्वरूपिणी ।
विश्वरूपो गुरुः प्रोक्त शिष्यो गुरुवपु स्मृत ।३२
ओमितीद सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति चश्रुते ।
वाच्यवाचकसम्बन्धोऽप्ययमेवार्थ ईरितः ।३३
आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम् ।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ।३४
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीत परात्परम् ।
अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्य जायते दृढम् ।३५

नादमें ईशान स्वरूपवाली पाँचकलायें स्थित हैं। आगे बताये जाने वाले छःपदार्थोंकी एकताके अनुसन्धानसे प्रणवकी प्रपञ्चात्मकता होती है ।।२९।। मंत्र-यंत्र-देवता विश्व और गुरु तथा शिष्य ये छै पदार्थ होते हैं। हे प्रिये ! अब मैं इनका अर्थ बतलाता हूँ उसको तुम श्रवण करो ।३०।

पूर्वोक्त यह प्रणवमात्र पाँचवर्णोंकी सदष्टिस्वरूपहैं । वही मंत्रकीस्वरूपता को प्राप्तकर लिया करता है अब उसके मण्डलका क्रम बतलाया जाता है ।३१। यन्त्र देवता रूप हैं, देवता विश्व रूप हैं और विश्वरूप गुरु है तथा शिष्य-गुरु का ही एक शरीर है ।३२। 'ओमितीद सर्वम्' इसका अर्थ यह होता हैकि यह सब ओंकारस्वरूपही है-ऐसा श्रुति कहती है वाच्य-वाचक के सम्बन्धका यही अर्थ होता है ।३३। अब स्थान बतलाते हैं—आधार-मणिपुर-हृदय-विशुद्धि चक्र-आज्ञा चक्र-शक्ति और शान्त कला ये क्रम से स्थान बतलाये गये हैं ।३४। हे देवि ! शान्त्यतीत को ही परात्पर कहा जाता है । जिसको दृढ़ वैराग्य हो जाता है वही इसका योग्य अधिकारी होता है ।६३।

विषयः स्यामह देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ।
सम्यन्ध शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः ।३६
जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ।३७
व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ।
शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः ।३८
विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च ।
देवानां ब्राह्मणोऽपीह लोकजेषु शिवव्रती ।३९
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञ वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपसंगम्य यतिं मतिमतां वरम् ।४०
दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नयः सुधीः ।
शांतादिगुणसंयुक्तः शिष्यः सौसील्यवानुवर ।४१
यो गुरु स शिवः प्रोक्तो य शिव स गुरु स्मृतः ।
इति निश्चत्य मनसा स्वविचारं नित्रेदयेत् ।४२

हे देवि ! मैं ही इसका विषय हुँ । जीव ब्रह्मकी एक भावना करनी चाहिए । हे देवि ! विषयको बतलादियागया अब सम्बन्धको श्रवणकरो ! ।३६। मेरे समेत जीवत्मा की प्रणव की एकता होती है । यहाँ बोध्य

बोधक भावहोता है अर्थात् जीवात्मा और ब्रह्मकी एकताका बोधकप्रणव होता है यही सम्बन्ध है ।२७। व्रत आदिने तत्पर, शान्त तपस्वी, जितेन्द्रिय पवित्र आचरण वाला, ब्राह्मण, वेदमें निष्ठा रखने वाला, विषयोंसे विरक्त, लोक एवं परलोककी इच्छासे दीन देवता और ब्राह्मण में भक्तिरखनेवाला, शिव व्रतको धारण करने वाला, सम्पूर्ण शास्त्रार्थके तत्व का ज्ञाता, वेदान्त ज्ञानके पारगामी यति, श्रेष्ठ बुद्धि वाला पुरुष आचार्य के पास जाकर दीर्घ दण्डके समान प्रणामकरे और यत्नपूर्वक आचार्यको पूर्णरूपसे सन्तुष्ट करे और शान्ति प्रभृति गुणों चे युक्त, शीलवान् तथा शक्ति आदि गुण से युक्त, बुद्धिमान् शिष्यको ऐसा जानना चाहिए कि जो गुरुदेव हैं सो साक्षात्शिव ही हैं और साक्षात्शिव हैं वहीगुरुदेव हैं ऐसा अपनेमनमें सुदृढनिश्चयकरके ही पीछे उनमे अपना विचार निवेदित करें ।३--३९-४०-४१-४२।

लब्धानुज्ञस्तु गरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ।
समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये ।४३
शुक्लपक्षे तु पचम्यामेकादश्यां तथारि वा ।
प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रिय सुधीः ।४४
गुरुमाहुय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च ।
क्षौर च कारियत्याऽथ कक्षोपस्थविवर्जितम।४५
केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानस ।
सक्तु प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा स ध्यामुपास्य च ।
सायमौपासनं कृत्वा गरुणा सहितो द्विजः ।
शास्त्रोक्तदक्षिणा दत्या शिवाय गुरुरूपिणे :४७
होमद्रव्याणि सपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः ।
अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः ।४८

अपने गुरुदेवकी आज्ञा प्राप्तकर बारह दिन पर्यन्त पयोव्रत करे अर्थात केवलजल का पान करके रहे । समुद्र तट पर अथवा पर्वत की चोटी या गुफा में किम्बा शिला पर निवास करे ।४३। बुद्धिमान शिष्य को चाहिए

मासके शुक्ल पक्षका पञ्चमी अथवा एकादशीकेदिन परमपवित्र मनसेप्रातः कालमें नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करे ।४४। फिर अपने गुरुदेव को बुलाकर विधि-विधानके सहित नान्दीमुख श्राद्ध करके बगल तथा उपस्थको छोड़कर क्षौर कर्मकरावे ।४५। माथेके केश, दाढ़ी-मूँछ और नाखूनोंको दूर कराके जितेन्द्रिय रहते हुए स्नानकरके सायंकालीन सन्ध्योपासनाकरे ।४६ सतूका आहारकरे औरफिर स्नानकर सन्ध्याकर्मकरे । इसतरह गुरुकेसहित ब्राह्मण सन्ध्याकालकी उपासनाकरके शिवस्वरूप अपने गुरुदेवकी सेवा में वस्त्र और दक्षिणादेनी चाहिए ।४७। जोभी अपना सूत्र हो उसकी विधिके अनुसार होम द्रव्य लेकर विधि पूर्वक लौकिक आदिके भेदके साथ अग्न्याधान करना चाहिए ॥४८॥

आहताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिनाहिते।
श्रौते वैश्वानरे सन्यक् सर्ववेद सदक्षिणम ।४९
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात ।
श्रपयित्वा चरु तस्मिन्सामिदन्नाज्यभेदतः ।५२
पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान् ।
हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः ।५१
हुत्वोपरिसात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः ।
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
यावद् ब्राह्मसहुर्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ।५२
ततः स्नात्वा यथापूव श्रपयित्वा चरु तत ।
पौरुष सूक्तमारभ्य विराजातं हुनेत् बुधः ।५३
वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा ।
तत्र मुख्य वामदेव्य गर्भयुक्तो यतो मुनिः ।५४
होमशेष समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत् ।
ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातः सन्ध्यामुगास्य च ।५५
सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं द्राविमेत्क्रमात्
एषणानां त्रयं त्यक्त्ता प्रेषमुच्चार्य च क्रमात् ।५६

जो कोई अहिताग्नि प्राजापत्य यज्ञ के अनुसार हवन कर चुकता है उसकोचाहिए अपने सर्वस्वधन की दक्षिणदेकर इस वेदोक्त वैश्वानर अग्नि को आत्मा में धारण कर ब्राह्मणको घरसे निकलकर संन्यासी हो जाना चाहिए। समिधा-अन्न और घृतयुक्त चरुलेकर पुरुषसूक्तके एकमत्रसे हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने सूक्तके विधानसे स्विष्टकृत सम्बन्धित आहुतियों से हवन करे।४९-५०-५१। तन्त्र के आगे उत्तर दिशाकी तरफ आसनपर बैठकर जोकि कुआका आसन होनाचाहिए स्वयं मृग चर्म धारण करे,जब तक ब्राह्म मुहूर्त रहे तबतक मनकी पूर्ण दृढ़ताके साथ गायत्री का जाप करना चाहिए।५२। इसके अनन्तर पुनः स्नान करके चरुका निर्माण करे और पुरुष सूक्तसे आरम्भकर विरजा होम पर्यन्त आहुतियाँ देवे।५३। वामदेव या शौनक मन्त्रसे हवनकरे। इनमें वामदेवका मतश्रेष्ठ है क्योंकि इसका कारण यही है कि यह महापुरुष गर्भ में स्थित ही मुक्त होकरफिर जीवन्मुक्त रहते हुए विचरण करते रहे हैं।५४। इसके पश्चात् शेषहवनको पूरा करे और फिर प्रातः कालीन उपासनाका हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् पुनः अग्निको अपनी आत्मामें आरोपित कर प्रातःकालकी सन्ध्योपासना करनी चाहिए।५५। लोकेषणा अर्थात् लोकमें मानादि की इच्छा रखना.वित्तेषणा और पुत्रेषणा इनतीनोंका त्याग करके सूर्यके समुदित हो जानेपर क्रमपूर्वक गायत्रीका जपकरना चाहिए फिर क्रमसे प्रेषका उच्चारण करे।५६।

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिक ततः।
विसृज्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोऽपि वा।५७
गृह्णीयाद्दण्डकौपीनाद्युचिवृत लोकवर्तने।
विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकघृत्तिविचारिणे।५८
गुरोः समीपं गत्वाऽथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम्।
समुत्थाय ततस्तिष्ठेद्गुरुपादसमीपतः।५९
ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम्।
भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्यं यथाविधि।६०

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड धारयेत्ततः ।
हृत्पङ्कजे समासीनं मां त्वया सह चिंतयेत् ।६१
हस्त निधाय शिरसि शिष्यस्य प्रीतमानसः ।
ऋष्यादिसहित तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत् ।६२
प्रणवं त्रिप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत् ।
षड विधार्थ परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ।६३

इसके पश्चात् अपनी शिखा (चोटी),उपवीत (जनेऊ) और कटिसूत्र आदि सबको छोड़कर पूर्व या उत्तर दिशाका गमनकर चले जाना चाहिये ।५७। लोककी वृत्ति (व्यवहार) के निभानेकेलिये केवल एक कोपीन और एकदण्डका ग्रहणकरे और यदि पूर्ण विरक्तिमें लोकवृत्तिकी कठिनाईप्रतीत होती होतो इनका विचारकर त्यागकर देना चाहिए ।५८। अपने गुरुदेवके निकट पहुँचकर भूमिमें पतित दण्डके तुल्यगिरकर प्रणामकरे और उठकर श्री गुरुदेवके चरणोंमें स्थित होजावे ।५९। उससमय गुरुदेव विरजाअग्नि से समुत्पन्न श्वेत भस्म उस समय शिष्य के शरीर में मलकर 'अग्नि रिति भस्म'-'वायु रिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मसे तिलक करावें और फिर आपके सहित मेरा अर्थात् शिव और पार्वती का ध्यान करना चाहिए । ।६०-६१। इसके पश्चात् गुरुदेव प्रसन्न चित्तसे शिष्यके मस्तक पर अपना हाथ रखकर ऋषि आदि का स्मरण कर उसके दाहिने कान में मन्त्र का उच्चारण करें ।६२, सूक्ष्म स्थूल आदि प्रणव, जो पहिले तीन प्रकार के बताये जाचुके हैं,उसका और उस प्रणवके अर्थका उपदेश करना चाहिए । शिष्यको उस समय छैः प्रकारके प्रणवका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये दण्डवत् करनी चाहिए ।५३।

द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
तदधीनो भवेन्नित्य वेदान्त सम्यगभ्यसेत् ।६४
मामेव चिंतयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि ।
विशुद्धं निर्विकारं वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम् ।६५
शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः ।६६

हृत्पुण्डरीकं विरज विशोकं विशदं परम् ।
अष्टपत्रं केसराढयं कर्णिकोपरि शोभितम् ।६७
आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्वान्तमय पदम् ।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योमभावयेत् ।६८
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह ।
चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ।६९
एवं विधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये ।७०

इस तरह बारह प्रकारसे गुरुदेवको प्रणाम करे औरफिर सदा गुरुदेव की अधीनता में रहकर नित्य प्रति वेदान्तका अभ्यास करना चाहिए ।६४। सदा अपनी आत्मा में मुझ परमात्माका ध्यान करते रहना चाहिये जोकि विशुद्ध बिना बिकारोंवाला शुद्ध अविनाशी हैं ।६५। शम-दम आदिकेधर्ममें विशेष रूपसे रति रखताहुआ वेदान्त दर्शनशास्त्रका पारगामी होकर अभिमानसे एकदमरहित रहतेहुए जो रहता है वही यतिकहलाता है और ऐसा यति पुरुषही इसका अधिकारी भी होता है।६६। हृदय पुण्डरीकमें विराजमान,परम स्वच्छ शोकरहित अति उज्ज्वल अष्टदल कमलके तुल्य,मकरन्द से युक्त कर्णिका से शोभित हृदय-कमलके मध्यमें आधार शक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरक हृदयके तत्वान्तमय आधारका विचारकर उस समय दहर प्रकाश की भावना करनी चाहिए ।६७-६८। 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका उच्चारण आपकेसहित मेराअत्यन्त उत्कण्ठाकेसाथ स्मरणकरता हुआ उस दहरा प्रकाशके मध्यमें नित्यही मेरा स्मरणकरता रहे ।६९। हे परम प्रिये ! इस विधिसे मेरी उपासना करते रहनेवाले पुरुषको मेरेलोककी प्राप्ति हुआ करती है और वह मुझसे ज्ञान प्राप्तकर अन्तमें मेरेही सायुज्य मोक्ष पदकी प्राप्ति किया करता है ।७०।

पूजा स्थान में मण्डल रचना विधि

परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः ।
मनोऽभिलषिते तत्र वितानविततांम्बरे ।१

सुप्रलिपे महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे ।
अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत् ।२
तालपत्रं समादाय तत्समायामविस्तरम् ।
तस्मिन्भायान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम् ।३
तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थितः ।
तत्पूर्वभागे सुदृढं सूतमादाय रंजितम् ।४
प्राक् प्रात्यग्दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत् ।
सूत्राणि देवदेवेशि नवशष्ट्युत्तरं शतम् ।५
कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्य कोष्ठं तु कर्णिका ।
कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते ।६
दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत् ।
पीतरूपां कर्णिका च कृत्वा रक्तां च वृत्तकम् ।७

श्री भगवान् शिवने कहा-गन्ध, वर्ण, रस आदिसे पृथ्वीकी भली-भाँति परीक्षाकरके फिर अपने मनकी अभिलाषा के अनुसार जोभी परम अभीष्ट एवं सुन्दर हो वैसा एक वितान (चन्दोवा) वहाँ तानना चाहिये ।१। वहाँ भूमिको लीपकर दर्पणके समान एकदम चिकनी बनादेवे । दो हाथके बराबर चार अस्त्र चौकोर स्थानके मण्डपकी रचना वहाँ करे ।२। फिर तालपत्रोंसे उसीकेसमान लम्बे तथा चौड़ेस्थानमें बराबर तेरहभाग करनेचाहिए ।३।उस चतुरस्त्र मण्डलमें इस पत्रको रखकर फिर स्वयं पश्चिम दिशाकी ओर मुखकरके स्थित होवे और उसके पूर्व भागमें कलायेसे पूर्वसे दक्षिण-उत्तरके क्रमसे चौदह डोरे वहाँ रखने चाहिए । हे देवि ! ऐसा करने पर उस कोष्ठमें एक सौ उनहत्तर कोठे बन जाँयगे ।४-५। कोष्ठोंके मध्य में जो कर्णिका है उससे आठ कोष्ठकके बाहर उस मध्य कोष्ठक का दलाष्टक होता है ।६। श्वेत वर्ण के दल और श्याम अग्र भाग की कल्पना करे, उसकी पीली कर्णिका बनाकर लाल-पीली रंग दे ।७।

वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि ।
रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत् ।८

कर्णिकायां लिखेद्यंत्रं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।
अधः पीठ समालिख्य श्रीकण्ठ च तदूर्ध्वत ।९
तदुपर्यमरेशं च महाकाल च मध्यतः ।
तन्मस्तकस्थं दन्डं च तत ईश्वरमालिखेत् ।१०
श्यामेन पीठ पीतेन श्रीकन्ठ च विचित्रयेत् ।
अमरेशं महाकालं रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात् ।११
कुर्यात्सुधूम्रं दन्डं च धवलं चेश्वरं बुधः ।
एवं यन्त्रं समालिख्य रक्त सद्ये न वेष्टयेत् ।१२
तदुत्थेनैव नादेन विद्यादीशानमीश्वरि ।
तद्वासपंक्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै ।१३
कोष्टानि कोणभागेषु चत्वार्येतादि सुन्दरि ।
शुक्लेनापूर्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः ।१४

हे सुरेश्वरि ! इस तरह कमल के दलों को लाल तथा पीला बनाकर क्रमसे दलसन्धिको लाल तथा काली बनावे ।८ उसकी कर्णिकामें प्रणव अर्थका प्रकाशयन्त्र लिखनाचाहिए । उसके नीचे पीठ और उसकेऊपर श्री-कण्ठ लिखे ।९। इसके ऊपर अमरेश, मध्य में महाकाल और महाकाल के मस्तकके समीपमें दण्डलिखकर फिर ईश्वरको लिखनाचाहिये ।१०। श्याम रंगसे सिंहासनको चित्रितकरे तथा पीले रंगसे श्रीकण्ठको रगे । अमरेशको रक्त वर्णसे तथा महाकाल को कृष्ण वर्णसे रंगे ११। दण्ड का वर्ण धूम्र बनावे और ईश्वरकावर्ण धवलबनाना चाहिए । इसरीतिसे लालयन्त्रलिख कर सद्योजात मन्त्र से आच्छादन करना चाहिये ।१२। हे ईश्वरि ! उसमे उत्थित नादसे ईशानको भेद करे तथा अग्नय क्रमसे उसको बाह्य पंक्तिको ग्रहणकरे ।१३। हे सुन्दरि ! उसके कोणोंमें चारकोष्टोंको श्वेत और लाल धातुसे रगे औरफिर चारद्वारोंकी कल्पनाकरनी चाहिये और उसके इधर-उधरके कोष्ठपीले रंगसे परिपूर्ण करे ।१४।

आपूर्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वंद्व पीतेनैव प्रपूरयेत् ।१५

आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्त्रके ।
अष्टपत्र लिखेत्पद्म रक्ताभ पीतकर्णिकम् ।१६
हकार विलिखेन्मध्ये विन्दुयुक्त समाहित ।
पद्मस्य नैर्ऋते काष्ठे चतुस्त्र तदा लिखेत् ।१७
पद्ममष्टदल रक्त पीतकिंजल्ककर्णिकम् ।
शवर्गस्य तृतीय तु षष्ठस्वरसमन्वितम् ।१८
चतुर्दशस्वरोपेत बिन्दुनादविभूषितम् ।
एतद्बीजवर भद्रे पद्ममध्ये समालिखेत् ।१९
पद्मस्येशानकोष्ठे तु यथा पद्म समालिखेत् ।
कवर्गस्य तृतीयं तु पञ्मस्वरसंयुतम् ।२०
विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुकण्ठे स्वल कृतम्।
तद्बाह्यपक्तित्रियते पूर्वादिपरितः क्रमान् ।२१

अग्नेय दिशाके कोष्ठके मध्य चार अस्त्र प्रमाणवाला आठ दलका एक कमल बनावे। इसको पखुरीलालवर्णकी बनावे और कर्णिकाको पीतवर्ण की बनानी चाहिये।१५-१६। इससे मध्यमें बिन्दुयुक्त दकारलिखे औरफिर कमलकी नैऋत्यकीओरके कोष्ठमें चारअस्त्र मध्यवाला अष्टदल कमलबनावे। उसका रङ्ग लाल बनावे और कर्णिका का रंग पीला बनावे। शवर्ग का तीसरा अक्षर (स) छठवें स्वरसे संयुक्त (सू) लिखे ।१७-१८। चौदहवाँ स्वर (औ) बिन्दु नाद से युक्त (औ) यह बीज है। भद्रे ! इसको पद्म मध्यमें लिखना चाहिए ।१९। इसी तरहसे कमल के ईशान कोष्ठमें लिखे। कवर्ग का तृतीय अक्षर (ग) पंचम स्वर उकारके सहित (गु) लिखे ।२०। उस ईशान दिशा के कमल के कन्ठ भागमें बिन्दु लिखे,इसकी बाहिर तीन पक्तियाँ है उनमें पूर्व दिशाके क्रमसे लिखना चाहिए ।२१।

कोष्ठानि पञ्च गृह्णीयाद गिरिराजसुते शिवे।
मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम् ।२२
दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः ।
दलबाह्ये तु कृष्णेन रन्ध्राणि परिपूरयेत् ।२३

आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत् ।
पूर्वे षड्बिन्दुसहित षटकोण कृष्णमालिखेत् ।२४
रक्तवर्ण दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः ।
श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्णं च पश्चिमे ।२५
चतुरस्त्र क्रमातेषलिखेत् बीजं चतुष्टयम् ।
पूर्व बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं त दक्षिणे ।२६
उकारमुत्तरे रक्तं मकार पश्चिमे ततः ।
अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णं चतुष्टयम् ।२७
सर्वोर्ध्वपक्त्यधः पक्तौ समारभ्य च सुन्दरि ।
पीत श्वेतं च रक्तं च कृष्ण चेति चतुष्टयम् ।२८
तदधो धवलं श्यामं पीत रक्तं चतुष्टयम् ।
अधस्त्रिकोणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने ।२९

हे पार्वति ! पाँच कोष्ठ बनाकर उनमें मध्यकोंष्टका पीतवर्णका बनावे और शेष बृत्तको रक्तवर्णका बनाना चाहिये ।२२। विधिके ज्ञाता पुरुषको चाहिएकि कमल दलोंको लालवणंका बनावे और दलके बाहिरके छिद्रोंको कृष्णवर्णसे रङ्गनाचाहिये ।२३। अग्नि दिशाकी ओर वाले चार कोष्ठोंको शुक्ल रङ्गसे चित्रित करे और पूर्व दिशाके छै बिन्दुओंके सहितषट्कोणों को कृष्णवर्णमे लिखे ।२४। दक्षिण दिशासे उत्तर दिशाकी ओर तीनकोणों में लालरङ्ग तथा श्वेत कान्तिसेयुक्त अर्द्धचन्द्रके आकारका पीतवर्ण पश्चिम कोणमे रङ्गना चाहिए ।२५। चारों वीजों को क्रमसे चौकोरके प्रमाण से क्रमशः लिखना चाहिये । पूर्वको ओर तो शुभ्र बिन्दु तथा दक्षिणमें कृष्ण वर्णके लिखे ।२६। उत्तरकी ओर रक्त वर्ण उकार, मकार पश्चिमकी ओर लिखेहुए आकारको पीलेवर्णका करे । इस प्रकार से चारों वर्णोंमें लिखना चाहिये ।२७। हे सुन्दरि ! नीचे की पंक्ति से आरम्भ करके ऊपर वाली चारों पक्तियाँ पीत,श्वेत, रक्त और कृष्ण वर्णकी बनावे ।२८। उसके नीचे श्वेत,श्याम पीत और रक्त रङ्ग से रगे हुए नीचेके त्रिकोण में लाल, शुक्ल और पीत रङ्ग करना चाहिए ।२९।

एवं दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि ।
तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्त विचित्रयेत् ।३०
पीतं च कृष्णं च श्याम श्वेतं च पीतकम् ।
आग्नेयादि समारभ्य रक्तं श्याम सितं प्रिये ।३१
रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम् ।
दक्षिणाद्य महेशानि पूर्वाविधि समीरितम् ।३२
नैर्ऋताद्य तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि ।
वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम् ।३३
वायव्याध महादेवि नैर्ऋतावधि चेरितम् ।
इशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यविधि चाम्बिके ।
इत्युक्तो मन्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति।३५
एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिः स्वत ।
सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्गस्तु तत्पर ।३६

हे ईश्वरि ! इस प्रकार दक्षिणसे आरम्भकरके सोमान्ततक करे और उसकी बाह्य पंक्ति पूर्वादि मध्यमान्त में चित्रितकरे ।३०। पीत, रक्त,श्वेत श्याम,कृष्ण रंग आग्नेय दिशा से आरम्भ करे, रक्त श्याम और श्वेत और लाल कृष्ण तथा लाल यह छः रंगभरे, हे महेशानी ! यह दक्षिणके आदिसे लेकर पूर्वतक करनाचाहिए ।३१-३२। हे ईश्वरि ! नैर्ऋत्यदिशासे आग्नेय दिशा पर्यन्त और वरुण दिशासे लेकर दक्षिण दिशा पर्यन्त,हे महादेवि ! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत्य दिशातक,हे परमेश्वरि ! पूर्व आदिसे पश्चिमतक और ईशानसे लेकर वायव्य दिशापर्यन्त यही करे हे पार्वति ! यह समस्त मण्डलकी रचनाकरनेके पश्चात् ब्रह्ममें परायणहोकर भगवान् भुवनभास्कर सूर्यदेव की पूजा करनी चाहिए ।।३३ से ।३६।।

आसन प्राणायाम विधान

दक्षिण मण्डलस्याथ वैयाघ्र चर्म शोभनम् ।
आस्तीर्य शुद्धतोयेन प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ।१

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत् ।
पश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यंतं नमोऽन्तकम् ।२
मनुमेव समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ् मुख ।
प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम् ।३
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रै भस्म सधारयेत्ततः ।
शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डल रचयेत्पुनः ।४
त्रिकोणवृत बाह्ये तु चतुरस्रात्मक क्रमात् ।
अभ्यर्च्योमिति साधारं स्वाप्य शख समर्चयेत् ।५
आपूर्य शुद्धतोयेने प्रणवेन सुगन्धिना ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै प्रणवेन च सप्तधा ।६
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
शङ्खमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ।७

शिवजी ने कहा–दक्षिण मण्डल सुन्दर बाघम्बर बिछाकर अस्त्रमंत्रसे शुद्ध जलके द्वारा प्रोक्षण करना चाहिए ।१। प्रथम प्रणव फिर आधार का उद्धार करे । इसके पश्चात् शक्ति कमल का उद्धार करे । इन सबके साथ चतुर्थी विभक्ति और अन्त में 'नमः' लगाकर उच्चारण करना चाहिए ।२। 'शक्ति कमलाय नमः' इत्यादि रीतिसे इसका उच्चारणकरना चाहिये ।३। 'अग्निरीति भस्म'-इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मधारण करे । श्री गुरुदेवको मस्तक झुकाकर नमस्कार करके फिर मन्डलकी रचनाका आरम्भ करना चाहिए ।४। बाहर की ओर त्रिकोण वृत क्रमसे चार शस्त्र (चौकोन) प्रमाण करे 'ओम अर्चन' इस मन्त्रसे पीठको धारणकर शखङ्का अर्चनकरे ।४। प्रणव से शुद्ध एवं सुगन्धित जल को अभिमन्त्रित करके गन्ध पुष्पादि से सात बार ओंकार से पूजन करना चाहिए ।५-६। इस रीति से मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके धेनु मुद्राबनाकर दिखानी चाहिए और इसी तरह अस्त्रमन्त्रसे शंख मुद्रा भी दिखानी चाहिए ।७।

आत्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणानि च ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत् ।८

अस्य श्रीसौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिस्ततः ।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवः सूर्यो महेश्वरः ।९
देवता स्यात्षडङ्गानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत् ।
ततः संप्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम् ।१०
तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि ।
सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात् ।११
अथ कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम्।
अनन्तं पृथिवीं चैव रत्नद्वीप तथैव च ।१२
सङ्कल्पवृक्षोद्यानं च गृहं मणिमय ततः ।
रक्तपीठं च संपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात् ।१३
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम् ।
अधर्माग्निकोणादिकोणेष च समर्चयेत् ।१४

इसके अनन्तर स्वयं अपनी आत्माको गन्ध क्षत पुष्पादि समस्तअर्चना की सामग्रीसे शुद्धकर तीनबार प्राणायाम करे और ऋषि आदिका स्मरण करनाचाहिये।८। इससौरमन्त्रका देवभागऋषि गायत्रीछन्द और सूर्यमहेश्वर देवता हैं ।९। ह्राँ,ह्रीं, 'ह्रू'इत्यादि बीज मन्त्रों से छै अंकों में सविधि न्यास करे फिर अस्त्रमन्त्र से अग्नि कोणके कमल का प्रोक्षण करनाचाहिए ।१०। साधक विद्वान्को उस आग्नेय दिशाके कमल का महा उज्जवलताके साथ सारवस्तुसे आराधनकर पूर्वादि दिशामें अर्चन करना चाहिए ।११। कालाग्नि,रुद्र,आधार शक्ति,अनन्त पृथ्वी,रत्नद्वीप,संकल्प वृक्ष का बगीचा मणिमय गृह और चरणोंमें मनको संलग्न करके रक्त पीठका पूजनकरना चाहिये ।१२-१३। धर्म,ज्ञान,वैराग्य और ऐश्वय इन चारों का तथा अधर्म तथा अज्ञानादि का अग्निकोण के कोनेमें पूजन करना चाहिए ।१४।

मायाधरछ्छदन पश्चाद्विद्योर्ध्वच्छदन ततः ।
सत्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ।१५
सम्पूज्य पश्चात्सौराख्य योगपाठ समर्चयेत् ।
पीठोपरि समाकल्प्य मूर्ति मूलेन मूलवित् ।१६

निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः ।
शक्तिमुत्थाप्य तत्तेजः प्रभावात्पिंगलाध्वना ।१७
पुष्पांजलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः ।
सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्द्धदयितस्य च ।१८
अक्षस्रक्पाशखट्वाङ्गकपालांकुशपङ्कजम् ।
शङ्खं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः ।१९
राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पङ्कजोदरे ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रांह्रींसस्तदनन्तरम् ।२०
प्रकाशशक्तिसहितं मातण्डं च ततः परम् ।
आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया ।२१
मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्राः संदर्शयेत्ततः ।
विन्यस्यांगानि ह्रांह्रौंह्नू मेतेन मनुना तत ।२२

माया से नीचे के भाग का आच्छानन और विद्या से ऊर्ध्व भाग का आच्छादन करके फिर रज-तम इनका विधि के साथ पूजन करे ।१५। इस प्रकारसे पूजनकरके सौर नामक योग पीठकी पूजाकरनीचाहिये । सिंहासन पर मूलमन्त्रसे प्रतिमकी स्थापना करे ।१६। इसके अनन्तर मूलमन्त्रसे ही मूलाधारमें प्राण वायुको रोककर आसनपर बैठकर पिंगला नाड़ीके प्रभाव से आधार शक्ति को उठाना चाहिये ।१७। वहाँ मण्डल में विराजमान, प्रकाशयुक्त,सिंदूरके तुल्य अरुण देहके धारणकरने वाले भगवान्‌को पार्वती के सहित पुष्पांजलि समर्पितकरे ।१८। जो देव वहाँ रुद्राक्ष माला धारी पाश खट्वाङ्ग कपाल-अकुश-कमल-शख धारण करते हुए चार मुख और बारह नेत्र वाले हैं ।१९। उनके हृदय कमल के मध्यमें प्रथम प्रणव का उद्धार करे इसके पश्चात् ह्नां ह्नीं सः'इस मन्त्रसे प्रकाश शक्तिधारी सूर्य का आवाहन करता हूँ-यह कहकर पीछे 'नमः' लगा कर उनका आवाहन करना चाहिये ।२० २१। मुद्रादिक की स्थापना करके फिर मुद्रा बना कर दिखावें और समस्त अङ्गोंमें ह्नां ह्नीं ह्वूं" इन बीज मन्त्रोंसे अन्तके मंत्र से न्याय करना चाहिये ।२२।

पञ्चोपचारांसंकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत्त्रिधा ।
केशरेषु च पद्मस्य षडङ्गानि महेश्वरि ।२३
वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः ।
द्वितीयावरणे पूज्याञ्चतस्रो मूर्तय क्रमात् ।२४
पूर्वाद्युत्तरपर्यंतं दशमूलेषु पार्वति ।
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वश ।२५
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनःप्रिये ।
ईशानादिष सपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः ।२६
सोमँ कुजं बुधं जीवं कविं मंद तमस्तमः ।
समंततौ यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः ।२७
अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत् ।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ।२८

पञ्च उपचार करके संकल्प करे और तीनबार पूजन करनाचाहिये। हे महेश्वरि ! पद्मके केशरोंमें तथा छैअङ्गोंमें यजनकरे ।२३। अग्नि, ईश्वर राक्षस और वायु आदिकी चारोंप्रतिमाओंका दूसरे आवरणमें क्रमसे यजन करनाचाहिए ।२४ हे पार्वति ! पूर्वसे आदि लेकर उत्तरपर्यन्त कमलदलके मूलमें आदित्य, भानु, रवि और भास्करकी क्रमके अनुसार अर्चनाकरे।२५। सूर्य ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु तथा ईशानादि का तीसरे आवरण में यजन करना चाहिये ।२६। सोम, मंगल, बुध और महाबुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पति तेजस्वी शुक्र, शनैश्चर और महा भीषण राहु तथा केतु का पूर्वादि दलके मध्य से चारों ओर पूजन करे ।२७। अथवा द्वितीय आवरण में बारह आदित्यों का ही यजन करे और तृतीय आवरण में बारह राशियों का पूजन करे ।२८।

सप्तसागरगङ्गाश्च बहिरस्य समंततः ।
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ।२९
ग्रामण्यश्च तथा यक्षांयातुधानांस्तथर हयान्।
सप्त छन्दोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ।३०

एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम् ।
विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः ।३१
स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम्।
पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः ।३२
अभ्यर्च्य गधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ।
अर्घ्यपात्रं समादाय भूमध्यांतं समुद्धरेत् ।३३
ततो ब्रूयादिमं मंत्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम् ।
शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ।३४
सिंदूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सुपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ।३५
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम् ।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ।३६

सातों समुद्र, भागीरथी गङ्गा, इसके बारह देवता तथा ऋषि, गधर्व, पन्नग,अप्सराओं के गण, ग्रामीणयक्ष यातुधान सप्तछदमें बालखिल्यऋषियों को लिखकर सबका यजन करे ।३०। इस रीतिसे तीनआवरण वाले दिवाकर देवका यजनकरके पीछे अत्यन्त सावधानीसे चतुरस्र (चौकोर) मण्डल की रचनाकरनी चाहिए ।३१। एकसेर जल आजाने वाले एक ताम्रपात्रको स्थापनाकरके कुंकुम आदि वस्तुओंसे सुगन्धित कियेहुए जलको उसमें भर देवे ।३२। इसके उपरान्त गन्धाक्षत पुष्पादिसे यजन करके जांघोंके बलपर पृथ्वीपर बैठकर अर्घ्यपात्रको बाहोंके मध्य तक लेजाकर भुक्तिमुक्तिप्रदान करने वाले सूर्यके मन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य देवे ।३३-३४। सिन्दूर के तुल्यवर्ण वाले सुन्दर मण्डलसे सुशोभित, हीरे आदिके आभूषणोंसेभूषण आपको मेरा नमस्कार है। कमलके समान नेत्रबाले पङ्कज भू (ब्रह्मा) इन्द्र और नारायणके भी कारण आपको नमस्कार है ।३५। लाल रङ्गके चूर्ण के समान अति सुन्दर रङ्गका जल,माला,कुंकुम,कुश, पुष्प ये सब हेमपात्र में रख कर मैं आपको अर्घ्य देता हूँ । हे भगवन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होव ।३६।

एवमुक्त्वा ततो दत्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्तये ।
नमस्कुर्यादिमं मंत्रं पठित्वा सुसमाहितः ।३७
नमः शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्य ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये ।३८
एवमुक्त्वा मस्कृत्य स्वासने समवस्थितः ।
ऋष्यादिकं पुन कृत्वाकर संशोध्य वारिणा ।३९
पुनश्च भस्म संमार्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
न्यासजात प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये ।४०
पञ्चोपचारै सपूज्य शिरसा श्रीगुरुं बुधः ।
प्रणवं श्रीचतुर्थ्यंतं नमोऽन्तं प्रणमेत्ततः ।४१
पञ्चात्मक बिन्दुयुतं पञ्चमस्वरसंयुतम् ।
तदेव बिन्दुसहितं पञ्चमस्वरवर्जितम् ।४२
पञ्चमस्वरसयुक्त मन्त्रीशं च सबिबिन्दुकम् ।
उद्धृत्य बिन्दुसंहितं संवर्तकमथोद्धरेत् ।४३

यह करतेहुए सूर्य मूर्ति भगवान् को अर्घ्य देवे और इस अगले मन्त्रको पढ़कर सावधानीकेसाथ नमस्कार करे ।३७। जगदम्बा भवानी तथा गणोंके समेत इस समस्त विश्वके आदि कारणभूत भगवान् शिवको नमस्कार है । रुद्र ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य स्वरूप आपको सादर नमस्कार है ।३८। इस तरहसे कहकर प्रणामकरे और अपने आसनपर संस्थित होकर ऋषि आदि का स्मरण कर जलसे हाथोंको शुद्धकरे ।३९। उपर्युक्त विधिसे पुनः भस्म को धारण करना चाहिए और भगवान् शिव की भक्तिके लिए अङ्गन्यास करन्यासादि करनेचाहिए।४०।मतिमान् साधकका कर्त्तव्य है कि नतमस्तक होकर विनम्र भावसे पञ्चोपचार द्वारा श्रीगुरुदेवका पूजन करे और 'श्री' पूर्वमें-चतुर्थी विभक्तिलगाकर अन्तमें 'नमः' योजितकर'ॐ गुरवेनमः' इस तरह अर्चनमें उच्चारणकरता हुआही पूजनकरे ४१। पंचवर्णात्मक बिन्दु-युक्त पंचमस्वर उकारसहित और वहीं बिन्दुसमेत पंचमस्वरसेरहित पंचम स्वरके सहित बिन्दु सहित मन्त्रीशका उद्धार करके बिन्दु सहित अकारका उच्चारण करे ।४२।

एतैरेवं क्रमाद् बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद् बुधः ।
भुजयोरूरुयुग्मे च गुरु गणपतिं तथा ।४४
दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धाञ्जलिपुटः स्थितिः ।
ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ।४५
अपसर्पन्त्विवत्ति प्रोच्यं प्रणवं तदनंतरम् ।
अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ।४६
उद्धृत्य विघ्नान्भूयिष्ठान् करतालत्रयेण तु ।
अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ।४७
निरुद्धप्राण आसीनो हंसमंत्रमनुस्मरन् ।
हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाडया समानयेत् ।४८
द्वादशांतः स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ।४९

इस प्रकारसे क्रमशः इन बीजोंका उद्धारकरके क्रमसे भुजा और दोनों जघाओंमें देवोंकाप्रणाम ध्यान करे-भुजामें गुरु और गणपतिको और दोनों ऊरुओंमें दुर्गादेवी और क्षेत्रपालको प्रणामकरे ओर दोनों हाथजोड़कर 'ॐ अस्त्राय फट्' यह उच्चारणकर षडङ्गन्यासकरके अपने हाथोंको छैबार शुद्ध शुद्धकरे ।४४-४५। इसके अनन्तर 'अपसर्पन्तु इत्यादि मन्त्रको पढ़कर फिर प्रणवका उच्चारणकर और 'अस्त्राय फट्' कहकर भूमिमें तीन बार पार्णि-घातकरे ।४६। भूमिमेंसे विघ्नोंका निवारणकरके तीनताली बजाकर अन्त-रिक्षमें जानेवाले विघ्नोंको देखकर तथा स्वर्गके विघ्नोंकोदेखकर उन्हें भी दूरकरे ।४७। प्राण वायुको रोकते हुए स्थितरहकर हंस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ हृदयमें स्थित जीव चैतन्यको सुषुम्ना नाड़ीकेद्वारा परमेश्वरसे मिला देवे ।४८। इसके उपरान्त द्वादश कमल हृदय में स्थित परमोज्ज्वल सहस्र दलोंसेयुक्त महापद्ममें चिदात्मक चन्द्रमण्डल में विराजमान चित्स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ।४९।

शीषदाहप्लवान् कुर्याद्रेचकादिक्रमेण तु ।
सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ।५०

वाय्वग्निसलिलाद्यैस्तैः स्ववेदाद्यैरनुक्रमात् ।
प्राणानायम्य मूलग्थां कुण्डलींब्रह्मरन्ध्रगाम्।५१
आनीय द्वादशांतःस्थसहस्राराम्बुजोमरे ।
चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ।५२
संसिक्तायां यनौ भूयः शुद्धदेहुः सुभावनः ।
सोऽहमित्यवतीर्याथ स्वात्मान हृदयाम्बुजे ।५३
आत्मन्यावेश्य चात्मानममृत सृतिधारया ।
प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः ।५४
एकाग्रमानसो योगी विमृश्यातां च भातृकाम् ।
तुष्टितां प्रणवेनाथ न्यसेद् ब्राह्ये च मातृकाम् ।५५
पुनश्च संयतप्राणः कुर्यादृष्ट्यादिकं बुधः ।
शङ्करं संस्मरंश्चिते संन्यसेच्च विमत्सरः ।५६

अब भूत शुद्धि का प्रकार बतलाया जाता है रेचक आदि के क्रम से शोष और दाह दूरकरके सोलह चौसठ अथवा बत्तीस अपरादि वर्णोंसेवायु अग्नि, जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदके मंत्रोंसे सावधान होकर सविधि प्राणायाम करे और ब्रह्म रन्ध्रतक जाने वाली कुण्डलीको जगावे ।५०-५१। फिर जहाँसे चन्द्रमण्डलकी धारानिकलती है वहाँ द्वादश कमल और सहस्त्रकमलमें उसको लेजावे ।५२। उसमें शरीरका स्नानकराकर देह की शुद्धिकरें और अपने हृदयकमलमें वह मैं हूँ-ऐसीभव्य भावनाकरे ।५३। आत्माके द्वाराही आत्माका अमृतींकरण करके ससृमि धारसे विधिके साथ प्राण प्रतिष्ठाकरे और बहुतही सावधानरहे ।५४। इस रीतिसे योगी एकाग्र मनसे अन्तकी मात्राको प्रणवसे सम्पुटितकर उस पूर्वकथित मात्राको बहि-र्भागमें स्थित करे ।५५। इसके पश्चात् प्राण और दृष्टि आदि को रोककर अपने चित्तमें भगवान् शङ्करका ध्यान करते हुए मात्सर्यका सर्वथा त्याग करके न्यास करना चहिये ।५६।

प्रणवस्य ऋष्टिर्ब्रह्मा देबि गायत्रीमीरितम् ।
छन्दोऽत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिव ।५७

अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ।
मकारः कीलक प्रोक्त मोक्षार्थे विनियुज्यते ।५८
अंगुष्ठद्वयमारम्भ तलांतं परिमार्जयेत् ।
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यास समारभेत् ।५९
दक्षहस्तस्थितांगुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम् ।
वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क्रमात् ।६०
अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ।
नमोऽन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ।६१
अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत् ।
ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः ।६२
उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत् ।
मकारं रुद्रसहितं शिखायां नु प्रविन्यसेत् ।६३

इसके पश्चात् ऋषि आदिका स्मरण कर उन्हें प्रणामकरे । प्रणवका ब्रह्मा ऋषि, देवी गायत्री छन्द, सदाशिव परमात्मा देवता हैं ।५७। अकार बीज है-उकार शक्ति हे मकार कीलक हैं और मोक्षके लिये इसका प्रयोग किया जाता है ।५८। हे देवि ! दोनों अंगूठेलेकर हथेली तक शुद्धकरफिर 'ओम्'ऐसा उच्चारण करके करन्यास करना चाहिए ।५९। दाहिने हाथके अंगूठेसे प्रारम्भकरके बाँयेहाथकी कनिष्ठिका पर्यन्त दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदिका क्रमसे न्यासकरे ।६०। ओंकार-उकार और बिन्दुकेसहित मकार सबके अन्तमें 'नमः -यह योजित हस्तमें करके हृदयमें न्यासकरना चाहिए ।६१। सर्वप्रथम अकारका उद्धारकर ब्रह्म आत्मा उच्चारणकरे । यथा-'अ ब्रह्मात्मने नमः'-इस रीतिसे चतुर्थी विभक्तिके एक बचनके अन्तमें 'नमः' लगाकर हृदयमें न्यासकरे अर्थात् स्पर्शकरे ।६२। उकार वा विष्णके सहित ध्यानकरके शिरोदेशमें विनियोग करे और रुद्रकेसहित मकारको शिखाके स्थानमें विनियोग करना चाहिए ।६३।

एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ।
विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा ।६४

अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्मणि विन्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत् ।६५
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात् ।
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ।६६
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ।
हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि ।६७
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथ क्रमम् ।
पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु ।६८
जङ्घास्फिक्ककटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्।
सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ नेत्रेषु च यथाक्रमम् ।६९
कीर्तितास्ता कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयो ।
प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ।७०

इस तरह 'अ ब्रह्मात्मने नमः' इत्यादिके क्रमसे कहकर कवच आदि का विधान करे । हे देवि ! अस्त्र मंत्रसे नेत्रोंमें सावधानहोकर चित्तलगाकर अङ्ग,मुख,कलाके भेदसे पाँचईशानदिका न्यासकरे । पूर्वोक्त ईशानादिका शिर,वदन हृदय,गुह्य और चरणोंमें न्यासकरना चाहिए ।६४-६५। ईशान की पांच कलाकोक्रमपूर्वक शरीरके पाँचोंस्थानोंमें न्यासकरना चाहिए फिर पूर्व आदि दिशाके योगसे चारोंमुखोंमें पूर्व आदि क्रमसे पुरुषकी चारोंकला स्थितकरे हृदय,कण्ठ,स्कंध,नाभिकोष, पीठ छाती इन स्थानोंसे अघोरकीआठ कला स्थित करे पीछे पायु जानुस्फिक् कूला कमर,पार्श्व भागोंमें वामदेवकी तेरहकलाकी भावनाकरनीचाहिए । सद्योजातकी आठकला यथाक्रम नेत्रोंमें कल्पित करे ।६४ ६५-६६ ६७। इन कलाओंकी कल्पना, हाथ, चरण,प्राण शिर और बाहुमें कल्पनाकरे ।६८ से ७०।

अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः ।
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ।७१
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयौ ।
पार्श्वतोदरजङ्घेष पादयो पृष्ठतस्तथा ।७२

इत्थ प्रणयविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ।
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि ॥७३

दोनों बाहु कूर्पर (कुहनी) तथा मणिबन्ध,पार्श्व,उदर,जघा,पाद और पीठमें न्यास करे । इस तरह बुद्धिमान् साधक को अट्ठाईस कलाओं का न्यास करने के पश्चात् प्रणव का ध्यान करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष को इस रीति से प्रणव न्यास पहिले करके पीछे परमात्मा के बोध कराने वाले इस न्यास को करना चाहिये ।७१-७२-७३।

॥ ध्यान, आवाहन अर्घ्य विधान पूर्वक शिवपूजा ॥

स्ववामे चतुरस्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत् ।१
औमित्यभ्यर्च्य तस्मिन्स्तु शंखमस्त्रोपशोधितम् ।
स्थाप्य साधारक त तु प्रणवेनार्चयेत्ततः ।
आपूर्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगंधिना ।२
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यः प्रणवेन च सप्तधा ।
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।३
शखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्र प्रकल्पयेत् ।
तदन्तरेऽर्द्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे ।४
षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत् ।
शभ्यर्त्य गंधपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः ।५
साधारमर्घ्यपात्रं च स्थात्य गंधादिनार्चयेत् ।
आपूर्य शुद्धतोयेने तस्मिन्पात्रे विनीःक्षिपेत् ।६
कुशाग्रण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि ।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं च वरानने ।७

श्री ईश्वरने कहा-अपने बांई तरफ चतुरस्त्र (चौकोर) मण्डल की रचना करे और ॐ का इस प्रकार से अर्चन करके शंख अस्त्र से अर्थात् अस्त्रमन्त्र से शोधित करना चाहिये ।१। उसको आधार पर स्थित करके प्रणव से यजन करे और चन्दनादि की सुगन्ध वाले जलसे पूर्णकरदेवे ।२। प्रणवके द्वारा सातबार गन्धाक्षत पुष्पादिसे पूजन करनाचाहिए इस प्रकार

से अभिमन्त्रित करके उसमें धेनु-मुद्रा बनाकर दिखानी चाहिए ।१। इसके आगे चौकोन शंख मुद्रा की कल्पना करनी चाहिए । उसके अन्तर में अर्द्ध चन्द्र और उसके अन्तरमें त्रिकोण की कल्पना करे ।४। इसरीतिसे षट्-कोण मण्डलकी रचना करनी चाहिये । औरउसके मध्यमेंही केवलओंकार से गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अर्चना करे ।५। इसके पश्चात् उस आधार वाले अर्घ्य पात्रको स्थापित करके गन्धाक्षतादि यजन करे और पवित्र जलसे उसे परिपूर्ण कर देवे ।६। हे वरावने ! कुशका अग्र भाग, अक्षत, यव, व्रीहि,तिल, घृत,श्वेत सरसोंके पुष्प और भस्म उसमें डाले ।७।

सद्योजातादिभिर्मन्त्रः षडंगैः प्रणवेन च ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैरभिमंत्र्य च वर्मणा ।८
अवगुंठयास्त्रमन्त्रेण संरक्षार्थं प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः ।९
स्त्रात्मानं गन्धपुष्यादिपूजोपकरणान्यपि ।
पद्मस्येशानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम् ।१०
गुर्वासिनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत् ।
गुरोमूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः ।११
प्रणवं गुं गुरुभ्योऽन्ते नमःप्रोच्यापि देशिकम् ।
समावाह्य ततो ध्यातेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम् ।१२
सुप्रसन्नमुखं सोम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।
वरादाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम् ।१३
एवं ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पादिभिरणुक्रमात्।
पद्यप्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यापनोपरिः ।१४
मूर्ति प्रकल्प्य तत्रैव गणानां त्वेति मंत्रतः ।
समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः ।१५

सद्योजातादि मन्त्र षडङ्ग और प्रणवसे गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारोंके द्वारा अभिमन्त्रित करके फिर कवचमन्त्रसे अभिमन्त्रित करना चाहिये ।८। अस्त्र मन्त्रसे संयुक्त कर रक्षा के लिए धेनुमुद्राको उसे दिखाना चाहिये ।

अस्त्र-मन्त्रके द्वाराही धेनुमुद्राका प्रोक्षण करे ।९। अपने आत्मा में गन्धाक्षत पुष्पादि की पूजा सामग्रीमें अस्त्र-मन्त्रके द्वारा प्रोक्षण करे और कमल के ईशान के तरफ की दिशामें कमल में ओंकार के उच्चारण के साथ 'गुरु आसनाय नमः' इस तरह कहते हुए आसनकी कल्पना करे और गुरुदेव के उपदेश के अनुसार वहाँ पर श्रीगुरुदेव की प्रतिमा की कल्पना भी करनी चाहिए ।१०। 'प्रणवगुं गुरुभ्यो नमः'—इस रीति से श्री गुरुदेव के प्रति कहकर दक्षिण दिशा के सामने स्थित होकर उनका आवाहन करके ध्यान करना चाहिए ।१२। ध्यान करने का प्रकार बतलाते हैं —सुन्दर एवं प्रसन्न मुख है-स्फटिक मणिके तुल्य अति निर्मल वरदान करने वाले दोनों हाथहैं जो अभयका दान भी साथमें किया करते हैं। दो नेत्रोंसेयुक्तऐसे शिवके शरीर वाले गुरुदेव हैं ।१३। इस उक्त प्रकारसे गुरुदेव का ध्यान करके क्रमशःगन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों से उनका अर्चन करे और उस पद्म के नैर्ऋत्य दिशाकी ओर वाले पद्म पर स्थित गणेशके आसन पर 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्रसे गणपतिकी मूर्ति की कल्पना कर देवता का वहाँ आवाहन करे तथा उनका ध्यान भी करना चाहिए ।१४-१५।

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशांकुशेष्टदशनन्दधानङ्करपङ्कजः ।१६
गजाननं प्रभुं सर्वविघ्नौघघ्नमुपासितुः ।
एवं ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः ।१७
कदलीनारिकेलाम्रफलल्डुकपूर्वकम् ।
नैवेद्यं च समर्प्याथ नमस्कुर्याद् गजाननम् ।१८
पद्मस्य वायुदिक्पद्म सकल्प्य स्कान्दमासनम् ।
स्कन्दमूर्ति प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद् बुध ।१९
उच्चार्य्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम् ।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ।२०
चतुर्भुजमुदारांगं मुकुटादिविभूषितम् ।
वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम् ।२१

गणपति का लाल वर्ण है, महान् विशाल शरीर है जो कि समस्त आभरणोंसे युक्त हैं। पाश अंकुश इष्ट दर्शन कर कमलों में धारण किये हुए हैं। इसतरह सब विघ्नोंकेनाशकरनेवालेअस्त्ररूप प्रभु गणपतिकाध्यान करके फिर उनका षोड़श उपचारोसे विधिवत्पूजनकरनाचाहिए ।१६-१७। कदलीफल,नूतन वस्तु, नारियल, आम, लड्डू आदि नैवेद्य सादर समर्पित करके श्रीगणेशजीको नमस्कार करे ।१८। कमलके वायुकोण के पद्म में स्कन्द का आसनकल्पितकरे उस पर भगवान् स्कन्दकी प्रतिमाकीकल्पना करे, फिर स्कन्दका आवाहन करनाचाहिये ।१९। स्कन्द गायत्रीका उच्चारणकर कुमारका आवाहन करे। भगवान् स्कन्द का ध्यान करेजो सूर्य के तुल्त कान्ति वालेहैं, मयूर ऊपर समारूढ़ हैं चार भुजा वाले, उदार शरीर, मुकुटआदि से विभूषितहैं, वर तथा अभयकेदान करने वाले हैं और शक्ति मुकुटके धारण करनेवालेहैं ऐसा ध्यान करेऔर गन्धाक्षत पुष्पादिसे सविधि अर्चनकरे। इसके पश्चात् पूर्वद्वारमेस्थित अन्तःपुरके अधिप साक्षात् नंदीश्वरकोपूजाकरे जो कि सुवर्णतुल्य समस्त आभूषणोंसेविभूषितहै ।२०-२१।

एवं ध्यात्वाऽथ गधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात् ।
संपूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम् ।२२
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ।
चामीकराचलप्रख्य सर्वाभरणभूषितम् ।२३
बालेन्दुमुकुट सोम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
दीप्तमूलमृजीटंकहेमवेत्रधरं विभुम् ।२४
चद्रबिम्बाभवदन हरिवक्त्रमथापि वा ।
उत्तरस्यां तथातस्य भार्या च मरुतां सुताम् ।२५
सुयशां सुव्रतामम्बपादपण्डनतत्पराम् ।
संपूज्य विधिवद् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकः ।२६
ततः संप्रोक्षयेत्पद्म सास्त्रशंखादबिदुभिः ।
कल्पयेदासन पश्चादाधारादि यथाक्रमम् ।२७
आधारशक्ति कल्याणीं श्यामध्यायेदधोभुवि ।
तस्याः पुरस्तादुत्कठमनन्तं कुंडलाकृतिम् ।२८

नन्दीश्वर बालचन्द्र का मुकुट धारन करने वाले, सौम्य मूर्ति, तीन नेत्र और चार भुजाये धारण करने वाले अतिशय दीप्तिसे युक्त हैं। शूल, मृगी, टंक और सुवर्णके नेत्र धारण करनेवालेहैं तथा सर्वज्ञ हैं। नन्दीश्वर चन्द्रमण्डल एव सिंहकेसमान मुखवाले हैं। ऐसेनन्दीश्वरका पूजनकरे।२४। २५। उत्तर की ओर मरुतों की कन्या उनकी भार्या सुयशा नाम की है जो शोभन व्रत वाली पार्वतीके चरणकमलों में तत्परहो चन्दन पुष्पादि अनेक उपचारों मे यजन करे।२६। इसके उपरान्त उसकमल को अस्त्र मन्त्रके सहित शंखके जलकी विन्दुओं मे प्रोक्षणकरे और इसके पश्चात् आधारादि आसन की कल्पना करनी चाहिये।२७। आधार शक्ति श्याम स्वरूप कल्याणरूपकी नीचे भूमि में ध्यान करना चाहिये उसके आगे ऊर्ध्व कण्ठमें कुण्डलाकार सुशोभित भगवान् अनन्तका ध्यान करे।२८।

धवल पंचफणिन लेलिहानमिवाम्बरम्।
तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम्।२९
धर्मो ज्ञान च वेंराग्यश्वर्यं च पदानि वै।
आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः।३०
अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात्।
राजादर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत्।३१
अधोर्ध्वच्छदनं पश्चात्कंदं नाल च कण्ठवान्।
दलादिकं कर्णिकाञ्च विभाव्य क्रमशोऽचयेत्।३२
दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः।
रुद्रां वामादयस्त्वष्टौ पर्वादिपरितः क्रमात्।३३
कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः।
वामाद्या एव पूर्वादि तदन्ते च मनोन्मनी।३४

अनन्तदेव का श्वेत वर्ण वाला शरीर है जोकि पाँच फण-मण्डलसे युक्तहै प्रोर आकाश को चाटते हुए हैं। उनके निकटही में सिंहके समान आकार वाले, चार चरणोंसे युक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकेचरणों को आसन पर कल्पित करें। आग्नेयी आदि दिशा श्वेत, पीत, रक्त श्याम वर्णऔरअधर्मादिकों को पूर्व आदि दिशाके अनुक्रम सेपधारनेऔरराजावर्त

नामकी मणि (एक तरहके उपरत्नका नाम हैं) आदिकी इनके कलेवर में भावनाकरे ।२९ से ३१। इसके पश्चात् नीचे तथा ऊँचे मेंइन अनन्त का इना रत्न से आच्छादनकी कल्पना करे फिर स्कन्ददेवका नाल कटक कमल के दल और कर्णिका की भावना करके क्रमशः यजन करना चाहिये ।३२। दलों में तोसिद्धिकी कल्पना करनी चाहिये, केशरों में शक्तिकी कल्पना करे और पूर्वादि दिशाओंमें रुद्र तथा नामादि आठ शक्तियोंकी कल्पना करनी चाहिये ।३३। कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नवशक्तिकी कल्पना करे वामादि शक्तियों की पर्वादि दिशा में कल्पना करे ।३४।

कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ।
कर्णिकोपरि वाह्नेय मण्डलं सौरमैन्दवम् ।३५
आत्मविद्या शिवाख्य चतत्वत्रयमतः परम् ।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ।३६
परव्योमावकाशाख्यवित्तयाऽतीव भास्वरम् ।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तं पुष्पविन्यासपूर्वकम् ।३७
आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि ।
ऊँथारादिचतुर्थ्यंत नाममँत्रं नमोन्तकम् ।३८
उच्चार्य पूज्येद्विद्वान्सर्वत्रैव विधिकभः ।
अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पच ब्रह्माणि पूर्ववत् ।३९
यिन्यसेत्क्रपशौ मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ।
आवाहयेततो देवं पुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः ।३०
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यारभ्यौमन्तमुच्चरन् ।
आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ।४१
ब्रह्मरंध्रातमुच्चार्य ध्यायेदोंकारगोचरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ।४२

इसके पश्चात् मनोन्मनी शक्ति को कन्द में, शिवात्मक धर्म नालमें, शिवाश्रय ज्ञानकर्णिकाके ऊपर आग्नेयमण्डल चन्द्र सूर्यसम्बन्धिका ध्यान करना चाहिये । ५। आत्मविद्याज्ञान शिवब्रह्मादिक तीन तत्वइससे परे

हैं । समस्तआसनों पर मुखके साथविचित्र उज्जवलपुष्प स्थित करे ।३६। और दहर विद्या से महा उज्जवल आसन मूर्त्तिकी कल्पना कर पुष्प रक्खे ।३७। आधार शक्तिसे आरम्भ करके शुद्धविद्यासे आसन पर्यन्त ओङ्कार सहितचतुर्थी विभक्तिसे अन्तमें "नमः"-यह लगाकरही सर्वत्र यजन करे । ।३८। विद्वान् साधको उचित है किसब स्थानों में विधि विधान के साथ पूजन करना चाहिये अङ्ग, मुख तथा कलाके भेदसेउन ईशान प्रभृति पञ्च ब्रह्मको पूर्वकी भाँति उनकी मूर्त्ति में सस्थित कर मुद्रा दिखावेइसके पश्चात पुष्पोंको अंजलि ग्रहण कराकर देवीका आवाहन करे ।३९-४०। 'सद्योजात प्रपद्यामि' यहाँसे आरम्भ करके शिवोमें वस्तु सदा शिवोम्' यहाँ पर्यंत उच्चारण करे,मूलाधार से उठे हुए नाद वारहचक्रकी ग्रन्थि तोड़कर ब्रह्मरघ्रमे उच्चारण कर ओंकार गोचर परमेश्वर का ध्यान ऐसा करना चाहिए किशुद्धस्फटिकमणि के तुल्य हैं, कला से रहित हैं और अक्षर उनका स्वरूप हैं ।४१-४२।

कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमय परम् ।
अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्प महत्तमम् ।४३
भक्तनामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ।४४
वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम् ।
आदिमध्यान्तरहित भेषज भवरोगिणाम् ।४५
समाहितेन मनसा ध्यात्वैबं परमेश्वरम् ।
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोध निरीक्षणमू ।४६
नमस्कारं च कुर्वीत बद्ध्वा मुद्राःपृथक्पृथक्।
ध्यायेत्सदाशिव साक्षाद्देव सकलनिष्कलम् ।४७
शुद्धस्फटिककसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ।
विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकटभूषितम् ।४८
शार्दूलचर्मवसनं किंचित्स्मितमुखाम्बुजम् ।
रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ।४९

सर्वलक्षणसम्पन्न सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यायुधकरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।३०

परमेश्वरका स्वरूप परम दिव्य है और इन समस्त लोकों के कारण भूत है। समस्त देवोंसे परिपूर्ण रूप वाले हैं। पर अन्तर बाहरसर्वत्र व्याप्त रहने वाले और अणु स्वरूप तथा परम महान् भीहैं।भक्तोंको बिना प्रयत्न कियेही दिखाई देने वाले ईश्वर हैं। उनका स्वरूप विनाश रहित है और ब्रह्मा इन्द्र, विष्णु रुद्र आदि बड़े बड़े देवताओं को भी अगोचर अर्थात् न दिखलाई देने वाले हैं।४३ ४४। परमात्मा का स्वरूप वेदों का सारमय है और पूर्ण विद्वानों के द्वारा प्राप्त होने के योग्य होताहै। उनकास्वरूप ऐसा अद्भुत है जिसमें आदि और अन्त कुछ भी नहीं होता है। परमेश्वर का स्वरूप संसार के रोगियों के रोग निवारण करनेकेलिए भेषजके समान होता हे।४५। ऐसे उक्त विलक्षण गुणोंसे युक्त परमात्माका ध्यानअत्यन्त सावधान मनसे करना चाहिय औरफिर उनका आवाहन,स्थापन,सन्निरोध दर्शन कर हाथों को जोड़कर नमस्कार करना चाहिये। पृथक् २ मुद्रायें बाँधे और निष्फल साक्षात् देव शिवका ध्यानकरे।४६-४७। अब भगवान् शिव के ध्यान करनेके लिये उनके अड़तीस कलामय स्वरूपका वर्णनकिया जाताहै जिससे उसी प्रकारका ध्यान किया जा सके। विशुद्धस्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ स्वरूप वाले, परम प्रसन्न रहने वाले,शीतलकांतिसे युक्त बिजली के बलय (कड़ा) के तुल्य और मस्तक पर जट जूटोंक मुकुटजैसा धारण करने वाले शिवका स्वरूप होता है।४८। शार्दूलके चम का वस्त्र ओढ़े हुए हास्यसे युक्त मुख कमल वाले, रक्त कमलके तुल्य हस्तएवं चरण वाले तथा अधरों वाले, समस्त सुलक्षणों से युक्त तथा सम्पूर्ण सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाले, श्रेष्ठ औरपरमदिव्य अनेकआयुधोंसे युक्त और दिव्य गन्धलेपको लगाने वाला भगवान् शिवका स्वरूप है।४९-५०।

पञ्चवक्त्रं दशभुजञ्च द्रखण्डशिखामणिम् ।
अस्य पूर्वमुख सौम्यं बाल र्कसदृशप्रभम् ।५१
त्रिलोचनारविन्दाढयं बालेन्दुकृतशेखरम् ।
दक्षिण नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ।५२

भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृतत्रिलोचनम् ।
दंष्ट्राकराल दुष्प्रेक्ष्य स्फुरिताधारपल्लवम् ।५३
उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ।
सद्विलास्त्र त्रिनयनं चन्द्रार्द्ध कृतशेखरम् ।५४
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।
चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम् ।५५
अतीवसौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।५६

भगवान् शिवका स्वरूप पाँच मुख वाला, दश भुजाओं वाला, शिखा-मणिसे चन्द्रकलाको धारण करने और पूर्व दिशाकी ओर रहने वाला मुख परम सौम्य तथा सूर्य की कान्तिके तुल्यकांति वाला है ।५१। भगवान् शिव तीन नेत्र धारणकरनेवाले हैं और कमलके तुल्य शाभासेयुक्तहैं जिनके मस्तक पर सर्वदा बालचन्द्रमा विराजमान रहता है और दक्षिण दिशाकी ओर रहने वाला मुख नील मेघके तुल्यकांति वाला होता है ।५२। भगबान् शिवके स्वरूप का ध्यान ऐसा ही करना चाहिए कि उनकी भृकुटियाँ टेढ़ी रहतीहैं, अतिघोर रक्त नेत्र हैं, बहुत ही भीषण कराल दाढ़े हैं और सर्वदा सृष्टि का संहार करने की मुद्रा में ओठों को फड़काते रहते हैं ।५३। उत्तर की ओर वाला मुख मूंगाकेतुल्यहैं, नीले वर्णवाली अलकें उस मुखके ऊपर शोभायमान हैं, परम सुन्दर विलाससे परिपूर्ण तीन नेत्र धारण करने वाले और मस्तक पर चन्द्रमाका अर्द्ध भाग शोभितहोरहाहै ।५४। भगवान् शिव के पाँच मुख बतलाये गयेहैं उनमें जो मुख पश्चिमदिशाकी ओरहै वह पूर्ण चन्द्र के समान कान्तिसे युक्त होताहैं, वहाँभी उसमुखमें तीन नेत्र विराज-मानहैं और अर्ध चन्द्र शोभा दे रहा है तथा सौम्य एवं मन्द हास्यसे परम मनोहर हैं ।५५। अब शिवके पञ्चम मुखका वर्णन कियाजाता है जिसका ध्यान ऐसा करना चाहिये कि वह स्फटिकके समान उज्ज्वल, चन्द्र रेखा से युक्त, अत्यन्त समुज्ज्वल एवं मनोहर, तीन नेत्र से युक्त है ।५६।

दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ।५९

सर्वं पिनाकनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ।
निवृत्या ज नुपर्यन्तमानाभि च प्रयिष्ठया ।५८
आकण्ठ विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया ।
तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा ।५९
पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलाश्चकविग्रहम् ।
ईषानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।६०
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ।
सद्योजातं च तन्मूर्तिमष्टविंशत्कलामयम् ।६१
मातृकामयमीशान पञ्चब्रह्ममयं तथा ।
ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयं नथा ६२
पंचाक्षरमयं देवं षडक्षरमयं तथा ।
अगषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ।६३

दक्षिण भाग में शूल, परशु, वज्र और खग अग्नि के तुल्य उज्ज्वल है और बांई ओर नाराच,घण्टा पाश औरअंकुशसे अग्नि केसमानउज्ज्वल हैं जो जानुतक निवृत्या नामकला और नाभिमें प्रतिष्ठित नाम की कला से कण्ठ पर्यन्त विद्या तथा ललाट पर्यन्त शान्ता नामबाली कला और इससे भी उपर शान्त्यतीत पराकलासे युक्त तथा पाँच स्थानमें व्यापक होने के कारण निवृत्ति आदि पंच कलामयशरीर है। ईशानदेव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ।५७-५७-६०। अघोर हृदय है, बामदेव गुह्य है, सद्योजात चरण है, इस तरह अड़तीस कलाओं से पूर्ण उसकी मूर्ति है ।५१। ईशान मातृका पूर्णहै तथा पंच ब्रह्ममयहै, ओंकारमय तथा हंसन्यासमयहै ६२।यह देव पञ्चाक्षरमय है तथा षडक्षर है, छै अंकमय और जातिसेयुक्त है।६३।

एवं ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम् ।
गौरीमिमाय मन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः ।६४
आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारान्तमीश्वरी ।
ध्यायेत्ततस्त्वां देवेशि समाहितमना मुनिः ।६५
प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम ।

पूर्णाचन्द्राभवदनां नीलकुंचित्तमूर्द्धजाम् ।६६
नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अतिव्रत्तघनोत्तुंगास्निग्धपीनपयोधराम् ।६७
मनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतरूक्ष्मतराम्बराम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नां ललाट तलकोज्ज्वलाम् ।६८
विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ।६९
हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षणे करे ।
दण्डवच्चामरं हस्त न्यस्यासीनां सुखासने ।
दण्डवच्चामर हस्तं न्यस्यासीनां सुखासने ।७०

मेरे बाम भागमें आप मनोन्मनी रूप गौरी को लेकर स्थित है, ऐसा ध्यान करना चाहिए और 'गौरीमिमाय'-इस मन्त्र तथा ओंकारके सहित ध्यान करे ।६४। हे ईश्वरि ! आवाहन करके पूर्व की भाँति नमस्कार करना चाहिए।६५। अब ध्यान करने का स्वरूप बतलाया जाता है, विकसित कमलके तुल्य कांतिमे पूर्ण विशाल नेत्रों वाली हैं, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली हैं, नीच वण वाले कुंचित केशोंसे शोभित हैं ।६६। नील वर्णके कमलके दलके समान अर्ध चन्द्रको मस्तकपर धारण करने वाली हैं विस्तीर्ण, घने,ऊँचे और स्निग्धपयोधरोंसे सुशोभित हैं ।६७। सूक्ष्म कटि तट वाली तथा परिपुष्ट श्रोणिभाग वाली, पीत तथा बारीक वस्त्र धारण करने वाली हैं,समस्त आभूषणों को धारण करने वाली हैं तथा मस्तक पर उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए हैं ।६८। अद्भुत पुष्पों से सुशोभित केश पाप वाली हैं समस्त सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, लज्जा के कारण अपना मुख नीचे की ओर करने वाली है ।६९। अपने दाहिने हाथ में क्रीड़ा के लिये सुवर्ण का कमल लियेहुएहैं और दूसरा हाथ सिंहासनपररक्खे हुए हैं ।७०।

एवं मां त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ।
स्नापयेच्छुद्धतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ।७१
भवे त्क्वेनातिभव इति पाधं प्रकल्पयेत् ।

वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ।७२
ज्येष्टाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्र प्रकल्पयेत् ।
श्रेष्टाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ।७३
रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्ध दद्यात्सुसंस्कृतम् ।७३
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत् ।
बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत् ।७५
बलाय नम इत्युक्त्वा धूप दद्यात्प्रयत्नतः ।
बलप्रमथनायेति सुदीपं चैव दापयेत् ।७६
ब्रह्मभिश्च षडंगैश्च ततो मातृकया सह ।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ।७७
मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यं तुभ्यश्च वरवर्णिनि ।
मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि ।७८
यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा ।
इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन ।७९
एवं ध्यानं पूजन च कृत्वा सस्यग्विधानतः ।
ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः ।८०

हे देवि ! इस तरहसे अपना मन लगाकर हमारा और आपका ध्यान किया करताहै तथा शंख के जल से स्नान कराकर ओंकार सेप्रोक्षणकिया करता है वह सिद्ध होता है ।७१। 'भवे भवेनाति भवे'—इसमन्त्रसे पाद्य तथा 'वामदेवाय नमः'—यह उच्चारण करके आचमन देना चाहिये ।७२। 'ज्येष्ठाय नमः' इसको पढ़कर शुभ्र वस्त्र समर्पित करे । 'श्रेष्ठायनमः'-यह पढ़कर यज्ञोपवीत का समर्पण करना चाहिये ।७३। 'रुद्राय नमः'—इसको पढकर आचमन करावे और 'कालात नमः' इसको बोल कर सुन्दर गन्ध को देवे ।७४। 'कक्ष विकरणाय नमः'-यह मन्त्र पढ़कर अक्षत तथा बल-विकरणाय नमः'-यह बोलकर पुष्पों का समर्पण करना चाहिये ।७५। 'बलाय नमः'-यह उच्चारण करधूपका आघ्रापन करावे । बलप्रमथनाय

नमः'-यह पढ़कर दीप दर्शनकरावे ।७६। ब्रह्म षडङ्ग और मात्रा के सहित प्रणव शिव और शक्तिकेसहित क्रमसे मुझे और तुमको मुद्रादिखावे सर्व-प्रथम मेरा पूजनकरे इसकेअनन्तर तुम्हारे पूजनके लिए समस्तवस्तु अर्पित करे ।७७-७८। जिससमय तुम्हारी पूजाकरे तब स्त्री-लिंग लगादेनाचाहिए। केवल इतनाही भेदहोता है अन्यकुछ नहीं है है।७९। हे देवि ! इसीविधिसे पूर्ण विधानकेसाथ ध्यान तथा पूजन करके फिर बुद्धिमान् साधक भक्तको मेरी आवरण पूजाका विधान करना चाहिये ।८०।

। शिव के आठ नामों का अर्थ और लिंग-पूजा विधि ।

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।१
नामाष्टकमिदं नित्य शिवस्य प्रतिपादकम् ।
आद्यान्तपञ्चकं तत्र शांत्यतीताद्यमुक्रमात् ।२
सज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात् ।
उपाधधिनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ।३
पदमेव हितं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ।
पदानां परिवृत्तिः स्यांमुच्यंते पदिनो यतः ।४
परिवृत्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना ।
आत्मांतराभिधानं स्यात्पदाद्यनामपञ्चकम् ।५
अन्यतु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः ।
त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते ।६
अनादिमलसश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः ।
अत्यंतपरिशद्धा मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ।७

ईश्वरने कहा—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा ये मुख्य आठ परमात्मा शिव के नाम हैं, जो शिव के नित्य प्रतिपादक हैं। इसमें पितामह तक प्रथम पाँच नामोंमें शांत्यतीत के क्रमसे पाँच उपाधियों के ग्रहण करने से शिवादि की संज्ञा ग्रहण की है। उपाधि के निवृत्त होने यह संज्ञा भी निवृत्त हो जाती है।१-२-३। पद

सत्य है और सदाशिवादि मूर्ति अनित्य हैं पदोंका ही विनिमय होता है इससे मूर्ति आदि छूटजाती है ।४। पदान्तरकी प्राप्तिमें फिर उपाधिसे उस पदकी प्राप्तिहोती है । जो यह आदिका पञ्चक अन्य आत्माकेजानने वाला होतो दूसरे तीननामोंका इसजगत्के उपादान कारणस्वरूप प्रकृति आदिके योगसे तीनतरहकी उपाधि कहनेके कारण ये तीननामभी शिव रूपही होते हैं ।५-६। अनादि मलके सङ्गके स्वभावसे जिस तरह जल स्वच्छ होता है तथा स्वादिष्ट होता है परन्तु वही जल अन्य देशमें प्राप्त हो जानेपर खारी तथा गदला होजाता है परन्तु जलका स्वभावतो निर्मलता युक्त ही होता है । इसीतरह उपाधिरहित होनेसे वह एकही निर्मल शिव है जो उपाधि से युक्तहोनेपर अनेकनाम धारण कर लेते हैं । अब उन नामोंका अर्थ बतलाया जाता है,अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा होनेसे महादेवको शिव कहा करते हैं ।७

अथवा शेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शेवतष्वार्थवेदिभिः ।८
त्रयाविंशतितत्वेभ्यः पराः प्रकृतिरुच्यते ।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ।९
यद्वेदादो स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ।
वेदैकवेद्यं याथात्म्य द्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ।१०
स एव प्रकृतो लीना भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः ।
तस्य प्रकृतिलीतस्य यः परः स महेश्वरः ।११
तदधानप्रवृत्तित्वात्वकृतेः पुरुषस्य च ।
अथवा त्रिगुणं तत्व माये यमिदमव्ययम् ।१२
म यां तु प्रकृतं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
मायाविमाचकाऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात् ।१३
रुद्दुखं दुःखहेतुर्वा तद्रावयति यः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ।१४
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकत् ।

अथवा समस्त कल्याणकारी गुणों के एक ही आधार होने के कारण

उन ईश्वरको शिव तत्वके ज्ञाता महात्मा लोग उन्हें शिव कहाकरते हैं ।८। महेश्वर शब्दका अर्थ है तेईस तत्वों से परे प्रकृति है उस प्रकृतिसे भी परे पच्चीसवाँ पुरुष होता है ।९। वाच्य तथा वाचक भाव से जिसको वेदके आदिमें ॐकार कहते है,वह बेदके द्वार ही जानने के योग्य है और आत्म-स्वरूप में वेदान्त में प्रतिष्ठित है ।१०। वह प्रकृति में उसके भोग के लिये लीनरहता है। उस लीन होनेवाले पुरुषसे भी जो परे है वही महेश्वरकहा जाता है ।११। प्रकृति और पुरुष की प्रकृति उसके ही अधीन है अथवा त्रिगुण तत्वकी कभी विनाश को प्राप्त न होने वाली यह माया है ।१२। माया को ही प्रकृति और मायी को महेश्वर जानना चाहिये । महेश्वर को प्राप्तिसे हो नारायण मायासे मोक्षपद प्रदान किया करते है ।१३। रुद्र यह नाम रुद्र अर्थात् दुःखको अथवा दुःखके कारणको दूरकर देने से ही इनको नाम 'रुद्र' यह पड़ गया है और इसीलिये ही इन्हें रुद्र कहा करते है,वही परम कारण शिव है ।१४।

शिवतत्वादिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च ।
व्याव्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृत ।१५
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मिनामपि ।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ।१६
निदानज्ञो तथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारक ।१७
संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्त्तक ।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्वार्थवेदिभिः ।१८
सर्वात्मा परमरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ।१९
इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम् ।
दत्वा पराङ्मुखाद्यञ्च पश्चादीशानमस्तके ।२०
पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवेन समाहितः ।
हस्तेन बद्धाञ्चलिना पूजापुष्पं प्रगृह्य च ।२१

शिवके तत्त्वादि पर्यन्त शरीर घटादि सबमें व्याप्त होकर स्थित होनेके कारणही शिवको विष्णु कहते हैं ।१५। इस समस्त जगत्के पितृस्वरूप ब्रह्मादिक और मूर्ति आत्मावाले होनेसे सबके पितामह वह पितामह कहलाते है ।१६। जिस प्रकार निदानका ज्ञाता वैद्य रोगको निवारण कर देने में समर्थ हुआ करता और उसका उपाय तथा औषधिका ज्ञान रखता है इसी प्रकारसे भोग मोक्षके प्रदान करनेके पूर्ण अधिकार रखनेसे सम्पूर्ण संसार के ईश्वर स्थूल कारणकी निवृत्ति करनेवाले शिवतत्त्वके ज्ञाताओंके द्वारा यह संसार वैद्य-इस नामसे कहे जाया करते है ।१७-१८। वे सर्वज्ञ प्रभृति समस्त गुण गणसे युक्त होकर सबके आत्मा-परे से भी परे आने से और परमात्मा से भी परे होनेसे स्वयंशिव परमात्मा कहे जाते हैं ।१९। इस तरह प्रणवात्म अविनाशी महादेव के लिए प्रणाम करके अपने सन्मुख अर्घ्य देना चाहिए ।२०। फिर ईशानके मस्तकमें प्रणवसेयुक्त देवेशका पूजनकरे और अञ्चलि बाँधकर अर्चा के पुष्पों को करना चाहिये ।२१।

उन्मनांतं शिवं नीत्वावामनासापुटाध्वना ।
दैवीमुद्रास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना ।२२
शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च ।
सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेत् धृदि ।२३
विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ।
शङ्खधपात्रमंत्रांश्च हृदये विंयसेत्क्रमात् ।२४
निर्माल्यश्च समाप्याथ चण्डेशायेशगोचरे ।
पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत् ।२५
एतच्छ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम् ।
स्तुत्वा विविधैः स्तोत्रैर्देवं वेदार्थगर्भितैः ।२६
श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणामं परमेश्वरी ।
अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः ।२७
अतिगुह्यमिदं विप्राः प्रचवार्थप्रकाशकम् ।
शिवज्ञानपरं ह्येतद् भवतामार्तिनाशनम् ।२८

फिर वाम नासा पुटके मार्ग में उन्मनी नाड़ी के अन्त तक ले जाकर अर्थात् शिवको लेजाकर और दक्षिण नासा पुट के मार्ग से जगदम्बा देवी को लेजाकर 'मैं स्वयं शिव हूँ' ऐसा अनुभव करे इसके पश्चात् हृदयमें समस्त आवरणके देवताओंका ध्यान करना चाहिए।२२-२३। इसके अनंतर क्रमसे विद्या और गुरुदेवका अर्चन करे फिर शङ्ख, अर्घ्यपात्र तथा अन्य मंत्रों को क्रमसे हृदयमें धारण करना चाहिये २४। इसके पश्चात् निर्माल्यको शिवके अर्थात् चण्डेशके आगे समर्पण करे और पश्चात् प्राणायाम करे तथा समस्त ऋषि आदिका स्मरण करना चाहिए।२५। व्यासजीने कहा—हे देवेशि ! इस प्रकार शिवके बचनोंको सुनकर शिवजीके वेदार्थसे भरे हुए अनेक तरह के स्तोत्रोंसे स्तुति करती हुई परमेश्वरी श्रीमच्चरण कमलमें बारम्बार प्रणाम करने लगीं। हे मुनिगण ! परमाह्लाद से मनमें पार्वती महाहर्षित हुई। ।२६-२७। हे ब्राह्मणो ! प्रणव के अर्थ का प्रकाश करने वाला यह परम गुप्त विधान है। यह भगवान् शिवका परम ज्ञान समस्त दुःखोंका विनाश करने वाला होता है।२८।

नान्दी श्राद्ध, ब्रह्मयज्ञादि विधि

साधु साधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर।
त्वमतीब शिवे भक्तः शिवज्ञानवतां वरः।१।
त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित्।
तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः।२।
लोकेस्मिन्पशवः सर्वे नानाशास्त्रविमाहिताः।
वञ्चिताः परमेशस्य माययाऽतिविचित्रया।३।
न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थं महेश्वरम्।
सगुण निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनक परम्।४।
दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते।
सत्य सत्य पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः।५।
प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च।६।

यतो वाचो निवर्त्तन्ते प्रप्राप्य मनसा सह।
आनन्द यस्य वै विद्वन्न बिभेति कुतश्चन ।७।

स्कन्दजीने कहा हे वामदेव मुने ! हे महाभाग ! आप धन्य हैं,आप धन्य हैं,आप परम शिवभक्त और शिवज्ञान के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं ।१। त्रैलोक्य कुछभी ऐसा वहीं,जिसे आप जानते हों, फिरभी लोक कल्याणकी दृष्टिसे मैं आपके प्रतिकहता हूँ।२।इस लोक में मनुष्य अनेकभाँतिके शास्त्रों के कारण भ्रमित होगये हैं तथा वे परमेश्वरी की अद्भुत मायासे वंचित हैं ।३। वे साक्षात् प्रणवरूप शिवको नहीं जानते,जो शिव सगुण-निर्गुण ब्रह्म हैं तथा त्रिदेव जिनके द्वारा प्रकट हुए हैं ।४। मैं अपनी दक्षिणभुजा उठाकर सौगन्ध पूर्वक कहता हूँ कि यह नितान्त सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ।५। स्वयं भगवान्शङ्कर ने ही प्रणवके अर्थोंका वर्णन किया है,यह बात श्रुति, स्मृति,शास्त्र,पुराण और आगम ग्रन्थोंने भी कही हैं।६। जहाँ पहुँच कर मनयुक्त वाणी की भी निवृत्ति होजाती है, जिनके द्वारा आनन्दको प्राप्त विद्वान् किसी प्रकार भी भयभीत नहीं होता है ।७।

यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकम् ।
सहभूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं संप्रसूयते ।८।
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन।
यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्य्यो न चन्द्रमाः ।९
यस्य भासा विभातीदञ्जगत्सर्वं समन्ततः।
सर्वेश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।१०।
यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः।
सर्व्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपी हि चिन्मयः ।११।
यस्य पुंसां परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा।
निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ।१२।
तदीयं त्रिविध रूप स्थूलं सूक्ष्मं परं ततः।
ध्येय मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने ।१३।
निष्कलः सर्वदेवानामादिदेवः सनातनः।
ज्ञानक्रियास्वभावो यः परमात्मेति गीयते ।१४।

जिससे ब्रह्मा,रुद्र,इन्द्र आदि यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट होता है,भूतेन्द्रिय सहित ये ही इस विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता हैं ।८। वह कहीं भी उत्पत्तिको प्राप्त नहीं होते,जिनमें विद्युत भास्कर तथा चन्द्रमाभी प्रकाश करने योग्य नहीं हैं ।९। जिसके आभा से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशवान् होता है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य उनसे प्राप्त होने से ही वे परमेश्वर कहे जाते हैं ।१०। जो आकाशके मध्य निवास करने वाले शिव मुमुक्षुओं द्वारा ध्यान किये जाते हैं, जो सबमें व्याप्त, प्रकाश रूप आत्मस्वरूप एवं चिन्मय हैं ।११।जिसकी पराशक्ति का ज्ञान ज्ञानसे होता है वह निर्गुण निष्कल, सगुण एवं साक्षात् शिव हैं ।१२। जिनके स्थूल सूक्ष्म और परे यह तीन भेद हैं,हे मुनीश्वर ! मुमुक्षुजनों को उसी का ध्यान करना श्रेयकर है ।१३। यह सभी देवों के अधीश्वर, सनातन, कला-रहित तथा ज्ञान क्रिया के स्वभाव वाले होने से परमात्मा कहे जाते हैं ।१४।

तस्य देवाधिदेवस्य मूर्तिः साक्षात्सदाशिवः ।
पञ्चमत्रतनुर्देवः कलापञ्चकविग्रहः ।१५।
शुद्धस्फटिकसकाशः प्रसन्नः शीतलद्युतिः ।
पञ्चवक्त्रो दशभुजस्त्रिपञ्चनयनः प्रभुः ।१६।
ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः ।
अघोरहृदयो वामदेवगुह्यप्रदेशवान् ।१७।
सद्यपादश्च तन्मूर्तिः साक्षात्सकलनिष्कलः ।
सर्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडगीकृतविग्रहः ।१८।
शब्दादिशक्तिस्फुरितहृत्पङ्कजविराजितः ।१९।
मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्यासमार्गतः ।
समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ।२०।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति ।
इत्युक्तं परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना ।२१।

उनकी मूर्ति सदाशिवस्वरूप है,वे पंच मंत्रात्मक देह वाले और पंचक

विग्रह वाले देवता हैं।१५। स्वच्छ स्फटिक मणि जैसे प्रसन्न और शीतल कान्तिसे सम्पन्न,पञ्चमुख पञ्चदश नयन तथा दश भुजा वाले हैं।१६। वे मुक्तिसे सुशोभित ईशानदेव,पुरातन पुरुष अघोर हृदय,वामदेव गुह्यभूत तथा मूर्त-स्वरूप हैं।१७। सद्यपाद तन्मूर्ति, सम्पूर्ण निष्फल मूर्ति.सर्वज्ञत्व आदि छः शक्ति और छः प्रकारसे देहको अङ्गीकृत करने वाले।१८। अब्द आदि से स्फुरित,हृदय पद्ममें प्रतिष्ठित तथा अपनी शक्तिसे वामभागमें सुशोभित हैं।१९।अब मैं मन्त्र आदिके छः प्रकार, उपन्यासके ढङ्ग तथा समष्टि-व्यष्टि के प्रणवात्मक अर्थको कहता हूँ, ध्यान से सुनो।२०। श्रुति, स्मृति द्वारा बताये गये धर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है,वेद मार्ग दर्शक ईश्वर का यही कथन है।२१।

वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम् ।
तत्सायुज्यं गताः सर्वे बहवो मुनिसत्तमाः।२२।
ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाऽध्वना ।
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत्।२३।
एवं ऋणत्रयान्मुक्तो वानप्रस्थाश्रमं गतः ।
शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः।२४।
तपस्वी विजिताहारो यमाद्य योगमभ्यसेत् ।
यथा दृढतरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा।२५।
एव क्रमेण शुद्धात्मा सर्वकर्माणि विन्यसेत् ।
सन्यस्य सर्वकर्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत्।२६।
सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा ।
सर्वोत्तमा हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम्।७।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया ।
तव स्नेहहान्महाप्राज्ञ सावधानतया शृणु।२८।

वर्णाश्रमके आचार रूप पुण्यके द्वारा प्रभु-पूजन करने से अनेकों मुनि-जन उनके सायुज्य पदको प्राप्त हो चुके हैं।२२। श्रुतियों का कथन है कि ब्रह्मचर्यके द्वारा ऋषि,यज्ञ क्रियाके द्वारा देवता और स्वधाके द्वारा पितर

तृप्ति को प्राप्त हो गये हैं।२३। इस प्रकार प्रथम तीनों ऋणसे उऋण होकर वानप्रस्थआश्रम ग्रहण करे और शीत,उष्णता,सुख दुःख आदि सहन करे तथा जितेन्द्रिय रहे।२४। तपस्वी,आहार पर संशय रखने वाला, मय-नियम पालन पूर्वक योगाभ्यास करने वाला तथा बुद्धि को दृढ़ और निश्चल रखने वाला बने।२५। शुद्धिपूर्वक सभी कर्म करे और सम्पूर्ण काम्य कर्मों का त्याग कर दे और ज्ञानमय पूजन में तत्पर होजाय।२६। यह ज्ञानमय पूजन शिवजी से सङ्गति तथा जीवनसे मुक्तिप्रदान करने वाला है,यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियों के लिए ज्ञातव्य है।२७। हे महाप्राज्ञ ! आपके स्नेहवश तथा लोक कल्याणार्थ ही उसका वर्णन करता हूँ उसे सावधानी से श्रवण करो।२८।

सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपगच्छेत्स यतिर्मतिमतां वरम् ।२९।
तत्समीपमुब्रज्यं यथाविधि विचक्षणः ।
दीर्घदण्डप्रणामाद्यस्तोषयेद्यत्नतः सुधीः ।३०।
योगुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुस्मृतः ।
इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत् ।३१।
लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यां वा विधानतः ।३२।
प्रातः स्नात्वाः विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
गुरुमाहूय विधिना नाँदीश्राद्धं समारभेत् ।३३।
विश्वेदेवाः सत्यक्सुसंज्ञावन्तः प्रकीर्तिताः ।
देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः ।३४।
ऋषिधाद्धे तु सम्प्राक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः ।
देवश्राद्धे वसुरुद्रादित्यास्तु सम्प्रकीर्त्तिताः ।३५।

सभी शास्त्रों के तत्वार्थ ज्ञाता,वेदान्त के पारगामी मेधावी आचार्य के निकट बुद्धिमान् यतीजाय।२९। और उन्हें दण्डवत् प्रणामों में भले प्रकार सन्तुष्ट करे।३०। जो गुरु है, वह शिव है और जो शिव है वह गुरु है इस

प्रकार मनमें विचारे उस विचार को गुरु के प्रति निवेदन करे ।३१। फिर गुरु की आज्ञा से बारह दिन तक तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी या दशमीको विधिवत् पयोव्रतकरे ।३२। स्नान करके प्रातः कृत्यकरे और शुद्ध होने पर विधिसे गुरु को बुलाकर नान्दी श्राद्ध करना चाहिए ।३३। हे ऋषि ! उसमें विश्वदेवा सत्यवसु संज्ञक हैं। श्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु,महेश वर्णन किये हैं ।३४।श्राद्धमें देवक्षेत्र मनुष्य तथा द्रव्य श्राद्धमें वसु,रुद्र,और आदित्यकहे हैं ३५।

चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः ।
भूतश्राद्धे पञ्च महाभूतानि च ततः परम् ।३६।
चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः ।३७।
पितृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही ।
आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ ।६६।
प्रपितामहनामा च सपत्नीकाः प्रकीर्त्तिताः ।
मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः ।३९।
प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वोपकल्पितान् ।
आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः ।४०।
समस्तसपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः ।४१।
अपाद्धनघ्वान्तसहस्रभानव समीहितार्थर्पणकामधेनवः ।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्त्तयो रक्षतु मां ब्राह्मणपादपांसवः।४२

मनुष्य श्राद्धमें चार सनकादि तथा भूतश्राद्ध में पच महाभूत कैसे हैं। ।३६। चक्षु आदि इन्द्रियाँ और जरायुज अण्डज स्वेदज,उद्भिज्ज यह चार प्रकारके प्राणी कहे हैं, पितर श्राद्धमें पिता,पितामह और प्रपितामह कहे हैं ।३७। मातृ श्राद्धमें माता,पितामही तथा प्रपितामही और आत्म श्राद्ध में पिता और पितामह कहे हैं।३८।प्रपितामह सपत्नीक तथा मातामह(नाना) के श्राद्ध में मातामह, तथा उनके पिता (परनाना) कहे हैं ।३९। प्रत्येक श्राद्ध में दो ब्राह्मणोंको भोजन करावे,उनकोबुलाकर स्वयं आचमनकर पवित्र

हो और उनके चरण धोवे ।४०। और कहे कि सम्पूर्ण सम्पत्ति की प्राप्ति के कारणरूप,विपत्ति-नाशके लिए अग्निरूप तथा अपार भवसागरसे पार होने के लिए सेतुस्वरूप ब्राह्मणों की चरणरज मुझे पवित्र बनावे।४१।विपत्ति रूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य, काम्य पदार्थ प्राप्त कराने को कामधेनु तथा सम्पूर्ण तीर्थों के जल की पवित्र मूर्ति ब्राह्मणों की पग-रज मेरी रक्षक बने ।४२।

इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्ठांग भुवि दण्डवत् ।
स्थित्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन् ।४३।
सपवित्रकरः शुद्ध उपवीती दृढासनः ।
प्राणायामत्रयं कुर्याच्छ्रुत्वा तिथ्यादिक पुनः ।४४।
मत्सन्यत्सांगभूत यद्विश्वेदेवादिकं तथा ।
श्राद्धमष्टविधं मातामहान्तं पार्गणेन वै ।४५।
विधानेन करिष्यामि युष्मदाज्ञापुरः सरम् ।
एवं विधाय संकल्पं दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ।४६।
उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत् ।
पवित्रपाणिः संस्पृश्य वाणीं ब्राह्मणयोर्वदेत् ।४७।
विश्वेदेवार्थं इत्यादि भयद्भूयां क्षण इत्यपि ।४८।
प्रसादनीय इत्यन्त सर्वत्रैवं विधिक्रमः ।
एव समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत् ।४९।

इस प्रकार जपकर, पृथ्वीमें दण्डवत् होकर प्रणाम करे और शिवजी के सम्मुख पूर्वाभिमुख खड़ा होकर उनके चरणों का ध्यान करे ।४३। और पवित्र हाथकर शुद्ध होकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे,दृढ़ चित्तसे आसन ग्रहण करे और तीनबार प्राणायामकर,तिथ्यादि सुने ।४४।मेरे संन्यास का अङ्गभूत वैश्वदेवादि कर्म क्रम पूर्वक पूर्वोक्त विधि से देवश्राद्धादि भेद के क्रम से नानातक पार्वणश्राद्ध ।४५। विधिवत् आपके आदेशानुसार करूँगा, इस प्रकार सङ्कल्पकर उत्तरकी ओर कुशों को छोड़दे ।४६। फिर ब्राह्मणों का हाथ स्पर्श करता हुआ वरण का क्रम आरम्भ करे तथा पवित्रीको स्पर्श

कर ब्राह्मणों से कहे ।४७। मैंने विश्वदेवा के हेतु आपका वरण किया है, इसे आप क्षण भरको स्वीकार करें ।४८। सबको इस प्रकार प्रसन्न करे, वरण का क्रम सर्वत्र यही है, इसे समाप्त करके मण्डल बनावे ।४९।

उदगारभ्य दश च कृत्वाऽभ्यर्चनमक्षतैः ।
तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान्पादयोः पुनः ।५०।
विश्वेदेवादिनामानि स सम्बोधनमुच्चरेत् ।
इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः ।५१।
पाद्यं दत्वा स्वयमपि क्षालितांघ्रिरुदङ्मुखः ।
आचम्य युग्मक्लृप्तांस्तानासनेषूपवेश्य च ।५२।
विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्येदमासनम् ।
इति दर्भासनं दत्वा दर्भपाणिः स्वयं स्थितः ।५३।
अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थ इत्यपि ।
भवद्भयां क्षण इत्युक्त्वा क्रियतामिति संवदेत् ।५४।
प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत् ।
वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुंगवौ ।५५।
सम्पूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान्प्रति ।
भवन्तोऽनुगृह्णंत्विति प्रार्थयेद् द्विजपुंगवान् ।५६।

उत्तर से प्रारम्भ कर दशों मण्डलों का पूजन अक्षत से करे, ब्राह्मणों को उन मण्डलों पर बैठाकर अक्षत से उनके चरण पूजे ।५०। विश्वदेवा रूप ब्राह्मणों से कहे कि आपके लिये यह पाद्य है, इस प्रकार कर, कुश, पुष्प, अक्षत और जल से ।५१। फिर पाद्य देकर मुख धुलावे और उत्तराभिमुख बैठाकर आचमन करावे तथा बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दे ।५२। विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणों के लिये यह आसन है, यह कहकर कुशका आसन दे और स्वयं भी हाथमें कुश लेकर बैठे ।५३। और कहें कि इस नान्दी मुख श्राद्ध में आप विश्व देवों के निमित्त क्षणमात्र स्थित हों।५४।आप दोनों स्वीकार करें और दोनों ब्राह्मण भी कहें कि हम दोनों स्वीकार करते है ।५५। तुम्हारे सङ्कल्प की पूर्ण रूपेण सिद्धि हो, तब ब्राह्मणों से निवेदन करे कि आप अनुग्रह करें ।५६।

तत्रः शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च ।
अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्वा दर्भैः पृथक्पृथक् ।५७
परिस्तीर्य स्वयं तत्र पषिच्योदकेन च ।
हस्ताभ्यामवलम्ब्याथ पात्रं प्रत्येकमादरात् ।५८
पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा सत्र व्यवस्थितान् ।
देवादींश्च चतुर्थ्यन्तानिनूद्याक्षतसयुतान् ।५९
उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्नं यजेत्पुनः ।
न ममेति वदेदन्ते सर्वत्राय विधिक्रमः ।६०
यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ।६१
ज्ञात जप्त्वा ब्रूयान्मया कृतमिदं पुनः ।
नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं व वदेत्ततः ।६२
असत्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विज पुङ्गवान् ।
विसृज्य स्वकरस्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।६३

फिर केलेकेस्वच्छ पत्तों को धोकर बनाये हुए अन्नादि पदार्थ परोसे और अगल२ कुछ बिछाकर ।५७। तथा जलसे छिड़ककर प्रत्येक पात्र को हाथ में उठावे ।५८। और सादर उन पात्रों को पृथिवी पर रखकर 'पृथिव्|तेपात्रम्' का उच्चारण कर देवता आदिकी चतुर्थी विभक्ति का उच्चारण करे ।५९। फिर अछत सहित जल लेकर 'देवाय स्वाहा' कह कर उस अन्न को छोड़दे और अन्त में 'इदं न मम'कहे, ऐसा सर्वत्र करना चाहिए ।६०। बिन महेश्वर के पादपद्म के स्मरण मात्र से और जिनके नाम जपके द्वारा न्यून कर्म भी अपूर्ण नहीं रहता, उन्हें पार्वतीजीसहित नमस्कार करताहूँ ।६१। ऐसा कहकर उनसे कहे कि मैं जो कुछ कर सका हूँ, उसे इस नांदी मुख श्राद्ध के द्वारा आप यथा-योग्य कहें ।६२। ब्राह्मण 'ऐसा ही हो कहें तब उन विप्रवरोंको प्रसन्न कर' अपने हाथसे जल छोड़े और पृथिवी में लेटकर दण्डवत् करे ।६३।

उथात्य च ततो ब्रूयादमृतं भवतु द्विजान् ।
प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदारधीः ।६४

श्रीरुद्र चमकं सूक्तं पौरुष च यथाविधि ।
चित्ते भदाशिवं ध्यात्वा जपेद्ब्रह्माणि पञ्च च ।६५
भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमापय्य द्विजान्पुनः ।
तन्त्रमन्त्रे च ततो दद्यादुक्करापोशनं पुरः ।६६
प्रक्षालितांघ्रिराचम्य पिण्डस्थानं व्रजेततः ।
आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ।६७
नान्दीमुखोक्तश्रांद्धांगं करिष्ये पिंडदानकम् ।
इति संकल्प्य दक्षाणि समारभ्यादकान्तिकम्।६६
नव रेखाः समालिख्य प्रागग्रान्ष्टादश क्रमात्ः
संस्तीर्य दर्भान्दक्षादिस्थिानपञ्चकम् ।६९
तूष्णी दद्यात्साक्षतीदं त्रिषु स्थानेषु च क्रमात् ।
स्थानेष्वन्येषु मातृषु मार्ज्जयंस्तास्ततः परम् ।७०

और फिर उठकर कहे कि ब्रन्ह्मणोंको यह अमृत स्वरूप हो और उदार बुद्धिपूर्वक अत्यन्त प्रीतिसहित हाथ जोड़ता हुआ प्रार्थना करे ।६४। ग्यारह अनुवाक 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि पुरुषसूक्तको था ईशान आदि ब्रह्मा के पाँच नामोंको लेता हुआ शिवजीका ध्यान करे ।६५। भोजन के अन्त में रुद्र को समाप्त करे और 'अमृतापिधानमसीति' मन्त्रसे उनब्राह्मणोंको जलदे ।६६। फिर चरण धोकर आचमन करे और पिंड-स्थानमें स्वयंजाकर पूर्वाभिमुख होकर मौन बैठे तथा तीन प्राणायाम करे।६७। और कहेकि अब मैं नांदी मुख श्राद्धका अङ्गरूप पिंडदान करूंगा, इस प्रकार सङ्कल्प पूर्वकदक्षिणा-दि से आरम्भ करउत्तर पर्यन्त ।६८।नौ रेखा खींचे और उनके आगेकमसे देवादिके पांच स्थ नमें दो २ कुशविछावे ।६९। फिर मौन होकर क्रम से तीनस्थानों में अक्षर सहित जल दे, दूसरे स्थान में माताओं का मार्जन करे ।७०।

आपेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्या च ।
दद्यात्ता कृमेर्णव देवादिस्थानपञ्चके ।७१
तत्तद्दैव विनामानि चतुर्थ्यन्तान्युदीर्य्या च ।

स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक् पृथक् ।
दद्यादिद साक्षत च पितृसाद्गुण्यहेतवे ।७३
ध्यायेत्सदाशिव देव हृदयाम्भोजमध्यत ।
तत्पादतपद्मस्मरणादिति श्लोक पठन् पुन ।७४
नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तितः ।
दत्वा क्षमापय्य च तान्विसृज्य च तत क्रमात् ।७५
पिण्डानुत्सृज्य गोग्रास दद्यान्नोचेज्जले क्षिपेत् ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा भुंजीत स्वजनैः सह ।७६
अन्येद्यु प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविवर्जितम् ।७७

'यहाँ पितर स्थित हों' इस प्रकार कहकर अक्षत और जल दे, इसी प्रकार देवताओं के पाँच स्थानों में करे ।७१। फिर उन-उन देवताओं के चतुर्थ्यन्त नाम लेकर उन पाँच स्थानों में प्रत्येक को पिंडदे ।७२। पितरादि पचक स्थानमें मौनपूर्वक जल अक्षत अर्पणकरे और अपने गृह्य-सूत्रके अनुसार पिंडदानकरे और श्रेष्ठ गुणार्थ जल अक्षतदे ।७३ फिर हृदयकमलके मध्यमें शिवजीका ध्यानकरे और यत्पादपद्म स्मरणात्, इत्यादि श्लोकका उच्चारण करे ।७४। और ब्राह्मणों को नमस्कार पूर्वक शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे और क्षमाकराकर उनको विदाकरे ।७५। फिर पिंडको छोड़कर गोग्रास दे या जलमें छोड़ दे फिर पुण्याहवाचन कर इष्टजनोंके साथ स्वयं भी भोजनकरे ।७६। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्मकरके बगल और उपस्थ के बालों को छोड़कर-क्षौर कर्म करावे ।७७।

केशश्मश्रुनखानेव कर्माविधि विसृज्य च ।
समष्टिकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः ।७८
स्नात्वा धोतपटः शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यत ।
भस्म संधार्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम् ।७९
तेन संप्रोक्ष्य संप्राप्य शुद्धदेहस्वभावतः ।
होमद्रव्यार्थमाचार्यं दक्षिणार्थं विहाय च ।८०

द्रव्यजात महेशाय द्विजेभ्यश्च विशेषतः ।
भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे ।८१
बस्त्रादिदक्षिणां दत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
धौतकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितं भुवि ।८२
आदाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात् ।
समुद्रतीरे नद्यां वा पर्वते वा शिवालये ।८३
अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य स्थानसुत्तमम् ।
स्थित्वाचम्य ततः पूर्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम् ।८४

क्षौर कर्म में उपस्थ के बालों को छोड़कर केश, दाढ़ी, मूंछ, नाखून आदि को कटवावे, यह कर्म-विधि से करे ।७८। स्नान कर, धोती धारण करे और दो आचमन कर विधि सहित भस्म धारण करे और पुण्यावाचन करावे ।७९। फिर प्रोक्षण करे, शुद्ध देह से होम द्रव्य तथा आचार्य दक्षिणा के निमित्त द्रव्य को छोड़े ।८०। तथा शिवजी, ब्राह्मणों और भक्तों के हेतु सम्पूर्ण द्रव्य देकर गुरुरूप शंकर के लिए ।८१। वस्त्र दक्षिणा आदि दे और प्रणाम पूर्वक पृथिवी में दण्डवत् करे तथा धोये हुये धागा, कौपीन, वस्त्र, दण्डादि लेकर ।८२। होम द्रव्य और समिधा आदि को लेकर समुद्र तट पर, नदी तट पर अथवा पर्वत या शिवालय में ।८३। अथवा वन, गोष्ठ आदि श्रेष्ठ स्थान का विचार कर आचमन करे और मानस जप रूपी मंजरी करे ।८४।

ब्राह्ममोंकारसहित नमो ब्राह्मणा इत्यपि ।
जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीले पुरोहितम्।८५
अथ महाव्रतमिति अग्निर्वै देवनामतः ।
तथैतस्य समाम्नायमिषे त्वोर्ज्जेत्वा वेति तत् ।८६
अग्न आयाहि वीयते शन्नो देवीरभीष्टये ।
पश्चात्प्रोच्य मयरसतजभनलगैः सह ।८७
संमितं च ततः पञ्चसंवत्सरमयं ततः ।
समाम्नायः समाम्नातः अथ शिक्षं वदेत्पुन ।८८
अथातो धर्मजिज्ञासेत्युच्चार्यपुनरंजसाः ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा देवादीनपि संजपेत् ।८९
ब्रह्माणमिन्द्रं सूर्यश्च सोमं चैव प्रजापतिम् ।
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मान मतः परम् ।९०
परमात्मानमपि च प्रणवाद्यं नमोंतकम् ।
चतुर्थ्यन्तं जपित्वा सक्तुमुष्टिं प्रगृह्य च ।९१

फिर ओंकार सहित ब्रह्ममन्त्र का और 'नमो ब्रह्मणे'को तीनबार जप करे 'अग्निमीडे पुरोहितम्'कहे ।८५। फिर 'महाव्रतमिति' और 'अग्निर्देवानामवमः तथा इसका समाम्नाय 'इषेत्वोर्जेत्वा' ।८६। 'अग्नआयाहिवीतये' और 'शन्नोदेवी०'इत्यादि कहकर म य र स त ज भ न ल ग का उच्चारण करे ।८७। इनका समाम्नाय पांच संगतसरमय कहा है 'मैं फिर कहूँगा' यह कहकर वृद्धिरादैच्'सूत्रका उच्चारणकरे ।८८। फिर 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इस दर्शन सूत्रका उच्चारणकर पुनः 'ब्रह्मजिज्ञासा' यत्रका उच्चारण करे अथा केवल वेदमन्त्रोंका उच्चारणकरे ।८९। ब्रह्मा-इन्द्र-सोम-सूर्य-प्रजापति आत्मा-अन्तरात्मा और ज्ञानात्मा ।९०। तथा परमात्माका उच्चारण आदि में प्रणव और अन्तमें नमः संयुक्तकर चतुर्थी विभक्तियुक्त उच्चारण करके एक मुट्ठी सत्तू ग्रहण करे ।९१।

प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत ।
नाभिमन्त्रं क्ष्वयमाण प्रणवाद्यान्नमोन्तकान् ।९२
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मान परं पुनः ।
आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम् ।९३
स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक् ।
त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधाः पुनः ।९४
प्रागास्य उपविश्याथ दृढचित्तः स्थिरासन ।
यथोक्तविधिना सम्यक् प्राणायामत्रयञ्चरेत् ।९५

भक्षण करके प्रणव सहित दो बार सत्तू का आचमन करे और वक्ष्यमाण मन्त्रों से नाभि स्पर्श करे, उन मन्त्रों के आदि में प्रणव अन्त में नमः संयुक्त करे ।९२। फिर आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा,

निज आत्मा और प्रजापतिका उच्चारणकरे।९३। अन्तमें स्वाहा लगाकर जपकरे,फिर दूध, दही और घृतको पृथक्-पृथक् तीन वार प्रणव उच्चारण पूर्वक चाटकर दोबार आचमनकर।९४। फिर पूर्वाभिमुख होकर दृढ़चित्त से स्थित होकर आसन पर बैठे और विधिवत् तीन प्रणायाम करे।९५।

। प्रणव जप के अधिकार में विरजा होम,गायत्री जप ।

अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः ।
गन्धपुष्पापाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत् ।१
नैऋत्ये पूजयेद्देवं विघ्नेश देवपूजितम् ।
गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुविधानतः ।२
रक्तवर्णं महाकार्यं सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशांकुशाक्षामीष्टञ्च दधानं करपङ्कजं ।३
एवमावाह्य सन्ध्यायां शम्भुपुत्र गजाननम् ।
अभ्यर्च्या पायसापूपनालिकेरगुडादिभिः ।४
नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम् ।
परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नं प्रार्थयेत्तत ।५
औपत्सनाग्नौ कर्त्तव्यां स्वगृह्योक्तविधानत ।
आज्यभागान्तमाग्नेयां मखतन्त्रमतः परम् ।६
भूः स्वाहेति त्रयृचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च ।
गायत्रीं प्रजपेद यावदपराह्णामवन्द्रितः ।७

स्कन्दजीने कहा-फिर मध्याह्न के समय प्रसन्न मनसे स्नान करे तथा गंध,पुष्प,अक्षत आदि पूजन-सामग्री को ।१। विधिवत् नैऋत्यकी ओर देव पूजित विघ्नेशकी पूजाकर 'गणानात्वा' मंत्रसे आह्वाहनकरे।२। लालवर्ण वाले,महाकाव, सभी आभूषणों को धारण किये हुए,हाथों में पाश अंकुश, अक्ष लिए हुए।३। इस प्रकार शंकर सुवन गणेशजी का ध्यानपूर्वक क्रमसे गंधादि के द्वारा पूजन करे और खीर,पुआ,नारियल, मिष्ठान्न इत्यादि।४। तथा नैवेद्यसे सन्तुष्टकर ताम्बूल भेंट करे तथा विघ्नेशकी प्रार्थनाकर उन्हें प्रसन्न करके कमस्कार करे।५। अपने गृह्य-सूत्रकी विधिसे आज्यके श्रेष्ठ

भागका सोमकरे,उसमें जो अग्नि मुख तन्त्र है ।६। उस करके 'भूःस्वाहा' उच्चारणकर श्रुत्वासे पूर्णाहुति दे और हवन समाप्त करके अपराह्न समाप्त होने तक गायत्री का जप करता रहे ।७।

अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम् ।
सायमौपासन हुत्वा मौनी विज्ञापयेद् गुरुम् ।८
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ।
जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः ।९
ब्रह्मभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभावयेत् ।
गौरीर्भिमाय मन्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन् ।१०
ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत् ।
हुत्वोपरिष्टाद्यन्त्रं तु ततोऽग्नेरुत्तरे बुधः ।११
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
आब्राह्मं च मूहुर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ।१२
ततः स्नात्वात्वशक्तश्चेद्भस्मना वा विधानताः ।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्नावेवाभिधारितम् ।१३
उदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः ।
अभिधार्य्य व्याहृतीश्च रौद्रसूक्तश्च पञ्च च ।१४

फिर स्नान करके सन्ध्याकालकी सन्ध्यापूर्ण करके और सायंकालीन हवनकरके,मौनरहता हुआ गुरुको आज्ञाप्राप्त करे ।८। समिधा,अन्न,आज्य के चरुको एकत्रकर रुद्र सूक्त अथवा सद्योजात आदि पाँचमन्त्रोंसे होमकरे ।९। ईशादि पाँच ब्रह्म मन्त्रोंसे पार्वती सहित शिवजी का अग्निमें ध्यान करें तथा 'गौरीर्भिमाय' मन्त्रसे हवन कर पार्वतीजी का स्मरण करे ।१०। फिर 'अग्नेय स्विष्ट कृते स्वाहा' मन्त्र से एक बार आहुति देकर हवन युक्त तन्त्रको समाप्तकर अग्निके उत्तर ओर ।११। मौन होकर कुश या मृगचर्म के आसन पर बैठकर ब्रह्ममुहूर्त्त होने तक दृढ़ मनसे गायत्री का जप करे ।१२। फिर स्नान करे, यदि जल स्नान न कर सके तो भस्म स्नान करे, फिर उस चरुको संयुक्तकर अग्निपर रखे ।१३। उसके जलकी अलग करके

कुश पर बैठकर उरु को घी में मिलावे और व्याहृती का उच्चारण कर रुद्र सूक्त का जप करे ।१४।

जपेद् ब्रह्माणि सन्धार्य चित्तं शिवपदांबुजे ।
प्रजापतिमथेन्प्रञ्चा विश्वेदेवास्यतः परम् ।१५
ब्रह्माणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहातान् प्रणवादिकान् ।
सजप्य वाचयित्वाऽथ पुण्याऽहं क्ष ततः परम् ।१६
परस्तात्तंत्रमग्नये स्वाहे यग्निमुखावधि ।
निर्वत्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पंचभि ।१७
साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकृतं हनेत् ।
पुनश्च प्रजतेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च ।१८
महेशादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः ।
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना ।१९
तत्तद्देवान्समुद्दिश्य सांग कुर्याद्विचक्षणः ।
एवमग्निमुखाद्य यत्कर्म तन्त्र प्रवर्तितम् ।२०
अतः परं प्रजुहयाद्विरजाहोममात्मनः ।
षड्विंशत्तत्वरूपेऽस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये ।२१

फिर ईशानादि पंचब्रह्म का उच्चारण कर शिवजी के चरण कमल में मन लगावे, फिर प्रजापति इन्द्र, विश्वेदेव। ।१५। तथा ब्रह्माके नाम के अन्त में नमः जोड़े तथा धादि में प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सहित उच्चारणकरे। इस प्रकार जप और पुण्याहवाचन करके ।१६। तंत्र के समक्ष 'अग्नये स्वाहा' कहे और अग्नि के मुखकी ओर से निवृत्त होकर प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा आदि मंत्रों से पंचाहुति दे ।१७। फिर समिधा, अन्न, घृतकेभेदसे हवनकरे और चरुतथा घृतसे अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' उच्चारण पूर्वक होम करे, फिर रुद्रसूक्त और पञ्चब्रह्म के मन्त्रोंका जप करे ।१८। फिर महेशादि चतुर्व्यूहके मंत्रोंका जपकर अपनीशाखा कीविधिसे महेशादि मंत्रोंसे होम करे ।१९। उन-उन देवताओं के लिए तत्व के ऊपर आहुतिदे, इस प्रकार अग्नि मुखसे कर्मतंत्रको प्रवृत्त करे ।।२०। फिर अपनी शुद्धि के लिए विरजा होम करे। प्रकृतिआदिजो छब्बीस तत्त्व इस देह में हैं ।२१।

तत्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन् ।
तत्रात्मतत्वशुद्ध्यर्थं मन्त्रैरारुणकेतकैः ।२२।
पठ्यमानैः पृथिव्यादिपुरुषांतं क्रमान्मुने ।
साज्येन चरुणा मौनी शिवपादाम्बुज स्मरन् ।२३।
पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पंचकं पुनः ।
श्रोत्राद्यं च शिरःपार्श्व पृष्ठोदरचतुष्टयम् ।२४।
जँघा च योजयेत्पश्चात्त्वगाद्य धातुसप्तकम् ।
प्राणाद्यं पचकं पश्चादन्नाद्यं कोशपचकम् ।२५।
मनश्चित्तं च बुद्धिश्चाहङ्कृतिः ख्यातिरेव च ।
सङ्कल्प स्तुगुणाः पश्चात्प्रकृतिःपुरुषस्ततः ।२६।
पुरुषस्य तु भोक्तृत्व प्रतिपन्नस्य भोजने ।
अन्तरङ्गतया तत्वपचक परिकीर्तितम् ।२७।
नियतिः कालरागश्च विद्या च तदन्तरम् ।
कला च पचकमिद मायोत्पन्नं मुनीश्वर ।२८।

उनकी शुद्धि के लिए विरजा हवन करके कहे मेरे शरीर के यह सब तत्त्व शुद्ध हो जाँय फिर आत्मशुद्धि के लिए तैत्तिरीय आरण्य के मद्र प्रपाठक में अरुण केतुक मन्त्र ।२२। अग्नयोनिमष्ट स सप्त पुरुषा तक उच्चारण कर घृत लेकर मौन होकर शिवजीके चरणकमलका स्मरण करे ।२३। पृथिवी आदि, शब्द आदि और वर्ग आदि पाँच तथा श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रिय, शिर,पीठ, उदर, पाद यह चार ।२४। तथा जांघ को युक्त कर फिर त्वक् आदि सप्त धातु फिर प्राणादि पाँच और अन्नादि पाँच कोष ।२५। मन, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण और प्रकृति पुरुष ।२६। पुरुष का भोक्तापन पाँच तत्व कहे हैं.नियति, काल सहित, राग, विद्या, कला पंचक यह सब माया से ही उत्पन्न हैं ।२७।२८।

मायां तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता ।
तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः ।२९।
कालस्वभावो नियतिरिति च श्रुतिरब्रवीत् ।
एतत्पचकमेवास्य पचकञ्चकमुच्यते ।३०।

अजानन्पश्च तत्वानि विद्वानपि च मूढधीः ।
निपत्याधस्तात्प्रकृतेरुपरिष्ठात्पुमानयम् ।३१।
काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्त्तते पार्श्वताऽन्वहम् ।
विद्यातत्वमिदं प्रोक्तं शुद्धविद्यामहेश्वरौ ।३२।
सदाशिवश्च शक्तिश्च शिवश्चेदं तु पञ्चकम् ।
शिवतत्वमिद ब्रह्मन्प्रज्ञानब्रह्मवाग्यतः ।३३।
पृथिव्यादिशिवांत यत्तत्वजात मुनीश्वर ।
स्वकारणलय द्वारा शुद्धिरस्य विधीयताम् ।३४।
एकादशानां मन्त्राणां परस्मैपदपूर्वकम् ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यंतमिदं पदमथोच्चरेत् ।३५।

श्रुति में प्रकृति को माया ही कहा गया है यह तत्व उसी से उत्पन्न हुए बताते हैं ।२९। श्रुति कहतीहैकि स्थिति कालस्वभावको ही कहते हैं । इसी पचक का नाम पंचक चुक है ।३०। इन पाँच तत्वों को जाने बिना विद्वान् भी मूर्ख हो जाता है, प्रकृति के नीचे नियत तथा ऊपर पुरुष है।३१। काकाक्षि न्यायसे यह पुरुष नियत प्रकृति में स्थित होता है,इसी को विद्या तत्व कहा है शुद्ध विद्या महेश्वर।३२।सद शिव शक्ति और शिवयही [redacted]च कहे । 'प्रज्ञान ब्रह्म' वाक्य से शिवतत्व ही कहा है।३३।जो पृथिवी से शिव तक तत्व हैं अपने कारण प्रकृतिमें लीन होने के द्वारा इसकी शुद्धि करे।३४। परस्मैपद पूर्वक ग्यारह मन्त्रों को शिव ज्योति तक उच्चारण करे ।३५।

न ममेति वदेत्पश्च उद्देशत्याग ईरितः ।
अतः पर विविद्यौति कष्टपोतेति मन्त्रयोः ।३६।
व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्त विश्वभूत पद पुनः ।२७।
धसनोत्सूकशब्दश्च चतुर्थ्यंतमथो वदेत् ।
परस्मैपदमुच्चार्य देवाय पदमुच्चरेत् ।३८।
उत्तिष्ठग्त्रेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शब्दतः ।
पुरुषाय पदं ब्रूय दोंस्वाहेत्यस्य सवेदत् ।३९।
लोकेत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परात्मने ।
शिवायेदं न मम पदं ब्रूयादतः परम् ।४०

स्वशाखोक्तप्रकारेण पुस्तात्तन्त्रकर्म च ।
निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुं प्राश्य परोधसे ।४१।
प्रदद्याद्दक्षिणां तस्मै हेमादिपरिबृंहिताम ।
ब्रह्माणमुद्वास्य ततः प्रातरोपासनं हुनेत ।४२।

फिर 'इद न मम' कहे, प्रकृति देवता के लिए इसी को त्याग कहते हैं। ।३६। फिर विविद्यै स्वाहा, करोतकाय स्वाहा, व्यापकाय परमात्मने इदं न मम, इस प्रकार कहकर शिवा ज्योति चतुर्थी संयुक्त कर तथा ।३७। घसनोत्सुकायेदं इस प्रकार चतुर्थी विभक्ति से कहे तथा त्रैलोक्य व्यापिने परमात्माने देवाय इद न मम कहे ।३८। 'उत्तिष्ठ' मन्त्रसे ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय स्वाहा इस प्रकार उच्चारण करे ।३९। फिर त्रैलोक्य व्यापिने परमात्म ने इत्यादि मन्त्रसे भागदे ।४०। अपनी शाखा के विधान से तन्त्र कर्म करके गुरु के लिए घृतयुक्त चरुको किंचित् भक्षण करावे ।४१। और उन्हें सुवर्णादि की दक्षिणा दे फिर ब्रह्मा को विदा करे और प्रातःकालीन उपासना करता हुआ हवन करे ।४२।

समांसञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रञ्जपेन्नर ।
याते अग्न इत्यनेन मन्त्रणाग्नौ प्रताप्य च ।४३।
हस्तमग्नौ समारोप्य स्वात्मन्यद्वैतधामनि ।
प्रभातिकीं ततः सन्ध्यामुपास्यादित्यमप्यथ ।४४।
उपस्थाय प्रविश्याप्सु नाभिदघ्न प्रवेशयन् ।
तन्मन्त्रान्प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः ।४५।
आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्र जापत्येष्टिमाहिते ।
श्रोते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणाम् ।४६।
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।
सावित्री प्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च ।४७।
प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत् ।
द्वितीय पादमुच्चार्य सावित्रीमिति पूर्ववत् ।४८।
प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिति सवदेत् ।

फिर समाँ सिंचन्तु मरुतः मन्त्र जपे और 'याते अग्न' इसमन्त्रसे अग्नि को प्रज्वलित करे ।४३। अद्वैत तेज वाले अग्निको हाथसे अपने आत्मा में

आरोपित करे और प्रातःकालीन सन्ध्योपासन करके सूर्य को नमस्कार करे। ।४४। फिर नाभि तक जलमें प्रविष्ट होकर प्रीयिपूर्वक उनमन्त्रों का जप करे।४५। तथा अहिताग्नि प्राजापत्येष्टि करे, वह भले प्रकार से श्रौत वश्वानर में होम करके सब वेद और दक्षिणा सहित दान कर।४६।अग्नि को आत्मा में आरोपित कर घर से निकलकर सन्यासी होजाय तथा गायत्री के प्रथम पाद का उच्चारण करके।४७। सावित्री प्रवेशयामि ऐसा कहे और भूरोम् उच्चारण कर फिर गायत्री का द्वितीय पाद कहे।४८। फिर सावित्री प्रवेशयामि कहकर भूवरोम् कहे और तृतीयपादका उच्चारणकरे४९

प्रवेशयामि शद्वान्ते सुवरोमित्युदीरयेत्ः।
त्रिपादमुच्चरेत्पूर्वं सावित्रीमित्यतः परम्।५०।
प्रवेशयामि शद्धान्ते भूर्भुव सवरोमिति।
उदीरयेत्परं प्रीत्या निश्चलात्मा मुनिश्वर।५१।
इयम्भगवती साक्षाच्छंकरार्द्धं शरीरिणी।
पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्वला।५२।
नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रलेखावतसिनी।
शद्धस्फटिकसकाशा दशाधयुधरा शुभा।५३।
हारकेयूरकटकांकिकिणीनपुरादिभिः।
भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा।४५।
विष्णूना विधिना देवऋषिगन्धर्वनायकैः।
मानवैश्च सदा सेव्या सर्वात्मव्यापिनी शिवा।५५।
सदा शिवस्य परमा धर्मपत्नी मनोहरा।
जगदम्बात्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा।५६।

फिर सावित्रीं प्रवेशयामि कहता हुआ सुवरोम् कहे और गायत्री के तीन पादों का उच्चारण करे५०।फिर सावित्रीं प्रवेशयामि कह कर भूर्भुवः सुवरोम् इस प्रकार उच्चारण करे।५१। यह भगवती साक्षात भगवान् शिव के आधे अङ्ग वाली है पाँच मुख दश भुजा पन्द्रह नेत्र तथा उज्ज्वल देह है। ।५२। नवरत्न किरीट से जगमगाती, उदय हुए चन्द्र जैसी कान्ति वाली स्वच्छस्फटिक मणिके समान दस आयुधधारिणी।५३। हार, केयूर खडरा

कौंधनी तथा नूपुर आदि से विभूषित देह वाली दिव्य वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण किये हुए ।५४। विष्णु ब्रह्मा, देव,ऋषि, गन्धर्व, दानव और मनुष्यों के द्वारा सेवा के योग्य तथा सबकी आत्मा में सदैव व्याप्त ।५५। शिवा भगवान् शिवकी मनोहारिणी पत्नी हैं । जो संसार की माता, त्रैलोक्य को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका तथा गुणों से परे हैं ।५६।

इत्येव सविचार्याथ गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः ।
आदिदेवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम् ।५७।
यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपपिणाम् ।
स पच्यते महाघोरे नरके कल्पसख्यया ।५८।
सो व्याहृतिभ्यः सजाता तास्वेव विलय गता ।
ताश्च प्रणवसम्भूताः प्रणवे विलय गता ।५९।
प्रणवः सर्ववेदादि प्रणवः शिववाचकः ।
मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः पर, ।६०।
शिवो वा प्रणवो ह्येष वा शिवः स्मृतः ।
वाच्यवावाचकयोभेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ।६१।
एनमेव महामन्त्रञ्जीवानाञ्च तनुत्यजाम् ।
काश्यां सश्रात्य मराणे दत्ते मुक्ति परां शिवः ६२।
तस्मदेकाक्षर देवं शिवं परमकारणम्
उपासते यतिश्रेष्ठो हृदयांभोजनमध्यगम् ।६३।

इस प्रकार ध्यान कर गायत्री का जप करना चाहिये क्योंकि यही आदि देवी त्रिपदा ब्राह्मणत्व के देने वाली तथा स्वयं अजन्मा है ५७ जो पापकर्मी मनुष्य शिव स्वरूप गायत्री को इसके विपरीत समझता है, वह घोरनरकगामी होता है।५८।वह गायत्री व्याहृतियोंसे उत्पन्नहुई तथा उन्हीं में लीन होती हैं और वह व्याहृतियां प्रणवसेउत्पन्नहोतीं तथा प्रणव मेंलय होती है ।५९। वेदों का आदि प्रणव ही है, यही शिव का वाचक है तथा मन्त्रों का अधीश्वर और बीज मन्त्र है ।६०। प्रणव ही शिव है तथा शिव ही प्रणव है वाचक में किंचित् भेद नहीं है ।६१।काशी में शरीर त्याग करने वालों को इसी मन्त्र का उपदेश देकर शिवजी मुक्तकर देते हैं ।६२।

इस कारण इस एकाक्षर श्रेष्ठ परमदेव का जो यति अपने हृदय कमल में पूजन करते हैं ।६३।

मुमुक्षवोऽपरे धीरां विरक्ता लौकिका नराः ।
विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परम शिवम् ।६४।
एव विलाप्यगायत्रीं प्रणवे शिववाचके ।
अह वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाकं जपेत्पुनः ।६५।
यश्छन्दसामामृषभ इत्यानुवाकमुपक्रमात् ।
गोपायांतं जपन्पश्चादुत्थितीऽहमितीरयेत् ।६६।
वदेज्जपेत्रिधा मदन्मध्योच्छायक्रमान्मुने ।
प्रणवं पूर्वमद्धृस्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।६७।
तेषामथ क्रमाद् भूयाद् भूःसन्यस्तं भुवस्तथा ।
सन्यस्तं सुवरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरन् ।
सर्वमंत्राद्यः प्रदेशे मयेति च पदं वदेत् ।
प्रणवं पूर्वमुदधृत्य समष्टिव्याहृतीर्वदेत् ।६९।
समस्तमित्यतो ब्रूयान्मयेति च समब्रवीत् ।
सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मन्दादीति ततो मुने ।७०।

तथा जो अन्य धीर,मुमुक्षु, विरक्त अथवा लौकिक जन अपने मनको विषयों से हटाकर शिवजी की उपासना करते हैं ।६४। तथा जो गायत्री को शिव वाचक प्रणवमें लीनकर अह वृक्षस्यरेरिव इस अनुवाक को जप कर ।६५। तथा यश्छदसाम ऋषभः इस अनुवाक का जप करते तथा अन्त में गोपाये इन तैत्तरीय शाखा के अनुवाकों को जपकर उत्थितोहम् कहे।६६। और तीनों इच्छाओंका त्याग करता हुआ कहे कि मैं पुत्रकी इच्छासे पृथक हुआ हूँ,धन की इच्छासे पृथक हुआ हूँ,लोकेषणासे पृथक हुआहूँ इस प्रकार क्रम से कहे । प्रथम मद,फिर मध्यम, फिर अधिक शब्दसे जप करे, प्रणव का उद्धार कर सृष्टि,स्थिति औरलयके क्रमसेकरे ।६७।उनका क्रम से—भूः संन्यस्तं,भुवःसन्यस्तं,सुवःसंन्यस्तं,ऐसाक्रम सेकहें६८ इन सब मन्त्रों के अन्तमें 'माया'लगावे और आदिमें प्रणव संयुक्तकरेऔर भूर्भुवःस्वःइससमष्टिव्याहृतिका

उच्चारण करे।६९। संन्यस्तं मया कहकर हृदय में शिवजी का ध्यान करे तथा मन्द, मध्यम और उच्च स्वर मे जप करे।७०।

प्रैषमंत्राँस्त जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा।
अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति संजपन्।७१।
प्राच्याँ दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदं जलिं ततः।
शिखां यज्ञोपवीतं च यत्रोत्पाट्य च पाणिना।७२।
गहीत्वा प्रणव भूश्च समुद्रं गच्छ संवदेत्।
बह्निजायाँ समुच्चार्य सोदकांजलिना ततः।७३।
अप्सु हुयादथ प्रेषैरभिमन्त्र्य त्रिधा त्वपः।
प्राश्य तीरे समागत्य भूभौ वस्त्रादिकं त्यजेत्।७४।
उदङ् मुख प्राङ् मुखो वा गच्छेत्सप्तपदाधिकम्।
किञ्चिद् दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्टेति संवदेत्।७५।
लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च।
भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना।७६।
दत्वा सूदीरं कौपीनं काषायवसनं ततः।
आच्छाद्याचम्य च द्वेधा तं शिष्यमिति संवदेत्।७७।

सावधानी से इस प्रकार प्रेषमन्त्र को जपकरके कहे अभय सर्वभतेभ्यो मत्त:स्वाहा अर्थात् मुझसे सब जीवों को अभय हो,इसका जपकरे।७१। पूर्व दिशामें अन्जलीमें जललेकर छोड़ेतथा शिखा, यज्ञोपवीत को गायत्री मन्त्र पूर्वकहाथ मे उखाड़कर।७२।ग्रहण करे तथाप्रणव सहित वह्निजाया स्वाहा तथ ॐभू ममुद्रं गच्छ स्वाहा कहकर हाथमें जलावे।७३। तथा प्रेष मन्त्रों से शिखा और यज्ञोपवीत कोजलमें छोड़दे,और जलसे आचमन कर वस्त्रादि भी पृथ्वीमें त्यागदे।७४। उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सात पग चले। कुछ दूर चलने पर आचार्य ठहरो कहे।७५। और आचार्य कहे कि लोक व्यवहारार्थ कौपीन स्वीकार करिये यह कहकर आचार्य अपने हाथ से कौपिन दे।७६। आचार्य की बात सुनकर धागे सहित कौपिन काषाय वस्त्र से देहको ढक करदो चार आचमन करे,तब आचार्य उससेकहे।७७

इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत् ।
सम्प्रार्थ्य दण्डगृह्णीयात्सखाय इति सजपन् ।७८।
अथ गत्वा गुरोःपार्श्वं शिवपादाम्बुज स्मरन् ।
प्रणमेद्दण्डवद् भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान् ।७९।
पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं नजम् ।
कृतांजलि पुटस्तिष्ठेद्गुरुपादसमापितः ।८०।
कर्मारम्भात्पूर्वमेव गृहीत्वा गोमयं शुभम् ।
स्थूलामलकमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत् ।८१।
सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान् ।
निक्षिप्य होमसम्पूत्तौ भस्म सगृह्यगोपयेत् ।८२।
ततो गुरुः समादाय विरजानलज सितम् ।
भस्म तेनैव त शिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात् ।८३।
मत्रै रगानि संस्पृश्य मूर्द्धादिचरणान्ततः ।
ईशानाद्यैः पञ्चमत्रैः शिर आरभ्य सर्वतः ।८४।

इन्द्रस्य तज्रोसि तत् इस मन्त्र को जपता हुआ सखाय मां' कहता दण्ड ग्रहण करे ।७८।फिर शिवजी के चरण कमलों के ध्यान पूर्वक गुरु के समीप जाकर पृथ्वीमें लेटकर तीन बार प्रणामकरे ।७९। फिर उठकर प्रेमपूर्वक गुरु को देखे और उसके चर के पास हाथ जोड़कर खड़ा हो।८०। कर्मका आरम्भ करने से पहिले ही गोबर लेकर बड़े २ आमलों के समान उसके गोले बनाकर सुखाले।८१।जब वे धूपसे सूखजाँय तब उन्हें होमाग्नि के बीच में रख दे,होमके सम्पूर्ण होनेके लिए उस भाग को रख ले ।८२। तब गुरु विरजाग्नि के बने श्वेत पिंडोंकी भस्म को अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे ।८३। सब अङ्गों में लगाकर सिर से चरणों तक ईशानादि' पाँच मन्त्रों से आरम्भ करे ।८४।

समधृत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ।
त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात् ।८५।
ततः सद्भक्तियुक्तेन चेतसा शिष्यसत्तमः ।

हृत्पङ्कजे समासीनं ध्यायेच्छिवमुमासखम् ।८६।
हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत् ।
त्रिवारं प्रणव दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतात् ।८७।
ततः कृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्थमादिशेत् ।
षड्विधार्तपरिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ।८८।
दिष्टटुप्रकारं स गुरुं प्रणमेद भुवि दण्डवत् ।
तदधीनो भवेन्नित्य नान्यत्कर्म समाचरेत् ।८९।
तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्थानुसारतः ।
शिवज्ञानपरो भूय त्सुगुणागुणभेदतः ।९०।
ततस्तनैव शिष्येण श्रवणाद्यङ्गपूर्वकम् ।
प्राभातिकाद्यनुष्टानं जपान्तं कारयेद्द गुरुः ।९१।

तथा सब प्रकार देहमें भस्म मल कर त्रिपुण्ड धारण करे । त्रियायुषैः तथा त्र्यम्बकं यजामहे मन्त्रोंसे आरम्भ करे ॥८५॥ और उत्तम भक्ति से सम्पन्न श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय कमल में पार्वती सहित शिवजीकाध्यान करे ।८६। फिरप्रसन्न होकर गुरुशिष्यके शिर पर हाथ रखे और ऋषि आदि का उच्चारण कर उसके दक्षिण कान में मन्त्र कहे और प्रणव का तीन प्रकार से उच्चारण करे ।८७ फिर उसके अर्थ को कृपापूर्वक कहे । गुरुको अध्याय में वर्णित छः प्रकार के अर्थका ज्ञानकराना चाहिये ॥८८॥ फिर शिष्य बारह प्रकारसे गुरुको पृथिवीमें प्रणाम कर उनके अधीन रहे तथा उनकी आज्ञा के बिना अन्य कार्यों का आरम्भ न करे ॥८९॥ तथा गुरु आज्ञा से शिष्य सदैव वेदान्त ज्ञानमें तत्पर रहे और सगुण-अगुण भेद से शिव ज्ञान प्राप्त करे ॥९०॥ वेदान्त मार्ग के अनुसार नित्य प्रति गुरु की आज्ञा में रहे तथा श्रवणादि-युक्त शिव ज्ञानमें तत्पर हो । प्रातः कालीन अनुष्ठान को गुरु जपके अन्त तक करावे। ।९१॥

पूजां च मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये ।
शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत् ।९२।
देवं नित्यमशश्चेत्पूजितुं गुरुणा शुभम् ।

स्फटिकं पीठिकोपेतं गृणहीयाल्लिंगमैश्वरम् ।९३
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ।
न त्वनभ्यर्च्य भंजीयां भगवन्तं तिलोचनम् ।।९४
एवं त्रिवारमुच्चोर्य शपथं गुरुसन्निधौ ।
कुर्याद् दृढमनाः शिष्यः शिवभक्ति समुद्धहन् ।।९५
तत एवं महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः ।
पूजयेत्परया भक्तया पञ्चावरणमार्गतः ।।९६

तथा शिष्य कैलाश प्रस्तर नामक मंडल में शिव वर्णित मार्ग से पूजन करे।।९२।। गुरु पूजित देवता के पूजन करने में नित्यप्रति समर्थ न हो तो स्फटिक सिंहासन सहित एक शिवलिंग ग्रहणकरे तथानित्यप्रति देव-पूजन और गुरु पूजन न कर सके तो शिवलिंगकाही पूजनकरे । ९३।। चाहे प्राण चला जाय शिर कटजाय, परन्तु त्रिनेत्र भगवान् शंकरका पूजनकिये बिना भोजन न करे ।।९४ इस प्रकार गुरुके निकट तीन बार सौगन्ध कर दृढ़ मनसे शिष्य शिवकी भक्तिकरे ।.९५।। तथा उत्कण्ठित मनसे परम भक्ति पूर्वक नित्य उसी लिंग में प्रसन्न होकर शिवजीका पांच आवरण के मार्ग से पूजन करे ।९६।

।। षट् प्रकार कथन पूर्वक ओंकार स्वरूप वर्णन ।।

भगवन्षण्मुखाशेषविज्ञानमृतवारिधे ।
विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभंजन ।।१
षड्विधार्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम् ।
के तत्र षड्विधा अर्थाः परिज्ञान च किं प्रभो ।।२
प्रतिपादश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम् ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं महागुह ।।३
एतमर्थमविज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः ।
अद्याप्यहं महासेन भ्रान्त श्च शिवमायया ।।४
अह शिवपदद्वंद्वज्ञानामृतरसायनम् ।
पीत्वा विगतसम्मोहो भविष्यामि यथा तथा ।।५

कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि ।
कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पाब्जशरणागते ॥६
इति श्रुत्वामुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः ।
प्राहान्यदर्शनमहासंत्रासजनक वचः ॥७

वामदेव ने कहा—हे षडानन ! हे विज्ञानामृत्त के सिन्धो ! हे सर्वेश्वर हेदीन दुःखहर्ता शिवपुत्र ! ॥?॥ छः प्रकारके अर्थका ज्ञानकौन-साहै ? वह किस प्रकार के इष्ट का दाता है ? छः प्रकारके अर्थ कौन-सेहै तथा उनका ज्ञान क्या है ? । २॥ इसका प्रतिपाद्य कौन है ?उससे ज्ञानका फल क्या है! हेस्कन्दजी ! आप इस अर्थ को हमारे प्रतिकहें ॥३॥ मैं इसअर्थ के ज्ञान बिना जीवशास्त्र से भ्रमाहुआ शिवजीकी मायासे मोहित हो रहा हूँ । ४॥ मैं शिवपद के ज्ञानमृत रसायनको पीनेका इच्छूक हूँ जिससे मैं मोह रहित होजाऊँ ॥५॥ इस प्रकार कृपामृतमयी दृष्टि से मुझे देख कर मुझ पर अनुग्रह करें, में आपकी शरण में आया हूँ ॥ मुनिकी यह बातसुन करज्ञान शक्ति से सम्पन्न स्कन्धजी ने शिवशास्त्रसे विरुद्ध शास्त्रों को मानने वाले के प्रति त्रास देने वाले वचन कहे ।७।

श्रूयतां मुनिशार्दूल त्वया यत्पृष्टमादरात् ।
समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञान महेशितुः ॥८
प्रणवार्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम् ।
वदामि षड्विधार्थैक्यपरिज्ञानेन सुव्रत ॥६
प्रथमो मन्त्ररूपः स्याद् द्वितीयो मन्त्रभावितः ।
देवतार्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततः परम्॥ १०
चतुर्थः पचमार्थःस्याद् गुरूरूपप्रदर्शकः ।
षष्टः शिष्यात्मरूपोऽर्थः षड् विधार्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १
येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः ॥१२
अद्याः स्वरः पंचमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः ।
बिन्दुनादौ पंचार्णाः प्रोक्ता च वेदैर्न चान्यथा ॥१३

एतत्समाष्टिरूपो हि वेदादिः समुदाहृतः ।
नादः सर्वसमष्टिः स्याद्बिन्द्वाढ्यं यच्चतुष्टयम् ।१४।

स्कन्दजी ने कहा-हे मुने !तुमने जो प्रश्न किया है वह आदर सहित समष्टि व्यष्टि भाव से शिवजी का ॥८॥ प्रणवार्थ परिज्ञान विस्तार सहित तुम्हारे प्रति कहता हूँ । उस एक के ही परिज्ञानमें छःप्रकार का अर्थ है ॥९॥ प्रथम मन्त्र रूप, द्वितीय यन्त्ररूप, तृतीय देवार्थ और चतुर्थ प्रपंचार्थ है ॥१०॥ पंचम अर्थ दिखाया गया तथा छटवाँ शिष्यके आत्मानुरूप, इस प्रकार छः अर्थ कहे हैं ॥११॥ हे मुनिवर ! जिस यन्त्र के विज्ञानमात्र से पुरुष ज्ञानी होजाता है उस मन्त्रका श्रवण कीजिए ॥१२॥ प्रथम स्वर अकार, पंचम उकार तथा पवर्गके अन्तका मकार बिन्दु और नाद इन पाँच वर्णों को वेद में ओंकार माना गया है ॥१३॥ वेद में यह समष्टि रूप ही ओंकार कहा है, नाद सबकी समष्टि है, उकार और मकार बिन्दु के आदि है ॥१४॥

व्याष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवे शिववाचके ।
यन्त्ररूपं शृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि ।१५।
सर्वाधस्ताल्लिखेत्पीठं तदूर्ध्वं प्रथम स्वरम् ।
उवर्ण च तदूर्ध्वस्थं पवर्गान्त तदूर्वगम ।१६।
तन्मस्तकस्थ विंदुं च तदूर्ध्वं वादमालिखेत् ।
यंत्रे सम्पूर्णतां याते सर्वकामः प्रसिद्धयति ।१७।
एवं यन्त्रं समालिख्य प्रणनैनेव वेष्टयेत ।
तदुत्थेनैव नादेन विद्यान्नादावसानकम् ।१८।
देननार्थ प्रवेक्ष्यामि गूढं सर्वत्र यन्मुने ।
तव स्नेहाद्वामदेव यथा शङ्करभाषितम् ।१९।
सद्योजातंप्र पद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवम् ।
इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपञ्चकवाच कम् ।२०।
विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यः सूक्ष्माः पंचैव देवताः ।
एता एव शिवस्यापि मूर्त्तित्वेनोपबृंहिताः ।२१।

व्यष्टि रूप से सिद्ध ओंकार शिव की वचाकता में सिद्ध है, अब यन्त्र स्वरूप सुनो,वह लिगस्वरूप है ॥५॥ सबसे नीचे पीठ बनावे, उसके ऊपर अकार फिर उकार फिर मकार बनावे ॥१६॥ उसके मस्तक परबिन्दु और अर्द्ध चन्द्राकार नाद बनावे,यन्त्रमें पूर्ण सभी कार्यों की सिद्धि होती है।१७ इस प्रकार यन्त्र खींचकर ओंकारसे वेष्टित कर, उससे उठे हुये नादसे,नाद कीसमाप्ति तक भेद करे ॥१८॥ हे वामदेव ! अब शिवजीद्वारा कहा हुआ अत्यन्त'गूढ़ देवार्थ तुम्हारे स्नेहके कारण तुमसे कहता हूँ ॥१९॥ साक्षात् श्रुति ने ही ब्रह्म पञ्चक ओंकार बताया है ॥२०॥ प्रणव ब्रह्म रूप वाले पाँच देवता भी शिवजी की मूर्त्ति समझो, उन्हें शिवजी से पृथक् मत जानो ॥२१॥

शिवस्य वाचको मन्त्रः शिवमूर्त्तेश्च वाचकः।
मूर्त्तिमूर्त्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः।२२।
ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदिताः।
शिवस्य विग्रहः पंचवक्त्राणि श्रृणु सांप्रतम्।२३।
पंचमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात्।
उर्ध्वांतमीशानांतं च सुखपञ्चकमीरितम्।२४।
ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम्।
पुरुषाद्यं च सद्यांतं ब्रह्मरूपं चतुष्टयम्।२५।
पंचब्रह्मसमष्टिः स्यादीशानं ब्रह्मविश्रुतम्।
पुरुषाद्यं तु तद्व्यष्टिः सद्योजातान्तिकं मुने।२६।
अनुग्रहमयं चक्रमिदं पंचार्थकारणम्।
परब्रह्मात्मकसूक्ष्मं निर्विकारमनामयम्।२७।
अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरीभावादिगोचरः।
प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः।२८।

शिवजी का पंचक मन्त्र शिव स्वरूप का भी वाचक है, मूर्त्ति और मूर्त्तिमान् में विशेष भेदनहीं होता।२२। ईशानोमुकुटोपेतःसेआरम्भकर पाँच ही शिवजीके देहबतायेहैं अब पाँचों मुखोंका वर्णन सुनो ॥२३॥शिवजी के

पाँच मुख पन्चमादिसे आरम्भकर सद्योजातिके अनुकमसे ऊर्ध्व और ईशान तक बताये हैं ॥२४॥ यही ईशान उनके चतुर्व्यूह पद में स्थितहैं, पुरुष सो सद्योजात तक चतुष्टय ब्रह्मस्वरूप हैं ॥२५॥ तथाईशाननामक ब्रह्मकीसंगति से पञ्चब्रह्मसमष्टि कही जातीहै,पुरुष के आदिकीव्यष्टि सद्योजात के अन्त तक।२६। अनुग्रहमय चक्र कहा गया है, पंचार्थका कारण यही है तथा परब्रह्मात्मक,सूक्ष्म एवं निर्विकारभी इसीको समझो ॥२७॥ तिरोभावऔर प्रकट भावके भेदसे अनुग्रहकेभी दो प्रकारकहे हैं, यह प्राणियोंको पर और अपर मुक्ति का दायक है ॥२८॥

एतत्सदा शिवस्थैव कृत्यद्वयमुदाहृतम् ।
अनुग्रेहऽप सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः ।२९।
मुने तत्रापि साद्याद्या देवताः परिकीर्त्तिताः ।
परब्रह्मस्वरूपास्ताः पंचकल्याणदाः सदा ।३०।
अमुग्रहमय चक्रं शांत्यतीतकलामयम् ।
सदाशिवाधिष्ठितं च परम पदमुच्यते ।३१।
एतदेवं पदं प्राप्यं यतीनां भावितात्मनाम् ।
सदाशिववोपासकानां प्रणवासक्तचेतमस् ।३२।
एतदेव पदं प्राप्य तेन साकं मुनीश्वराः ।
भुक्त्वा सुविपुलान्भोगेन्देवेन ब्रह्मरूपिणा ।३३।
महाप्रलयसभूतौ शिवसाम्यं भजति हि ।
न पतति पुनः क्वायिः संसाराब्धौ जनाश्रते ।३४।
वे ब्रह्मलोश इति च श्रतिराह सनातनी ।
तेश्वर्य्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेव हि ।३५।

शिवजी के दो कृत्यहैं,अनुग्रह सृष्टि आदि कृत्योंका पंचक कहा गया है ॥२९॥ वह सृष्टि आदि कृत पंचककेसद्यादिदेवता कहे हैं, पाँचों परब्रह्म स्वरूप हैं तथा कल्याणकेदाताहैं ॥३०॥अनुग्रहमय चक्र शान्ति से परे एव कतामय है,सदाशिवमें उसका अधिष्ठान होने से वह परमपदकहा जाता है ॥३१॥ जोशिवजीके उपासकहैं और जिनका चित्त ओंकारमें रमा हुआहै,

उन भावितात्मा यतियों को इस पदकी प्राप्ति होतीहै। ३२॥हे मुनि-वर ! भगवान्शिवकी कृपासे वे इस पदको प्राप्तहोकर ब्रह्मस्वरूप परमात्माके साथ अनेकप्रकारके भोगोंका उपभोगकरके ।३३। महाप्रलयमें शंकर की साम्यताको प्राप्त होते और पुनः संसाररूपी समुद्रमेंनहींगिरते हैं ।३४। ते ब्रह्मलोकेषु० इत्यादि श्रुति इसी अर्थ का प्रतिपादन करती है, भगवान् शिवका ऐश्वर्य समष्टि रूप यही है ॥३५॥

सर्वेश्वर्येण सम्पन्न इत्याहाथर्वणी शिखा ।
सर्वेश्वर्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ।३६।
चमकस्य पदान्नान्यदधिकं विद्यते पदम् ।
ब्रह्मपंचकविस्तार प्रपञ्च खलु दृश्यते ।३७।
ब्रह्मभ्य एवं संजाताःनिवृत्याद्याः कला मताः ।
सूक्ष्मभूतस्वरूपपिण्यः कारणत्वेन विश्रुता ।३८।
स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपञ्चस्यास्य सुव्रत् ।
पञ्चधाऽवस्थितं यत्तद् ब्रह्मपञ्चकमिष्यते ।३९।
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम् ।४०।
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रहतणैव मुनीश्वर ।४१।
अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रूपं च पावकः ।
अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पंचकमंचितम् ।४२।

अथर्वशीर्षा की श्रुतिका भी का यही कहना है किवही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न है तथा वही सम्पूर्ण एश्वर्योंकोप्रदानकरता है ॥३६॥ चमकाध्याय में उसकेस्थानसे श्रेष्ठ अन्यकोई नहीं बताया, ब्रह्म पंचककेविस्तारकानाम ही प्रपंच कहा गया है ॥३७॥ निवृत्ति आदि कलाये ब्रह्मसेही हुई हैं, यही सूक्ष्मभूत स्वरूपहोकर कारण में स्थित रहती हैं॥३८॥ इसस्थूल शरीरवाले प्रपच के पांच प्रकार से स्थित होनेके कारणहीइसेब्रह्मपंचककहा है ॥३९॥ पुरुष,श्रोत्र,वाणी,शब्द और आकाश ईशानरूप ब्रह्म सेही व्याप्त हैं ॥४०॥

प्रकृति, त्वक्, हाथ स्पर्श और वायु यह पाँचों पुरुषरूपब्रह्मसेव्याप्तहैं ।४१।
अहंकार, चक्षु, चरण, रूप तथा पावक अघोर ब्रह्म से व्याप्त हैं ।।४२।।

बुद्धिश्च रसना पायू रस आपश्च पंचकम् ।
ब्रह्मणा यामदेवेन व्याप्त भवति नित्यशः ।४३।
मनो नासा तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पंचकम् ।
सद्येन ब्राह्मण व्याप्तं पञ्चब्रह्ममयं जगत् ।४४।
यन्त्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवः शिववाचकः ।
समष्टिः पञ्चवर्णानां बिंद्वाद्यं यच्चतुष्टयम् ।४५।
शिवोपदिष्टमार्गेण यन्त्ररूपं विभावयेत् ।
प्रणावं परम मन्त्राधिराज शिवरूपिणम् ।४६।

बुद्धि, रसना, पायु, रस, जल यह पाँचों ब्रह्म वामदेव से व्याप्त हैं ।।४३।। मन,नासिका, उपस्थ, गध और भूमिसद्य ब्रह्मसे व्याप्त हैं, इस प्रकार पंचब्रह्मात्मक जगत् कहा है ।।४४।। जो शिववाचक प्रणव यन्त्र रूपसे कहा गया है,वह पाँचों वर्गों की समष्टि तथा बिन्दु आदि समष्टि एवं कला प्रणव शिव वाचकहै ।।४५।। शिवजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग से उसकाधिचार करना चाहिए यही प्रणव मन्त्रराज तथा साक्षात् शिव स्वरूप है ।।४६।।

।। ओंकार को समस्त सृष्टि का कारण कथन ।।

प्रतिलोमाष्मकं हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव्र सावधानतया श्रृणु ।१।
व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात् ।
आमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः ।२।
महामन्त्रः स विज्ञयो मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते ।३।
आधे त्रिपञ्चरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु ।
महामन्त्रो भवेदादौ ससकारो भवेधदा ।४।
हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थः शिवः स्मृतः ।
शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णयः ।५।

गुरुपदेशकाले तु सोहं शक्त्यात्मकः शिवः ।
इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः ।६।
शक्त्यात्मकः शिवांशश्च शिवैक्याच्छिवसाम्यभाक् ।
प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते ।७।

हेवामदेव ! अबमैं प्रतिलोम अर्थात् सोहं प्रकार के एकार वाले हंस में प्रणवकी प्राप्ति कहता हूँ तुम सावधानी से सुनो ।।१।। व्यंजन सकार का हकारके वर्जनसेॐरूपस्थूल परमात्मवाचक सूक्ष्म ।।२।। महामन्त्र होता है, तत्वदर्शी मुनियोंका ऐसा कथन है, मैं उसका उद्धार करता हूँ अ अं अः इन तीनोंके आदिस्वर अकारके पन्द्रहवें स्वरूपको प्राप्त होनेपर आदि हकार व्यंजनमें हंकी स्थिति होनेपर तथा सोलहवेंअ रूपका आदिसकार होने पर वह हंस होताहैं । इसका उल्टा अर्थात्आदिमें सकार होनेपर सोहं रूप महा-मन्त्र ही है, यह उद्धार सूक्ष्महोनेके कारणमहा सूक्ष्महै ।।४।। इसका उल्टा हँस ही होता है तथा संकार अर्थ शिवही है क्योंकि वह सर्वनाम विशुद्ध स्वभाव शिव के ही बुद्धि का विषय है, इस शक्त्यात्मक महामन्त्रको शिव का बाचक समझो ।५। गुरु के उपदेशकाल में शकत्यात्मक शिवसोहं ही है, शिवोहसस्मीति इस महामन्त्र के होने पर ।।६।। शक्त्यात्मक तथा शिवांश पशु शिवके एकीकार से साम्यभाग होता है, शक्यात्मक और शिवांश होने के कारण शिव की समानता का भागी होता है यह वाक्य प्रज्ञान का अर्थ दर्शाता है ।।७।।

प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्यायः स्यान्न संशय ।
चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्त्तितम् ।८।
चेतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम् ।
स्वातन्त्र्य तत्सव भावो यः स आग्मा परिकीर्तित ।९।
इत्यादिशिवसूत्राणां वार्त्तिकं कथितं मया ।
ज्ञानं वंध इतीदं तु द्वितीय सूत्रमीशितुः ।१०।
ज्ञानमित्यात्मनस्तस्य किंचिज्ज्ञानक्रियात्मकम् ।
इत्यहायपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम् ।११।

एतद्द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पन्दता गतम् ।
एतामेव परां शक्तिं श्वेताश्वतरशाखिनः ।१२
स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया चेत्यस्नुवन्मदा ।
ज्ञानक्रियेच्चारूप हि शंभोर्दृष्टित्रयं विदुः ।१३
एतन्मनोमध्यगं सदिप्रियज्ञानगोचरम ।
अनुप्रविश्य जानाति करोति च पशुः सदा ।१४

निः स्सन्देह प्रज्ञान शब्द चेतना का पर्यायहीहै । आत्मा चेतनहै, शिव सूत्रों में ऐसा कहा है ।८। जो चेतन है तथा जिसमेंविश्व का सम्पूर्णज्ञान और क्रिया भरी पड़ी है, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला वह परमात्माहीबताया है ९। शिवसूत्र और वार्तिकोंके अनुसारजीव-स्वरूपमें दो लक्षणज्ञान और बन्ध रहतेहैं ।१०। उस विश्व प्रपंच में आत्माको ज्ञान क्रियात्मक स्व—तन्त्रताहै, आदि भेदसे जीवका लक्षण वही है ।११। यही चैतन्य ज्ञान वाली स्वतन्त्र माया शक्ति प्रथम सृष्टि प्रयोजन तथा चेतना स्वरूप को प्राप्त हुई है, इसी को पराशक्ति कहा है जानता हूँ, करताहूँ आदि व्यवहार शरीर तथा इन्द्रियादि का है या आत्माका ! इसका समाधान करते हैं कि शिवजीकी दृष्टिके तीन भेद हैं, ज्ञान क्रिया और इच्छा ।१३। शिव की यह तीन प्रकार की दृष्टि ही कर्त्ता के मन में इन्द्रिय के द्वारा दृश्यमान देह में प्रविष्ट स्वरूप बनकर, जानने, करने वाली होती हैं ।१४।

तस्मादात्मन रूएवेद रूपमित्येव निश्चितम् ।
प्रपञ्चार्थं प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम् ।१५
तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रुयतामिदम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थं बिजृम्भितम् ।१६
शिवशक्तिसमायोगः पपमात्मेति निश्चितम् ।
पराशक्तेस्तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा ।१७
आनन्दशक्तिस्तज्जा स्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा ।
ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पंचमी ।
एताभ्य एवं संजाता विवृत्याद्याः कला मुने ॥१८

चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दू प्रकीर्तितौ ।
इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानाशक्तेस्तु पंचमम् ।१९।
स्वरः कियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर ।
इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पञ्चब्रह्मोद्भवं शृणु ।२०।
शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः ।
ततोऽघोरस्ततो वामः सद्योमाताद् भवस्ततः ।२१।

इसलिए अवश्य ही यह आत्मा का रूप है, अब प्रपच के साथ प्रणव की एकता का वर्णन करता हूँ ।।१५।। हे वामदेव!तुम्हारे स्नेहसे मैं उसका तात्पर्य कहता हूँ जिससे तुम्हें ज्ञानकी प्राप्ति हो ।।१६।।शिव और शक्ति के योग को ही परमात्मा कहा है,वह परमात्माही आकाशआदिरूपमें होताहै, जैसे उपादान कारण मिठ्टी अपने से अभिन्न घड़ेका रूप रखती है,दूधरूप उत्पादन दही रूप होजाताहै, रस्सी अज्ञान से सर्प रूप होजाती है, परा शक्तिसे चित् शक्ति।।१७।।और उससे आनन्दशक्ति तथा उससेइच्छा शक्ति की उत्पत्ति हुई है उससे ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति हुई । इन्हीं शक्तियों से निवृत्ति आदि कलायें उत्पन्न हुई ।।१८।।चिदानन्द शक्तियों से नाद और बिन्दुकी उत्पत्ति हुई,इच्छाशक्तिसे मकार तथा ज्ञान शक्ति से पंचम स्वर उकार हुआ ।१९।क्रिया शक्तिसे अकार हुआ । इस प्रकार प्रणवकी उत्पत्ति हुई, अब पंच ब्रह्मकी उत्पत्ति सुनो ।२०। शिव से ईशान हुई, ईशानसे पुरुष, पुरुष से अघोरसे वाम सद्योजात की उत्पत्ति हुई ।।२१।।

एतस्मान्मातृकादष्टत्रिशन्मातृसमुद्भवः ।
ईशानांच्छान्त्यतीताख्या कला जाताऽथ पूरुषात् ।
उत्पद्यते शान्तिकखा विद्याऽघोरसमुद्भवा ।२२।
प्रतिष्टा च निबृत्तिश्च वामसद्योद्भवे मते ।
ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपंचकम् ।२३।
अनुग्रहादिकृत्यानांहेतुः पञ्चकमिष्यते ।
तद्विद्भिर्मुनिभिः प्रज्ञैर्वरतत्वप्रदर्शिभिः ।२४।
वांच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि ।

कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम् ।२५।
वियदादिक्रमादासीदुत्पन्नं मुनिपुङ्गव ।
आद्यं मिथुनमारभ्य पंचमं यन्मयं विदुः ।२६।
शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पर्शगुणो मरुत् ।
शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते ।२७।
शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलं स्मृतम् ।
शब्दस्पर्शरूपसरसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता ।२८।

इन्हीं अकारादि की मात्रासे अड़तीस कला हुई, ईशानसे शान्त्यतीत कला, पुरुषसे शान्तिकला और अघोरसे विद्या की उत्पत्ति हुई।।२२।।प्रतिष्ठा और निबृत्ति की उत्पत्ति वामदेव और सद्योजातसे हुई,ईशऔर चित्शक्ति मुखसे शिवके मिथुनपंचक हुए ।।२३।। अनुग्रह, तिरोभाव, सँहार स्थिति, सृष्ठि आदि रूपोंका कारण हेतु पंचकहै,यह उसके ज्ञाता ज्ञानी मुनियों का कहना है ।।२४।। वाच्य-वाचक सम्बन्धसेमिथुनत्वको पाने वाले कला, वर्ण स्वरूप वाले इस पञ्चक में भूतपञ्चक।।२५।।आकाशादि के क्रम से उत्पन्न हुआ। आद्यामैथुन ईशचित् शक्त्यात्मकसे आरम्भकर भूतपञ्चकको चित् शक्त्यात्मक ही कहा है ।।२६।।आकाश में शब्द, गुण और वायु का शब्द स्पर्श गुण है तथा शब्द स्पर्श रूपगुण याला अग्नि है ।।२७।। शब्द,स्पर्शरूप रस गुणयुक्त जल कहा गया है तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध वाली पृथिवी कही गयी है ।।२८।।

व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम् ।
व्याप्यत्व वैपरात्येन गन्ध दिकमतौ भवेत् ।।२९
भूतपंचकरूपोऽयं प्रपञ्च परिकीर्त्यते ।
विराट सर्वसमष्ट्यात्मा व्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ।३०।
पृथिवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावावधि क्रमाता ।
निलीय तत्वसंदोहे जीव एव विलीयते ।३१।
संशक्तिकः पुनः सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः ।
स्थूलप्रपंचरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम् ।३२।

निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्यु्क्तस्य महेशितुः ।
प्रथमो यः परिस्पन्दः शिव तत्वं तदुच्यते ।३३।
एषैवेच्छाशक्तितत्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात् ।
ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः ।३४।
महेश्वर क्रियोद्रेके तत्वं विद्धि मुनिश्वर ।
ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धविद्यात्मक मतम् ।३५।

यह सभी गुण क्रम-क्रमसे अपने-अपने भूतोंमें व्याप्त हैं और गंधादि क्रमसे विपरीततासे व्याप्तहो रहेहैं ।२९।। भूत पंचक यही रूप प्रपंचकहा गयाहै तथायही प्रपंचसम्पूर्ण समष्टिआत्मा विराट्में ब्रह्माण्ड कहा गया है ।।३०।। पृथिवी तत्वसे शिव तक तत्व समुदाय शक्ति सहित परमेश्वर में लीन होकर, जीवरूप विराट्में लय होता है ।।३१।। तथा सृष्टि कालमें पुनः शक्तिसे निर्गत होकर स्थूल प्रपचके रूपमें प्रलय होने तक स्थित रहता है ।।३२।। स्वेच्छापूर्वक विश्वरचनामें शिवका उद्यतहोना तथा उनके पूर्वकार्य कोही,जो क्रियात्मकहोनाहै शिव तत्व कहा गया है ।।३३।।सम्पूर्ण कृत्यके अनुवर्तनसे इसीको इच्छा शक्ति तत्व कहा गया है । ज्ञान और क्रिया शक्ति मेंज्ञानका आधिक्य होनेसे शिवत्व है तथा ज्ञान की अपेक्षा क्रियाकीअधिकता होनेपर ।।३४।। महेश्वरतत्वकी अधिकता समझो । ज्ञान तथा क्रियाशक्ति की समानता होने पर विशुद्ध ज्ञानरूप शिब तत्व समझना चाहिए ।।३५।।

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्वविभेदधीः ।
शिवो यदा निज रूप परमैश्वर्य पूर्वकम् ।३६।
निगृह्य माययाऽशेषपदार्थग्राहको भवेत् ।
तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट्वेत्यभवच्छ्रुतिः ।३७।
अयमेव हि संसारी मायया मोहितः पशुः ।
शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः ।३८।
शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि ।
जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभोः ।३९।
यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद्भ्रमः ।

गुरुणा ज्ञापितैश्वर्यः शिवो भवति चिद्घनः ।४०।
सर्वकर्तृ त्वरूपा च सर्वज्ञत्वस्वरूपिणी ।
पूर्णत्वरूपा नित्यत्वव्यापकत्वस्वरूपिणी ।४१।
शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचन्द्र् पभास्वराः ।
अपि संकोचरूपेण विभांत्य इति नित्यशः ।४२।

अपने अङ्ग रूप अवयवों में भेद रूप बुद्धि होने पर मायातत्व कहा जाता है, जब शिव अपनी माया से अपने परमैश्वर्य स्वरूपको ॥३६॥ छिपा कर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण कर लेतेहैं, तबउसे पुरुष नामसृष्टि कहते हैं ॥३७॥ यह शिव माया से मोहित होकर जीवरूप होकर अज्ञानवश अपनेको अनेक कर्मकर्त्ता तथा सबसे भिन्न समझता है॥३८॥ तथा विश्वको शिवसे अभिन्न नहीं समझता, इस प्रकार मोहित हो जाता है॥३९॥ जैसे इन्द्रजालके ज्ञाता को भ्रम नहीं होता, वैसेही गुरु के ज्ञानरूप ऐश्वर्य से सम्पन्न शिष्य शिव रूप को प्राप्त होताहै॥४०॥ सम्पूर्ण कर्त्त यस्वरूपा, सर्वज्ञा, पूर्णत्ववालीहोने से नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूप वाली ॥४१॥ शिवजी की संकोच युक्त, सूर्य रूपिणी तथा नित्य प्रकाश करने वाली पाँच शक्तियाँ हैं ॥४२॥

पशोः कलाख्यविद्येति रागकालौ नियत्यपि ।
तत्वपन्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा ।४३।
सा विद्या तु भवेद्रागो विषयेष्वनुरञ्जकः ।४४।
कालो हि भावभावानां भासानां भासनात्मकः ।
कमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरिति कथ्यते ।४५।
इदं तु मम कर्तव्यमिदं नेति नियामिका ।
नियतिः स्याद्विभोः शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः ।४६।
एतत्पचकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः ।
पञ्चकंचुकमाख्यातमन्मरंगं च साधनम् ।४७।

जीव की कला नाम वाली विद्या राग, कालनियति पंच तत्व रूप से कला में होती है।॥४३॥ जिसमें कर्त्तापन का कुछ कारण तत्व का साधन

हो वह विद्या और विषयोंमें प्रीति उत्पन्न कराने वालारागकहा गया है। ।४४। भाव तथा अभावोके क्रमसे परिच्छेदक होकर वहभूतों का आदि होता है ।४५। यह मुझे करने योग्य नहीं, उसी को नियामक कहा है, विभुकी शक्ति को नियति कहते हैं, उसके त्यागसे यह प्राणी पतित हो जाता है ।४६। उस जीव स्वरूप के यह पांच आवरण माने गये हैं यह अन्तरङ्ग साधन वाले तथा पांच कंचुक कहे जाते हैं ।४७।

।। शिव के अद्वैत ज्ञान के निमित्त सृष्टि तत्व कथन ।।

नियत्यधग्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति : ।
पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा ।१
मायया संकुचद्रूपस्तदाधस्तादिति प्रभो ।
इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्वतः ।२
अद्वैतशैववादोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित् ।
द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतं परमनश्वरम् ।३
सर्वज्ञाः सर्वकर्ता च शिवः सर्वेश्वरोऽगुणः ।
त्रिदेवजनको ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः ।४
स एव शङ्करो देव स्वेच्छया च स्वमावया ।
संकुकद्रूप इव सत्पुरुषः सत्रभूव ह ।५
कलादिपिश्चकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकज्पितः ।
प्रकृतिस्थः पुमानेषभुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।६
इति स्थानद्वयांतःस्थः पुरुषो न विरोधकः ।
सङ्कुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीमां समष्टिमान् ।७

वामदेव ने कहा-हे प्रभो ! आपने प्रकृति के नीचे नियतितथा ऊपर पुरुष कहा था, अब उसके विपरीत कैसे कहते हो?।१। तथा आपने माया से सकुचित रूप को उससे नीचे कहा है, आप मेरे इस सन्देहको मिटानेकी कृपा करें।२। स्कन्दजीनेकहा-यह अद्वैत शैव्यवाद द्वैतको कभी सहन नहीं करता,क्योंकि द्वैत नाशवान्और अद्वैत अविनाशी हैं ।३। सबकेकर्तातीनों देवोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वज्ञ एक शिव ही सच्चिदानन्द स्वरूपब्रह्म हैं

।४। वही शिव अपनी माया एवं स्वेच्छासे संकुचित रूपके समान पुरुष बनगये हैं।५। पाँचकला आदि होनेकेकारण भोक्ताभी यहीहै, क्योंकि यही पुरुष प्रकृतिमें प्रकृति जन्म गुणोंका भोगने वाला है ।६। इस प्रकार दोनों स्थानोंमें स्थित होने वाला पुरुष किसी प्रकार विरोधी नहीं होता तथा अपने रूप, ज्ञान आदि का संकोच करता हुआ समष्टियुक्तहोता है ।७।

सत्वादिगुणसाध्यै च बुध्यादित्रियात्मकम् ।
चितम्प्रकृतित्व उदासीत्सत्वादिकारणात् ।८
सात्विकादिविभेदेन गुणाः प्रकृतिसम्भाः ।
गुणेभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणी ।९
ततो महानङ्कारस्ततो बुद्धीन्द्रियाणि च ।
जातानि मनसारूपं स्यात्सङ्कल्पविकल्पकम् ।१०
बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वा च नासिका ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः ।११
बुद्धीन्द्रियाणां कथितः श्रोत्रादिक्रमतस्ततः ।
वैकारिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ।१२
तानि प्रोक्तानिसूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्वदर्शिभि ।
कर्मेन्द्रियाणि ज्ञेयानि स्वकार्यसहितानि च ।१३
विप्रर्षे वाक्करौ पादौ पायूपस्थौ च तत्क्रिया ।
वचना दानगमनविसर्गानन्दसंज्ञिताः ।१४

सत्वादि गुणसेसाध्य बुद्धि आदि त्रयात्मकचित्तही उनगुणों के कारण प्रकृति तत्व है ।८। सात्विक आदि के भेदसे प्रकृतिकेगुणों कीउत्पत्ति होती है तथा गुणोंसे ही वस्तुके निरूपणकरने वाली बुद्धि की उत्पत्ति हैं।९। तीन प्रकारके अहङ्कारकी उत्पत्ति बुद्धिसे हुई,उसकाजीवन साधनात्मकअभिमान हैं यह तीनप्रकारके देहवाला हैं, सत्वादि तथा तैजसादिके भेदसे भी उसके तीन प्रकारहैं, अहङ्कार और तेजसे मन, बुद्धि, इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई तथा मनका स्वरूप सङ्कल्प विकल्प वाला हैं ।१०। बुद्धि, इन्द्रियाँ श्रोत्र त्वक्, चक्षु,जिह्वा,नासिका,स्पर्श,रसतथागन्धावृत्ति और वृद्धि इन्द्रियोंमेंश्रोत्रकेक्रम

से कही गयी है, अहकार से कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई है ।११।१२। तत्वदर्शियों ने उन्हें सूक्ष्म कहा है तथा कर्मेन्द्रिय अपने कार्य के सहित हैं।१३। वाक्, पाणि, पाद, वायु उपस्थ तथा उनकी सम्पूर्ण क्रियायें हैं ।।१४।।

भूतादिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन् क्रमात् ।
तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः ।१५।
तेभ्यश्चाकाशवाय्यग्निजलभूमिजनिः क्रमात् ।
विज्ञेयामुनिशार्दूल पंचभूतमितीष्यते ।१६।
अवकाशप्रदानं च वाहकत्वं चे पावनम् ।
सरम्भो धारणं तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः ।१७।
भतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथं पुनः ।
अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम ।१८।
आत्मतत्वमकारः स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम् ।
शिवतत्वं मकारः स्याद्वामदेवेति चिन्त्यताम् ।१९।
बिंदुनादी तु विज्ञेयो सर्वतत्वार्थकावुभो ।
तत्रत्या देवत्ता याश्च ता मुने शृणु सांप्रतम् ।२०।

भूतादिकों से तथा अहकार के क्रम से तन्मात्रायें हुई, उन्हीं से शब्दादि रूप प्रकट हुए ।।१५।। हे मुने ! उन्हीं से आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, इन्हीं को पंचभूत कहते हैं ।१६। उनके व्यापार अवकाश देना, वहन करना, पचाना वेग तथा धारण क्रम पूर्वक हैं ।।१७।। वामदेव ने कहा आपने प्रथम भूत-सृष्टि का वर्णन किया है, फिर कला आदि किस प्रकार कहते हैं ? ।१८। आत्म तत्व अकार और विद्यातत्व उपकार यह अत्यन्त सन्देह जनक है, शिवतत्व मकार है यह समझो ।।१९।। बिन्दु और नाद तत्व के ही अर्थ है, अब इनके देवताओं को सुनो ।।२०।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ ।
ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयःश्रुतिविश्रुता ।२१।
इत्युक्तं भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम ।२२।

कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि ।
इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं कुमारः प्रत्यभाषत: ।२३
तस्माद्धति समारभ्य भूतसृष्टिक्रमे मुने ।
तान्छृणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयाऽदरात् ।२४
जातानि पंचभूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् ।
स्थूलप्रपंचरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः ।२५
शिवतत्वादिपृथव्यन्तं तत्वानामुदयक्रमे ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि क्रमान्मुने ।२६
तन्मात्राणां कलानामप्यैक्य स्यादभूतकारणम् ।
अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर ।२७

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव यह सभी श्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध भगवान् शकरकेही स्वरूप हैं ।२१। आपने पहिले ऐसा कहाथा, अब कहते हैं कि यह तन्मात्रा से उत्पन्न होता है, मुझे इसमें अत्यन्त सन्देह है।२२। हे स्कन्दजी ! आप कृपया मेरे इस सन्देह को मिटाइये, यहसुनकरस्कन्दजी कहने लगे ।२३। स्कन्दजी ने कहा-हे मुने ! तस्माद्धासे आरम्भ कर भूत सृष्टि के क्रमसे मैं सब कहता हूँ, तुम उसे सावधान होकर सुनो ।२४। कलाओं से पंचभूतों की उत्पत्ति हुई, इसमें सन्देह नहीं है, स्थूल प्रपंच रूप पञ्चभूत भगवान् शिवके शरीर ही हैं ।२५। शिव तत्व से पृथ्वी तत्व तक, तत्वों के क्रमसे तन्मात्राओं से उत्पत्ति है, उस क्रम को कहताहूँ ।२६। भूतोत्पत्ति वाले धर्म से तन्मात्रा और कला उन्हीं भूतों का कारण है, इसमें कुछ विरोध न समझें ।२७।

स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
सनक्षत्राश्च सजातास्तथान्ये ज्योतिषाँ गणाः ।२८
ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवता भूतजातयः ।
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देयाश्च पितरोऽसुराः ।२९
राक्षसा मनुषाश्चान्ये जंगमत्वविभागिनः ।
पशवः पीक्षणः कीटा पन्नागादिः प्रभेदिनः ।३०

तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः ।
गंगाद्याः सरितः सप्त सागराश्च महर्द्धयः ।३१
यत्किंचिद्वस्तु जातं तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ।
विचारणीयं सद्बुध्या न बहिर्मुनिनिसत्तमः ।३२
स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं विवशथक्त्यत्मक्र बुधैः ।
भवादृशैरुपांस्यं स्याच्छिवज्ञानविशादै ।३३
सर्वं ब्रह्मोत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपिः ।
श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपंचात्मा सदाशिवः ।३४
अष्टत्रिंशत्कलान्याससागर्थ्याद् द्वैतभावना ।
सदाशिवोऽहमेवेति भवितात्मा गुरुः शिवः ।३५

चन्द्र, सूर्य आदिकी ग्रह-नक्षत्रों सहित उत्पति इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक विश्व में जैसे हुई है, वैसे ही ।२८। ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता, भूत, जाति, इंद्रादि दिक्पाल, देवता, पितर दैत्य ।२९। राक्षस, मनुष्य सथा विभिन्न प्रकार के जंगत जीव, पशु, पक्षी, कीट तथा पतगरूपी ।३०। वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, पर्वत नदी, सागर, महर्षिगण ।३१। जो कुछ भी है, सो सब इसीमें स्थित हैं, इसे बुद्धि से समझना चाहिए ।३२। यह स्त्री-पुरुष रूप जगत् शिव शक्ति से युक्त है, शिव ज्ञान के त्राता पण्डितों के लिए उपासनीय है ।३३। यह जी कुछ है, वह सभी शिव है ऐसा जानकर उपासना करे शिव ही प्रपञ्चात्मा है ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं ।३४। अड़तीस कलाओ का त्याग करने में शिवजी की अद्वैत भावना करने वाला गुरु शिव ही समझो ।३५।

एवंविचारी सच्छिष्यो गुरुः स्यात्सशिवःस्वयम्।
प्रपंचदेवताथंत्रमंत्रात्मा न हि संशयः ।३६
आचार्यरूपया विप्रः संच्छिन्नाखिलबन्धनः ।
शिशुः शिवपादसक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ।३७
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणाप्राधान्ययोगतः ।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ।३८

रागादिदोषरहितं वेदसारः शिवो दिशः ।
तुभ्य मे कथितं प्रीत्याद्वैतज्ञानं शिवप्रियम् ।३९
यो ह्यन्यथैतन्मनुते मद्वचो मदगर्वितः ।
देवो या मानवः सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपिवा।४०
दुरात्मनस्तस्य शिरः छिद्यां समतया ध्रुवम्।
सच्छक्त्या रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः ।४१
भवानेव मुने साक्षाच्छिवाद्वैतविदां वरः ।
शिवज्ञानोपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः ।४२

इस प्रकार विचार करने वाले श्रेष्ठ शिष्य से युक्त गुरु शिवही है तथा प्रपंच देवता यन्त्र मन्त्रात्मा गुरुभी शंकर ही है, इसमें सशय नहीं है ।३६। इस प्रकार गुरु की कृपासे सभी बन्धनों से मुक्त होकर शिवपद में आसक्ति वाला शिष्य अवश्य ही पूज्यात्मा बनजाता है।३७। सम्पूर्ण वस्तुगुण प्रधान योगकेकारण समस्त एव पृथक् प्रणवकेअर्थको ही प्रकाशित करती हैं।३८। रागादि दोषों से रहित तथा वेदों का साररूप यही शिवजी का उपदेश है, जो अद्वैत ज्ञान शिवजी का प्रिय है, वह मैंने तुम्हारे प्रतिकहाहै ।३९। जो इससे विपरीत करे अथवा अहङ्कारसे मेरे इस उपदेश को मिथ्यामाने, वह देवता, मनुष्य, सिद्ध अथवा गन्धर्व, कोई भी क्योन हो ।४०। उस दुरात्मा शत्रुका शिर मैं अपनी कालाग्नि के समान शक्ति से काट डालूँगा, इसमें शंका नहीं है ।४१। हे मुने ! तुम शिवजीके अद्वैत ज्ञानकेज्ञाता तथा शिव ज्ञान के उपदेशक और शिवाचार के प्रदर्शित करने वाले हो ।४२।

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संच्छिन्नाघब्रजोऽशुचिः ।
महापिशाचः सम्प्राप त्वत्कृपातः सतां गतिम् ।४३
शिवयोगीतिसंख्यातस्त्रिलोकविभवोभवान् ।
भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशुः पशुपतिर्भवेत् ।४४
तव तस्य मयि प्रेक्षा लोकशिक्षार्थमादरात् ।
लोकोपकारकरण विचरन्तीह साधवः ।४५
इदं रहस्यं परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि ।

त्वमपि श्रद्धया प्रथववष्वेव सादरम् ।४६
उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे ।
शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम्।४७
त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्राप्ताद्वैतभावतः ।
विचरंल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि ।४८
श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तंवेदान्तनिष्ठितमृषिस्तु विनभ्रमूर्तिः।
भूत्वा प्रणम्यबहुशो भुविदण्डवत्तत्पादारविंदविरन्मधुपत्वमाप।४९

जिसके शरीर की भस्मके स्पर्श से हीं पिशाचत्व को प्राप्त हुए महापापी भी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और आपकी कृपासे उन्हें सद्गति प्राप्त होती है ।४३। आप त्रैलोक्यमें महान् ऐश्वर्यशाली शिवयोगी कहे जाते हैं, आपके कटाक्षमात्र से प्राणी शिव स्वरूप होजाता है ।४४। आपलोकोपकार के लिये ही विचरण करते हैं और आपने जो प्रश्न किया,वह सबभी लोक शिक्षार्थ ही है ।४५। यह परम रहस्य आपमें सदाही प्रतिष्ठित रहताहैआप श्रद्धा और भक्ति सहित सदाप्रणव में आदरसे ।४६। अपने मन को शिव में लगाकर विभूति और रुद्राक्ष युक्त शिवाचार को ग्रहणकराओ ।४७। तथा आप शिव के आचार को ग्रहण करते हुए अद्वैत भावमेंरहकरलोक रक्षार्थ विचरण करते हुए अक्षय सुखकोप्राप्त होओ।४८। सूतजी ने कहा-स्कन्दजी के इन वेदाँत वचनों को सुनकर वामदेव विनम्र भाग से बारम्वार पृथ्वी में प्रणाम कर उनके चरण कमलों में विहार करते हुए मकरन्दरूपी रस को प्राप्त हो गये ।४९।

।। यातिलों का गुरुत्व और शिष्यकरण विधि ।।

श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्य परमाद्भुतम् ।
किं पृष्टवान्वामदेवो महेश्वरसुतं तदा ।१
धन्योगी वामदेवः शिवाज्ञावरतः सदा ।
यत्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी ।२
इति श्रुत्वा मुनीनां तद्वचन प्रेमगर्भितम् ।
सूतः प्राह प्रसन्नस्ताञ्छिवासक्तमना बुधः ।३

धन्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारकाः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे संवाद च तयोः पुनः ।४।
श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम् ।
अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्माहमुनिः ।५
नत्वा स्तुत्वा च विविध कार्तिकेयं शिवात्मजम् ।
पुनः प्रपच्छ तत्वं हि विनयेन महामुनिः ।६
भगवन्सर्वतत्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ।
गुरुत्वं कथमेतेषां यातिना भावितात्मनाम् ।७

शौनकजी ने कहा-वेदान्त के सार और परम रहस्य को इस प्रकार सुनकर वामदेवने स्कन्दजीसे कहा ।१। सदा शिव ज्ञान में रत योगी वामदेव अत्यन्त धन्य है, जिनके कारण यह दिव्य ज्ञानदायिनी परम पवित्र कथा प्रकट हुई ।२। उन मुनियों के इस प्रकार प्रेम गर्भितवचनों से प्रसन्न हो महाज्ञानी सूतजी उनसे कहने लगे ।३। सूतजीने कहा-आप शिव भक्त धन्यहैं, आपलोकोपकार हैं हे मुनियों ! उन दोनों का संवाद पुनः श्रवण करो ।४। स्कन्दजी के इस प्रकार द्वैतनाशक वचन श्रवण कर महा मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए ।५। शिवजी के पुत्र कार्तिकेयजीको बारम्बार प्रणाम एवं स्तुति करके वामदेवने विनयपूर्वक प्रश्न किया ।६। वामदेवने कहा— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता हैं। हे षडानन ! इन पूर्वकथित आत्मज्ञानियों का गुरुत्व ।७।

जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धि सिध्यति यद्वशात ।
पारम्पर्य्यं विनानेषामुपदेशाधिकारिता ।८
एवं च क्षौरकर्मागं स्नानञ्च कथमीदृशाम् ।
इति विज्ञापयस्वामिन्संशयं छेत्तुमर्हसि ।९
इति श्रुत्वा कार्तिकेयो वामदेववचः स्मरन् ।
शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे ।१०
योगपट्टं प्रवक्ष्यामि गुरुत्वं येन जायते ।
तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्यं विमुक्तिदम् ।११

वैशाखे श्रावणे मासी तथाश्वयुजि कार्तिके ।
मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ।१२
पञ्चभ्यां पौर्णमास्यां वा कृतप्राभातिकक्रियः ।
लब्धानुज्ञस्तु गुरुणास्नात्वा नियतमानसः ।१३
पर्यंकशौचं कृत्वा तद्वाससांगं प्रमृज्य च ।
द्विगुणं दोरमाबध्य वाससी परिधाय च ।१४

और प्राणियों की भोग, मोक्ष आदि की सिद्धि जिसके द्वारा होती है उनके उपदेश का अधिकार सम्प्रदान के ज्ञान बिना नहीं होती ।८। इनके क्षौरकर्म और स्नानादिका यह प्रकार किस कारण है, यह समाधान करके मेरे सन्देह मिटाइये ।९। वामदेव जी का प्रश्नसुनकरस्कन्दजीने शिवाशिव को प्रणाम किया और कहना प्रारम्भ किया ।१०। स्कन्दजीने कहा—अब मैं योग-पद को कहता हूँ, उससे गुरुत्व प्राप्त होता है। यह अत्यन्त गुप्त वार्ता है, तुम्हारी प्रीतिके कारण ही कहताहूँ ।११।वैशाख,श्रावण,आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा माघके शुक्लपक्ष एवं शुभ दिवस में ।१२। पञ्चमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालीन कर्म से निवृत्त होकर गुरु आज्ञा प्राप्त कर नियम पूर्वक स्नानकरे ।१३। पर्यंक शौचकर वस्त्रों से शरीर को पोंछकर दुगुने धागे बाँध कपड़े पहिने ।१४।

क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिमन्त्रतः ।
धारयेद्धि समादाय समुद्धुलनमार्गतः ।१५
गृहीतहस्तो गुरुणा सानुकूलेन वै मुने ।
साशिष्यः सांजलिः स्वाभ्यां हस्याभ्यां प्राङ्मुखोयथा ।१६
तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मण्डले समलंकृते ।
गुर्वासदवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे ।१७
अथ देशिक आदाय शंखं साधारमस्त्रतः ।
विशोध्यतस्य पुरतः स्थापयेत्सानुकूलतः ।१८
साधारं शंखमपि च सम्ज्य कुसुमोदिभिः ।
निःक्षिपेदस्त्रवर्मभ्यां शोधितं तत्र सज्जलम् ।१९

आपूर्य पूर्ववत्पूज्ये षडंगोक्तक्रमेण च ।
प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधैवाभिमन्त्रयेत् ।२०।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपौ प्रदर्श्य च ।
संरक्षास्त्रेण तं शंखं वर्मणाऽयाबगुण्ठयेत् ।२१।

फिर चरण धोकर दो बार आचमन करे और सद्योजातादि मन्त्रोंसे मस्तक में भस्म लगाकर, फिर पूरे देह में लगावे ।१५। हे मुने! पूर्वाभिमुख होकर योग्य गुरु के हाथमें हाथ देकर फिर हाथ जोड़कर ।१६।सुन्दर अलंकारयुक्त मन्दिरमे गुरुप्रदत्तमृगचर्मके आसनपर बैठ ।१७।फिर आचार्य आधारसहित शंखको अस्त्र मन्त्रसे लावे और उसे शुद्धकर आगे स्थापित करे।१८। और पुष्पों द्वारा पूजन करे तथा कवच मन्त्रों से शुद्ध जल से आधारसहित शंख को।१९। भरकर षडङ्ग विधि से उसका पूजन करे और प्रणवसे उसे सात वार अभिमन्त्रित करे ।२०। फिर गन्धपुष्पादि से पूजन कर धूप-दीप दिखावे और मुद्रा रक्षा कर कवच मन्त्रसे ढके ॥२१॥

धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः ।
पुनः स्वपुरतः शंखदक्षिणे देश उत्तमे ।२२।
पूजाध्योक्तविधानेन सुन्दरं मण्डलं शुभम् ।
कुर्यात्सम्पूजयेत्तं च सुगन्धकुमादिभिः ।२३।
साधारं शोधितं शुद्धं घटं तन्तुपरिष्कृतम् ।
धूपितं स्थापितं शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ।२४।
पञ्चत्वक्पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चमिः ।
मिलितं च सुगन्धेन लेपयत्तं मुनीश्वर ।२५।
वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः ।
तं धटं वस्तुभिश्चान्यैः संस्कुर्तिममलंकृतम् ।२६।
नृम्लस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः ।
सम्यग्विधानतः प्रीत्या सानुकूलः समर्चयेत् ।२७।
आधारशक्तिमारभ्य यजनोक्तविधानतः ।
पश्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत् ।२८।

आचार्य धेनु और शंखमुद्रादिवाकर आने अमश शंख के दक्षिण और पूजनऔरअर्घ्यक विधानसे अष्टमडल करके, उसका सुगन्धित पुष्पोंसेपूजन करे ।२२।२३। आधार को शुद्ध कर उसपर शुद्ध घटरखकर सूतलपेटे तथा धूप देकर शुद्ध सुगन्धितजलसे परिपूर्ण करे । २४। पीपल, पिलखन, आम्र जामुन और बड़ ये पंचछाल तथा पंचपल्लव,हाथी, घोड़े रथ, बाँबी तथा नदीके सङ्गमकी मिट्टी,इनमें सुगन्धित द्रव्य मिलाकर कलशपरलेपे।।२५।। वस्त्र, आम्रपत्र, कुशाग्र, नारियल और पुष्पादि से उसे अलंकृत करे।२६। नृम्लस्क उच्चारण कर अन्त में ग्लूम कहे और विधिवत् पूजनकरे ।।२७।। आधार शक्तिसे आरम्भ करके यज्ञविधि से देवाह्वानकर पंचावरण विधि से पूजन करे ।।२८।।

निवेद्य पायसान्नज तांबूलादि यथा तुरा ।
नामाष्टकार्चनान्त च कृत्वा तमभिमन्त्रयेद् ।।२९
प्रणवाष्ठोत्तरशतं ब्रह्माभिः पंचभिः क्रमात् ।
सद्यदीशान्तमप्यस्त्रं रक्षितं वर्मणा पुनः ।।३०
अवगुण्ठय प्रदर्श्यथि धूपदीपौ च भक्तितः ।
धेनुयोन्याख्यमुद्रे च सम्यक्तत्र प्रदर्शयेत् ।।३१
ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तके ।
मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत् ।।३२
तदुपर्य्यासनं रम्यं कल्पयित्वा विधानतः ।
तत्र संस्थापयेच्छिष्यं त शिशुं सानुकूलतः ।।३३
ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
शभिषिचेद् गुरुः शिष्य प्रादक्षिण्येन मस्तके ।।३४
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः ।
पंचभिश्चाभिषेकांते शंखोदेनाभिवेष्टयेत् ।।३५

पूर्वोक्त प्रकार से खीर,ताम्बूलआदि भेट कर आठ नामों सेपूजनकरने तक उसको अभिमंत्रितकरे । २९। एक सौआठ ओंकार औरईशानादि पंच-

व्रह्मसद्योजातादि से ईशानतक मन्त्रोंसे कलशका पूजनकरे ।३०।अस्त्रऔर कवचके मन्त्रोंसे ढककर वस्त्र और धूप-दीप दिखावे तथा धेनुऔर योनि मुद्रादिखावे ।३१। मस्तकको कुशोंसे ढककर उसके शिरोभाग ईशान की ओर चौकोण मण्डल बनावे ।३२।उसपर मनोहर आसन बिछा कर उसपर योग्य शिष्य को बटावे ।३३। स्वस्तिवाचन कर कुम्भ को उठा कर ।क्षिण हाथ से शिष्य के मस्तक पर अभिषेक करे ।३४। प्रथम प्रणव का उच्चारणकर शंखके जलसे पंचव्रह्म और सप्तव्रह्मसे सम्पन्नकरे ।३५।

चारुदीप प्रदर्श्याथ वापसां परिमृज्य च ।
नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत् ॥३६
क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुः शिशुम् ।
सस्ताभ्यामवलब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः ॥३७
तदंगेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः ।
आसने संप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम् ।३८।
पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्वज्ञानाभिलाषिणम् ।
स्वासनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम् ॥३९
गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ।
समाधिमाचरेत्सम्यङ्मूहूर्तं गूढमानसः ॥४०
पश्चादुन्मील्य नयने सानुकलेन चेतसा ।
सांजलिं संस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः ॥४१
स्वसस्तं भासितालिप्तं विन्यस्यशिशुमस्तके ।
दक्षश्रुतावुपदिशेद्धंसः सोऽहमिति स्फुटम् ॥४२
तत्राद्याहंपदस्यार्थः शक्त्यात्मा स शिवः स्वयम् ।
स एवाहं शिवोस्मीति स्वात्मानं सम्विभावय ॥४३
य इत्यणोरर्थं तत्वमुपदिश्य ततोदेत् ।
अवांतराणाँ वाक्यानामर्थतात्पर्यमादरात् ॥४४
वाक्यानि वच्मि ते व्रह्मन्सावधानमतिः श्रृणु ।
तानि धारय चित्ते हि स वूयादिति संस्फुटम् ॥४५

दीपक दिखाकर नवीन डोरे, वस्त्र और कोपीनधारणकरावे ॥३६

चरण धोकर दोबार आचमन करे और भस्म लगाकर गुरु अपने हाथ से शिष्य का हाथ पकड़कर मण्डप के बीच में ॥३७॥ आसन पर बैठावे वह आसन शिष्य के लिए ही बनाया जाता है, उस पर सुख पूर्वक उसे बैठाना चाहिए, फिर उसके शरीर में भस्म लगाकर।३८। पूर्वाभिमुख किये तत्व ज्ञान के आकांक्षी अपने बन्धु के समान शिष्यसे, अपने आसन पर स्थित हुआ गुरु कहे कितू निर्मल आत्मा हो।३९।फिर मैं परिपूर्णशिवहूँ इस भाव से गुरु दो घड़ी पर्यन्त अचल भाव से समाधिस्थ हो।४०। फिर नेत्र खोल कर सावधान चित्त से हाथ जोड़कर बैठे हुए शिष्यकी ओर प्रेमपूर्वक देखे।४१।और शिष्य के मस्तक पर अपने भस्म लगे हुए हाथ को रखकर उसके दक्षिण श्रोत्रमें हंस:सोहं मन्त्रका उपदेश करे ।४२।उसमें आदि हसके अर्थ शक्ति आत्मा स्वयं शिवही है, मैं वही शिव हूँ अपने को ऐसा माने ।४३। तत्वका उपदेश करे, ब्रह्मके परोक्षज्ञान के प्रदर्शक महावाक्यों के तात्पर्य को आदर सहित बतावे ।४४।हे ब्रह्मान् ! अब उन महावाक्यों को कहता हूँ, ऐसा कहे कि तू चित्त में धारण कर ।४५।

॥ महावाक्यों का अर्थ और योगपद वर्णन ॥

अथ महावाक्यानि (१) प्रज्ञानं ब्रह्म (२) अह ब्रह्मास्मि (३) तत्वमसि (४) अयमात्मा ब्रह्म (५) ईशावस्यमिद सर्वम् (६) प्राणोऽस्मि (७) प्रज्ञानात्मा (८) यवेह तदमुत्र यद्मुत्र तदन्विह (९) अन्यदेव तद्विदितादयो अविदितादपि (१०) एष त आत्मान्तर्माम्यमृतः (११) स यश्चायं पुरुषो यश्चामावादित्ये स एकः (१२) अहमस्मि परं ब्रह्म परंपरपरात्परम् १३ वेदशास्त्रगुरुत्वातु स्वपमानन्दलक्षणम् (१४) सर्वभूतस्थित ब्रह्मतदेदाहं न सशाय। (१५) तत्वस्य प्राणोऽहमस्मि (६) अपां च प्राणोऽहमस्मि (१७) वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि (१८) त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि (१९) सर्वोऽह सर्वात्मकोऽह संसारो यद्भूत यच्च भव्यँ यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वाद्द्वितीयोऽहम् (२०) सर्वं खल्विद ब्रह्म (२१) सर्वोऽह विमुक्तोऽहम् (२२) योऽसौ सोऽहँ हन्सः सोऽहमस्मि। इत्येव सर्वत्र सदा ध्यायेदिति॥

स्कन्धजी ने कहा— अब महावाक्य कहता हूँ- (प्रज्ञान ही ब्रह्म है, (२) में ब्रह्म हूँ, वह तू है, (यह आत्मा ब्रह्म है, (५) यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से अधिष्ठित है, (६) मैंही प्राणहूं (७) आत्मा ज्ञान है,(८) जो वहाँ है सो यहाँ है, जो यहाँ है सो बहाँ है, (९) वह विदित अविदित से परे हैं, (१०) वह तुम्हारा आत्मा ही अन्तर्यामी एवं अमृत है, (११)इस पुरुष में और आदित्यमेजोहै, यह एक है, (१२) मैंहीपरब्रह्महूँ, (१३ वेदशास्त्र का ज्ञाता गुरु,परेसे परे एवं आनन्दस्वरूपमैं ही हूँ (१४) सर्वभूतोंमें स्थित ब्रह्म मैंहीहूँ,इसमें शक नहीं है।(१५)मैंहीतत्वकाप्राण तथा पृथ्वी का प्राण हूँ (१६ मैंहीजलोंका प्राणहूँऔरमैंहीतेज काप्राणहूँ,(१७)मैंही वायु का प्राण तथा आकाश का प्राण हूं, (१८) तीनों गुणों का प्राण मैं ही हूं, (१९) मैंहीसर्वात्मक हूँ, भूत, भविष्यत्, वर्तमान सर्वात्मक होने से मैं एक अद्वितीय हूँ, (२०) यह सभी ब्रह्म रूप है, (२१) मैं सर्व रूप एवं मुक्त स्वरूप हूँ, (२२) जो यह है सो मैं हूँ, मैं हंस हूँ।

प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रवोधितः।
अहंपदस्यार्थभूतः शक्तयात्मा परमेश्वरः ॥१

अकारः सर्ववर्णाग्रयः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्तयात्मा संप्रकीत्तितः ॥२

शिवशक्तयोस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः।
ब्रह्मेति शिवशक्तियोस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम् ।३

पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोऽदमस्मीत भावयेत्।
तत्वमित्यत्र तदिति तच्छब्दार्थः प्रवोधितः ॥४

अन्यथा सो हमित्यत्र विपरीतार्थभावना।
अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम्।

एवमन्योन्यवैरुध्यादन्वयो न भवेत्तयोः ॥५
स्त्री पुंरूपस्य जगतः कारण चान्यथा भवेत्।

स तत्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना ॥६
अयमात्मेति वाक्ये च पूरूपं पदयुग्मकम् ।
ईशेन रक्षणीयत्वादीशावास्यामिद जगत् ॥७

इस प्रकार सर्वत्र सदैव ध्यान करना चाहिए । इसका अर्थप्रज्ञान ब्रह्म है । ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार प्रज्ञान शब्द चैतन्यकावाची है।यह प्रज्ञानरूपआत्मा ब्रह्मही यही इन्द्रहै, प्रज्ञानरूप ब्रह्ममेंसृष्टि, स्थितिऔरलय भी स्थितहै, प्रज्ञारूप नेत्रवाला लोकहोने से प्रज्ञा (ब्रह्म) सम्पूर्ण विश्व का आश्रयहै । अब अहंब्रह्मास्मिका अर्थ कहताहूँ—अहं पदकाअर्थहैशक्त्यात्मा ईश्वर ।१। अकारसब वर्णोंमैंअग्र प्रकाशित परम शिव स्वरूप है, हकार व्योमरूप शक्तत्यात्मक कहाहै ।२। शिवशक्ति के संयोग से आनन्द स्थित रहताहै, ब्रह्मेतिसे शिव और शक्ति की सर्वात्मकता स्पष्ट होती है । ३ । फिर पूर्व उपदिष्ट 'सोहमस्मि' अर्थात् वहमैंहूँकी भावना करे, 'तत्वमसि' में तत्पद का अर्थ शक्तत्यात्मक समझो इसी प्रकार ब्रह्मास्मिकाअर्थ भीब्रह्म शब्दसे ग्रहणकरे ।४। अन्यथा अह ब्रह्मास्मितिमें शुद्धब्रह्मका अभेद प्रतीत होता है उसके विवरण वाक्यमे शक्त्यात्मक अभेदकी भावनाका उपदेश है । यदि कहेंकि शुद्धब्रह्मकी अभेदभावनाके निमित्त अहमस्मिका तात्पर्य हो परन्तुशक्त्यात्मक अभेदनहींहै, उसका समाधानहैंकि अहंपदका अर्थ-भूत शक्त्यात्मक ईश्वरहै, ऐसा पहले कहा होनेसे अलिंग भेदके विरोधीमत होनेसे अहं पदार्थका अभेदान्वयनहींहो सकता: क्योंकि 'अह' पुल्लिगऔर 'तत्'नपुन्सकहै इसप्रकारपरस्पर विरोधी होनेसे दोनोंका अन्वय नहीं हो सकता ।५। नहीं तो स्त्री पुरुषरूप विश्वका कारण भी अन्यथा होजायगा । इसलिए यहां तत्पद से शक्त्यात्मक का ही ग्रहण होगा । 'तत्वमसि' से और स आत्मा' से 'स' की अनुवृत्तिकर सशक्त्यात्मा यह ब्रह्मही है, इस प्रकार 'त ब्रह्मरूप त्वमसि श्वेतकेतो' श्रुतिका अर्थ है । उद्दालकऋषि ने छन्दोग्यके छठे अध्यायमैं श्वेतकेतुके प्रति यह कहा है।६। 'अयमात्मा ब्रह्म' में दोनों पद पुल्लिग हैं । आत्मा ओंकारही है, शिवजीसे रक्षित होने के कारण सम्पूर्ण विश्व 'ईशावास्यम्' कहा गया है ।७।

प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत् ।
यः स एवेति विद्वद्भिः सिद्धान्तिभिरिहोच्यते ॥८
उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ।
इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ॥९
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि ।
अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ॥१०
यथा स्यात्तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां मुने ।
अयथाविदिताच्छब्दो पूर्वगद्विदितादिति ॥११
प्रवृत्तः स्यात्तद्विदितात्तथैवाविदितात्परम् ।
अन्यदेव हि ससिद्धयै न भवेदिति निश्चितम् ॥१२
एष त आत्मांतर्यामी योऽमृतश्च शिवः स्वयम् ।
यश्चायं पुरुषे शभुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ॥१३
स चासो सेति पार्थक्यं नैकं सर्वं स ईरितः ।
सोपाधिद्वयमस्यार्थं उसचारात्तथोच्यते ॥१४

'प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा' का तात्पर्य प्रज्ञानात्मकस्वरूप और प्राणपदार्थ हैंहोहूं। कौषीतकी ब्राह्मणके उपनिषदका वाक्यहै जो प्रतर्दनने दिवोदास के पुत्र से कहाथा। यहाँ 'प्राण' शब्दपरब्रह्मका वाचकही है, कार्य कारण उपाधिसे मुक्त चैतन्य जगत्धर्मकेसमान भासमान है, अज्ञानियों को वही अपने आत्मा मैं स्थित तथा अन्यलोकमें जगत् के कारणतत्वमात्र से प्राप्त है।८। कारणोपाधि ईश्वर है वही कार्योपाधि जीवहै सिद्धान्तवेत्ताओं का यही मतहै। 'यदमुत्र तदन्विह' में कारणोपाधि युक्तहै वही कार्योपाधि में जीवरूप से स्थितहै, विद्वानों का यहीमतहै।जोकार्यकारणरूप उपाधिमें युक्त ससारधर्म के समान दिखाईदेता है, ज्ञानीजनोंको अपनीआत्मा में वही इष्ट है तथा जो परलोक में है वह नित्य, विज्ञानघनस्वभाव तथा विश्वधर्म से रहित ब्रह्महै। जोवहाँ इसआत्मामेंहै, वहीनामरूप, कार्य कारण युक्तसमझो।९। 'अन्यदेवेति' इस वाक्य में मोक्षफलकी जैसे विपरीत भावना होती है, उसे कहताहूं सुनो।१०। ,अन्यदेवेति इसवाक्य इतिशब्दअर्थ में अयथा-

र्थता से कारण ।११। ज्ञातादित' अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार वाक्यान्तर में अविदितादिति शब्द:अपूर्व विदितादिति अर्थमें पूर्वमविज्ञातादिति अर्थ में प्रवृत्त होती है। इसी प्रकार भेद बुद्धिकी निवृत्ति से विपरीत फलकी भावना हो सकती है तथा जो विदित और अविदित से परे कोई अन्य सिद्धि हो तो उसकी सिद्धि में सम्यक् फलकी प्राप्ति सम्भव नहीं हैं। इस कारण वस्तु में कार्य-कारणात्मक ब्रह्म ही है। उपाधिसे भेद व्यवहृत होता है,परन्तु बुद्धि के न होने से फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।१२। एष ते आत्मेति' यह वृहदारण्यक का वाक्य है इसका अर्थहै—यह तेरा अन्तर्यामी आत्मा नित्य एवस्वय शिवस्वरूप है, जो पृथिवी में स्थित एवं पृथिवी के अन्तर में हैं,परन्तु पृथिवी उसे नहीं जानती, वही तेरा अन्तरात्मा अमृत रूप है अमृत और अन्तर्यामीसे परमात्मा ही है। तैतरीय ब्रह्म वल्ली के अनुसार जो आनन्दमय शिवअदित्य के देह में स्थित हैं।१३। जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष है वह एक ही है, उसमें अनेकत्व या पृथक्तव नहीं। यदि कहें कि सबके अधिष्ठान शिव पुरुषादिका अधिष्ठान नहीं हो सकती तो पुरुष से अधिष्ठित और आदित्त से अधिष्ठितरूप दो उपाधि वाला होने से इस वाक्य का अर्थ आरोप से कहा है ।।१४।।

त शम्भुनाथ श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्ययम् ।
हिरण्यबाहव इति सर्वाङ्गस्योपलक्षणम् ।१५।
अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः ।
य एषोन्तरिति शंभुश्छन्दोग्ये श्रूयते शिवः ।१६।
हिरण्यश्मश्रुवांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ।
नखमारभ्य केशान्तं सर्वत्रापि हिरण्मयः ।१७।
अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम् ।
इति वाक्यस्य तात्पर्यं वदामि श्रूयतामिदम् ।१८।
अहपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिव ईरितः ।
स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवतिध्रुवम् ।१९।
सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः ।
परश्चाथापरश्चेति परात्परमिति त्रिधा ।२०।

रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ताः श्रुत्यैव नान्यथा ।
तेभ्यश्च परमो देवः परशब्देन वोधितः ।२१।

श्रुति उन शिवको हिरण्यमय कहती हैं,यथार्थ में निर्गुण शिव हरिण्यमय नहीं हो सकता । यदि कहें कि 'हिरण्यबाहवे' से वाहमात्र के लिए हिरण्य कहा है यह सर्वाङ्ग का उपलक्षण है ।१५। फिर हिरण्यपति किस प्रकार होगया ?तो सुनो,यदि सर्वांगका लक्षण न होता तो पतित्व उपचारादि से भी न गनता,इससे हिरण्यवर्णय ही ठीक है, छान्दोग्य सम्मत यही है ।१६।ईश्वर में सुवर्णरूप विकार नहीं हो सकता, सुवर्ण प्रचेतन है,अचेतन पाप रहित होता है,फिर निषेध कैसा ? चक्षु के ग्रहणन होने से उसका अर्थ ज्तोतिर्मय हो सकताहै । सबके देह में शयन करने अथवा अपने से सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करनेसे उसे सावधान चित वालों को ही दिखाई पड़ने वाला समझे ।१७। नखसे केशके अग्र भ ग तक ज्योति स्वरूप, तुरीय ब्रह्म एवं परात्पर मैं हूं । इसका तात्पर्य कहता हूँ।१८।' अहं पदका अर्थ शक्ति सम्पन्न शिव है,वही मैं हूँ,इससे वाक्यार्थ होगया ।१९।पर ब्रह्म सवसे श्रेष्ठ तथा सबकी आत्मा होने से कहा है,वह पर, अपर और परात्पर इन तीन भेदों वाला है ।२०। श्रुति ने उन्हीं को रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु कहा है, इन रुद्रादि तुरीय पर शब्द के द्वारा पर ब्रह्म जाना है ॥२१॥

वेदशास्त्रगुरूणं च वाक्याभ्यासवशाच्छिशोः ।
पूर्णानन्दमयः शंभुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि ।२२।
सर्वभूतस्थितः शंभुः स एवाहं न संशयः ।
तत्वजातस्य सर्वस्य प्राणोऽस्म्यह महं शिवः ।२३।
इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्वत्रयस्य च ।
प्राणोऽस्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्रहणान्मुने ।२४।
आत्मतत्वानि सर्वाणिग्रहीतानीति भावय ।
पुनश्च सर्वग्रहणं विद्यातत्वे शिवात्मनोः ।२५।
तत्वयोश्चास्म्यह प्राणः सर्वः सर्वात्मको ह्यहम् ।
जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽह तस्य सर्वदा ।२६।

यद्भूतं यच्च भाव्यं यद् भविष्यत्सर्वमेव च।
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ।२७
श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमखोद्गता।
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ।२८

वेद, शास्त्र तथा गुरुवाणी के, अभ्याससे शिष्य के हृदय में पूर्णानन्द वाले शिवजी प्रादुर्भूत होते हैं ।२२। वह सब प्राणियोंमें स्थित शिवमैंही हूँ, सम्पूर्ण तत्वोंका प्राण एक मैं ही शिव हूं ।२३। इसप्रकारकहकर आत्मविद शिवाख्य तीनतत्वोंका वर्णनकरे । 'प्राणोऽस्मि' इस अर्थ के प्रतिपादन करने वाले वाक्यमें ।२४। पृथिवी आदि गुणों के अन्तर्ग्रहणसे पृथिवीका प्राण मैं हूँसे आरम्भकर त्रिगुणका प्राण मैंहूँ, कहने से सभी आत्मतत्त्वों का ग्रहण हो जाता है,ऐसी भावनाकरेफिरआत्मविद्या और शिवतत्वका भली प्रकार ग्रहण करके ।२५। भावना करे कि सब तत्वोंका प्राण मैं ही हूँ, सर्वात्मक होने से मैं ही सबहूँ,अब संसारीका अर्थ कहतेहैं-जीवरूप से अन्तर में घुसा हुआ होने से मैं जीव तथा संरक्षणशीलहूँ ।२६। 'यद्भूत' उस जीव का भूत, वर्तमान, भविष्य मैं हीहूँ ।२७। स्वयंशिवके मुखसे उद्भूत श्रुतिकहती है कि यह सम्पूर्ण जगत् आदिरुद्रही है, इस प्रकारमन्मय होनेके कारण सब कुछ मेराही स्वरूप है । सर्वात्म होने के कारण मैं अद्वितीय हूँ ।२८।

स्वस्मात्परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेव हि ।
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः।२९
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोहमेव हि ।
पशवोमत्प्रसादेन मुक्ताः मदभावमाश्रिताः ।३०
योऽसौ सर्वात्मकः शम्भुःसोऽह सन्स शिवोऽस्म्यहम् ।
इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ।३१
इतीशश्रुतिवाक्यामुपदिष्टाथमादरात् ।
साक्षाच्छिवैक्यदं पुन्सां शिशोर्गुरुपादिशेत् ।३२
आदाय शख साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना ।
शोध्य तत्पुरतः स्थाप्य चतुरस्रे समर्चिते ।३३

ओमित्यभ्यर्च्य गन्धाद्यैरस्त्रं वस्त्रोपशोभितम् ।
वासितं जलमापूर्य सम्पूज्योमिति मंत्रतः ।३४
सप्तधवाभिमन्त्र्यार्थं प्रणवेन पुनश्च तम् ।
यस्त्वन्तरं किंचिदपि कुरुते सोऽतिभीतिभाक् ।३५

सर्वोत्कृष्ट तथा अन्तर्यामी आदि गुणों वाला होने से मैं अद्वितीय हूँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का अर्थ पहिलेही कहाजाचुका है। उसब्रह्मसेतेज, जल आदिकी उत्पत्ति हुईहै, इसीलिये यहतज्जकहे गयेहैं तथा प्रतिलोम से लीन होजाते हैं।२९। इस प्रकार इस विश्वका ब्रह्मरूप प्रतिपादन किया है तथा सब पदार्थरूप होने से पूर्ण हैं, मेरी कृपा से पशु भी मोक्ष को प्राप्त होकर मेरे पदको पागये।३०। यह जो कुछ है, सो मैं हूँ, इसका अर्थ सुनो। जो शक्त्यात्मा शिवहैं वहमैं हूँ, हंस शिव मैं हूँ, यह ईशावास्यकीश्रुतिहै।३१। इसप्रकारआदर पूर्वकगुरु श्रुतिकेअर्थोंका शिवपरत्वउपदेश अपने शिष्य के प्रतिकरे।३२। तथा आधार सहित शंखको ग्रहण कर अस्त्रमंत्रात्मक भस्म से शोधकर उसके समक्ष चौकोर मण्डल में स्थापित करे।३३। प्रणव के उच्चारणपूर्वक गन्धादिसे पूजनकरे तथा अस्त्रमंत्र और वस्त्रसे मार्जन कर सुगन्धितजल भरकर ॐका उच्चारण करे।३४। फिर प्रणव से ही सात वारअभिमन्त्रितकरे,इसमें अन्तरकरने वाले कोभय उपस्थित होता है।३५।

इत्याह श्रुतिसत्तत्वं दृढ़ात्मा गतभीर्भव ।
इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्यायन्समर्चयेत् ।३६
शिष्यासनं सम्पूज्य षडुत्थापनमार्गतः ।
शिवासने च संकल्प्य शिवमूर्तिं प्रकल्पयेत् ।३७
पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरःपादावसानकम् ।
मुण्डवक्त्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि ।३८
शष्ट्त्रिंशन्मंत्ररूपाः शिष्यदेहेऽथ मस्तके ।
समावाह्य शिवं मुद्राः स्थापनीयाः प्रदर्शयेत् ।३९
ततश्चाङ्गानि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ।
कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकान् ।४०

पायसान्नञ्च नैवेद्यं समर्प्योमग्निजायया ।
गंडूषाचमनार्घ्यादि धूपदीपादिक क्रमात् ।४१
नाभाष्टकेन सम्पूज्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वं वारुणिस्ततः ।४२

श्रुत के इस आशय के विपरीत न करे, हे शिष्य ! इसलिए तू दृढ़ात्मा और भयविहीन हो इस प्रकार शिष्यसे कहकर शिवजी का ध्यान करता हुआ शिष्यका देवरूप से पूजन करे ।३६। षडध्व विधिसे शिष्य के आसन को पूजकर शिवके आसन और स्वरूपकी कल्पनाकरो ।३७। शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद पर्यन्त पञ्चब्रह्म को स्थिति करे और मुड तथा मुख विषयक प्रणव की ।३८। अड़तालीस ब्रहम रूप कलाशिष्य के शरीर में स्थितकरे, उसकेमस्तकमेंशिवजीकाआहवानकरउनकलाओंकोस्थापितकरे औरमुद्रादिखाकर ।३९। षडङ्गन्यास पूर्वकषोडशउपचारको कल्पना करे । ।। ४० ।। खीर अर्पण कर, कुल्ला, आचमन, धूप, दीप आदि क्रम पूर्वक दे ।। ४१ ।। आठ नामों से पूजन करे, वेदपाठी ब्राहमणों के सहित जप करे ।४२।

यो देवानामपक्रम्य यः परः स महेश्वरः ।
इत्येतै तस्य पुरतः कह्लारादिविनिर्मितान् ।४३
आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्ष निर्मिते ।
शास्त्रे पञ्चाशिकेरूपेसिद्धिस्कन्धं जपेच्छनैः ।४४
ख्यातिः पूर्णोऽहमित्येत सानुकुलेन चेतसा ।
देशिकस्तस्य शिष्यस्य कंठदेशे समर्पयेत् ।४५
तिलक चन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः ।
स्वसम्प्रदायानुर्गुण कारयेच्च यथाविधि ।४६
ततश्च देशिकः प्रीत्या नामश्रीपादसञ्ज्ञितम् ।
छत्रञ्च पादुकां दद्याद् दूर्वाकल्पविकल्पनम् ।
व्याख्यातृत्वञ्च कर्मादि गुर्वासनपरिग्रहम ।
अनुगृह्य गुरुस्तस्यै शिष्याय शिवरूपिणे ।४८
शिवोऽहमस्मीति सदासमाधिस्थो भवेति तम्।
संप्रोचथ स्वय तस्मै नमस्कार समाचरेत् ।४९

'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' से आरम्भ कर 'प्रकृतिलीनो यः परः स महेश्वरः' तकजपे और श्वेत कमल आदि से निर्मित ।४३। माला लेकर शिवोक्त पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्र से स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ।४४। ख्याति पूर्णाहुतिके अन्ततक धीरे-धीरे जपे और मनोहर गंधादि से सम्पन्न जाँघ तक लम्बी उस मालाको कण्ठ में धारण करावे ।४५। शिष्य तिलक और सर्वांग में चन्दन लगावे, सम्प्रदाय की विधि के अनुसार ।४६। गुरु श्रीपादादि नाम करण शिष्य का करे छत्र और पादुका देकर नूर्वाचन का प्रकार ।४७। अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन कर्मारम्भ में गुरु आसन का परिग्रह है, गुरु उसांशवरूपशिष्य से अनुग्रह पूर्वक कहे ४८। मैं सदा शिव हूँ, इस प्रकार कहकर स्वयं उसे नमस्कार करे ।४९।

शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद् गुरुं तथा ।
गुरोरपि गुरुं तस्य शिष्यांश्च स्वगुरोरपि ।५०
एवं कृतनमस्कारं शिष्यं दद्याद् गुरुः स्वयम् ।
सुशीलं यतवाचं त विनयावनतं स्थितम् ।५१
अद्यप्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव ।
परीक्ष्यवत्सरं शिष्यमंगीकुरु विधानतः ।५२
रागादिदोषान्सन्त्यज्य शिवध्यानपरो भव ।
सत्सम्प्रदायससिद्धैः संगं कुरु न चेतरैः ।५३

नमस्कार अपने सम्प्रदाय के अनुरूपकरे और शिष्यभी उठकर गुरु को नमस्कार करे ।५०। इस प्रकार नमस्कार करने पर, वाणी को रोक कर विनम्र हुए सुशील शिष्यको ।५१। गुरु स्वयं जप करावे और कहे कि तुम आजसे प्राणियों पर अनुग्रह करते रहना, इस प्रकार उसकी एक वर्ष तक परीक्षा करे, फिर कहे कि मेरे वाक्योंको स्वीकर करते रहना ।।५२।। रागादि दोषों का त्याग कर शिव के ध्यानमें तत्पर रहना तथा सत्सम्प्रदाय के मनुष्यों की सङ्गति करना ही सर्वोत्तम है ।५३।

—o—

श्रीशिवमहापुराणम्
अथ श्रीशिवमहापुराणे सप्तमी वायवीयसंहिता प्रारभ्यते
श्रीगणेशाय नमः
श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः
अथ सप्तमी वायवीयसंहिता प्रारभ्यते

अध्याय १

व्यास उवाच
नमश्शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतहेतवे १
शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्य्यं चापि सर्वगम्
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं संप्रचक्षते २
तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम् ३
धर्मक्षेत्रे महातीर्थे गंगाकालिंदिसंगमे
प्रयागे नैमिषारण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ४
मुनयश्शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः
महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे ५
तत्र सत्रं समाकर्ण्य तेषामक्लिष्टकर्मणाम्
साक्षात्सत्यवतीसूनोर्वेदव्यासस्य धीमतः ६
शिष्यो महात्मा मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः
पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् ७
उत्तरोत्तरवक्ता च ब्रुवतोऽपि बृहस्पतेः
मधुरः श्रवणानां च मनोज्ञपदपर्वणाम् ८
कथानां निपुणो वक्ता कालविन्नयवित्कविः

आजगाम स तं देशं सूतः पौराणिकोत्तमः ९
तं दृष्ट्वा सूतमायांतं मुनयो हृष्टमानसाः
तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रत्यपादयन् १०
प्रतिगृह्य सतां पूजां मुनिभिः प्रतिपादिताम्
उद्दिष्टमानसं भेजे नियुक्तो युक्तमात्मनः ११
ततस्तत्संगमादेव मुनीनां भावितात्मनाम्
सोत्कंठमभवच्चितं श्रोतुं पौराणिकीं कथाम् १२
तदा तमनुकूलाभिर्वाग्भिः पूज्य १ महर्षयः
अतीवाभिमुखं कृत्वा वचनं चेदमब्रुवन् १३
ऋषय ऊचुः
रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्नो भाग्यगौरवात्
संप्राप्तोद्य महाभाग शैवराज महामते १४
पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यक्षमीयिवान्
तस्मादाश्चर्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम् १५
रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः
यच्च भूतं यच्च भव्यं यच्चान्यद्वस्तु वर्तते १६
न तवाविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते
त्वमदृष्टवशादस्मद्दर्शनार्थमिहागतः
अकुर्वन्किमपि श्रेयो न वृथा गन्तुमर्हसि १७
तस्माच्छ्राव्यतरं पुण्यं सत्कथाज्ञानसंहितम्
वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाशु नः १८
एवमभ्यर्थितस्सूतो मुनिभिर्वेदवादिभिः
श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां प्रत्युवाच शुभां गिरम् १९
सूत उवाच
पूजितोऽनुगृहीतश्च भवद्भिरिति चोदितः

कस्मात्सम्यग्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् २०
अभिवंद्य महादेवं देवीं स्कंदं विनायकम्
नंदिनं च तथा व्यासं साक्षात्सत्यवतीसुतम् २१
वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं वेदसंमितम्
शिवज्ञानार्णवं साक्षाद्भक्तिमुक्तिफलप्रदम् २२
शब्दार्थन्यायसंयुक्तै रागमार्थैर्विभूषितम्
श्वेतकल्पप्रसंगेन वायुना कथितं पुरा २३
विद्यास्थानानि सर्वाणि पुराणानुक्रमं तथा
तत्पुराणस्य चोत्पत्तिं ब्रुवतो मे निबोधत २४
अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चेताश्चतुर्दश २५
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेत्यनुक्रमात्
अर्थशास्त्रं परं तस्माद्विद्या ह्यष्टादश स्मृताः २६
अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम्
आदिकर्त्ता कविस्साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः २७
स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्
ब्रह्माणं विदधे साक्षात्पुत्रमग्रे सनातनम् २८
तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः २९
पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः
मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि ३०
लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ३१
अनंतरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः
प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत्ततः ३२

यदास्य विस्तरं शक्ता नाधिगंतुं प्रजा भुवि
तदा विद्यासमासार्थं विश्वेश्वरनियोगतः ३३
द्वापरांतेषु विश्वात्मा विष्णुर्विश्वंभरः प्रभुः
व्यासनाम्ना चरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले ३४
एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरेद्वापरे द्विजाः
निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम् ३५
स पुनर्द्वापरे चास्मिन्कृष्णद्वैपायनाख्यया
अरण्यामिव हव्याशी सत्यवत्यामजायत ३६
संक्षिप्य स पुनर्वेदांश्चतुर्द्धा कृतवान्मुनिः
व्यस्तवेदतया लोके वेदव्यास इति श्रुतः ३७
पुराणानाञ्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम् ३८
यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपणिषदान्द्विजः
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ३९
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ४०
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ४१
दशधा चाष्टधा चैतत्पुराणमुपदिश्यते
बृहत्सूक्ष्मप्रभेदेन मुनिभिस्तत्त्ववित्तमैः ४२
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा
भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ४३
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैंगं वाराहमेव च
स्कान्दं च वामनं चैव कौर्म्यं मात्स्यं च गारुडम् ४४
ब्रह्मांडं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः

तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम् ४५
ग्रंथो लक्षप्रमाणं तद्व्यस्तं द्वादशसंहितम्
निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः ४६
तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः
तस्माद्विमुकुतिमन्विच्छञ्छिवमेव समाश्रयेत् ४७
तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा ४८
यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंमितम्
तस्य भेदान्समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ४९
विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम्
औमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा ५०
कैलासं शतरुद्रं च शतरुद्राख्यमेव च
सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततःपरम् ५१
धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादश संहिताः
विद्येशं दशसाहस्रमुदितं ग्रंथसंख्यया ५२
रौद्रं वैनायकं चौमं मातृकाख्यं ततः परम्
प्रत्येकमष्टसाहस्रं त्रयोदशसहस्रकम् ५३
रौद्रकादशकाख्यं यत्कैलासं षट्सहस्रकम्
शतरुद्रं त्रिसाहस्रं कोटिरुद्रं ततः परम् ५४
सहस्रैर्नवभिर्युक्तं सर्वार्थज्ञानसंयुतम्
सहस्रकोटिरुद्राख्यमेकादशसहस्रकम् ५५
चतुस्सहस्रसंख्येयं वायवीयमनुत्तमम्
धर्मसंज्ञं पुराणं यत्तद्द्वादशसहस्रकम् ५६
तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः
पुराणं वेदसारं तद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ५७
व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्

शैवन्तत्र पुराणं वै चतुर्थं सप्तसंहितम् ५८
विद्येश्वराख्या तत्राद्या द्वितीया रुद्रसंहिता
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ५९
पंचमी कथिता चोमा षष्ठी कैलाससंहिता
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह ६०
विद्येश्वरं द्विसाहस्त्रं रौद्रं पंचशतायुतम्
त्रिंशत्तथा द्विसाहस्त्रं सार्द्धैकशतमीरितम् ६१
शतरुद्रन्तथा कोटिरुद्रं व्योमयुगाधिकम्
द्विसाहस्त्रं च द्विशतं तथोमं भूसहस्त्रकम् ६२
चत्वारिंशत्साष्टशतं कैलासं भूसहस्त्रकम्
चत्वारिंशच्च द्विशतं वायवीयमतः परम् ६३
चतुस्साहस्त्रसंख्याकमेवं संख्याविभेदतः
श्रुतम्परमपुण्यन्तु पुराणं शिवसंज्ञकम् ६४
चतुःसाहस्त्रकं यत्तु वायवीयमुदीरितम्
तदिदं वर्त्तयिष्यामि भागद्वयसमन्वितम् ६५
नावेदविदुषे वाच्यमिदं शास्त्रमनुत्तमम्
न चैवाश्रद्दधानाय नापुराणविदे तथा ६६
परीक्षिताय शिष्याय धार्मिकायानसूयवे
प्रदेयं शिवभक्ताय शिवधर्मानुसारिणे ६७
पुराणसंहिता यस्य प्रसादान्मयि वर्त्तते
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ६८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
विद्यावतारकथनं नामप्रथमोऽध्यायः १

अध्याय २

सूत उवाच
पुरा कालेन महता कल्पेतीते पुनःपुनः
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि १
प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च
मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् २
इदं परमिदं नेति विवादस्सुमहानभूत्
परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ३
तेऽभिजग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम्
यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानस्सुरासुरैः ४
मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले
सिद्धचारणसंवादे यक्षगंधर्वसेविते ५
विहंगसंघसंघुष्टे मणिविद्रुमभूषिते
निकुंजकंदरदरीगुहानिर्झरशोभिते ६
तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम्
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ७
सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम्
मत्तभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपम् ८
तरुणादित्यसंकाशं तत्र चारु महत्पुरम्
दुर्द्धर्षबलदृप्तानां दैत्यदानवरक्षसाम् ९
तप्तजांबूनदमयं प्रांशुप्राकारतोरणम्
निर्व्यूहवलभीकूटप्रतोलीशतमंडितम् १०
महार्हमणिचित्राभिर्लेलिहानमिवांबरम्
महाभवनकोटीभिरनेकाभिरलंकृतम् ११
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा सभ्यैः सार्द्धं प्रजापतिः

तत्र गत्वा महात्मानं साक्षाल्लोकपितामहम् १२
ददृशुर्मुनयो देवा देवर्षिगणसेवितम्
शुद्धचामीकरप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् १३
प्रसन्नवदनं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम्
दिव्यकांतिसमायुक्तं दिव्यगंधानुलेपनम् १४
दिव्यशुक्लांबरधरं दिव्यमालाविभूषितम्
सुरासुरेन्द्रयोगींद्रवंद्यमानपदांबुजम् १५
सर्वलक्षणयुक्तांग्या लब्धचामरहस्तया
भ्राजमानं सरस्वत्या प्रभयेव दिवाकरम् १६
तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रसन्नवदनेक्षणाः
शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टुवुस्सुरपुंगवम् १७
मुनय ऊचुः
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे
पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मणे परमात्मने १८
नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे
त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारिणे १९
नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्मांडोदरवर्तिने
तत्र संसिद्धकार्याय संसिद्धकरणाय च २०
नमोस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने
सर्वात्मदेहसंयोग वियोगविधिहेतवे २१
त्वयैव निखिलं सृष्टं संहृतं पालितं जगत्
तथापि मायया नाथ न विद्मस्त्वां पितामह २२
सूत उवाच
एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिरभिष्टुतः
प्राह गंभीरया वाचा मुनीन् प्रह्लादयन्निव २३

ब्रह्मोवाच
ऋषयो हे महाभागा महासत्त्वा महौजसः
किमर्थं सहितास्सर्वे यूयमत्र समागताः २४
तमेवंवादिनं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः
वाग्भिर्विनयगर्भाभिस्सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन् २५
मुनय ऊचुः
भगवन्नंधकारेण महता वयमावृताः
खिन्ना विवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम् २६
त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम्
त्वया ह्यविदितं नाथ नेह किंचन विद्यते २७
कः पुमान् सर्वसत्त्वेभ्यः पुराणः पुरुषः परः
विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः २८
केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत्
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ स्वसंदेहापनुत्तये २९
एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मा विस्मयस्मेरवीक्षणः
देवानां दानवानां च मुनीनामपि सन्निधौ ३०
उत्थाय सुचिरं ध्यात्वा रुद्र इत्युद्धरन् गिरिम्
आनंदक्लिन्नसर्वांगः कृतांजलिरभाषत ३१

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
मुनिप्रस्ताववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः २

अध्याय ३

ब्रहमोवाच
यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह
आनंदं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन १

यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते २
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम्
न संप्रसूयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचन ३
सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्
सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येयश्शंभुराकाशमध्यगः ४
योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे
तत्प्रसादान्मयालब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ५
ईशो वृक्ष इव स्तब्धो य एको दिवि तिष्ठति
येनेदमखिलं पूर्णं पुरुषेण महात्मना ६
एको बहूनां जंतूनां निष्क्रियाणां च सक्रियः
य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ७
जीवैरेभिरिमाँल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते १
य एको भागवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ८
सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः
अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ९
यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्यखिलान्यपि
अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति १०
न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः
स्वभाविकी पराशक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि ११
यदिदं क्षरमव्यक्तं यदप्यमृतमक्षरम्
तावुभावक्षरात्मानावेको देवः स्वयं हरः १२
ईशते तदभिध्यानाद्योजनासत्त्वभावनः
भूयो ह्यस्य पशोरन्ते विश्वमाया निवर्त्तते १३
यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः

यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः १४
एको देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः
न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते १५
अयमादिरनाद्यन्तस्स्वभावादेव निर्मलः
स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः १६
अप्राकृतवपुः श्रीमाँल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः
अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः १७
सर्वोपरिकृतावासस्सर्वावासश्च सर्ववित्
षड्विधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः १८
उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः
अनन्तानन्तसन्दोहमकरंदमधुव्रतः १९
अखंडजगदंडानां पिंडीकरणपंडितः
औदार्यवीर्यगांभीर्य्यमाधुर्य्यमकरालयः २०
नैवास्य सदृशं वस्तु नाधिकं चापि किंचन
अतुलः सर्वभूतानां राजराजश्च तिष्ठति २१
अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत्
अंतकाले पुनश्चेदं तस्मिन्प्रलयमेष्यते २२
अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्वनियोजकः
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित् २३
व्रतानि सर्वदानानि तपांसि नियमास्तथा
कथितानि पुरा सद्भिर्भावार्थं नात्र संशयः २४
हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः
तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः २५
अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः
भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च २६

तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम्
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः २७
ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानंदमव्ययम्
तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तद्व्रतमाश्रितैः २८
बहुनात्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम्
शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते २९
प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः
यथा चांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः ३०
प्रसादपूर्विका एव पशोस्सर्वत्र सिद्धयः
स एव साधनैरन्ते सर्वैरपि च साध्यते ३१
प्रसादसाधनं धर्मस्स च वेदेन दर्शितः
तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयोः पुण्यपापयोः ३२
साम्यात्प्रसादसंपर्को धर्मस्यातिशयस्ततः
धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः ३३
एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात्
सांबे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते ३४
भावानुगुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्यते
प्रसादात्कर्मसंत्यागः फलतो न स्वरूपतः ३५
तस्मात्कर्मफलत्यागाच्छिवधर्मान्वयः शुभः
स च गुर्वनपेक्षश्च तदपेक्ष इति द्विधा ३६
तत्रानपेक्षात्सापेक्षो मुख्यः शतगुणाधिकः
शिवधर्मान्वयस्यास्य शिवज्ञानसमन्वयः ३७
ज्ञनान्वयवशात्पुंसः संसारे दोषदर्शनम्
ततो विषयवैराग्यं वैराग्याद्भावसाधनम् ३८
भावसिद्ध्युपपन्नस्य ध्याने निष्ठा न कर्मणि

ज्ञानध्यानाभियुक्तस्य पुंसो योगः प्रवर्तते ३९
योगेन तु परा भक्तिः प्रसादस्तदनंतरम्
प्रसादान्मुच्यते जंतुर्मुक्तः शिवसमो भवेत् ४०
अनुग्रहप्रकारस्य क्रमोऽयमविवक्षितः
यादृशी योग्यता पुंसस्तस्य तादृगनुग्रहः ४१
गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्ञायमानस्तथापरः
बालो वा तरुणो वाथ वृद्धो वा मुच्यते परः ४२
तिर्यग्योनिगतः कश्चिन्मुच्यते नारकोऽपरः
अपरस्तु पदं प्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षये ४३
कश्चित्क्षीणपदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते
कश्चिदध्वगतस्तस्मिन् स्थित्वास्थित्वा विमुच्यते ४४
तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते
ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः ४५
तस्मादस्य प्रसादार्थं वाग्मनोदोषवर्जिताः
ध्यायंतश्शिवमेवैकं सदारतनयाग्नयः ४६
तन्निष्ठास्तत्परास्सर्वे तद्युक्तास्तदुपाश्रयाः
सर्वक्रियाः प्रकुर्वाणास्तमेव मनसागताः ४७
दीर्घसूत्रसमारब्धं दिव्यवर्षसहस्रकम्
सत्रांते मंत्रयोगेन वायुस्तत्र गमिष्यति ४८
स एव भवतः श्रेयः सोपायं कथयिष्यति
ततो वाराणसी पुण्या पुरी परमशोभना ४९
गंतव्या यत्र विश्वेशो देव्या सह पिनाकधृक्
सदा विहरति श्रीमान् भक्तानुग्रहकारणात् ५०
तत्राश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मत्समीपं गमिष्यथ
ततो वः कथयिष्यामि मोक्षोपाय द्विजोत्तमाः ५१

येनैकजन्मना मुक्तिर्युष्मत्करतले स्थिता
अनेकजन्मसंसारबंधनिर्मोक्षकारिणी ५२
एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते
यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसश्शुभः ५३
इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं दृष्ट्वा मनोमयम्
प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ५४
तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम्
प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ५५
चक्रं तदपि संक्षिप्तं श्लक्ष्णं चारुशिलातले
विमलस्वादुपानीये निजपात वने क्वचित् ५६
तद्वनं तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्
अनेकयक्षगंधर्वविद्याधरसमाकुलम् ५७
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः
विलासवशमुर्वश्या यातो दैवेन चोदितः ५८
अक्रमेण हरन्मोहाद्यज्ञवाटं हिरण्मयम्
मुनिभिर्यत्र संक्रुद्धैः कुशवज्रैर्निपातितः ५९
विश्वं सिसृक्षमाणा वै यत्र विश्वसृजः पुरा
सत्रमारेभिरे दिव्यं ब्रह्मज्ञा गार्हपत्यगाः ६०
ऋषिभिर्यत्र विद्वद्भिः शब्दार्थन्यायकोविदैः
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीदनुष्ठितः ६१
यत्र वेदविदो नित्यं वेदवादबहिष्कृतान्
वादजल्पबलैर्घ्नंति वचोभिरतिवादिनः ६२
स्फटिकमयमहीभृत्पादजाभ्यश्शिलाभ्यः
प्रसरदमृतकल्पस्स्वच्छपानीयरम्यम्
अतिरसफलवृक्षप्रायमव्यालसत्त्वं तपस उचितमासीन्नैमिषं

तन्मुनीनाम् ६३

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे नैमिषोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ३

अध्याय ४

सूत उवाच
तस्मिन्देशे महाभागा मुनयश्शंसितव्रताः
अर्चयंतो महादेवं सत्रमारेभिरे तदा १
तच्च सत्रं प्रववृते सर्वाश्चर्यं महर्षिणाम् १
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव २
अथ काले गते सत्रे समाप्ते भूरिदक्षिणे
पितामहनियोगेन वायुस्तत्रागमत्स्वयम् ३
शिष्यस्स्वयंभुवो देवस्सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी
आज्ञायां मरुतो यस्य संस्थितास्सप्तसप्तकाः ४
प्रेरयञ्छश्वदंगानि प्राणाद्याभिः स्ववृत्तिभिः
सर्वभूतशरीराणां कुरुते यश्च धारणम् ५
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैश्च समन्वितः
तिर्यक्कालादिभिर्मेध्यैर्भुवनानि बिभर्ति यः ६
आकाशयोनिर्द्विगुणः स्पर्शशब्दसमन्वयात्
तेजसां प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ७
तमाश्रमगतं दृष्ट्वा मुनयो दीर्घसत्रिणः
पितामहवचः स्मृत्वा प्रहर्षमतुलं ययुः ८
अभ्युत्थाय ततस्सर्वे प्रणम्यांबरसंभवम्
चामीकरमयं तस्मै विष्टरं समकल्पयन् ९
सोपि तत्र समासीनो मुनिभिस्सम्यगर्चितः

प्रतिनंद्य च तान् सर्वान् पप्रच्छ कुशलं ततः १०
वायुरुवाच
अत्र वः कुशलं विप्राः कच्चिद्वृत्ते महाक्रतौ
कच्चिद्यज्ञहनो दैत्या न बाधेरन्सुरद्विषः ११
प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न कच्चित्समजायत
स्तोत्रशस्त्रगृहैर्देवान् पितृ-न् पित्र्यैश्च कर्मभिः १२
कच्चिदभ्यर्च्य युष्माभिर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः
निवृत्ते च महासत्रे पश्चात्किं वश्चिकीर्षितम् १३
इत्युक्ता मुनयः सर्वे वायुना शिवभाविना
प्रहृष्टमनसः पूताः प्रत्यूचुर्विनयान्विताः १४
मुनय ऊचुः
अद्य नः कुशलं सर्वमद्य साधु भवेत्तपः
अस्मच्छ्रेयोभिवृद्ध्यर्थं भवानत्रागतो यतः १५
शृणु चेदं पुरावृत्तं तमसाक्रांतमानसैः
उपासितः पुरास्माभिर्विज्ञानार्थं प्रजापतिः १६
सोप्यस्माननुगृह्याह शरण्यश्शरणागतान्
सर्वस्मादधिको रुद्रो विप्राः परमकारणम् १७
तमप्रतर्क्यं याथात्म्यं भक्तिमानेव पश्यति
भक्तिश्चास्य प्रसादेन प्रसादादेव निर्वृतिः १८
तस्मादस्य प्रसादार्थं नैमिषे सत्रयोगतः
यजध्वं दीर्घसत्रेण रुद्रं परमकारणम् १९
तत्प्रसादेन सत्रांते वायुस्तत्रागमिष्यति
तन्मुखाज्ज्ञानलाभो वस्तत्र श्रेयो भविष्यति २०
इत्यादिश्य वयं सर्वे प्रेषिता परमेष्ठिना
अस्मिन्देशे महाभाग तवागमनकांक्षिणः २१

दीर्घसत्रं समासीना दिव्यवर्षसहस्रकम्
अतस्तवागमादन्यत्प्राथ्र्यं नो नास्ति किंचन २२
इत्याकरार्य पुरावृत्तमृषीणां दीर्घसत्रिणाम्
वायुः प्रीतमना भूत्वा तत्रासीन्मुनिसंवृतः २३
ततस्तैर्मुनिभिः पृष्टस्तेषां भावविवृद्धये
सर्गादि शार्वमैश्वर्यं समासाद वदद्विभुः २४

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखराडे
वायुसमागमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ४

अध्याय ५

सूत उवाच
तत्र पूर्वं महाभागा नैमिषाररायवासिनः
प्रणिपत्य यथान्यायं पप्रच्छुः पवनं प्रभुम् १
नैमिषीया ऊचुः
भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम्
कथं च शिवभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः २
वायुरुवाच
एकोनविंशतिः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः
तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्त्रस्स्त्रष्टुकामोऽतपत्तपः ३
तपसा तेन तीव्रेण तुष्टस्तस्य पिता स्वयम्
दिव्यं कौमारमास्थाय रूपं रूपवतां वरः ४
श्वेतो नाम मुनिर्भूत्वा दिव्यां वाचमुदीरयन्
दर्शनं प्रददौ तस्मै देवदेवो महेश्वरः ५
तं दृष्ट्वा पितरं ब्रह्मा ब्रह्मणोऽधिपतिं पतिम्
प्रणम्य परमज्ञानं गायत्र्या सह लब्धवान् ६

ततस्स लब्धविज्ञानो विश्वकर्मा चतुर्मुखः
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ७
यतश्श्रुत्वामृतं लब्धं ब्रह्मणा परमेश्वरात्
ततस्तद्वदनादेव मया लब्धं तपोबलात् ८
मुनय ऊचुः
किं तज्ज्ञानं त्वया लब्धं तथ्यात्तथ्यंतरं शुभम्
यत्र कृत्वा परां निष्ठां पुरुषस्सुखमृच्छति ९
वयुरुवाच
पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा
तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना १०
अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते
ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम् ११
अजडं च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि
पशुः पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रमात् १२
अक्षरं च क्षरं चैव क्षराक्षरपरं तथा
तदेतत्त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्त्ववेदिभिः १३
अक्षरं पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः
क्षराक्षरपरं यत्तत्पतिरित्यभिधीयते १४
मुनय ऊचुः
किं तदक्षरमित्युक्तं किं च क्षरमुदाहृतम्
तयोश्च परमं किं वा तदेतद् ब्रूहि मारुत १५
वायुरुवाच
प्रकृतिः क्षरमित्युक्तं पुरुषोऽक्षर उच्यते
ताविमौ प्रेरयत्यन्यस्स परा परमेश्वरः १६
मुनय ऊचुः

कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मतः
अनयोः केन सम्बन्धः कोयं प्रेरक ईश्वरः १७
वायुरुवाच
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो मायया वृतः
संबन्धो मूलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः १८
मुनय ऊचुः
केयं माया समा ख्याता किंरूपो मायया वृतः
मूलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुतश्शिवः १९
वायुरुवाच
माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो मायया वृतः
मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धिश्शिवता स्वतः २०
मुनय ऊचुः
आवृणोति कथं माया व्यापिनं केन हेतुना
किमर्थं चावृतिः पुंसः केन वा विनिवर्तते २१
वायुरुवाच
आवृतिर्व्यपिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि
हेतुः कर्मैव भोगार्थं निवर्तेत मलक्षयात् २२
मुनय ऊचुः
कलादि कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम्
तत्किमादि किमन्तं वा किं फलं वा किमाश्रयम् २३
कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वा तद्भोगसाधनम्
मलक्षयस्य को हेतुः कीदृक् क्षीणमलः पुमान् २४
वायुरुवाच
कला विद्या च रागश्च कालो नियतिरेव च
कलादयस्समाख्याता यो भोक्ता पुरुषो भवेत् २५

पुण्यपापात्मकं कर्म सुखदुःखफलं तु यत्
अनादिमलभोगान्तमज्ञानात्मसमाश्रयम् २६
भोगः कर्मविनाशाय भोगमव्यक्तमुच्यते
बाह्यांतःकरणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् २७
भावातिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः
क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमाञ्छिवसमो भवेत् २८
मुनय ऊचुः
कलादिपंचतत्त्वानां किं कर्म पृथगुच्यते
भोक्तेति पुरुषश्चेति येनात्मा व्यपदिश्यते २९
किमात्मकं तदव्यक्तं केनाकारेण भुज्यते
किं तस्य शरणं भुक्तौ शरीरं च किमुच्यते ३०
वायुरुवाच
दिक्क्रियाव्यंजका विद्या कालो रागः प्रवर्तकः
कालोऽवच्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका ३१
अव्यक्तं कारणं यत्तत्त्रिगुणं प्रभवाप्ययम्
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः ३२
कलातस्तदभिव्यक्तमनभिव्यक्तलक्षणम्
सुखदुःखविमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा ३३
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिताः ३४
सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्त्विकं स्मृतम्
राजसं तद्विपर्यासात्स्तंभमोहौ तु तामसौ ३५
सात्त्विक्यूर्ध्वगतिः प्रोक्ता तामसी स्यादधोगतिः
मध्यमा तु गतिर्या सा राजसी परिपठ्यते ३६
तन्मात्रापञ्चकं चैव भूतपंचकमेव च

ज्ञानेंद्रियाणि पंचैक्यं पंच कर्मेन्द्रियाणि च ३७
प्रधानबुद्ध्यहंकारमनांसि च चतुष्टयम्
समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम् ३८
तत्कारणदशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते
व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत् ३९
यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते
शरीरादि तथा व्यक्तमव्यक्तान्नातिभिद्यते ४०
तस्मादव्यक्तमेवैक्यकारणं करणानि च
शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापि नेतरत् ४१
मुनय ऊचुः
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्य कस्यचित्
आत्मशब्दाभिधेयस्य वस्तुतोऽपि कुतः स्थितिः ४२
वायुरुवाच
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेको विभोर्ध्रुवम्
अस्त्येव कश्चिदात्मेति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ४३
बुद्धीन्द्रियशरीराणां नात्मता सद्भिरिष्यते
स्मृतेरनियतज्ञानादयावद्देहवेदनात् ४४
अतः स्मर्तानुभूतानामशेषज्ञेयगोचरः
अन्तर्य्यामीति वेदेषु वेदांतेषु च गीयते ४५
सर्वं तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते ४६
नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि
मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते १ ४७
न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः
नैवोद्ध्र्वं नापि तिर्यक् नाधस्तान्न कुतश्चन ४८

अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम्
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात् ४९
किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक्
अपृथग्ये तु पश्यंति ह्यसम्यक्तेषु दर्शनम् ५०
यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्
अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ५१
विपदां वीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः
सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा ५२
अद्भिराप्लवितं क्षेत्रं जनयत्यंकुरं यथा
अज्ञानात्प्लावितं कर्म देहं जनयते तथा ५३
अत्यंतमसुखावासास्स्मृताश्चैकांतमृत्यवः
अनागता अतीताश्च तनवोऽस्य सहस्रशः ५४
आगत्यागत्य शीर्णेषु शरीरेषु शरीरिणः
अत्यंतवसतिः क्वापि न केनापि च लभ्यते ५५
छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैरेषु लक्ष्यते
चंद्रबिंबवदाकाशे तरलैरभ्रसंचयैः ५६
अनेकदेहभेदेन भिन्ना वृत्तिरिहात्मनः
अष्टापदपरिक्षेपे ह्यक्षमुद्रेव लक्ष्यते ५७
नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित्
पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बंधुभिः ५८
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ५९
स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः ६०
ब्रह्माद्याः स्थावरांतश्च पशवः परिकीर्तिताः

पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ६१
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ६२
अज्ञो जंतुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ६३
सूत उवाच
इत्याकर्ण्यानिलवचो मुनयः प्रीतमानसाः
प्रोचुः प्रणम्य तं वायुं शैवागमविचक्षणम् ६४
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ५

अध्याय ६

मुनय ऊचुः
योऽयं पशुरिति प्रोक्तो यश्च पाश उदाहृतः
अभ्यां विलक्षणः कश्चित्कोयमस्ति तयोः पतिः १
वायुरुवाच
अस्ति कश्चिदपर्यंतरमणीयगुणाश्रयः
पतिर्विश्वस्य निर्माता पशुपाशविमोचनः २
अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत्
अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपाशयोः ३
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किंचिदचेतनम्
तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ४
जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः
तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः ५
पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणपूर्वकम्

अयथाकरणज्ञानमंधस्य गमनं यथा ६
आत्मानं च पृथग्मत्वा प्रेरितारं ततः पृथक्
असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमृतत्वाय कल्पते ७
पशोः पाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति पदं परम्
ब्रह्मवित्तद्विदित्वैव योनिमुक्तो भविष्यति ८
संयुक्तमेतद्द्वितयं क्षरमक्षरमेव च
व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्वं विश्वविमोचकः ९
भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता मंतव्यं त्रिविधं स्मृतम्
नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यं हि किंचनः १०
तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम्
यथापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः ११
एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मविलक्षणम्
सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति १२
य एको जालवानीश ईशानीभिस्स्वशक्तिभिः
सर्वांल्लोकानिमान् कृत्वा एक एव स ईशते १ १३
एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः १४
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः
तथैव विश्वतोबाहुविश्वतः पादसंयुतः १५
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा १६
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम्
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः १७
वेदाहमेतं पुरुषं महांतममृतं ध्रुवम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् १८

अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत् १९
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतश्शिवः २०
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति २१
सर्वेन्द्रियगुणाभासस्सर्वेन्द्रियविवर्जितः
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् २२
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् २३
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः
गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः २४
तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम्
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति २५
वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम्
निरोधं जन्मनो यस्य वदंति ब्रह्मवादिनः २६
एकोऽपि त्रीनिमाँल्लोकान् बहुधा शक्तियोगतः
विदधाति विचेत्यंते १ विश्वमादौ महेश्वरः २७
विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्रा कृतिः परा
तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां त्वजः प्रजाम् २८
जनित्रीमनुशेतेऽन्योजुषमाणस्स्वरूपिणीम्
तामेवाजामजोऽन्यस्तु भक्तभोगा जहाति च २९
द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ३०
वृक्षेस्मिन् पुरुषो मग्नो गुह्यमानश्च शोचति

जुष्टमन्यं यदा पश्येदीशं परमकारणम् ३१
तदास्य महिमानं च वीतशोकस्सुखी भवेत्
छंदांसि यज्ञाः ऋतवो यद्भूतं भव्यमेव च ३२
मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ३३
तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत्
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः ३४
स्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु
शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शांतिमत्यंतमृच्छति ३५
स एव कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः
तं विश्वाधिपतिं ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ३६
घृतात्परं मंडमिव सूक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम्
सर्वभूतेषु गूढं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ३७
एष एव परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः
हृदये संनिविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते ३८
यदा समस्तं न दिवा न रात्रिर्न सदप्यसत्
केवलश्शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनी ३९
नैनमूर्द्ध्वं न तिर्यक्च न मध्यं पर्यजिग्रहत्
न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः ४०
अजातमिममेवैके बुद्ध्वा जन्मनि भीरवः
रुद्रस्यास्य प्रपद्यंते रक्षार्थं दक्षिणं सुखम् ४१
द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनंते समुदाहृते
विद्याविद्ये समाख्याते निहिते यत्र गूढवत् ४२
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः ४३

एकैकं बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः
सर्वाधिपत्यं कुरुते सृष्ट्वा सर्वान् प्रतापवान् ४४
दिश ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् भासयन् भ्राजते स्वयम्
यो निःस्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति ४५
स्वभाववाचकान् सर्वान् वाच्यांश्च परिणामयन्
गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्ठति ४६
ते वै गुह्योपणिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम्
ब्रह्मयोनिं जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ४७
भावग्राह्यमनीहाख्यं भावाभावकरं शिवम्
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ४८
स्वभावमेके मन्यंते कालमेके विमोहिताः
देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यते जगत् ४९
येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः
तेनेरितमिदं कर्म भूतैः सह विवर्तते ५०
तत्कर्म भूयशः कृत्वा विनिवृत्य च भूयशः
तत्त्वस्य सह तत्त्वेन योगं चापि समेत्य वै ५१
अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैवं द्वाभ्यां चैकेन वा पुनः
कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेव जगत् स्वयम् ५२
गुणैरारभ्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत्
तेषामभावे नाशः स्यात्कृतस्यापि च कर्मणः ५३
कर्मक्षये पुनश्चान्यत्ततो याति स तत्त्वतः
स एवादिस्स्वयं योगनिमित्तं भोक्तृभोगयोः ५४
परस्त्रिकालादकलस्स एव परमेश्वरः
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्मसाक्षात्परात्परः ५५
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्

देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे ५६
कालादिभिः परो यस्मात्प्रपंचः परिवर्तते
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च ५७
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ५८
न तस्य विद्येत कार्यं कारणं च न विद्यते
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ५९
परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता
ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ६०
तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिंगं न चेशिता
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः ६१
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन
न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ६२
स एकस्सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः
सर्वभूतांतरात्मा च धर्माध्यक्षस्स कथ्यते ६३
सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ६४
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति ६५
सांख्ययोगाधिगम्यं यत्कारणं जगतां पतिम्
ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैस्सर्वैरेव विमुच्यते ६६
विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ६७
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वयम्
यो देवस्तमहं बुद्ध्वास्वात्मबुद्धिप्रसादतः ६८

मुमुन्नुरस्मात्संसारात्प्रपद्ये शरणं शिवम्
निष्फलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् ६९
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेंधनमिवानिलम्
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ७०
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ७१
तपःप्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महर्षयः
अत्याश्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ७२
वेदांते परमं गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम्
ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेदं भाग्यगौरवात् ७३
नाप्रशांताय दातव्यमेतज्ज्ञानमनुत्तमम्
न पुत्रायाशुवृत्ताय नाशिष्याय च सर्वथा ७४
यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ७५
अतश्च संन्नेपमिदं शृणुध्वं शिवः परस्तात्प्रकृतेश्च पुंसः
स सर्गकाले च करोति सर्वं संहारकाले पुनराददाति ७६

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शिवतत्त्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ६

अध्याय ७

मुनय ऊचुः
कालादुत्पद्यते सर्वं कालदेव विपद्यते
न कालनिरपेन्नं हि क्वचित्किंचन विद्यते १
यदास्यांतर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम्
सर्गसंहृतिमुद्राभ्यां चक्रवत्परिवर्तते २
ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः

यत्कृतां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिवर्तितुम् ३
भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः
अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयंकरः ४
क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम्
क एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण ५
वायुरुवाच
कालकाष्ठानिमेषादिकलाकलितविग्रहम्
कालात्मेति समाख्यातं तेजो माहेश्वरं परम् ६
यदलंघ्यमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च
नियोगरूपमीशस्य बलं विश्वनियामकम् ७
तस्यांशांशमयी मुक्तिः कालात्मनि महात्मनि
ततो निष्क्रम्य संक्रांता विसृष्टाग्रेरिवायसी ८
तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्ववशे स्थितः
शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः ९
यतोऽप्रतिहतं शार्वं तेजः काले प्रतिष्ठितम्
महती तेन कालस्य मर्यादा हि दुरत्यया १०
कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽतिवर्तितुमर्हति
कालेन तु कृतं कर्म न कश्चिदतिवर्तते ११
एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति
तेऽपि नैवातिवर्तंते कालवेलामिवाब्धयः १२
ये निगृह्येंद्रियग्रामं जयंति सकलं जगत्
न जयंत्यपि ते कालं कालो जयति तानपि १३
आयुर्वेदविदो वैद्यास्त्वनुष्ठितरसायनाः
न मृत्युमतिवर्तंते कालो हि दुरतिक्रमः १४
श्रिया रूपेण शीलेन बलेन च कुलेन च

अन्यच्चिंतयते जंतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात् १५
अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्यचिंतितगमागमैः
संयोजयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः १६
यदैव दुःखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः
दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालास्याहो विचित्रता १७
यो युवा स भवेद्वृद्धो यो बलीयान्स दुर्बलः
यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीकः कालश्चित्रगतिर्द्विजा १८
नाभिजात्यं न वै शीलं न बलं न च नैपुणम्
भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधकः १९
ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यैरुपस्थिताः
ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः २०
फलंत्यकाले न रसायनानि सम्यक्प्रयुक्तान्यपि चौषधानि
तान्येव कालेन समाहृतानि सिद्धिं प्रयांत्याशु सुखं दिशंति २१
नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा नाकालतः पुष्टिमग्र्यामुपैति
नाकालतः सुखितं दुःखितं वा नाकालिकं वस्तु समस्ति किंचित्
२२
कालेन शीतः प्रतिवाति वातःकालेन वृष्टिर्जलदानुपैति
कालेन चोष्मा प्रशमं प्रयाति कालेन सर्वं सफलत्वमेति २३
कालश्च सर्वस्य भवस्य हेतुः कालेन सस्यानि भवंति नित्यम्
कालेन सस्यानि लयं प्रयांति कालेन संजीवति जीवलोकः २४
इत्थं कालात्मनस्तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः
कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति २५
न यस्य कालो न च बंधमुक्ती न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम्
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै नमःपरस्मै परमेश्वराय २६
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

कालमहिमवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ७

अध्याय ८

ऋषय ऊचुः
केन मानेन कालेस्मिन्नायुस्संख्या प्रकल्प्यते
संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोऽवधिः १
वायुरुवाच
आयुषोऽत्र निमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते
संख्यारूपस्य कालस्य शांत्त्वतीतकलावधि २
अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः
तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश च पंच च ३
काष्ठांस्त्रिंशत्कला नाम कलांस्त्रिंशन्मुहूर्तकः
मुहूर्त्तानामपि त्रिंशदहोरात्रं प्रचक्षते ४
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः ५
ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः ६
मासैस्तैरयनं षड्भिर्वर्षं द्वे चायनं मतम्
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ७
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः
दक्षिणं चायनं रात्रिस्तथोदगयनं दिनम् ८
मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः
संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा ९
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षयुतान्यपि
दिव्यस्संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः १०
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ११

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः १२
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्
तस्य तावच्छतीसंध्या संध्यांशश्च तथाविधः १३
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु
एकापायेन वर्तंते सहस्राणि शतानि च १४
एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं च चतुर्युगम्
चतुर्युगसहस्रं यत्संकल्प इति कथ्यते १५
चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरंतरमुच्यते
कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्मनूनां परिवृत्तयः १६
एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वंतराणि च
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः १७
अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषामसंख्येयतया पुनः
शक्यो नैवानुपूर्व्याद्वि तेषां वक्तुं सुविस्तरः १८
कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षमिहोच्यते १९
वर्षाणामष्टसाहस्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम्
सवनं युगसाहस्रं ब्रह्मणः पद्मजन्मनः २०
सवनानां सहस्रं च त्रिगुणं त्रिवृतं तथा
कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः २१
तस्य वै दिवसे यांति चतुर्दश पुरंदराः
शतानि मासे चत्वारि विंशत्या सहितानि च २२
अब्दे पंच सहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च
चत्वारिंशत्सहस्राणि पंच लक्षाणि चायुषि २३
ब्रह्मा विष्णोर्दिने चैको विष्णू रुद्रदिने तथा

ईश्वरस्य दिने रुद्रस्सदाख्यस्य तथेश्वरः २४
साक्षाच्छिवस्य तत्संख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः
चत्वारिंशत्सहस्राणि पंचलक्षाणि चायुषि २५
तस्मिन्साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते
यत्तत्सृष्टेस्समाख्यातं कालान्तरमिह द्विजाः
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् २६
रात्रिश्च तावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः २६ २६घ्
अहस्तस्य तु या सृष्टी रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् २७
एषोपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया
प्रजाः प्रजानां पतयो मूर्त्तयश्च सुरासुराः २८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पंच च
तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्च सह दैवतः २९
अहस्तिष्ठंति सर्वाणि पारमेशस्य धीमतः
अहरंते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ३०
यो विश्वात्मा कर्मकालस्वभावाद्यर्थे शक्तिर्यस्य नोल्लंघनीया
यस्यैवाज्ञाधीनमेतत्समस्तं नमस्तस्मै महते शंकराय ३१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे
कालप्रभावे त्रिदेवायुर्वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ८

अध्याय ९

मुनय ऊचुः
कथं जगदिदं कृत्स्नं विधाय च निधाय च
आज्ञया परमां क्रीडां करोति परमेश्वरः १
किं तत्प्रथमसंभूतं केनेदमखिलं ततम्

केना वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा २
वायुरुवाच
शक्तिः प्रथमसम्भूता शांत्यतीतपदोत्तरा
ततो माया ततोऽव्यक्तं शिवाच्छक्तिमतः प्रभोः ३
शान्त्यतीतपदं शक्तेस्ततः शान्तिपदक्रमात्
ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसंभवः ४
निवृत्तिपदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात्
एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता ५
आनुलोम्यात्तथैतेषां प्रतिलोम्येन संहृतिः
अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परस्स्रष्टा समिष्यते ६
कलाभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदं जगत्
अव्यक्तं कारणं यत्तदात्मना समनुष्ठितम् ७
महदादिविशेषांतं सृजतीत्यपि संमतम्
किं तु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः ८
अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च
प्रधानपरमाणवादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ९
तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना
जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः १०
तस्माच्छक्तस्स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित्
अनादिनिधनश्चायं महदैश्वर्यसंयुतः ११
स एव जगतः कर्ता महादेवो महेश्वराः
पाता हर्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वयः १२
परिणामः प्रधानस्य प्रवृत्तिः पुरुषस्य च
सर्वं सत्यव्रतस्यैव शासनेन प्रवर्तते १३
इतीयं शाश्वती निष्ठा सतां मनसि वर्तते

न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः १४
यावदादिसमारंभो यावद्यः प्रलयो महान्
तावदप्येति सकलं ब्रह्मणः शारदां शतम् १५
परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते १६
परार्द्धद्वयकालांते प्रलये समुपस्थिते
अव्यक्तमात्मनः कार्यमादायात्मनि तिष्ठति १७
आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते
साधर्म्येणाधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ १८
तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ
अनुद्रिक्तावनन्तौ तावोतप्रोतौ परस्परम् १९
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये
शांतवातैकनीरे च न प्राज्ञायत किंचन २०
अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन्नेक एव महेश्वरः
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं ततः २१
प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रधानपुरुषावुभौ
प्रविश्य क्षोभयामास मायायोगान्महेश्वरः २२
ततः पुनरशेषाणां भूतानां प्रभवाप्ययात्
अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः २३
विश्वोत्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य यस्यैकशक्तिशकले सकलस्समाप्तः
आत्मानमध्वपतिमध्वविदो वदंति तस्मै नमः सकल-
लोकविलक्षणाय २४

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे
सृष्टिपालनप्रलयकर्तृत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ९

अध्याय १०

वायुरुवाच
पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया
बुद्ध्यादयो विशेषांता विकाराश्चाभवन् क्रमात् १
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः
कारणत्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे २
सर्वतो भुवनव्याप्तिशक्तिमव्याहतां क्वचित्
ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम् ३
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम्
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः ४
कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पर्द्धा बुद्धिमोहिनाम्
सर्गरक्षालयाचारं प्रत्येकं प्रददौ च सः ५
एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्
परस्परेण वर्धंते परस्परमनुव्रताः ६
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ७
मूर्खा निंदंति तान्वाग्भिः संरंभाभिनिवेशिनः
यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न संशयः ८
देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः
सकलस्सकलाधारशक्तेरुत्पत्तिकारणम् ९
सोयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः १०
यस्सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ११
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा

सदाशिवभवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वशिवात्मकम् १२
प्रधानात्प्रथमं जज्ञे वृद्धिः ख्यातिर्मतिर्महान्
महत्तत्त्वस्य संक्षोभादहंकारस्त्रिधाऽभवत् १३
अहंकारश्च भूतानि तन्मात्रानींद्रियाणि च
वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकः १४
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते
बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंचकर्मेंद्रियाणि च १५
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्
तमोयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्रसंभवः १६
भूतानामादिभूतत्वाद्भूतादिः कथ्यते तु सः
भूतादेश्शब्दमात्रं स्यात्तत्र चाकाशसंभवः १७
आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः
वायो रूपं ततस्तेजस्तेजसो रससंभवः १८
रसादापस्समुत्पन्नास्तेभ्यो गन्धसमुद्भवः
गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योन्यच्चराचरम् १९
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च
महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते २०
तत्र कार्यं च करणं संसिद्धं ब्रह्मणो यदा
तदंडे सुप्रवृद्धोऽभूत् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः २१
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत २२
तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा
धर्मैश्वर्यकरी बुद्धिर्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिनः २३
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम्
वशी विकृत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः २४

त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्स्वयम् २५
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चांतकस्स्मृतः
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोवस्थास्स्वयंभुवः २६
सत्त्वं रजश्च ब्रह्मा च कालत्वे च तमो रजः
विष्णुत्वे केवलं सत्त्वं गुणवृद्धिस्त्रिधा विभौ २७
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि
पुरुषत्वेऽत्युदासीनः कर्म च त्रिविधं विभोः २८
एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद्ब्रह्मा त्रिगुण उच्यते
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चातुर्व्यूहः प्रकीर्तितः २९
आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ३०
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं सुमहात्मनः
गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चाऽपि पर्वताः ३१
तस्मिन्नंडे त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत्
चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ३२
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्डं समावृतम्
आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ३३
तेजो दशगुणेनैव वायुना बहिरावृतम्
आकाशेनावृतो वायुः खं च भूतादिनावृतम् ३४
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिर्बहिरावृतम् ३५
एतदावृत्त्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः
सृष्टिपालनविध्वंसकर्मकर्त्र्यो द्विजोत्तमाः ३६
एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम्

आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु ३७
कूर्मोंगानि यथा पूर्वं प्रसार्य्य विनियच्छति
विकारांश्च तथाऽव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति ३८
अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते
प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रतिलोम्येनुलीयते ३९
गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः समाः
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ४०
तदिदं ब्रह्मणो योनिरेतदंडं घनं महत्
ब्रह्मणः क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ४१
इतीदृशानामण्डानां कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ४२
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः
सृष्टा प्रधानेन तथा लब्ध्वा शंभोस्तु सन्निधिम् ४३
महेश्वरः परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंभवम्
अण्डाज्जज्ञे विभुर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृतास्त्विमे ४४
अबुद्धिपूर्वः कथितो मयैष प्रधानसर्गः प्रथमः प्रवृतः
आत्यंतिकश्च प्रलयोन्तकाले लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य ४५
यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्मा प्रधानं प्रकृतेः प्रसूतिः
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं शुक्लं सुरक्तं पुरुषेण युक्तम् ४६
उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकाल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून्
अष्टौ विकारानपि चादिकाले सृष्ट्वा समश्नाति तथांतकाले ४७
प्रकृत्यवस्थापितकारणानां या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः
तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ४८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां
ब्रह्मांडस्थितिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः १०

अध्याय ११

मुनय ऊचुः
मन्वंतराणि सर्वाणि कल्पभेदांश्च सर्वशः
तेष्वेवांतरसर्गं च प्रतिसर्गं च नो वद १
वायुरुवाच
कालसंख्याविवृत्तस्य परार्द्धो ब्रह्मणस्स्मृतः
तावांश्चैवास्य कालोन्यस्तस्यांते प्रतिसृज्यते २
दिवसे दिवसे तस्य ब्रह्मणः पूर्वजन्मनः
चतुर्दशमहाभागा मनूनां परिवृत्तयः ३
अनादित्वादनंतत्वादज्ञेयत्वाच्च कृत्स्नशः
मन्वंतराणि कल्पाश्च न शक्या वचनात्पृथक् ४
उक्तेष्वपि च सर्वेषु शृणवतां वो वचो मम
किमिहास्ति फलं तस्मान्न पृथक् वक्तुमुत्सहे ५
य एव खलु कल्पेषु कल्पः संप्रति वर्तते
तत्र संक्षिप्य वर्तंते सृष्टयः प्रतिसृष्टयः ६
यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहो नाम नामतः
अस्मिन्नपि द्विजश्रेष्ठा मनवस्तु चतुर्दश ७
स्वायंभुवादयस्सप्त सप्त सावर्णिकादयः
तेषु वैवस्वतो नाम सप्तमो वर्तते मनुः ८
मन्वंतरेषु सर्वेषु सर्गसंहारवृत्तयः
प्रायः समाभवंतीति तर्कः कार्यो विजानता ९
पूर्वकल्पे परावृत्ते प्रवृत्ते कालमारुते
समुन्मूलितमूलेषु वृक्षेषु च वनेषु च १०
जगंति तृणवक्त्रीणि देवे दहति पावके
वृष्ट्या भुवि निषिक्तायां विवेलेष्वर्णवेषु च ११

दिक्षु सर्वासु मग्नासु वारिपूरे महीयसि
तदद्भिश्चटुलाक्षेपैस्तरंगभुजमण्डलैः १२
प्रारब्धचण्डनृत्येषु ततः प्रलयवारिषु
ब्रह्मा नारायणो भूत्वा सुष्वाप सलिले सुखम् १३
इमं चोदाहरन्मंत्रं श्लोकं नारायणं प्रति
तं शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठास्तदर्थं चाक्षराश्रयम् १४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः १५
शिवयोगमयीं निद्रां कुर्वन्तं त्रिदशेश्वरम्
बद्धांजलि पुटास्सिद्धा जनलोकनिवासिनः १६
स्तोत्रैः प्रबोधयामासुः प्रभातसमये सुराः
यथा सृष्ट्यादिसमये ईश्वरं श्रुतयः पुरा १७
ततः प्रबुद्ध उत्थाय शयनात्तोयमध्यगात्
उदैक्षत दिशः सर्वा योगनिद्रालसेक्षणः १८
नापश्यत्स तदा किंचित्स्वात्मनो व्यतिरेकि यत्
सविस्मय इवासीनः परां चिंतामुपागमत् १९
क्व सा भगवती या तु मनोज्ञा महती मही
नानाविधमहाशैलनदीनगरकानना २०
एवं संचिंतयन्ब्रह्मा बुबुधे नैव भूस्थितिम्
तदा सस्मार पितरं भगवंतं त्रिलोचनम् २१
स्मरणाद्देवदेवस्य भवस्यामिततेजसः
ज्ञातवान्सलिले मग्नां धरणीं धरणीपतिः २२
ततो भूमेस्समुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः
जलक्रीडोचितं दिव्यं वाराहं रूपमस्मरत् २३
महापर्वतवर्ष्माणं महाजलदनिःस्वनम्

नीलमेघप्रतीकाशं दीप्तशब्दं भयानकम् २४
पीनवृत्तघनस्कंधपीनोन्नतकटीतटम्
ह्रस्ववृत्तोरुजंघाग्रं सुतीक्ष्णपुरमण्डलम् २५
पद्मरागमणिप्रख्यं वृत्तभीषणलोचनम्
वृत्तदीर्घमहागात्रं स्तब्धकर्णस्थलोज्ज्वलम् २६
उदीर्णोच्छ्वासनिश्वासघूर्णितप्रलयार्णवम्
विस्फुरत्सुसटाच्छन्नकपोलस्कंधबंधुरम् २७
मणिभिर्भूषणैश्चित्रैर्महारत्नैःपरिष्कृतम्
विराजमानं विद्युद्भिर्मेघसंघमिवोन्नतम् २८
आस्थाय विपुलं रूपं वाराहममितं विधिः
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् २९
स तदा शुशुभेऽतीव सूकरो गिरिसंनिभः
लिंगाकृतेर्महेशस्य पादमूलं गतो यथा ३०
ततस्स सलिले मग्नां पृथिवीं पृथिवींधरः
उद्धृत्यालिंग्य दंष्ट्राभ्यामुन्ममज्ज रसातलात् ३१
तं दृष्ट्वा मुनयस्सिद्धा जनलोकनिवासिनः
मुमुदुर्ननृतुर्मूर्ध्नि तस्य पुष्पैरवाकिरन् ३२
वपुर्महावराहस्य शुशुभे पुष्पसंवृतम्
पतद्भिरिव खद्योतैः प्राशुरंजनपर्वतः ३३
ततः संस्थानमानीय वराहो महतीं महीम्
स्वमेव रूपमास्थाय स्थापयामास वै विभुः ३४
पृथिवीं च समीकृत्य पृथिव्यां स्थापयन्गिरीन्
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ३५
इति सह महतीं महीं महीध्रैः प्रलयमहाजलधेरधःस्थमध्यात्
उपरि च विनिवेश्य विश्वकर्मा चरमचरं च जगत्ससर्ज भूयः ३६

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां सृष्ट्यादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ११

अध्याय १२

वायुरुवाच
सर्गं चिंतयतस्तस्य तदा वै बुद्धिपूर्वकम्
प्रध्यानकाले मोहस्तु प्रादुर्भूतस्तमोमयः १
तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चान्धसंज्ञितः
अविद्या पञ्चमी चैषा प्रादुर्भूता महात्मनः २
पंचधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतस्त्वभिमानिनः
सर्व्वतस्तमसातीव बीजकुम्भवदावृतः ३
बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च
तस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुखानि करणानि च ४
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः
तं दृष्ट्वाऽसाधकं ब्रह्मा प्रथमं सर्गमीदृशम् ५
अप्रसन्नमना भूत्वा द्वितीयं सोऽभ्यमन्यत
तस्याभिधायतः सर्गं तिर्य्यक्स्त्रोतोऽभ्यवर्त्तत ६
अन्तःप्रकाशास्तिर्य्यंच आवृताश्च बहिः पुनः
पश्वात्मानस्ततो जाता उत्पथग्राहिणश्च ते ७
तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यममन्यत
तदोद्ध्वर्वस्त्रोतसो वृत्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ८
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः
प्रकाशा बहिरन्तश्चस्वभावादेव संज्ञिताः ९
ततोऽभिध्यायतोव्यक्तादर्व्वाक्स्त्रोतस्तु साधकः
मनुष्यनामा सञ्जातः सर्गो दुःखसमुत्कटः १०

प्रकाशाबहिरन्तस्ते तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः
पंचमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ११
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्यासिद्ध्या तथैव च
तेऽपरिग्राहिणः सर्व्वे संविभागरताः पुनः १२
खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्त्तिताः
प्रथमो महतः सर्गो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः १३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः १४
इत्येष प्रकृतेः सर्गः सम्भृतोऽबुद्धिपूर्वकः
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः १५
तिर्य्यक्स्त्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स पचमः
तदूर्द्ध्वस्त्रोतसः षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः १६
ततोऽर्वाक् स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः कौमारो नवमः स्मृतः १७
प्राकृताश्च त्रयः पूर्व्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः
बुद्धिपूर्व्वं प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्याः पञ्च वैकृताः १८
अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्
सनन्दं सनकञ्चैव विद्वांसञ्च सनातनम् १९
ऋभुं सनत्कुमारञ्च पूर्व्वमेव प्रजापतिः
सर्व्वे ते योगिनो ज्ञेया वीतरागा विमत्सराः २०
इश्वरासक्तमनसो न चक्रुः सृष्टये मतिम्
तेषु सृष्ट्यनपेक्षेषु गतेषु सनकादिषु २१
स्त्रष्टुकामः पुनर्ब्रह्मा तताप परमं तपः
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्त्तत २२
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः २३
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्
सर्वांस्तानश्रुजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिंदत २४
तस्य तीव्राऽभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा
मूर्च्छितस्तु जहौ प्राणान्क्रोधाविष्टः प्रजापतिः २५
ततः प्राणेश्वरो रुद्रो भगवान्नीललोहितः
प्रसादमतुलं कर्त्तुं प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात् २६
दशधा चैकधा चक्रे स्वात्मानं प्रभुरीश्वरः
ते तेनोक्ता महात्मानो दशधा चैकधा कृताः २७
यूयं सृष्टा मया वत्सा लोकानुग्रहकारणात्
तस्मात्सर्व्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च २८
प्रजासन्तानहेतोश्च प्रयतध्वमतन्द्रिताः
एवमुक्ताश्च रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः २९
रोदनाद्द्रावणाच्चैव ते रुद्रा नामतः स्मृताः
ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते महात्मकाः ३०
ततो मृतस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
घृणी ददौ पुनः प्राणान्ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः ३१
प्रहृष्टवदनो रुद्रः प्राणप्रत्यागमाद्विभोः
अभ्यभाषत विश्वेशो ब्रह्माणं परमं वचः ३२
माभैर्माभैर्महाभाग विरिंच जगतां गुरो
मया ते प्राणिताः प्राणाः सुखमुत्तिष्ठ सुव्रत ३३
स्वप्नानुभूतमिव तच्छ्रुत्वा वाक्यं मनोहरम्
हरं निरीक्ष्य शनकैर्नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः ३४
तथा प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा
उवाच वचनं ब्रह्मा तमुद्दिश्य कृताञ्जलिः ३५

त्वं हि दर्शनमात्रेण चानन्दयसि मे मनः
को भवान् विश्वमूर्त्या वा स्थित एकादशात्मकः ३६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः
स्पृशन् काराभ्यां ब्रह्माणं सुसुखाभ्यां सुरेश्वरः ३७
मां विद्धि परमात्मानं तव पुत्रत्वमागतम्
एते चैकादश रुद्रास्त्वां सुरक्षितुमागताः ३८
तस्मात्तीव्रामिमाम्मूर्च्छां विधूय मदनुग्रहात्
प्रबुद्धस्व यथापूर्वं प्रजा वै स्रष्टुमर्हसि ३९
एवं भगवता प्रोक्तो ब्रह्मा प्रीतमना ह्यभूत्
नानाष्टकेन विश्वात्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ४०
ब्रह्मोवाच
नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः ४१
ईशाय वसवे तुभ्यं नमस्स्पर्शमयात्मने
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ४२
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः
महादेवाय सोमाय नमोस्त्वमृतमूर्तये ४३
एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः
प्रार्थयामास विश्वेशं गिरा प्रणतिपूर्वया ४४
भगवन् भूतभव्येश मम पुत्र महेश्वर
सृष्टिहेतोस्त्वमुत्पन्नो ममांगेऽनंगनाशनः ४५
तस्मान्महति कार्येस्मिन् व्यापृतस्य जगत्प्रभो
सहायं कुरु सर्वत्र स्रष्टुमर्हसि स प्रजाः ४६

तेनैषां पावितो देवो रुद्रस्त्रिपुरमर्दनः
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः ४७
ततस्स भगवान् ब्रह्मा हृष्टं तमभिनंद्य च
स्रष्टुं तेनाभ्यनुज्ञातस्तथान्याश्चासृजत्प्रजाः ४८
मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मनसैव च
पुरस्तादसृजद्ब्रह्मा धर्मं संकल्पमेव च ४९
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा द्वादशादौ प्रकीर्तिताः
सह रुद्रेण संभूताः पुराणा गृहमेधिनः ५०
तेषां द्वादश वंशाः स्युर्दिव्या देवगणान्विताः
प्रजावन्तः क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ५१
अथ देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्
सह रुद्रेण सिसृक्षुरंभस्येतानि वै विधिः ५२
स सृष्ट्यर्थं समाधाय ब्रह्मात्मानमयूयुजत्
मुखादजनयद्देवान् पितॄंश्चैवोपपक्षतः ५३
जघनादसुरान् सर्वान् प्रजनादपि मानुषान्
अवस्करे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे ५४
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः
सर्पा यक्षास्तथा भूता गंधर्वाः संप्रजज्ञिरे ५५
वयांसि पक्षतः सृष्टाः पक्षिणो वक्षसोऽसृजत्
मुखतोजांस्तथा पार्श्वादुरगांश्च विनिर्ममे ५६
पद्भ्यां चाश्वान्समातंगान् शरभान् गवयान् मृगान्
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यंकूनन्याश्च जातयः १ ५७
औषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे
गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथंतरम् ५८

अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्
यजूंषि त्रैष्टुभं छंदःस्तोमं पंचदशं तथा ५९
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्
सामानि जगतीछंदः स्तोमं सप्तदशं तथा ६०
वैरूप्यमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन् मुखात्
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ६१
अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ६२
यक्षाः पिशाचा गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगाः ६३
अव्ययं चैव यदिदं स्थाणुस्थावरजंगमम्
तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्टानि प्रपेदिरे ६४
तान्येव ते प्रपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ६५
तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते
महाभूतेषु नानात्वमिंद्रियार्थेषु मुक्तिषु ६६
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधत्स्वयम्
नाम रूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपंचनम् ६७
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममेऽसौ पितामहः
आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ६८
शर्वर्य्यंते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददावजः
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्य्यये ६९
दृश्यंते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु
इत्येष करणोद्भूतो लोकसर्गस्स्वयंभुवः ७०
महदाद्योविशेषांतो विकारः प्रकृतेः स्वयम्

चंद्रसूर्यप्रभाजुष्टो ग्रहनक्षत्रमंडितः ७१
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च स मंडितः
पुरैश्च विविधैरम्यैस्स्फीतैर्जनपदैस्तथा ७२
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तो ब्रह्मा चरति सर्ववित्
अव्यक्तबीजप्रभव ईश्वरानुग्रहे स्थितः ७३
बुद्धिस्कंधमहाशाख इन्द्रियांतरकोटरः
महाभूतप्रमाणश्च विशेषामलपल्लवः ७४
धर्माधर्मसुपुष्पाढ्यः सुखदुःखफलोदयः
आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ७५
द्यां मूर्द्धानं तस्य विप्रा वदंति खं वै नाभिं चंद्रसूर्यौ च नेत्रे
दिशः श्रोत्रे चरणौ च क्षितिं च सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रणेता ७६
वक्त्रात्तस्य ब्रह्मणास्संप्रसूतास्तद्वक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागात्
वैश्या उरुभ्यां तस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः
७७

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
सृष्टिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः १२

अध्याय १३

ऋषय ऊचुः
भवता कथिता सृष्टिर्भवस्य परमात्मनः
चतुर्मुखमुखात्तस्य संशयो नः प्रजायते १
देवश्रेष्ठो विरूपाक्षो दीप्तश्शूलधरो हरः
कालात्मा भगवान् रुद्रः कपर्दी नीललोहितः २
सब्रह्मकमिमं लोकं सविष्णुमपि पावकम्
यः संहरति संक्रुद्धो युगांते समुपस्थिते ३

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रणामं कुरुतो भयात्
लोकसंकोचकस्यास्य यस्य तौ वशवर्तिनौ ४
योऽयं देवः स्वकादंगाद्ब्रह्मविष्णू पुरासृजत्
स एव हि तयोर्नित्यं योगक्षेमकरः प्रभुः ५
स कथं भगवान् रुद्र आदिदेवः पुरातनः
पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ६
प्रजापतिश्च विष्णुश्च रुद्रस्यैतौ परस्परम्
सृष्टौ परस्परस्यांगादिति प्रागपि शुश्रुम ७
कथं पुनरशेषाणां भूतानां हेतुभूतयोः
गुणप्रधानभावेन प्रादुर्भावः परस्परात् ८
नापृष्टं भवता किंचिन्नाश्रुतं च कथंचन
भगवच्छिष्यभूतेन भवता सकलं स्मृतम् ९
तत्त्वं वद यथा ब्रह्मा मुनीनामवदद्विभुः
वयं श्रद्धालवस्तात श्रोतुमीश्वरसद्यशः १०
वायुरुवाच
स्थाने पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिः प्रश्नकोविदैः
इदमेव पुरा पृष्टो मम प्राह पितामहः ११
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा रुद्रसमुद्भवः
यथा च पुनरुत्पत्तिर्ब्रह्मविष्णवोः परस्परम् १२
त्रयस्ते कारणात्मानो जतास्साक्षान्महेश्वरात्
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यंतहेतवः १३
परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः
तच्छक्त्याधिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः १४
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोपि त्रिषु कर्मसु
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा १५

तथाप्यन्योन्यमात्सर्यादन्योन्यातिशयाशिनः
तपसा तोषयित्वा स्वं पितरं परमेश्वरम् १६
लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत् १७
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः
विष्णुश्च भगवान्रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः १८
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणमसृजत्पुनः
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः १९
परस्परेण जायंते परस्परहितैषिणः
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः २०
प्रभावः कथ्यते तेषां परस्परसमुद्भवात्
शृणु तेषां कथां चित्रां पुण्यां पापप्रमोचिनीम् २१
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
पुरा नारायणो नाम कल्पे वै मेघवाहने २२
दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धराम्
तस्य भावं समालक्ष्य विष्णोर्विश्वजगद्गुरुः २३
सर्वस्सर्वात्मभावेन प्रददौ शक्तिमव्ययाम्
शक्तिं लब्ध्वा तु सर्वात्मा शिवात्सर्वेश्वरात्तदा २४
ससर्ज भगावन् विष्णुर्विश्वं विश्वसृजा सह
विष्णोस्तद्वैभवं दृष्ट्वा सृष्टस्तेन पितामहः २५
ईर्ष्यया परया ग्रस्तः प्रहसन्निदमब्रवीत्
गच्छ विष्णो मया ज्ञातं तव सर्गस्य कारणम्
आवयोरधिकश्चास्ति स रुद्रो नात्र संशयः २६
तस्य देवाधिदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः
स्रष्टा त्वं भगवानाद्यः पालकः परमार्थतः २७

अहं च तपसाराध्य रुद्रं त्रिदशनायकम्
त्वया सह जगत्सर्वं स्रक्ष्याम्यत्र न संशयः २८
एवं विष्णुमुपालभ्य भगवानब्जसम्भवः
एवं विज्ञापयामास तपसा प्राप्य शंकरम् २९
भगवन् देवदेवेश विश्वेश्वर महेश्वर
तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम् ३०
मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः
स मत्सरादुपालब्धस्त्वदाश्रयबलान्मया ३१
मद्भावान्नाधिकस्तेति भावस्त्वयि महेश्वरे
त्वत्त एव समुत्पत्तिरावयोस्सदृशी यतः ३२
तस्य भक्त्या यथापूर्वं प्रसादं कृतवानसि
तथा ममापि तत्सर्वं दातुमर्हसि शंकर ३३
इति विज्ञापितस्तेन भगवान् भगनेत्रहा
न्यायेन वै ददौ सर्वं तस्यापि स घृणानिधिः ३४
लब्ध्वैवमीश्वरादेव ब्रह्मा सर्वात्मतां क्षणात्
त्वरमाणोथ संगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम् ३५
क्षीरार्णवालये शुभ्रे विमाने सूर्यसंनिभे
हेमरत्नान्विते दिव्ये मनसा तेन निर्मिते ३६
अनंतभोगशय्यायां शयानं पंकजेक्षणम्
चतुर्भुजमुदारांगं सर्वाभरणभूषितम् ३७
शंखचक्रधरं सौम्यं चन्द्रबिंबसमाननम्
श्रीवत्सवक्षसं देवं प्रसन्नमधुरस्मितम् ३८
धरामृदुकरांभोजस्पर्शरक्तपदांबुजम्
क्षीरार्णवामृतमिव शयानं योगनिद्रया ३९
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम्

सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम् ४०
तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा प्रगल्भमिदमब्रवीत्
ग्रसामि त्वामहं विष्णो त्वमात्मानं यथा पुरा ४१
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिबुद्ध्य पितामहम्
उदैक्षत महाबाहुस्स्मितमीषच्चकार च ४२
तस्मिन्नवसरे विष्णुर्ग्रस्तस्तेन महात्मना
सृष्टश्च ब्रह्मणा सद्यो भ्रुवोर्मध्यादयत्नतः ४३
तस्मिन्नवसरे साक्षाद्भगवानिन्दुभूषणः
शक्तिं तयोरपि द्रष्टुमरूपो रूपमास्थितः ४४
प्रसादमतुलं कर्तुं पुरा दत्तवरस्तयोः
आगच्छत्तत्र यत्रेमौ ब्रह्मनारायणौ स्थितौ ४५
अथ तुष्टुवतुर्देवं प्रीतौ भीतौ च कौतुकात्
प्रणेमतुश्च बहुशो बहुमानेन दूरतः ४६
भवोपि भगवानेतावनुगृह्य पिनाकधृक्
सादरं पश्यतोरेव तयोरंतरधीयत ४७

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
ब्रह्मविष्णुसृष्टिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः १३

अध्याय १४

वायुरुवाच
प्रतिकल्पं प्रवक्ष्यामि रुद्राविर्भावकारणम्
यतो विच्छिन्नसंताना ब्रह्मसृष्टिः प्रवर्तते १
कल्पेकल्पे प्रजाः सृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्मांडसंभवः
अवृद्धिहेतोर्भूतानां मुमोह भृशदुःखितः २
तस्य दुःखप्रशांत्यर्थं प्रजानां च विवृद्धये

तत्तत्कल्पेषु कालात्मा रुद्रो रुद्रगणाधिपः ३
निर्दिष्टः पममेशेन महेशो नीललोहितः
पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोनुजः ४
स एव भगवानीशस्तेजोराशिरनामयः
अनादिनिधनोधाता भूतसंकोचको विभुः ५
परमैश्वर्यसंयुक्तः परमेश्वरभावितः
तच्छक्त्याधिष्ठितश्शश्वत्तच्चिह्नैरपि चिह्नितः ६
तन्नामनामा तद्रूपस्तत्कार्यकरणक्षमः
तत्तुल्यव्यवहारश्च तदाज्ञापरिपालकः ७
सहस्रादित्यसंकाशश्चन्द्रावयवभूषणः
भुजंगहारकेयूरवलयो मुंजमेखलः ८
जलंधरविरिंचेन्द्रकपालशकलोज्ज्वलः
गङ्गातुंगतरंगार्द्धपिंगलाननमूर्द्धजः ९
भग्नदंष्ट्रांकुराक्रान्तप्रान्तकान्तधराधरः
सव्यश्रवणपार्श्वांतमंडलीकृतकुण्डलः १०
महावृषभनिर्याणो महाजलदनिःस्वनः
महानलसमप्रख्यो महाबलपराक्रमः ११
एवं घोरमहारूपो ब्रह्मपुत्रीं महेश्वरः
विज्ञानं ब्रह्मणे दत्त्वा सर्गे सहकरोति च १२
तस्माद्रुद्रप्रसादेन प्रतिकल्पं प्रजापतेः
प्रवाहरूपतो नित्या प्रजासृष्टिः प्रवर्तते १३
कदाचित्प्रार्थितः स्रष्टुं ब्रह्मणा नीललोहितः
स्वात्मना सदृशान् सर्वान् ससर्ज मनसा विभुः १४
कपर्द्दिनो निरातंकान्नीलग्रीवाँस्त्रिलोचनान्
जरामरणनिर्मुक्तान् दीप्तशूलवरायुधान् १५

तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत्
तान्दृष्टा विविधान्रुद्रान् रुद्रमाह पितामहः १६
नमस्ते देवदेवेश मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः
अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा मृत्युसमन्विताः १७
इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं परमेश्वरः
नास्ति मे तादृशस्सर्गस्सृज त्वमशुभाः प्रजाः १८
ये त्विमे मनसा सृष्टा महात्मानो महाबलाः
चरिष्यंति मया सार्द्धं सर्व एव हि याज्ञिकाः १९
इत्युक्त्वा विश्वकर्माणं विश्वभूतेश्वरो हरः
सह रुद्रैः प्रजासर्गान्निवृत्तात्मा व्यतिष्ठत २०
ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते प्रजाः शुभाः
ऊर्द्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम् २१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
रुद्राविर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः १४

अध्याय १५

वायुरुवाच
यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त वेधसः
तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत १
न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात्
तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः २
ततस्स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्
प्रजानमेव वृद्ध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वर ३
प्रसादेन विना तस्य न वर्द्धेरन्निमाः प्रजाः
एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ४

तदाद्या परमा शक्तिरनंता लोकभाविनी
आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ५
निर्गुणा निष्प्रपंचा च निष्कला निरुपप्लवा
निरंतरतरा नित्या नित्यमीश्वरपार्श्वगा ६
तया परमया शक्त्या भगवंतं त्रियम्बकम्
संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ७
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः
अचिरेणैव कालेन पिता संप्रतुतोष ह ८
ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः ९
तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम्
अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः १०
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्
सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ११
अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम्
अचलं निर्गुणं शांतमनंतमहिमास्पदम् १२
सर्वगं सर्वदं सर्वसदसद्व्यक्तिवर्जितम्
सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् १३
प्रणम्य दंडवद्ब्रह्मा समुत्थाय कृतांजलिः
श्रद्धाविनयसंपन्नैः श्राव्यैः संस्करसंयुतैः १४
यथार्थयुक्तसर्वार्थैर्वेदार्थपरिबृंहितैः
तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः १५
ब्रह्मोवाच
जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर
जय सर्वगुण श्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप १६

जय प्रकृति कल्याणि जय प्रकृतिनायिके
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि १७
जयामोघमहामाय जयामोघ मनोरथ
जयामोघमहालील जयामोघमहाबल १८
जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मये
जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि १९
जय शाश्वतिकैश्वर्ये जय शाश्वतिकालय
जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतिकानुग २०
जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि
जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके २१
जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण
जयोपेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक २२
जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्ज्वले
जय स्थूलात्मशक्त्येशेजय व्याप्तचराचरे २३
जय नामैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय
जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठानुगकदंबक २४
जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि
जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमे २५
जय प्रादेशिकैश्वर्यवीर्यशौर्यविजृंभण
जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव २६
जय प्रणीतपंचार्थप्रयोगपरमामृत
जय पंचार्थविज्ञानसुधास्तोत्रस्वरूपिणि २७
जयति घोरसंसारमहारोगभिषग्वर
जयानादिमलाज्ञानतमःपटलचंद्रिके २८
जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि

जय त्रिगुणनिर्मुक्ते जय त्रिगुणमर्दिनि २९
जय प्रथमसर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिक
जय प्रचुरदिव्यांग जय प्रार्थितदायिनि ३०
क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं च नो वचः
तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपंतं क्षमस्व माम् ३१
विज्ञाप्यैवंविधैः सूक्तैर्विश्वकर्मा चतुर्मुखः
नमश्चकार रुद्राय रुद्राण्यै च मुहुर्मुहुः ३२
इदं स्तोत्रवरं पुण्यं ब्रह्मणा समुदीरितम्
अर्द्धनारीश्वरं नाम शिवयोर्हर्षवर्द्धनम् ३३
य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या यस्य कस्यापि शिक्षया
स तत्फलमवाप्नोति शिवयोः प्रीतिकारणात् ३४
सकलभुवनभूतभावनाभ्यां जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्
नरवरयुवतीवपुर्द्धराभ्यां सततमहं प्रणतोस्मि शंकराभ्याम् ३५
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पू॥॥
शिवशिवास्तुतिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः १५

अध्याय १६

वायुरुवाच
अथ देवो महादेवो महाजलदनादया
वाचा मधुरगंभीरशिवदश्लक्ष्णवर्णया १
अर्थसंपन्नपदया राजलक्षणयुक्तया
अशेषविषयारंभरक्षाविमलदक्षया २
मनोहरतरोदारमधुरस्मितपूर्वया
संबभाषे सुसंपीतो विश्वकर्माणमीश्वरः ३
ईश्वर उवाच

वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह
ज्ञातमेव मया सर्वं तव वाक्यस्य गौरवम् ४
प्रजानामेव बृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना
तपसाऽनेन तुष्टोस्मि ददामि च तवेप्सितम् ५
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः
ससर्ज वपुषो भागाद्देवीं देववरो हरः ६
यामाहुर्ब्रह्मविद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम्
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ७
यस्यां न खलु विद्यंते जन्म मृत्युजरादयः
या भवानी भवस्यांगात्समाविरभवत्किल ८
यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेंद्रियैः सह
सा भर्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत ९
या सा जगदिदं कृत्स्नं महिम्ना व्याप्य तिष्ठति
शरीरिणीव स देवी विचित्रं समलक्ष्यत १०
सर्वं जगदिदं चैषा संमोहयति मायया
ईश्वरात्सैव जाताभूदजाता परमार्थतः ११
न यस्या परमो भावः सुराणामपि गोचरः
विश्वामरेश्वरी चैव विभक्ता भर्तुरंगतः १२
तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम्
सर्वज्ञां सर्वगां सूक्ष्मां सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् १३
परमां निखिलं भासा भासयन्तीमिदं जगत्
प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् १४
ब्रह्मोवाच
देवि देवेन सृष्टोऽहमादौ सर्वजगन्मयि
प्रजासर्गे नियुक्तश्च सृजामि सकलं जगत् १५

मनसा निर्मिताः सर्वे देवि देवादयो मया
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः १६
मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम्
संवर्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः १७
न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम्
तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते १८
सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः
तस्मात्सर्वत्र सर्वेषां सर्वशक्तिप्रदायिनीम् १९
त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम्
चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे २०
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि
एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना २१
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम्
तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः २२
ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम्
तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा २३
ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत्
दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् २४
विवेश देहं देवस्य देवश्चांतरधीयत
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः २५
प्रजासृष्टिश्च विप्रेंद्रा मैथुनेन प्रवर्तते
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुंगवाः २६
एतद्वस्सर्वमाख्यातं देव्याः शक्तिसमुद्भवम्
पुण्यवृद्धिकरं श्राव्यं भूतसर्गानुपंगतः २७
य इदं कीर्तयेन्नित्यं देव्याः शक्तिसमुद्भवम्

पुण्यं सर्वमवाप्नोति पुत्रांश्च लभते शुभान् २८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
देवीशक्त्युद्भवो नाम षोडशोऽध्यायः १६

अध्याय १७

वायुरुवाच
एवं लब्ध्वा परां शक्तिमीश्वरादेव शाश्वतीम्
मैथुनप्रभवां सृष्टिं कर्तुकामः प्रजापतिः १
स्वयमप्यर्द्धतो नारी चार्द्धेन पुरुषोऽभवत्
यार्द्धेन नारी सा तस्माच्छतरूपा व्यजायत २
विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽर्द्धेन पुरुषोऽभवत्
स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ३
सा देवी शतरूपा तु तपः कृत्वा सुदुश्चरम्
भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत ४
तस्मात्तु शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ५
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जातास्त्विमाः प्रजाः
आकूतिरेका विज्ञेया प्रसूतिरपरा स्मृता ६
स्वायंभुवः प्रसूतिं च ददौ दक्षाय तां प्रभुः
रुचेः प्रजापतिश्चैव चाकूतिं समपादयत् ७
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्तितं जगत् ८
स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः १
चतस्रो विंशतिः कन्या दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः ९
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया तथा

बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिस्सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी १०
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ११
ख्यातिः सत्यर्थसंभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा १२
भृगुश्शर्वो मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः
पुलस्त्योऽत्रिर्विशिष्ठश्च पावकः पितरस्तथा १३
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्यामुनयो मुनिसत्तमाः
कामाद्यास्तु यशोंता ये ते त्रयोदश सूनवः १४
धर्मस्य जज्ञिरे तास्तु श्रद्धाद्यास्सुसुखोत्तराः
दुःखोत्तराश्च हिंसायामधर्मस्य च संततौ १५
निकृत्यादय उत्पन्नाःपुत्राश्च धर्मलक्षणाः
नैषां भार्याश्च पुत्रा वा सर्वे त्वनियमाः स्मृताः १६
स एष तामसस्सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः
या सा दक्षस्य दुहिता रुद्रस्य दयिता सती १७
भर्तृनिन्दाप्रसंगेन त्यक्त्वा दाक्षायिणीं तनुम्
दक्षं च दक्षभार्य्यां च विनिंद्य सह बन्धुभिः १८
सा मेनायामाविरभूत्पुत्री हिमवतो गिरेः
रुद्रस्तु तां सतीं दृष्ट्वा रुद्रांस्त्वात्मसमप्रभान् १९
यथासृजदसंख्यातांस्तथा कथितमेव च
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया २०
देवौ धातृविधातारौ मन्वंतरविधारिणौ
तयोर्वै पुत्रपौत्राद्याश्शतशोऽथ सहस्रशः २१
स्वायंभुवेऽतरे नीताः सर्वे ते भार्गवा मताः
मरीचेरपि संभूतिः पौर्णमासमसूयत २२

कन्याचतुष्टयं चैव महीयांसस्तदन्वयाः
येषां वंशे समुत्पन्नो बहुपुत्रस्य कश्यपः २३
स्मृतिश्चांगिरसः पत्नी जनयामास वै सुतौ
आग्नीध्रं शरभञ्चैव तथा कन्याचतुष्टयम् २४
तदीयाः पुत्रपौत्राश्च येतीतास्ते सहस्रशः
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दन्तोग्निरभवत्सुतः
पूर्वजन्मनि योगस्त्यस्स्मृतः स्वायंभुवेऽतरे २५
तत्संततीया बहवः पौलस्त्या इति विश्रुताः
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः २६
कर्दमश्च सुरिश्चैव सहिष्णुश्चेति ते त्रयः
त्रेताग्निवर्चसस्सर्वे येषां वंशः प्रतिष्ठितः २७
क्रतोः क्रतुसमान्भार्या सन्नतिस्सुषुवे सुतान्
नैषां भार्याश्च पुत्राश्च सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः २८
षष्टिस्तानि सहस्राणि वालखिल्या इति स्मृताः
अनूरोरग्रतो यांति परिवार्य्य दिवाकरम् २९
अत्रेर्भार्यानुसूया च पञ्चात्रेयानसूयत
कन्यकां च श्रुतिं नाम माता शंखपदस्य च ३०
सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिश्शनैश्चरः
सोमश्च पंचमस्त्वेते पंचात्रेयाः प्रकीर्तिताः ३१
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यात्रेयाणां महात्मनाम्
स्वायंभुवेऽतरेऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ३२
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुंडरीका सुमध्यमा ३३
रजो गात्रोद्ध्वबाहू च सवनश्चानयश्च यः
सुतपाश्शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयः स्मृताः ३४

गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम्
स्वायंभुवेऽतरेऽतीतान्यर्बुदानि शतानि च ३५
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबंधः प्रकीर्तितः
समासाद्विस्तराद्वक्तुमशक्योऽयमिति द्विजाः ३६
योऽसौ रुद्रात्मको बह्निब्रह्मणो मानसस्सुतः
स्वाहा तस्य प्रिया लेभे पुत्रांस्त्रीनमितौजसः ३७
पावकः पवमानश्च शुचिरित्येष ते त्रयः
निर्मंथ्यः पवमानस्स्याद्वैद्युतः पावकस्स्मृतः ३८
सूर्ये तपति यश्चासौ शुचिः सौर उदाहृतः
हव्यवाहः कव्यवाहः सहरक्षा इति त्रयः ३९
त्रयाणां क्रमशः पुत्रा देवपितृसुराश्च ते
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव ते ४०
काम्यनैमित्तिकाजस्त्रकर्मसु त्रिषु संस्थिताः
सर्वे तपस्विनो ज्ञेयाः सर्वे व्रतभृतस्तथा ४१
सर्वे रुद्रात्मकश्चैव सर्वे रुद्रपरायणाः
तस्मादग्निमुखे यत्तद्धुतं स्यादेव केनचित् ४२
तत्सर्वं रुद्रमुद्दिश्य दत्तं स्यान्नात्र संशयः
इत्येवं निश्चयोग्नीनामनुक्रांतो यथातथम् ४३
नातिविस्तरतो विप्राः पितृन्वक्ष्याम्यतः परम्
यस्मात्षड्तवस्तेषां स्थानं स्थानाभिमानिनाम् ४४
ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः
युष्मादृतुषु सर्वे हि जायंते स्थास्नुजंगमा ४५
तस्मादेते पितर आर्तवा इति च श्रुतम्
एवं पितृणामेतेषामृतुकालाभिमानिनाम् ४६
आत्मैश्वर्या महात्मानस्तिष्ठंतीहाब्भ्रसंगमात्

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः ४७
अयज्वानश्च यज्वानः क्रमात्ते मृहमेधिनः
स्वधासूत पितृभ्यश्च द्वे कन्ये लोकविश्रुते ४८
मेनां च धरणीं चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम्
अग्निष्वात्तसुता मेना धरणी बर्हिषत्सुता ४९
मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं क्रौंचमेव च
गौरीं गंगां च सुषुवे भवांगाश्लेषपावनीम् ५०
मेरोस्तु धरणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम्
मंदरं सुषुवे पुत्रं चित्रिसुन्दरकन्धरम् ५१
स एव मंदरः श्रीमान्मेरुपुत्रस्तपोबलात्
साक्षाच्छ्रीकंठनाथस्य शिवस्यावसथं गतः ५२
सासूता धरणी भूयस्त्रिंशत्कन्याश्च विश्रुताः
वेलां च नियतिं चैव तृतीयामपि चायतिम् ५३
आयतिर्नियतिश्चैव पत्न्यौ द्वे भृगुपुत्रयोः
स्वायंभुवेऽतरे पूर्वं कथितस्ते तदन्वयः ५४
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिंदिताम्
सवर्णां नाम सामुद्रीं पत्नीं प्राचीनबर्हिषः ५५
सामुद्री सुषुवे पुत्रान्दश प्राचीनबर्हिषः
सर्वे प्राचेतसा नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ५६
येषां स्वायंभुवे दक्षः पुत्रत्वमगमत्पुरा
त्रियम्बकस्य शापेन चाक्षुषस्यांतरे मनोः ५७
इत्येते ब्रह्मपुत्राणां धर्मादीनाम्महात्मनाम्
नातिसंक्षेपतो विप्रा नाति विस्तरतः क्रमात् ५८
वर्णिता वै मया वंशा दिव्या देवगणान्विताः
क्रियावंतः प्रजावंतो महर्द्धिभिरलंकृताः ५९

प्रजानां संनिवेशोऽयं प्रजापतिसमुद्भवः
न हि शक्यः प्रसंख्यातुं वर्षकोटिशतैरपि ६०
राज्ञामपि च यो वंशो द्विधा सोऽपि प्रवर्तते
सूर्यवंशस्सोमवंश इति पुण्यतमः क्षितौ ६१
इक्ष्वाकुरम्बरीषश्च ययातिर्नाहुषादयः
पुण्यश्लोकाः श्रुता येऽत्र ते पि तद्वंशसंभवाः ६२
अन्ये च राजऋषयो नानावीर्यसमन्विता
किं तैः फलमनुत्क्रांतैरुक्तपूर्वैः पुरातनैः ६३
किं चेश्वरकथा वृत्ता यत्र तत्रान्यकीर्तनम्
न सद्भिः संमतं मत्वा नोत्सहे बहुभाषितुम् ६४
प्रसंगादीश्वरस्यैव प्रभावद्योतनादपि
सर्गादयोऽपि कथिता इत्यत्र तत्प्रविस्तरैः ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
सृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः १७

अध्याय १८

ऋषय ऊचुः
देवी दक्षस्य तनया त्यक्त्वा दाक्षायणी तनुम्
कथं हिमवतः पुत्री मेनायामभवत्पुरा १
कथं च निन्दितो रुद्रो दक्षेण च महात्मना
निमित्तमपि किं तत्र येन स्यान्निंदितो भवः २
उत्पन्नश्च कथं दक्षो अभिशापाद्भवस्य तु
चाक्षुषस्यांतरे पूर्वं मनोः प्रब्रूहि मारुत ३
वायुरुवाव
शृण्वंतु कथयिष्यामि दक्षस्य लघुचेतसः

वृत्तं पापात्प्रमादाच्च विश्वामरविदूषणम् ४
पुरा सुरासुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः
कदाचिद्द्रष्टुमीशानं हिमवच्छिखरं ययुः ५
तदा देवश्च देवी च दिव्यासनगतावुभौ
दर्शनं ददतुस्तेषां देवादीनां द्विजोत्तमाः ६
तदानीमेव दक्षोऽपि गतस्तत्र सहामरैः
जामातरं हरं द्रष्टुं द्रष्टुं चात्मसुतां सतीम् ७
तदात्मगौरवाद्देवो देव्या दक्षे समागते
देवादिभ्यो विशेषेण न कदाचिदभूत्स्मृतिः ८
तस्य तस्याः परं भावमज्ञातुश्चापि केवलम्
पुत्रीत्येवं विमूढस्य तस्यां वैरमजायत ९
ततस्तेनैव वैरेण विधिना च प्रचोदितः
नाजुवाह भवं दक्षो दीक्षितस्तामपि द्विषन् १०
अन्यात् १जामातरस्सर्वानाहूय स यथाक्रमम्
शतशः पुष्कलामर्चाञ्चकार च पृथक्पृथक् ११
तथा तान्संगताञ्छ्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा
ययौ रुद्राय रुद्राणी विज्ञाप्य भवनं पितुः १२
अथ संनिहितं दिव्यं विमानं विश्वतोमुखम्
लक्षणाढ्यं सुखारोहमतिमात्रमनोहरम् १३
तप्तजांबूनदप्रख्यं चित्ररत्नपरिष्कृतम्
मुक्तामयवितानाग्र्यं स्रग्दामसमलंकृतम् १४
तप्तकंचननिर्व्यूहं रत्नस्तंभशतावृतम्
वज्रकल्पितसोपानं विद्रुमस्तंभतोरणम् १५
पुष्पपट्टपरिस्तीर्णं चित्ररत्नमहासनम्
वज्रजालकिरच्छिद्रमच्छिद्रमणिकुट्टिमम् १६

मणिदंडमनोज्ञेन महावृषभलक्ष्मणा
अलंकृतपुरोभागमभ्रशुभ्रेण केतुना १७
रत्नकंचुकगुप्तांगैश्चित्रवेत्रकपाणिभिः
अधिष्ठितमहाद्वारमप्रधृष्यैर्गणेश्वरैः १८
मृदंगतालगीतादिवेणुवीणाविशारदैः
विदग्धवेषभाषैश्च बहुभिः स्त्रीजनैर्वृतम् १९
आरुरोह महादेवी सह प्रियसखीजनैः
चामारव्यञ्जनं तस्या वज्रदंडमनोहरे २०
गृहीत्वा रुद्रकन्ये द्वे विवीजतुरुभे शुभे
तदाचामरयोर्मध्ये देव्या वदनमाबभौ २१
अन्योन्यं युध्यतोर्मध्ये हंसयोरिव पंकजम्
छत्रं शशिनिभं तस्याश्चूडोपरि सुमालिनी २२
धृतमुक्तापरिक्षिप्तं बभार प्रेमनिर्भरा
तच्छत्रमुज्ज्वलं देव्या रुरुचे वदनोपरि २३
उपर्यमृतभांडस्य मंडलं शशिनो यथा
अथ चाग्रे समासीना सुस्मितास्या शुभावती २४
अक्षद्यूतविनोदेन रमयामास वै सतीम्
सुयशाः पादुके देव्याश्शुभे रत्नपरिष्कृते २५
स्तनयोरंतरे कृत्वा तदा देवीमसेवतः
अन्या कांचनचार्वंगी दीप्तं जग्राह दर्पणम् २६
अपरा तालवृन्तं च परा तांबूलपेटिकाम्
काचित्क्रीडाशुकं चारु करेऽकुरुत भामिनी २७
काचित्तु सुमनोज्ञानि पुष्पाणि सुरभीणि च
काचिदाभरणाधारं बभार कमलेक्षणा २८
काचिच्च पुनरालेपं सुप्रसूतं शुभांजनम्

अन्याश्च सदृशास्तास्ता यथास्वमुचितक्रियाः २९
आवृत्त्या तां महादेवीमसेवंत समंततः
अतीव शुशुभे तासामंतरे परमेश्वरी ३०
तारापरिषदो मध्ये चंद्रलेखेव शारदी
ततः शंखसमुत्थस्य नादस्य समनंतरम् ३१
प्रास्थानिको महानादः पटहः समताड्यत
ततो मधुरवाद्यानि सह तालोद्यतैस्स्वनैः ३२
अनाहतानि सन्नेदुः काहलानां शतानि च
सायुधानां गणेशानां महेशसमतेजसाम् ३३
सहस्राणि शतान्यष्टौ तदानीं पुरतो ययुः
तेषां मध्ये वृषारूढो गजारूढो यथा गुरुः ३४
जगाम गणपः श्रीमान् सोमनंदीश्वरार्चितः
देवदुंदुभयो नेदुर्दिवि दिव्यसुखा घनाः ३५
ननृतुर्मुनयस्सर्वे मुमुदुः सिद्धयोगिनः
ससृजुः पुष्पवृष्टिं च वितानोपरि वारिदाः ३६
तदा देवगणैश्चान्यैः पथि सर्वत्र संगता
क्षणादिव पितुर्गेहं प्रविवेश महेश्वरी ३७
तां दृष्ट्वा कुपितो दक्षश्चात्मनः क्षयकारणात्
तस्या यवीयसीभ्योऽपि चक्रे पूजाम सत्कृताम् ३८
तदा शशिमुखी देवी पितरं सदसि स्थितम्
अंबिका युक्तमव्यग्रमुवाचाकृपणं वचः ३९
देव्युवाच
ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्याज्ञावशवर्तिनः
स देवस्सांप्रतं तात विधिना नार्चितः किल ४०
तदास्तां मम ज्यायस्याः पुत्र्याः पूजां किमीदृशीम्

असत्कृतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हितम् ४१
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः क्रोधादमर्षितः
त्वत्तः श्रेष्ठा विशिष्टाश्च पूज्या बालाः सुता मम ४२
तासां तु ये च भर्त्तारस्ते मे बहुमता मुदा
गुनैश्चाप्यधिकास्सर्वैर्भर्तुस्ते त्र्यंबकादपि ४३
स्तब्धात्मा तामसश्शर्वस्त्वमिमं समुपाश्रिता
तेन त्वामवमन्येऽहं प्रतिकूलो हि मे भवः ४४
तथोक्ता पितरं दक्षं क्रुद्धा देवी तमब्रवीत्
शृण्वतामेव सर्वेषां ये यज्ञसदसि स्थिताः ४५
अकस्मान्मम भर्तारमजाताशेषदूषणम्
वाचा दूषयसे दक्ष साक्षाल्लोकमहेश्वरम् ४६
विद्याचौरो गुरुद्रोही वेदेश्वरविदूषकः
त एते बहुपाप्मानस्सर्वे दंड्या इति श्रुतिः ४७
तस्मादत्युत्कटस्यास्य पापस्य सदृशो भृशम्
सहसा दारुणो दंडस्तव दैवाद्भविष्यति ४८
त्वया न पूजितो यस्माद्देवदेवस्त्रियंबकः
तस्मात्तव कुलं दुष्टं नष्टमित्यवधारय ४९
इत्युक्त्वा पितरं रुष्टा सती संत्यक्तसाध्वसा
तदीयां च तनुं त्यक्त्वा हिमवंतं ययौ गिरिम् ५०
स पर्वतपरः श्रीमाँल्लब्धपुण्यफलोदयः
तदर्थमेव कृतवान् सुचिरं दुश्चरं तपः ५१
तस्मात्तमनुगृह्णाति भूधरेश्वरमीश्वरी
स्वेच्छया पितरं चक्रे स्वात्मनो योगमायया ५२
यदा गता सती दक्षं विनिंद्य भयविह्वला
तदा तिरोहिता मंत्रा विहतश्च ततोऽध्वरः ५३

तदुपश्रुत्य गमनं देव्यास्त्रिपुरुमर्दनः
दक्षाय च ऋषिभ्यश्च चुकोप च शशाप तान् ५४
यस्मादवमता दक्षमत्कृतेऽनागसा सती
पूजिताश्चेतराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह ५५
वैवस्वतेऽतरे तस्मात्तव जामातरस्त्वमी
उत्पत्स्यंते समं सर्वे ब्रह्मयज्ञेष्वयोनिजाः ५६
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्य त्वमन्वये
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ५७
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते
धर्मार्थकामयुक्तेषु कर्मस्वपि पुनः पुनः ५८
तेनैवं व्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा
स्वायंभुवीं तनुं त्यक्त्वा पपात भुवि दुःखितः ५९
ततः प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसाम् ६०
भृग्वादयोऽपि जाता वै मनोर्वैवस्वतस्य तु
अंतरे ब्रह्मणो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ६१
तदा दक्षस्य धर्मार्थं यज्ञे तस्य दुरात्मनः
महेशः कृतवान्विघ्नं मना ववस्वते सति ६२

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
सतीदेहत्यागो नामाष्टादशोऽध्यायः १८

अध्याय १९

ऋषय ऊचुः
कथं दक्षस्य धर्मार्थं प्रवृत्तस्य दुरात्मनः
महेशः कृतवान् विघ्नमेतदिच्छाम वेदितुम् १

वायुरुवाच
विश्वस्य जगतो मातुरपि देव्यास्तपोबलात्
पितृभावमुपागम्य मुदिते हिमवद्गिरौ २
देवेऽपि तत्कृतोद्वाहे हिमवच्छिखरालये
संक्रीडति तया सार्द्धं काले बहुतरे गते ३
वैवस्वतेऽतरे प्राप्ते दक्षः प्राचेतसः स्वयम्
अश्वमेधेन यज्ञेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत ४
ततो हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमाहरत्
गंगाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते ५
तस्य तस्मिन्मखेदेवाः सर्वे शक्र पुरोगमाः
गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ६
आदित्या वसवो रुद्रास्साध्यास्सह मरुद्गणैः
ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा ७
अश्विनौ पितरश्चैव तथा चान्ये महर्षयः
विष्णुना सहिताः सर्वे स्वागता यज्ञभागिनः ८
दृष्ट्वा देवकुलं सर्वमीश्वरेण विनागतम्
दधीचो मन्युनाविष्टो दक्षमेवमभाषत ९
दधीच उवाच
अप्रपूज्ये चैव पूजा पूज्यानां चाप्य पूजने
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः १०
असतां संमतिर्यत्र सतामवमतिस्तथा
दंडो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ११
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत
पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नार्चयसे प्रभुम् १२
दक्ष उवाच

संति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः
एकादशावस्थिता ये नान्यं वेद्मि महेश्वरम् १३
दधीच उवाच
किमेभिरमरैरन्यैः पूजितैरध्वरे फलम्
राजा चेदध्वरस्यास्य न रुद्रः पूज्यते त्वया १४
ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्रष्टा यः प्रभुरव्ययः
ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्य कैंकर्यवादिनः १५
प्रकृतीनां परश्चैव पुरुषस्य च यः परः
चिंत्यते योगविद्वद्भि ऋृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः १६
अक्षरं परमं ब्रह्म ह्यसच्च सदसच्च यत्
अनादिमध्यनिधनमप्रतर्क्यं सनातनम् १७
यः स्रष्टा चैव संहर्ता भर्ता चैव महेश्वरः
तस्मादन्यं न पश्यामि शंकरात्मानमध्वरे १८
दक्ष उवाच
एतन्मखेशस्य सुवर्णपात्रे हविः समस्तं विधिमंत्रपूतम्
विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य भागं प्रभोर्विभज्यावहनीयमद्य १९
दधीच उवाच
यस्मान्नाराधितो रुद्रस्सर्वदेवेश्वरेश्वरः
तस्माद्दक्ष तवाशेषो यज्ञोऽयं न भविष्यति २०
इत्युक्त्वा वचनं क्रुद्धो दधीचो मुनिसत्तमः
निर्गम्य च ततो देशाज्जगाम स्वकमाश्रमम् २१
निर्गतेऽपि मुनौ तस्मिन्देवा दक्षं न तत्यजुः
अवश्यमनुभावित्वादनर्थस्य तु भाविनः २२
एतस्मिन्नेव काले तु ज्ञात्वैतत्सर्वमीश्वरात्
दग्धुं दक्षाध्वरं विप्रा देवी देवमचोदयत् २३

देव्या संचोदितो देवो दक्षाध्वरजिघांसया
ससर्ज सहसा वीरं वीरभद्रं गणेश्वरम् २४
सहस्रवदनं देवं सहस्रकमलेक्षणम्
सहस्रमुद्गरधरं सहस्रशरपाणिकम् २५
शूलटंकगदाहस्तं दीप्तकार्मुकधारिणम्
चक्रवज्रधरं घोरं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् २६
कुलिशोद्योतितकरं तडिज्ज्वलितमूर्द्धजम्
दंष्ट्राकरालं बिभ्राणं महावक्त्रं महोदरम् २७
विद्युज्जिह्वं प्रलंबोष्ठं मेघसागरनिःस्वनम्
वसानं चर्म वैयाघ्रं महद्रुधिरनिस्रवम् २८
गण्डद्वितयसंसृष्टमण्डलीकृतकुण्डलम्
वरामरशिरोमालावलीकलितशेखरम् २९
रणन्नूपुरकेयूरमहाकनकभूषितम्
रत्नसंचयसंदीप्तं तारहारावृतोरसम् ३०
महाशरभशार्दूलसिंहैः सदृशविक्रमम्
प्रशस्तमत्तमातंगसमानगमनालसम् ३१
शंखचामरकुंदेन्दुमृणालसदृशप्रभम्
सतुषारमिवाद्रीन्द्रं साक्षाज्जंगमतां गतम् ३२
ज्वालामालापरिक्षिप्तं दीप्तमौक्तिकभूषणम्
तेजसा चैव दीव्यंतं युगांत इव पावकम् ३३
स जानुभ्यां महीं गत्वा प्रणतः प्रांजलिस्ततः
पार्श्वतो देवदेवस्य पर्य्यतिष्ठद्गणेश्वरः ३४
मन्युना चासृजद्भद्रां भद्रकालीं महेश्वरीम्
आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन गंतुं सहैव तु ३५
तं दृष्ट्वावस्थितं वीरभद्रं कालाग्निसन्निभम्

भद्रया सहितं प्राह भद्रमस्त्विति शंकरः ३६
स च विज्ञापयामास सह देव्या महेश्वरम्
आज्ञापय महादेव किं कार्यं करवाण्यहम् ३७
ततस्त्रिपुरहा प्राह हैमवत्याः प्रियेच्छया
वीरभद्रं महाबाहुं वाचा विपुलनादया ३८
देवदेव उवाच
प्राचेतसस्य दक्षस्य यज्ञं सद्यो विनाशय
भद्रकाल्या सहासि त्वमेतत्कृत्यं गणेश्वर ३९
अहमप्यनया सार्द्धं रैभ्याश्रमसपीपतः
स्थित्वा वीक्षे गणेशान विक्रमं तव दुःसहम् ४०
वृक्षा कनखले ये तु गंगाद्वारसमीपगाः
सुवर्णशृंगस्य गिरेर्मेरुमंदरसंनिभाः ४१
तस्मिन्प्रदेशे दक्षस्य युज्ञः संप्रति वर्तते
सहसा तस्य यज्ञस्य विघातं कुरु मा चिरम् ४२
इत्युक्ते सति देवेन देवी हिमगिरीन्द्रजा
भद्रं भद्रं च संप्रेक्ष्य वत्सं धेनुरिवौरसम् ४३
आलिंग्य च समाघ्राय मूर्ध्नि षड्वदनं यथा
सस्मिता वचनं प्राह मधुरं मधुरं स्वयम् ४४
देव्युवाच
वत्स भद्र महाभाग महाबलपराक्रम
मत्प्रियार्थं त्वमुत्पन्नो मम मन्युं प्रमार्जक ४५
यज्ञेश्वरमनाहूय यज्ञकर्मरतोऽभवत्
दक्षं वैरेण तं तस्माद्भिंधि यज्ञं गणेश्वर ४६
यज्ञलक्ष्मीमलक्ष्मीं त्वं भद्र कृत्वा ममाज्ञया
यजमानं च तं हत्वा वत्स हिंसय भद्रया ४७

अशेषामिव तामाज्ञां शिवयोश्चित्रकृत्ययोः
मूर्ध्नि कृत्वा नमस्कृत्य भद्रो गंतुं प्रचक्रमे ४८
अथैष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः
वीरभद्रो महादेवो देव्या मन्युप्रमार्जकः ४९
ससर्ज रोमकूपेभ्यो रोमजाख्यान्गणेश्वरान्
दक्षिणाद्भुजदेशात्तु शतकोटिगविश्वरान् ५०
पादात्तथोरुदेशाच्च पृष्ठात्पार्श्वान्मुखाद्गलात्
गुह्याद्गुल्फाच्छिरोमध्यात्कंठादास्यात्तथोदरात् ५१
तदा गणेश्वरैर्भद्रैर्भद्रतुल्यपराक्रमैः
संछादितमभूत्सर्वं साकाशविवरं जगत् ५२
सर्वे सहस्रहस्तास्ते सहस्रायुधपाणयः
रुद्रस्यानुचरास्सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः ५३
शूलशक्तिगदाहस्ताष्टंकोपलशिलाधराः
कालाग्निरुद्रसदृशास्त्रिनेत्राश्च जटाधराः ५४
निपेतुर्भृशमाकाशे शतशस्सिंहवाहनाः
विनेदुश्च महानादाञ्जलदा इव भद्रजाः ५५
तैर्भद्रैर्भगवान्भद्रस्तथा परिवृतो बभौ
कालानलशतैर्युक्तो यथांते कालभैरवः ५६
तेषां मध्ये समारुह्य वृषेंद्रं वृषभध्वजः
जगाम भगवान्भद्रश्शुभमभ्रं यथा भवः ५७
तस्मिन्वृषभमारूढे भद्रे तु भसितप्रभः
बभार मौक्तिकं छत्रं गृहीतसितचामरः ५८
स तदा शुशुभे पार्श्वे भद्रस्य भसितप्रभः
भगवानिव शैलेन्द्रः पार्श्वे विश्वजगद्गुरोः ५९
सोऽपि तेन बभौ भद्रः श्वेतचामरपाणिना

बालसोमेन सौम्येन यथा शूलवरायुधः ६०
दध्मौ शंखं सितं भद्रं भद्रस्य पुरतः शुभम्
भानुकंपो महातेजा हेमरत्नैरलंकृतः ६१
देवदुंदुभयो नेदुर्दिव्यसंकुलनिःस्वनाः
ववृषुश्शतशो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं बलाहकाः ६२
फुल्लानां मधुगर्भाणां पुष्पाणां गंधबंधवः
मार्गानुकूलसंवाहा वबुश्च पथि मारुताः ६३
ततो गणेश्वराः सर्वे मत्ता युद्धबलोद्धताः
ननृतुर्मुमुदुर् १नेदुर्जहसुर्जगदुर्जगुः ६४
तदा भद्रगणांतःस्थो बभौ भद्रः स भद्रया
यथा रुद्रगणांतः स्थस्त्र्यम्बकोंबिकया सह ६५
तत्क्षणादेव दक्षस्य यज्ञवाटं रणमयम्
प्रविवेश महाबाहुर्वीरभद्रो महानुगः ६६
ततस्तु दक्षप्रतिपादितस्य क्रतुप्रधानस्य गणप्रधानः
प्रयोगभूमिं प्रविवेश भद्रो रुद्रो यथांते भुवनं दिधक्षुः ६७
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
वीरभद्रोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः १९

अध्याय २०

वायुरुवाच
ततो विष्णुप्रधानानां सुराणाममितौजसाम्
ददर्श च महत्सत्रं चित्रध्वजपरिच्छदम् १
सुदर्भऋतुसंस्तीर्णं सुसमिद्धहुताशनम्
कांचनैर्यज्ञभांडैश्च भ्राजिष्णुभिरलंकृतम् २
ऋषिभिर्यज्ञपटुभिर्यथावत्कर्मकर्तृभिः

विधिना वेददृष्टेन स्वनुष्ठितबहुक्रमम् ३
देवांगनासहस्राढ्यमप्सरोगणसेवितम्
वेणुवीणारवैर्जुष्टं वेदघोषैश्च बृंहितम् ४
दृष्ट्वा दक्षाध्वरे वीरो वीरभद्रः प्रतापवान्
सिंहनादं तदा चक्रे गंभीरो जलदो यथा ५
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव
गणेश्वरैः कृतो जज्ञे महान्नयक्कृतसागरः ६
तेन शब्देन महताः ग्रस्ता सर्वेदिवौकसः
दुद्रुवुः परितो भीताः स्रस्तवस्त्रविभूषणाः ७
किंस्विद्भग्नो महामेरुः किंस्वित्संदीर्यते मही
किमिदं किमिदं वेति जजल्पुस्त्रिदशा भृशम् ८
मृगेन्द्राणां यथा नादं गजेंद्रा गहने वने
श्रुत्वा तथाविधं केचित्तत्यजुर्जीवितं भयात् ९
पर्वताश्च व्यशीर्यंत चकम्पे च वसुंधरा
मरुतश्च व्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः १०
अग्नयो नैव दीप्यंते न च दीप्यति भास्करः
ग्रहाश्च न प्रकाशंते नक्षत्राणि च तारकाः ११
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञवाटं तदुज्ज्वलम्
संप्राप भगवान्भद्रो भद्रैश्च सह भद्रया १२
तं दृष्ट्वा भीतभीतोऽपि दक्षो दृढ इव स्थितः
क्रुद्धवद्वचनं प्राह को भवान् किमिहेच्छसि १३
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षस्य च दुरात्मनः
वीरभद्रो महातेजा मेघसंभीरनिस्स्वनः १४
स्मयन्निव तमालोक्य दक्षं देवाश्च ऋत्विजः
अर्थगर्भमसंभ्रान्तमवोचदुचितं वचः १५

वीरभद्र उवाच
वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः
भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागो नस्संप्रदीयताम् १६
अथ चेदध्वरेऽस्माकं न भागः परिकल्पितः
कथ्यतां कारणं तत्र युध्यतां वा मयामरैः १७
इत्युक्तास्ते गणेंद्रेण देवा दक्षपुरोगमाः
ऊचुर्मन्त्राः प्रमाणं नो न वयं प्रभवस्त्विति १८
मन्त्रा ऊचुस्सुरा यूयं मोहोपहतचेतसः
येन प्रथमभागार्हं न यजध्वं महेश्वरम् १९
मंत्रोक्ता अपि ते देवाः सर्वे संमूढचेतसः
भद्राय न ददुर्भागं तत्प्रहाणमभीप्सवः २०
यदा तथ्यं च पथ्यं च स्ववाक्यं तद्वृथाऽभवत्
तदा ततो ययुर्मंदा ब्रह्मलोकं सनातनम् २१
अथोवाच गणाध्यक्षो देवान्विष्णुपुरोगमान्
मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः २२
यस्मादस्मिन् मखे देवैरित्थं वयमसत्कृताः
तस्माद्वो जीवितैस्सार्द्धमपनेष्यामि गर्वितम् २३
इत्युक्त्वा भगवान् क्रुद्धो व्यदहन्नेत्रवह्निना
यज्ञवाटं महाकूटं यथातिस्त्रः पुरो हरः २४
ततो गणेश्वरास्सर्वे पर्वतोदग्रविग्रहाः
यूपानुत्पाट्य होतॄ-णां कंठेष्वाबध्य रज्जुभिः २५
यज्ञपात्राणि चित्राणि भित्त्वा संचूर्ण्य वारिणि
गृहीत्वा चैव यज्ञांगं गंगास्त्रोतसि चिक्षिपुः २६
तत्र दिव्यान्नपानानां राशयः पर्वतोपमाः
क्षीरनद्योऽमृतस्त्रावाः सुस्निग्धदधिकर्दमाः २७

उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि सुरभीणि च
रसवन्ति च पानानि लेह्यचोष्याणि तानि वै २८
वीरास्तद्भुजते वक्त्रैर्विलुंपंति क्षिपंति च
वज्रैश्चक्रैर्महाशूलैश्शक्तिभिः पाशपट्टिशैः २९
मुसलैरसिभिष्टंकैर्भिंधिपालैः परश्वधैः
उद्धतांस्त्रिदशान्सर्वाँल्लोकपालपुरस्सरान् ३०
बिभिदुर्बलिनो वीरा वीरभद्रांगसंभवाः
छिंधि भिंधि क्षिप क्षिप्रं मार्यतां दार्यतामिति ३१
हरस्व प्रहरस्वेति पाटयोत्पाटयेति च
संरंभप्रभवाः क्रूराश्शब्दाः श्रवणशंकवः ३२
यत्रतत्र गणेशानां जज्ञिरे समरोचिताः
विवृत्तनयनाः केचिद्दष्टदंष्ट्रोष्ठतालवः ३३
आश्रमस्थान्समाकृष्य मारयन्ति तपोधनात्
स्रुवानपहरन्तश्च क्षिपन्तोग्निं जलेषु च ३४
कलशानपि भिन्दंतश्छिंदंतो मणिवेदिकाः
गायंतश्च नदन्तश्च हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ३५
रक्तासवं पिबन्तश्च ननृतुर्गणपुंगवाः
निर्मथ्य सेंद्रानमरान् गणेन्द्रान्वृषेन्द्रनागेन्द्रमृगेन्द्रसाराः ३६
चक्रुर्बहून्यप्रतिमभावाः सहर्षरोमाणि विचेष्टितानि
नन्दंति केचित्प्रहरन्ति केचिद्धावन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ३७
नृत्यन्ति केचिद्विहसन्ति केचिद्वल्गन्ति केचित्प्रमथा बलेन ३८
केचिज्जिघृक्षंति घनान्स तोयान्केचिद्ग्रहीतुं रविमुत्पतंति
केचित्प्रसर्तुं पवनेन सार्द्धमिच्छंति भीमाः प्रमथा वियत्स्थाः ३९
आक्षिप्य केचिच्च वरायुधानि महा भुजंगानिव वैनतेयाः
भ्रमंति देवानपि विद्रवंतः खमंडले पर्वतकूटकल्पाः ४०

उत्पाट्य चोत्पाट्यगृहाणि केचित्सजालवातायनवेदिकानि
विक्षिप्य विक्षिप्य जलस्य मध्ये कालांबुदाभाः प्रमथा निनेदुः ४१
उद्वर्तितद्वारकपाटकुड्यं विध्वस्तशालावलभीगवाक्षम्
अहो बताभज्यत यज्ञवाटमनाथवद्वाक्यमिवायथार्थम् ४२
हा नाथ तातेति पितुः सुतेति भ्रतर्ममाम्बेति च मातुलेति
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्यो ह्यनाथशब्दान्बहुशः प्रचक्रुः ४३
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
यज्ञविध्वंसनो नाम विंशोऽध्यायः २०

अध्याय २१

वायुरुवाच
ततस्त्रिदशमुख्यास्ते विष्णुशक्रपुरोगमाः
सर्वे भयपरित्रस्तादुद्रुवुर्भयविह्वलाः १
निजैरदूषितैरंगैर्दृष्ट्वा देवानुपद्रुतान्
दंड्यानदंडितान्मत्वा चुकोप गणपुंगवः २
ततस्त्रिशूलमादाय शर्वशक्तिनिबर्हणम्
ऊर्ध्वदृष्टिर्महाबाहुर्मुखाज्ज्वालाः समुत्सृजन् ३
अमरानपि दुद्राव द्विरदानिव केसरी
तानभिद्रवतस्तस्य गमनं सुमनोहरम् ४
वारणस्येव मत्तस्य जगाम प्रेक्षणीयताम्
ततस्तत्क्षोभयामास महत्सुरबलं बली ५
महासरोवरं यद्वन्मत्तो वारणयूथपः
विकुर्वन्बहुधावर्णान्नीलपांडुरलोहितान् ६
बिभ्रद्व्याघ्राजिनं वासो हेमप्रवरतारकम्
छिन्दन्भिन्दन्नुद १क्लिन्दन्दारयन्प्रमथन्नपि ७

व्यचरद्देवसंघेषु भद्रोऽग्निरिव कक्षगः
तत्र तत्र महावेगाच्चरंतं शूलधारिणम् ८
तमेकं त्रिदशाः सर्वे सहस्रमिव मेनिरे
भद्रकाली च संक्रुद्धा युद्धवृद्धमदोद्धता ९
मुक्तज्वालेन शूलेन निर्बिभेद रणे सुरान्
स तया रुरुचे भद्रो रुद्रकोपसमुद्भवः १०
प्रभयेव युगांताग्निश्चलया धूमधूम्रया
भद्रकाली तदायुद्धे विद्रुतत्रिदशाबभौ ११
कल्पे शेषानलज्वालादग्धाविश्वजगद्यथा
तदा सवाजिनं सूर्यं रुद्रान्रुद्रगणाग्रणीः १२
भद्रो मूर्ध्नि जघानाशु वामपादेन लीलया
असिभिः पावकं भद्रः पट्टिशैस्तु यमं यमी १३
रुद्रान्दृढेन शूलेन मुद्गरैर्वरुणं दृढैः
परिघैर्निर्ऋतिं वायुं टंकैष्टंकधरः स्वयम् १४
निर्बिभेद रणे वीरो लीलयैव गणेश्वरः
सर्वान्देवगणान्सद्यो मुनीञ्छंभोर्विरोधिनः १५
ततो देवः सरस्वत्या नासिकाग्रं सुशोभनम्
चिच्छेद करजाग्रेण देवमातुस्तथैव च १६
चिच्छेद च कुठारेण बाहुदंडं विभावसोः
अग्रतो द्व्यंगुलां जिह्वां मातुर्देव्या लुलाव च १७
स्वाहादेव्यास्तथा देवो दक्षिणं नासिकापुटम्
चकर्त करजाग्रेण वामं च स्तनचूचुकम् १८
भगस्य विपुले नेत्रे शतपत्रसमप्रभे
प्रसह्योत्पाटयामास भद्रः परमवेगवान् १९
पूष्णो दशनरेखां च दीप्तां मुक्तावलीमिव

जघान धनुषः कोटया स तेनास्पष्टवागभूत् २०
ततश्चंद्रमसं देवः पादांगुष्ठेन लीलया
क्षणं कृमिवदाक्रम्य घर्षयामास भूतले २१
शिरश्चिच्छेद दक्षस्य भद्रः परमकोपतः
क्रोशंत्यामेव वैरिण्यां भद्रकाल्यै ददौ च तत् २२
तत्प्रहृष्टा समादाय शिरस्तालफलोपमम्
सा देवी कंडुकक्रीडां चकार समरांगणे २३
ततो दक्षस्य यज्ञस्त्री कुशीला भर्तृभिर्यथा
पादाभ्यां चैव हस्ताभ्यां हन्यते स्म गणेश्वरैः २४
अरिष्टनेमिने सोमं धर्मं चैव प्रजापतिम्
बहुपुत्रं चांगिरसं कृशाश्वं कश्यपं तथा २५
गले प्रगृह्य बलिनो गणपाः सिंहविक्रमाः
भर्त्सयंतो भृशं वाग्भिर्निर्जघ्नुर्मूर्ध्नि मुष्टिभिः २६
धर्षिता भूतवेतालैर्दारास्सुतपरिग्रहाः
यथा कलियुगे जारैर्बलेन कुलयोषितः २७
तच्च विध्वस्तकलशं भग्नयूपं गतोत्सवम्
प्रदीपितमहाशालं प्रभिन्नद्वारतोरणम् २८
उत्पाटितसुरानीकं हन्यमानं तपोधनम्
प्रशान्तब्रह्मनिर्घोषं प्रक्षीणजनसंचयम् २९
क्रन्दमानातुरस्त्रीकं हताशेषपरिच्छदम्
शून्यारण्यनिभं जज्ञे यज्ञवाटं तदार्दितम् ३०
शूलवेगप्ररुग्णाश्च भिन्नबाहूरुवक्षसः
विनिकृत्तोत्तमांगाश्च पेतुरुर्व्यां सुरोत्तमाः ३१
हतेषु तेषु देवेषु पतितेषुः सहस्रशः
प्रविवेश गणेशानः क्षणादाहवनीयकम् ३२

प्रविष्टमथ तं दृष्ट्वा भद्रं कालाग्निसंनिभम्
दुद्राव मरणाद्भीतो यज्ञो मृगवपुर्धरः ३३
स विस्फार्य्य महच्चापं दृढज्याघोषणभीषणम्
भद्रस्तमभिदुद्राव विक्षिपन्नेव सायकान् ३४
आकर्णपूर्णमाकृष्टं धनुरम्बुदसंनिभम्
नादयामास च ज्यां द्यां खं च भूमिं च सर्वशः ३५
तमुपश्रित्य सन्नादं हतोऽस्मीत्येव विह्वलम्
शरणार्धेन वक्रेण स वीरोऽध्वरपूरुषम् ३६
महाभयस्खलत्पादं वेपन्तं विगतत्विषम्
मृगरूपेण धावन्तं विशिरस्कं तदाकरोत् ३७
तमीदृशमवज्ञातं दृष्ट्वा वै सूर्यसंभवम्
विष्णुः परमसंक्रुद्धो युद्धायाभवदुद्यतः ३८
तमुवाह महावेगात्स्कन्धेन नतसंधिना
सर्वेषां वयसां राजा गरुडः पन्नगाशनः ३९
देवाश्च हतशिष्टा ये देवराजपुरोगमाः
प्रचक्रुस्तस्य साहाय्यं प्राणांस्त्यक्तुमिवोद्यताः ४०
विष्णुना सहितान्देवान्मृगेन्द्रः क्रोष्टुकानिव
दृष्ट्वा जहास भूतेन्द्रो मृगेन्द्र इव विव्यथः ४१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
देवदंडवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः २१

अध्याय २२

तस्मिन्नवसरे व्योम्नि समाविरभवद्रथः
सहस्रसूर्यसंकाशश्चारुचीरवृषध्वजः १
अश्वरत्नद्वयोदारो रथचक्रचतुष्टयः

सञ्चितानेकदिव्यास्त्रशस्त्ररत्नपरिष्कृतः २
तस्यापि रथवर्यस्य स्यात्स एव हि सारथिः
यथा च त्रैपुरे युद्धे पूर्वं शार्वरथे स्थितः ३
स तं रथवरं ब्रह्मा शासनादेव शूलिनः
हरेस्समीपमानीय कृताञ्जलिरभाषत ४
भगवन्भद्र भद्रांग भगवानिन्दुभूषणः
आज्ञापयति वीरस्त्वां रथमारोढुमव्ययः ५
रेभ्याश्रमसमीपस्थस्त्र्यंबकोऽबिकया सह
सम्पश्यते महाबाहो दुस्सहं ते पराक्रमम् ६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स वीरो गणकुञ्जरः
आरुरोह रथं दिव्यमनुगृह्य पितामहम् ७
तथा रथवरे तस्मिन्स्थिते ब्रह्मणि सारथौ
भद्रस्य ववृधे लक्ष्मी रुद्रस्येव पुरद्विषः ८
ततः शंखवरं दीप्तं पूर्णचंद्रसमप्रभम्
प्रदध्मौ वदने कृत्वा भानुकंपो महाबलः ९
तस्य शंखस्य तं नादं भिन्नसारससन्निभम्
श्रुत्वा भयेन देवानां जज्वाल जठरानलः १०
यक्षविद्याधराहीन्द्रैः सिद्धैर्युद्धदिदृक्षुभिः
क्षणेन निबडीभूताः साकाशविवरा दिशाः ११
ततः शार्ङ्गेण चापाण्कात्स नारायणनीरदः
महता बाणवर्षेण तुतोद गणगोवृषम् १२
तं दृष्ट्वा विष्णुमायांतं शतधा बाणवर्षिणम्
स चाददे धनुर्जैत्रं भद्रो बाणसहस्त्रमुक् १३
समादाय च तद्दिव्यं धनुस्समरभैरवम्
शनैर्विस्फारयामास मेरुं धनुरिवेश्वरः १४

तस्य विस्फार्य्यमाणस्य धनुषोऽभून्महास्वनः
तेन स्वनेन महता पृथिवीं समकंपयत् १५
ततः शरवरं घोरं दीप्तमाशीविषोपमम्
जग्राह गणपः श्रीमान्स्वयमुग्रपराक्रमः १६
बाणोद्धारे भुजो ह्यस्य तूणीवदनसंगतः
प्रत्यदृश्यत वल्मीकं विविक्षुरिव पन्नगः १७
समुद्धृतः करे तस्य तत्क्षणं रुरुचे शरेः
महाभुजंगसंदष्टो यथा बालभुजङ्गमः १८
शरेण घनतीव्रेण भद्रो रुद्रपराक्रमः
विव्याध कुपितो गाढं ललाटे विष्णुमव्ययम् १९
ललाटेऽभिहितो विष्णुः पूर्वमेवावमानितः
चुकोप गणपेंद्राय मृगेंद्रायेव गोवृषः २०
ततस्त्वशनिकल्पेन क्रूरास्येन महेषुणा
विव्याध गणराजस्य भुजे भुजगसन्निभे २१
सोऽपि तस्य भुजे भूयः सूर्यायुतसमप्रभम्
विससर्ज शरं वेगाद्वीरभद्रो महाबलः २२
स च विष्णुः पुनर्भद्रं भद्रो विष्णुं तथा पुनः
स च तं स च तं विप्राश्शरैस्तावनुजघ्नतुः २३
तयोः परस्परं वेगाच्छरानाशु विमुंचतोः
द्वयोस्समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् २४
तदृष्ट्वा तुमुलं युद्धं तयोरेव परस्परम्
हाहाकारो महानासीदाकाशे खेचरेरितः २५
ततस्त्वनलतुंडेन शरेणादित्यवर्चसा
विव्याध सुदृढं भद्रो विष्णोर्महति वक्षसि २६
स तु तीव्रप्रपातेन शरेण दृढमाहतः

महतीं रुजमासाद्य निपपात विमोहितः २७
पुनः क्षणादिवोत्थाय लब्धसंज्ञस्तदा हरिः
सर्वाण्यपि च दिव्यास्त्राण्यथैनं प्रत्यवासृजत् २८
स च विष्णुर्धनुर्मुक्तान्सर्वाञ्छर्वचमूपतिः
सहसा वारयामास घोरैः प्रतिशरैः शरान् २९
ततो विष्णुस्स्वनामांकं बाणमव्याहतं क्वचित्
ससर्ज क्रोधरक्ताक्षस्तमुद्दिश्य गणेश्वरम्
तं बाणं बाणवर्येण भद्रो भद्राह्वयेण तु ३०
अप्राप्तमेव भगवाञ्चिच्छेद शतधा पथि
अथैकेनेषुणा शार्ङ्गं द्वाभ्यां पक्षौ गरुत्मतः ३१
निमेषादेव चिच्छेद तदद्भुतमिवाभवत्
ततो योगबलाद्विष्णुर्देहाद्देवान्सुदारुणान् ३२
शंखचक्रगदाहस्तान् विससर्ज सहस्रशः
सर्वांस्तान्क्षणमात्रेण त्रैपुरानिव शंकरः ३३
निर्ददाह महाबाहुर्नेत्रसृष्टेन वह्निना
ततः क्रुद्धतरो विष्णुश्चक्रमुद्यम्य सत्वरः ३४
तस्मिन्वीरो समुत्स्रष्टुं तदानीमुद्यतोऽभवत्
तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य पुरतः समुपस्थितम् ३५
स्मयन्निव गणेशानो व्यष्टंभयदयत्नतः
स्तंभितांगस्तु तच्चक्रं घोरमप्रतिमं क्वचित् ३६
इच्छन्नपि समुत्स्रष्टुं न विष्णुरभवत्क्षमः
श्वसन्निवैकमुद्धृत्य बाहुं चक्रसमन्वितम् ३७
अतिष्ठदलसो भूत्वा पाषाण इव निश्चलः
विशरीरो यथाजीवो विशृङ्गो वा यथा वृषः ३८
विदंष्ट्रश्च यथा सिंहस्तथा विष्णुरवस्थितः

तं दृष्ट्वा दुर्दशापन्नं विष्णुमिंद्रादयः सुराः
समुन्नद्धा गणेन्द्रेण मृगेंद्रेणेव गोवृषाः ३९
प्रगृहीतायुधा यौद्धुंक्रुद्धाः समुपतस्थिरे
तान्दृष्ट्वा समरे भद्रः क्षुद्रानिव हरिर्मृगान् ४०
साक्षाद्रुद्रतनुर्वीरो वरवीरगणावृतः
अट्टहासेन घोरेण व्यष्टं भयदनिंदितः ४१
तथा शतमखस्यापि सवज्रो दक्षिणः करः
सिसृक्षोरेव उद्वज्रश्चित्रीकृत इवाभवत् ४२
अन्येषामपि सर्वेषां सरक्ता अपि बाहवः
अलसानामिवारंभास्तादृशाः प्रतियांत्युत ४३
एवं भगवता तेन व्याहताशेषवैभवात्
अमराः समरे तस्य पुरतः स्थातुमक्षमाः ४४
स्तब्धैरवयवैरेव दुद्रुवुर्भयविह्वलाः
स्थितिं च चक्रिरे युद्धे वीरतेजोभयाकुलाः ४५
विद्रुतांस्त्रिदशान्वीरान्वीरभद्रो महाभुजः ४६ब्
विव्याध निशितैर्बाणैर्मघो वर्षैरिवाचलान् ४६
बहवस्तस्य वीरस्य बाहवः परिघोपमाः
शस्त्रैश्चकाशिरे दीप्तैः साग्निज्वाला इवोरगाः ४७
अस्त्रशस्त्राण्यनेकानिसवीरो विसृजन्बभौ
विसृजन्सर्वभूतानि यथादौ विश्वसंभवः ४८
यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम्
तथा वीरः क्षणादेव शरैः प्राच्छादयद्दिशः ४९
खमंडले गणेन्द्रस्य शराः कनकभूषिताः
उत्पतंतस्तडिद्रूपैरुपमानपदं ययुः ५०
महांतस्ते सुरगणान् मंडूकानिवडुंडुभाः

प्राणैर्वियोजयामासुः पपुश्च रुधिरासवम् ५१
निकृत्तबाहवः केचित्केचिल्लूनवराननाः
पार्श्वे विदारिताः केचिन्निपेतुरमरा भुवि ५२
विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बहुभिश्छिन्नसन्धिभिः
विवृत्तनयनाः केचिन्निपेतुर्भूतले मृताः
गां प्रवेष्टुमिवेच्छंतः खं गंतुमिव लिप्सवः ५३
अलब्धात्मनिरोधानां व्यलीयंतः परस्परम्
भूमौ केचित्प्रविविशुः पर्वतानां गुहाः परे ५४
अपरे जग्मुराकाशं परे च विविशुर्जलम्
तथा संछिन्नसर्वांगैस्स वीरस्त्रिदशैर्बभौ ५५
परिग्रस्तप्रजावर्गो भगवानिव भैरवः
दग्धत्रिपुरसंव्यूहस्त्रिपुरारिर्यथाभवत् ५६
एवं देवबलं सर्वं दीनं बीभत्सदर्शनम्
गणेश्वरसमुत्पन्नं कृपणं वपुराददे ५७
तदा त्रिदशवीराणामसृक्सलिलवाहिनी
प्रावर्तत नदी घोरा प्राणिनां भयशंसिनी ५८
रुधिरेण परिक्लिन्ना यज्ञभूमिस्तदा बभौ
रक्तार्द्रवसना श्यामा हतशुंभेव कैशिकी ५९
तस्मिन्महति संवृत्ते समरे भृशदारुणे
भयेनेव परित्रस्ता प्रचचाल वसुन्धरा ६०
महोर्मिकलिलावर्तश्चुक्षुभे च महोदधिः
पेतुश्चोल्का महोत्पाताः शाखाश्च मुमुचुर्द्रुमाः ६१
अप्रसन्ना दिशः सर्वाः पवनश्चाशिवो ववौ
अहो विधिविपर्यासस्त्वश्वमेधोयमध्वरः
यजमानस्स्वयं दक्षो ब्रह्मपुत्रप्रजापतिः ६२

धर्मादयस्सदस्याश्च रक्षिता गरुडध्वजः
भागांश्च प्रतिगृह्णंति साक्षादिंद्रादयः सुराः ६३
तथापि यजमानस्य यज्ञस्य च सहर्त्विजः
सद्य एव शिरश्छेदस्साधु संपद्यते फलम् ६४
तस्मान्नावेदनिर्दिष्टं न चेश्वरबहिष्कृतम्
नासत्परिगृहीतं च कर्म कुर्यात्कदाचन ६५
कृत्वापि सुमहत्पुण्यमिष्ट्वा यज्ञशतैरपि
न तत्फलमवाप्नोति भक्तिहीनो महेश्वरे ६६
कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या यजति यश्शिवम्
मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ६७
बहुनात्र किमुक्तेन वृथा दानं वृथा तपः
वृथा यज्ञो वृथा होमः शिवनिन्दारतस्य तु ६८
ततः सनारायणकास्सरुद्राः सलोकपालास्समरे सुरौघाः
गणेंद्रचापच्युतबाणविद्धाः प्रदुद्रुवुर्गाढरुजाभिभूताः ६९
चेलुः क्वचित्केचन शीर्णकेशाः सेदुः क्वचित्केचन दीर्घगात्राः
पेतुः क्वचित्केचन भिन्नवक्त्रा नेशुः क्वचित्केचन देववीराः ७०
केचिच्च तत्र त्रिदशा विपन्ना विस्त्रस्तवस्त्राभरणास्त्रशस्त्राः
निपेतुरुद्भासितदीनमुद्रा मदं च दर्पं च बलं च हित्वा ७१
सस्मुत्पथप्रस्थितमप्रधृष्यो विक्षिप्य दक्षाध्वरमक्षतास्त्रैः
बभौ गणेशस्स गणेश्वराणां मध्ये स्थितः सिंह इवर्षभाणाम् ७२
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः २२

अध्याय २३

वायुरुवाच
इति सञ्छिन्नभिन्नांगा देवा विष्णुपुरोगमाः
क्षणात्कष्टां दशामेत्य त्रेसुः स्तोकावशेषिता १
त्रस्तांस्तान्समरे वीरान् देवानन्यांश्च वै गणाः
प्रमथाः परमक्रुद्धा वीरभद्रप्रणोदिताः २
प्रगृह्य च तथा दोषं निगडैरायसैर्दृढैः
बबन्धुः पाणिपादेषु कंधरेषूदरेषु च ३
तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा भद्रमद्रीन्द्रजानुतम्
सारथ्याल्लब्धवात्सल्यः प्रार्थयन् प्रणतोऽब्रवीत् ४
अलं क्रोधेन भगवन्नष्टाश्चैते दिवौकसः
प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैस्सह सुव्रत ५
एवं विज्ञापितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना
शमं जगाम संप्रीतो गणपस्तस्य गौरवात् ६
देवाश्च लब्धावसरा देवदेवस्य मंत्रिणः
धारयन्तोऽञ्जलीन्मूर्ध्नि तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ७
देवा ऊचुः
नमः शिवाय शान्ताय यज्ञहन्त्रे त्रिशूलिने
रुद्रभद्राय रुद्राणां पतये रुद्रभूतये ८
कालाग्निरुद्ररूपाय कालकामांगहारिणे
देवतानां शिरोहन्त्रे दक्षस्य च दुरात्मनः ९
संसर्गादस्य पापस्य दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः
शासिताः समरे वीर त्वया वयमनिन्दिता १०
दग्धाश्चामी वयं सर्वे त्वत्तो भीताश्च भो प्रभो
त्वमेव गतिरस्माकं त्राहि नश्शरणागतान् ११

वायुरुवाच
तुष्टस्त्वेवं स्तुतो देवान् विसृज्य निगडात्प्रभुः
आनयद्देवदेवस्य समीपममरानिह १२
देवोपि तत्र भगवानन्तरिक्षे स्थितः प्रभुः
सगणः सर्वगः शर्वस्सर्वलोकमहेश्वरः १३
तं दृष्ट्वा परमेशानं देवा विष्णुपुरोगमाः
प्रीता अपि च भीताश्च नमश्चक्रुर्महेश्वरम् १४
दृष्ट्वा तानमरान्भीतान्प्रणतार्तिहरो हरः
इदमाह महादेवः प्रहसन् प्रेक्ष्य पार्वतीम् १५
महादेव उवाच
माभैष्ट त्रिदशास्सर्वे यूयं वै मामिकाः प्रजाः
अनुग्रहार्थमेवेह धृतो दंडः कृपालुना १६
भवतां निर्जराणां हि क्षान्तोऽस्माभिर्व्यतिक्रमः
क्रुद्धेष्वस्मासु युष्माकं न स्थितिर्न च जीवितम् १७
वायुरुवाच
इत्युक्तास्त्रिदशास्सर्वे शर्वेणामिततेजसा
सद्यो विगतसन्देहा ननृतुर्विबुधा मुदा १८
प्रसन्नमनसो भूत्वानन्दविह्वलमानसाः
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं शंकरस्य दिवौकसः १९
देवा ऊचुः
त्वमेव देवाखिललोककर्ता पाता च हर्ता परमेश्वरोऽसि
कविष्णुरुद्राख्यस्वरूपभेदै रजस्तमस्सत्त्वधृतात्ममूर्त्ते २०
सर्वमूर्त्ते नमस्तेऽस्तु विश्वभावन पावन
अमूर्त्ते भक्तहेतोर्हि गृहीताकृतिसौख्यद २१
चंद्रोऽगदो हि देवेश कृपातस्तव शंकर

निमज्ञनान्मृतः प्राप सुखं मिहिरजाजलिः २२
सीमन्तिनी हतधवा तव पूजनतः प्रभो
सौभाग्यमतुलं प्राप सोमवारव्रतात्सुतान् २३
श्रीकराय ददौ देवः स्वीयं पदमनुत्तमम्
सुदर्शनमरक्षस्त्वं नृपमंडलभीतितः २४
मेदुरं तारयामास सदारं च घृणानिधिः
शारदां विधवां चक्रे सधवां क्रियया भवान् २५
भद्रायुषो विपत्तिं च विच्छिद्य त्वमदाः सुखम्
सौमिनी भवबन्धाद्वै मुक्ताऽभूत्तव सेवनात् २६
विष्णुरुवाच
त्वं शंभो कहरीशाश्च रजस्सत्त्वतमोगुणैः
कर्ता पाता तथा हर्ता जनानुग्रहकांक्षया २७
सर्वगर्वापहारी च सर्वतेजोविलासकः
सर्वविद्यादिगूढश्च सर्वानुग्रहकारकः २८
त्वत्तः सर्वं च त्वं सर्वं त्वयि सर्वं गिरीश्वर
त्राहि त्राहि पुनस्त्राहि कृपां कुरु ममोपरि २९
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रणिपत्य कृतांजलिः
एवं त्ववसरं प्राप्य व्यज्ञापयत शूलिने ३०
ब्रह्मोवाच
जय देव महादेव प्रणतार्तिविभंजन
ईदृशेष्वपराधेषु कोऽन्यस्त्वत्तः प्रसीदति ३१
लब्धमानो भविष्यंति ये पुरा निहिता मृधे
प्रत्यापत्तिर्न कस्य स्यात्प्रसन्ने परमेश्वरे ३२
यदिदं देवदेवानां कृतमन्तुषु दूषणम्
तदिदं भूषणं मन्येत अंगीकारगौरवात् ३३

इति विज्ञाप्यमानस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना
विलोक्य वदनं देव्या देवदेवस्स्मयन्निव ३४
पुत्रभूतस्य वात्सल्याद्ब्रह्मणः पद्मजन्मनः
देवादीनां यथापूर्वमंगानि प्रददौ प्रभुः ३५
प्रथमाद्यैश्च या देव्यो दंडिता देवमातरः
तासामपि यथापूर्वाण्यंगानि गिरिशो ददौ ३६
दक्षस्य भगवानेव स्वयं ब्रह्मा पितामहः
तत्पापानुगुणं चक्रे जरच्छागमुखं मुखम् ३७
सोऽपि संज्ञां ततो लब्ध्वा स दृष्ट्वा जीवितः सुधी
भीतः कृताञ्जलिः शंभुं तुष्टाव प्रलपन्बहु ३८
दक्ष उवाच
जय देव जगन्नाथ लोकानुग्रहकारक
कृपां कुरु महेशानापराधं मे क्षमस्व ह ३९
कर्त्ता भर्त्ता च हर्ता च त्वमेव जगतां प्रभो
मया ज्ञातं विशेषेण विष्णवादिसकलेश्वरः ४०
त्वयैव विततं सर्वं व्याप्तं सृष्टं न नाशितम्
न हि त्वदधिकाः केचिदीशास्तेऽच्युतकादयः ४१
वायुरुवाच
तं तथा व्याकुलं भीतं प्रलपंतं कृतागसम्
स्मयन्निवावदत्प्रेक्ष्य मा भैरिति १ घृणानिधिः ४२
तथोक्त्वा ब्रह्मणस्तस्य पितुः प्रियचिकीर्षया
गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्षयमीश्वरः ४३
ततो ब्रह्मादयो देवा अभिवंद्य कृत २ंजलिः
तुष्टुवुः प्रश्रया वाचा शंकरं गिरिजाधिपम् ४४
ब्रह्मादय ऊचुः

जय शंकर देवेश दीनानाथ महाप्रभो
कृपां कुरु महेशानापराधं नो क्षमस्व वै ४५
मखपाल मखाधीश मखविध्वंसकारक
कृपां कुरु मशानापराधं नः क्षमस्व वै ४६
देवदेव परेशान भक्तप्राणप्रपोषक
दुष्टदण्डप्रद स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ४७
त्वं प्रभो गर्वहर्ता वै दुष्टानां त्वामजानताम्
रक्षको हि विशेषेण सतां त्वत्सक्तचेतसाम् ४८
अद्भुतं चरितं ते हि निश्चितं कृपया तव
सर्वापराधः क्षंतव्यो विभवो दीनवत्सलाः ४९
वायुरुवाच
इति स्तुतो महादेवो ब्रह्माद्यैरमरैः प्रभुः
स भक्तवत्सलस्स्वामी तुतोष करुणोदधिः ५०
चकारानुग्रहं तेषां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम्
ददौ नरांश्च सुप्रीत्या शंकरो दीनवत्सलः ५१
स च ततस्त्रिदशाञ्छरणागतान् परमकारुणिकः परमेश्वरः
अनुगतस्मितलक्षणया गिरा शमितसर्वभयः समभाषत ५२
शिव उवाच
यदिदमाग इहाचरितं सुरैर्विधिनियोगवशादिव यन्त्रितैः
शरणमेव गतानवलोक्य वस्तदखिलं किल विस्मृतमेव नः ५३
तदिह यूयमपि प्रकृतं मनस्यविगणय्य विमर्दमपत्रपाः
हरिविरिंचिसुरेन्द्रमुखास्सुखं व्रजत देवपुरं प्रति संप्रति ५४
इति सुरानभिधाय सुरेश्वरो निकृतदक्षकृतक्रतुरक्रतुः
सगिरिजानुचरस्सपरिच्छदः स्थित इवाम्बरतोन्तरधाद्धरः ५५
अथ सुरा अपि ते विगतव्यथाः कथितभद्रसुभद्रपराक्रमाः

सपदि खेन सुखेन यथासुखं ययुरनेकमुखाः मघवन्मुखाः ५६
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
गिरिशानुनयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः २३

अध्याय २४

ऋषय ऊचुः
अन्तर्धानगतो देव्या सह सानुचरो हरः
क्व यातः कुत्र वासः किं कृत्वा विरराम ह १
वायुरुवाच
महीधरवरः श्रीमान् मंदरश्चित्रकंदरः
दयितो देवदेवस्य निवासस्तपसोऽभवत् २
तपो महत्कृतं तेन वोढुं स्वशिरसा शिवौ
चिरेण लब्धं तत्पादपंकजस्पर्शजं सुखम् ३
तस्य शैलस्य सौन्दर्य्यं सहस्रवदनैरपि
न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ४
शक्यमप्यस्य सौन्दर्य्यं न वर्णयितुमुत्सहे
पर्वतान्तरसौन्दर्य्यं साधारणविधारणात् ५
इदन्तु शक्यते वक्तुमस्मिन्पर्वतसुन्दरे
ऋद्ध्या कयापि सौन्दर्यमीश्वरावासयोग्यता ६
अत एव हि देवेन देव्याः प्रियचिकीर्षया
अतीव रमणीयोयं गिरिरन्तःपुरीकृतः ७
मेखलाभूमयस्तस्य विमलोपलपादपाः
शिवयोर्नित्यसान्निध्यान्नयक्कुर्वंत्यखिलंजगत् ८
पितृभ्यां जगतो नित्यं स्नानपानोपयोगतः
अवाप्तपुण्यसंस्कारः प्रसरद्भिरितस्ततः ९

लघुशीतलसंस्पर्शैरच्छाच्छैर्निर्झराम्बुभिः
अधिराज्येन चाद्रीणामद्रीरेषोऽभिषिच्यते १०
निशासु शिखरप्रान्तर्वर्तिना स शिलोच्चयः
चंद्रेणाचल साम्राज्यच्छत्रेणेव विराजते ११
स शैलश्चंचलीभूतैर्बालैश्चामरयोषिताम्
सर्वपर्वतसाम्राज्यचामरैरिव वीज्यते १२
प्रातरभ्युदिते भानौ भूधरो रत्नभूषितः
दर्पणे देहसौभाग्यं द्रष्टुकाम इव स्थितः १३
कूजद्विहंगवाचालैर्वातोद्धृतलताभुजैः
विमुक्तपुष्पैः सततं व्यालम्बिमृदुपल्लवैः १४
लताप्रतानजटिलैस्तरुभिस्तपसैरिव
जयाशिषा सहाभ्यर्च्य निषेव्यत इवाद्रिराट् १५
अधोमुखैरूर्द्ध्वमुखैश्शृंगैस्तिर्यगमुखैस्तथा
प्रपतन्निव पाताले भूपृष्ठादुत्पतन्निव १६
परीतः सर्वतो दिक्षु भ्रमन्निव विहायसि
पश्यन्निव जगत्सर्वं नृत्यन्निव निरन्तरम् १७
गुहामुखैः प्रतिदिनं व्यात्तास्यो विपुलोदरैः
अजीर्णलावण्यतया जृंभमाण इवाचलः १८
ग्रसन्निव जगत्सर्वं पिबन्निव पयोनिधिम्
वमन्निव तमोन्तस्थं माद्यन्निव खमम्बुदैः १९
निवास भूमयस्तास्ता दर्पणप्रतिमोदराः
तिरस्कृतातपास्स्निग्धाश्रमच्छायामहीरुहाः २०
सरित्सरस्तडागादिसंपर्कशिशिरानिलाः
तत्र तत्र निषण्णाभ्यां शिवाभ्यां सफलीकृताः २१
तमिमं सर्वतः श्रेष्ठं स्मृत्वा साम्बस्त्रियम्बकः

रैभ्याश्रमसमीपस्थश्चान्तर्धानं गतो ययौ २२
तत्रोद्यानमनुप्राप्य देव्या सह महेश्वरः
रराम रमणीयासु देव्यान्तःपुरभूमिषु २३
तथा गतेषु कालेषु प्रवृद्धासु प्रजासु च
दैत्यौ शुंभनिशुंभाख्यौ भ्रातरौ संबभूवतुः २४
ताभ्यां तपो बलाद्दत्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना
अवध्यत्वं जगत्यस्मिन्पुरुषैरखिलैरपि २५
अयोनिजा तु या कन्या ह्यंबिकांशसमुद्भवा
अजातपुंस्पर्शरतिरविलंघ्यपराक्रमा २६
तया तु नौ वधः संख्ये तस्यां कामाभिभूतयोः
इति चाभ्यर्थितो ब्रह्मा ताभ्याम्प्राह तथास्त्विति २७
ततः प्रभृति शक्रादीन्विजित्य समरे सुरान्
निःस्वाध्यायवषट्कारं जगच्चक्रतुरक्रमात् २८
तयोर्वधाय देवेशं ब्रह्माभ्यर्थितवान्पुनः
विनिंद्यापि रहस्यं वां क्रोधयित्वा यथा तथा २९
तद्वर्णकोशजां शक्तिमकामां कन्यकात्मिकाम्
निशुम्भशुंभयोर्हंत्रीं सुरेभ्यो दातुमर्हसि ३०
एवमभ्यर्थितो धात्रा भगवान्नीललोहितः
कालीत्याह रहस्यं वां निन्दयन्निव सस्मितः ३१
ततः क्रुद्धा तदा देवी सुवर्णा वर्णकारणात्
स्मयन्ती चाह भर्तारमसमाधेयया गिरा ३२
देव्युवाच
ईदृशो मम वर्णेस्मिन्न रतिर्भवतोऽस्ति चेत्
एवावन्तं चिरं कालं कथमेषा नियम्यते ३३
अरत्या वर्तमानोऽपि कथं च रमसे मया

न ह्यशक्यं जगत्यस्मिन्नीश्वरस्य जगत्प्रभोः ३४
स्वात्मारामस्य भवतो रतिर्न सुखसाधनम्
इति हेतोः स्मरो यस्मात्प्रसभं भस्मसात्कृतः ३५
या च नाभिमता भर्तुरपि सर्वांगसुन्दरी
सा वृथैव हि जायेत सर्वैरपि गुणान्तरैः ३६ शेषो हि सर्ग एवैष योषिताम्
तथासत्यन्यथाभूता नारी कुत्रोपयुज्यते ३७
तस्माद्वर्णमिमं त्यक्त्वा त्वया रहसि निन्दितम्
वर्णान्तरं भजिष्ये वा न भजिष्यामि वा स्वयम् ३८
इत्युक्त्वोत्थाय शयनाद्देवी साचष्ट गद्गदम्
ययाचेऽनुमतिं भर्तुस्तपसे कृतनिश्चया ३९
तथा प्रणयभंगेन भीतो भूतपतिः स्वयम्
पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत ४०
ईश्वर उवाच
अजानती च क्रीडोक्तिं प्रिये किं कुपितासि मे
रतिः कुतो वा जायेत त्वत्तश्चेदरतिर्मम ४१
माता त्वमस्य जगतः पिताहमधिपस्तथा
कथं तदुत्पपद्येत त्वत्तो नाभिरतिर्मम ४२
आवयोरभिकामोऽपि किमसौ कामकारितः
यतः कामसमुत्पत्तिः प्रागेव जगदुद्भवः ४३
पृथग्जनानां रतये कामात्मा कल्पितो मया
ततः कथमुपालब्धः कामदाहादहं त्वया ४४
मां वै त्रिदशसामान्यं मन्यमानो मनोभवः
मनाक्परिभवं कुर्वन्मया वै भस्मसात्कृतः ४५
विहारोप्यावयोरस्य जगतस्त्राणकारणात्

ततस्तदर्थं त्वय्यद्य क्रीडोक्तिं कृतवाहनम् ४६
स चायमचिरादर्थस्तवैवाविष्करिष्यते
क्रोधस्य जनकं वाक्यं हृदि कृत्वेदमब्रवीत् ४७
देव्युवाच
श्रुतपूर्वं हि भगवंस्तव चाटु वचो मया
येनैवमतिधीराहमपि प्रागभिवंचिता ४८
प्राणानप्यप्रिया भर्तुर्नारी या न परित्यजेत्
कुलांगना शुभा सद्भिः कुत्सितैव हि गम्यते ४९
भूयसी च तवाप्रीतिरगौरमिति मे वपुः
क्रीडोक्तिरपि कालीति घटते कथमन्यथा ५०
सद्भिर्विगर्हितं तस्मात्तव कार्ष्णर्यमसंमतम्
अनुत्सृज्य तपोयोगात्स्थातुमेवेह नोत्सहे ५१
शिव उवाच
स यद्येवंविधतापस्ते तपसा किं प्रयोजनम्
ममेच्छया स्वेच्छया वा वर्णान्तरवती भव ५२
देव्युवाच
नेच्छामि भवतो वर्णं स्वयं वा कर्तुमन्यथा
ब्रह्माणं तपसाराध्य क्षिप्रं गौरी भवाम्यहम् ५३
ईश्वर उवाच
मत्प्रसादात्पुरा ब्रह्मा ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्पुरा
तमाहूय महादेवि तपसा किं करिष्यसि ५४
देव्युवाच
त्वत्तो लब्धपदा एव सर्वे ब्रह्मादयः सुराः
तथाप्याराध्य तपसा ब्रह्माणं त्वन्नियोगतः ५५
पुरा किल सती नाम्ना दक्षस्य दुहिताऽभवम्

जगतां पतिमेवं त्वां पतिं प्राप्तवती तथा ५६
एवमद्यापि तपसा तोषयित्वा द्विजं विधिम्
गौरी भवितुमिच्छामि को दोषः कथ्यतामिह ५७
एवमुक्तो महादेव्या वामदेवः स्मयन्निव
न तां निर्बंधयामास देवकार्यचिकीर्षया ५८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शिवमन्दरगिरिनिवासक्रीडोक्तवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः २४

अध्याय २५

वायुरुवाच
ततः प्रदक्षिणीकृत्य पतिमम्बा पतिव्रता
नियम्य च वियोगार्तिं जगाम हिमवद्गिरिम् १
तपःकृतवती पूर्वं देशे यस्मिन्सखीजनैः
तमेव देशमवृनोत्तपसे प्रणयात्पुनः २
ततः स्वपितरं दृष्ट्वा मातरं च तयोर्गृहे
प्रणम्य वृत्तं विज्ञाप्य ताभ्यां चानुमता सती ३
पुनस्तपोवनं गत्वा भूषणानि विसृज्य च
स्नात्वा तपस्विनो वेषं कृत्वा परमपावनम् ४
संकल्प्य च महातीव्रं तपः परमदुश्चरम्
सदा मनसि सन्धाय भर्तुश्चरणपंकजम् ५
तमेव क्षणिके लिंगे ध्यात्वा बाह्यविधानतः
त्रिसन्ध्यमभ्यर्चयन्ती वन्यैः पुष्पैः फलादिभिः ६
स एव ब्रह्मणो मूर्तिमास्थाय तपसः फलम्
प्रदास्यति ममेत्येवं नित्यं कृत्वाऽकरोत्तपः ७
तथा तपश्चरन्तीं तां काले बहुतिथे गते

दृष्टः कश्चिन्महाव्याघ्रो दुष्टभावादुपागमत् ८
तथैवोपगतस्यापि तस्यातीवदुरात्मनः
गात्रं चित्रार्पितमिव स्तब्धं तस्यास्सकाशतः ९
तं दृष्ट्वापि तथा व्याघ्रं दुष्टभावादुपागतम्
न पृथग्जनवद्देवी स्वभावेन विविच्यते १०
स तु विष्टब्धसर्वांगो बुभुक्षापरिपीडितः
ममामिषं ततो नान्यदिति मत्वा निरन्तरम् ११
निरीक्ष्यमाणः सततं देवीमेव तदाऽनिशम्
अतिष्ठदग्रतस्तस्या उपासनमिवाचरत् १२
देव्याश्च हृदये नित्यं ममैवायमुपासकः
त्राता च दुष्टसत्त्वेभ्य इति प्रववृते कृपा १३
तस्या एव कृपा योगात्सद्योनष्टमलत्रयः
बभूव सहसा व्याघ्रो देवीं च बुबुधे तदा १४
न्यवर्तत बुभुक्षा च तस्यांगस्तम्भनं तथा
दौरात्म्यं जन्मसिद्धं च तृप्तिश्च समजायत १५
तदा परमभावेन ज्ञात्वा कार्तार्थ्यमात्मनः
सद्योपासक एवैष सिषेवे परमेश्वरीम् १६
दुष्टानामपि सत्त्वानां तथान्येषान्दुरात्मनाम्
स एव द्रावको भूत्वा विचचार तपोवने १७
तपश्च ववृधे देव्यास्तीव्रं तीव्रतरात्मकम्
देवाश्च दैत्यनिर्बन्धाद्ब्रह्माणं शरणं गताः १८
चक्रुर्निवेदनं देवाः स्वदुःखस्यारिपीडनात्
यथा च ददतुः शुम्भनिशुम्भौ वरसम्मदात् १९
सोऽपि श्रुत्वा विधिर्दुःखं सुराणां कृपयान्वितः
आसीद्दैत्यवधायैव स्मृत्वा हेत्वाश्रयां कथाम् २०

सामरः प्रार्थितो ब्रह्मा ययौ देव्यास्तपोवनम्
संस्मरन्मनसा देवदुःखमोक्षं स्वयत्नतः २१
ददर्श च सुरश्रेष्ठः श्रेष्ठे तपसि निष्ठिताम्
प्रतिष्ठामिव विश्वस्य भवानीं परमेश्वरीम् २२
ननाम चास्य जगतो मातरं स्वस्य वै हरेः
रुद्रस्य च पितुर्भार्यामार्यामद्रीश्वरात्मजाम् २३
ब्रह्माणमागतं दृष्ट्वा देवी देवगणैः सह
अर्घ्यं तदर्हं दत्त्वाऽस्मै स्वागताद्यैरुपाचरत् २४
तां च प्रत्युपचारोक्तिं पुरस्कृत्याभिनंद्य च
पप्रच्छ तपसो हेतुमजानन्निव पद्मजः २५
ब्रह्मोवाच
तीव्रेण तपसानेन देव्या किमिह साध्यते
तपःफलानां सर्वेषां त्वदधीना हि सिद्धयः २६
यश्चैव जगतां भर्ता तमेव परमेश्वरम्
भर्तारमात्मना प्राप्य प्राप्तञ्च तपसः फलम् २७
अथवा सर्वमेवैतत्क्रीडाविलसितं तव
इदन्तु चित्रं देवस्य विरहं सहसे कथम् २८
देव्युवाच
सर्गादौ भवतो देवादुत्पत्तिः श्रूयते यदा
तदा प्रजानां प्रथमस्त्वं मे प्रथमजः सुतः २९
यदा पुनः प्रजावृद्ध्यै ललाटाद्भवतो भवः
उत्पन्नोऽभूत्तदा त्वं मे गुरुः श्वशुरभावतः ३०
यदा भवद्गिरीन्द्रस्ते पुत्रो मम पिता स्वयम्
तदा पितामहस्त्वं मे जातो लोकपितामह ३१
तदीदृशस्य भवतो लोकयात्राविधायिनः

वृत्तवन्तःपुरे भर्ता कथयिष्ये कथं पुनः ३२
किमत्र बहुना देहे यश्चायं मम कालिमा
त्यक्त्वा सत्त्वविधानेन गौरी भवितुमुत्सहे ३३
ब्रह्मोवाच
एतावता किमर्थेन तीव्रं देवि तपः कृतम्
स्वेच्छैव किमपर्याप्ता क्रीडेयं हि तवेदृशी ३४
क्रीडाऽपि च जगन्मातस्तव लोकहिताय वै
अतो ममेष्टमनया फलं किमपि साध्यताम् ३५
निशुंभशुंभनामानौ दैत्यौ दत्तवरौ मया
दृप्तौ देवान्प्रबाधेते त्वत्तो लब्धस्तयोर्वधः ३६
अलं विलंबनेनात्र त्वं क्षणेन स्थिरा भव
शक्तिर्विसृज्यमानाऽद्य तयोर्मृत्युर्भविष्यति ३७
ब्राह्मणाभ्यर्थिता चैव देवी गिरिवरात्मजा
त्वक्कोशं सहसोत्सृज्य गौरी सा समजायत ३८
सा त्वक्कोशात्मनोत्सृष्टा कौशिकी नाम नामतः
काली कालाम्बुदप्रख्या कन्यका समपद्यत ३९
सा तु मायात्मिका शक्तिर्योगनिद्रा च वैष्णवी
शंखचक्रत्रिशूलादिसायुधाष्टमहाभुजा ४०
सौम्या घोरा च मिश्रा च त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा
अजातपुंस्पर्शरतिरधृष्या चातिसुन्दरी ४१
दत्ता च ब्रह्मणे देव्या शक्तिरेषा सनातनी
निशुंभस्य च शुंभस्य निहंत्री दैत्यसिंहयोः ४२
ब्रह्मणापि प्रहृष्टेन तस्यै परमशक्तये
प्रबलः केसरी दत्तो वाहनत्वे समागतः ४३
विन्ध्ये च वसतिं तस्याः पूजामासवपूर्वकैः

मांसैर्मत्स्यैरपूपैश्च निर्वर्त्यासौ समादिशत् ४४
सा चैव संमता शक्तिर्ब्रह्मणो विश्वकर्मणः
प्रणम्य मातरं गौरीं ब्रह्माणं चानुपूर्वशः ४५
शक्तिभिश्चापि तुल्याभिः स्वात्मजाभिरनेकशः
परीता प्रययौ विन्ध्यं दैत्येन्द्रौ हन्तुमुद्यता ४६
निहतौ च तया तत्र समरे दैत्यपुंगवौ
तद्बाणैः कामबाणैश्च च्छिन्नभिन्नांगमानसौ ४७
तद्युद्धविस्तरश्चात्र न कृतोऽन्यत्र वर्णनात्
ऊहनीयं परस्माच्च प्रस्तुतं वर्णयामि वः ४८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
देवीगौरत्वभवनं नाम पंचविंशोऽध्यायः २५

अध्याय २६

वायुरुवाच
उत्पाद्य कौशिकीं गौरी ब्रह्मणे प्रतिपाद्य ताम्
तस्य प्रत्युपकाराय पितामहमथाब्रवीत् १
देव्युवाच
दृष्टः किमेष भवता शार्दूलो मदुपाश्रयः
अनेन दुष्टसत्त्वेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम् २
मय्यर्पितमना एष भजते मामनन्यधीः
अस्य संरक्षणादन्यत्प्रियं मम न विद्यते ३
भवितव्यमनेनातो ममान्तःपुरचारिणा
गणेश्वरपदं चास्मै प्रीत्या दास्यति शंकरः ४
एनमग्रेसरं कृत्वा सखीभिर्गन्तुमुत्सहे
प्रदीयतामनुज्ञा मे प्रजानां पतिना १ त्वया ५

इत्युक्तः प्रहसन्ब्रह्मा देवीम्मुग्धामिव स्मयन्
तस्य तीव्रैः पुरावृत्तैर्दौरात्म्यं समवर्णयत् १ ६
ब्रह्मोवाच
पशौ देवि मृगाः क्रूराः क्व च तेऽनुग्रहः शुभः
आशीविषमुखे साक्षादमृतं किं निषिच्यते ७
व्याघ्रमात्रेण सन्नेष दुष्टः कोऽपि निशाचरः
अनेन भक्षिता गावो ब्राह्मणाश्च तपोधनाः ८
तर्पयंस्तान्यथाकामं कामरूपी चरत्यसौ
अवश्यं खलु भोक्तव्यं फलं पापस्य कर्मणः ९
अतः किं कृपया कृत्यमीदृशेषु दुरात्मसु
अनेन देव्याः किं कृत्यं प्रकृत्या कलुषात्मना १०
देव्युवाच
यदुक्तं भवता सर्वं तथ्यमस्त्वयमीदृशः
तथापि मां प्रपन्नोऽभून्न त्याज्यो मामुपाश्रितः ११
ब्रह्मोवाच
अस्य भक्तिमविज्ञाय प्राग्वृत्तं ते निवेदितम्
भक्तिश्चेदस्य किं पापैर्न ते भक्तः प्रणश्यति १२
पुण्यकर्मापि किं कुर्य्यात्त्वदीयाज्ञानपेक्षया
अजा प्रज्ञा पुराणी च त्वमेव परमेश्वरी १३
त्वदधीना हि सर्वेषां बंधमोक्षव्यवस्थितिः
त्वदृते परमा शक्तिः संसिद्धिः कस्य कर्मणा १४
त्वमेव विविधा शक्तिः भवानामथ वा स्वयम्
अशक्तः कर्मकरणे कर्ता वा किं करिष्यति १५
विष्णोश्च मम चान्येषां देवदानवरक्षसाम्
तत्तदैश्वर्यसम्प्राप्त्यै तवैवाज्ञा हि कारणम् १६

अतीताः खल्वसंख्याता ब्रह्माणो हरयो भवाः
अनागतास्त्वसंख्यातास्त्वदाज्ञानुविधायिनः १७
त्वामनाराध्य देवेशि पुरुषार्थचतुष्टयम्
लब्धुं न शक्यमस्माभिरपि सर्वैः सुरोत्तमैः १८
व्यत्यासोऽपि भवेत्सद्यो ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः
सुकृतं दुष्कृतं चापि त्वयेव स्थापितं यतः १९
त्वं हि सर्वजगद्भर्तुश्शिवस्य परमात्मनः
अनादिमध्यनिधना शक्तिराद्या सनातनी २०
समस्तलोकयात्रार्थं मूर्तिमाविश्य कामपि
क्रीडसे २ विविधैर्भावैः कस्त्वां जानाति तत्त्वतः २१
अतो दुष्कृतकर्मापि व्याघ्रोऽयं त्वदनुग्रहात्
प्राप्नोतु परमां सिद्धिमत्र कः प्रतिबन्धकः २२
इत्यात्मनः परं भावं स्मारयित्वानुरूपतः
ब्रह्मणाभ्यर्थिता गौरी तपसोऽपि न्यवर्तत २३
ततो देवीमनुज्ञाप्य ब्रह्मण्यन्तर्हिते सति
देवीं च मातरं दृष्ट्वा मेनां हिमवता सह २४
प्रणम्याश्वास्य बहुधा पितरौ विरहासहौ
तपः प्रणयिनो देवी तपोवनमहीरुहान् २५
विप्रयोगशुचेवाग्रे पुष्पबाष्पं विमुंचतः
तत्तुच्छाखासमारूढविहगो दीरितै रुतैः २६
व्याकुलं बहुधा दीनं विलापमिव कुर्वतः
सखीभ्यः कथयंत्येवं सत्त्वरा भर्तृदर्शने २७
पुरस्कृत्य च तं व्याघ्रं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम्
देहस्य प्रभया चैव दीपयन्ती दिशो दश २८
प्रययौ मंदरं गौरी यत्र भर्ता महेश्वरः

सर्वेषां जगतां धाता कर्ता पाता विनाशकृत् २९
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
व्याघ्रगतिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः २६

अध्याय २७

ऋषय ऊचुः
कृत्वा गौरं वपुर्दिव्यं देवी गिरिवरात्मजा
कथं ददर्श भर्तारं प्रविष्टा मन्दितं सती १
प्रवेशसमये तस्या भवनद्वारगोचरैः
गणेशैः किं कृतं देवस्तान्दृष्ट्वा किन्तदाऽकरोत् २
वायुरुवाच
प्रवक्तुमंजसाऽशक्यः तादृशः परमो रसः
येन प्रणयगर्भेण भावो भाववतां हृतः ३
द्वास्थैस्ससंभ्रमैरेव देवो देव्यागमोत्सुकः
शंकमाना प्रविष्टान्तस्तञ्च सा समपश्यत ४
तैस्तैः प्रणयभावैश्च भवनान्तरवर्त्तिभिः
गणेन्द्रैर्वन्दिता वाचा प्रणनाम त्रियम्बकम् ५
प्रणम्य नोत्थिता यावत्तावत्तां परमेश्वरः
प्रगृह्य दोर्भ्यामाश्लिष्य परितः परया मुदा ६
स्वांके धर्तुं प्रवृत्तोऽपि सा पर्य्यंके न्यषीदत
पर्य्यंकतो बलाद्देवीं सोणकमारोप्य सुस्मिताम् ७
सस्मितो विवृतैर्नैत्रैस्तद्वक्त्रं प्रपिबन्निव
तया संभाषणायेशः पूर्वभाषितमब्रवीत् ८
देवदेव उवाच
सा दशा च व्यतीता किं तव सर्वांगसुन्दरि

यस्यामनुनयोपायः कोऽपि कोपान्न लभ्यते ९
स्वेच्छयापि न कालीति नान्यवर्णवतीति च
त्वत्स्वभावाहृतं चित्तं सुभ्रु चिंतावहं मम १०
विस्मृतः परमो भावः कथं स्वेच्छांगयोगतः
न सम्भवन्ति ये तत्र चित्तकालुष्यहेतवः ११
पृथग्जनवदन्योन्यं विप्रियस्यापि कारणम्
आवयोरपि यद्यस्ति नास्त्येवैतच्चराचरम् १२
अहमग्निशिरोनिष्ठस्त्वं सोमशिरसि स्थिता
अग्नीषोमात्मकं विश्वमावाभ्यां समधिष्ठितम् १३
जगद्धिताय चरतोः स्वेच्छाधृतशरीरयोः
आवयोर्विप्रयोगे हि स्यान्निरालम्बनं जगत् १४
अस्ति हेत्वन्तरं चात्र शास्त्रयुक्तिविनिश्चितम्
वागर्थमिव मे वैतज्जगत्स्थावरजंगमम् १५
त्वं हि वागमृतं साक्षादहमर्थामृतं परम्
द्वयमप्यमृतं कस्माद्वियुक्तमुपपद्यते १६
विद्याप्रत्यायिका त्वं मे वेद्योऽहं प्रत्ययात्तव
विद्यावेद्यात्मनोरेव विश्लेषः कथमावयोः १७
न कर्मणा सृजामीदं जगत्प्रतिसृजामि च
सर्वस्याज्ञैकलभ्यत्वादाज्ञात्वं हि गरीयसी १८
आज्ञैकसारमैश्वर्य्यं यस्मात्स्वातंत्र्यलक्षणम्
आज्ञया विप्रयुक्तस्य चैश्वर्य्यं मम कीदृशम् १९
न कदाचिदवस्थानमावयोर्विप्रयुक्तयोः
देवानां कार्य्यमुद्दिश्य लीलोक्तिं कृतवानहम् २०
त्वयाप्यविदितं नास्ति कथं कुपितवत्यसि
ततस्त्रिलोकरक्षार्थे कोपो मय्यपि ते कृतः २१

यदनर्थाय भूतानां न तदस्ति खलु त्वयि
इति प्रियंवदे साक्षादीश्वरे परमेश्वरे २२
शृंगारभावसाराणां जन्मभूमिरकृत्रिमा
स्वभर्त्रा ललितन्तथ्यमुक्तं मत्वा स्मितोत्तरम् २३
लज्जया न किमप्यूचे कौशिकी वर्णनात्परम्
तदेव वर्णयाम्यद्य शृणु देव्याश्च वर्णनम् २४
देव्युवाच
किं देवेन न सा दृष्टा या सृष्टा कौशिकी मया
तादृशी कन्यका लोके न भूता न भविष्यति २५
तस्या वीर्य्यं बलं विन्ध्यनिलयं विजयं तथा
शुंभस्य च निशुंभस्य मारणे च रणे तयोः २६
प्रत्यक्षफलदानं च लोकाय भजते सदा
लोकानां रक्षणं शश्वद्ब्रह्मा विज्ञापयिष्यति २७
इति संभाषमाणाया देव्या एवाज्ञया तदा
व्याघ्रः सख्या समानीय पुरोऽवस्थापितस्तदा २८
तं प्रेक्ष्याह पुनर्देवी देवानीतमुपायतम्
व्याघ्रं पश्य न चानेन सदृशो मदुपासकः २९
अनेन दुष्टसंघेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम्
अतीव मम भक्तश्च विश्रब्धश्च स्वरक्षणात् ३०
स्वदेशं च परित्यज्य प्रसादार्थं समागतः
यदि प्रीतिरभून्मत्तः परां प्रीतिं करोषि मे ३१
नित्यमन्तःपुरद्वारि नियोगान्नन्दिनः स्वयम्
रक्षिभिस्सह तच्चिह्नैर्वर्ततामयमीश्वर ३२
वायुरुवाच
मधुरं प्रणयोदर्कं श्रुत्वा देव्याः शुभं वचः

प्रीतोऽस्मीत्याह तं देवस्स चादृश्यत तत्क्षणात् ३३
बिभ्रद्वेत्रलतां हैमीं रत्नचित्रं च कंचुकम्
छुरिकामुरगप्रख्यां गणेशो रत्नवेषधृक् ३४
यस्मात्सोमो महादेवो नन्दी चानेन नन्दितः
सोमनन्दीति विख्यातस्तस्मादेष समाख्यया ३५
इत्थं देव्याः प्रियं कृत्वा देवश्चर्द्धेन्दुभूषणः
भूषयामास तन्दिव्यैर्भूषणै रत्नभूषितैः ३६
ततस्स गौरीं गिरिशो गिरीन्द्रजां सगौरवां सर्वमनोहरां हरः
पर्य्यंकमारोप्य वरांगभूषणैर्विभूषयामास शशांकभूषणः ३७

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
सप्तविंशोऽध्यायः २७

अध्याय २८

ऋषय ऊचुः
देवीं समादधानेन देवेनेदं किमीरितम्
अग्निषोमात्मकं विश्वं वागर्थात्मकमित्यपि १
आज्ञैकसारमैश्वर्य्यमाज्ञा त्वमिति चोदितम्
तदिदं श्रोतुमिच्छामो यथावदनुपूर्वशः २
वायुरुवाच
अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः
सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शान्तिकरी तनुः ३
अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्
भूतसूक्ष्मेषु सर्वेषु त एव रसतेजसी ४
द्विविधा तेजसो वृत्तिसूर्य्यात्मा चानलात्मिका
तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका ५

विद्युदादिमयन्तेजो मधुरादिमयो रसः
तेजोरसविभेदैस्तु धृतमेतच्चराचरम् ६
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते
अत एव हि विक्रान्तमग्नीषोमं जगद्धितम् ७
हविषे सस्यसम्पत्तिर्वृष्टिः सस्याभिवृद्धये
वृष्टेरेव हविस्तस्मादग्नीषोमधृतं जगत् ८
अग्निरूर्द्ध्वं ज्वलत्येष यावत्सौम्यं परामृतम्
यावदग्न्यास्पदं सौम्यममृतं च स्रवत्यधः ९
अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्द्ध्वतः
यावदादहनं चोर्द्ध्वमधश्चाप्लावनं भवेत् १०
आधारशक्त्यैव धृतः कालाग्निरयमूर्द्ध्वगः
तथैव निम्नगः सोमश्शिवशक्तिपदास्पदः ११
शिवश्चोर्द्ध्वमधश्शक्तिरूर्द्ध्वं शक्तिरधः शिवः
तदित्थं शिवशक्तिभ्यान्नाव्याप्तमिह किञ्चन १२
असकृच्चाग्निना दग्धं जगद्यद्भस्मसात्कृतम्
अग्नेर्वीर्यमिदं चाहुस्तद्वीर्यं भस्म यत्ततः १३
यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वा स्नाति च भस्मना
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्बद्धः पाशात्प्रमुच्यते १४
अग्नेर्वीर्यं तु यद्भस्म सोमेनाप्लावितम्पुनः
अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते १५
योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समन्ततः
शाक्तेनामृतवर्षेण चाधिकारान्निवर्तयेत् १६
अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सदा
शिवशक्त्यमृतस्पर्शे लब्धं येन कुतो मृतिः १७
यो वेद दहनं गुह्यं प्लावनं च यथोदितम्

अग्नीषोमपदं हित्वा न स भूयोऽभिजायते १८
शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसौम्या मृतेन यः
प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते १९
हृदि कृत्वेममर्थं वै देवेन समुदाहृतम्
अग्नीषोमात्मकं विश्वं जगदित्यनुरूपतः २०
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
भस्मतत्त्ववर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः २८

अध्याय २९

वायुरुवाच
निवेदयामि जगतो वागर्थात्म्यं कृतं यथा
षडध्ववेदनं सम्यक् समासान्न तु विस्तरात् १
नास्ति कश्चिदशब्दार्थो नापि शब्दो निरर्थकः
ततो हि समये शब्दस्सर्वस्सर्वार्थबोधकः २
प्रकृतेः परिणामोऽयं द्विधा शब्दार्थभावना
तामाहुः प्राकृतीं मूर्तिं शिवयोः परमात्मनोः ३
शब्दात्मिका विभूतिर्या सा त्रिधा कथ्यते बुधैः
स्थूला सूक्ष्मा परा चेति स्थूला या श्रुतिगोचरा ४
सूक्ष्मा चिन्तामयी प्रोक्ता चिंतया रहिता परा
या शक्तिः सा परा शक्तिश्शिवतत्त्वसमाश्रया ५
ज्ञानशक्तिसमायोगादिच्छोपोद्बलिका तथा
सर्वशक्तिसमष्ट्यात्मा शक्तितत्त्वसमाख्यया ६
समस्तकार्यजातस्य मूलप्रकृतितां गता
सैव कुण्डलिनी माया शुद्धाध्वपरमा सती ७
सा विभागस्वरूपैव षडध्वात्मा विजृंभते

तत्र शब्दास्त्रयोऽध्वानस्त्रयश्चार्थाः समीरिताः ८
सर्वेषामपि वै पुंसां नैजशुद्ध्यनुरूपतः
लयभोगाधिकारास्स्युस्सर्वतत्त्वविभागतः ९
कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम्
परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः १०
कलाश्च ता निवृत्त्याद्याः पर्य्याप्ता इति निश्चयः
मंत्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः ११
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात्
अत्रान्योन्यं च सर्वेषां व्याप्यव्यापकतोच्यते १२
मंत्राः सर्वैः पदैर्व्याप्ता वाक्यभावात्पदानि च
वर्णैर्वर्णसमूहं हि पदमाहुर्विपश्चितः १३
वर्णास्तु भुवनैर्व्याप्तास्तेषां तेषूपलंभनात्
भुवनान्यपि तत्त्वौघैरुत्पत्त्यांतर्बहिष्क्रमात् १४
व्याप्तानि कारणैस्तत्त्वैरारब्धत्वादनेकशः
अंतरादुत्थितानीह भुवनानि तु कानिचित् १५
पौराणिकानि चान्यानि विज्ञेयानि शिवागमे
सांख्ययोगप्रसिद्धानि तत्त्वान्यपि च कानिचित् १६
शिवशास्त्रप्रसिद्धानि ततोन्यान्यपि कृत्स्नशः
कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम् १७
परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः
कलाश्च ता निवृत्त्याद्या व्याप्ताः पंच यथोत्तरम् १८
व्यापिकातः परा शक्तिरविभक्ता षडध्वनाम्
परप्रकृतिभावस्य तत्सत्त्वाच्छिवतत्त्वतः १९
शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम्
व्याप्तमेकेन तेनैव मृदा कुंभादिकं यथा २०

शैवं तत्परमं धाम यत्प्राप्यं षड्भिरध्वभिः
व्यापिकाऽव्यापिका शक्तिः पंचतत्त्वविशोधनात् २१
निवृत्त्या रुद्रपर्य्यन्तं स्थितिरण्डस्य शोध्यते
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं तु यावदव्यक्तगोचरम् २२
तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विश्वेश्वरावधि
शान्त्या तदूर्ध्वं मध्वान्ते विशुद्धिः शान्त्यतीतया २३
यामाहुः परमं व्योम परप्रकृतियोगतः
एतानि पंचतत्त्वानि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् २४
तत्रैव सर्वमेवेदं द्रष्टव्यं खलु साधकैः
अध्वव्याप्तिमविज्ञाय शुद्धिं यः कर्तुमिच्छति २५
स विप्रलम्भकः शुद्धेर्नालम्प्रापयितुं फलम्
वृथा परिश्रमस्तस्य निरयायैव केवलम् २६
शक्तिपातसमायोगादृते तत्त्वानि तत्त्वतः
तद्व्याप्तिस्तद्विवृद्धिश्च ज्ञातुमेवं न शक्यते २७
शक्तिराज्ञा परा शैवी चिद्रूपा मरमेश्वरी
शिवोऽधितिष्ठत्यखिलं यया कारणभूतया २८
नात्मनो नैव मायैषा न विकारो विचारतः
न बंधो नापि मुक्तिश्च बंधमुक्तिविधायिनी २९
सर्वैश्वर्यपराकाष्टा शिवस्य व्यभिचारिणी
समानधर्मिणी तस्य तैस्तैर्भावैर्विशेषतः ३०
स तयैव गृही सापि तेनैव गृहिणी सदा
तयोरपत्यं यत्कार्यं परप्रकृतिजं जगत् ३१
स कर्ता कारणं सेति तयोर्भेदो व्यवस्थितः
एक एव शिवः साक्षादिद्वधाऽसौ समवस्थितः ३२
स्त्रीपुंसभावेन तयोर्भेद इत्यपि केचन

अपरे तु परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी ३३
प्रभेव भानोश्चिद्रूपा भिन्नैवेति व्यवस्थितः
तस्माच्छिवः परो हेतुस्तस्याज्ञा परमेश्वरी ३४
तयैव प्रेरिता शैवी मूलप्रकृतिरव्यया
महामाया च माया च प्रकृतिस्त्रिगुणेति च ३५
त्रिविधा कार्यवेधेन सा प्रसूते षडध्वनः
स वागर्थमयश्चाध्वा षड्विधो निखिलं जगत् ३६
अस्यैव विस्तरं प्राहुः शास्त्रजातमशेषतः ३७
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
वागर्थकतत्त्ववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९

अध्याय ३०

ऋषय ऊचुः
चरितानि विचित्राणि गुह्याणि गहनानि च
दुर्विज्ञेयानि देवैश्च मोहयंति मनांसि नः १
शिवयोस्तत्त्वसम्बन्धे न दोष उपलभ्यते
चरितैः प्राकृतो भावस्तयोरपि विभाव्यते २
ब्रह्मादयोऽपि लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः
निग्रहानुग्रहौ प्राप्य शिवस्य वशवर्तिनः ३
शिवः पुनर्न कस्यापि निग्रहानुग्रहास्पदम्
अतोऽनायत्तमैश्वर्यं तस्यैवेति विनिश्चितम् ४
यद्येवमीदृशैश्वर्य्यं तत्तु स्वातन्त्र्यलक्षणम्
स्वभावसिद्धं चैतस्य मूर्तिमत्तास्पदं भवेत् ५
न मूर्तिश्च स्वतंत्रस्य घटते मूलहेतुना
मूर्तेरपि च कार्यत्वात्तत्सिद्धिः स्यादहैतुकी ६

सर्वत्र परमो भावोऽपरमश्चान्य उच्यते
परमापरमौ भावौ कथमेकत्र संगतौ ७
निष्फलो हि स्वभावोऽस्य परमः परमात्मनः
स एव सकलः कस्मात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ८
स्वभावो विपरीतश्चेत्स्वतंत्रः स्वेच्छया यदि
न करोति किमीशानो नित्यानित्यविपर्ययम् ९
मूर्तात्मा सकलः कश्चित्स चान्यो निष्फलः शिवः
शिवेनाधिष्ठितश्चेति सर्वत्र लघु कथ्यते १०
मूर्त्यात्मैव तदा मूर्तिः शिवस्यास्य भवेदिति
तस्य मूर्तौ मूर्तिमतोः पारतंत्र्यं हि निश्चितम् ११
अन्यथा निरपेक्षेण मूर्तिः स्वीक्रियते कथम्
मूर्तिस्वीकरणं तस्मान्मूर्तौ साध्यफलेप्सया १२
न हि स्वेच्छाशरीरत्वं स्वातंत्र्यायोपपद्यते
स्वेच्छैव तादृशी पुंसां यस्मात्कर्मानुसारिणी १३
स्वीकर्तुं स्वेच्छया देहं हातुं च प्रभवन्त्युत
ब्रह्मादयः पिशाचांताः किं ते कर्मातिवर्तिनः १४
इच्छया देहनिर्माणमिन्द्रजालोपमं विदुः
अणिमादिगुणैश्वर्य्यवशीकारानतिक्रमात् १५
विश्वरूपं दधद्विष्णुर्दधीचेन महर्षिणा
युध्यता समुपालब्धस्तद्रूपं दधता स्वयम् १६
सर्वस्मादधिकस्यापि शिवस्य परमात्मनः
शरीरवत्तयान्यात्मसाधर्म्यं प्रतिभाति नः १७
सर्वानुग्राहकं प्राहुश्शिवं परमकारणम्
स निर्गृह्णाति देवानां सर्वानुग्राहकः कथम् १८
चिच्छेद बहुशो देवो ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः

शिवनिन्दां प्रकुर्व्वंतं पुत्रेति कुमतेर्हठात् १९
विष्णोरपि नृसिंहस्य रभसा शरभाकृतिः
बिभेद पद्भ्यामाक्रम्य हृदयं नखरैः खरैः २०
देवस्त्रीषु च देवेषु दक्षस्याध्वरकारणात्
वीरेण वीरभद्रेण न हि कश्चिददण्डितः २१
पुरत्रयं च सस्त्रीकं सदैत्यं सह बालकैः
क्षणेनैकेन देवेन नेत्राग्नेरिंधनीकृतम् २२
प्रजानां रतिहेतुश्च कामो रतिपतिस्स्वयम्
क्रोशतामेव देवानां हुतो नेत्रहुताशने २३
गावश्च कश्चिद्दुग्धौघं स्रवन्त्यो मूर्ध्नि खेचराः
सरुषा प्रेक्ष्य देवेन तत्क्षणे भस्मसात्कृतः २४
जलंधरासुरो दीर्णश्चक्रीकृत्य जलं पदा
बद्ध्वानंतेन यो विष्णुं चिक्षेप शतयोजनम् २५
तमेव जलसंधायी शूलेनैव जघान सः
तच्चक्रं तपसा लब्ध्वा लब्धवीर्य्यो हरिस्सदा २६
जिघांसतां सुरारीणां कुलं निर्घृणचेतसाम्
त्रिशूलेनान्धकस्योरः शिखिनैवोपतापितम् २७
कण्ठात्कालांगनां सृष्ट्वा दारकोऽपि निपातितः
कौशिकीं जनयित्वा तु गौर्य्यास्त्वक्कोशगोचराम् २८
शुंभस्सह निशुंभेन प्रापितो मरणं रणे
श्रुतं च महदाख्यानं स्कान्दे स्कन्दसमाश्रयम् २९
वधार्थे तारकाख्यस्य दैत्येन्द्रस्येन्द्रविद्विषः
ब्रह्मणाभ्यर्थितो देवो मन्दरान्तःपुरं गतः ३०
विहृत्य सुचिरं देव्या विहाराऽतिप्रसङ्गतः
रसां रसातलं नीतामिव कृत्वाभिधां ततः ३१

देवीं च वंचयंस्तस्यां स्ववीर्यमतिदुर्वहम्
अविसृज्य विसृज्याग्नौ हविः पूतमिवामृतम् ३२
गंगादिष्वपि निक्षिप्य वह्निद्वारा तदंशतः
तत्समाहृत्य शनकैस्तोकंस्तोकमितस्ततः ३३
स्वाहया कृत्तिकारूपात्स्वभर्त्रा रममाणया
सुवर्णीभूतया न्यस्तं मेरौ शरवणे क्वचित् ३४
संदीपयित्वा कालेन तस्य भासा दिशो दश
रञ्जयित्वा गिरीन्सर्वान्कांचनीकृत्य मेरुणा ३५
ततश्चिरेण कालेन संजाते तत्र तेजसि
कुमारे सुकुमारांगे कुमाराणां निदर्शने ३६
तच्छैशवं स्वरूपं च तस्य दृष्ट्वा मनोहरम्
सह देवसुरैर्लोकैर्विस्मिते च विमोहिते ३७
देवोऽपि स्वयमायातः पुत्रदर्शनलालसः
सह देव्यांकमारोप्य ततोऽस्य स्मेरमाननम् ३८
पीतामृतमिव स्नेहविवशेनान्तरात्मना
देवेष्वपि च पश्यत्सु वीतरागैस्तपस्विभिः ३९
स्वस्य वक्षःस्थले स्वैरं नर्तयित्वा कुमारकम्
अनुभूय च तत्क्रीडां संभाव्य च परस्परम् ४०
स्तन्यमाज्ञापयन्देव्याः पाययित्वामृतोपमम्
तवावतारो जगतां हितायेत्यनुशास्य च ४१
स्वयन्देवश्च देवी च न तृप्तिमुपजग्मतुः
ततः शक्रेण संधाय बिभ्यता तारकासुरात् ४२
कारयित्वाभिषेकं च सेनापत्ये दिवौकसाम्
पुत्रमन्तरतः कृत्वा देवेन त्रिपुरद्विषा ४३
स्वयमंतर्हितेनैव स्कन्दमिन्द्रादिरक्षितम्

तच्छक्त्या क्रौञ्चभेदिन्या युधि कालाग्निकल्पया ४४
छेदितं तारकस्यापि शिरश्शक्रभिया सह
स्तुतिं चक्रुर्विशेषेण हरिधातृमुखाः सुराः ४५
तथा रक्षोधिपः साक्षाद्रावणो बलगर्वितः
उद्धरन्स्वभुजैर्दीर्घैः कैलासं गिरिमात्मनः ४६
तदागोऽसहमानस्य देवदेवस्य शूलिनः
पदांगुष्ठपरिस्पन्दान्ममज्ञ मृदितो भुवि ४७
बटोः केनचिदर्थेन स्वाश्रितस्य गतायुषः
त्वरयागत्य देवेन पादांतं गमितोन्तकः ४८
स्ववाहनमविज्ञाय वृषेन्द्रं वडवानलः
सगलग्रहमानीतस्ततोऽस्त्येकोदकं जगत् ४९
अलोकविदितैस्तैस्तैर्वृत्तैरानन्दसुन्दरैः
अंगहारस्वसेनेदमसकृच्चालितं जगत् ५०
शान्त एव सदा सर्वमनुगृह्णाति चेच्छिवः
सर्वाणि पूरयेदेव कथं शक्तेन मोचयेत् ५१
अनादिकर्म वैचित्र्यमपि नात्र नियामकम्
कारणं खलु कर्मापि भवेदीश्वरकारितम् ५२
किमत्र बहुनोक्तेन नास्तिक्यं हेतुकारकम्
यथा ह्याशु निवर्तेत तथा कथय मारुत ५३
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शिवतत्त्वप्रश्नो नाम त्रिंशोऽध्यायः ३०

अध्याय ३१

वायुरुवाच
स्थने संशयितं विप्रा भवद्भिर्हेतुचोदितैः

जिज्ञासा हि न नास्तिक्यं साधयेत्साधुबुद्धिषु १
प्रमणमत्र वद्त्यामि सताम्मोहनिवर्तकम्
असतां त्वन्यथाभावः प्रसादेन विना प्रभोः २
शिवस्य परिपूर्णस्य परानुग्रहमन्तरा
न किंचिदपि कर्तव्यमिति साधु विनिश्चितम् ३
स्वभाव एव पर्य्याप्तः परानुग्रहकर्मणि
अन्यथा निस्स्वभवेन न किमप्यनुगृह्यते ४
परं सर्वमनुग्राह्यं पशुपाशात्मकं जगत्
परस्यानुग्रहार्थं तु पत्युराज्ञासमन्वयः ५
पतिराज्ञापकः सर्वमनुगृह्णाति सर्व्वदा
तदर्थमर्थस्वीकारे परतंत्रः कथं शिवः ६
अनुग्राह्यनपेक्षोऽस्ति न हि कश्चिदनुग्रहः
अतः स्वातन्त्र्यशब्दार्थाननपेक्षत्वलक्षणः ७
एतत्पुनरनुग्राह्यं परतंत्रं तदिष्यते
अनुग्रहादृते तस्य भुक्तिमुक्त्योरनन्वयात् ८
मूर्तात्मनोऽप्यनुग्राह्या शिवाज्ञाननिवर्तनात्
अज्ञानाधिष्ठितं शम्भोर्न किंचिदिह विद्यते ९
येनोपलभ्यतेऽस्माभिस्सकलेनापि निष्कलः
स मूर्त्यात्मा शिवः शैवमूर्तिरित्युपचर्यते १०
न ह्यसौ निष्कलः साक्षाच्छिवः परमकारणम्
साकारेणानुभावेन केनाप्यनुपलक्षितः ११
प्रमाणगम्यतामात्रं तत्स्वभावोपपादकम्
न तावतात्रोपेक्षाधीरुपलक्षणमंतरा १२
आत्मोपमोल्वणं साक्षान्मूर्तिरिव हि काचन
शिवस्य मूर्तिर्मूर्त्यात्मा परस्तस्योपलक्षणम् १३

यथा काष्ठेष्वनारूढो न वह्निरुपलभ्यते
एवं शिवोऽपि मूर्त्यात्मन्यनारूढ इति स्थितिः १४
यथाग्निमानयेत्युक्ते ज्वलत्काष्ठादृते स्वयम्
नाग्निरानीयते तद्वत्पूज्यो मूर्त्यात्मना शिवः १५
अत एव हि पूजादौ मूर्त्यात्मपरिकल्पनम्
मूर्त्यात्मनि कृतं साक्षाच्छिव एव कृतं यतः १६
लिंगादावपि तत्कृत्यमर्चायां च विशेषतः
तत्तन्मूर्त्यात्मभावेन शिवोऽस्माभिरुपास्यते १७
यथानुगृह्यते सोऽपि मूर्त्यात्मा पारमेष्ठिना
तथा मूर्त्यात्मनिष्ठेन शिवेन पशवो वयम् १८
लोकानुग्रहणायैव शिवेन परमेष्ठिना
सदाशिवादयस्सर्वे मूर्त्यात्मनोऽप्यधिष्ठिताः १९
आत्मनामेव भोगाय मोक्षाय च विशेषतः
तत्त्वातत्त्वस्वरूपेषु मूर्त्यात्मसु शिवान्वयः २०
भोगः कर्मविपाकात्मा सुखदुःखात्मको मतः
न च कर्म शिवोऽस्तीति तस्य भोगः किमात्मकः २१
सर्वं शिवोऽनुगृह्णाति न निगृह्णाति किंचन
निगृह्णतां तु ये दोषाश्शिवे तेषामसंभवात् २२
ये पुनर्निग्रहाः केचिद्ब्रह्मादिषु निदर्शिताः
तेऽपि लोकहितायैव कृताः श्रीकण्ठमूर्तिना २३
ब्रह्माण्डस्याधिपत्यं हि श्रीकण्ठस्य न संशयः
श्रीकण्ठाख्यां शिवो मूर्तिं क्रीडतीमधितिष्ठति २४
सदोषा एव देवाद्या निगृहीता यथोदितम्
ततस्तेपि विपाप्मानः प्रजाश्चापि गतज्वराः २५
निग्रहोऽपि स्वरूपेण विदुषां न जुगुप्सितः

अत एव हि दण्डच्येषु दण्डो राज्ञां प्रशस्यते २६
यत्सिद्धिरीश्वरत्वेन कार्यवर्गस्य कृत्स्नशः
न स चेदीशतां कुर्याज्जगतः कथमीश्वरः २७
ईशेच्छा च विधातृत्वं विधेराज्ञापनं परम्
आज्ञावश्यमिदं कुर्यान्न कुर्यादिति शासनम् २८
तच्छासनानुवर्तित्वं साधुभावस्य लक्षणम्
विपरीतसमाधोः स्यान्न सर्वं तत्तु दृश्यते २९
साधु संरक्षणीयं चेद्विनिवर्त्यमसाधु यत्
निवर्तते च सामादेरंते दण्डो हि साधनम् ३०
हितार्थलक्षणं चेदं दण्डान्तमनुशासनम्
अतो यद्विपरीतं तदहितं संप्रचक्षते ३१
हिते सदा निषण्णानामीश्वरस्य निदर्शनम्
स कथं दुष्यते सद्भिरसतामेव निग्रहात् ३२
अयुक्तकारिणो लोके गर्हणीयाविवेकिता
यदुद्वेजयते लोकन्तदयुक्तं प्रचक्षते ३३
सर्वोऽपि निग्रहो लोके न च विद्वेषपूर्वकः
न हि द्वेष्टि पिता पुत्रं यो निगृह्याति शिक्षयेत् ३४
माध्यस्थेनापि निग्राह्यान्यो निगृह्णाति मार्गतः
तस्याप्यवश्यं यत्किंचिन्नैर्घृण्यमनुवर्तते ३५
अन्यथा न हिनस्त्येव सदोषानप्यसौ परान्
हिनस्ति चायमप्यज्ञान्परं माध्यस्थ्यमाचरन् ३६
तस्माद्दुःखात्मिकां हिंसां कुर्वाणो यः सनिर्घृणः
इति निर्बंधयंत्येके नियमो नेति चापरे ३७
निदानज्ञस्य भिषजो रुग्णो हिंसां प्रयुंजतः
न किंचिदपि नैर्घृण्यं घृणैवात्र प्रयोजिका ३८

घृणापि न गुणायैव हिंस्रेषु प्रतियोगिषु
तादृशेषु घृणी भ्रान्त्या घृणान्तरितनिर्घृणः ३९
उपेक्षापीह दोषाह रक्ष्येषु प्रतियोगिषु
शक्तौ सत्यामुपेक्षातो रक्ष्यस्सद्यो विपद्यते ४०
सर्पस्याऽऽस्यगतम्पश्यन्यस्तु रक्ष्यमुपेक्षते
दोषाभासान्समुत्प्रेक्ष्य फलतः सोऽपि निर्घृणः ४१
तस्माद् घृणा गुणायैव सर्वथेति न संमतम्
संमतं प्राप्तकामित्वं सर्वं त्वन्यदसम्मतम् ४२
मूर्त्यात्मस्वपि रागाद्या दोषाः सन्त्येव वस्तुतः
तथापि तेषामेवैते न शिवस्य तु सर्वथा
अग्नावपि समाविष्टं ताम्रं खलु सकालिकम् ४३
इति नाग्निरसौ दुष्येत्ताम्रसंसर्गकारणात्
नाग्नेरशुचिसंसर्गादशुचित्वमपेक्षते ४४
अशुचेस्त्वग्निसंयोगाच्छुचित्वमपि जायते
एवं शोध्यात्मसंसर्गान्न ह्यशुद्धः शिवो भवेत् ४५
शिवसंसर्गतस्त्वेष शोध्यात्मैव हि शुध्यति
अयस्यग्नौ समाविष्टे दाहोऽग्नेरेव नायसः ४६
मूर्त्तात्मन्येवमैश्वर्य्यमीश्वरस्यैव नात्मनाम्
न हि काष्ठं ज्वलत्यूर्द्ध्वमग्निरेव ज्वलत्यसौ ४७
काष्ठस्यांगारता नाग्नेरेवमत्रापि योज्यताम्
अत एव जगत्यस्मिन्काष्ठपाषाणमृत्स्वपि ४८
शिवावेशवशादेव शिवत्वमुपचर्यते
मैत्र्यादयो गुणा गौणास्तस्मात्ते भिन्नवृत्तयः ४९
तैर्गुणैरुपरक्तानां दोषाय च गुणाय च
यत्तु गौणमगौणं च तत्सर्वमनुगृह्णतः

न गुणाय न दोषाय शिवस्य गुणवृत्तयः ५०
न चानुग्रहशब्दार्थं गौणमाहुर्विपश्चितः
संसारमोचनं किं तु शैवमाज्ञामयं हितम् ५१
हितं तदाज्ञाकरणं यद्धितं तदनुग्रहः
सर्वं हिते नियुञ्जावः सर्वानुग्रहकारकः ५२
यस्तूपकारशब्दार्थस्तमप्याहुरनुग्रहम्
तस्यापि हितरूपत्वाच्छिवः सर्वोपकारकः ५३
हिते सदा नियुक्तं तु सर्वं चिदचिदात्मकम्
स्वभावप्रतिबन्धं तत्समं न लभते हितम् ५४
यथा विकासयत्येव रविः पद्मानि भानुभिः
समं न विकसन्त्येव स्वस्वभावानुरोधतः ५५
स्वभावोऽपि हि भावानां भाविनोऽर्थस्य कारणम्
न हि स्वभावो नश्यन्तमर्थं कर्तृषु साधयेत् ५६
सुवर्णमेव नांगारं द्रावयत्यग्निसंगमः
एवं पक्वमलानेव मोचयेन्न शिवपरान् ५७
यद्यथा भवितुं योग्यं तत्तथा न भवेत्स्वयम्
विना भावनया कर्ता स्वतन्त्रस्सन्ततो भवेत् ५८
स्वभावविमलो यद्वत्सर्वानुग्राहकश्शिवः
स्वभावमलिनास्तद्वदात्मनो जीवसंज्ञिताः ५९
अन्यथा संसरन्त्येते नियमान्न शिवः कथम्
कर्ममायानुबन्धोस्य संसारः कथ्यते बुधैः ६०
अनुबन्धोऽयमस्यैव न शिवस्येति हेतुमान्
स हेतुरात्मनामेव निजो नागन्तुको मलः ६१
आगन्तुकत्वे कस्यापि भाव्यं केनापि हेतुना
योऽयं हेतुरसावेकस्त्वविचित्रस्वभावतः ६२

आत्मतायाः समत्वेऽपि बद्धा मुक्ताः परे यतः
बद्धेष्वेव पुनः केचिल्लयभोगाधिकारतः ६३
ज्ञानैश्वर्यादिवैषम्यं भजन्ते सोत्तराधराः
केचिन्मूर्त्यात्मतां यान्ति केचिदासन्नगोचराः ६४
मूर्त्यात्मसु शिवाः केचिदध्वनां मूर्द्धसु स्थिताः
मध्ये महेश्वरा रुद्रास्त्ववर्वाचीनपदे स्थिताः ६५
आसन्नेऽपि च मायायाः परस्मात्कारणात्त्रयम्
तत्राप्यात्मा स्थितोऽधस्तादन्तरात्मा च मध्यतः ६६
परस्तात्परमात्मेति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
वर्तन्ते वसवः केचित्परमात्मपदाश्रयाः ६७
अन्तरात्मपदे केचित्केचिदात्मपदे तथा
शान्त्यतीतपदे शैवाः शान्ते माहेश्वरे ततः ६८
विद्यायान्तु यथा रौद्राः प्रतिष्ठायां तु वैष्णवाः
निवृत्तौ च तथात्मानो ब्रह्मा ब्रह्मांगयोनयः ६९
देवयोन्यष्टकं मुख्यं मानुष्यमथ मध्यमम्
पद्व्यादयोऽधमाः पंचयोनयस्ताश्चतुर्दश ७०
उत्तराधरभावोऽपि ज्ञेयस्संसारिणो मलः
यथामभावो मुक्तस्य पूर्वं पश्चात्तु पक्वता ७१
मलोऽप्यामश्च पक्वश्च भवेत्संसारकारणम्
आमे त्वधरता पुंसां पक्वे तूत्तरता क्रमात् ७२
पश्वात्मानस्त्रिधाभिन्ना एकद्वित्रिमलाः क्रमात्
अत्रोत्तरा एकमला द्विमला मध्यमा मताः
त्रिमलास्त्वधमा ज्ञेया यथोत्तरमधिष्ठिताः ७३
त्रिमलानधितिष्ठंति द्विमलैकमलाः क्रमात्
इत्थमौपाधिको भेदो विश्वस्य परिकल्पितः ७४

एकद्वित्रिमलान्सर्वाञ्छिव एकोऽधितिष्ठति
अशिवात्मकमप्येतच्छिवेनाधिष्ठितं यथा ७५
अरुद्रात्मकमित्येवं रुद्रैर्जगदधिष्ठितम्
अण्डान्ता हि महाभूमिश्शतरुद्राद्यधिष्ठिता ७६
मायान्तमन्तरिक्षं तु ह्यमरेशादिभिः क्रमात्
अंगुष्ठमात्रपर्यन्तैस्समंतात्संततं ततम् ७७
महामायावसाना द्यौर्वाय्वाद्यैर्भुवनाधिपैः
अनाश्रितान्तैरध्वान्तर्वर्त्तिभिस्समधिष्ठिताः ७८
ते हि साक्षाद्दिविषदस्त्वन्तरिक्षसदस्तथा
पृथिवीपद इत्येवं देवा देवव्रतैः स्तुता ७९
एवन्त्रिभिर्मलैरामैः पक्वैरेव पृथक्पृथक्
निदानभूतैस्संसाररोगः पुंसां प्रवर्तते ८०
अस्य रोगस्य भैषज्यं ज्ञानमेव न चापरम्
भिषगाज्ञापकः शम्भुश्शिवः परमकारणम् ८१
अदुःखेनाऽपि शक्तोऽसौ पशून्मोचयितुं शिवः
कथं दुःखं करोतीति नात्र कार्या विचारणा ८२
दुःखमेव हि सर्वोऽपि संसार इति निश्चितम्
कथं दुःखमदुःखं स्यात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ८३
न हि रोगी ह्यरोगी स्याद्भिषग्भैषज्यकारणात्
रोगार्तं तु भिषग्रोगाद्भैषजैस्सुखमुद्धरेत् ८४
एवं स्वभावमलिनान्स्वभावाद्दुःखिनः पशून्
स्वाज्ञौषधविधानेन दुःखान्मोचयते शिवः ८५
न भिषक्कारणं रोगे शिवः संसारकारणम्
इत्येतदपि वैषम्यं न दोषायास्य कल्पते ८६
दुःखे स्वभावसंसिद्धे कथन्तत्कारणं शिवः

स्वाभाविको मलः पुंसां स हि संसारयत्यमून् ८७
संसारकारणं यत्तु मलं मायाद्यचेतनम्
तत्स्वयं न प्रवर्तेत शिवसान्निध्यमन्तरा ८८
यथा मणिरयस्कांतस्सान्निध्यादुपकारकः
अयसश्चलतस्तद्वच्छिवोऽप्यस्येति सूरयः ८९
न निवर्तयितुं शक्यं सान्निध्यं सदकारणम्
अधिष्ठाता ततो नित्यमज्ञातो जगतश्शिवः ९०
न शिवेन विना किंचित्प्रवृत्तमिह विद्यते
तत्प्रेरितमिदं सर्वं तथापि न स मुह्यति ९१
शक्तिराज्ञात्मिका तस्य नियन्त्री विश्वतोमुखी
तया ततमिदं शश्वत्तथापि स न दुष्यति ९२
अनिदं प्रथमं सर्वमीशितव्यं स ईश्वरः
ईशनाच्च तदीयाज्ञा तथापि स न दुष्यति ९३
योऽन्यथा मन्यते मोहात्स विनष्यति दुर्मतिः
तच्छक्तिवैभवादेव तथापि स न दुष्यति ९४
एतस्मिन्नंतरे व्योम्नः श्रुताः वागरीरिणी
सत्यमोममृतं सौम्यमित्याविरभवत्स्फुटम् ९५
ततो हृष्टतराः सर्व्वे विनष्टाशेषसंशयाः
मुनयो विस्मयाविष्टाः प्रेणेमुः पवनं प्रभुम् ९६
तथा विगतसन्देहान्कृत्वापि पवनो मुनीन्
नैते प्रतिष्ठितज्ञाना इति मत्वैवमब्रवीत् ९७
वायुरुवाच्व
परोक्षमपरोक्षं च द्विविधं ज्ञानमिष्यते
परोक्षमस्थिरं प्राहुरपरोक्षं तु सुस्थिरम् ९८
हेतूपदेशगम्यं यत्तत्परोक्षं प्रचक्षते

अपरोक्षं पुनः श्रेष्ठादनुष्ठानाद्भविष्यति ९९
नापरोक्षादृते मोक्ष इति कृत्वा विनिश्चयम्
श्रेष्ठानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रयतध्वमतन्द्रिताः १००
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
ज्ञानोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ३१

अध्याय ३२

ऋषय ऊचुः
किं तच्छ्रेष्टमनुष्ठानं मोक्षो येनपरोक्षितः
तत्तस्य साधनं चाद्य वक्तुमर्हसि मारुत १
वायुरुवाच
शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः
यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः २
स तु पंचविधो ज्ञेयः पंचभिः पर्वभिः क्रमात्
क्रियातपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरैः ३
तैरेव सोत्तरैस्सिद्धो धर्मस्तु परमो मतः
परोक्षमपरोक्षं च ज्ञानं यत्र च मोक्षदम् ४
परमोऽपरमश्चोभौ धर्मौ हि श्रुतिचोदितौ
धर्मशब्दाभिधेयेर्थे प्रमाणं श्रुतिरेव नः ५
परमो योगपर्यन्तो धर्मः श्रुतिशिरोगतः
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखोत्थितः ६
अपश्चात्माधिकारत्वाद्यो धरमः परमो मतः
साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिकारतः ७
स चायं परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम्
धर्मशास्त्रादिभिस्सम्यक् सांग एवोपबृंहितः ८

शैवो यः परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः
इतिहासपुराणाभ्यां कथंचिदुपबृंहितः ९
शैवागमैस्तु संपन्नः सहांगोपांविस्तरः
तत्संस्काराधिकारैश्च सम्यगेवोपबृंहितः १०
शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च संस्कृतः
श्रुतिसारमयः श्रौतस्स्वतंत्र इतरो मतः ११
स्वतंत्रो दशधा पूर्वं तथाष्टादशधा पुनः
कामिकादिसमाख्याभिस्सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः १२
श्रुतिसारमयो यस्तु शतकोटिप्रविस्तरः
परं पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते १३
युगावर्तेषु शिष्येत योगाचार्य्यस्वरूपिणा
तत्रतत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्यते १४
संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षय
रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः १५
ते च पाशुपता ज्ञेयास्संहितानां प्रवर्तकाः
तत्संततीया गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः १६
तत्रोक्तः परमो धर्मश्चर्याद्यात्मा चतुर्विधः
तेषु पाशुपतो योगः शिवं प्रत्यक्षयेद्दृढम् १७
तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं योगः पाशुपतो मतः
तत्राप्युपायको युक्तो ब्रह्मणा स तु कथ्यते १८
नामाष्टकमयो योगश्शिवेन परिकल्पितः
तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते १९
प्रज्ञया परमं ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम्
प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम् २०
प्रसादात्परमो योगो यः शिवं चापरोक्षयेत्

शिवापरोक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते २१
ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्तः शिवसमो भवेत्
ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव पृथगुच्यते २२
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः २३
नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य प्रतिपादकम्
आद्यन्तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीताद्यनुक्रमात् २४
संज्ञा सदाशिवादीनां पंचोपाधिपरिग्रहात्
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते २५
पदमेव हि तन्नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः
पदानां प्रतिकृत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः २६
परिवृत्त्यन्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते
आत्मान्तराभिधानं स्याद्यदाद्यं नाम पञ्चकम् २७
अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादियोगतः
त्रिविधोपाधिवचनाच्छिव एवानुवर्तते २८
अनादिमलसंश्लेषः प्रागभावात्स्वभावतः
अत्यंतं परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते २९
अथवाशेषकल्याणगुणैकधन ईश्वरः
शिव इत्युच्यते सद्भिश्शिवतत्त्वार्थवादिभिः ३०
त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ३१
यं वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः
वेदैकवेद्ययाथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ३२
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः
तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च ३३

अथवा त्रिगुणं तत्त्वमुपेयमिदमव्ययम्
मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ३४
मायाविक्षोभकोऽनंतो महेश्वरसमन्वयात्
कालात्मा परमात्मादिः स्थूलः सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ३५
रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्रावयति नः प्रभुः
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ३६
तत्त्वादिभूतपर्यन्तं शरीरादिष्वतन्द्रितः
व्याप्याधितिष्ठति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः ३७
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ३८
निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारतः ३९
संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः ४०
दशार्थज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेष्वेषु सत्स्वपि
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ४१
अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः
असत्स्वपि च सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु ४२
यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ४३
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ४४
नामाष्टकमिदं चैव लब्ध्वाचार्यप्रसादतः
निवृत्त्यादिकलाग्रन्थिं शिवाद्यैः पंचनामभिः ४५
यथास्वं क्रमशश्छित्वा शोधयित्वा यथागुणम्

गुणितैरेव सोद्धातैरनिरुद्धैरथापि वा ४६
हृत्कराठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमन्विताम्
छित्त्वा पर्यष्टकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया ४७
द्वादशांतःस्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि
संहृत्यं वदनं पश्चाद्यथासंस्करणं लयात् ४८
शाक्तेनामृतवर्षेण संसिक्तायां तनौ पुनः
अवतार्य स्वमात्मानममृतात्माकृतिं हृदि ४९
द्वादशांतःस्थितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपंकजे
समासीनं महादेवं शंकरम्भक्तवत्सलम् ५०
अर्द्धनारीश्वरं देवं निर्मलं मधुराकृतिम्
शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ५१
ध्यात्वा हि मानसे देवं स्वस्थचित्तोऽथ मानवः
शिवनामाष्टकेनैव भावपुष्पैस्समर्चयेत् ५२
अभ्यर्च्चनान्ते तु पुनः प्राणानायम्य मानवः
सम्यक्चित्तं समाधाय शार्वं नामाष्टकं जपेत् ५३
नाभौ चाष्टाहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुत्या नमस्ततः
अष्टपुष्पप्रदानेन कृत्वाभ्यर्च्चनमंतिमम् ५४
निवेदयेत्स्वमात्मानं चुलुकोदकवर्त्मना
एवं कृत्वा चिरादेव ज्ञानं पाशुपतं शुभम् ५५
लभते तत्प्रतिष्ठां च वृत्तं चानुत्तमं तथा
योगं च परमं लब्ध्वा मुच्यते नात्र संशयः ५६
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखराडे
श्रेष्ठानुष्ठानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२

अध्याय ३३

ऋषय ऊचुः
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम्
ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्वा सर्वे पाशुपताः स्मृताः १
वायुरुवाच
रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम्
व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम् २
कालश्चैत्री पौर्णमासी देशः शिवपरिग्रहः
क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तश्शुभलक्षणः ३
तत्र पूर्वं त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः
अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ४
पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम्
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ५
दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राग्मुखो वाप्युदग्मुखः
ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ६
व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः
यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा ७
तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा
तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा ८
दिनद्वादशकं वाऽथ दिनषट्कमथापि वा
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ९
अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम् १०
पूर्णामापूर्य तां भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन्

जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः ११
तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्ध्यंताम् इत्यनुस्मरन्
पञ्चभूतानि तन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च १२
ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्चकर्मविभागशः
त्वगादिधातवस्सप्त पञ्च प्राणादिवायवः १३
मनोबुद्धिरहं ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषौ
रागो विद्याकले चैव नियतिः काल एव च १४
माया च शुद्धिविद्या च महेश्वरसदाशिवौ
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः १५
मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजा भवेत्
शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि जायते १६
अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमंत्र्य च
विन्यस्याग्नौ च सम्प्रोन्द्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् १७
प्रभाते तु चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम्
दिने तस्मिन्निराहारः कालं शेषं समापयेत् १८
प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमा वसानतः
उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म यत्नतः १९
ततश्च जटिलो मुण्डी शिखैकजट एव वा
भूत्वा स्नात्वा ततो वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः २०
अपि काषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथ वा
एकाम्बरो वल्कली वा भवेद्दण्डी च मेखली २१
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम्
संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् २२
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात्
विभृज्यांगानि मूर्द्धादिचरणांतानि तैस्स्पृशेत् २३

ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना
सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा २४
ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम्
शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत् २५
कुर्यात्स्त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम्
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं विनिवर्तयेत् २६
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम्
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिस्सनातनः २७
पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलंकृतम्
कर्णिकाकेशरोपेतमासनं परिकल्पयेत् २८
विभवे तदभावे तु रक्तं सितमथापि वा
पद्मं तस्याप्यभावे तु केवलं भावनामयम् २९
तत्पद्मकर्णिकामध्ये कृत्वा लिंगं कनीयसम्
स्फीटिकं पीठिकोपेतं पूजयेद्विधिवत्क्रमात् ३०
प्रतिष्ठाप्य विधानेन तल्लिंगं कृतशोधनम्
परिकल्प्यासनं मूर्तिं पंचवक्त्रप्रकारतः ३१
पंचगव्यादिभिः पूर्णैर्यथाविभवसंभृतैः
स्नापयेत्कलशैः पूर्णैरष्टापदसमुद्भवैः ३२
गंधद्रव्यैस्सकर्पूरैश्चन्दनाद्यैस्सकुंकुमैः
सवेदिकं समालिप्य लिंगं भूषणभूषितम् ३३
बिल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तैः श्वेतैस्तथोत्पलैः
नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैस्सुगंधिभिः ३४
पुण्यैः प्रशस्तैः पत्रैश्च चित्रैर्दूर्वाक्षतादिभिः
समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानतः ३५
धूपं दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत्

निवेदयित्वा विभवे कल्याणं च समाचरेत् ३६
इष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्जितानि च
सर्वद्रव्याणि देयानि व्रते तस्मिन्विशेषतः ३७
श्रीपत्रोत्पलपद्मानां संख्या साहस्रिकी मता
प्रत्येकमपरा संख्या शतमष्टोत्तरं द्विजाः ३८
तत्रापि च विशेषेण न त्यजेद्बिल्वपत्रकम्
हैममेकं परं प्राहुः पद्मं पद्मसहस्रकात् ३९
नीलोत्पलादिष्वप्येतत्समानं बिल्बपत्रकैः
पुष्पान्तरे न नियमो यथालाभं निवेदयेत् ४०
अष्टाङ्गमर्घ्यमुत्कृष्टं धूपालेपौ विशेषतः
चन्दनं वामदेवाख्ये हरितालं च पौरुषे ४१
ईशाने भसितं केचिदालेपनमितीदृशाम्
न धूपमिति मन्यन्ते धूपान्तरविधानतः
सितागुरुमघोराख्ये मुखे कृष्णागुरुं पुनः ४२
पौरुषे गुग्गुलं सव्ये सौम्ये सौगंधिकं मुखे
ईशानेऽपि ह्युशीरादि देयाद्धूपं विशेषतः ४३
शर्करामधुकर्पूरकपिलाघृतसंयुतम्
चंदनागुरुकाष्ठाद्यं सामान्यं संप्रचक्षते ४४
कर्पूरवर्तिराज्याढ्या देया दीपावलिस्ततः
अर्घ्यमाचमनं देयं प्रतिवक्त्रमतः परम् ४५
प्रथमावरणे पूज्यो क्रमाद्धेरम्बषण्मुखौ
ब्रह्मांगानि ततश्चैव प्रथमावरणेर्चिते ४६
द्वितीयावरणे पूज्या विघ्नेशाश्चक्रवर्तिनः
तृतीयावरणे पूज्या भवाद्या अष्टमूर्तयः ४७
महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्तयः

चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व एव गणेश्वराः ४८
बहिरेव तु पद्मस्य पंचमावरणे क्रमात्
दशदिक्पतयः पूज्याः सास्त्राः सानुचरास्तथा ४९
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः सर्वेऽपि ज्योतिषां गणाः
सर्वा देव्यश्च देवाश्च सर्वे सर्वे च खेचराः ५०
पातालवासिनश्चान्ये सर्वे मुनिगणा अपि
योगिनो हि सखास्सर्वे पतंगा मातरस्तथा ५१
क्षेत्रपालाश्च सगणाः सर्वं चैतच्चराचरम्
पूजनीयं शिवप्रीत्या मत्त्वा शंभुविभूतिमत् ५२
अथावरणपूजांते संपूज्य परमेश्वरम्
साज्यं सव्यं जनं हृद्यं हविर्भक्त्या निवेदयेत् ५३
मुखवासादिकं दत्त्वा ताम्बूलं सोपदंशकम्
अलंकृत्य च भूयोऽपि नानापुष्पविभूषणैः ५४
नीराजनांते विस्तीर्य पूजाशेषं समापयेत्
चषकं सोपकारं च शयनं च समर्पयेत् ५५
चन्द्रसंकाशहारं च शयनीयं समर्पयेत्
आद्यं नृपोचितं हृद्यं तत्सर्वमनुरूपतः ५६
कृत्वा च कारयित्वा च हित्वा च प्रतिपूजनम्
स्तोत्रं व्यपोहनं जप्त्वा विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ५७
प्रदक्षिणां प्रणामं च कृत्वात्मानं समर्पयेत्
ततः पुरस्ताद्देवस्य गुरुविप्रौ च पूजयेत् ५८
दत्त्वार्घ्यमष्टौ पुष्पाणि देवमुद्वास्य लिंगतः
अग्नेश्चाग्निं सुसंयम्य ह्युद्वास्य च तमप्युत ५९
प्रत्यहं च जनस्त्वेवं कुर्यात्सेवां पुरोदिताम्
ततस्तत्साम्बुजं लिंगं सर्वोपकरणान्वितम् ६०

समर्पयेत्स्वगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये
संपूज्य च गुरून्विप्रान्व्रतिनश्च विशेषतः ६१
भक्तान्द्विजांश्च शक्तश्चेद्दीनानाथांश्च तोषयेत्
स्वयं चानशने शक्तः फलमूलाशनेऽथ वा ६२
पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथा
नक्तं युक्ताशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः ६३
भस्मशायी तृणशायी चीराजिनधृतोऽथवा
ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ६४
अर्कवारे तथार्द्रायां पंचदश्यां च पक्षयोः
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तूपवसेदपि ६५
पाखण्डपतितोदक्यास्सूतकान्त्यजपूर्वकान्
वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ६६
क्षमदानदयासत्याहिंसाशीलः सदा भवेत्
संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा ६७
कुर्यात्त्रिषवणस्नानं भस्मस्नानमथापि वा
पूजां वैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा ६८
बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती
प्रमादात्तु तथाचारे निरूप्य गुरुलाघवे ६९
उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः
आसमाप्तेर्व्रतस्यैवमाचरेन्न प्रमादतः ७०
गोदानं च वृषोत्सर्गं कुर्यात्पूजां च संपदा
भक्तश्च शिवप्रीत्यर्थं सर्वकामविवर्जितः ७१
सामान्यमेतत्कथितं व्रतस्यास्य समासतः
प्रतिमासं विशेषं च प्रवदामि यथाश्रुतम् ७२
वैशाखे वज्रलिंगं तु ज्येष्ठे मारकतं शुभम्

आषाढे मौक्तिकं विद्याच्छ्रावणे नीलनिर्मितम् ७३
मासे भाद्रपदे चैव पद्मरागमयं परम्
आश्विने मासि विद्याद्वै लिंगं गोमेदकं वरम् ७४
कार्तिक्यां वैद्रुमं लिंगं वैदूर्यं मार्गशीर्षके
पुष्परागमयं पौषे माघे द्युमणिजन्तथा ७५
फाल्गुणे चन्द्रकान्तोत्थं चैत्रे तद्व्यत्ययोऽथवा
सर्वमासेषु रत्नानामलाभे हैममेव वा ७६
हैमाभावे राजतं वा ताम्रजं शैलजन्तथा
मृन्मयं वा यथालाभं जातुषं चान्यदेव वा ७७
सर्वगंधमयं वाथ लिंगं कुर्याद्यथारुचि
व्रतावसानसमये समाचरितनित्यकः ७८
कृत्वा वैशेषिकीं पूजां हुत्वा चैव यथा पुरा
संपूज्य च तथाचार्यं व्रतिनश्च विशेषतः ७९
देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राग्मुखो वाप्युदग्मुखः
दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ८०
जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वा साम्बं त्रियम्बकम्
अनुज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ८१
समुत्सृजामि भगवन्व्रतमेतत्त्वदाज्ञया
इत्युक्त्वा लिंगमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ८२
ततो दण्डजटाचीरमेखला अपि चोत्सृजेत्
पुनराचम्य विधिवत्पंचाक्षरमुदीरयेत् ८३
यः कृत्वात्यंतिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः
व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकः स्मृतः ८४
सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा
स एव तपतां श्रेष्ठ स एव च महाव्रती ८५

न तेन सदृशः कश्चित्कृतकृत्यो मुमुक्षुषु
यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम् ८६
योऽन्वहं द्वादशाहं वा व्रतमेतत्समाचरेत्
सोऽपि नैष्ठिकतुल्यः स्यात्तीव्रव्रतसमन्वयात् ८७
घृताक्तो यश्चरेदेतद्व्रतं व्रतपरायणः
द्वित्रैकदिवसं वापि स च कश्चन नैष्ठिकः ८८
कृत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद्व्रतमुत्तमम्
शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ८९
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसंभवैः
पापैस्सुदारुणैस्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ९०
रुद्राग्निर्यत्परं वीर्य्यन्तद्भस्म परिकीर्तितम्
तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः ९१
भस्मनिष्ठस्य नश्यन्ति देषा भस्माग्निसंगमात्
भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ९२
भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुंड्रकः
भस्मस्नायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ९३
भूतप्रेतपिशासाश्च रोगाश्चातीव दुस्सहाः
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ९४
भासनाद्भासितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात्
भूतिभूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परम् ९५
किमन्यदिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणम्
व्रती च भस्मना स्नातस्स्वयं देवो महेश्वरः ९६
परमास्त्रं च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरम्
धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः ९७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा पाशुपतव्रतम्

धनवद्भस्म संगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत् ६८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखराडे
पशुपतिव्रतविधानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

अध्याय ३४

ऋषय ऊचुः
धौम्याग्रजेन शुशुना क्षीरार्थं हि तपः कृतम्
तस्मात् क्षीरार्णवो दत्तस्तस्मै देवेन शूलिना १
स कथं शिशुको लेभे शिवशास्त्रप्रवक्तृताम्
कथं वा शिवसद्भावं ज्ञात्वा तपसि निष्ठितः २
कथं च लब्धविज्ञानस्तपश्चरणपर्वणि
रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं लभे भस्म स्वरक्षकम् ३
वायुरुवाच
न ह्येष शिशुकः कश्चित्प्राकृतः कृतवांस्तपः
मुनिवर्यस्य तनयो व्याघ्रपादस्य धीमतः ४
जन्मान्तरेण संसिद्धः केनापि खलु हेतुना
स्वपदप्रच्युतो दिष्ट्या प्राप्तो मुनिकुमारताम् ५
महादेवप्रसादस्य भाग्यापन्नस्य भाविनः
दुग्धाभिलाषप्रभवद्वारतामगमत्तपः ६
अतः सर्वगणेशत्वं कुमारत्वं च शाश्वतम्
सह दुग्धाब्धिना तस्मै प्रददौ शंकरः स्वयम् ७
तस्य ज्ञानागमोप्यस्य प्रसादादेव शांकरात्
कौमारं हि परं साक्षाज्ज्ञानं शक्तिमयं विदुः ८
शिवशास्त्रप्रवक्तृत्वमपि तस्य हि तत्कृतम्
कुमारो मुनितो लब्धज्ञानाब्धिरिव नन्दनः ९

दृष्टं तु कारणं तस्य शिवज्ञानसमन्वये
स्वमातृवचनं साक्षाच्छोकजं क्षीरकारणात् १०
कदाचित्क्षीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे
ईर्षयया मातुलसुतं संतृप्तक्षीरमुत्तमम् ११
पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा वै मातुलात्मजम्
उपमन्युर्व्याघ्रपादिः प्रीत्या प्रोवाच मातरम् १२
उपमन्युरुवाच
मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि
गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं पिबाम्यहम् १३
वायुरुवाच
तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी
व्याघ्रपादस्य महिषी दुःखमापत्तदा च सा १४
उपलाल्याथ सुप्रीत्या पुत्रमालिंग्य सादरम्
दुःखिता विललापाथ स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः १५
स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युस्स बालकः
देहि देहीति तामाह रुद्रन्भूयो महाद्युतिः १६
तद्धठं सा परिज्ञाय द्विजपत्नी तपस्विनी
शान्तये तद्धठस्याथ शुभोपायमरीरचत् १७
उञ्छवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वयं दृष्ट्वा च सा तदा
बीजपिष्टमथालोड्य तोयेन कलभाषिणी १८
एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततस्सुतम्
आलिंग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः १९
पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रां दत्तं स बालकः
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः २०
दुःखिता सा तदा प्राह संप्रेक्ष्याघ्राय मूर्द्धनि

समार्ज्य नेत्र पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते २१
जनन्युवाच
तटिनी रत्नपूर्णास्तास्स्वर्गपातालगोचराः
भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे २२
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम्
न लभन्ते प्रियाण्येषां न तुष्यति यदा शिवः २३
भवप्रसादजं सर्वं नान्यद्देवप्रसादजम्
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्ता विभ्रमन्ति च २४
क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा
क्व दुग्धसाधनं वत्स क्व वयं वनवासिनः २५
कृत्स्नाभावेन दारिद्र्यान्मया ते भाग्यहीनया
मिथ्यादुग्धमिदं दत्तम्पिष्टमालोड्य वारिणा २६
त्वं मातुलगृहे स्वल्पं पीत्वा स्वादु पयः शृतम्
ज्ञात्वा स्वादु त्वया पीतं तज्जातीयमनुस्मरन् २७
दत्तं न पय इत्युक्त्वा रुदन् दुःखीकरोषि माम्
प्रसादेन विना शंभो पयस्तव न विद्यते २८
पादपंकजयोस्तस्य साम्बस्य सगणस्य च
भक्त्या समर्पितं यत्तत्कारणं सर्वसम्पदाम् २९
अधुना वसुदोस्माभिर्महादेवो न पूजितः
सकामानां यथाकामं यथोक्तफलदायकः ३०
धनान्युद्दिश्य नास्माभिरितः प्रागर्चितः शिवः
अतो दरिद्रास्संजाता वयं तस्मान्न ते पयः ३१
पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुतः
तदेव लभ्यते नान्यद्विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ३२
वायुरुवाच

इति मातृवचः श्रुत्वा तथ्यं शोकादिसूचकम्
बालोऽप्यनुतपन्नंतः प्रगल्भमिदमब्रवीत् ३३
उपमन्युरुवाच
शोकेनालमितो मतः सांबो यद्यस्ति शंकरः
त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति ३४
शृणु मातर्वचो मेद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ३५
वायुरुवाच
इति श्रुत्वा वचस्तस्य बालकस्य महामतेः
प्रय्तुवाच तदा माता सुप्रसन्ना मनस्विनी ३६
मातोवाच
शुभं विचारितं तात त्वया मत्प्रीतिवर्द्धनम्
विलंबं मा कथास्त्वं हि भज सांबं सदाशिवम् ३७
सर्वस्मादधिकोऽस्त्येव शिवः परमकारणम्
तत्कृतं हि जगत्सर्वं ब्रह्माद्यास्तस्य किंकराः ३८
तत्प्रसादकृतैश्वर्या दासास्तस्य वयं प्रभोः
तं विनान्यं न जानीमश्शंकरं लोकशंकरम् ३९
अन्यान्देवान्परित्यज्य कर्मणा मनसा गिरा
तमेव सांबं सगणं भज भावपुरस्सरम् ४०
तस्य देवाधिदेवस्य शिवस्य वरदायिनः
साक्षान्नमश्शिवायेति मंत्रोऽयं वाचकः स्मृतः ४१
सप्तकोटिमहामंत्राः सर्वे सप्रणवाः परे
तस्मिन्नेव विलीयंते पुनस्तस्माद्विनिर्गताः ४२
सप्रसादाश्च ते मंत्राः स्वाधिकाराद्यपेक्षया
सर्वाधिकारस्त्वेकोऽयं मंत्र एवेश्वराज्ञया ४३

यथा निकृष्टानुत्कृष्टान्सर्वानप्यात्मनः शिवः
क्षमते रक्षितुं तद्वन्मंत्रोऽयमपि सर्वदा ४४
प्रबलश्च तथा ह्येष मंत्रो मन्त्रान्तरादपि
सर्वरक्षाक्षमोऽप्येष नापरः कश्चिदिष्यते ४५
तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा पंचाक्षरपरो भव
तस्मिञ्जिह्वांतरगते न किंचिदिह दुर्लभम् ४६
अघोरास्त्रं च शैवानां रक्षाहेतुरनुत्तमम्
तच्च तत्प्रभवं मत्वा तत्परो भव नान्यथा ४७
भस्मेदन्तु मया लब्धं पितुरेव तवोत्तमम्
विरजानलसंसिद्धं महाव्यापन्निवारणम् ४८
मंत्रं च ते मया दत्तं गृहाण मदनुज्ञया
अनेनैवाशु जप्तेन रक्षा तव भविष्यति ४९
वायुरुवाच
एवं मात्रा समादिश्य शिवमस्त्वित्युदीर्य च
विसृष्टस्तद्वचो मूर्ध्नि कुर्वन्नेव तदा मुनिः ५०
तां प्रणम्यैवमुक्त्वा च तपः कर्तुं प्रचक्रमे
तमाह च तदा माता शुभं कुर्वंतु ते सुराः ५१
अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे स दुश्चरम्
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः ५२
अष्टेष्टकाभिः प्रसादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम्
तत्रावाह्य महादेवं सांबं सगणमव्ययम् ५३
भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव पुत्रैः पुष्पैर्वनोद्भवैः
समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः ५४
ततस्तपश्चरत्तं तं बालमेकाकिनं कृशम्
उपमन्युं द्विजवरं शिवसंसक्तमानसम् ५५

पुरा मरीचिना शप्ताः केचिन्मुनिपिशाचकाः
संपीड्य राक्षसैर्भावैस्तपसोविघ्नमाचरन् ५६
स च तैः पीड्यमानोऽपि तपः कुर्वन्कथञ्चन
सदा नमः शिवायेति क्रोशति स्मार्तनादवत् ५७
तन्नादश्रवणादेव तपसो विघ्नकारिणः
ते तं बालं समुत्सृज्य मुनयस्समुपाचरन् ५८
तपसा तस्य विप्रस्य चोपमन्योर्महात्मनः
चराचरं च मुनयः प्रदीपितमभूज्जगत् ५९
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
उपमन्युतपोवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४

अध्याय ३५

वायुरुवाच
अथ सर्वे प्रदीप्तांगा वैकुण्ठं प्रययुर्द्रुतम्
प्रणम्याहुश्च तत्सर्वं हरये देवसत्तमाः १
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः
किमिदन्त्विति संचिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः २
जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया
दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाच सुकृतांजलिः ३
विष्णुरुवाच
भगवन्ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरिति श्रुतः
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तन्निवारय ४
वायुरुवाच
इति श्रुत्वा वचो विष्णोः प्राह देवो महेश्वरः
शिशुं निवारयिष्यामि तत्त्वं गच्छ स्वमाश्रमम् ५

तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं स विष्णुर्देववल्लभः
जगामाश्वास्य तान्सर्वान्स्वलोकममरादिकान् ६
एतस्मिन्नंतरे देवः पिनाकी परमेश्वरः
शक्रस्य रूपमास्थाय गन्तुं चक्रे मतिं ततः ७
अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः
सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ८
स वारणश्चारु तदा विभुं तं निवीज्य वालव्यजनेन दिव्यम्
दधार शच्या सहितं सुरेंद्रं करेण वामेन शितातपत्रम् ९
रराज भगवान्सोमः शक्ररूपी सदाशिवः
तेनातपत्रेण यथा चन्द्रबिंबेन मन्दरः १०
आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः
जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ११
तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम्
प्रणम्य शिरसा प्राह महामुनिवरः स्वयम् १२
उपमन्युरुवाच
पावितश्चाश्रमस्सोऽयं मम देवेश्वर स्वयम्
प्राप्तो यत्त्वं जगन्नाथ भगवन्देवसत्तम १३
वायुरुवाच
एवमुक्त्वा स्थितं प्रेक्ष्य कृतांजलिपुटं द्विजम्
प्राह गंभीरया वाचा शक्ररूपधरो हरः १४
शक्र उवाच
तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत
ददामि चेप्सितान्सर्वान्धौम्याग्रज महामुने १५
वायुरुवाच
एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिपुंगवः

वारयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः १६
तन्निशम्य हरिः १ प्राह मां न जानासि लेखपम्
त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् १७
मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् १८
रुद्रेण निर्गुणेनापि किं ते कार्यं भविष्यति
देवपङ्क्तिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः १९
वायुरुवाच
तच्छ्रुत्वा प्राह स मुनिर्जपन्पंचाक्षरं मनुम्
मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम् २०
उपमन्युरुवाच
त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै
प्रसंगादेव देवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः २१
त्वं न जानामि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम्
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनक प्रकृतेः परम् २२
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः
नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणोम्यहम् २३
हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम्
उपासते यं तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्वृणोम्यहम् २४
नास्ति शंभोः परं तत्त्वं सर्वकारणकारणात्
ब्रह्मविष्णवादिदेवानां स्रष्टुर्गुणपराद्विभोः २५
बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत्
भवांतरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत् २६
श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत्
स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति २७

आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतं कलेवरम् २८
वायुरुवाच
एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितस्स्वयम्
क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः २९
भस्मादाय तदा घोरमघोरास्त्राभिमंत्रितम्
विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा ३०
स्मृत्वा शंभुपदद्वंद्वं स्वदेहं दुग्धुमुद्यतः
आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः ३१
एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः ३२
तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नंदीश्वरनियोगतः
जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभः ३३
स्वं रूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः
दर्शयामास शिप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ३४
क्षीरार्णवसहस्रं च पीयूषार्णवमेव वा
दध्यादेरर्णवांश्चैव घृतोदार्णवमेव च ३५
फलार्णवं च बालस्य भक्ष्य भोज्यार्णवं तथा
अपूपानां गिरिं चैव दर्शयामास स प्रभुः ३६
एवं स ददृशे देवो देव्या सार्द्धं वृषोपरि
गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः ३७
दिवि दुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च
विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश ३८
अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः
पपात दण्डवद्भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा ३९

एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः
एह्येहीति तमाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ४०
शिव उवाच
भक्ष्यभोज्यान्यथाकामं बान्धवैर्भुङ्क्ष्व सर्वदा
सुखी भव सदा दुःखान्निर्मुक्ता भक्तिमान्मम ४१
उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती
मया पुत्रीकृतो ह्यद्य दत्तः क्षीरोदकार्णवः ४२
मधुनश्चार्णवश्चैव दध्यन्नार्णव एव च
आज्यौदनार्णवश्चैव फलाद्यर्णव एव च ४३
अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवस्तथा
एते दत्ता मया ते हि त्वं गृह्णीष्व महामुने ४४
पिता तव महादेवो माता वै जगदम्बिका
अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ४५
वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलषितान्परान्
प्रसन्नोऽहं प्रदास्यामि नात्र कार्या विचारणा ४६
वायुरुवाच
एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्यतम्
मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत् ४७
देवी च गुहवत्प्रीत्या मूर्ध्नि तस्य कराम्बुजम्
विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमव्ययम् ४८
क्षीराब्धिरपि साकारः क्षीरं स्वादु करे दधत्
उपस्थाय ददौ पिण्डीभूतं क्षीरमनश्वरम् ४९
योगैश्वर्यं सदा तुष्टिं ब्रह्मविद्यामनश्वराम्
समृद्धिं परमान्तस्मै ददौ संतुष्टमानसः ५०
अथ शंभुः प्रसन्नात्मा दृष्ट्वा तस्य तपोमहः

पुनर्ददौ वरं दिव्यं मुनये ह्युपमन्यवे ५१
व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः
ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वपाटवं सुचिरं परम् ५२
सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा
तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ५३
ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृतांजलिः
ययाचे स वरं विप्रो देवदेवान्महेश्वरात् ५४
उपमन्युरुवाच
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर
स्वभक्तिन्देहि परमान्दिव्यामव्यभिचारिणीम् ५५
श्रद्धान्देहि महादेव द्वसम्बन्धिषु मे सदा
स्वदास्यं परमं स्नेहं सान्निध्यं चैव सर्वदा ५६
एवमुक्त्वा प्रसन्नात्माहर्षगद्गदया गिरा
सतुष्टाव महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः ५७
उपमन्युरुवाच
देवदेव महादेव शरणागतवत्सल
प्रसीद करुणासिंधो साम्ब शंकर सर्वदा ५८
वायुरुवाच
एवमुक्तो महादेवः सर्वेषां च वरप्रदः
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं मुनिसत्तमम् ५९
शिव उवाच
वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि सर्वं दत्तं मया हि ते
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया विज्ञासितो ह्यसि ६०
अजरश्चामरश्चैव भव त्वन्दुःखवर्जितः
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ६१

अन्नया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ६२
सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम
उपकंठं मम त्वं वै सानन्दं विहरिष्यसि ६३
एवमुक्त्वा स भगवान्सूर्यकोटिसमप्रभः
ईशानस्स वरान्दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः ६४
उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य तस्माद्वराद्वरान्
जगाम जननीस्थानं सुखं प्रापाधिकं च सः ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे वैयासिक्यां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां
तदन्तर्गतायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
उपमन्युचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५
समाप्तोऽयं सप्तम्या वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डः

श्रीः
श्रीगणेशाय नमः
श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः
अथ सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डः प्रारभ्यते
अध्याय १

नमस्समस्तसंसारचक्रभ्रमणहेतवे
गौरीकुचतटद्वन्द्वकुंकुमांकितवक्षसे १
सूत उवाच
उक्त्वा भगवतो लब्धप्रसादादुपमन्युना
नियमादुत्थितो वायुर्मध्ये प्राप्ते दिवाकरे २
ऋषयश्चापि ते सर्वे नैमिषारण्यवासिनः
अथायमर्थः प्रष्टव्य इति कृत्वा विनिश्चयम् ३
कृत्वा यथा स्वकं कृत्यं प्रत्यहं ते यथा पुरा
भगवंतमुपायांतं समीक्ष्य समुपाविशन् ४
अथासौ नियमस्यांते भगवानम्बरोद्भवः
मध्ये मुनिसभायास्तु भेजे क्लृप्तं वरासनम् ५
सुखासनोपविष्टश्च वायुर्लोकनमस्कृतः
श्रीमद्विभूतिमीशस्य हृदि कृत्वेदमब्रवीत् ६
तं प्रपद्ये महादेवं सर्वज्ञमपराजितम्
विभूतिस्सकलं यस्य चराचरमिदं जगत् ७
इत्याकर्ण्य शुभां वाणीमृषयः क्षीणकल्मषाः
विभूतिविस्तरं श्रोतुमूचुस्ते परमं वचः ८
ऋषय ऊचुः
उक्तं भगवता वृत्तमुपमन्योर्महात्मनः
क्षीरार्थेनापि तपसा यत्प्राप्तं परमेश्वरात् ९

दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा
धौम्याग्रजस्ततस्तेन कृत्वा पाशुपतं व्रतम् १०
प्राप्तं च परमं ज्ञानमिति प्रागेव शुश्रुम
कथं स लब्धवान् कृष्णो ज्ञानं पाशुपतं परम् ११
वायुरुवाच
स्वेच्छया ह्यवतीर्णोपि वासुदेवस्सनातनः
निंदयन्निव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः १२
पुत्रार्थं हि तपस्तप्तुं गतस्तस्य महामुनेः
आश्रमं मुनिभिर्दृष्टं दृष्टवांस्तत्र वै मुनिम् १३
भस्मावदातसर्वांगं त्रिपुंड्रांकितमस्तकम्
रुद्राक्षमालाभरणं जटामंडलमंडितम् १४
तच्छिष्यभूतैर्मुनिभिश्शास्त्रैर्वेदमिवावृतम्
शिवध्यानरतं शांतमुपमन्युं महाद्युतिम् १५
नमश्चकार तं दृष्ट्वा हृष्टसर्वतनूरुहः
बहुमानेन कृष्णोऽसौ त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणाम्
स्तुतिं चकार सुप्रीत्या नतस्कंधः कृताञ्जलिः १६
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः
नष्टमासीन्मलं सर्वं मायाजं कार्ममेव च १७
तपःक्षीणमलं कृष्णमुपमन्युर्यथाविधिः
भस्मनोद्धूल्य तं मन्त्रैरग्निरित्यादिभिः क्रमात् १८
अथ पाशुपतं साक्षाद्व्रतं द्वादशमासिकम्
कारयित्वा मुनिस्तस्मै प्रददौ ज्ञानमुत्तमम् १९
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयश्शंसितव्रताः
दिव्याः पाशुपताः सर्वे परिवृत्योपतस्थिरे २०
ततो गुरुनियोगाद्वै कृष्णः परमशक्तिमान्

तपश्चकार पुत्रार्थं सांबमुद्दिश्य शंकरम् २१
तपसो तेन वर्षांते दृष्टोऽसौ परमेश्वरः
श्रिया परमया युक्तस्सांबश्च सगणश्शिवः २२
वरार्थमाविर्भूतस्य हरस्य सुभगाकृतेः
स्तुतिं चकार नत्वासौ कृष्णः सम्यक्कृतांजलिः २३
सांबं समगणव्यग्रो लब्धवान्पुत्रमात्मनः
तपसा तुष्टचित्तेन दत्तं विष्णोश्शिवेन वै २४
यस्मात्सांबो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः
तस्माज्जांबवतीसूनुं सांबं चक्रे स नामतः २५
तदेतत्कथितं सर्वं कृष्णस्यामितकर्मणः
महर्षेर्ज्ञानलाभश्च पुत्रलाभश्च शंकरात् २६
य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा
स विष्णोर्ज्ञानमासाद्य तेनैव सह मोदते २७

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णनं नम प्रथमोऽध्यायः १

अध्याय २

ऋषय ऊचुः
किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिश्शिवः
कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा १
एतत्सर्वं समाचद्ध्व वायो शंकरविग्रह
तत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः २
सूत उवाच
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां महर्षीणां प्रभंजनः
संस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे ३

वायुरुवाच
पुरा साक्षान्महेशेन श्रीकंठाख्येन मन्दरे
देव्यै देवेन कथितं ज्ञानं पाशुपतं परम् ४
तदेव पृष्टं कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना
पशुत्वं च सुरादीनां पतित्वं च शिवस्य च ५
यथोपदिष्टं कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना
तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतंद्रिताः ६
पुरोपमन्युमासीनं विष्णुःकृष्णवपुर्धरः
प्रणिपत्य यथान्यायमिदं वचनमब्रवीत् ७
श्रीकृष्ण उवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देव्यै देवेन भाषितम्
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूतिं वास्य कृत्स्नशः ८
कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः
कैः पाशैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च ते कथम् ९
इति संचोदितः श्रीमानुपमन्युर्महात्मना
प्रणम्य देवं देवीं च प्राह पुष्टो यथा तथा १०
उपमन्युरुवाच
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्य शूलिनः
पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः ११
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः १२
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा अमी १३
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतान् पशून्बद्ध्वा महेश्वरः १४

पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम्
तस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् १५
बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहंकारमहंकृतिः
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रापञ्चकं तथा १६
शासनाद्देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः
तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा १७
महाभूतान्यशेषाणि भावयंत्यनुपूर्वशः
ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् १८
महाभूतान्यशेषाणि जनयंति शिवाज्ञया
अध्यवस्यति वै बुद्धिरहंकारोभिमन्यते १९
चित्तं चेतयते चापि मनः संकल्पयत्यपि
श्रोत्रादीनि च गृह्णन्ति शब्दादीन्विषयान् पृथक् २०
स्वानेव नान्यान्देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै
वागादीन्यपि यान्यासंस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च २१
यथा स्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिच्छिवाज्ञया
शब्दादयोपि गृह्यंते क्रियन्ते वचनादयः २२
अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति २३
आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः
प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैरंतर्बहिर्जगत् २४
बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभञ्जनः
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि २५
पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात्
संजीवनाद्यं सर्वस्य कुर्वत्यापस्तदाज्ञया २६
विश्वम्भरा जगन्नित्यं धत्ते विश्वेश्वराज्ञया

देवान्पात्यसुरान् हंति त्रिलोकमभिरक्षति २७
आज्ञया तस्य देवेन्द्रः सर्वैर्देवैरलंघ्यया
आधिपत्यमपां नित्यं कुरुते वरुणस्सदा २८
पाशैर्बध्नाति च यथा दंड्यांस्तस्यैव शासनात्
ददाति नित्यं यक्षेन्द्रो द्रविणं द्रविणेश्वरः २९
पुण्यानुरूपं भूतेभ्यः पुरुषस्यानुशासनात्
करोति संपदः शश्वज्ज्ञानं चापि सुमेधसाम् ३०
निग्रहं चाप्यसाधूनामीशानश्शिवशासनात्
धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः ३१
यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंतकरीं हरेः
सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः ३२
अन्याभिर्मूर्तिभिः स्वाभिः पाति चांते निहन्ति च
विष्णुः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात् ३३
सृजते त्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभिः
हरत्यंते जगत्सर्वं हरस्तस्यैव शासनात् ३४
सृजत्यपि च विश्वात्मा त्रिधा भिन्नस्तु रक्षति
कालः करोति सकलं कालस्संहरति प्रजाः ३५
कालः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात्
त्रिभिरंशैर्जगद्बिभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ३६
दिवि वर्षत्यसौ भानुर्देवदेवस्य शासनात्
पुष्णात्योषधिजातानि भूतान्याह्लादयत्यपि ३७
देवैश्च पीयते चंद्रश्चन्द्रभूषणशासनात्
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ३८
खेचरा ऋषयस्सिद्धा भोगिनो मनुजा मृगाः
पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च ३९

नद्यस्समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च
वेदाः सांगाश्च शास्त्राणि मंत्रस्तोममखादयः ४०
कालाग्न्यादिशिवांतानि भुवनानि सहाधिपैः
ब्रह्मांडान्यप्यसंख्यानि तेषामावरणानि च ४१
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नशः
दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ४२
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा
तत्सर्वं शंकरस्याज्ञा बलेन समधिष्ठितम् ४३
आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः
ज्योतिर्गणाः शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरं चिरं वा चिदचिद्यदस्ति ४४
उपमन्युरुवाच
अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः
आज्ञाकृतं शृणुष्वैतच्छ्रुतं श्रुतिमुखे मया ४५
पुरा किल सुराः सेंद्रा विवदंतः परस्परम्
असुरान्समरे जित्वा जेताहमहमित्युत ४६
तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक्
स्वलक्षणैर्विहीनांगः स्वयं यक्ष इवाभवत् ४७
स तानाह सुरानेकं तृणमादाय भूतले
य एतद्विकृतं कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित् ४८
यक्षस्य वचनं श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः
किंचित्क्रुद्धो विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः ४९
न तत्तृणमुपदातुं मनसापि च शक्यते
यथा तथापि तच्छेत्तुं वज्रं वज्रधरोऽसृजत् ५०
तद्वज्रं निजवज्रेण संसृष्टमिव सर्वतः
तृणेनाभिहतं तेन तिर्यगग्रं पपात ह ५१

ततश्चान्ये सुसंरब्धा लोकपाला महाबलाः
ससृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः ५२
प्रजज्वाल महावह्निः प्रचंडः पवनो ववौ
प्रवृद्धोऽपांपतिर्यद्वत्प्रलये समुपस्थिते ५३
एवं देवैस्समारब्धं तृणमुद्दिश्य यत्नतः
व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै ५४
तदाह यक्षं देवेंद्रः को भवानित्यमर्षितः
ततस्स पश्यतामेव तेषामंतरधादथ ५५
तदंतरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा
आविरासीन्नभोरंगे शोभमाना शुचिस्मिता ५६
तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः
प्रणम्य यक्षं पप्रच्छुः कोऽसौ यक्षो विलक्षणः ५७
साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचरः
तेनेदं भ्रम्यते चक्रं संसाराख्यं चराचरम् ५८
तेनादौ क्रियते विश्वं तेन संह्रियते पुनः
न तन्नियन्ता कश्चित्स्यात्तेन सर्वं नियम्यते ५९
इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवांतरधत्त वै
देवाश्च विस्मिताः सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययुः ६०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे
द्वितीयोऽध्यायः २

अध्याय ३

उपमन्युरुवाच
शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः
मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्नं जगदेतच्चराचरम् १

स शिवस्सर्वमेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः
अधितिष्ठत्यमेयात्मा ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम् २
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशानस्सदाशिवः
मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम् ३
अथान्याश्चापि तनवः पंच ब्रह्मसमाह्वयाः
तनूभिस्ताभिराव्याप्तमिह किंचिन्न विद्यते ४
ईशानः पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च
ब्रह्माण्येतानि देवस्य मूर्त्तयः पंच विश्रुताः ५
ईशानाख्या तु या तस्य मूर्त्तिराद्या गरीयसी
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ६
स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या या मूर्त्तिर्मूर्त्तिमतः प्रभोः
गुणाश्रयात्मकं भोग्यमव्यक्तमधितिष्ठति ७
धर्माद्यष्टांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः
अधितिष्ठत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यंतपूजिता ८
वामदेवाह्वयां मूर्त्तिं महादेवस्य वेधसः
अहंकृतेरधिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः ९
सद्यो जाताह्वयां मूर्त्तिं शम्भोरमितवर्चसः
मानसः समधिष्ठात्रीं मतिमंतः प्रचक्षते १०
श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च
ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः ११
त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्
पुरुषाख्यं विदुस्सर्वे पुराणार्थविशारदाः १२
चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः १३
रमनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च

ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्त्तिं तन्निरतां विदुः १४
घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा
सद्यो जाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते १५
मूर्तयः पंच देवस्य वंदनीयाः प्रयत्नतः
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः १६
तस्य देवादिदेवस्य मूर्त्त्यष्टकमयं जगत्
तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव १७
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः
ईशानश्च महादेवो मूर्त्तयश्चाष्ट विश्रुताः १८
भूम्यंभोग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः
अधिष्ठिता महेशस्य शर्वाद्यैरष्टमूर्त्तिभिः १९
चराचरात्मकं विश्वं धत्ते विश्वंभरात्मिका
शार्वीर्शिवाह्वया मूर्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः २०
संजीवनं समस्तस्य जगतस्सलिलात्मिका
भावीति गीयते मूर्त्तिभवस्य परमात्मनः २१
बहिरंतर्गता विश्वं व्याप्य तेजोमयी शुभा
रौद्री रुद्राव्यया मूर्तिरास्थिता घोररूपिणी २२
स्पंदयत्यनिलात्मदं बिभर्ति स्पंदते स्वयम्
औग्रीति कथ्यते सद्भिर्मूर्तिरुग्रस्य वेधसः २३
सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिका
मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवृंदस्य भेदिका २४
सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी
मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पशुपाशनिकृंतनी २५
दीपयंती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया
ईशानाख्यमहेशस्य मूर्तिर्दिवि विसर्पति २६

आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः
महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया २७
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् २८
वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यंति वै यथा
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत् २९
सर्वाभयप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः ३०
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ३१
देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः
अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः ३२
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्
भजस्व सर्वभावेन रुद्रः परमकारणम् ३३

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
तृतीयोऽध्यायः ३

अध्याय ४

कृष्ण उवाच
भगवन्परमेशस्य शर्वस्यामिततेजसः
मूर्तिभिर्विश्वमेवेदं यथा व्याप्तं तथा श्रुतम् १
अथैतज्ज्ञातुमिच्छामि याथात्म्यं पमेशयोः
स्त्रीपुंभावात्मकं चेदं ताभ्यां कथमधिष्ठितम् २
उपमन्युरुवाच
श्रीमद्विभूतिं शिवयोर्याथात्म्यं च समासतः

वक्ष्ये तद्विस्तराद्वक्तुं भवेनापि न शक्यते ३
शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवश्च शक्तिमान्
तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम् ४
वस्तु किंचिदचिद्रूपं किंचिद्वस्तु चिदात्मकम्
द्वयं शुद्धमशुद्धं च परं चापरमेव च ५
यत्संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्रसमन्वितम्
तदेवाशुद्धमपरमितरं तु परं शुभम् ६
अपरं च परं चैव द्वयं चिदचिदात्मकम्
शिवस्य च शिवायाश्च स्वाम्यं चैतत्स्वभावतः ७
शिवयोर्वै वशे विश्वं न विश्वस्य वशे शिवौ
ईशितव्यमिदं यस्मात्तस्माद्विश्वेश्वरौ शिवौ ८
यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः
नानयोरंतरं विद्याच्चंद्रचन्द्रिकयोरिव ९
चंद्रो न खलु भात्येष यथा चंद्रिकया विना
न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः १०
प्रभया हि विनायद्वद्भानुरेष न विद्यते
प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया ११
एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः १२
शक्तौयया शिवो नित्यं भक्तौ मुक्तौ च देहिनाम्
आद्या सैका परा शक्तिश्चिन्मयी शिवसंश्रया १३
यामाहुरखिलेशस्य तैस्तैरनुगुणैर्गुणैः
समानधर्मिणीमेव शिवस्य परमात्मनः १४
सैका परा च चिद्रूपा शक्तिः प्रसवधर्मिणी
विभज्य बहुधा विश्वं विदधाति शिवेच्छया १५

सा मूलप्रकृतिर्माया त्रिगुणा च त्रिधा स्मृता
शिवया च विपर्यस्तं यया ततमिदं जगत् १६
एकधा च द्विधा चैव तथा शतसहस्रधा
शक्तयः खलु भिद्यंते बहुधा व्यवहारतः १७
शिवेच्छया पराशक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता
ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव १८
ततः क्रियाख्यया शक्त्या शक्तौ शक्तिमदुत्थया
तस्यां विक्षोभ्यमाणायामादौ नादः समुद्बभौ १९
नादाद्विनिःसृतो बिंदुर्बिंदोदेवस्सदाशिवः
तस्मान्महेश्वरो जातः शुद्धविद्या महेश्वरात् २०
सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्या हि शूलिनः
या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेपि विजृम्भते २१
अथानंतसमावेशान्माया कालमवासृजत्
नियतिञ्च कलां विद्यां कलातोरागपूरुषौ २२
मायातः पुनरेवाभूदव्यक्तं त्रिगुणात्मकम्
त्रिगुणाच्च ततो व्यक्ताद्विभक्ताः स्युस्त्रयो गुणाः २३
सत्त्वं रजस्तमश्चेति यैर्व्याप्तमखिलं जगत्
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यो गुणेशाख्यास्त्रिमूर्त्तयः २४
अभवन्महदादीनि तत्त्वानि च यथाक्रमम्
तेभ्यस्स्युरण्डपिण्डानि त्वसंख्यानि शिवाज्ञया २५
अधिष्ठितान्यनन्ताद्यैर्विद्येशैश्चक्रवर्तिभिः २५ २५
शरीरांतरभेदेन शक्तेर्भेदाः प्रकीर्तिताः
नानारूपास्तु विज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः २६
रुद्रस्य रौद्री सा शक्तिर्विष्णोर्वै वैष्णवी मता
ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रोक्ता चेन्द्रस्यैंद्रीति कथ्यते २७

किमत्र बहुनोक्तेन यद्विश्वमिति कीर्तितम्
शक्यात्मनैव तद्व्याप्तं यथा देहेऽतरात्मना २८
तस्माच्छक्तिमयं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्
कला या परमा शक्तिः कथिता परमात्मनः २९
एवमेषा परा शक्तिरीश्वरेच्छानुयायिनी
स्थिरं चरं च यद्विश्वं सृजतीति विनिश्चयः ३०
ज्ञानक्रिया चिकीर्षाभिस्तिसृभिस्स्वात्मशक्तिभिः
शक्तिमानीश्वरः शश्वद्विश्वं व्याप्याधितिष्ठति ३१
इदमित्थमिदं नेत्थं भवेदित्येवमात्मिका
इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्य्यनियामिका ३२
ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं करणं कारणं तथा
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ३३
यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत्
कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात्संकल्परूपिणी ३४
यथा शक्तित्रयोत्थानं शक्तिप्रसवधर्मिणी
शक्त्या परमया नुन्ना प्रसूते सकलं जगत् ३५
एवं शक्तिसमायोगाच्छक्तिमानुच्यते शिवः
शक्तिशक्तिमदुत्थं तु शाक्तं शैवमिदं जगत् ३६
यथा न जायते पुत्रः पितरं मातरं विना
तथा भवं भवानीं च विना नैतच्चराचरम्
स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च ३७
स्त्रीपुंसयोर्विभूतिश्च स्त्रीपुंसाभ्यामधिष्ठितम्
परमात्मा शिवः प्रोक्तश्शिवा सा च प्रकीर्तिता ३८
शिवस्सदाशिवः प्रोक्तः शिवा सा च मनोन्मनी
शिवो महेश्वरो ज्ञेयः शिवा मायेति कथ्यते ३९

पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी
रुद्रो महेश्वरस्साक्षाद्रुद्राणी रुद्रवल्लभा ४०
विष्णुर्विश्वेश्वरो देवो लक्ष्मीर्विश्वेश्वरप्रिया
ब्रह्मा शिवो यदा स्रष्टा ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रिया ४१
भास्करो भगवाञ्छंभुः प्रभा भगवती शिवा
महेंद्रो मन्मथारातिः शची शैलेन्द्रकन्यका ४२
जातवेदा महादेवः स्वाहा शर्वार्द्धदेहिनी
यमस्त्रियंबको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका ४३
निर्ऋृतिर्भगवानीशो नैर्ऋृती नगनंदनी
वरुणो भगवान्रुद्रो वारुणी भूधरात्मजा ४४
बालेंदुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोहरा
यक्षो यज्ञशिरोहर्ता ऋद्धिर्हिमगिरीन्द्रजा ४५
चंद्रार्धशेखरश्चंद्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा
ईशानः परमेशानस्तदार्या परमेश्वरी ४६
अनंतवलयोऽनंतो ह्यनंतानंतवल्लभा
कालाग्निरुद्रः कालारिः काली कालांतकप्रिया ४७
पुरुषाख्यो मनुश्शंभुः शतरूपा शिवप्रिया
दक्षस्साक्षान्महादेवः प्रसूतिः परमेश्वरी ४८
रुचिर्भवो भवानी च बुधैराकूतिरुच्यते
भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया ४९
मरीचिभगवान्रुद्रः संभूतिश्शर्ववल्लभा
गंगाधरोऽगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता ५०
पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कांता पिनाकिनः
पुलहस्त्रिपुरध्वंसी तत्प्रिया तु शिवप्रिया ५१
क्रतुध्वंसी क्रतुः प्रोक्तः संनतिर्दयिता विभोः

त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः ५२
कश्यपः कालहा देवो देवमाता महेश्वरी
वसिष्ठो मन्मथारातिर्देवी साक्षादरुंधती ५३
शंकरः पुरुषास्सर्वे स्त्रियस्सर्वा महेश्वरी
सर्वे स्त्रीपुरुषास्तस्मात्तयोरेव विभूतयः ५४
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता शूलवरायुधः ५५
प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा
प्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचन्द्रावतंसकः ५६
द्रष्टव्यं वस्तुरूपं तु बिभर्त्ति वक्तवल्लभा
द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखंडशिखामणिः ५७
रसजातं महादेवी देवो रसयिता शिवः
प्रेयजातं च गिरिजा प्रेयांश्चैव गराशनः ५८
मंतव्यवस्तुतां धत्ते सदा देवी महेश्वरी
मंता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः ५९
बोद्धव्यवस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा
देवस्स एव भगवान्बोद्धा मुग्धेन्दुशेखरः ६०
प्राणः पिनाकी सर्वेषां प्राणिनां भगवान्प्रभुः
प्राणस्थितिस्तु सर्वेषामंबिका चांबुरूपिणी ६१
बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरांतकवल्लभा
क्षेत्रज्ञत्वं तदा धत्ते भगवानंतकांतकः ६२
अहः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रिया निशा
आकाशः शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया ६३
समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेन्द्रकन्यका
वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया ६४

पुंल्लिंगमखिलं धत्ते भगवान्पुरशासनः
स्त्रिलिंगं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा ६५
शब्दजालमशेषं तु धत्ते सर्वस्य वल्लभा
अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ६६
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः ६७
यत्परं यत्पवित्रं च यत्पुरयं यच्च मंगलम्
तत्तदाह महाभागास्तयोस्तेजोविजृंभितम् ६८
यथा दीपस्य दीप्तस्य शिखा दीपयते गृहम्
तथा तेजस्तयोरेतद्व्याप्य दीपयते जगत् ६९
तृणादिशिवमूर्त्यंतं विश्वख्यातिशयक्रमः
सन्निकर्षक्रमवशात्तयोरिति परा श्रुतिः ७०
सर्वाकारात्मकावेतौ सर्वश्रेयोविधायिनौ
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा ७१
यथाप्रज्ञमिदं कृष्ण याथात्म्यं परमेशयोः
कथितं हि मया तेऽद्य न तु तावदियत्तया ७२
तत्कथं शक्यते वक्तुं याथात्म्यं परमेशयोः
महतामपि सर्वेषां मनसोऽपि बहिर्गतम् ७३
अंतर्गतमनन्यानामीश्वरार्पितचेतसाम्
अन्येषां बुद्ध्यनारूढमारूढं च यथैव तत् ७४
येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती सा परा मता
अप्राकृतां परामन्यां गुह्यां गुह्यविदो विदुः ७५
यतो वाचो निवर्त्तंते मनसा चेन्द्रियैस्सह
अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी ७६
सैवेह परमं धाम सैवेह परमा गतिः

सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः ७७
तां प्राप्तुं प्रयतंतेऽत्र जितश्वासा जितेंद्रियाः
गर्भकारा गृहद्वारं निश्छिद्रं घटितुं यथा ७८
संसाराशीविषालीढमृतसंजीवनौषधम्
विभूतिं शिवयोर्विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ७९
यः परामपरां चैव विभूतिं वेत्ति तत्त्वतः
सोऽपरो भूतिमुल्लंघ्य परां भूतिं समश्नुते ८०
एतत्ते कथितं कृष्ण याथात्म्यं परमात्मनोः
रहस्यमपि योग्योऽसि भर्गभक्तो भवानिति ८१
नाशिष्येभ्योऽप्यशैवेभ्यो नाभक्तेभ्यः कदाचन
व्याहरेदीशयोर्भूतिमिति वेदानुशासनम् ८२
तस्मात्त्वमतिकल्याणपरेभ्यः कथयेन्न हि
त्वादृशेभ्योऽनुरूपेभ्यः कथयैतन्न चान्यथा ८३
विभूतिमेतां शिवयोर्योग्येभ्यो यः प्रदापयेत्
संसारसागरान्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ८४
कीर्तनादस्य नश्यंति महान्त्यः पापकोटयः
त्रिश्चतुर्धासमभ्यस्तैर्विनश्यंति ततोऽधिकाः ८५
नश्यंत्यनिष्टरिपवो वर्द्धन्ते सुहृदस्तथा
विद्या च वर्द्धते शैवी मतिस्सत्ये प्रवर्तते ८६
भक्तिः पराः शिवे साम्बे सानुगे सपरिच्छिदे
यद्यदिष्टतमं चान्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ८७
अन्तःशुचिः शिवे भक्तो विस्रब्धः कीर्तयेद्यदि
प्रबलैः कर्मभिः पूर्वैः फलं चेत्प्रतिबध्यते
पुनः पुनः समभ्यस्येत्तस्य नास्तीह दुर्ल्लभम् ८८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे

गौरीशंकरविभूतियोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ४

अध्याय ५

उपमन्युरुवाच
विग्रहं देवदेवस्य विश्वमेतच्चराचरम्
तदेवं न विजानंति पशवः पाशगौरवात् १
तमेकमेव बहुधा वदंति यदुनंदन
अजानन्तः परं भावमविकल्पं महर्षयः २
अपरं ब्रह्मरूपं च परं ब्रह्मात्मकं तथा
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं परम् ३
भूतेंद्रियांतःकरणप्रधानविषयात्मकम्
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ४
बृहत्त्वाद्बृहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्यभिधीयते
उभे ते ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभोः
विद्याऽविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते ५
विद्यां तु चेतनां प्राहुस्तथाविद्यामचेतनाम्
विद्याऽविद्यात्मकं चैव विश्वं विश्वगुरोर्विभोः ६
रूपमेव न संदेहो विश्वं तस्य वशे यतः
भ्रांतिर्विद्या परा चेति शार्वं रूपं परं विदुः ७
अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रांतिरुच्यते
यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्येति परिकीर्त्यते ८
विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते
वैपरीत्यादसच्छब्दः कथ्यते वेदवादिभिः ९
तयोः पतित्वात्तु शिवः सदसत्पतिरुच्यते
क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं परे १०

क्षरस्सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते
उभे ते परमेशस्य रूपे तस्य वशे यतः ११
तयोः परः शिवः शांतः क्षराक्षरापरस्स्मृतः
समष्टिव्यष्ठिरूपं च समष्टिव्यष्टिकारणम् १२
वदंति मुनयः केचिच्छिवं परमकारणम्
समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं तथैव च १३
ते रूपे परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात्
तयोः कारणभावेन शिवं परमकारणम् १४
कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टिकारणम्
जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते कैश्चिदीश्वरः १५
या पिंडेप्यनुवर्तेत सा जातिरिति कथ्यते
व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूपं तं पिण्डजातेः समाश्रयम् १६
जातयो व्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः
यतस्ततो महादेवो जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः १७
प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुःक्षेत्रज्ञं पुरुषं तथा १८
त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः
कालः कार्य्यप्रपंचस्य परिणामैककारणम् १९
एषामीशोऽधिपो धाता प्रवर्तकनिवर्तकः
आविर्भावतिरोभावहेतुरेकः स्वराडजः २०
तस्मात्प्रधानपुरुषव्यक्तकालस्वरूपवान्
हेतुर्नेताधिपस्तेषां धाता चोक्ता महेश्वरः २१
विराड्विरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्विश्वात्मको विराट् २२
अंतर्यामी परश्चेति कथ्यते कविभिश्शिवः

प्राज्ञस्तैजसविश्वात्मेत्यपरे संप्रचक्षते २३
तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः
माता मानं च मेयं च मतिं चाहुरथापरे २४
कर्ता क्रिया च कार्य्यं च करणं कारणं परे
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तग्र्यात्मेत्यपरे संप्रचक्षते २५
तुरीयमपरे प्राहुस्तुर्यातीतमितीतरे
तमाहुर्विगुणं केचिद्गुणवन्तं परे विदुः २६
केचित्संसारिणं प्राहुस्तमसंसारिणं परे
स्वतंत्रमपरे प्राहुरस्वतंत्रं परे विदुः २७
घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः
रागवंतं परे प्राहुर्वीतरागं तथा परे २८
निष्क्रियं च परे प्राहुः सक्रियं चेतरे जनाः
निरिंद्रियं परे प्राहुः सेंद्रियं च तथापरे २९
ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तमध्रुवामितीरते
अरूपं केचिदाहुर्वै रूपवंतं परे विदुः ३०
अदृश्यमपरे प्राहुर्दृश्यमित्यपरे विदुः
वाच्यमित्यपरे प्राहुरवाच्यमिति चापरे
शब्दात्मकं परे प्राहुश्शब्दातीतमथापरे ३१
केचिच्चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहितं परे
ज्ञानात्मकं परे प्राहुर्विज्ञानमिति चापरे ३२
केचिच्ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन
परमेके तमेवाहुरपरं च तथा परे ३३
एवं विकल्प्यमानं तु याथात्म्यं परमेष्ठिनः
नाध्यवस्यंति मुनयो नानाप्रत्ययकारणात् ३४
ये पुनस्सर्वभावेन प्रपन्नाः परमेश्वरम्

ते हि जानंत्ययत्नेन शिवं परमकारणम् ३५
यावत्पशुर्नैव पश्यत्यनीशं १ पुराणं भुवनस्येशितारम्
तावद्दुःखे वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिञ्चक्रनेमिक्रमेण ३६
यदा २ पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्
तदाविद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परममुपैति साम्यम् ३७
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
पशुपतित्वज्ञानयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ५

अध्याय ६

उपमन्युरुवाच
नशिवस्याणवो बंधः कार्यो मायेय एव वा
प्राकृतो वाथ बोद्धा वा ह्यहंकारात्मकस्तथा १
नैवास्य मानसो बंधो न चैत्तो नेंद्रियात्मकः
न च तन्मात्रबंधोऽपि भूतबंधो न कश्चन २
न च कालः कला चैव न विद्या नियतिस्तथा
न रागो न च विद्वेषः शंभोरमिततेजसः ३
न चास्त्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाऽकुशलान्यपि
कर्माणि तद्विपाकश्च सुखदुःखे च तत्फले ४
आशयैर्नापि संबन्धः संस्कारैः कर्मणामपि
भोगैश्च भोगसंस्कारैः कालत्रितयगोचरैः ५
न तस्य कारणं कर्ता नादिरंतस्तथांतरम्
न कर्म करणं वापि नाकार्यं कार्यमेव च ६
नास्य बंधुरबंधुर्वा नियंता प्रेरकोऽपि वा
न पतिर्न गुरुस्त्राता नाधिको न समस्तथा ७
न जन्ममरणे तस्य न कांक्षितमकांक्षितम्

न विधिर्न निषेधश्च न मुक्तिर्न च बन्धनम् ८
नास्ति यद्यदकल्याणं तत्तदस्य कदाचन
कल्याणं सकलं चास्ति परमात्मा शिवो यतः ९
स शिवस्सर्वमेवेदमधिष्ठाय स्वशक्तिभिः
अप्रच्युतस्स्वतो भावः स्थितः स्थाणुरतः स्मृतः १०
शिवेनाधिष्ठितं यस्माज्जगत्स्थावरजंगमम्
सर्वरूपः स्मृतश्शर्वस्तथा ज्ञात्वा न मुह्यति ११
शर्वो रुद्रो नमस्तस्मै पुरुषः सत्परो महान्
हिरण्यबाहुर्भगवान्हिरण्यपतिरीश्वरः १२
अंबिकापतिरीशानः पिनाकी वृषवाहनः
एको रुद्रः परं ब्रह्म पुरुषः कृष्णपिंगलः १३
बालाग्रमात्रो हृन्मध्ये विचिंत्यो दहरांतरे
हिरण्यकेशः पद्माक्षो ह्यरुणस्ताम्र एव च १४
योऽवसर्पत्य सौ देवो नीलग्रीवो हिरण्मयः
सौम्यो घोरस्तथा मिश्रश्चाक्षरश्चामृतोऽव्ययः १५
स पुंविशेषः परमो भगवानन्तकांतकः
चेतनचेतनोन्मुक्तः प्रपंचाच्च परात्परः १६
शिवेनातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्ये विलोकिते
लोकेशातिशयत्वेन स्थितं प्राहुर्मनीषिणः १७
प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम्
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम् १८
कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः १९
शुद्धा स्वाभाविकी तस्य शक्तिस्सर्वातिशायिनी
ज्ञानमप्रतिमं नित्यं वपुरत्यन्तनिर्मितम् २०

ऐश्वर्यमप्रतिद्वंद्वं सुखमात्यन्तिकं बलम्
तेजःप्रभावो वीर्यं च क्षमा कारुण्यमेव च २१
परिपूर्णस्य सर्गाद्यैर्नात्मनोऽस्ति प्रयोजनम्
परानुग्रह एवास्य फलं सर्वस्य कर्मणः २२
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परस्स्मृतः २३
शंभो प्रणववाच्यस्य भवनात्तज्जपादपि
या सिद्धिस्सा परा प्राप्या भवत्येव न संशयः २४
तस्मादेकाक्षरं देवमाहुरागमपारगाः
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना मनस्विनः २५
अस्य मात्राः समाख्याताश्चतस्रो वेदमूर्द्धनि
आरश्चाप्युकारश्च मकारो नाद इत्यपि २६
अकारं बह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते
मकारः सामनादोस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृताः २७
अकारश्च महाबीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुखः
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः २८
मकारः पुरुषो बीजं तमः संहारको हरः
नादः परः पुमानीशो निर्गुणो निष्क्रियः शिवः २९
सर्वं तिसृभिरेवेदं मात्राभिर्निखिलं त्रिधा
अभिधाय शिवात्मानं बोधयत्यर्धमात्रया ३०
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित्
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ३१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवतत्त्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ६

अध्याय ७

उपमन्युरुवच
शक्तिस्स्वाभविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा
एकानेकस्य रूपेण भाति भानोरिव प्रभा १
अनंताः शक्तयो यस्या इच्छाज्ञानक्रियादयः
मायाद्याश्चाभवन्वह्नोर्विस्फुलिंगा यथा तथा २
सदाशिवेश्वराद्या हि विद्याऽविद्येश्वरादयः
अभवन्पुरुषाश्चास्याः प्रकृतिश्च परात्परा ३
महदादिविशेषांतास्त्वजाद्याश्चापि मूर्त्तयः
यच्चान्यदस्ति तत्सर्वं तस्याः कार्य्यं न संशयः ४
सा शक्तिस्सर्वगा सूक्ष्मा प्रबोधानंदरूपिणी
शक्तिमानुच्यते देवश्शिवश्शीतांशुभूषणः ५
वेद्यश्शिवश्शिवा विद्या प्रज्ञा चैव श्रुतिः स्मृतिः
धृतिरेषा स्थितिर्निष्ठा ज्ञानेच्छाकर्मशक्तयः ६
आज्ञा चैव परं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे
शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वं शक्तिकृतं यतः ७
माया च प्रकृतिर्जीवो विकारो विकृतिस्तथा
असच्च सच्च यत्किंचित्तया सर्वमिदं ततम् ८
सा देवी मायया सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम्
मोहयत्यप्रयत्नेन मोचयत्यपि लीलया ९
अनया सह सर्वेशः सप्तविंशप्रकारया
विश्वं व्याप्य स्थितस्तस्मान्मुक्तिरत्र प्रवर्तते १०
मुमुक्षवः पुरा केचिन्मुनयो ब्रह्मवादिनः
संशयाविष्टमनसो विस्मृशंति यथातथम् ११
किं कारणं कुतो जाता जीवामः केन वा वयम्

कुत्रास्माकं संप्रतिष्ठा केन वाधिष्ठिता वयम् १२
केन वर्तामहे शश्वत्सुखेष्वन्येषु चानिशम्
अविलंघ्या च विश्वस्य व्यवस्था केन वा कृता १३
कालस्य भावो नियतिर्यदृच्छा नात्र युज्यते
भूतानि योनिः पुरुषो योगी चैषां परोऽथ वा १४
अचेतनत्वात्कालादेश्चेतनत्वेपि चात्मनः
सुखदुःखानि भूतत्वादनीशत्वाद्विचार्यते १५
तद्ध्यानयोगानुगतां प्रपश्यञ्छक्तिमैश्वरीम्
पाशविच्छेदिकां साक्षान्निगूढां स्वगुणैर्भृशम् १६
तया विच्छिन्नपाशास्ते सर्वकारणकारणम्
शक्तिमंतं महादेवमपश्यन्दिव्यचक्षुषा १७
यः कारणान्यशेषाणि कालात्मसहितानि च
अप्रमेयोऽनया शक्त्या सकलं योऽधितिष्ठति १८
ततः प्रसादयोगेन योगेन परमेण च
दृष्टेन भक्तियोगेन दिव्यः गतिमवाप्नुयुः १९
तस्मात्सह तथा शक्त्या हृदि पश्यंति ये शिवम्
तेषां शाश्वतिकी शांतिर्नैतरेषामिति श्रुतिः २०
न हि शक्तिमतश्शक्त्या विप्रयोगोऽस्ति जातुचित्
तस्माच्छक्तेः शक्तिमतस्तादात्म्यान्निर्वृतिर्द्वयोः २१
क्रमो विवक्षितो नूनं विमुक्तौ ज्ञानकर्मणोः
प्रसादे सति सा मूर्तिर्यस्मात्करतले स्थिता २२
देवो वा दानवो वापि पशुर्वा विहगोऽपि वा
कीरो वाथ कृमिर्वापि मुच्यते तत्प्रसादतः २३
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा
वृद्धो वा म्रियमाणो वा स्वर्गस्थो वाथ नारकी २४

पतितो वापि धर्मात्मा पंडितो मूढ एव वा
प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्र संशयः २५
अयोग्यानां च कारुण्याद्भक्तानां परमेश्वरः
प्रसीदति न संदेहो विगृह्य विविधान्मलान् २६
प्रसदादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः
अवस्थाभेदमुत्प्रेक्ष्य विद्वांस्तत्र न मुह्यति २७
प्रसादपूर्विका येयं भुक्तिमुक्तिविधायिनी
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना २८
अनेकजन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः २९
प्रसन्ने सति देवेश पशौ तस्मिन्प्रवर्तते
अस्ति नाथो ममेत्यल्पा भक्तिर्बुद्धिपुरस्सरा ३०
तपसा विविधैश्शैवैर्धर्मैस्संयुज्यते नरः
तत्र योगे तदभ्यासस्ततो भक्तिः परा भवेत् ३१
परया च तया भक्त्या प्रसादो लभ्यते परः
प्रसादात्सर्वपाशेभ्यो मुक्तिर्मुक्तस्य निर्वृतिः ३२
अल्पभावोऽपि यो मर्त्यस्सोऽपि जन्मत्रयात्परम्
नयोनियंत्रपीडायै भवेन्नैवात्र संशयः ३३
सांगाऽनंगा च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते
सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः ३४
शिवरूपादिचिंता या सा सेवा मानसी स्मृता
जपादिर्वाचिकी सेवा कर्मपूजादि कायिकी ३५
सेयं त्रिसाधना सेवा शिवधर्मश्च कथ्यते
स तु पंचविधः प्रोक्तः शिवेन परमात्मना ३६
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति समासतः

कर्मलिण्गार्चनाद्यं च तपश्चान्द्रायणादिकम् ३७
जपस्त्रिधा शिवाभ्यासश्चिन्ता ध्यानं शिवस्य तु
शिवागमोक्तं यज्ज्ञानं तदत्र ज्ञानमुच्यते ३८
श्रीकंठेन शिवेनोक्तं शिवायै च शिवागमः
शिवाश्रितानां कारुण्याच्छ्रेयसामेकसाधनम् ३९
तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिं शिवे परमकारणे
त्यजेच्च विषयासंगं श्रेयोऽर्थी मतिमान्नरः ४०
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवतत्त्वकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ७

अध्याय ८

कृष्ण उवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवेन परिभाषितम्
वेदसारे शिवज्ञानं स्वाश्रितानां विमुक्तये १
अभक्तानामबुद्धीनामयुक्तानामगोचरम्
अर्थैर्दशर्द्धैः संयुक्तं गूढमप्राज्ञनिंदितम् २
वर्णाश्रमकृतैर्द्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम्
वेदात्षडंगादुद्धृत्य सांख्याद्योगाच्च कृत्स्नशः ३
शतकोटिप्रमाणेन विस्तीर्णं ग्रंथसंख्यया
कथितं परमेशेन तत्र पूजा कथं प्रभोः ४
कस्याधिकारः पूजादौ ज्ञानयोगादयः कथम्
तत्सर्वं विस्तरादेव वक्तुमर्हसि सुव्रत ५
उपमन्युरुवाच
शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम्
स्तुतिनिंदादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारणम् ६

गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम्
कथयिष्ये समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ७
सिसृक्षया पुराव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः
सत्कार्यकारणोपेतस्स्वयमाविरभूत्प्रभुः ८
जनयामास च तदा ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः
देवानां प्रथमं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पतिम् ९
ब्रह्मापि पितरं देवं जायमानं न्यवैक्षत
तं जायमानं जनको देवः प्रापश्यदाज्ञया १०
दृष्टो रुद्रेण देवोऽसावसृजद्विश्वमीश्वरः
वर्णाश्रमव्यवस्थां च चकार स पृथक्पृथक् ११
सोमं ससर्ज यज्ञार्थे सोमाद्द्यौस्समजायत
धरा च वह्निः सूर्यश्च यज्ञो विष्णुश्शचीपतिः १२
ते चान्ये च सुरा रुद्रं रुद्राध्यायेन तुष्टुवुः
प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानामग्रतः प्रभुः १३
अपहृत्य स्वलीलार्थं तेषां ज्ञानं महेश्वरः
तमपृच्छंस्ततो देवाः को भवानिति मोहिताः १४
सोऽब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः
आसं प्रथममेवाहं वर्तामि १ च सुरोत्तमाः १५
भविष्यामि च मत्तोन्यो व्यतिरिक्तो न कश्चन
अहमेव जगत्सर्वं तर्पयामि स्वतेजसा १६
मत्तोऽधिकः समो नास्ति मां यो वेद स मुच्यते
इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवांतरधत्त स
अपश्यंतस्तमीशानं स्तुवंतश्चैव सामभिः १७
व्रतं पाशुपतं कृत्वा त्वथर्वशिरसि स्थितम्
भस्मसंछन्नसर्वांगा बभूवुरमरास्तदा १८

अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः १९
सगणश्चोमया सार्द्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः
यं विनिद्रा जितश्वासा योगिनो दग्धकिल्बिषाः २०
हृदि पश्यंति तं देवं ददृशुर्देवपुंगवाः
यामाहुः परमां शक्तिमीश्वरेच्छानुवर्तिनीम् २१
तामपश्यन्महेशस्य वामतो वामलोचनाम्
ये विनिर्धूतसंसाराः प्राप्ताः शैवं परं पदम् २२
नित्यसिद्धाश्च ये वान्यं ते च दृष्टा गणेश्वराः
अथ तं तुष्टुवुर्देवा देव्या सह महेश्वरम् २३
स्तोत्रैर्माहेश्वरैर्दिव्यैः श्रोतैः पौराणिकैरपि
देवोऽपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः २४
तुष्टोऽस्मीत्याह सुप्रीतस्स्वभावमधुरां गिरम्
अथ सुप्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम्
अर्थमहत्तमं देवाः पप्रच्छुरिममादरात् २५
देवा ऊचुः
भगवन्केन मार्गेण पूजनीयोऽसि भूतले
कस्याधिकारः पूजायां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः २६
ततः सस्मितमालोक्य देवीं देववरोहरः
स्वरूपं दर्शयामास घोरं सूर्यात्मकं परम् २७
सर्वैश्वर्यगुणोपेतं सर्वतेजोमयं परम्
शक्तिभिर्मूर्तिभिश्चांगैर्ग्रहैर्देवैश्च संवृतम् २८
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीकमद्भुतम्
दृष्ट्वैवमद्भुताकारं देवा विष्णुपुरोगमाः २९
बुद्ध्वा दिवाकरं देवं देवीं चैव निशाकरम्
पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम् ३०

एवमुक्त्वा नमश्चक्रुस्तस्मै चार्घ्यं प्रदाय वै ३१
सिंदूरवर्णाय सुमण्डलाय सुवर्णवर्णाभरणाय तुभ्यम्
पद्माभनेत्राय सपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ३२
सुरत्नपूर्णं ससुवर्णतोयं सुकुंकुमाद्यं सकुशं सपुष्पम्
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ३३
नमश्शिवाय शांताय सगणायादिहेतवे
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ३४
यश्शिवं मण्डले सौरे संपूज्यैव समाहितः
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने प्रदद्यादर्घ्यमुत्तमम् ३५
प्रणमेद्वा पठेदेताञ्छ्लोकाञ्छ्रुतिमुखानिमान्
न तस्य दुर्ल्लभं किंचिद्भक्तश्चेन्मुच्यते दृढम् ३६
तस्मादभ्यर्चयेनित्यं शिवमादित्यरूपिणम्
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा ३७
अथ देवान्समालोक्य मण्डलस्थो महेश्वरः
सर्वागमोत्तरं दत्त्वा शास्त्रमंतरधाद्धरः ३८
तत्र पूजाधिकारोऽयं ब्रह्मक्षत्रविशामिति
ज्ञात्वा प्रणम्य देवेशं देवा जग्मुर्यथागतम् ३९
अथ कालेन महता तस्मिञ्छास्त्रे तिरोहिते
भर्तारं परिपप्रच्छ तदंकस्था महेश्वरी ४०
तया स चोदितो देवो देव्या चन्द्रविभूषणः
अवदत्करमुद्धृत्य शास्त्रं सर्वागमोत्तरम् ४१
प्रवर्तितं च तल्लोके नियोगात्परमेष्ठिनः
मयागस्त्येन गुरुणा दधीचेन महर्षिणा ४२
स्वयमप्यवतीर्योर्व्यां युगावर्तेषु शूलधृक्
स्वाश्रितानां विमुक्त्यर्थं कुरुते ज्ञानसंततिम् ४३

ऋभुस्सत्यो भार्गवश्च ह्यंगिराः सविता द्विजाः
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान्वसिष्ठो मुनिपुंगवः ४४
सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुंगवः
शततेजास्स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः ४५
स्वरक्षश्चारुणिर्धीमांस्तथा चैव कृतंजयः
कृतंजयो भरद्वाजो गौतमः कविरुत्तमः ४६
वाचःस्रवा मुनिस्साक्षात्तथा सूक्ष्मायणिः शुचिः
तृणबिंदुर्मुनिः कृष्णः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः ४७
जातूकर्ण्यो हरिस्साक्षात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः
व्यासावताराञ्छृणवंतु कल्पयोगेश्वरान्क्रमात् ४८
लैंगे व्यासावतारा हि द्वापरां तेषु सुव्रताः
योगाचार्यावताराश्च तथा शिष्येषु शूलिनः ४९
तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः स्युर्महौजसः
शिष्यास्तेषां प्रशिष्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः ५०
तेषां संभावनाल्लोके शैवाज्ञाकरणादिभिः
भाग्यवंतो विमुच्यंते भक्त्या चात्यंतभाविताः ५१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवतत्त्वज्ञाने व्यासावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ८

अध्याय ९

कृष्ण उवाच
युगावर्तेषु सर्वेषु योगाचार्यच्छलेन तु
अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन्वद १
उपमन्युरुवाच
श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्रः कणक एव च

लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च २
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च
सुपालको गौतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ३
गोकर्णश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः
जटामाली चाट्टहासो दारुको लांगुली तथा ४
महाकालश्च शूली च डंडी मुण्डीश एव च
सविष्णुस्सोमशर्मा च लकुलीश्वर एव च ५
एते वाराह कल्पेऽस्मिन्सप्तमस्यांतरो मनोः
अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात् ६
शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारश्शांतचेतसः
श्वेतादयश्च रुष्यांतांस्तान्ब्रवीमि यथाक्रमम् ७
श्वेतश्श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः
दुन्दुभिश्शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ८
विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमो दुरतिक्रमः ९
सनत्कुमारस्सनकः सनंदश्च सनातनः
सुधामा विरजाश्चैव शंखश्चांडज एव च १०
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहस्सुवाहकः
कपिलश्चासुरिः पंचशिखो बाष्कल एव च ११
पराशराश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा
बलबन्धुर्निरामित्राः केतुशृंगस्तपोधनः १२
लंबोदरश्च लंबश्च लम्बात्मा लंबकेशकः
सर्वज्ञस्समबुद्धिश्च साध्यसिद्धिस्तथैव च १३
सुधामा कश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा
अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवनोथ श्रविष्टकः १४

कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनश्च बृहस्पतिः १५
उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महाऽनिलः
वाचःश्रवाः सुवीरश्च श्यावकश्च यतीश्वरः १६
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः १७
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान्गौतमस्तथा
भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च १८
उशिजो बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च
शालिहोत्रः सुवेषश्च युवनाश्वः शरद्वसुः १९
अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च
कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च २०
एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः
संख्या च शतमेतेषां सह द्वादशसंख्यया २१
सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदांगपारगाः २२
शिवाश्रमरतास्सर्वे शिवज्ञानपरायणाः
सर्वे संगविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः २३
सर्वद्वंद्वसहा धीराः सर्वभूतहिते रताः
ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेंद्रियाः २४
रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुंड्रांकितमस्तकाः
शिखाजटास्सर्वजटा अजटा मुंडशीर्षकाः २५
फलमूलाशनप्रायाः प्राणायामपरायणाः
शिवाभिमानसंपन्नाः शिवध्यानैकतत्पराः २६
समुन्मथितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमाः

प्रयातुमेव सन्नद्धाः परं शिवपुरं प्रति २७
सदेशिकानिमान्मत्वा नित्यं यश्शिवमर्चयेत्
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा २८
इति श्रीशिवमहापु॥॥ सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवस्य योगावतारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ९

अध्याय १०

कृष्ण उवाच
भगवन्सर्वयोगींद्र गणेश्वर मुनीश्वर
षडाननसमप्रख्य सर्वज्ञाननिधे गुरो १
प्रायस्त्वमवतीर्णोर्व्यां पाशविच्छित्तये नृणाम्
महर्षिवपुरास्थाय स्थितोऽसि परमेश्वर २
अन्यथा हि जगत्यस्मिन् देवो वा दानवोऽपि वा
त्वत्तोन्यः परमं भावं को जानीयाच्छिवात्मकम् ३
तस्मात्तव मुखोद्गीर्णं साक्षादिव पिनाकिनः
शिवज्ञानामृतं पीत्वा न मे तृप्तमभून्मनः ४
साक्षात्सर्वजगत्कर्तुर्भर्तुरंकं समाश्रिता
भगवन्किन्नु पप्रच्छ भर्तारं परमेश्वरी ५
उपमन्युरुवाच
स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण तद्वक्ष्यामि यथातथम्
भवभक्तस्य युक्तस्य तव कल्याणचेतसः ६
महीधरवरे दिव्ये मंदरे चारुकंदरे
देव्या सह महादेवो दिव्यो ध्यानगतोऽभवत् ७
तदा देव्याः प्रियसखी सुस्मितास्या शुभावती
फुल्लान्यतिमनोज्ञानि पुष्पाणि समुदाहरत् ८

ततः स्वमंकमारोप्य देवीं देववरोरहः
अलंकृत्य च तैः पुष्पैरास्ते हृष्टतरः स्वयम् ९
अथांतःपुरचारिण्यो देव्यो दिव्यविभूषणाः
अंतरंगा गणेन्द्राश्च सर्वलोकमहेश्वरीम् १०
भर्तारं परिपूर्णं च सर्वलोकमहेश्वरम्
चामरासक्तहस्ताश्च देवीं देवं सिषेविरे ११
ततः प्रियाः कथा वृत्ता विनोदाय महेशयोः
त्राणाय च नृणां लोके ये शिवं शरणं गताः १२
तदावसरमालोक्य सर्वलोकमहेश्वरी
भर्तारं परिपप्रच्छ सर्वलोकमहेश्वरम् १३
देव्युवाच
केन वश्यो महादेवो मर्त्यानां मंदचेतसाम्
आत्मतत्त्वाद्यशक्तानामात्मनामकृतात्मनाम् १४
ईश्वर उवाच
न कर्मणा न तपसा न जपैर्नासनादिभिः
न ज्ञानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना १५
श्रद्धा मय्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना
वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यस्संभाष्य एव च १६
साध्या तस्मान्मयि शद्धा मां वशीकर्तुमिच्छता
श्रद्धा हेतुस्स्वधर्मस्य रक्षणं वर्णिनामिह १७
स्ववर्णाश्रमधर्मेण वर्तते यस्तु मानवः
तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित् १८
आम्नायसिद्धमखिलं धर्ममाश्रमिणामिह
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं ममैवाज्ञापुरस्सरम् १९
स तु पैतामहो धर्मो बहुवित्तक्रियान्वितः

नात्यन्त फलभूयिष्ठः क्लेशाया ससमन्वितः
तेन धर्मेण महतां श्रद्धां प्राप्य सुदुर्ल्लभाम् २०
वर्णिनो ये प्रपद्यंते मामनन्यसमाश्रयाः
तेषां सुखेन मार्गेण धर्मकामार्थमुक्तयः २१
वर्णाश्रमसमाचारो मया भूयः प्रकल्पितः
तस्मिन्भक्तिमतामेव मदीयानां तु वर्णिनाम् २२
अधिकारो न चान्येषामित्याज्ञा नैष्ठिकी मम
तदाज्ञप्तेन मार्गेण वर्णिनो मदुपाश्रयाः २३
मलमायादिपाशेभ्यो विमुक्ता मत्प्रसादतः
परं मदीयमासाद्य पुनरावृत्तिदुर्लभम्
परमं मम साधर्म्यं प्राप्य निर्वृतिमाययुः २४
तस्माल्लब्ध्वाप्यलब्ध्वा वा वर्णधर्मं मयेरितम्
आश्रित्य मम भक्तश्चेत्स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् २५
अलब्धलाभ एवैष कोटिकोटिगुणाधिकः
तस्मान्मे मुखतो लब्धं वर्णधर्मं समाचरेत् २६
ममावतारा हि शुभे योगाचार्यच्छलेन तु
सर्वांतरेषु सन्त्यार्ये संततिश्च सहस्रशः २७
अयुक्तानामबुद्धीनामभक्तानां सुरेश्वरि
दुर्लभं संततिज्ञानं ततो यत्नात्समाश्रयेत् २८
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहस्सांधमूकता
यदन्यत्र श्रमं कुर्य्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः २९
ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि
चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मस्सनातनः ३०
पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते
षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते ३१

वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च
ममार्च्चनादिधर्मस्य चर्य्या चर्य्येति कथ्यते ३२
मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः
वृत्त्यंतरनिरोधो यो योग इत्यभिधीयते ३३
अश्वमेधगणाच्छ्रेष्ठं देवि चित्तप्रसाधनम्
मुक्तिदं च तथा ह्येतद्दुष्प्राप्यं विषयैषिणाम् ३४
विजितेंद्रियवर्गस्य यमेन नियमेन च
पूर्वपापहरो योगो विरक्तस्यैव कथ्यते ३५
वैराग्याज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते ३६
योगज्ञः पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः
दया कार्याथ सततमहिंसा ज्ञानसंग्रहः ३७
सत्यमस्तेयमास्तिक्यं श्रद्धा चेंद्रियनिग्रहः
अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा ३८
ध्यानमीश्वरभावश्च सततं ज्ञानशीलता
य एवं वर्त्तते विप्रो ज्ञानयोगस्य सिद्धये ३९
अचिरादेव विज्ञानं लब्ध्वा योगं च विंदति
दग्ध्वा देहमिमं ज्ञानी क्षणाज्ज्ञानाग्निना प्रिये ४०
प्रसादान्मम योगज्ञः कर्मबंधं प्रहास्यति
पुण्यःपुण्यात्मकं कर्ममुक्तेस्तत्प्रतिबंधकम्
तस्मान्नियोगतो योगी पुण्यापुण्यं विवर्जयेत् ४१
फलकामनया कर्मकरणात्प्रतिबध्यते
न कर्ममात्रकरणात्तस्मात्कर्मफलं त्यजेत् ४२
प्रथमं कर्मयज्ञेन बहिः सम्पूज्य मां प्रिये
ज्ञानयोगरतो भूत्वा पश्चाद्योगं समभ्यसेत् ४३
विदिते मम याथात्म्ये कर्मयज्ञेन देहिनः

न यजंति हि मां युक्ताः समलोष्टाश्मकांचनाः ४४
नित्ययुक्तो मुनिः श्रेष्ठो मद्भक्तश्च समाहितः
ज्ञानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात् ४५
अथाविरक्तचित्ता ये वर्णिनो मदुपाश्रिताः
ज्ञानचर्याक्रियास्वेव तेऽधिकुर्य्युस्तदर्हकाः ४६
द्विधा मत्पूजनं ज्ञेयं बाह्यमाभ्यंतरं तथा
वाग्मनःकायभेदाच्च त्रिधा मद्भजनं विदुः ४७
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं वेत्यनुपूर्वशः
पंचधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः ४८
अन्यात्मविदितं बाह्यमस्मदभ्यर्चनादिकम्
तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यंतरमुदाहृतम् ४९
मनोमत्प्रवणं चित्तं न मनोमात्रमुच्यते
मन्नामनिरता वाणी वाग्मता खलु नेतरा ५०
लिंगैर्मच्छासनादिष्टैस्त्रिपुंड्रादिभिरंकितः
ममोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ५१
मदर्चाकर्म विज्ञेयं बाह्ये यागादिनोच्यते
मदर्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम् ५२
जपः पंचाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव च
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ५३
ध्यानम्मद्रूपचिंताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः
ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ५४
बाह्ये वाभ्यंतरे वाथ यत्र स्यान्मनसो रतिः
प्राग्वासनावशाद्देवि तत्त्वनिष्ठां समाचरेत् ५५
बाह्यादाभ्यंतरं श्रेष्ठं भवेच्छतगुणाधिकम्
असंकरत्वाद्दोषाणां दृष्टानामप्यसम्भवात् ५६

शौचमाभ्यंतरं विद्यान्न बाह्यं शौचमुच्यते
अंतः शौचविमुक्तात्मा शुचिरप्यशुचिर्यतः ५७
बाह्यमाभ्यंतरं चैव भजनं भवपूर्वकम्
न भावरहितं देवि विप्रलंभैककारणम् ५८
कृतकृत्यस्य पूतस्य मम किं क्रियते नरैः
बहिर्वाभ्यंतरं वाथ मया भावो हि गृह्यते ५९
भावैकात्मा क्रिया देवि मम धर्मस्सनातनः
मनसा कर्मणा वाचा ह्यनपेक्ष्य फलं क्वचित् ६०
फलोद्देशेन देवेशि लघुर्मम समाश्रयः
फलार्थी तदभावे मां परित्यक्तुं क्षमो यतः ६१
फलार्थिनोऽपि यस्यैव मयि चित्तं प्रतिष्ठितम्
भावानुरूपफलदस्तस्याप्यहमनिन्दिते ६२
फलानपेक्षया येषां मनो मत्प्रवणं भवेत्
प्रार्थयेयुः फलं पश्चाद्भक्तास्तेऽपि मम प्रियाः ६३
प्राक् संस्कारवशादेव ये विचिंत्य फलाफले
विवशा मां प्रपद्यंते मम प्रियतमा मताः ६४
मल्लाभान्न परो लाभस्तेषामस्ति यथातथम्
ममापि लाभस्तल्लाभान्नापरः परमेश्वरि ६५
मदनुग्रहतस्तेषां भावो मयि समर्पितः
फलं परमनिर्वाणं प्रयच्छति बलादिव ६६
महात्मनामनन्यानां मयि संन्यस्तचेतसाम्
अष्टधा लक्षणं प्राहुर्मम धर्माधिकारिणाम् ६७
मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्
स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे चांगचेष्टितम् ६८
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्रांगविक्रियाः

ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति ६९
एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स यतिस्स च पंडितः ७०
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तो श्वपचोऽपि यः
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ७१
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ७२
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवभक्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः १०

अध्याय ११

ईश्वर उवाच
अथ वक्ष्यामि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम्
विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मसमासतः १
त्रिः स्नानं चाग्निकार्यं च लिंगार्चनमनुक्रमम्
दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा २
सत्यं संतोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजंतुषु
ह्रीश्रद्धाध्ययनं योगस्सदाध्यापनमेव च ३
व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवणं च तपः क्षमा
शौचं शिखोपवीतं च उष्णीषं चोत्तरीयकम् ४
निषिद्धासेवनं चैव भस्मरुद्राक्षधारणम्
पर्वण्यभ्यर्चनं देवि चतुर्दश्यां विशेषतः ५
पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि
अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये ६
सर्वक्रियान्न सन्त्यागः श्रद्धान्नस्य च वर्जनम्

तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषतः ७
मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम्
सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः ८
क्षमा शांतिश्च सन्तोषस्सत्यमस्तेयमेव च
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम् ९
सर्वसंगनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः
लिंगानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशनं तथा १०
वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते
रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ११
अध्यापनं याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः
वैश्यस्य च विशेषेण मया नात्र विधीयते १२
रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा
दुष्टपक्षिमृगाणां च दुष्टानां शातनं नृणाम् १३
अविश्वासश्च सर्वत्र विश्वासो मम योगिषु
स्त्रीसंसर्गश्च कालेषु चमूरक्षणमेव च १४
सदा संचारितैश्चारैर्लोकवृत्तांतवेदनम्
सदास्त्रधारणं चैव भस्मकंचुकधारणम् १५
राज्ञां ममाश्रमस्थानामेष धर्मस्य संग्रहः
गोरक्षणं च वाणिज्यं कृषिर्वैश्यस्य कथ्यते १६
शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते
उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः १७
धर्मपत्न्यास्तु गमनं गृहस्थस्य विधीयते
ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् १८
स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्यस्सनातनः
ममार्चनं च कल्याणि नियोगो भर्तुरस्ति चेत् १९

या नारी भर्तृशुश्रूषां विहाय व्रततत्परा
सा नारी नरकं याति नात्र कार्या विचारणा २०
अथ भर्तृविहीनाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम्
व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्यानक्तभोजनम् २१
ब्रह्मचर्यं सदा स्नानं भस्मना सलिलेन वा
शांतिर्मौनं क्षमा नित्यं संविभागो यथाविधि २२
अष्टाभ्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां विशेषतः
एकादश्यां च विधिवदुपवासोममार्चनम् २३
इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम्
ब्रह्मक्षत्रविशां देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम् २४
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुन्दरि
शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः २५
ध्येयस्त्वयाहं देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः
वेदोक्तमखिलं धर्ममिति धर्मार्थसंग्रहः २६
अथ ये मानवा लोके स्वेच्छया धृतविग्रहाः
भावातिशयसंपन्नाः पूर्वसंस्कारसंयुताः २७
विरक्ता वानुरक्ता वा स्त्र्यादीनां विषयेष्वपि
पापैर्न ते विलिंपंते १ पद्मपत्रमिवांभसा २८
तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम्
मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात् २९
नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम्
न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ३०
तथेह परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते
तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः ३१
मद्भक्तानां हितार्थाय मानुषं भावमाश्रिताः

रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः ३२
ममानुशासनं यद्वद्ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम्
तथा नराणामन्येषां तन्नियोगः प्रवर्तकः ३३
ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च
तदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ३४
प्रत्ययाश्च प्रवर्तंते प्रशस्तफलसूचकाः
मयि भाववतां पुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः ३५
कंपस्वेदोऽश्रुपातश्च कण्ठे च स्वरविक्रिया
आनंदाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ३६
स तैर्व्यस्तैस्समस्तैर्वा लिंगैरव्यभिचारिभिः
मंदमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः ३७
यथायोग्निसमावेशान्नायो भवति केवलम्
स तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ३८
हस्तपादादिसाधर्म्याद्रुद्रान्मर्त्यवपुर्धरान्
प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पंडितः ३९
अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः
आयुः श्रियं कुलं शीलं हित्वा निरयमावहेत् ४०
ब्रह्मविष्णुसुरेशानामपि तूलायते पदम्
मत्तोन्यदनपेक्षाणामुद्धृतानां महात्मनाम् ४१
अशुद्धं बौद्धमैश्वर्यं प्राकृतं पौरुषं तथा
गुणेशानामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम् ४२
अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम्
मयि चित्तसमासंगो येन केनापि हेतुना ४३
उपमन्युरुवाच
इत्थं श्रीकण्ठनाथेन शिवेन परमात्मना

हिताय जगतामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ४४
विज्ञानसंग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः
सेतिहासपुराणानि विद्या व्याख्यानविस्तरः ४५
ज्ञानं ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम्
साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहत्वेष संग्रहः ४६
गुरोरधिकृतं ज्ञानं ज्ञेयं पाशः पशुः पतिः
लिंगार्चनाद्यनुष्ठेयं भक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः ४७
साधनं शिवमंत्राद्यं साध्यं शिवसमानता
षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते ४८
प्रथमं कर्म यज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः
बाह्येभ्यर्च्य शिवं पश्चादंतर्यागरतो भवेत् ४९
रतिरभ्यंतरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात्
न कर्म करणीयं हि बहिस्तस्य महात्मनाः ५०
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः
नांतर्न च बहिः कृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ५१
तस्मात्क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यंतरं तथा
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्याज्ञानं चापि परित्यजेत् ५२
नैकाग्रं चेच्छिवे चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा
एकाग्रमेव चेच्चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा ५३
तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वा कृत्वा वांतर्बहिःक्रमात्
येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत् ५४
शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठितधियां सताम्
परत्रेह च सर्वत्र निर्वृतिः परमा भवेत् ५५
इहोन्नमः शिवायेति मंत्रेणानेन सिद्धयः
स तस्मादधिगंतव्यः परावरविभूतये ५६

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे
शिवज्ञानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ११

अध्याय १२

श्रीकृष्ण उवाच
महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञानमहोदधे
पंचाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः १
उपमन्युरुवाच
पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु २
वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थसाधकः ३
तदल्पाक्षरमर्थाढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम्
आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम् ४
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरंजकम्
सुनिश्चितार्थं गंभीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम् ५
मन्त्रं सुखमुकोच्चार्यमशेषार्थप्रसिद्धये
प्राहोन्नमः शिवायेति सर्वज्ञस्सर्वदेहिनाम् ६
तद्बीजं सर्वविद्यानां मंत्रमाद्यं षडक्षरम्
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् ७
देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः
ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः ८
इशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु
मंत्रे नमश्शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम्
मंत्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पंचब्रह्मतनुः शिवः ९

वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः
वाच्यश्शिवोप्रमेयत्वान्मंत्रस्तद्वाचकस्स्मृतः १०
वाच्यवाचकभावोऽयमनादिसंस्थितस्तयोः
यथाऽनादिप्रवृत्तोयं घोरसंसारसागरः ११
शिवोऽपि हि तथानादिसंसारान्मोचकः स्थितः
व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षः स्वभावतः १२
तद्वत्संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवस्स्मृतः
असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत् १३
अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरषस्य च
प्रधानपरमाणवादि यावत्किंचिदचेतनम् १४
न तत्कर्तृ स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना
धर्माधर्मोपदेशश्च बंधमोक्षौ विचारणात् १५
न सर्वज्ञं विना पुंसामादिसर्गः प्रसिद्ध्यति
वैद्यं विना निरानंदाः क्लिश्यंते रोगिणो यथा १६
तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णस्सदाशिवः
अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसारसागरात् १७
आदिमध्यांतनिर्मुक्तस्स्वभावविमलः प्रभुः
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयश्शिवागमे १८
तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः
अभिधानाभिधेयत्वान्मंत्रस्सिद्धः परश्शिवः १९
एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्
यदोंनमश्शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम् २०
विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम्
यस्सर्वज्ञस्सुसंपूर्णः स्वभावविमलः शिवः २१
लोकानुग्रहकर्त्ता च स मृषार्थं कथं वदेत्

यद्यथावस्थितं वस्तु गुणदोषैः स्वभावतः २२
यावत्फलं च तत्पूर्णं सर्वज्ञस्तु यथा वदेत्
रागाज्ञानादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत् २३
ते चेश्वरे न विद्येते ब्रूयात्स कथमन्यथा
अज्ञाताशेषदोषेण सर्वज्ञेय शिवेन यत्
प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः २४
तस्मादीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता
यथार्थपुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः २५
स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम्
वाक्यं मुनिवरैः शांतैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम् २६
रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्
वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते २७
संस्कृतेनापि किं तेन मृदुना ललितेन वा
अविद्यारागवाक्येन संसारक्लेशहेतुना २८
यच्छ्रुत्वा जायते श्रेयो रागादीनां च संशयः
विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमिति शोभनम् २९
बहुत्वेपि हि मंत्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यः
प्रणीतो विमलो मन्त्रो न तेन सदृशः क्वचित् ३०
सांगानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे
न तेन सदृशस्तस्मान्मन्त्रोऽप्यस्त्यपरः क्वचित् ३१
सप्तकोटिमहामन्त्रैरुपमन्त्रैरनेकधा
मन्त्रः षडक्षरो भिन्नस्सूत्रं वृत्यात्मना यथा ३२
शिवज्ञानानि यावंति विद्यास्थानापि यानि च
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ३३
किं तस्य बहुभिर्मंत्रैश्शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः

यस्योन्नमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ३४
तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम्
येनोन्नमश्शिवायेति मंत्राभ्यासः स्थिरीकृतः ३५
नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम्
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ३६
अंत्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा
पंचाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपंजरात् ३७
इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना
हिताय सर्वमर्त्यानां द्विजानां तु विशेषतः ३८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः १२

अध्याय १३

देव्युवाच
कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे १
क्षीणे वर्णाश्रमाचारे संकटे समुपस्थिते
सर्वाधिकारे संदिग्धे निश्चिते वापि पर्यये २
तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते
केनोपायेन मुच्यंते भक्तास्तव महेश्वर ३
ईश्वर उवाच
आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पंचाक्षरीं मम
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यंते कलिजा नराः ४
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्तुमगोचरैः
दूषितानां कृतघ्नानां निंदकानां छलात्मनाम् ५

लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम्
मम पंचाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी ६
मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया ७
देव्युवाच
कर्मायोग्यो भवेन्मर्त्यः पतितो यदि सर्वथा
कर्मायोगेन यत्कर्म कृतं च नरकाय हि
ततः कथं विमुच्येत पतितो विद्ययाऽनया ८
ईश्वर उवाच
तथ्यमेतत्त्वया प्रोक्तं तथा हि शृणु सुन्दरि
रहस्यमिति मत्वैतद्गोपितं यन्मया पुरा ९
समंत्रकं मां पतितः पूजयेद्यदि मोहितः
नारकी स्यान्न सन्देहो मम पंचाक्षरं विना १०
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति मम लोकसमागमः ११
भक्त्या पंचाक्षरेणैव यो हि मां सकृदर्चयेत्
सोऽपि गच्छेन्मम स्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात् १२
तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा
पंचाक्षरार्चनस्यैते कोटयंशेनापि नो समः १३
बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पाशात्पंचाक्षरेण यः
पूजयेन्मां स मुच्येत नात्र कार्या विचारणा १४
अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पंचाक्षरेण यः
पूजयेत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः १५
षडक्षरेण वा देवि तथा पंचाक्षरेण वा
स ब्रह्मांगेन मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते १६

पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत्
मम भक्तो जितक्रोधो सलब्धोऽलब्ध एव वा १७
अलब्धालब्ध एवेह कोटिकोटिगुणाधिकः
तस्माल्लब्ध्वैव मां देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत् १८
लब्ध्वा संपूजयेद्यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः
ब्रह्मचर्यरतो भक्त्या मत्सादृश्यमवाप्नुयात् १९
किमत्र बहुनोक्तेन भक्तास्सर्वेधिकारिणः
मम पंचाक्षरे मंत्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः २०
पंचाक्षरप्रभावेण लोकवेदमहर्षयः
तिष्ठंति शाश्वता धर्मा देवास्सर्वमिदं जगत् २१
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे
सर्वं प्रकृतिमापन्नं तत्र संलयमेष्यति २२
एकोऽहं संस्थितो देवि न द्वितीयोऽस्ति कुत्रचित्
तदा वेदाश्च शास्त्राणि सर्वे पंचाक्षरे स्थिताः २३
ते नाशं नैव संप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः
ततस्सृष्टिरभून्मत्तः प्रकृत्यात्मप्रभेदतः २४
गुणमूर्त्यात्मनां चैव ततोवांतरसंहृतिः
तदा नारायणश्शेते देवो मायामयीं तनुम् २५
आस्थाय भोगिपर्यंकशयने तोयमध्यगः
तन्नाभिपंकजाज्जातः पंचवक्त्रः पितामहः २६
सिसृक्षमाणो लोकांस्त्रीन्न सक्तो ह्यसहायवान्
मुनीन्दश ससर्जादौ मानसानमितौजसः २७
तेषां सिद्धिविवृद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः
मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर २८
इत्येवं प्रार्थितस्तेन पञ्चवक्त्रधरो ह्यहम्

पञ्चाक्षराणि क्रमशः प्रोक्तवान्पद्मयोनये २९
स पञ्चवदनैस्तानि गृह्णाँल्लोकपितामहः
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्मां महेश्वरम् ३०
ज्ञात्वा प्रयोगं विविधं सिद्धमंत्रः प्रजापतिः
पुत्रेभ्यः प्रददौ मंत्रं मंत्रार्थं च यथातथम् ३१
ते च लब्ध्वा मंत्ररत्नं साक्षाल्लोकपितामहात्
तदाज्ञप्तेन मार्गेण मदाराधनकांक्षिणः ३२
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भक्तै रक्षितस्सदा ३३
तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकं स्रष्टुं समुत्सुकाः
दिव्यं वर्षसहस्रं तु वायुभक्षास्समाचरन् ३४
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम्
ऋषिं छंदश्च कीलं च बीजशक्तिं च दैवतम् ३५
न्यासं षडंगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः
प्रोक्तवानहमार्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये ३६
ततस्ते मंत्रमाहात्म्यादृषयस्तपसेधिताः
सृष्टिं वितन्वते सम्यक्सदेवासुरमानुषीम् ३७
अस्याः परमविद्यायास्स्वरूपमधुनोच्यते
आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवाय तु ततः परम् ३८
सैषा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिरोगता
सर्वजातस्य सर्वस्य बीजभूता सनातनी ३९
प्रथमं मन्मुखोद्गीर्णा सा ममैवास्ति वाचिका
तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा ४०
चतुर्भुजा त्रिनयना बालेंदुकृतशेखरा
पद्मोत्पलकरा सौम्या वरदाभयपाणिका ४१

सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता
सितपद्मासनासीना नीलकुंचितमूर्द्धजा ४२
अस्याः पञ्चविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रश्मिमंडलाः
पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च ४३
पृथक्प्रयोज्या यद्येते बिंदुनादविभूषिताः
अर्द्धचन्द्रनिभो बिंदुर्नादो दीपशिखाकृतिः ४४
बीजं द्वितीयं बीजेषु मंत्रस्यास्य वरानने
दीर्घपूर्वं तुरीयस्य पञ्चमं शक्तिमादिशेत् ४५
वामदेवो नाम ऋषिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम्
देवता शिव एवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने ४६
गौतमोऽत्रिर्वरारोहे विश्वामित्रस्तथांगिराः
भरद्वाजश्च वर्णानां क्रमशश्चर्षयः स्मृताः ४७
गायत्र्यनुष्टुप् त्रिष्टुप् च छंदांसि बृहती विराट्
इन्द्रो रुद्रो हरिर्ब्रह्मा स्कंदस्तेषां च देवताः ४८
मम पंचमुखान्याहुः स्थाने तेषां वरानने
पूर्वादिश्चोर्द्ध्वपर्यंतं नकारादि यथाक्रमम् ४९
अदात्तः प्रथमो वर्णश्चतुर्थश्च द्वितीयकः
पंचमः स्वरितश्चैव तृतीयो निहतः स्मृतः ५०
मूलविद्या शिवं शैवं सूत्रं पंचाक्षरं तथा
नामान्यस्य विजानीयाच्छैवं मे हृदयं महत् ५१
नकारश्शिर उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते
शिकारः कवचं तद्वद्वकारो नेत्रमुच्यते ५२
यकारोऽस्त्रं नमस्स्वाहा वषट् हुंवौषडित्यपि
फडित्यपि च वर्णानामन्तेऽणगत्वं यदा तदा ५३
तत्रापि मूलमंत्रोऽयं किंचिद्भेदसमन्वयात्

तत्रापि पंचमो वर्णो द्वादशस्वरभूषितः ५४
तास्मादनेन मंत्रेण मनोवाक्कायभेदतः
ग्रावयोरर्चनं कुर्य्याज्जपहोमादिकं तथा ५५
यथाप्रज्ञं यथाकालं यथाशास्त्रं यथामति
यथाशक्ति यथासंपद्यथायोगं यथारति ५६
यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता
येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं नयिष्यते ५७
मय्यासक्तेन मनसा यत्कृतं मम सुन्दरि
मत्प्रियं च शिवं चैव क्रमेणाप्यक्रमेण वा ५८
तथापि मम भक्ता ये नात्यंतविवशाः पुनः
तेषां सर्वेषु शास्त्रेषु मयेव नियमः कृतः ५९
तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम्
यं विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत् ६०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः १३

ग्रध्याय १४

ईश्वर उवाच
ग्राज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने
ग्राज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम् १
ग्राज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं ममात्मकम्
एवं चेद्दक्षिणायुक्तं मंत्रसिद्धिर्महत्फलम् २
उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम्
जापितं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम् ३

तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः
वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च ४
आचार्यं पूजयेद्विप्रः सर्वदातिप्रयत्नतः
हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ५
भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति ६
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः
पश्चान्निवेद्य स्वात्मानं गुरवे सपरिच्छदम् ७
एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्तित्ववंचयन्
आददीत गुरोर्मंत्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु ८
एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम्
शुश्रूषुमनहंकारं स्नातं शुचिमुपोषितम् ९
स्नापयित्वा विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुंभघृतेन वै
जलेन मन्त्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च १०
अलंकृत्य सुवेषं च गंधस्रग्वस्त्रभूषणैः
पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च ११
समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ १२
नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि १३
स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकांतेऽतिप्रसन्नधीः
उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मंत्रमुत्तमम् १४
शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति
एवं दद्याद्गुरुर्मंत्रमाज्ञां चैव ततः परम् १५
एवं लब्ध्वा गुरोर्मंत्रमाज्ञां चैव समाहितः

संकल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम् १६
यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम्
अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् १७
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्
नक्ताशी संयमी यस्स पौरश्चरणिकः स्मृतः १८
यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धदो भवेत् १९
स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमानसम्
त्वया मां हृदि संचिंत्य संचिंत्य स्वगुरुं ततः २०
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः
विशोध्य पंचतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः २१
मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सफलीकृतविग्रहः
आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च २२
विद्यास्थानं स्वकं रूपमृषिञ्छन्दोऽधिदैवतम्
बीजं शक्तिं तथा वाक्यं स्मृत्वा पंचाक्षरीं जपेत् २३
उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशुं चैवमध्यमम्
अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः २४
उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम्
अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः २५
यदुच्चनीचस्वरितैःस्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपस्स्मृतः २६
जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा
अपरैरश्रुतः किंचिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते २७
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्
शब्दार्थचिंतनं भूयः कथ्यते मानसो जपः २८

वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते
साहस्त्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः २९
प्राणायामसमायुक्तस्सगर्भो जप उच्यते
आद्यंतयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ३०
चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्य संस्मरेत्
मंत्रं मंत्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत् ३१
पंचकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत्
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते ३२
सगर्भादपि साहस्त्रं सध्यानो जप उच्यते
एषु पंचविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ३३
अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम्
रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ३४
शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्त्रकम्
स्फटिकैर्दशसाहस्त्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ३५
पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते
कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनंतगुणितं भवेत् ३६
त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ३७
पंचविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति
अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचारफलप्रदा ३८
अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम्
मध्यमां धनदां शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका ३९
अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा
शतसंख्योत्तमा माला पंचाशद्भिस्तु मध्यमा ४०
चतुः पंचाशदक्षैस्तु हृच्छ्रेष्ठा हि प्रकीर्तिता

इत्येवं मालया कुर्याज्जपं कस्मै न दर्शयेत् ४१
कनिष्ठा ज्ञरिणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना
अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिस्सह ४२
अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः
गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं विदुः ४३
पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ४४
कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ
सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिंदोर्दीपस्य च जलस्य च ४५
विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः
तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम् ४६
पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शातिदं भवेत्
सूर्य्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्निधौ ४७
अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत्
उष्णीषी कुंचुकी नम्रो मुक्तकेशो गलावृतः ४८
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्क्वचित्
क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे ४९
दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि
आचमेत्संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह ५०
ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम्
अनासनः शयाने वा गच्छन्नुत्थित एव वा ५१
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे
प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासन एव वा ५२
यानशय्याधिरूढो वा चिंताव्याकुलितोऽथ वा
शक्तश्चेत्सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत् ५३

किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु
सदाचारो जपञ्छुद्धं ध्यायन्भद्रं समश्नुते ५४
आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनं
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ५५
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निंदितः
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान्भवेत् ५६
यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः ५७
सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते
सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम् ५८
आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैः सदाचारादविच्युतः
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत् ५९
यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि
तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते ६०
रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथ वा पशोः ६१
सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च
पंचाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ६२
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयन्न च निष्फलः ६३
अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम्
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ६४
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च
निर्मर्यादस्य नीचस्य मंत्रोऽयं न च निष्फलः ६५
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्

सिध्यत्येव न संदेहो नापरस्य तु कस्यचित् ६६
न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये
अस्यात्यंतमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तस्सदोदितः ६७
न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति ६८
सिद्धेन गुरुणादिष्टस्सुसिद्ध इति कथ्यते
असिद्धेनापि वा दत्तस्सिद्धसाध्यस्तु केवलः ६९
असाधितस्साधितो वा सिध्यत्वेन न संशयः
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मंत्रे तथा गुरौ ७०
तस्मान्मंत्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायान् ऽधिकारतः
आश्रमेत्परमां विद्यां साक्षात्पंचाक्षरीं बुधः ७१
मंत्रान्तरेषु सिद्धेषु मंत्र एष न सिध्यति
सिद्धे त्वस्मिन्महामंत्रे ते च सिद्धा भवंत्युत ७२
यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि
मयि लब्धे तु ते लब्धा मंत्रेष्वेषु समो विधिः ७३
ये दोषास्सर्वमंत्राणां न तेऽस्मिन्संभवंत्यपि
अस्य मंत्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात् ७४
तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रति योगिषु
सहसा विनियुंजीत तस्मादेष महाबलः ७५
उपमन्युरुवाच
एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना
हिता य जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा ७६
य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ७७
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे

पंचाक्षरमहिमवर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः १४

अध्याय १५

श्रीकृष्ण उवाच
भगवान्मंत्रमाहात्म्यं भवता कथितं प्रभो
तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा १
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम्
मंत्रसंग्रहणे किंचित्सूचितन्न तु विस्मृतम् २
उपमन्युरुवाच
हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम्
संस्कारं परमं पुरायं शिवेन पतिभाषितम् ३
सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिषु नरो यतः
संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम् ४
दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबंधनम्
तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते ५
शांभवी चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ६
गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि
सद्यस्संज्ञा भवेज्जंतोः पाशोपक्षयकारिणी ७
सा दीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा
तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशो पक्षयभेदतः ८
यया स्यान्निर्वृतिः सद्यस्सैव तीव्रतरा मता
तीव्रा तु जीवतोत्यंतं पुंसः पापविशोधिका ९
शक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा १०

मांत्री क्रियावती दीक्षा कुंडमंडलपूर्विका
मंदमंदतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः ११
शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समासतः १२
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः १३
तस्माल्लिंगानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुश्शिष्यं विशोधयेत् १४
योऽन्यथा कुरुते मोहात्स विनश्यति दुर्मतिः
तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् १५
लक्षणं शक्तिपातस्य प्रबोधानंदसंभवः
सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधानंदरूपिणी १६
आनंदबोधयोर्लिंगमंतःकरणविक्रियाः
यथा स्यात्कंपरोमांचस्वरनेत्रांगविक्रियाः १७
शिष्योपि लक्षणैरेभिः कुर्य्याद्गुरुपरीक्षणम्
तत्संपर्कैः शिवार्चादौ संगतैर्वाथ तद्गतैः १८
शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोर्गौरवकारणात्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत् १९
यो गुरुस्स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः २०
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः
शिवविद्या गुरूणां च पूजया सदृशं फलम् २१
सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमंत्रमयो गुरुः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यस्याज्ञां शिरसा वहेत् २२
श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत्

गुर्वाज्ञापालको यस्माज्ज्ञानसंपत्तिमश्नुते २३
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्नान्यत्कर्म समाचरेत्
समक्षं यदि कुर्वीत सर्वं चानुज्ञया गुरोः २४
गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत्
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम् २५
पापिनां च यथा संगात्तत्पापात्पतितो भवेत्
यथेह वह्निसंपर्कान्मलं त्यजति कांचनम् २६
तथैव गुरुसंपर्कात्पापं त्यजति मानवः
यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते २७
तथा पापं विलीयेत ह्याचार्यस्य समीपतः
यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् २८
तथायमपि संतुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत्
मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् २९
तस्य क्रोधेन दह्यंते ह्यायुःश्रीज्ञानसत्क्रियाः
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ३०
यमश्च नियमाश्चैव नात्र कार्य्या विचारणा
गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ३१
वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्
मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः ३२
श्रेयोर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत्
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ३३
असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत्
इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसः ३४
गुरुप्रियकरः शिष्यः शैवधर्मांस्ततोऽर्हति
गुरुश्चेद्गुणवान्प्राज्ञः परमानंदभासकः ३५

तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः
संवित्संजननं तत्त्वं परमानंदसंभवम् ३६
तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानंददर्शकः
न पुनर्नाममात्रेण संविदारहितस्तु यः ३७
अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्
एतस्या नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ३८
यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ३९
परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते
पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ४०
तस्मात्तत्त्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ४१
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः
यस्यानुभवपर्यंता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ४२
तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते
तस्माद्यस्यैव संपर्कात्प्रबोधानंदसंभवः ४३
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः
स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ४४
यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः
ज्ञाते तस्मिन्स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्त्वं समाश्रयेत् ४५
न तु तत्त्वं त्यजेज्ज्ञातु नोपेक्षेत कथंचन
यत्रानंदः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते ४६
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत्
गुरुमन्यं प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम्
गुरोर्भ्रातृ-स्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि ४७

तत्रादावुपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम्
गुरुमाराधयेत्प्राज्ञं शुभगं प्रियदर्शनम् ४८
सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रांतमानसम्
तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ४९
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोसौ भवेद्यथा
तस्मिन्प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ५०
तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च
भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च ५१
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या वित्तानुसारतः
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम् ५२
स एव जनको माता भर्ता बन्धुर्धनं सुखम्
सखा मित्रं च यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयेत् ५३
निवेद्य पश्चात्स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम्
समर्प्य सोदकं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत् ५४
यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने
तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः ५५
गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्विवर्षं च त्रिवर्षकम् ५६
प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः
उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि ५७
आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्त्यपि
ते योग्याः संयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ५८
अहिंसका दयावंतो नित्यमुद्युक्तचेतसः
अमानिनो बुद्धिमंतस्त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदाः ५९
ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः स्थिरचेतसः

शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ६०
एवं वृत्तसमोपेता वाग्मनःकायकर्मभिः
शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः ६१
नाधिकारः स्वतो नार्य्याः शिवसंस्कारकर्मणि
नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे ६२
तथैव भर्तृहीनाया पुत्रादेरभ्यनुज्ञया
अधिकारो भवत्येव कन्यायाः पितुराज्ञया
शूद्राणां मर्त्यजातीनां पतितानां विशेषतः ६३
तथा संकरजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते
तैप्यकृत्रिमभावश्चेच्छिवे परमकारणे ६४
पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्युः पापविशोधनम्
अत्रानुलोमजाता ये युक्ता एव द्विजातिषु ६५
तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्
या तु कन्या स्वपित्राद्यैश्शिवधर्मे नियोजिता ६६
सा भक्ताय प्रदातव्या नापराय विरोधिने
दत्ता चेत्प्रतिकूलाय प्रमादाद्बोधयेत्पतिम् ६७
अशक्ता तं परित्यज्य मनसा धर्ममाचरेत्
यथा मुनिवरं त्यक्त्वा पतिमत्रिं पतिव्रता ६८
कृतकृत्याऽभवत्पूर्वं तपसाराध्य शङ्करम्
यथा नारायणं देवं तपसाराध्य पांडवान् ६९
पताँल्लब्धवती धर्मे गुरुभिर्न नियोजिता
अस्वातन्त्र्यकृतो दोषो नेहास्ति परमार्थतः ७०
शिवधर्मे नियुक्तायाश्शिवशासनगौरवात्
बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः ७१
संस्कार्यो गुर्वधीनश्चेत्संस्क्रिया न प्रभिद्यते

गुरोरालोकनादेव स्पर्शात्संभाषणादपि ७२
यस्य संजायते प्रज्ञा तस्य नास्ति पराजयः
मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना ७३
स नेह कथितो गुह्यो गुरुवक्त्रैकगोचरः
क्रियावान्यस्तु संस्कारः कुंडमंडपपूर्वकः
स वक्ष्यते समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ७४
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
दीक्षाविधाने गुरुमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः १५

अध्याय १६

उपमन्युरुवाच
पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते
देशिकः प्रथमं कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् १
परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः
शिल्पिशास्त्रोक्तमार्गेण मण्डपं तत्र कल्पयेत् २
कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि परिकल्पयेत्
अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तत्रैशान्यां पुनः क्रमात् ३
प्रधानकुंडं कुर्वीत यद्वा पश्चिमभागतः
प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ४
वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः
वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलं शुभलक्षणम् ५
रक्तहेमादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनोचितम्
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्द्धनः ६
एकहस्तं द्विहस्तं वा सितं वा रक्तमेव वा
एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाष्टांगुला मता ७

केसराणि तदर्द्धानि शेषं चाष्टदलादिकम्
द्विहस्तस्य तु पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम् ८
कृत्वा शोभोपशोभाढ्यमैशान्यां तस्य कल्पयेत्
एकहस्तं तदर्द्धं वा पुनर्वेद्यः तु मंडलम् ९
व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तृते
तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुंभं प्रसाधयेत् १०
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा
गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वांकुराचितम् ११
सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम्
शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चं सद्रव्यं सपिधानकम् १२
भृण्गारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापि वा १३
तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले
अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्धनीम् १४
मण्डलस्य ततः प्राच्यां मंत्रकुंभे च पूर्ववत्
कृत्वा विधिवदीशस्य महापूजां समाचरेत् १५
अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ
देवागरे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे १६
कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं विना वा मंडपादिकम्
मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः १७
प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः
सर्वमंगलसंयुक्तः समाचरितनैत्यकः १८
महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः
शिवकुंभे तथा भूयः शिवमावाह्य पूजयेत् १९
पश्चिमाभिमुखं ध्यात्वा यज्ञरक्षकमीश्वरम्

अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे २०
मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मन्त्रविशारदः
कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मन्त्रयागं समाचरेत् २१
ततश्शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः
प्रधानकुण्डे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः २२
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते
प्रधानकुण्ड एवाथ जुहुयाद्देशिकोत्तमः २३
स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्तोत्रं मंगलवाचनम्
जपं च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः २४
नृत्यं गीतं च वाद्यं च मंगलान्यपराणि च
पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः २५
पुण्याहं कारयित्वाथ पुनः संपूज्य शंकरम्
प्रार्थयेद्देशिको देवं शिष्यानुग्रहकाम्यया २६
प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्
विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे २७
अथ चैवं करोमीति लब्धानुज्ञस्तु देशिकः
आनीयोपोषितं शिष्यं हविष्याशिनमेव वा २८
एकाशनं वा विरतं स्नातं प्रातःकृतक्रियम्
जपंतं प्रणवं देवं ध्यायंतं कृतमंगलम् २९
द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमण्डले दक्षिणस्य वा
दर्भासने समासीनं विधायोदग्मुखं शिशुम् ३०
स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्ध्वकायं कृतांजलिम्
संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्धन्यस्त्रेण मुद्रया ३१
पुष्पक्षेपेण संताड्य बध्नीयाल्लोचनं गुरुः
दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण मंत्रितेन नवेन च ३२

ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्वारेण मंडलम्
सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत्त्रिः प्रदक्षिणम् ३३
ततस्सुवर्णसंमिश्रं दत्त्वा पुष्पांजलिं प्रभोः
प्राग्मुखश्चोदग्मुखो वा प्रणमेद्दंडवत्क्षितो ३४
ततस्संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत्
संताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबंधनम् ३५
स दृष्ट्वा मंडलं भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम्
अथासीनं शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे ३६
उपवेश्यात्मनस्सव्ये शिष्यं दर्भासने गुरुः
आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत् ३७
शिवतेजोमयं पाणिं शिवमंत्रमुदीरयेत्
शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके ३८
सर्वांगालंबनं चैव कुर्यात्तेनैव देशिकः
शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतमीश्वरम् ३९
ततश्शिवानले देवं समभ्यर्च्य यथाविधि
हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ४०
दर्भाग्रैः संस्पृशंस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत्
नमस्कृत्य महादेवं नाडीसंधानमाचरेत् ४१
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निर्गमम्
शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृत्वा मंत्रांस्तु तर्पयेत् ४२
संतर्पणाय मूलस्य तेनैवाहुतयो दश
देयास्तिस्रस्तथांगानामंगैरेव यथाक्रमम् ४३
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रायश्चित्ताय देशिकः
पुनर्दशाहुतीन्कुर्यान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ४४
पुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः

हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत् ४५
तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च ततः पुनः
कृत्वा तथैव विप्रत्वं जनयेदस्य देशिकः ४६
राजन्यं चैवमुद्धृत्य कृत्वा विप्रं पुनस्तयोः
रुद्रत्वं जनयेद्विप्रे रुद्रनामैव साधयेत् ४७
प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोस्स्वात्मानमात्मनि
शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरंतं विस्फुलिंगवत् ४८
नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मंत्रतो गुरुः
निर्गम्य प्रविशेन्नाड्या शिष्यस्य हृदयं तथा ४९
प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभं स्मरन्
स्वतेजसापास्तमलं ज्वलंतमनुचिंतयेत् ५०
तमादाय तया नाड्या मंत्री संहारमुद्रया
न पूरकेण निवेश्यैनमेकीभावार्थमात्मनः ५१
कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा
तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये तन्निवेशयेत् ५२
तमालभ्य शिवाल्लब्धं तस्मै दत्त्वोपवीतकम्
हुत्वाऽऽहुतित्रयं पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ५३
देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्यवरासने
कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धांजलिरुदङमुखम् ५४
स्वस्तिकासनमारूढं विधाय प्राङमुखः स्वयम्
वरासनस्थितो मंत्रैर्महामंगलनिःस्वनैः ५५
समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसादितम्
ध्यायमानः शिवं शिष्यमाभिषिंचेत देशिकः ५६
अथापनुद्य स्नानांबु परिधाय सितांबरम्
आचान्तोलंकृतश्शिष्यः प्रांजलिर्मंडपं व्रजेत् ५७

उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविष्टरे
संपूज्य मंडलं देवं करन्यासं समाचरेत् ५८
ततस्तु भस्मना देवं ध्यायन्मनसि देशिकः
समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ५९
अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम्
सकलीकरणं कृत्वा मातृकान्यासवर्त्मना ६०
ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः
तत्रावाह्य यथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ६१
प्रार्थयेत्प्रांजलिर्देवं नित्यमत्र स्थितो भव
इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ६२
संपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम्
कर्णे शिष्यस्य शनकैश्शिवमन्त्रमुदीरयेत् ६३
स तु बद्धांजलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः
शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यशिवाचार्यस्य शासनात् ६४
ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः
उच्चारयित्वा च सुखं तस्मै मंगलमादिशेत् ६५
आसान्मन्त्रार्थं वाच्यवाचकयोगतः
समदिश्येश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ६६
अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ
भक्त्यैवमभिसंधाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत् ६७
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीय भगवन्तं त्रिलोचनम् ६८
स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः
तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः ६९
ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे

लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत् ७०
अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः
दद्याच्छिष्याय मूलेन रुद्राक्षं चाभिमंत्रितम् ७१
प्रतिमा वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा
पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे ७२
सोपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः
आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा ७३
आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः
रक्षयेत्पूजयेच्छंभुं मठे वा गृह एववा ७४
अतः परं शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः
भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः ७५
यदुक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम्
शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत् ७६
शिवागमस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा
देशिकदेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः ७७
इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः
साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम् ७८

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे
शिष्यसंस्कारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः १६

अध्याय १७

उपमन्युरुवाच
अतः परं समावेक्ष्य गुरुः शिष्यस्य योग्यताम्
षडध्वशुद्धिं कुर्वीत सर्वबंधविमुक्तये १
कलां तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम्

मंत्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते २
निवृत्त्याद्याः कलाः पंच कलाध्वा कथ्यते बुधैः
व्याप्ताः कलाभिरितरे त्वध्वानः पंच पंचभिः ३
शिवतत्त्वादिभूम्यंतं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः
षड्विंशत्संख्ययोपेतः शुद्धाशुद्धोभयात्मकः ४
आधाराद्युन्मनांतश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः
विना भेदोपभेदाभ्यां षष्टिसंख्यासमन्वितः ५
पंचाशद्रुद्ररूपास्तु वर्णा वर्णाध्वसंज्ञिताः
अनेकभेदसंपन्नः पदाध्वा समुदाहृतः ६
सर्वोपमंत्रैर्मंत्राध्वा व्याप्तः परमविद्यया
यथा शिवो न तत्त्वेषु गण्यते तत्त्वनायकः ७
मंत्राध्वनि न गण्येत तथासौ मंत्रनायकः
कलाध्वनो व्यापकत्वं व्याप्यत्वं चेतराध्वनाम् ८
न वेत्ति तत्त्वतो यस्य नैवार्हत्यध्वशोधनम्
षड्विधस्याध्वनो रूपं न येन विदितं भवेत् ९
व्याप्यव्यापकता तेन ज्ञातुमेव न शक्यते
तस्मादध्वस्वरूपं च व्याप्यव्यापकतां तथा १०
यथावदवगम्यैव कुर्य्यादध्वविशोधनम्
कुंडमंडलपर्यंतं तत्र कृत्वा यथा पुरा ११
द्विहस्तमानं कुर्वीत प्राच्यां कलशमंडलम्
ततः स्नातश्शिवाचार्यः सशिष्यः कृतनैत्यकः १२
प्रविश्य मंडलं शंभोः पूजां पूर्ववदाचरेत्
तत्राढकावरैस्सिद्धं तंदुलैः पायसं प्रभोः १३
अर्द्धं निवेद्य होमार्थं शेषं समुपकल्पयेत्
पुरतः कल्पिते वाथ मंडले वर्णिमंडिते १४

स्थापयेत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च देशिकः
तेषु ब्रह्माणि मूलार्णैर्बिन्दुनादसमन्वितैः १५
नमश्चाद्यैर्यकरांतैः कल्पयेत्कल्पवित्तमः
ईशानं मध्यमे कुंभे पुरुषं पुरतः स्थिते १६
अघोरं दक्षिणे वामे वामं सद्यं च पश्चिमे
रक्षां विधाय मुद्रा च बद्ध्वा कुंभाभिमंत्रणम् १७
कृत्वा शिवानलैर्होमं प्रारभेत् यथा पुरा
यदर्द्धं पायसं पूर्वं होमार्थं परिकल्पितम् १८
हुत्वा शिष्यस्य तच्छेषं भोक्तुं समुपकल्पयेत्
तर्पणांतं च मंत्राणां कृत्वा कर्म यथा पुरा १९
हुत्वा पूर्णाहुतिं तेषां ततः कुर्य्यात्प्रदीपनम्
ओंकारादनु हुंकारं ततो मूलं फडंतकम् २०
स्वाहांतं दीपने प्राहुरंगानि च यथाक्रमम्
तेषामाहुतयस्तिस्रो देया दीपनकर्मणि २१
मंत्रैरेकैकशस्तैस्तु विचिन्त्या दीप्तमूर्तयः
त्रिगुणं त्रिगुणी कृत्य द्विजकन्याकृतं सितम् २२
सूत्रं सूत्रेण संमंत्र्य शिखाग्रे बंधयेच्छिशोः
चरणांगुष्ठपर्य्यंतमूर्द्ध्वकायस्य तिष्ठतः २३
लंबयित्वा तु तत्सूत्रं सुषुम्णां तत्र योजयेत्
शांतया मुद्रयादाय मूलमंत्रेण मंत्रवित् २४
हुत्वाहुतित्रयं तस्यास्सान्निध्यमुपकल्पयेत्
हृदि संताड्य शिष्यस्य पुष्पक्षेपेण पूर्ववत् २५
चैतन्यं समुपादाय द्वादशांते निवेद्य च
सूत्रं सूत्रेण संयोज्य संरक्ष्यास्त्रेण वर्मणा २६
अवगुंठ्याथ तत्सूत्रं शिष्यदेहं विचिंतयेत्

मूलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम् २७
विषयेन्द्रियदेहादिजनकं तस्य भावयेत्
व्योमादिभूतरूपिण्यः शांत्यतीतादयः कलाः २८
सूत्रे स्वनामभिर्योज्यः पूज्यश्चैव नमोयुतैः
अथवा बीजभूतैस्तत्कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात् २९
ततो मलादेस्तत्त्वादौ व्याप्तिं समलोकयेत्
कलाव्याप्तिं मलादौ च हुत्वा संदीपयेत्कलाः ३०
शिष्यं शिरसि संताड्य सूत्रं देहे यथाक्रमम्
शांत्यतीतपदे सूत्रं लाञ्छयेन्मंत्रमुच्चरन् ३१
एवं कृत्वा निवृत्त्यन्तं शांत्यतीतमनुक्रमात्
हुत्वाहुतित्रयं पश्चान्मण्डले च शिवं यजेत् ३२
देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्योत्तरामुखम्
सदर्भे मण्डले दद्याद्धोमशिष्टं चरुं गुरुः ३३
शिष्यस्तद्गुरुणा दत्तं सत्कृत्य शिवपूर्वकम्
भुक्त्वा पश्चाद्द्विराचम्य शिवमन्त्रमुदीरयेत् ३४
अपरे मण्डले दद्यात्पंचगव्यं तथा गुरुः
सोऽपि तच्छक्तितः पीत्वा द्विराचम्य शिवं स्मरेत् ३५
तृतीये मण्डले शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा
प्रदद्याद्दंतपवनं यथाशास्त्रोक्तलक्षणम् ३६
अग्रेण तस्य मृदुना प्राण्मुखो वाप्युदण्मुखः
वाचं नियम्य चासीनश्शिष्यो दंतान्विशोधयेत् ३७
प्रक्षाल्य दंतपवनं त्यक्त्वाचम्य शिवं स्मरेत्
प्रविशेद्देशिकादिष्टः प्रांजलिः शिवमण्डलम् ३८
त्यक्तं तद्दन्तपवनं दृश्यते गुरुणा यदि
प्रागुदक्पश्चिमे वाग्रे शिवमन्यच्छिवेतरम् ३९

अशस्ताशामुखे तस्मिन्गुरुस्तद्दोषशांतये
शतमर्द्धं तदर्द्धं वाजुहुयान्मूलमन्त्रतः ४०
ततः शिष्यं समालभ्य जपित्वा कर्णयोः शिवम्
देवस्य दक्षिणे भागे तं शिष्यमधिवासयेत् ४१
अहतास्तरणास्तीर्णे स दर्भशयने शुचिः
मंत्रितेऽन्तः शिवं ध्यायञ्शयीत प्राक्छिरा निशि ४२
शिखायां बद्धसूत्रस्य शिखया तच्छिखां गुरुः
आबध्याहतवस्त्रेण तमाच्छाद्य च वर्मणा ४३
रेखात्रयं च परितो भस्मना तिलसर्षपैः
कृत्वास्त्रजप्तैस्तद्बाह्ये दिगीशानां बलिं हरेत् ४४
शिष्योऽपि परतोऽनश्नन्कृत्वैवमधिवासनम्
प्रबुध्योत्थाय गुरवे स्वप्नं दृष्टं निवेदयेत् ४५
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवदीक्षाविधानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः १७

अध्याय १८

उपमन्युरुवाच
ततः स्नानादिकं सर्वं समाप्याचार्यचोदितः
गच्छेद्बद्धांजलिर्ध्यायञ्छिवमण्डलपार्श्वतः १
अथ पूजां विना सर्वं कृत्वा पूर्वदिने यथा
नेत्रबंधनपर्य्यंतं दर्शयेन्मण्डलं गुरुः २
बद्धनेत्रेण शिष्येण पुष्पावकिरणे कृते
यत्रापतंति पुष्पाणि तस्य नामाऽस्य संदिशेत् ३
तं चोपनीय निर्माल्यमण्डलेऽस्मिन्यथा पुरा
पूजयेद्देवमीशानं जुहुयाच्च शिवानले ४

शिष्येण यदि दुःस्वप्नो दृष्टस्तद्दोषशांतये
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलविद्यया ५
ततः सूत्रं शिखाबद्धं लंबयित्वा यथा पुरा
आधारपूजाप्रभृति यन्निवृत्तिकलाश्रयम् ६
वागीश्वरीपूजनांतं कुर्याद्धोमपुरस्सरम्
अथ प्रणम्य वागीशं निवृत्तेर्व्यापिकां सतीम् ७
मण्डले देवमभ्यर्च्य हुत्वा चैवाहुतित्रयम्
प्रापयेच्च शिशोः प्राप्तिं युगपत्सर्वयोनिषु ८
सूत्रदेहेऽथ शिष्यस्य ताडनप्रोक्षणादिकम्
कृत्वात्मानं समादाय द्वादशांते निवेद्य च ९
ततोऽप्यादाय मूलेन मुद्रया शास्त्रदृष्टया
योजयेन्मनसाचार्यो युगपत्सर्वयोनिषु १०
देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः
जात्यैकया च मानुष्या योनयश्च चतुर्दश ११
तासु सर्वासु युगपत्प्रवेशाय शिशोर्द्धिया
वागीशान्यां यथान्यायं शिष्यात्मानं निवेशयेत् १२
गर्भनिष्पत्तये देवं संपूज्य प्रणिपत्य च
हुत्वा चैव यथान्यायं निष्पन्नं तदनुस्मरेत् १३
निष्पन्नस्यैवमुत्पत्तिमनुवृत्तिं च कर्मणा
आर्जवं भोगनिष्पत्तिः कुर्यात्प्रीतिं परां तथा १४
निष्कृत्यर्थं च जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धये
हुत्वाहुतित्रयं देवं प्रार्थयेद्देशिकोत्तमः १५
भोक्तृत्वविषयासंगमलं १ तत्कायशोधनम्
कृत्वैवमेव शिष्यस्य छिंद्यात्पाशत्रयं ततः १६
निकृत्या परि बद्धस्य पाशस्यात्यंतभेदतः

कृत्वा शिष्यस्य चैतन्यं स्वच्छं मन्येत केवलम् १७
हुत्वा पूर्णाहुतिं वह्नौ ब्रह्माणं पूजयेत्ततः
हुत्वाहुतित्रयं तस्मै शिवाज्ञामनुसंदिशेत् १८
पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम्
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी १९
इत्यादिश्य तमभ्यर्च्य विसृज च विधानतः
समभ्यर्च्य महादेवं जुहुयादाहुतित्रयम् २०
निवृत्त्या शुद्धमुद्धृत्य शिष्यात्मानं यथा पुरा
निवेश्यात्मनि सूत्रे च वागीशं पूजयेत्ततः २१
हुत्वाहुतित्रयं तस्मै प्रणम्य च विसृज्य ताम्
कुर्यान्निवृत्तः संधानं प्रतिष्ठां कलया सह २२
संधाने युगपत्पूजां कृत्वा हुत्वाहुतित्रयम्
शिष्यात्मनः प्रतिष्ठायां प्रवेशं त्वथ भावयेत् २३
ततः प्रतिष्ठामावाह्य कृत्वाशेषं पुरोदितम्
तद्व्याप्तिं व्यापिकां तस्य वागीशानीं च भावयेत् २४
पूर्णेदुमंडलप्रख्यां कृत्वा शेषं च पूर्ववत्
विष्णवे संविशेदाज्ञां शिवस्य परमात्मनः २५
विष्णोर्विसर्जनाद्यं च कृत्वा शेषं च विद्यया
प्रतिष्ठामनुसंधाय तस्यां चापि यथा पुरा २६
कृत्वानुचिन्त्य तद्व्याप्तिं वागीशां च यथाक्रमम्
दीप्ताग्नौ पूर्णहोमान्तं कृत्वा शेषं च पूर्ववत् २७
नीलरुद्रमुपस्थाप्य तस्मै पूजादिकं तथा
कृत्वा कर्म शिवाज्ञां च दद्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना २८
तपस्तमपि चोद्वास्य कृत्वा तस्याथ शांतये
विद्याकलां समाधाय तद्व्याप्तिं चावलोकयेत् २९

स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च यथा पुरा
बालार्कसदृशाकारां भासयंतीं दिशो दश ३०
ततः शेषं यथापूर्वं कृत्वा देवं महेश्वरम्
आवाह्याराध्य हुत्वास्मै शिवाज्ञां मनसा दिशेत् ३१
महेश्वरं तथोत्सृज्य कृत्वान्यां च कलामिमाम्
शांत्यतीतां कलां नीत्वा तद्व्याप्तिमवलोकयेत् ३२
स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशां च विचिंतयेत्
नभोमंडलसंकाशां पूर्णांतं चापि पूर्ववत् ३३
कृत्वा शेषविधानेन समभ्यर्च्य सदाशिवम्
तस्मै समादिशेदाज्ञां शंभोरमितकर्मणः ३४
तत्रापि च यथापूर्वं शिवं शिरसि पूर्ववत्
समभ्यर्च्य च वागीशं प्रणम्य च विसर्जयेत् ३५
ततश्शिवेन सम्प्रोक्ष्य शिष्यं शिरसि पूर्ववत्
विलयं शांत्यतीतायाः शक्तितत्त्वेऽथ चिंतयेत् ३६
षडध्वनः परे पारे सर्वाध्वव्यापिनी पराम्
कोटिसूर्यप्रतीकाशं शैवीं शक्तिञ्च चिन्तयेत् ३७
तदग्रे शिष्यमानीय शुद्धस्फटिकनिर्मलम्
प्रक्षाल्य कर्त्तरीं पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ३८
कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं सह सूत्रेण देशिकः
ततस्तां गोमये न्यस्य शिवाग्नौ जुहुयाच्छिखाम् ३९
वौषडंतेन मूलेन पुनः प्रक्षाल्य कर्तरीम्
हस्ते शिष्यस्य चैतन्यं तद्देहे विनिवर्तयेत् ४०
ततः स्नातं समाचांतं कृतस्वस्त्ययनं शिशुम्
प्रवेश्य मंडलाभ्यासं प्रणिपत्य च दंडवत् ४१
पूजां कृत्वा यथान्यायं क्रियावैकल्यशुद्धये

वाचकेनैव मंत्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् ४२
उपांशूच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्
पुनस्संपूज्य देवेशं मन्त्रवैकल्यशुद्धये ४३
मानसोच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्
तत्र शंभुं समाराध्य मंडलस्थं सहांबया
हुत्वाहुतित्रयं पश्चात्प्रार्थयेत्प्रांजलिर्गुरुः ४४
भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम् ४५
इति विज्ञाप्य देवाय नाडीसंधानपूर्वकम्
पूर्णांतं पूर्ववत्कृत्वा ततो भूतानि शोधयेत् ४६
स्थिरास्थिरे ततः शुद्ध्यै शीतोष्णे च ततः पदे
ध्यायेद्व्याप्त्यैकताकारे भूतशोधनकर्मणि ४७
भूतानां ग्रंथिविच्छेदं कृत्वा त्यक्त्वा सहाधिपैः
भूतानि स्थितयोगेन यो जपेत्परमे शिवे ४८
विशोध्यास्य तनुं दग्ध्वा प्लावयित्वा सुधाकणैः
स्थाप्यात्मानं ततः कुर्याद्विशुद्धाध्वमयं वपुः ४९
तत्रादौ शान्त्यतीतां तु व्यापिकां स्वाध्वनः कलाम्
शुद्धामेव शिशोर्मूर्ध्नि न्यसेच्छान्तिमुखे तथा ५०
विद्यां गलादिनाभ्यंतं प्रतिष्ठां तदधः क्रमात्
जान्वंतं तदधो न्यस्येन्निवृत्तिं चानुचिंतयेत् ५१
स्वबीजैस्सूत्रमंत्रं च न्यस्यां गैस्तं शिवात्मकम्
बुद्ध्वा तं हृदयांभोजे देवमावाह्य पूजयेत् ५२
आशास्य नित्यसांनिध्यं शिवस्वात्म्यं शिशौ गुरुः
शिवतेजोमयस्यास्य शिशोरापादयेद्गुणान् ५३
अणिमादीन्प्रसीदेति प्रदद्यादाहुतित्रयम्

तथैव तु गुणानेव पुनरस्योपपादयेत् ५४
सर्वज्ञातां तथा तृप्तिं बोधं चाद्यन्तवर्जितम्
अलुप्तशक्तिं स्वातन्त्र्यमनंतां शक्तिमेव च ५५
ततो देवमनुज्ञाप्य सद्यादिकलशैस्तु तम्
अभिषिंचेत देवेशं ध्यायन्हृदि यथाक्रमम् ५६
अथोपवेश्य तं शिष्यं शिवमभ्यर्च्य पूर्ववत्
लब्धानुज्ञः शिवाच्छैवीं विद्यामस्मै समादिशेत् ५७
ओंकारपूर्विकां तत्र संपुटान्तु नमोऽतगाम्
शिवशक्तियुताञ्चैव शक्तिविद्यां च तादृशीम् ५८
ऋषिं छन्दश्च देवं च शिवतां शिवयोस्तथा
ऊजां सावरणां शम्भोरासनानि च सन्दिशेत् ५९
पुनः संपूज्य देवेशं यन्मया समनुष्ठितम्
सुकृतं कुरु तत्सर्वमिति विज्ञापयेच्छिवम् ६०
सहशिष्यो गुरुर्देवं दण्डवत्क्षितिमंडले
प्रणम्योद्वासयेत्तस्मान्मंडलात्पावकादपि ६१
ततः सदसिकाः सर्वे पूज्याः पूजार्हकाः क्रमात् ६२
सेव्या वित्तानुसारेण सदस्याश्च सहर्त्विजः
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ६३
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
षडध्वशुद्ध्यादिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः १८

अध्याय १९

उपमन्युरुवाच
अतः परं प्रवक्ष्यामि साधकं नाम नामतः
संस्कारमन्त्रमाहात्म्यं कथने सूचितं मया १

संपूज्य मंडले देवं स्थाप्य कुम्भे च पूर्ववत्
हुत्वा शिष्यमनुष्णीषं प्रापयेद्भुवि मंडले २
पूर्वांतं पूर्ववत्कृत्वा हुत्वाहुतिशतं तथा
संतर्प्य मूलमन्त्रेण कलशैर्देशिकोत्तमः ३
सन्दीप्य च यथापूर्वं कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्
अभिषिच्य यथापूर्वं प्रदद्यान्मन्त्रमुत्तमम् ४
तत्र विद्योपदेशांतं कृत्वा विस्तरशः क्रमात्
पुष्पाम्बुना शिशोः पाणौ विद्यां शैवीं समर्पयेत् ५
तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः
भवत्येव महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः ६
इत्युत्वा देवमभ्यर्च्य लब्धानुज्ञः शिवाद्गुरुः
साधनं शिवयोगं च साधकाय समादिशेत् ७
तच्छ्रुत्वा गुरुसंदेशं क्रमशो मंत्रसाधकः
पुरतो विनियोगस्य मन्त्रसाधनमाचरेत् ८
साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते
पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः ९
नात्यन्तं करणीयन्तु मुमुक्षोर्मन्त्रसाधनम्
कृतन्तु तदिहान्यत्र तास्यापि शुभदं भवेत् १०
शुभेऽहनि शुभे देशे काले वा दोषवर्जिते
शुक्लदन्तनखः स्नातः कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ११
अलंकृत्य यथा लब्धैर्गंधमाल्यविभूषणैः
सोष्णीषः सोत्तरासंगः सर्वशुक्लसमाहितः १२
देवालये गृहेऽन्यस्मिन्देशे वा सुमनोहरे
सुखेनाभ्यस्तपूर्वेण त्वासनेन कृतासनः १३
तनुं कृत्वात्मनः शैवीं शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना

संपूज्य देवदेवेशं नकुलीश्वरमीश्वरम् १४
निवेद्य पायसं तस्मै समप्याराधनं क्रमात्
प्रणिपत्य च तं देवं प्राप्तानुज्ञश्च तन्मुखात् १५
कोटिवारं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेच्छिवम्
लक्षविंशतिकं वापि दशलक्षमथापि वा १६
ततश्च पायसाक्षारलवणैकमिताशनः
अहिंसकः क्षमी शांतो दांतश्चैव सदा भवेत् १७
अलाभे पायसस्याश्नन्फलमूलादिकानि वा
विहितानि शिवेनैव विशिष्टान्युत्तरोत्तरम् १८
चरुं भक्ष्यमथो सक्तुकणान्यावकमेव च
शाकं पयो दधि घृतं मूलं फलमथोदकम् १९
अभिमंत्र्य च मन्त्रेण भक्ष्यभोज्यादिकानि च
साधनेऽस्मिन्विशेषेण नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः २०
मन्त्राष्टशतपूतेन जलेन शुचिना व्रती
स्नायान्नदीनदोत्थेन प्रोक्षयेद्वाथ शक्तितः २१
तर्पयेच्च तथा नित्यं जुहुयाच्च शिवानले
सप्तभिः पञ्चभिर्द्रव्यैस्त्रिभिर्वाथ घृतेन वा २२
इत्थं भक्त्या शिवं शैवो यः साधयति साधकः
तस्येहामुत्र दुष्प्रापं न किंचिदपि विद्यते २३
अथवाऽहरहर्मंत्रं जपेदेकाग्रमानसः
अनश्नन्नेव साहस्रं विना मन्त्रस्य साधनम् २४
न तस्य दुर्लभं किंचिन्न तस्यास्त्यशुभं क्वचित्
इह विद्यां श्रियं सौख्यं लब्ध्वा मुक्तिं च विंदति २५
साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिके तथा
जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वा मन्त्रेण च क्रमात् २६

शुचिर्बद्धशिखस्सूत्री सपवित्रकरस्तथा
धृतत्रिपुंड्ररुद्राक्षो विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत् २७
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे
साधकसंस्कारमन्त्रमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः १९

अध्याय २०

उपमन्युरुवाच
अथैवं संस्कृतं शिष्यं कृतपाशुपतव्रतम्
आचार्यत्वेऽभिषिंचेत तद्योगत्वेन चान्यथा १
मण्डलं पूर्ववत्कृत्त्वा संपूज्य परमेश्वरम्
स्थापयत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च पूर्ववत् २
निवृत्तिं पुरतो न्यस्य प्रतिष्ठां पश्चिमे घटे
विद्यां दक्षिणतः शांतिमुत्तरे मध्यतः पराम् ३
कृत्वा रक्षादिकं तत्र बद्ध्वा मुद्रां च धैनवीम्
अभिमंत्र्य घटान्हुत्वा पूर्णांतं च यथा पुरा ४
प्रवेश्य मंडले शिष्यमनुष्णीषं च देशिकः
तर्पणाद्यं तु मंत्राणां कुर्यात्पूर्वावसानकम् ५
ततः संपूज्य देवेशमनुज्ञाप्य च पूर्ववत्
अभिषेकाय तं शिष्यमासनं त्वधिरोहयेत् ६
सकलीकृत्य तं पश्चात्कलापंचकरूपिणम्
न्यस्तमंत्रतनुं बद्ध्वा शिवं शिष्यं समर्पयेत् ७
ततो निवृत्तिकुंभादिघटानुद्धृत्य वै क्रमात्
मध्यमान्ताच्छिवेनैव शिष्यं तमभिषेचयत् ८
शिवहस्तं समर्प्याथ शिशोः शिरसि देशिकः
शिवभावसमापन्नः शिवाचार्यं तमादिशेत् ९

अथालंकृत्य तं देवमाराध्य शिवमण्डले
शतमष्टोत्तरं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः १०
पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रणम्य भुवि दंडवत्
शिरस्यंजलिमाधाय शिवं विज्ञापयेद्गुरुः ११
भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः
अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम् १२
एवं विज्ञाप्य शिष्येण सह भूयः प्रणम्य च
शिवं शिवागमं दिव्यं पूजयेच्छिववद्गुरुः १३
पुनः शिवमनुज्ञाप्य शिवज्ञानस्य पुस्तकम्
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां दद्याच्छिष्याय देशिकः १४
स ताम्मूर्ध्नि समाधाय विद्यां विद्यासनोपरि
अधिरोप्य यथान्यायमभिवंद्य समर्चयेत् १५
अथ तस्मै गुरुर्दद्याद्राजोपकरणान्यपि
आचार्यपदवीं प्राप्तो राज्यं चापि यतोऽर्हति १६
अथानुशासनं कुर्यात्पूर्वैराचरितं यथा
यथा च शिवशास्त्रोक्तं यथा लोकेषु पूज्यते १७
शिष्यान्परिक्षिय यत्नेन शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः
संस्कृत्य च शिवज्ञानं तेभ्यो दद्याच्च देशिकः १८
एवं सर्वमनायासं शौचं क्षांतिं दयां तथा
अस्पृहामप्यसूयां च यत्नेन च विभावयेत् १९
इत्थमादिश्य तं शिष्यं शिवमुद्वास्य मंडलात्
शिवकुंभानलादींश्च सदस्यानपि पूजयेत् २०
युगपद्वाथ संस्कारान्कुर्वीत सगणो गुरुः
तत्र यत्र द्वयं वापि प्रयोगस्योपदिश्यते २१
तदादावेव कलशान्कल्पयेदध्वशुद्धिवत्

कृत्वा समयसंस्कारमभिषेकं विनाखिलम् २२
समभ्यर्च्य शिवं भूयः कृत्वा चाध्वविशोधनम्
तस्मिन्परिसमाप्ते तु पुनर्देवं प्रपूजयेत् २३
हुत्वा मंत्रन्तु संतर्प्य संदीप्याशास्य चेश्वरम्
समर्प्य मंत्रं शिष्यस्य पाणौ शेषं समापयेत् २४
अथवा मंत्रसंस्कारमनुचिंत्याखिलं क्रमात्
अध्वशुद्धिं गुरुः कुर्यादभिषेकावसानिकम् २५
तत्र यः शान्त्यतीतादिकलासु विहितो विधिः
स सर्वोऽपि विधातव्यस्तत्त्वत्रयविशोधने २६
शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमुदाहृतम्
शक्तौ शिवस्ततो विद्यात्तस्यास्त्वात्मा समुद्भवौ २७
शिवेन शांत्यतीताध्वा व्याप्तस्तदपरः परः
विद्यया परिशिष्टोऽध्वा ह्यात्मना निखिलः क्रमात् २८
दुर्लभं शांभवं मत्वा मंत्रमूलं मनीषिणः
शाक्तं शंसीत संस्कारं शिवशास्त्रार्थपारगाः २९
इति ते सर्वमाख्यातं संस्काराख्यस्य कर्मणः
चातुर्विध्यमिदं कृष्ण किं भूय श्रोतुमिच्छसि ३०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
विशेषादिसंस्कृतिर्नाम विंशोऽध्यायः २०

अध्याय २१

कृष्ण उवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम्
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा १
उपमन्युरुवाच

प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देवं सहाम्बया
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्गृहादभ्युदितेऽरुणे २
अबाधे विजने देशे कुर्यादावश्यकं ततः
कृत्वा शौचं विधानेन दंतधावनमाचरेत् ३
अलाभे दंतकाष्ठानामष्टम्यादिदिनेषु च
अपां द्वादशगण्डूषैः कुर्यादास्यविशोधनम् ४
आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत्
नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ गृहेऽपि वा ५
स्नानद्रव्याणि तत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम्
व्यापोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत् ६
स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वावाथ विशोध्य च
सुस्नातो नृपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च ७
मलस्नानं सुगंधाद्यैः स्नानं दन्तविशोधनम्
न कुर्याद्ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ८
सोपवीतश्शिखां बद्धा प्रविश्य च जलांतरम्
अवगाह्य समाचांतो जले न्यस्येत्त्रिमंडलम् ९
सौम्ये मग्नः पुनर्मंत्रं जपेच्छक्त्या शिवं स्मरेत्
उत्थायाचम्य तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत् १०
गोश्रृंगेण सदर्भेण पालाशेन दलेन वा
पाद्मेन वाथ पाणिभ्यां पंचकृत्वस्त्रिरेव वा ११
उद्यानादौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा
अवगाहनकालेऽद्भिर्मंत्रितैरभिषेचयेत् १२
अथ चेद्वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा
आर्द्रेण शोधयेद्देहमापादतलमस्तकम् १३
आग्नेयं वाथ वा मांत्रं कुर्यात्स्नानं शिवेन वा

शिवचिंतापरं स्नानं युक्तस्यात्मीयमुच्यते १४
स्वसूत्रोक्तविधानेन मंत्राचमनपूर्वकम्
आचरेद्ब्रह्मयज्ञांतं कृत्वा देवादितर्पणम् १५
मंडलस्थं महादेवं ध्यात्वाभ्यर्च्य यथाविधि
दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे १६
अथ वैतत्स्वसूत्रोक्तं कृत्वा हस्तौ विशोधयेत्
करन्यासं ततः कृत्वा सकलीकृतविग्रहः १७
वामहस्तगतांभोभिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः
कुशपुंजेन वाभ्युद्त्य मूलमंत्रसमन्वितैः १८
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः शेषमाघ्राय वै जलम्
वामनासापुटेनैव देवं संभावयेत्सितम् १९
अर्घमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम् २०
तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभिश्च विशेषतः
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि २१
रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम्
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम् २२
तत्र संपूजयेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह
स्वखोल्कायेति मंत्रेण सांगतस्सुखसिद्धये २३
पुनश्च मंडलं कृत्वा तदंगैः परिपूज्य च
तत्र स्थाप्य हेमपात्रं मागधप्रस्थसंमितम् २४
पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनयोगिना
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः २५
दूर्वापामार्गगव्यैश्च केवलेन जलेन वा
जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मंडले २६

कृत्वा शिरसि तत्पात्रं दद्यादर्घ्यं शिवाय तत्
अथवांजलिना तोयं सदर्भं मूलविद्यया २७
उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये
कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम् २८
बुद्ध्वेशानादिसद्यांतं पंचब्रह्ममयं शिवम्
गृहीत्वा भसितं मन्त्रैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् २९
या दिनांतैश्शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणान्क्रमात्
ततो मूलेन सर्वांगमालभ्य वसनान्तरम् ३०
परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः
जलैराच्छाद्य वासोऽयदि्द्वराचम्य शिवं स्मरेत् ३१
पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुंड्रं भस्मना लिखेत्
अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा ३२
वृत्तं वा चतुरस्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव वा
ललाटे यादृशं पुण्ड्रं लिखितं भस्मना पुनः ३३
तादृशं भुजयोर्मूर्ध्नि स्तनयोरंतरे लिखेत्
सर्वांगोद्धूलनं चैव न समानं त्रिपुण्ड्रकैः ३४
तस्मात्त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना
रुद्राक्षान्धारयेद्मूर्ध्नि कंठे श्रोते करे तथा ३५
सुवर्णवर्णमच्छिन्नं शुभं नान्यैर्धृतं शुभम्
विप्रादीनां क्रमाच्छ्रेष्ठं पीतं रक्तमथासितम् ३६
तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम्
तत्रापि नोत्तरं नीचैर्धार्यं नीचमथोत्तरैः ३७
नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत्
इत्थं त्रिसंध्यमथवा द्विसंध्यं सकृदेव वा ३८
कृत्वा स्नानादिकं शक्त्या पूजयेत्परमेश्वरम्

प्रजास्थानं समासाद्य बद्ध्वा रुचिरमासनम् ३९
ध्यायेद्देवं च देवीं च प्राग्मुखो वाप्युदग्मुखः
श्वेतादीन्नकुलीशांतांस्तच्छिष्यान्प्रणमेद्गुरुम् ४०
पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टकं जपेत्
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ४१
संसारवैद्यस्सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम्
अथवा शिवमेवैकं जपित्वैकादशाधिकम् ४२
जिह्वाग्रे तेजसो राशिं ध्यात्वाव्याध्यादिशांतये
प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चंदनचर्चितौ
प्रकुर्वीत करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ४३
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
नित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः २१

अध्याय २२

उपमन्युरुवाच
न्यासस्तु त्रिविधः प्रोक्तः स्थित्युत्पत्तिलयक्रमात्
स्थितिर्न्यासो गृहस्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् १
यतीनां संहृतिन्यासो वनस्थानां तथैव च
स एव भर्तृहीनायाः कुटुंबिन्याः स्थितिर्भवेत् २
कन्यायाः पुनरुत्पत्तिं वक्ष्ये न्यासस्य लक्षणम्
अंगुष्ठादिकनिष्ठांतं स्थितिन्यास उदाहृतः ३
दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामांगुष्ठान्तमेव च
उत्पत्तिन्यास आख्यातो विपरीतस्तु संहृतिः ४
सबिंदुकान्नकारादीन्वर्णान्नयस्येदनुक्रमात्
अंगुलीषु शिवं न्यस्येत्तलयोरप्यनामयोः ५

अस्त्रन्यासं ततः कृत्वा दशदिक्ष्वस्त्रमंत्रतः
निवृत्त्यादिकलाः पंच पंचभूतस्वरूपिणीः ६
पंचभूताधिपैस्सार्द्धं ततश्चिह्नसमन्विताः
हृत्कण्टतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमाश्रयाः ७
तद्तद्बीजेन संग्रंथीस्तद्तद्बीजेषु भावयेत्
तासां विशोधनार्थाय विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ८
निरुद्ध्वा प्राणवायुं च गुणसंख्यानुसारतः
भूतग्रंथिं ततश्छिद्यादस्त्रेणैवास्त्रमुद्रया ९
नाड्या सुषुम्नयात्मानं प्रेरितं प्राणवायुना
निर्गतं ब्रह्मरन्ध्रेण योजयेच्छिवतेजसा १०
विशोष्य वायुना पश्चाद्देहं कालाग्निना दहेत्
ततश्चोपरिभावेन कलास्संहृत्य वायुना ११
देहं संहृत्य वै दग्धं कलास्स्पृष्ट्वा सहाब्धिना
प्लावयित्वामृतैर्देहं यथास्थानं निवेशयेत् १२
अथ संहृत्य वै दग्धः कलासर्गं विनैव तु
अमृतप्लावनं कुर्याद्भस्मीभूतस्य वै ततः १३
ततो विद्यामये तस्मिन्देहे दीपशिखाकृतिम्
शिवान्निर्गतमात्मानं ब्रह्मरंध्रेण योजयेत् १४
देहस्यान्तः प्रविष्टं तं ध्यात्वा हृदयपंकजे
पुनश्चामृतवर्षेण सिंचेद्विद्यामयं वपुः १५
ततः कुर्यात्करन्यासं करशोधनपूर्वकम्
देहन्यासं ततः पश्चान्महत्या मुद्रया चरेत् १६
अंगन्यासं ततः कृत्वा शिवोक्तेन तु वर्त्मना
वर्णन्यासं ततः कुर्य्याद्धस्तपादादिसंधिषु १७
षडंगानि ततो न्यस्य जातिषट्कयुतानि च

दिग्बंधमाचरेत्पश्चादाग्नेयादि यथाक्रमम् १८
यद्वा मूर्द्धादिपंचांगं न्यासमेव समाचरेत्
तथा षडंगन्यासं च भूतशुद्ध्यादिकं विना १९
एवं समासरूपेण कृत्वा देहात्मशोधनम्
शिवभावमुपागम्य पूजयेत्परमेश्वरम् २०
अथ यस्यास्त्यवसरो नास्ति वा मतिविभ्रमः
स विस्तीर्णेन कल्पेन न्यासकर्म समाचरेत् २१
तत्राद्यो मातृकान्यासो ब्रह्मन्यासस्ततः परः
तृतीयः प्रणवन्यासो हंसन्यासस्तदुत्तरः २२
पंचमः कथ्यते सद्भिर्न्यासः पंचाक्षरात्मकः
एतेष्वेकमनेकं वा कुर्यात्पूजादि कर्मसु २३
अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य आकारं च ललाटके
इं ईं च नेत्रयोस्तद्वत् उं ऊं श्रवणयोस्तथा २४
ऋं ॠ- कपोलयोश्चैव ऌं ॡं नासापुटद्वये
एमेमोष्ठद्वयोरोमौं दंतपंक्तिद्वयोः क्रमात् २५
अं जिह्वायामथो तालुन्यः प्रयोज्यो यथाक्रमम्
कवर्गं दक्षिणे हस्ते न्यसेत्पंचसु संधिषु २६
चवर्गं च तथा वामहस्तसंधिषु विन्यसेत्
टवर्गं च तवर्गं च पादयोरुभयोरपि २७
पफौ तु पार्श्वयोः पृष्ठे नाभौ चापि बभौ ततः
न्यसेन्मकारं हृदये त्वगादिषु यथाक्रमम् २८
यकरादिसकारांतान्न्यसेत्सप्तसु धातुषु
हंकारं हृदयस्यांतः क्षकारं भ्रूयुगांतरे २९
एवं वर्णान्प्रविन्यस्य पञ्चाशद्रुद्रवर्त्मना
अंगवक्त्रकलाभेदात्पंच ब्रह्माणि विन्यसेत् ३०

करन्यासाद्यमपि तैः कृत्वा वाथ न वा क्रमात्
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि कल्पयेत् ३१
ततश्चोर्द्ध्वादिवक्त्राणि पश्चिमांतानि कल्पयेत्
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात् ३२
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ३३
हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः ३४
पश्चात्त्रयोःदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु
जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत् ३५
घ्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः
अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वानुपूर्वशः ३६
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत्
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः ३७
पार्श्वोदरोरुजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा
इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ३८
हंसन्यासं प्रकुर्वीत शिवशास्त्रे यथोदितम्
बीजं विभज्य हंसस्य नेत्रयोर्घ्राणयोरपि ३९
विभज्य बाहुनेत्रास्यललाटे घ्राणयोरपि
कक्षयोः स्कन्धयोश्चैव पार्श्वयोस्तनयोस्तथा ४०
कठ्योः पाणयोर्गुल्फयोश्च यद्वा पंचांगवर्त्मना
हंसन्यासमिमं कृत्वा न्यसेत्पञ्चाक्षरीं ततः ४१
यथा पूर्वोक्तमार्गेण शिवत्वं येन जायते
नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत् ४२
नाशिवस्तु शिवं ध्यायेन्नाशिवम्प्राप्नुयाच्छिवम्

तस्माच्छैवीं तनुं कृत्वा त्यक्त्वा च पशुभावनाम् ४३
शिवोऽहमिति संचिन्त्य शैवं कर्म समाचरेत्
कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तदुत्तरः
ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ४४
कर्मयज्ञरताः केचित्तपोयज्ञरताः परे
जपयज्ञरताश्चान्ये ध्यानयज्ञरतास्तथा ४५
ज्ञानयज्ञरताश्चान्ये विशिष्टाश्चोत्तरोत्तरम्
क्रमयज्ञो द्विधा प्रोक्तः कामाकामविभेदतः ४६
कामान्कामी ततो भुक्त्वा कामासक्तः पुनर्भवेत्
अकामे रुद्रभवने भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ४७
तपोयज्ञरतो भूत्वा जायते नात्र संशयः
तपस्वी च पुनस्तस्मिन्भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युतः ४८
जपध्यानरतो भूत्वा जायते भुवि मानवः
जपध्यानरतो मर्त्यस्तद्वैशिष्ट्यवशादिह ४९
ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव शिवसायुज्यमाप्नुयात्
तस्मान्मुक्तो शिवाज्ञप्तः कर्मयज्ञोऽपि देहिनाम् ५०
अकामः कामसंयुक्तो बन्धायैव भविष्यति
तस्मात्पञ्चसु यज्ञेषु ध्यानज्ञानपरो भवेत् ५१
ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः
हिंसादिदोषनिर्मुक्तो विशुद्धश्चित्तसाधनः ५२
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः
बहिः कर्मकरा यद्वन्नातीव फलभागिनः ५३
दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः
ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ५४
यथेह कर्मिणां स्थूलं मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्

ध्यानयज्ञरतास्तस्माद्देवान्पाषाणमृण्मयान् ५५
नात्यंतं प्रतिपद्यंते शिवयाथात्म्यवेदनात्
आत्मस्थं यः शिवं त्यक्त्वा बहिरभ्यर्चयेन्नरः ५६
हस्तस्थं फलमुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः
ज्ञानाद्ध्यानं भवेद्ध्यानाज्ज्ञानं भूयः प्रवर्तते ५७
तदुभाभ्यां भवेन्मुक्तिस्तस्माद्ध्यानरतो भवेत्
द्वादशान्ते तथा मूर्ध्नि ललाटे भ्रूयुगान्तरे ५८
नासाग्रे वा तथास्ये वा कन्धरे हृदये तथा
नाभौ वा शाश्वतस्थाने श्रद्धाविद्धेन चेतसा ५९
बहिर्यागोपचारेण देवं देवीं च पूजयेत्
अथवा पूजयेन्नित्यं लिंगे वा कृतकेपि वा ६०
वह्नौ वा स्थण्डिले वाथ भक्त्या वित्तानुसारतः
अथवांतर्बहिश्चैव पूजयेत्परमेश्वरम्
अंतर्यागरतः पूजां बहिः कुर्वीत वा न वा ६१
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवशास्त्रोक्तनित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः २२

अध्याय २३

उपमन्युरुवाच
व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः
शिवशास्त्रे शिवेनैव शिवायै कथितस्य तु १
अंगमभ्यंतरं यागमग्निकार्यावसानकम्
विधाय वा न वा पश्चाद्बहिर्यागं समाचरेत् २
तत्र द्रव्याणि मनसा कल्पयित्वा विशोध्य च
ध्यात्वा विनायकं देवं पूजयित्वा विधानतः ३

दक्षिणे चोत्तरे चैव नंदीशं सुयशं तथा
आराध्य मनसा सम्यगासनं कल्पयेद्बुधः ४
आराधनादिकैर्युक्तस्सिंहयोगासनादिकम्
पद्मासनं वा विमलं तत्त्वत्रयसमन्वितम् ५
तस्योपरि शिवं ध्यायेत्सांबं सर्वमनोहरम्
सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वावयवशोभनम् ६
सर्वातिशयसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्
रक्तास्यपाणिचरणं कुंदचंद्रस्मिताननम् ७
शुद्धस्फटिकसंकाशं फुल्लपद्मत्रिलोचनम्
चतुर्भुजमुदाराङ्गं चारुचंद्रकलाधरम् ८
वरदाभयहस्तं च मृगटंकधरं हरम्
भुजंगहारवलयं चारुनीलगलांतरम् ९
सर्वोपमानरहितं सानुगं सपरिच्छदम्
ततः संचिंतयेत्तस्य वामभागे महेश्वरीम् १०
प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम्
पूर्णचंद्राभवदनां नीलकुंचितमूर्धजाम् ११
नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्
अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् १२
तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मवराम्बराम्
सर्वाभरणसंपन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् १३
विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम्
सर्वतोऽनुगुणाकारां किंचिल्लज्ञानताननाम् १४
हेमारविंदं विलसद्दधानां दक्षिणे करे
दंडवच्चापरं हस्ते न्यस्यासीनां महासने १५
पाशविच्छेदिकां साक्षात्सच्चिदानंदरूपिणीम्

एवं देवं च देवीं च ध्यात्वासनवरे शुभे १६
सर्वोपचारवद्भक्त्या भावपुष्पैस्समर्चयेत्
अथवा परिकल्प्यैवं मूर्तिमन्यतमां विभोः १७
शैवीं सदाशिवाख्यां वा तथा माहेश्वरीं पराम्
षड्विंशकाभिधानां वा श्रीकंठाख्यामथापि वा १८
मन्त्रन्यासादिकां चापि कृत्वा स्वस्यां तनौ यथा
अस्यां मूर्तौ मूर्तिमंतं शिवं सदसतः परम् १९
ध्यात्वा बाह्यक्रमेणैव पूजां निर्वर्त्तयेद्धिया
समिदाज्यादिभिः पश्चान्नाभौ होमं च भावयेत् २०
भ्रूमध्ये च शिवं ध्यायेच्छुद्धदीपशिखाकृतिम्
इत्थमंगे स्वतंत्रे वा योगे ध्यानमये शुभे २१
अग्निकार्य्यावसानं च सर्वत्रैव समो विधिः
अथ चिंतामयं सर्वं समाप्याराधनक्रमम् २२
लिंगे च पूजयेद्देवं स्थंडिले वानलेऽपि वा

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
पूजाविधानव्याख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः २३

अध्याय २४

उपमन्युरुवाच
प्रोक्षयेन्मूलमंत्रेण पूजास्थानं विशुद्धये
गन्धचन्दनतोयेन पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत् १
अस्त्रेणोत्सार्य वै विघ्नानवगुण्ठ्य च वर्मणा
अस्त्रं दिक्षु प्रविन्यस्य कल्पयेदर्चनाभुवम् २
तत्र दर्भान्परिस्तीर्य क्षालयेत्प्रोक्षणादिभिः
संशोध्य सर्वपात्राणि द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ३

प्रोक्षणीमर्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमतः परम्
तथैवाचमनीयस्य पात्रं चेति चतुष्टयम् ४
प्रक्षाल्य प्रोक्ष्य वीक्ष्याथ क्षिपेत्तेषु जलं शिवम्
पुण्यद्रव्याणि सर्वाणि यथालाभं विनिक्षिपेत् ५
रत्नानि रजतं हेम गन्धपुष्पाक्षतादयः
फलपल्लवदर्भांश्च पुण्यद्रव्याण्यनेकधा ६
स्नानोदके सुगन्धादि पानीये च विशेषतः
शीतलानि मनोज्ञानी कुसुमादीनि निक्षिपेत् ७
उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्
जातिकंकोलकर्पूरबहुमूलतमालकान् ८
क्षिपेदाचमनीये च चूर्णयित्वा विशेषतः
एलां पात्रेषु सर्वेषु कर्पूरं चन्दनं तथा ९
कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितञ्चार्घ्यपात्रके १०
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकान्
प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं च यथाक्रमम् ११
सर्वत्र मन्त्रं विन्यस्य वर्मणावेष्ट्य बाह्यतः
पश्चादस्त्रेण संरक्ष्य धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् १२
पूजाद्रव्याणि सर्वाणि प्रोक्षणीपात्रवारिणा
सम्प्रोक्ष्य मूलमंत्रेण शोधयेद्विधिवत्ततः १३
पात्राणां प्रोक्षणीमेकामलाभे सर्वकर्मसु
साधयेदर्घ्यमद्भिस्तत्सामान्यं साधकोत्तमः १४
ततो विनायकं देवं भक्ष्यभोज्यादिभिः क्रमात्
पूजयित्वा विधानेन द्वारपार्श्वेऽथ दक्षिणे १५
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत्

चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् १६
बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम्
दीप्तशूलमृगीटंकतिग्मवेत्रधरं प्रभुम् १७
चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा
उत्तरे द्वारपार्श्वस्य भार्य्यां च मरुतां सुताम् १८
सुयशां सुव्रतामम्बां पादमण्डनतत्पराम्
पूजयित्वा प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः १९
संपूज्य लिण्गं तैर्द्रव्यैर्निर्माल्यमपनोदयेत्
प्रक्षाल्य पुष्पं शिरसि न्यसेत्तस्य विशुद्धये २०
पुष्पहस्तो जपेच्छक्त्या मन्त्रं मन्त्रविशुद्धये
ऐशान्यां चण्दमाराध्य निर्माल्यं तस्य दापयेत् २१
कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम्
आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि २२
तस्याः पुरस्तादुत्कंठमनंतं कुण्डलाकृतिम्
धवलं पंचफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम् २३
तस्योपर्यासनं भद्रं कण्ठीरवचतुष्पदम्
धर्म्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यञ्च पदानि वै २४
आग्नेयादिश्वेतरक्तपीतश्यामानि वर्णतः
अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात् २५
राजावर्तमणिप्रख्यान्नयस्य गात्राणि भावयेत्
अस्योर्ध्वच्छादनं पद्ममासनं विमलं सितम् २६
अष्टपत्राणि तस्याहुरणिमादिगुणाष्टकम्
केसराणि च वामाद्या रुद्रावामादिशक्तिभिः २७
बीजान्यपि च ता एव शक्तयोंतर्मनोन्मनीः
कर्णिकापरवैराग्यं नालं ज्ञानं शिवात्मकम् २८

यश्च शिवधर्मात्मा कर्णिकान्ते त्रिमण्डले
त्रिमण्डलोपर्यात्मादि तत्त्वत्रितयमासनम् २९
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रास्तरणास्तृतम्
आसनं कल्पयेद्दिव्यं शुद्धविद्यासमुज्ज्वलम् ३०
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम्
नमस्कारं च कुर्वीत बध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ३१
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पं ततः परम्
धूपं दीपं च तांबूलं दत्त्वाथ स्वापयेच्छिवौ ३२
अथवा परिकल्प्यैवमासनं मूर्तिमेव च
सकलीकृत्य मूलेन ब्रह्माभिश्चापरैस्तथा ३३
आवाहयेत्ततो देव्या शिवं परमकारणम्
शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निश्चलमक्षरम् ३४
कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम्
अंतर्बहिःस्थितं व्याप्य ह्यणोरणु १ महत्तरम् २ ३५
भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम्
ब्रह्मेंद्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ३६
देवसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम्
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ३७
शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवार्थं जगति स्थिरम्
पंचोपचारवद्भक्त्या पूजयेल्लिंगमुत्तमम् ३८
लिंगमूर्त्तिर्महेशस्य शिवस्य परमात्मनः
स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमंगलम् ३९
पञ्चगव्यघृतक्षीरदधिमध्वादिपूर्वकैः
मूलैः फलानां सारैश्च तिलसर्षपसक्तुभिः ४०
बीजैर्यवादिभिश्शस्तैश्चूर्णैर्माषादिसंभवैः

संस्नाप्यालिप्य पिष्टाद्यैः स्नापयेदुष्णवारिभिः ४१
घर्षयेद्बिल्वपत्राद्यैर्लेपगंधापनुत्तये
पुनः संस्नाप्य सलिलैश्चक्रवर्त्त्युपचारतः ४२
सुगंधामलकं दद्याद्धरिद्रां च यथाक्रमम्
ततः संशोध्य सलिलैर्लिंगं बेरमथापि वा ४३
स्नापयेद्गंधतोयेन कुशपुष्पोदकेन च
हिरण्यरत्नतोयैश्च मंत्रसिद्धैर्यथाक्रमम् ४४
असंभवे तु द्रव्याणां यथासंभवसंभृतैः
केवलैर्मंत्रतोयैर्वा स्नापयेच्छ्रद्धया शिवम् ४५
कलशेनाथ शंखेन वर्द्धन्या पाणिना तथा
सकुशेन सपुष्पेण स्नापयेन्मंत्रपूर्वकम् ४६
पवमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च
लिंगसूक्तादिसूक्तैश्च शिरसाथर्वणेन च ४७
ऋग्भिश्च सामभिः शैवैर्ब्रह्मभिश्चापि पंचभिः
स्नापयेद्देवदेवेशं शिवेन प्रणवेन च ४८
यथा देवस्य देव्याश्च कुर्यात्स्नानादिकं तथा
न तु कश्चिद्विशेषोऽस्ति तत्र तौ सदृशौ यतः ४९
प्रथमं देवमुद्दिश्य कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः
देव्यैः प्रश्चात्प्रकुर्वीत देवदेवस्य शासनात् ५०
अर्द्धनारीश्वरे पूज्ये पौर्वापर्यं न विद्यते
तत्र तत्रोपचाराणां लिंगे वान्यत्र वा क्वचित् ५१
कृत्वाऽभिषेकं लिंगस्य शुचिना च सुगंधिना
संमृज्य वाससा दद्यादंबरं चोपवीतकम् ५२
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पं च भूषणम्
धूपं दीपं च नैवेद्यं पानीयं मुखशोधनम् ५३

पुनश्चाचमनीयं च मुखवासं ततः परम्
मुकुटं च शुभं भद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम् ५४
भूषणानि पवित्राणि माल्यानि विविधानि च
व्यजने चामरे छत्रं तालवृंतं च दर्पणम् ५५
दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्सर्वमंगलनिस्वनैः
गीतनृत्यादिभिश्चैव जयशब्दसमन्वितः ५६
हैमे च राजते ताम्रे पात्रे वा मृन्मये शुभे
पद्मकैश्शोभितैः पुष्पैर्बीजैर्दध्यक्षतादिभिः ५७
त्रिशूलशंखयुग्माब्जनन्द्यावर्तैः करीषजैः
श्रीवत्सस्वस्तिकादर्शवज्रैर्वह्न्यादिचिह्नितैः ५८
अष्टौ प्रदीपान्परितो विधायैकं तु मध्यमे
तेषु वामादिकाश्चिन्त्याः पूज्याश्च नव शक्तयः ५९
कवचेन समाच्छाद्य संरक्ष्यास्त्रेण सर्वतः
धेनुमुद्रां च संदर्श्य पाणिभ्यां पात्रमुद्धरेत् ६०
अथवारोपयेत्पात्रे पंचदीपान्यथाक्रमम्
विदिक्ष्वपि च मध्ये च दीपमेकमथापि वा ६१
ततस्तत्पात्रमुद्धृत्य लिंगादेरुपरि क्रमात्
त्रिः प्रदक्षिणयोगेन भ्रामयेन्मूलविद्यया ६२
दद्यादर्घ्यं ततो मूर्ध्नि भसितं च सुगंधितम्
कृत्वा पुष्पांजलिं पश्चादुपहारान्निवेदयेत् ६३
पानीयं च ततो दद्याद्दत्त्वा वाचमनं पुनः
पंचसौगंधिकोपेतं ताम्बूलं च निवेदयेत् ६४
प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीयानि गाननाट्यानि कारयेत्
लिंगादौ शिवयोश्चिन्तां कृत्वा शक्त्यजपेच्छिवम् ६५
प्रदक्षिणं प्रणामं च स्तवं चात्मसमर्पणम्

विज्ञापनं च कार्याणां कुर्याद्विनयपूर्वकम् ६६
अर्घ्यं पुष्पांजलिं दत्त्वा बद्ध्वा मुद्रां यथाविधि
पश्चात्क्षमापयेद्देवमुद्वास्यात्मनि चिंतयेत् ६७
पाद्यादिमुखवासांतमर्घ्याद्यं चातिसंकटे
पुष्पविक्षेपमात्रं वा कुर्याद्भावपुरस्सरम् ६८
तावतैव परो धर्मो भावने सुकृतो भवेत्
असंपूज्य न भुञ्जीत शिवमाप्राणसंचरात् ६९
यदि पापस्तु भुंजीत स्वैरं तय्स न निष्कृतिः
प्रमादेन तु भुंक्ते चेत्तदुद्गीर्य प्रयत्नतः ७०
स्नात्वा द्विगुणमभ्यर्च्य देवं देवीमुपोष्य च
शिवस्यायुतमभ्यस्येद्ब्रह्मचर्यपुरस्सरम् ७१
परेद्युश्शक्तितो दत्त्वा सुवर्णाद्यं शिवाय च
शिवभक्ताय वा कृत्वा महापूजां शुचिर्भवेत् ७२
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शास्त्रोक्तशिवपूजनवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः २४

अध्याय २५

उपमन्युरुवाच
अनुक्तं चात्र पूजायाः कमलोपभयादिव
यत्तदन्यत्प्रवक्ष्यामि समासान्न तु विस्तरात् १
हविर्निवेदनात्पूर्वं दीपदानादनन्तरम्
कुर्यादावरणाभ्यर्चां प्राप्ते नीराजनेऽथ वा २
तत्रेशानादिसद्यांतं रुद्राद्यस्त्रांतमेव च
शिवस्य वा शिवायाश्च प्रथमावरणे जपेत् ३
ऐशान्यां पूर्वभागे च दक्षिणे चोत्तरे तथा

पश्चिमे च तथाग्नेय्यामैशान्यां नैर्ऋते तथा ४
वायव्यां पुनरैशान्यां चतुर्दिक्षु ततः परम्
गर्भावरणमाख्यातं मन्त्रसंघातमेव वा ५
हृदयाद्यस्त्रपर्यंतमथवापि समर्चयेत्
तद्बहिः पूर्वतः शक्रं यमं दक्षिणतो यजेत् ६
वरुणं वारुणे भागे धनदं चोत्तरे बुधः
ईशमैशेऽनलं स्वीये नैर्ऋते निर्ऋतिं यजेत् ७
मारुते मारुतं विष्णुं नैर्ऋते विधिमैश्वरे
बहिःपद्मस्य वज्राद्यान्यब्जांतान्यायुधान्यपि ८
प्रसिद्धरूपाण्याशासु लोकेशानां क्रमाद्यजेत्
देवं देवीं च संप्रेक्ष्य सर्वावरणदेवताः ९
बद्धांजलिपुटा ध्येयाः समासीना यथासुखम्
सर्वावरणदेवानां स्वाभिधानैर्नमोयुतैः १०
पुष्पैः संपूजनं कुर्यान्नत्वा सर्वान्यथाक्रमम्
गर्भावरणमेवापि यजेत्स्वावरणेन वा ११
योगे ध्याने जपे होमे वाह्ये वाभ्यंतरेऽपि वा
हविश्च षड्विधं देयं शुद्धं मुद्गान्नमेव च १२
पायसं दधिसंमिश्रं गौडं च मधुनाप्लुतम्
एतेष्वेकमनेकं वा नानाव्यंजनसंयुतम् १३
गुडखंडन्वितं दद्यान्मथितं दधि चोत्तमम्
भक्ष्याण्यपूपमुख्यानि स्वादुमंति फलानि च १४
रक्तचन्दनपुष्पाढ्यं पानीयं चातिशीतलम्
मृदु एलारसाक्तं च खण्डं पूगफलस्य च १५
दलानि नागवल्ल्याश्च युक्तानि खदिरादिभिः
गौराणि स्वर्णवर्णानि विहितानि शिवानि च

शैलमेव सितं चूर्णं नातिरूक्षं न दूषितम् १६
कर्पूरं चाथ कंकोलं जात्यादि च नवं शुभम्
आलेपनं चन्दनं स्यान्मूलकाष्ठंरजोमयम् १७
कस्तूरिका कुंकुमं च रसो मृगमदात्मकः
पुष्पाणि सुरभीण्येव पवित्राणि शुभानि च १८
निर्गंधान्युग्रगंधानि दूषितान्युषितानि च
स्वयमेव विशीर्णानि न देयानि शिवार्चने १९
वासांसि च मृदून्येव तपनीयमयानि च
विद्युद्वलयकल्पानि भूषणानि विशेषतः २०
सर्वाण्येतानि कर्पूरनिर्यासागुरुचन्दनैः
आधूपितानि पुष्पौघैर्वासितानि समंततः २१
चन्दनागुरुकर्पूरकाष्ठगुग्गुलुचूर्णिकैः
घृतेन मधुना चैव सिद्धो धूपः प्रशस्यते २२
कपिलासम्भवेनैव घृतेनातिसुगन्धिना
नित्यं प्रदीपिता दीपाः शस्ताः कर्पूरसंयुताः २३
पञ्चगव्यं च मधुरं पयो दधि घृतं तथा
कपिलासम्भवं शम्भोरिष्टं स्नाने च पानके २४
आसनानि च भद्राणि गजदंतमयानि च
सुवर्णरत्नयुक्तानि चित्राण्यास्तरणानि च २५
मृदूपधानयुक्तानि सूक्ष्मतूलमयानि च
उच्चावचानि रम्याणि शयनानि सुखानि च २६
नद्यस्समुद्रगामिन्या नटाद्वाम्भः समाहृतम्
शीतञ्च वस्त्रपूतं तद्विशिष्टं स्नानपानयोः २७
छत्रं शशिनिभं चारु मुक्तादामविराजितम्
नवरत्नचितं दिव्यं हेमदण्डमनोहरम् २८

चामरे च सिते सूक्ष्मे चामीकरपरिष्कृते
राजहंसद्वयाकारे रत्नदंडोपशोभिते २९
दर्पणं चापि सुस्निग्धं दिव्यगन्धानुलेपनम्
समंताद्रत्नसञ्छन्नं स्रग्वैरैश्चापि भूषितम् ३०
गम्भीरनिनदः शंखो हंसकुंदेन्दुसन्निभः
आस्वपृष्ठादिदेशेषु रत्नचामीकराचितः ३१
काहलानि च रम्याणि नानानादकराणि च
सुवर्णनिर्मितान्येव मौक्तिकालंकृतानि च ३२
भेरीमृदंगमुरजतिमिच्छपटहादयः
समुद्रकल्पसन्नादाः कल्पनीयाः प्रयत्नतः ३३
भांडान्यपि च रम्याणि पत्राण्यपि च कृत्स्नशः
तदाधाराणि १ सर्वाणि सौवर्णान्येव साधयेत् ३४
आलयं च महेशस्य शिवस्य परमात्मनः
राजावसथवत्कल्प्यं शिल्पशास्त्रोक्तलक्षणम् ३५
उच्चप्राकारसंभिन्नं भूधराकारगोपुरम्
अनेकरत्नसंच्छन्नं हेमद्वारकपाटकम् ३६
तप्तजांबूनदमयं रत्नस्तम्भशतावृतम्
मुक्तादामवितानाढ्यं विद्रुमद्वारतोरणम् ३७
चामीकरमयैर्दिव्यैर्मुकुटैः कुम्भलक्षणैः
अलंकृतशिरोभागमस्त्र २राजेन चिह्नितम् ३८
राजन्यार्हनिवासैश्च राजवीथ्यादिशोभितैः
प्रोच्छ्रितप्रांशुशिखरैः प्रासादैश्च समंततः ३९
आस्थानस्थानवर्यैश्च स्थितैर्दिक्षु विदिक्षु च
अत्यन्तालंकृतप्रांतमंतरावरणैरिव ४०
उत्तमस्त्रीसहस्रैश्च नृत्यगेयविशारदैः

वेणुवीणाविदग्धैश्च पुरुषैर्बहुभिर्युतम् ४१
रक्षितं रक्षिभिर्वीरैर्गजवाजिरथान्वितैः
अनेकपुष्पवाटीभिरनेकैश्च सरोवरैः ४२
दीर्घिकाभिरनेकाभिर्दिग्विदिक्षु विराजितम्
वेदवेदांततत्त्वज्ञैश्शिवशास्त्रपरायणैः ४३
शिवाश्रमरतैर्भक्तैः शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः
शांतैः स्मितमुखैः स्फीतैः सदाचारपरायणैः ४४
शैवैर्माहेश्वरैश्चैव श्रीमद्भिस्सेवितद्विजैः
एवमंतर्बहिर्वाथयथाशक्तिविनिर्मितैः ४५
स्थाने शिलामये दांते दारवे चेष्टकामये
केवलं मृन्मये वापि पुण्यारण्येऽथ वा गिरौ ४६
नद्यां देवालयेऽन्यत्र देशे वाथ गृहे शुभे
आढ्यो वाथ दरिद्रो वा स्वकां शक्तिमवंचयन्
द्रव्यैर्न्यायार्जितैरेव भक्त्या देवं समर्च्चयेत् ४७
अथान्यायार्ज्जितैश्चापि भक्त्या चेच्छिवमर्च्चयेत्
न तस्य प्रत्यवायोऽस्ति भाववश्यो यतः प्रभुः ४८
न्यायार्जितैरपि द्रव्यैरभक्त्या पूजयेद्यदि
न तत्फलमवाप्नोति भक्तिरेवात्र कारणम् ४९
भक्त्या वित्तानुसारेण शिवमुद्दिश्य यत्कृतम्
अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ५०
भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोपि मानवः
महाविभवसारोपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः ५१
सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः
न तेन फलभाक्स स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम् ५२
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः

गच्छेच्छिवपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिं शिवात्मकम् ५३
गुह्याद्गुह्यतरं कृष्ण सर्वत्र परमेश्वरे
शिवे भक्तिर्न संदेहस्तया भक्तो विमुच्यते ५४
शिवमंत्रजपो ध्यानं होमो यज्ञस्तपःश्रुतम्
दानमध्ययनं सर्वं भावार्थं नात्र संशयः ५५
भावहीनो नरस्सर्वं कृत्वापि न विमुच्यते
भावयुक्तः पुनस्सर्वमकृत्वापि विमुच्यते ५६
चांद्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा
मासोपवासैश्चान्यैश्च शिवभक्तस्य किं पुनः ५७
अभक्ता मानवाश्चास्मिंल्लोके गिरिगुहासु च
तपंति चाल्पभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते ५८
सात्त्विकं मुक्तिदं कर्म सत्त्वे वै योगिनः स्थिताः
राजसं सिद्धिदं कुर्युः कर्मिणो रजसावृताः ५९
असुरा राक्षसाश्चैव तमोगुणसमन्विताः
ऐहिकार्थं यजन्तीशं नराश्चान्येऽपि तादृशाः ६०
तामसं राजसं वापि सात्त्विकं भावमेव च
आश्रित्य भक्त्या पूजाद्यं कुर्वन्भद्रं समश्नुते ६१
यतः पापार्णवात्त्रातुं भक्तिर्नौरिव निर्मिता
तस्माद्भक्त्युपपन्नस्य रजसा तमसा च किम् ६२
अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा
शिवं प्रपन्नश्चेत्कृष्ण पूज्यस्सर्वसुरासुरैः ६३
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्यैव शिवमर्चयेत्
अभुक्तानां क्वचिदपि फलं नास्ति यतस्ततः ६४
वक्ष्याम्यतिरहस्यं ते शृणु कृष्ण वचो मम
वेदैश्शास्त्रैर्वेदविद्भिर्विचार्य सुविनिश्चितम् ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवशास्त्रोक्तपूजनवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः २५

अध्याय २६

उपमन्युरुवाच
ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्तेयीवा गुरुतल्पगः
मातृहा पितृहा वापि वीरहा भ्रूणहापि वा १
संपूज्यामन्त्रकं भक्त्या शिवं परमकारणम्
तैस्तैः पापैः प्रमुच्येत वर्षैर्द्वादशभिः क्रमात् २
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पतितोऽपि यजेच्छिवम्
भक्तश्चेन्नापरः कश्चिद्भिक्षाहारो जितेंद्रियः ३
कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या पंचाक्षरेण तु
पूजयेद्यदि देवेशं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ४
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः ५
भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्
सोपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमन्त्रस्य गौरवात् ६
तस्मात्तपांसि यज्ञांश्च सर्वे सर्वस्वदक्षिणाः
शिवमूर्त्यर्चनस्यैते कोटयंशेनापि नो समाः ७
बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पश्चात्पञ्चाक्षरेण चेत्
पूजयन्मुच्यते भक्तो नात्र कार्या विचारणा ८
अरुद्रो वा सरुद्रो वा सूक्तेन शिवमर्चयेत्
यः सकृत्पतितो वापिमूढो वा मुच्यते नरः ९
षडक्षरेण वा देवं सूक्तमन्त्रेण पूजयेत्
शिवभक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव च १०

अलब्धाल्लब्ध एवात्र विशिष्टो नात्र संशयः
स ब्रह्मांगेन वा तेन सहंसेन विमुच्यते ११
तस्मान्नित्यं शिवं भक्त्या सूक्तमन्त्रेण पूजयेत्
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा १२
येऽर्चयंति महादेवं विज्ञेयास्ते महेश्वराः
ज्ञानेनात्मसहायेन नार्चितो भगवाञ्छिवः १३
स चिरं संसरत्यस्मिन्संसारे दुःखसागरे
दुर्ल्लभं प्राप्य मानुष्यं मूढो नार्चयते शिवम् १४
निष्फलं तस्य तज्जन्म मोक्षाय न भवेद्यतः
दुर्ल्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम् १५
तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः १६
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः
भवनानि मनोज्ञानि विभ्रमाभरणाः स्त्रियः १७
धनं चातृप्तिपर्य्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम्
ये वाञ्छन्ति महाभोगान्राज्यं च त्रिदशालये १८
ते वाञ्छन्ति सदाकालं हरस्य चरणाम्बुजम्
सौभाग्यं कान्तिमद्रूपं सत्त्वं त्यागार्द्रभावता १९
शौर्यं वै जगति ख्यातिश्शिवमर्चयतो भवेत्
तस्मात्सर्वं परित्यज्य शिवैकाहितमानसः २०
शिवपूजाविधिं कुर्याद्यदीच्छेच्छिवमात्मनः
त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम् २१
त्वरितं व्याधिरभ्येति तस्मात्पूज्यः पिनाकधृक्
यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा २२
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शंकरम्

न शिवार्चनतुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये २३
इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयस्सदाशिवः
द्वारयागं जवनिकां परिवारबलिक्रियाम् २४
नित्योत्सवं च कुर्वीत प्रसादे यदि पूजयेत्
हविर्निवेदनादूर्द्ध्वं स्वयं चानुचरोऽपि वा २५
प्रसादपरिवारेभ्यो बलिं दद्याद्यथाक्रमम्
निर्गम्य सह वादित्रैस्तदाशाभिमुखः स्थितः २६
पुष्पं धूपं च दीपञ्च दद्यादन्नं जलैः सह
ततो दद्यान्महापीठे तिष्ठन्बलिमुदग्मुखः २७
ततो निवेदितं देवे यत्तदन्नादिकं पुरा
तत्सर्वं सावशेषं वा चण्डाय विनिवेदयेत् २८
हुत्वा च विधिवत्पश्चात्पूजाशेषं समापयेत्
कृत्वा प्रयोगं विधिवद्यावन्मन्त्रं जपं ततः २९
नित्योत्सवं प्रकुर्वीत यथोक्तं शिवशासने
विपुले तैजसे पात्रे रक्तपद्मोपशोभिते ३०
अस्त्रं पाशुपतं दिव्यं तत्रावाह्य समर्चयेत्
शिवस्यारोप्यः तत्पात्रं द्विजस्यालंकृतस्य च ३१
न्यस्तास्त्रवपुषा तेन दीप्तयष्टिधरस्य च
प्रासादपरिवारेभ्यो बहिर्मंगलनिःस्वनैः ३२
नृत्यगेयादिभिश्चैव सह दीपध्वजादिभिः
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा न द्रुतं चाविलम्बितम् ३३
महापीठं समावृत्य त्रिःप्रदक्षिणयोगतः
पुनः प्रविष्टो द्वारस्थो यजमानः कृताञ्जलिः
आदायाभ्यंतरं नीत्वा ह्यस्त्रमुद्वासयेत् ततः ३४
प्रदक्षिणादिकं कृत्वा यथापूर्वोदितं क्रमात्

आदाय चाष्टपुष्पाणि पूजामथ समापयेत् ३५
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
सांगोपांगपूजाविधानवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः २६

अध्याय २७

उपमन्युरुवाच
अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थंडिलेऽपि वा
वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे १
आधायाग्निं विधानेन संस्कृत्य च ततः परम्
तत्राराध्य महादेवं होमकर्म समाचरेत् २
कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रमथापि वा
वृत्तं वा चतुरस्त्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम् ३
कुण्डं विस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम्
चतुरंगुलमुत्सेधं तस्य द्व्यंगुलमेव वा ४
वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभिमन्तः प्रचक्षते
मध्यं च मध्यमांगुल्या मध्यमोत्तमपर्वणोः ५
अंगुलैः कथ्यते सद्भिश्चतुर्विंशतिभिः करः
मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथापि वा ६
यथाशोभं प्रकुर्वीत श्लक्ष्णमिष्टं मृदा स्थिरम्
अश्वत्थपत्रवद्योनिं गजाधारवदेव वा ७
मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा
शोभनामग्नितः किंचिन्निम्नामुन्मीलिकां शनैः ८
अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किंचिदुत्सृज्य मेखलाम्
नोत्सेधनियमो वेद्याः सा मार्दी वाथ सैकती ९
मंडलं गोशकृत्तोयैर्मानं पात्रस्य नोदितम्

कुण्डं च मृन्मयं वेदिमालिपेद्गोमयांबुना १०
प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदंभसा
स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुण्डादौ विल्लिखेत्ततः ११
संप्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरम्
अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेत् १२
प्रक्षाल्यक्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत्
मणिजं काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागारसम्भवम् १३
अन्यं वाभ्यर्हितं वह्निं ततः साधारमानयेत्
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य कुण्डादेरुपरि क्रमात् १४
वह्निबीजं समुच्चार्य त्वादधीताग्निमासने
योनिमार्गेण वा तद्वदात्मनः संमुखेन वा १५
नियोगः प्रदेश सर्व कुंडं कुर्याद्विचक्षणः
स्वनाभ्यंतःस्थितं वह्निं तद्रंध्राद्विस्फुलिंगवद् १६
निर्गम्य पावके बह्ये लीनं बिंबाकृति स्मरेत्
आज्यसंस्कारपर्यंतमन्वाधानपुरस्सरम् १७
स्वसूत्रोक्तक्रमात्कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्
शिवमूर्तिं समभ्यर्च्य ततो दक्षिणपार्श्वतः १८
न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम्
स्रुक्स्रुवौ तैजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायससैसकौ १९
यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा शिल्पसम्मतौ
पर्णे वा ब्रह्मवृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते २०
संसृज्य दर्भैस्तौ वह्नौ संताप्य प्रोक्षयेत्पुनः
पारार्षर्च्यस्वसूत्रोक्तक्रमेण शिवपूर्वकैः २१
जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसंस्कारसिद्धये
भ्रंस्तुंब्रुश्रुं क्रमेणैव पुंड्रंद्रमित्यतः परम् २२

बीजानि सप्त सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः
त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपसमाह्वया २३
रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता
अतिरिक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा २४
स्वबिजानन्तरं वाच्या स्वाहांतञ्च यथाक्रमम्
जिह्वामंत्रैस्तु तैर्हुत्वाज्यं जिह्वास्त्वेकैकश क्रमात् २५
रं वह्नयेति स्वाहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम्
सर्पिषा वा समिद्भिर्वा परिषेचनमाचरेत् २६
एवं कृते शिवाग्निः स्यात्स्मरेत्तत्र शिवासनम्
तत्रावाह्य यजेद्देवमर्धनारीश्वरं शिवम्
दीपान्तं परिषिच्याथ समिद्धोमं समाचरेत् २७
ताः पालाश्यः परा वापि याज्ञिया द्वादशांगुलाः
अवक्रा न स्वयं शुष्कास्सत्वचो निर्व्रणाः समाः २८
दशांगुला वा विहिताः कनिष्ठांगुलिसंमिताः
प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि २९
दूर्वापत्रसमाकारां चतुरंगुलमायताम्
दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणतः ३०
लाजांस्तथा सर्षपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा
सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचोष्याणि सम्भवे ३१
दशैवाहुतयस्तत्र पञ्च वा त्रितयं च वा
होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम् ३२
श्रुवेणाज्यं समित्याद्यास्त्रुचाशेषात्करेण वा
तत्र दिव्येन होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा ३३
द्रव्येणैकेन वाऽलाभे जुहुयाच्छ्रद्धया पुनः
प्रायश्चित्ताय जुहुयान्मंत्रयित्वाहुतित्रयम् ३४

ततो होमविशिष्टेन घृतेनापूर्य्य वै स्रुचम्
निधाय पुष्पं तस्याग्रे श्रुवेणाधोमुखेन ताम् ३५
सदर्भेन समाच्छाद्य मूलेनांजलिनोत्थितः
वौषडंतेन जुहुयाद्धारां तु यवसंमिताम् ३६
इत्थं पूर्णाहुतिं कृत्वा परिषिंचेच्च पूर्ववत्
तत उद्वास्य देवेशं गोपयेत्तु हुताशनम् ३७
तमप्युद्वास्य वा नाभौ यजेत्संधाय नित्यशः
अथवा वह्निमानीय शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना ३८
वागीशीगर्भसंभूतं संस्कृत्य विधिवद्यजेत्
अन्वाधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च ३९
पात्राणि द्वन्द्वरूपेण निक्षिप्येष्ट्वा शिवं ततः
संशोध्य प्रोक्षणीपात्रं प्रोक्ष्यतानि तदंभसा ४०
प्रणीतापात्रमैशान्यां विन्यस्या पूरितं जलैः
आज्यसंस्कारपर्यंतं कृत्वा संशोध्य स्रक्स्रुवौ ४१
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः
कृत्वा पृथक्पृथग्घुत्वा जातमग्निं विचिन्तयेत् ४२
त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृंगं द्विशीर्षकम्
मधुपिंगं त्रिनयनं सकपर्देन्दुशेखरम् ४३
रक्तं रक्ताम्बरालेपं माल्यभूषनभूषितम्
सर्वलक्षणसंपन्नं सोपवीतं त्रिमेखलम् ४४
शक्तिमन्तं स्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे
तोमरं तालवृंतं च घृतपात्रं तथेतरैः ४५
जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत्
नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ४६
शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वाहुतिपुरस्सरम्

पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चौलोपनयनादिकम् ४७
अप्तोर्यामावसानान्तं कृत्वा संस्कारमस्य तु
आज्यधारादिहोमं च कृत्वा स्विष्टकृतं ततः ४८
रमित्यनेन बीजेन परिषिंचेत्ततः परम्
ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च ४९
तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम्
धूपदीपादिसिद्ध्यर्थं वह्निमुद्धृत्य कृत्यवित् ५०
साधयित्वाज्यपूर्वाणि द्रव्याणि पुनरेव च
कल्पयित्वासनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा ५१
संपूज्य देवं देवीं च ततः पूर्णांतमाचरेत्
अथ वा स्वाश्रमोक्तं तु वह्निकर्म शिवार्पणम् ५२
बुद्ध्वा शिवाश्रमी कुर्यान्न च तत्रापरो विधिः
शिवाग्नेर्भस्मसंग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा ५३
वैवाहोग्निभवं वापि पक्वं शुचि सुगंधि च
कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत् ५४
न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गन्धं न शोषितम्
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ५५
पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमंत्रतः
अपक्वमतिपाक्वं च संत्यज्य भसितं सितम् ५६
आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत्
तैजसं दारवं वापि मृन्मयं शैलमेव च ५७
अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत्
समे देशे शुभे शुद्धे धनवद्भस्म निक्षिपेत् ५८
न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत्
न संस्पृशेच्च नीचांगैर्नोपेक्षेत न लंघयेत् ५९

तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मन्त्रतः
कालेषूक्तेषु नान्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत् ६०
भस्मसंग्रहणं कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजापते ६१
अग्निकार्ये कृते पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः
स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ६२
अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्ते तु मण्दले
विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभिः क्रमात् ६३
विद्यायाः पुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम्
तत्रासनवरं कृत्वा पुष्पाद्यै गुरुमर्चयेत् ६४
ततोनुपूजयेत्पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान्
ततस्स्वयं च भुंजीत शुद्धमन्नं यथासुखम् ६५
निवेदितं च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये
श्रद्दधानो न लोभेन न चण्डाय समर्पितम् ६६
गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः
न तु तत्र शिवोस्मीति बुद्धिं कुर्याद्विचक्षणः ६७
भुक्त्वाचम्य शिवं ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत्
कालशेषं नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः ६८
रात्रौ व्यतीते पूर्वांशे कृत्वा पूजां मनोहराम्
शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदतिशोभनम् ६९
भक्ष्यभोज्यांबरालेपपुष्पमालादिकं तथा
मनसा कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम् ७०
ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिस्स्वपेत्
गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः ७१
प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मात्रामाद्यामुदीरयेत्

प्रणम्य मनसां देवं सांबं सगणमव्ययम् ७२
देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः
शंखादिनिनदैर्दिव्यैर्देवं देवीं च बोधयेत् ७३
ततस्तत्समयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगंधिभिः
निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम् ७४
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
अग्निकार्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः २७

अध्याय २८

उपमन्युरुवाच
अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवाश्रमनिषेविणाम्
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण नैमित्तिकविधिक्रमम् १
सर्वेष्वपि च मासेषु पक्षयोरुभयोरपि
अष्टाभ्यां च चतुर्दश्यां तथा पर्वाणि च क्रमात् २
अयने विषुवे चैव ग्रहणेषु विशेषतः
कर्तव्या महती पूजा ह्यधिका वापि शक्तितः ३
मासिमासि यथान्यायं ब्रह्मकूर्चं प्रसाध्य तु
स्नापयित्वा शिवं तेन पिबेच्छेषमुपोषितः ४
ब्रह्महत्यादिदोषाणामतीव महतामपि
निष्कृतिर्ब्रह्मकूर्चस्य पानान्नान्या विशिष्यते ५
पौषे पुष्यनक्षत्रे कुर्यान्नीराजनं विभोः
माघे मघाख्ये नक्षत्रे प्रदद्याद् घृतकंबलम् ६
फाल्गुने चोत्तरान्ते वै प्रारभेत महोत्सवम्
चैत्रे चित्रापौर्णमास्यां दोलां कुर्याद्यथाविधि ७
वैशाख्यां तु विशाखायां कुर्यात्पुष्पमहालयम्

ज्येष्ठे मूलाख्यनक्षत्रे शीतकुम्भं प्रदापयेत् ८
आषाढे चोत्तराषाढे पवित्रारोपणं तथा
श्रावणे प्राकृतान्यापि मण्डलानि प्रकल्पयेत् ९
श्रविष्ठाख्ये तु नक्षत्रे प्रौष्ठपद्यां ततः परम्
प्रोक्षयेच्च जलक्रीडां पूर्वाषाढाश्रये दिने १०
आश्वयुज्यां ततो दद्यात्पायसं च नवोदनम्
अग्निकार्यं च तेनैव कुर्याच्छतभिषग्दिने ११
कार्तिक्यां कृतिकायोगे दद्याद्दीपसहस्रकम्
मार्गशीर्षे तथार्द्रायां घृतेन स्नापयेच्छिवम् १२
अशक्तस्तेषु कालेषु कुर्यादुत्सवमेव वा
आस्थानं वा महापूजामधिकं वा समर्चनम् १३
आवृत्तेऽपि च कल्याणे प्रशस्तेष्वपि कर्मसु
दौर्मनस्ये दुराचारे दुःस्वप्ने दुष्टदर्शने १४
उत्पाते वाशुभेन्यस्मिन्रोगे वा प्रबलेऽथ वा
स्नानपूजाजपध्यानहोमदानादिकाः क्रियः १५
निर्मितानुगुणाः कार्य्याः पुरश्चरणपूर्विकाः
शिवानले च विहते पुनस्सन्धानमाचरेत् १६
य एवं शर्वधर्मिष्ठो वर्तते नित्यमुद्यतः
तस्यैकजन्मना मुक्तिं प्रयच्छति महेश्वरः १७
एतद्यथोत्तरं कुर्यान्नित्यनैमित्तिकेषु यः
दिव्यं श्रीकंठनाथस्य स्थानमाद्यं स गच्छति १८
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पकोटिशतन्नरः
कालांतरेच्युतस्तस्मादौमं कौमारमेव च १९
संप्राप्य वैष्णवं ब्राह्मं रुद्रलोकं विशेषतः
तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्यथोदितान् २०

पुनश्चोर्ध्वं गतस्तस्मादतीत्य स्थानपञ्चकम्
श्रीकण्ठाज्ज्ञानमासाद्य तस्माच्छैवपुरं व्रजेत् २१
अर्द्धचर्य्यारतश्चापि द्विरावृत्त्यैवमेव तु
पश्चाज्ज्ञानं समासाद्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् २२
अर्द्धार्द्धचरितो यस्तु देही देहक्षयात्परम्
अंडांतं वोद्ध्र्वमव्यक्तमतीत्य भुवनद्वयम् २३
संप्राप्य पौरुषं रौद्रस्थानमद्रीन्द्रजापतेः
अनेकयुगसाहस्रं भुक्त्वा भोगाननेकधा २४
पुण्यक्षये क्षितिं प्राप्य कुले महति जायते
तत्रापि पूर्वसंस्कारवशेन स महाद्युतिः २५
पशुधर्मान्परित्यज्य शिवधर्मरतो भवेत्
तद्धर्मगौरवादेव ध्यात्वा शिवपुरं व्रजेत् २६
भोगांश्च विविधान्भुक्त्वा विद्येश्वरपदं व्रजेत्
तत्र विद्येश्वरैस्सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्बहून्क्रमात् २७
अण्डस्यांतर्बहिर्वाथ सकृदावर्तते पुनः
ततो लब्ध्वा शिवज्ञानं परां भक्तिमवाप्य च २८
शिवसाधर्म्यमासाद्य न भूयो विनिवर्तते
यश्चातीव शिवे भक्तो विषयासक्तचित्तवत् २९
शिवदर्मानसो कुर्वन्नकुर्वन्वापि मुच्यते
एकावृत्तो द्विरावृत्तस्त्रिरावृत्तो निवर्तकः ३०
न पुनश्चक्रवर्ती स्याच्छिवधर्माधिकारवान्
तस्माद्यच्छिवाश्रितो भूत्वा येन केनापि हेतुना ३१
शिवधर्मे मतिं कुर्याच्छ्रेयसे चेत्कृतोद्यमः
नात्र निर्बंधयिष्यामो वयं केचन केनचित् ३२
निर्बन्धेभ्योऽतिवादेभ्यः प्रकृत्यैतन्न रोचते

रोचते वा परेभ्यस्तु पुण्यसंस्कारगौरवात् ३३
संसारकारणं येषां न प्ररोढुमलं भवेत्
प्रकृत्यनुगुणं तस्माद्विमृश्यैतदशेषतः ३४
शिवधर्मेऽधिकुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ३५

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिकविधिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः २८

अध्याय २९

श्रीकृष्ण उवाच
भगवंस्त्वन्मुखादेव श्रुतं श्रुतिसमं मया
स्वाश्रितानां शिवप्रोक्तं नित्यनैमित्तिकं तथा १
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवधर्माधिकारिणाम्
काम्यमप्यस्ति चेत्कर्म वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् २
उपमन्युरुवाच
अस्त्यैहिकफलं किञ्चिदामुष्मिकफलं तथा
ऐहिकामुष्मिकञ्चापि तच्च पञ्चविधं पुनः ३
किंचित्क्रियामयं कर्म किंचित्कर्म तपो मयम् ४
जपध्यानमयं किंचित्किंचित्सर्वमयं तथा
क्रियामयं तथा भिन्नं होमदानार्चनक्रमात् ५
सर्वशक्तिमतामेव नान्येषां सफलं भवेत्
शक्तिश्चाज्ञा मदेशस्य शिवस्य परमात्मनः ६
तस्मात्काम्यानि कर्माणि कुर्यादाज्ञाधरोद्विजः
अथ वक्ष्यामि काम्यं हि चेहामुत्र फलप्रदम् ७
शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमंतर्बहिः क्रमात्
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यंतमिह भिद्यते ८

यथा तथा न भिद्यंते शैवा माहेश्वरा अपि
शिवाश्रिता हि ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः ९
माहेश्वरास्समाख्याता कर्मयज्ञरता भुवि
तस्मादाभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा वहिः १०
न तु प्रयोगो भिद्येत वक्ष्यमाणस्य कर्मणः
परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ११
मनोभिलषिते तत्र वितानविततांबरे
सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसंनिभे १२
प्राचीमुत्पादयेत्पूर्वं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना
एकहस्तं द्विहस्तं वा मण्डलं परिकल्पयेत् १३
आलिखेद्विमलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्
रत्नहेमादिभिश्चूर्णैर्यथासंभवसंभृतैः १४
पञ्चावरणसंयुक्तं बहुशोभासमन्वितम्
दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरेषु सशक्तिकाः १५
रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिदलतः क्रमात्
कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः १६
स्कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम्
कर्णिकोपरि चाग्नेयं मंडलं सौरमैन्दवम् १७
शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमतः परम्
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमान्वितम् १८
पंचावरणसंयुक्तं पूजयेदंबया सह
शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् १९
विद्युद्वलयसंकाशजटामुकुटभूषितम्
शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखांबुजम् २०
रक्तपद्मदलप्रख्यपादपाणितलाधरम्

सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वाभरणभूषितम् २१
दिव्यायुधवरैर्युक्तं दिव्यगंधानुलेपनम्
पंचवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम् २२
अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम्
त्रिलोचनारविंदाढ्यं कृतबालेंदुशेखरम् २३
दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम्
भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तेक्षणत्रयम् २४
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपल्लवम्
उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् २५
सविलासं त्रिनयनं चन्द्राभरणशेखरम्
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् २६
चन्द्ररेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम्
पंचमं स्फटिकप्रख्यमिंदुरेखासमुज्ज्वलम् २७
अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम्
दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् २८
सव्ये च नागनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम्
निवृत्त्याजानुसंबद्धमानाभेश्च प्रतिष्ठया २९
आकंठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शांतया
तदूर्द्ध्वं शांत्यतीताख्यकलया परया तथा ३०
पंचाध्वव्यापिनं साक्षात्कलापंचकविग्रहम्
ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ३१
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम्
सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ३२
मातृकामयमीशानं पंचब्रह्ममयं तथा
ओंकाराख्यमयं चैव हंसशक्त्या समन्वितम् ३३

तथेच्छात्मिकया शक्त्या समारूढांकमंडलम्
ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वामतश्च क्रियाख्यया ३४
तत्त्वत्रयमयं साक्षाद्विद्यामूर्तिं सदाशिवम्
मूर्तिमूलेन संकल्प्य सकलीकृत्य च क्रमात् ३५
संपूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया
मूर्तिमन्तं शिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह ३६
तत्रावाह्य महादेवं सदसद्व्यक्तिवर्जितम्
पंचोपकरणं कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ३७
ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ३८
शांतेन वा तथान्यैश्च वेदमन्त्रैश्च कृत्स्नशः
पूजयेत्परमं देवं केवलेन शिवेन वा ३९
पाद्यादिमुखवासांतं कृत्वा प्रस्थापनं विना
पंचावरणपूजां तु ह्यारभेत यथाक्रमम् ४०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
काम्यकर्मवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९

अध्याय ३०

तत्रादौ शिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात्
गंधाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ १
ततो ब्रह्माणि परित ईशानादि यथाक्रमम्
सशक्तिकानि सद्यांतं प्रथमावरणे यजेत् २
षडंगान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात्
शिवस्य च शिवायाश्च वाह्नेयादि समर्चयेत् ३
तत्र वामादिकान्रुद्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः

अर्चयेद्वा न वा पश्चात्पूर्वादिपरितः क्रमात् ४
प्रथमावरणं प्रोक्तं मया ते यदुनंदन
द्वितीयावरणं प्रीत्या प्रोच्यते श्रद्धया शृणु ५
अनंतं पूर्वादिक्पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः
सूक्ष्मं दक्षिणदिक्पत्रे सह शक्त्या समर्चयेत् ६
ततः पश्चिमदिक्पत्रे सह शक्त्या शिवोत्तमम्
तथैवोत्तरदिक्पत्रे चैकनेत्रं समर्चयेत् ७
एकरुद्रं च तच्छक्तिं पश्चादीशदलेऽर्चयेत्
त्रिमूर्तिं तस्य शक्तिं च पूजयेदग्निदिग्दले ८
श्रीकण्ठं नैर्ऋते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः
तथैव मारुते पत्रे शिखंडीशं समर्चयेत् ९
द्वितीयावरणे चेज्यास्सर्वतश्चक्रवर्त्तिनः
तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्तयः १०
अष्टसु क्रमशो दिक्षु पूर्वादिपरितः क्रमात्
भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्ततः ११
उग्रो भीमो महादेव इत्यष्टौ मूर्तयः क्रमात्
अनंतरं ततश्चैव महादेवादयः क्रमात्
शक्तिभिस्सह संपूज्यास्तत्रैकादशमूर्त्तयः १२
महादेवः शिवो रुद्रः शंकरो नीललोहितः
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः १३
कपर्दीशश्च कथ्यंते तथैकादशशक्तयः
तत्राष्टौ प्रथमं पूज्याः वाह्नेयादि यथाक्रमम् १४
देवदेवः पूर्वपत्रे ईशानं चाग्निगोचरे
भवोद्भवस्तयोर्मध्ये कपालीशस्ततः परम् १५
तस्मिन्नावरणे भूयो वृषेन्द्रं पुरतो यजेत्

नंदिनं दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे १६
शास्तारं वह्निदिक्पत्रे मातृ-र्दक्षिणदिग्दले
गजास्यं नैर्ऋते पत्रे षरामुखं वारुणे पुनः १७
ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चंडमैश्वरे
शास्तृनन्दीशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत् १८
महाकालस्योत्तरतः पिंगलं तु समर्चयेत्
शास्तृमातृसमूहस्य मध्ये भृंगीश्वरं ततः १९
मातृविघ्नेशमध्ये तु वीरभद्रं समर्चयेत्
स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीम् २०
ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये श्रियं शिवपदार्च्चिताम्
ज्येष्ठागणाम्बयोर्मध्ये महामोटीं समर्चयेत् २१
गणाम्बाचरडयोर्मध्ये देवीं दुर्गां प्रपूजयेत्
अत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरसंहतिम् २२
रुद्रप्रथमभूताख्यां विविधां च सशक्तिकाम्
शिवायाश्च सखीवर्ग्गं जपेद्धयात्वा समाहितः २३
एवं तृतीयावरणे वितते पूजिते सति
चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समर्च्चयेत् २४
भानुः पूर्वदले पूज्यो दक्षिणे चतुराननः
रुद्रो वरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले २५
चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ
तस्यांगानि षडेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः २६
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात्
अमोघा विद्युता चैव पूर्वादि परितः स्थिताः २७
द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात्
पूर्वाद्युत्तरपर्यंताः शक्तयश्च ततः परम् २८

आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चैते विवस्वतः २९
विस्तारा पूर्वदिग्भागे सुतरां दक्षिणे स्थिताः
बोधनी पश्चिमे भागे आप्यायिन्युत्तरे पुनः ३०
उषां प्रभां तथा प्राज्ञां सन्ध्यामपि ततः परम्
ऐशानादिषु विन्यस्य द्वितीयावरणे यजेत् ३१
सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम्
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम् ३२
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं भयंकरम्
समंततो यजेदेतांस्तृतीयावरणे क्रमात् ३३
अथवा द्वादशादित्या द्वितीयावरणे यजेत्
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ३४
सप्तसप्त गणांश्चैव बहिस्तस्य समंततः
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ३५
ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान्
सप्तच्छंदोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ३६
एवं तृतीयावरणे समभ्यर्च्य दिवाकरम्
ब्रह्माणमर्चयेत्पश्चात्त्रिभिरावरणैः सहः ३७
हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः
कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषं चोत्तरे यजेत् ३८
हिरण्यगर्भः प्रथमो ब्रह्मा कमलसन्निभः
कालो जात्यंजनप्रख्यः पुरुषः स्फटिकोपमः ३९
त्रिगुणो राजसश्चैव तामसः सात्त्विकस्तथा
चत्वार एते क्रमशः प्रथमावरणे स्थिताः ४०
द्वितीयावरणे पूज्याः पूर्वादिपरितः क्रमात्

सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः ४१
तृतीयावरणे पश्चादर्चयेच्च प्रजापतीन्
अष्टौ पूर्वांश्च पूर्व्वादौ त्रीन्प्राक्पश्चादनुक्रमात् ४२
दक्षो रुचिर्भृगुश्चैव मरीचिश्च तथांगिराः
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च कश्यपः ४३
वसिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विमे
तेषां भार्य्याश्च तैस्सार्द्धं पूजनीया यथाक्रमम् ४४
प्रसूतिश्च तथाऽऽकूतिः ख्यातिः सम्भूतिरेव च
धृतिः स्मृतिः क्षमा चैव सन्नतिश्चानसूयका ४५
देवमातारुन्धती च सर्वाः खलु पतिव्रताः
शिवार्चनरतो नित्यं श्रीमत्यः प्रियदर्शनाः ४६
प्रथमावरणे वेदांश्चतुरो वा प्रपूजयेत्
इतिहासपुराणानि द्वितीयावरणे पुनः ४७
तृतीयावरणे पश्चाद्धर्मशास्त्रपुरस्सराः
वैदिक्यो निखिला विद्याः पूज्या एव समंततः ४८
पूर्वादिपुरतो वेदास्तदन्ये तु यथारुचि
अष्टधा वा चतुर्धा वा कृत्वा पूजां समंततः ४९
एवं ब्रह्माणमभ्यर्च्य त्रिभिरावरणैर्युतम्
दक्षिणे पश्चिमे पश्चाद्रुद्रं सावरणं यजेत् ५०
तस्य ब्रह्मषडंगानि प्रथमावरणं स्मृतम्
द्वितीयावरणे चैव विद्येश्वरमयं तथा ५१
तृतीयावरणे भेदो विद्यते स तु कथ्यते
चतस्त्रो मूर्तयस्तस्य पूज्याः पूर्वादितः क्रमात् ५२
त्रिगुणास्सकलो देवः पुरस्ताच्छिवसंज्ञकः
राजसो दक्षिणे ब्रह्मा सृष्टिकृत्पूज्यते भवः ५३

तामसः पश्चिमे चाग्निः पूज्यस्संहारको हरः
सात्त्विकस्सुखकृत्सौम्ये विष्णुर्विश्वपतिर्मृडः ५४
एवं पश्चिमदिग्भागे शम्भोः षड्विंशकं शिवम्
समभ्यर्च्योत्तरे पार्श्वे ततो वैकुंठमर्चयेत् ५५
वासुदेवं पुरस्कृत्वा प्रथमावरणे यजेत्
अनिरुद्धं दक्षिणतः प्रद्युम्नं पश्चिमे ततः ५६
सौम्ये संकर्षणं पश्चाद्व्यत्यस्तौ वा यजेदिमौ
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शुभम् ५७
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोथ वामनः
रामश्चान्यतमः कृष्णो भवानश्वमुखोपि च ५८
तृतीयावरणे चक्रः पूर्वभागे समर्चयेत्
नारायणाख्यां याम्येस्त्रं क्वचिदव्याहतं यजेत् ५९
पश्चिमे पांचजन्यं च शार्ङ्गंधनुरथोत्तरे
एवं त्र्यावरणैः साक्षाद्विश्वाख्यां परमं हरिम् ६०
महाविष्णुं सदाविष्णुं मूर्तीकृत्य समर्चयेत्
इत्थं विष्णोश्चतुर्व्यूहक्रमान्मूर्तिचतुष्टयम्
पूजयित्वा च तच्छक्तीश्चतस्रः पुजयेत्क्रमात् ६१
प्रभामाग्नेयदिग्भागे नैर्ऋते तु सरस्वतीम्
गणांबिका च वायव्ये लक्ष्मीं रौद्रे समर्चयेत् ६२
एवं भान्वादिमूर्त्तीनां तच्छक्तीनामनंतरम्
पूजां विधाय लोकेशांस्तत्रैवावरणे यजेत् ६३
इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा
वायुं सोमं कुबेरं च पश्चादीशानमर्चयेत् ६४
एवं चतुर्थावरणं पूजयित्वा विधानतः
आयुधानि महेशस्य पश्चाद्बांह्यं समर्चयेत् ६५

श्रीमन्त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे
परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत् ६६
नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वारुणगोचरे
अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत् ६७
पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्
पञ्चमावरणं चैव सम्पूज्यानन्तरं बहिः ६८
सर्वावरणदेवानां बहिर्वा पञ्चमेऽथवा
पञ्चमे मातृभिस्सार्द्धं महोक्ष पुरतो यजेत् ६९
ततः समंततः पूज्यास्सर्वा वै देवयोनयः
खेचरा ऋषयस्सिद्धा दैत्या यक्षाश्च राक्षसाः ७०
अनंताद्याश्च नागेंद्रा नागैस्तत्तत्कुलोद्भवैः
डाकिनीभूतवेतालप्रेतभैरवनायकाः ७१
पातालवासिनश्चान्ये नानायोनिसमुद्भवाः
नद्यस्समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ७२
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कीटाद्याः क्षुद्रयोनयः
नराश्च विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयोनयः ७३
भुवनान्यन्तरण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः
बहिरंडान्यसंख्यानि भुवनानि सहाधिपैः ७४
ब्रह्मांडाधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः
यद्गौड यच्च मामेयं यद्वा शाक्तं ततः परम् ७५
यत्किञ्चिदस्ति शब्दस्य वाच्यं चिदचिदात्मकम्
तत्सर्वं शिवयोः पार्श्वे बुद्ध्वा सामान्यतो यजेत् ७६
कृतांजलिपुटाः सर्वेऽचिंत्याः स्मितमुखास्तथा
प्रीत्या संप्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा ७७
इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वाविक्षेपशांतये

पुनरभ्यर्च्य देवेशं पक्त्वान्नरमुदीरयेत् ७८
निवेदयेत्ततः पश्चाच्छिवयोरमृतोपमम्
सुव्यञ्जनसमायुक्तं शुद्धं चारु महाचरुम् ७९
द्वात्रिंशदाढकैर्मुख्यमधमं त्वाढकावरम्
साधयित्वा यथासंपच्छ्रद्धया विनिवेदयेत् ८०
ततो निवेद्य पानीयं तांबूलं चोपदंशकैः
नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ८१
भोगोपयोग्यद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत्
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भक्तिमान्विभवे सति ८२
शठस्योपेक्षकस्यापि व्यंग्यं चैवानुतिष्ठतः
न फलंत्येव कर्माणि काम्यानीति सतां कथा ८३
तस्मात्सम्यगुपेक्षां च त्यक्त्वा सर्वांगयोगतः
कुर्यात्काम्यानि कर्माणि फलसिद्धिं यदीच्छति ८४
इत्थं पूजां समाप्याथ देवं देवीं प्रणम्य च
भक्त्या मनस्समाधाय पश्चात्स्तोत्रमुदीरयेत् ८५
ततः स्तोत्रमुपास्यान्ते त्वष्टोत्तरशतावराम्
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्रोत्तरमुत्सुकः ८६
विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम्
यथोदयं यथाश्राद्धं सदस्यानपि पूजयेत् ८७
ततः उद्वास्य देवेशं सर्वैरावरणैः सह
मण्डलं गुरवे दद्याद्यागोपकरणैस्सह ८८
शिवाश्रितेभ्यो वा दद्यात्सर्वमेवानुपूर्वशः
अथवा तच्छिवायैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत् ८९
शिवाग्नौ वा यजेद्देवं होमद्रव्यैश्च सप्तभिः
समभ्यर्च्य यथान्यायं सर्वावरणदेवताः ९०

एष योगेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः
न तस्मादधिकः कश्चिद्यागोऽस्ति भुवने क्वचित् ९१
न तदस्ति जगत्यस्मिन्नसध्यं यदनेन तु
ऐहिकं वा फलं किंचिदामुष्मिकफलं तु वा ९२
इदमस्य फलं नेदमिति नैव नियम्यते
श्रेयोरूपस्य कृत्स्नस्य तदिदं श्रेष्टसाधनम् ९३
इदं न शक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्च्यते
चिंतामणेरिवैतस्मात्तत्तेन प्राप्यते फलम् ९४
तथापि ज्ञुद्रमुद्दिश्य फलं नैतत्प्रयोजयेत्
लघ्वर्थी महतो यस्मात्स्वयं लघुतरो भवेत् ९५
महद्वा फलमल्पं वा कृतं चेत्कर्म सिध्यति
महादेवं समुद्दिश्य कृतं कर्म प्रयुज्यताम् ९६
तस्मादनन्यलभ्येषु शत्रुमृत्युंजयादिषु
फलेषु दृष्टादृष्टेषु कुर्य्यादेतद्विचज्ञणः ९७
महत्स्वपि च पातेषु महारागभयादिषु
दुर्भिज्ञादिषु शांत्यर्थं शांतिं कुर्य्यादनेन तु ९८
बहुना किं प्रलापेन महाव्यापन्निवारकम्
आत्मीयमस्त्रं शैवानामिदमाह महेश्वरः ९९
तस्मादितः परं नास्ति परित्राणमिहात्मनः १००ब्
इति मत्वा प्रयुंजानः कर्मेदं शुभमश्नुते १००
स्तोत्रमात्रं शुचिर्भूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः १०१ब्
सोप्यभीष्टतमादर्थादष्टांशफलमाप्नुयात् १०१
अर्थं तस्यानुसन्धाय पर्वण्यनशनः पठेत् १०२ब्
अष्टाभ्यां वा चतुर्दश्यां फलमर्द्धं समाप्नुयात् १०२
यस्त्वर्थमनुसंधाय पर्वादिषु तथा व्रती १०३ब्

मासमेकं जपेत्स्तोत्रं स कृत्स्नं फलमाप्नुयात् १०३
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यांवायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शैवानां काम्यकवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ३०

अध्याय ३१

उपमन्युरुवाच
स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पंचावरणमार्गतः
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते १
जय जय जगदेकनाथ शंभो प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव
अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचामपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम् २
स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव ३
अनन्तकांतिसंपन्न जयासदृशविग्रह
अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमंगल ४
निरंजन निराधार जय निष्कारणोदय
निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण ५
जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद
जय स्वतंत्रसर्वस्व जयासदृशवैभव ६
जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित्
जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ७
जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय
जयामेय जयामाय जयाभाव जयामल ८
महाभुज महासार महागुण महाकथ
महाबल महामाय महारस महारथ ९
नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे

नमश्शिवाय शांताय नमश्शिवतराय ते १०
त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम्
अतस्त्वद्विहितामाज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम्
अयं पुनर्जनो नित्यं भवदेकसमाश्रयः
भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं संप्रयच्छतु १३
जयांबिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि
जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे १४
जय वाग्मनसातीते जयाचिद्ध्वांतभंजिके
जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे १५
जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये
जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृंभिणि १६
जय मंगलदिव्यांगि जय मंगलदीपिके
जय मंगलचारित्रे जय मंगलदायिनि १७
नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते १८
त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोपि न शक्नुयात्
जन्मप्रभृति देवेशि जनोयं त्वदुपाश्रितः १९
अतोऽस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम्
पंचवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसन्निभः २०
वर्णब्रह्मकलादेहो देवस्सकलनिष्कलः
शिवभक्तिसमारूढः शांत्यतीतस्सदाशिवः
भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु २१
सदाशिवांकमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया
जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् २२
शिवयोर्दयिता पुत्रौ देवौ हेरंबषण्मुखौ

शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ २३
तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ
सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि २४
सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा
स्वेच्छावतारं कुर्वंतौ स्वांशभेदैरनेकशः २५
ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम् २६
शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम्
मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः २७
शिवार्चनरतं शांतं शांत्यतीतं मखास्थितम्
पंचाक्षरांतिमं बीजं कलाभिः पंचभिर्युतम् २८
प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम्
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु २९
बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम्
पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः ३०
शांत्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम्
प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम् ३१
पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम्
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ३२
अञ्जनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम्
देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम् ३३
विद्यापादं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम्
द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम् ३४
शंभोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्
पवित्रं मध्यमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ३५

कुंकुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेषधृक्
वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम् ३६
वारिमंडलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम्
तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम् ३७
देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ३८
शंखकुंदेंदुधवलं संध्याख्यं सौम्यलक्षणम्
शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम् ३९
निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम्
तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम् ४०
देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम्
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ४१
शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्तिशिवभाविते
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम् ४२
शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्तिशिवाश्रिते
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ४३
शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणा शिवभाविते
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ४४
शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्तिशिवाश्रिते
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ४५
अस्त्रमूर्ती च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ४६
वामौ ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा
बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः ४७
सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः

प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु शिवयोरेव शासनात् ४८
अथानंतश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः
एक रुद्राख्यमर्तिश्च श्रीकराठश्च शिखंडकः ४९
तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः
ते मे कामं प्रयच्छंतु शिवयोरेव शासनात् ५०
भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः
महादेवादयश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः ५१
शक्तिभिस्सहितास्सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशंतु फलमीप्सितम् ५२
वृक्षराजो महातेजा महामेघसमस्वनः
मेरुमंदरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ५३
सिताभ्रशिखराकारः ककुदा परिशोभितः
महाभोगींद्रकल्पेन वालेन च विराजितः ५४
रक्तास्यशृंगचरणौ रक्तप्रायविलोचनः
पीवरोन्नतसर्वांगस्सुचारुगमनोज्ज्वलः ५५
प्रशस्तलक्षणः श्रीमान्प्रज्वलन्मणिभूषणः
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः ५६
तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः
गोराजपुरुषः श्रीमाञ्छ्रीमच्छूलवरायुधः
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ५७
नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः
सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वंदितः ५८
शर्वस्यांतःपुरद्वारि सार्द्धं परिजनैः स्थितः
सर्वेश्वरसमप्रख्यस्सर्वासुरविमर्दनः ५९
सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः

शिवप्रियश्शिवासक्तश्श्रीमच्छूलवरायुधः ६०
शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु ६१
महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः
महादेवाश्रितानां १ तु नित्यमेवाभिरक्षतु ६२
शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवयोरर्चकस्सदा
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ६३
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्नोः परा तनुः
महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ६४
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा
वाराही चैव माहेंद्री चामुंडा चंडविक्रमा ६५
एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः
प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु परमेश्वरशासनात् ६६
मत्तमातंगवदनो गंगोमाशंकरात्मजः
आकाशदेहो दिग्बाहुस्सोमसूर्याग्निलोचनः ६७
ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ६८
विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ६९
षण्मुखश्शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः
अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः ७०
गंगायाश्च गणांबायाः कृत्तिकानां तथैव च
विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ७१
इंद्रजिच्चंद्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा

शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा ७२
तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः
कुमारस्सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ७३
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपदार्चकस्सदा
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ७४
ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजनेरता
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु कांक्षितम् ७५
त्रैलोक्यवंदिता साक्षादुल्काकारा गणांबिका
जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाऽभ्यर्थिता शिवात् ७६
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृताः
दक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा ७७
कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च ७८
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा
सत्कृट्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु कांक्षितम् ७९
चंडः सर्वगणेशानः शंभोर्वदनसंभवः
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ८०
पिंगलो गणपः श्रीमाञ्छिवासक्तः शिवप्रियः
आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु ८१
भृंगीशो नाम गणपः शिवराधनतत्परः
प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञा पुरःसरम् ८२
वीरभद्रो महातेजा हिमकुंदेंदुसन्निभः
भद्रकालीप्रियो नित्यं मातॄ-णां चाभिरक्षिता ८३
यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः
उपेंद्रेंद्रयमादीनां देवानामंगतक्षकः ८४

शिवस्यानुचरः श्रीमाञ्छिवशासनपालकः
शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु कांक्षितम् ८५
सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा
शिवयोः पूजने सक्ता स मे दिशतु कांक्षितम् ८६
विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता
शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु कांक्षितम् ८७
महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा
तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु कांक्षितम् ८८
कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः परमा सुता
विष्णोर्निद्रामहामाया महामहिषमर्दिनी ८९
निशंभशुंभसंहत्री मधुमांसासवप्रिया
सत्कृत्य शासनं मातुस्सा मे दिशतु कांक्षितम् ९०
रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रथमाः प्रथितौजसः
भूताख्याश्च महावीर्य्या महादेवसमप्रभाः ९१
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः
सशक्तयस्सानुचरास्सर्वलोकनमस्कृताः ९२
सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः
परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः ९३
परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः
शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ९४
सौम्याधारास्तथा मिश्राश्चांतरालद्वयात्मिकाः
विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ९५
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशंतु वै
देव्या प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ९६
सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः

तृतीयावरणे शंभोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ९७
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम्
दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीप्तिसुमंडलः ९८
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः
अविकारात्मकश्चाद्य एकस्सामान्यविक्रियः ९९
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् १००ब्
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्ताः पंचधा पुनः १००
चतुर्थावरणे शंभोः पूजितश्चानुगैः सह १०१ब्
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः १०१
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् १०२ब्
दिवाकरषडंगानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः १०२
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः १०३ब्
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्नुश्चादित्यमूर्तयः १०३
विस्तरासुतराबोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः १०४ब्
उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः १०४
सोमादिकेतुपर्यंता ग्रहाश्च शिवभाविताः १०५ब्
शिवयोराज्ञयानुन्ना मंगलं प्रदिशंतु मे १०५
अथवा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः १०६ब्
ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः १०६
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्चासुरास्तथा १०७ब्
सप्तसप्तगणाश्चैते सप्तच्छंदोमया हयाः १०७
वालखिल्या दयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः १०८ब्
सत्कृत्यशिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे १०८
ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः १०९ब्
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः १०९

निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ११०ब्
अविकारात्मको देवस्ततस्साधारणः पुरः ११०
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् १११ब्
भुवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पंचधा पुनः १११
चतुर्थावरणे शंभो पूजितश्च सहानुगैः ११२ब्
शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवपादार्चने रतः ११२
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ११३ब्
हिरण्यगर्भो लोकेशो विराट् कालश्च पूरुषः ११३
सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः ११४ब्
प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः ११४
एकादश सपत्नीका धर्मस्संकल्प एव च ११५ब्
शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः ११५
शिवाज्ञावशगास्सर्वे दिशंतु मम मंगलम् ११६ब्
चत्वारश्च तथा वेदास्सेतिहासपुराणकाः ११६
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिस्समन्विताः ११७ब्
परस्परविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ११७
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ११८ब्
अथ रुद्रो महादेवः शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ११८
वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान्प्रभुः ११९ब्
शिवाभिमानसंपन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः ११९
केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः १२०ब्
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः १२०
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् १२१ब्
ब्रह्मणोपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः १२१
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः १२२ब्

बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः १२२
अंडस्यांतर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः १२३ब्
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः १२३
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् १२४ब्
तस्य ब्रह्म षडंगानि विद्येशांतं तथाष्टकम् १२४
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः
शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः १२५
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मंगलं प्रदिशंतु मे १२५
अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः १२६ब्
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः १२६
निर्गुणस्सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः १२७ब्
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः १२७
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् १२८ब्
दक्षिणांगभवेनापि स्पर्द्धमानः स्वयंभुवा १२८
आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु १२९ब्
अंडस्यांतर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः १२९
असुरांतकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः १३०ब्
प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह १३०
भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरक्षितौ १३१ब्
अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयञ्जगत् १३१
मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाशिष्णुमथापि वा १३२ब्
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने १३२
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः १३३ब्
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् १३३
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः १३४ब्

संकर्षणस्समाख्याताश्चतस्त्रो मूर्तयो हरेः १३४
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः १३५ब्
रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः १३५
चक्रं नारायणस्यास्त्रं पांचजन्यं च शार्ङ्गकम् १३६ब्
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे १३६
प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता १३७ब्
शिवयोः शासनादेता मंगलं प्रदिशंतु मे १३७
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा १३८ब्
वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक् १३८
सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः १३९ब्
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे १३९
त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ १४०ब्
खड्गपाशांकुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः १४०
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः १४१ब्
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वंतु मे सदा १४१
वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः १४२ब्
वडवाख्यानलस्पर्द्धी पञ्चगोमातृभिर्वृतः १४२
वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः १४३ब्
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु १४३
नंदा सुनंदा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा १४४ब्
पंचगोमातरस्त्वेताश्शिवलोके व्यवस्थिताः १४४
शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः १४५ब्
शिवयोः शासनादेव दिशंतु मम वांछितम् १४५
क्षेत्रपालो महातेजा नील जीमूतसन्निभः १४६ब्
दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः १४६

रक्तोद्ध्वर्वमूर्द्धजः श्रीमान्भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः १४७ब्
रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः १४७
नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः १४८ब्
भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः १४८
क्षेत्रेक्षेत्रे समासीनः स्थितो यो रक्षकस्सताम् १४९ब्
शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः १४९
शिवश्रितान्विशेषेण रक्षन्पुत्रानिवौरसान् १५०ब्
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मण्गलम् १५०
तालजण्घादयस्तस्य प्रथमावरणेर्चिताः १५१ब्
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम् १५१
भैरवाद्याश्च ये चान्ये समंतात्तस्य वेष्टिताः १५२ब्
तेऽपि मामनुगृह्णंतु शिवशासनगौरवात् १५२
नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः १५३ब्
साध्या मागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः १५३
विनिवृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः १५४ब्
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगुणैस्सह १५४
सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः १५५ब्
शिवयोराज्ञया मह्यं दिशंतु मम कांक्षितम् १ १५५
गंधर्वाद्याः पिशाचांताश्चतस्रो देवयोनयः १५६ब्
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः १५६
असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः १५७ब्
अनंताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः १५७
कूष्मांडाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे १५८ब्
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः १५८
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च १५९ब्

द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च १५९
गिरयश्च सुमेर्वाद्याः कननानि समंततः १६०ब्
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः १६०
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वरः १६१ब्
अराडान्यावरणैस्सार्द्धं मासाश्च दश दिग्गजाः १६१
वर्णाः पदानि मंत्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः १६२ब्
ब्रह्मांडधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः १६२
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् १६३ब्
सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् १६३
अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी १६४ब्
पंचार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता १६४
शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम् १६५ब्
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसंमितम् १६५
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः १६६ब्
शिवाभ्यामविशेषेण सत्कृत्येह समर्चिताः १६६
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये १६७ब्
कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् १६७
श्वेताद्या नकुलीशांताः सशिष्याश्चापि देशिकाः १६८ब्
तत्संततीया गुरवो विशेषाद्गुरवो मम १६८
शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः १६९ब्
कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् १६९
लौकिका ब्राह्मणास्सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् १७०ब्
वेदवेदांगतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः १७०
सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः १७१ब्
सौरा ब्रह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः १७१

शिष्टाः सर्वे विशिष्टा च शिवशासनयंत्रिताः १७२ब्
कर्मेदमनुमन्यंतां ममाभिप्रेतसाधकम् १७२
शैवाः सिद्धांतमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा १७३ब्
शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे १७३
शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात् १७४ब्
सर्वे ममानुगृह्णंतु शंसंतु सफलक्रियाम् १७४
दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः १७५ब्
अविरोधेन वर्तंतां मंत्रश्रेयोऽर्थिनो मम १७५
नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः १७६ब्
पाषंडाश्चातिपापाश्च वर्तंतां दूरतो मम १७६
बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपिचिदास्तिकाः १७७ब्
सर्वे मामनुगृह्णंतु संतः शंसंतु मंगलम् १७७
नमश्शिवाय सांबाय ससुतायादिहेतवे १७८ब्
पंचावरणरूपेण प्रपंचेनावृताय ते १७८
इत्युक्त्वा दंडवद्भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम् १७९ब्
जपेत्पंचाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम् १७९
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम् १८०ब्
कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् १८०
एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम् १८१ब्
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम् १८१
य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः १८२ब्
स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात् १८२
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा १८३ब्
शरणागतघाती च मित्रविश्रंभघातकः १८३
दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा १८४ब्

स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात्प्रमुच्यते १८४
दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च १८५ब्
यदि संकीर्तयेदेतन्न ततो नार्थभाग्भवेत् १८५
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् १८६ब्
स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः १८६
असंपूज्य शिवस्तोत्रं जपात्फलमुदाहृतम् १८७ब्
संपूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते १८७
आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन्संकीर्तिते सति १८८ब्
सार्द्धमंबिकया देवः श्रुत्यैवं दिवि तिष्ठति १८८
तस्मान्नभसि संपूज्य देवं देवं सहोमया १८९ब्
कृतांजलिपुटस्तिष्ठंस्तोत्रमेतदुदीरयेत् १८९

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवमहास्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ३१

अध्याय ३२

उपमन्युरुवाच
एतत्ते कथितं कृष्ण कर्मेहामुत्र सिद्धिदम्
क्रियातपोजपध्यानसमुच्चयमयं परम् १
अथ वक्ष्यामि शैवानामिहैव फलदं नृणाम्
पूजाहोमजपध्यानतपोदानमयं महत् २
तत्र संसाधयेत्पूर्वं मन्त्रं मन्त्रार्थवित्तमः
दृष्टसिद्धिकरं कर्म नान्यथा फलदं यतः ३
सिद्धमन्त्रोऽप्यदृष्टेन प्रबलेन तु केनचित्
प्रतिबन्धफलं कर्म न कुर्यात्सहसा बुधः ४
तस्य तु प्रतिबन्धस्य कर्तुं शक्येह निष्कृतिः

परीक्ष्य शकुनाद्यैस्तदादौ निष्कृतिमाचरेत् ५
योऽन्यथा कुरुते मोहात्कर्मैहिकफलं नरः
न तेन फलभाक्स स्यात्प्राप्नुयाच्चोपहास्यताम् ६
अविस्रब्धो न कुर्वीत कर्म दृष्टफलं क्वचित्
स खल्वश्रद्धधानः स्यान्नाश्रद्धः फलमृच्छति ७
नापराधोस्ति देवस्य कर्मण्यपि तु निष्फले
यथोक्तकारिणां पुंसामिहैव फलदर्शनात् ८
साधकः सिद्धमंत्रश्च निरस्तप्रतिबंधकः
विश्वस्तः श्रद्धधानश्च कुर्वन्नाप्नोति तत्फलम् ९
अथवा तत्फलावाप्त्यै ब्रह्मचर्यरतो भवेत्
रात्रौ हविष्यमश्नीयात्पायसं वा फलानि वा १०
हिंसादि यन्निषिद्धं स्यान्न कुर्यान्मनसापि तत्
सदा भस्मानुलिप्तांगस्सुवेषश्च शुचिर्भवेत् ११
इत्थमाचारवान्भूत्वा स्वानुकूले शुभेऽहनि
पूर्वोक्तलक्षणे देशे पुष्पदामाद्यलंकृते १२
आलिप्य शकृता १ भूमिं हस्तमानावरां यथा
विलिखेत्कमले भद्रे दीप्यमानं स्वतेजसा १३
तप्तजांबूनदमयमष्टपत्रं सकेसरम्
मध्ये कर्णिकया युक्तं सर्वरत्नैरलंकृतम् १४
स्वाकारसदृशेनैव नालेन च समन्वितम्
तादृशे स्वर्णनिर्माणे कंदे सम्यग्विधानतः १५
तत्राणिमादिकं सर्वं संकल्प्य मनसा पुनः
रत्नजं वाथ सौवर्णं स्फटिकं वा सलक्षणम्
लिण्गं सवेदिकं चैव स्थापयित्वा विधानतः १६
तत्रावाह्य यजेद्देवं सांबं सगणमव्ययम्

तत्र माहेश्वरी कल्प्या मूर्तिर्मूर्तिमतः प्रभोः १७
चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा सर्वाभरणभूषिता
शार्दूलचर्मवसना किंचिद्विहसितानना १८
वरदाभयहस्ता च मृगटंकधरा तथा
अथ वाष्टभुजा चिंत्या चिंतकस्य यथारुचि १९
तदा त्रिशूलपरशुखड्गवज्राणि दक्षिणे
वामे पाशांकुशौ तद्वत्खेटं नागं च बिभ्रती २०
बालार्कसदृशप्रख्या प्रतिवक्त्रं त्रिलोचना
तस्याः पूर्वमुखं सौम्यं स्वाकारसदृशप्रभम् २१
दक्षिणं नीलजीमूतसदृशं घोरदर्शनम्
उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् २२
पश्चिमं पूर्णचंद्राभं सौम्यमिंदुकलाधरम्
तदंकमंडलारूढा शक्तिर्माहेश्वरी परा २३
महालक्ष्मीरिति ख्याता श्यामा सर्वमनोहरा
मूर्तिं कृत्वैवमाकारां सकलीकृत्य च क्रमात् २४
मूर्तिमंतमथावाह्य यजेत्परमकारणम्
स्नानार्थे कल्पयेत्तत्र पंचगव्यं तु कापिलम् २५
पंचामृतं च पूर्णानि बीजानि च विशेषतः
पुरस्तान्मण्डलं कृत्वा रत्नचूर्णाद्यलंकृतम् २६
कर्णिकायां प्रविन्यस्येदीशानकलशं पुनः
सद्यादिकलशान्पश्चात्परितस्तस्य कल्पयेत् २७
ततो विद्येशकलशानष्टौ पूर्वादिवत्क्रमात्
तीर्थाम्बुपूरितान्कृत्वा सूत्रेणावेष्ट्य पूर्ववत् २८
पुण्यद्रव्याणि निक्षिप्य समन्त्रं सविधानकम्
दुकूलाद्येन वस्त्रेण समाच्छाद्य समंततः २९

सर्वत्र मंत्रं विन्यस्य तत्तन्मंत्रपुरस्सरम्
स्नानकाले तु संप्राप्ते सर्वमण्गलनिस्वनैः ३०
पंचगव्यादिभिश्चैव स्नापयेत्परमेश्वरम्
ततः कुशोदकाद्यानि स्वर्णरत्नोदकान्यपि ३१
गंधपुष्पादिसिद्धानि मन्त्रसिद्धानि च क्रमात्
उद्धृत्योद्धृत्य मन्त्रेण तैस्तैस्स्नाप्य महेश्वरम् ३२
गंधं पुष्पादिदीपांश्च पूजाकर्म समाचरेत्
पलावरः स्यादालेप एकादशपलोत्तरः ३३
सुवर्णरत्नपुष्पाणि शुभानि सुरभीणि च
नीलोत्पलाद्युत्पलानि बिल्वपत्राण्यनेकशः ३४
कमलानि च रक्तानि श्वेतान्यपि च शंभवे
कृष्णागुरूद्भवो धूपः सकर्पूराज्यगुग्गुलः ३५
कपिलाघृतसंसिद्धा दीपाः कर्पूरवर्तिजाः
पंचब्रह्मषडंगानि पूज्यान्यावरणानि च ३६
नैवेद्यः पयसा सिद्धः स गुडाज्यो महाचरुः
पाटलोत्पलपद्माद्यैः पानीयं च सुगन्धितम् ३७
पंचसौगंधिकोपेतं तांबूलं च सुसंस्कृतम्
सुवर्णरत्नसिद्धानि भूषणानि विशेषतः ३८
वासांसि च विचित्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च
दर्शनीयानि देयानि गानवाद्यादिभिस्सह ३९
जपश्च मूलमंत्रस्य लक्षः परमसंख्यया
एकावरा त्र्युत्तरा च पूजा फलवशादिह ४०
दशसंख्यावरो होमः प्रतिद्रव्यं शतोत्तरः
घोररूपश्शिवश्चिंत्यो मारणोच्चाटनादिषु ४१
शिवलिंगे शिवाग्नौ च ह्यन्यासु प्रतिमासु च

चिंत्यस्सौम्यतनुश्शंभुः कार्ये शांतिकपौष्टिके ४२
आयसौ स्रुक्स्रुवौ कार्यौ मारणादिषु कर्मसु
तदन्यत्र तु सौवर्णौ शांतिकाद्येषु कृत्स्नशः ४३
दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा
चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापि वा ४४
जुहुयान्मृत्युविजये तिलै रोगोपशांतये
घृतेन पयसा चैव कमलैर्वाथ केवलैः ४५
समृद्धिकामो जुहुयान्महादारिद्र्यशांतये
जातीपुष्पेण वश्यार्थी जुहुयात्सघृतेन तु ४६
घृतेन करवीरैश्च कुर्यादाकर्षणं द्विजः
तैलेनोच्चाटनं कुर्यात्स्तंभनं मधुना पुनः ४७
स्तंभनं सर्षपेणापि लशुनेन तु पातनम्
ताडनं रुधिरेण स्यात्खरस्योष्ट्रस्य चोभयोः ४८
मारणोच्चाटने कुर्याद्रोहिबीजैस्तिलान्वितैः
विद्वेषणं च तैलेन कुर्याल्लांगलकस्य तु ४९
बंधनं रोहिबीजेन सेनास्तंभनमेव च
रक्तसर्षपसंमिश्रैर्होमद्रव्यैरशेषतः ५०
हस्तयंत्रोद्भवैस्तैलैर्जुहुयादाभिचारिके
कटुकीतुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिभिरेव च ५१
सर्षपैस्तैलसंमिश्रैर्जुहुयादाभिचारिके
ज्वरोपशांतिदं क्षीरं सौभाग्यफलदं तथा ५२
सर्वसिद्धिकरो होमः क्षौद्राज्यदधिभिर्युतैः
क्षीरेण तंदुलैश्चैव चरुणा केवलेन वा ५३
शांतिकं पौष्टिकं वापि सप्तभिः समिदादिभिः
द्रव्यैर्विशेषतो होमे वश्यमाकर्षणं तथा ५४

वश्यमाकर्षणं चैव श्रीपदं च विशेषतः
बिल्वपत्रैस्तु हवनं शत्रोर्विजयदं तथा ५५
समिधः शांतिकार्येषु पालाशखदिरादिकाः
करवीरार्कजाः क्रौर्ये कण्टकिन्यश्च विग्रहे ५६
प्रशांतः शांतिकं कुर्यात्पौष्टिकं च विशेषतः
निर्घृणः क्रुद्धचित्तस्तु प्रकुर्यादाभिचारिकम् ५७
अतीवदुरवस्थायां प्रतीकारांतरं न चेत्
आततायिनमुद्दिश्य प्रकुर्यादाभिचारिकम् ५८
स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य न कुर्यादाभिचारिकम्
यद्यास्तिकस्सुधर्मिष्ठो मान्यो वा योऽपि कोपि वा ५९
तमुद्दिश्यापि नो कुर्यादाततायिनमप्युत
मनसा कर्म्मणा वाचा योऽपि कोपि शिवाश्रितः ६०
स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य शिवा श्रितमथापि वा
कृत्वाभिचारिकं कर्म सद्यो विनिपतेन्नरः ६१
स्वराष्ट्रपालकं तस्माच्छिवभक्तं च कञ्चन
न हिंस्यादभिचाराद्यैर्यदीच्छेत्सुखमात्मनः ६२
अन्यं कमपि चोद्दिश्य कृत्वा वै मारणादिकम्
पश्चात्तापेन संयुक्तः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ६३
बाणलिंगेऽपि वा कुर्यान्निर्धनो धनवानपि
स्वयंभूतेऽथ वा लिंगे आर्षके वैदिकेऽपि वा ६४
अभावे हेमरत्नानामशक्तौ च तदर्जने
मनसैवाचरेदेतद्द्रव्यैर्वा प्रतिरूपकैः ६५
क्वचिदंशे तु यः शक्तस्त्वशक्तः क्वचिदंशके
सोऽपि शक्त्यनुसारेण कुर्वंश्चेत्फलमृच्छति ६६
कर्मण्यनुष्ठितेऽप्यस्मिन्फलं यत्र न दृश्यते

द्विस्त्रिर्वावर्त्तयेत्तत्र सर्वथा दृश्यते फलम् ६७
पूजोपयुक्तं यद्द्रव्यं हेमरत्नाद्यनुत्तमम्
तत्सर्वं गुरवे दद्याद्दक्षिणां च ततः पृथक् ६८
स चेन्नेच्छति तत्सर्वं शिवाय विनिवेदयेत्
अथवा शिवभक्तेभ्यो नान्येभ्यस्तु प्रदीयते ६९
यः स्वयं साधयेच्छक्त्या गुर्वादिनिरपेक्षया
सोऽप्येवमाचरेदत्र न गृह्णीयात्स्वयं पुनः ७०
स्वयं गृह्णाति यो लोभात्पूजांगद्रव्यमुत्तमम्
कांक्षितं न लभेन्मूढो नात्र कार्या विचारणा ७१
अर्चितं यत्तु तल्लिंगं गृह्णीयाद्वा नवा स्वयम्
गृह्णीयाद्यदि तन्नित्यं स्वयं वान्योऽपि वार्चयेत् ७२
यथोक्तमेव कर्मैतदाचरेद्योऽनपायतः
फलं व्यभिचरेन्नैवमित्यतः किं प्ररोचकम् ७३
तथाप्युद्देशतो वक्ष्ये कर्मणः सिद्धिमुत्तमम्
अपि शत्रुभिराक्रांतो व्याधिभिर्वाप्यनेकशः ७४
मृत्योरास्यगतश्चापि मुच्यते निरपायतः
पूजायतेऽतिकृपणो रिक्तो वैश्रवणायते ७५
कामायते विरूपोऽपि वृद्धोऽपि तरुणायते
शत्रुर्मित्रायते सद्यो विरोधी किंकरायते ७६
विषायते यदमृतं विषमप्यमृतायते
स्थलायते समुद्रोऽपि स्थलमप्यर्णवायते ७७
महीधरायते श्वभ्रं स च श्वभ्रायते गिरिः
पद्माकरायते वह्निः सरो वैश्वानरायते ७८
वनायते यदुद्यानं तदुद्यानायते वनम्
सिंहायते मृगः क्षुद्रः सिंहः क्रीडामृगायते ७९

स्त्रियोऽभिसारिकायन्ते लक्ष्मीः सुचरितायते
स्वैरप्रेष्यायते वाणी कीर्तिस्तु गणिकायते ८०
स्वैराचारायते मेधा वज्रसूचीयते मनः
महावातायते शक्तिर्बलं मत्तगजायते ८१
स्तम्भायते समुद्योगैः शत्रुपक्षे स्थिता क्रिया
शत्रुपक्षायतेऽरीणां सर्व एव सुहृज्जनः ८२
शत्रवः कुणपायन्ते जीवन्तोपि सबांधवाः
आपन्नोऽपि गतारिष्टः स्वयं खल्वमृतायते ८३
रसाय नायते नित्यमपथ्यमपि सेवितम्
अनिशं क्रियमाणापि रतिस्त्वभिनवायते ८४
अनागतादिकं सर्वं करस्थामलकायते
यादृच्छिकफलायन्ते सिद्धयोऽप्यणिमादयः ८५
बहुनात्र किमुक्तेन सर्वकामार्थसिद्धिषु
अस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते त्वनवाप्यं न विद्यते ८६
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
ऐहिकसिद्धिकर्मवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२

अध्याय ३३

उपमन्युरुवाच
अतः परं प्रवक्ष्यामि केवलामुष्मिकं विधिम्
नैतेन सदृशं किंचित्कर्मास्ति भुवनत्रये १
पुण्यातिशयसंयुक्तः सर्वैर्देवैरनुष्ठितः
ब्रह्मणा विष्णुना चैव रुद्रेण च विशेषतः २
इंद्रादिलोकपालैश्च सूर्याद्यैर्नवभिर्ग्रहैः
विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः ३

श्वेतागस्त्यदधीचाद्यैरस्माभिश्च शिवाश्रितैः
नंदीश्वरमहाकालभृंगीशाद्यैर्गणेश्वरैः ४
पातालवासिभिर्दैत्यैः शेषाद्यैश्च महोरगैः
सिद्धैर्यक्षैश्च गंधर्वै रक्षोभूतपिशाचकैः ५
स्वंस्वं पदमनुप्राप्तं सर्वैरयमनुष्ठितः
अनेन विधिना सर्वे देवा देवत्वमागताः ६
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः
रुद्रो रुद्रत्वमापन्न इंद्रश्चेन्द्रत्वमागतः ७
गणेशश्च गणेशत्वमनेन विधिना गतः
सितचंदनतोयेन लिंगं स्नाप्य शिवं शिवाम्
श्वेतैर्विकसितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च ८
तत्र पद्मासनं रम्यं कृत्वा लक्षणसंयुतम्
विभवे सति हेमाद्यै रत्नाद्यैर्वा स्वशक्तितः ९
मध्ये केसरजालास्य स्थाप्य लिंगं कनीयसम्
अंगुष्ठप्रतिमं रम्यं सर्वगन्धमयं शुभम् १०
दक्षिणे स्थापयित्वा तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्
अगुरुं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमे तु मनःशिलाम् ११
उत्तरे चंदनं दद्याद्धरितालं तु पूर्वतः
सुगन्धैः कुसुमै रम्यैर्विचित्रैश्चापि पूजयेत् १२
धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सर्वतश्च सगुग्गुलम्
वासांसि चातिसूक्ष्माणि विकाशानि निवेदयेत् १३
पायसं घृतसंमिश्रं घृतदीपांश्च दापयेत्
सर्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत्प्रदक्षिणाम् १४
प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वा चान्ते क्षमापयेत्
सर्वोपहारसंमिश्रं ततो लिंगं निवेदयेत् १५

शिवाय शिवमन्त्रेण दक्षिणामूर्तिमाश्रितः
एवं योऽर्चयते नित्यं पञ्चगन्धमयं शुभम् १६
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते
एतद्व्रतोत्तमं गुह्यं शिवलिंगमहाव्रतम् १७
भक्तस्य ते समाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित्
देयं च शिवभक्तेभ्यः शिवेन कथितं पुरा १८
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
आमुष्मिककर्मविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

अध्याय ३४

उपमन्युरुवाच
नित्यनैमित्तिकात्काम्याद्या सिद्धिरिह कीर्तिता
सा सर्वा लभ्येत सद्यो लिंगबेरप्रतिष्ठया १
सर्वो लिंगमयो लोकस्सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्
तस्मात्प्रतिष्ठिते लिंगे भवेत्सर्वं पतिष्ठितम् २
ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेणान्येन केन वा
लिंगप्रतिष्ठामुत्सृज्य क्रियते स्वपदस्थितिः ३
किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम्
पर्तिष्ठितं शिवेनापि लिंगं वैश्वेश्वरं यतः ४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परत्रेह च शर्मणे
स्थापयेत्परमेशस्य लिंगं बेरमथापि वा ५
श्रीकृष्ण उवाच
किमिदं लिंगमाख्यातं कथं लिंगी महेश्वरः
कथं च लिंगभावोऽस्य कस्मादस्मिञ्छिवोऽर्च्यते ६
उपमन्युरुवाच

अव्यक्तं लिंगमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम्
अनाद्यनंतं विश्वस्य यदुपादानकारणम् ७
तदेव मूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका
तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ८
अशुद्धं चैव शुद्धं यच्छुद्धाशुद्धं च तत्त्रिधा
ततः शिवो महेशश्च रुद्रो विष्णुः पितामहः ९
भूतानि चेन्द्रियैर्जाता लीयन्तेऽत्र शिवाज्ञया
अत एव शिवो लिंगो लिंगमाज्ञापयेद्यतः १०
यतो न तदनाज्ञातं कार्याय प्रभवेत्स्वतः
ततो जातस्य विश्वस्य तत्रैव विलयो यतः ११
अनेन लिंगतां तस्य भवेन्नान्येन केनचित्
लिंगं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम् १२
अतस्तत्र शिवः साम्बो नित्यमेव समर्चयेत्
लिंगवेदी महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः १३
तयोः संपूजनादेव स च सा च समर्चितौ
न तयोर्लिंगदेहत्वं विद्यते परमार्थतः १४
यतस्त्वेतौ विशुद्धौ तौ देहस्तदुपचारतः
तदेव परमा शक्तिः शिवस्य परमात्मनः १५
शक्तिराज्ञां यदादत्ते प्रसूते तच्चराचरम्
न तस्य महिमा शक्यो वक्तुं वर्षशतैरपि १६
येनादौ मोहितौ स्यातां ब्रह्मनारायणावपि
पुरा त्रिभुवनस्यास्य प्रलये समुपस्थिते १७
वारिशय्यागतो विष्णुः सुष्वापानाकुलः सुखम्
यदृच्छया गतस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः १८
ददर्श पुण्डरीकाक्षं स्वपन्तं तमनाकुलम्

मायया मोहितः शम्भोर्विष्णुमाह पितामहः १९
कस्त्वं वदेत्यमर्षेण प्रहृत्योत्थाप्य माधवम्
स तु हस्तप्रहारेण तीव्रेणाभिहतः क्षणात् २०
प्रबुद्धोत्थाय शयनाद्ददर्श परमेष्ठिनम्
तमाह चांतस्संक्रुद्धः स्वयमक्रुद्धवद्धरिः २१
कुतस्त्वमागतो वत्स कस्मात्त्वं व्याकुलो वद
इति विष्णुवचः श्रुत्वा प्रभुत्वगुणसूचकम् २२
रजसा बद्धवैरस्तं ब्रह्मा पुनरभाषत
वत्सेति मां कुतो ब्रूषे गुरुः शिष्यमिवात्मनः २३
मां न जानासि किं नाथं प्रपंचो यस्य मे कृतिः
त्रिधात्मानं विभज्येदं सृष्ट्वाथ परिपाल्यते २४
संहरामि नमे कश्चित्स्रष्टा जगति विद्यते
इत्युक्ते सति सोऽप्याह ब्रह्माणं विष्णुरव्ययः २५
अहमेवादिकर्तास्य हर्ता च परिपालकः
भवानपि ममैवांगादवतीर्णः पुराव्ययात् २६
मन्नियोगात्त्वमात्मानं त्रिधा कृत्वा जगत्त्रयम्
सृजस्यवसि चांते तत्पुनः प्रतिसृजस्यपि २७
विस्मृतोसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्
तवापि जनकं साक्षान्मामेवमवमन्यसे २८
तवापराधो नास्त्यत्र भ्रांतोसि मम मायया
मत्प्रसादादियं भ्रांतिरपैष्यति तवाचिरात् २९
शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्
कर्ता भर्ता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः ३०
एवमेव विवादोभूद्ब्रह्मविष्णवोः परस्परम्
अभवच्च महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ३१

मुष्टिभिर्न्निघ्नतोस्तीव्रं रजसा बद्धवैरयोः
तयोर्दर्पापहाराय प्रबोधाय च देवयोः ३२
मध्ये समाविरभवल्लिंगमैश्वरमद्भुतम्
ज्वालामालासहस्राढ्यमप्रमेयमनौपमम् ३३
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम्
तस्य ज्वालासहस्रेण ब्रह्मविष्णू विमोहितौ ३४
विसृज्य युद्धं किं त्वेतदित्यचिंतयतां तदा
न तयोस्तस्य याथात्म्यं प्रबुद्धमभवद्यदा ३५
तदा समुद्यतौ स्यातां तस्याद्यंतं परीक्षितुम् ३६
तत्र हंसाकृतिर्ब्रह्मा विश्वतः पक्षसंयुतः
मनोनिलजवो भूत्वा गतस्तूद्धर्वं प्रयत्नतः ३७
नारायणोपि विश्वात्मा लीलाञ्जनचयोपमम्
वाराहममितं रूपमस्थाय गतवानधः ३८
एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन् विष्णुरधोगतः
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः ३९
तावत्कालं गतश्चोद्धर्वं तस्यांतं ज्ञातुमिच्छया
श्रांतोत्यंतमदृष्ट्वांतं पापताधः पितामहः ४०
तथैव भगवान् विष्णुः श्रांतः संविग्नलोचनः
क्लेशेन महता तूर्णमधस्तादुत्थितोऽभवत् ४१
समागतावथान्योन्यं विस्मयस्मेरवीक्षणौ
मायया मोहितौ शंभोः कृत्याकृत्यं न जग्मतुः ४२
पृष्ठतः पार्श्वतस्तस्य चाग्रतश्च स्थितावुभौ
प्रणिपत्य किमात्मेदमित्यचिंतयतां तदा ४३

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
हरिविधिमोहवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४

अध्याय ३५

उपमन्युरुवाच
अथाविरभवत्तत्र सनादं शब्दलक्षणम्
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ब्रह्मणः प्रतिपादकम् १
तदप्यविदितं तावद्ब्रह्मणा विष्णुना तथा
रजसा तमसा चित्तं तयोर्यस्मात्तिरस्कृतम् २
तदा विभक्तमभवच्चतुर्द्धैकं तदक्षरम्
अ उ मेति त्रिमात्राभिः परस्ताच्चार्द्धमात्रया ३
तत्राकारः श्रितो भागे ज्वलल्लिंगस्य दक्षिणे
उकारश्चोत्तरे तद्वन्मकारस्तस्य मध्यतः ४
अर्द्धमात्रात्मको नादः श्रूयते लिंगमूर्द्धनि
विभक्तेऽपि तदा तस्मिन्प्रणवे परमाक्षरे ५
विभावार्थं च तौ देवौ न किंचिदवजग्मतुः
वेदात्मना तदाव्यक्तः प्रणवो विकृतिं गतः ६
तत्राकारो ऋगभवदुकारो यजुरव्ययः
मकारस्साम संजातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः ७
ऋगयं स्थापयामास समासात्त्वर्थमात्मनः
रजोगुणेषु ब्रह्माणं मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि ८
सृष्टिं लोकेषु पृथिवीं तत्त्वेष्वात्मानमव्ययम्
कलाध्वनि निवृत्तिं च सद्यं ब्रह्मसु पंचसु ९
लिंगभागेष्वधोभागं बीजाख्यं कारणत्रये
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यं बौद्धं यदणिमादिषु १०
तदित्थमर्थैर्दशभिर्व्याप्तं विश्वमृचा जगत्
अथोपस्थापयामास स्वार्थं दशविधं यजुः ११
सत्त्वं गुणेषु विष्णुं च मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि

स्थितिं लोकेष्वंतरिक्षं विद्यां तत्त्वेषु च त्रिषु १२
कलाध्वसु प्रतिष्ठां च वामं ब्रह्मसु पंचसु
मध्यं तु लिंगभागेषु योनिं च त्रिषु हेतुषु १३
प्राकृतं च यथैश्वर्यं तस्माद्विश्वं यजुर्मयम्
ततोपस्थापयामास सामार्थं दशधात्मनः १४
तमोगुणेष्वथो रुद्रं मूर्तिष्वाद्यं क्रियासु च
संहृतिं त्रिषु लोकेषु तत्त्वेषु शिवमुत्तमम् १५
विद्याकलास्वघोरं च तथा ब्रह्मसु पंचसु
लिंगभागेषु पीठोर्द्ध्वं बीजिनं कारणत्रये १६
पौरुषं च तथैश्वर्यमित्थं साम्ना ततं जगत्
अथाथर्वाह नैर्गुण्यमर्थं प्रथममात्मनः १७
ततो महेश्वरं साक्षान्मूर्तिष्वपि सदाशिवम्
क्रियासु निष्क्रियस्यापि शिवस्य परमात्मनः १८
भूतानुग्रहणं चैव मुच्यंते येन जंतवः
लोकेष्वपि यतो वाचो निवृत्ता मनसा सह १९
तदूर्द्ध्वमुन्मना लोकात्सोमलोकमलौकिकम्
सोमस्सहोमया यत्र नित्यं निवसतीश्वरः २०
तदूर्द्ध्वमुन्मना लोकाद्यं प्राप्तो न निवर्तते
शांतिं च शांत्यतीतां च व्यापिकां चै कलास्वपि २१
तत्पूरुषं तथेशानं ब्रह्म ब्रह्मसु पंचसु
मूर्द्धानमपि लिंगस्य नादभागेष्वनुत्तमम् २२
यत्रावाह्य समाराध्यः केवलो निष्कलः शिवः
तत्तेष्वपि तदा बिंदोर्नादाच्छक्तेस्ततः परात् २३
तत्त्वादपि परं तत्त्वमतत्त्वं परमार्थतः
कारणेषु त्रयातीतान्मायाविक्षोभकारणात् २४

अनंताच्छुद्धविद्यायाः परस्ताच्च महेश्वरात्
सर्वविद्येश्वराधीशान्न पराच्च सदाशिवात् २५
सर्वमंत्रतनोर्देवाच्छक्तित्रयसमन्वितात्
पंचवक्त्राद्दशभुजात्साक्षात्सकलनिष्कलात् २६
तस्मादपि पराद्बिंदोरर्द्धेंदोश्च ततः परात्
ततः परान्निशाधीशान्नादाख्याच्च ततः परात् २७
ततः परात्सुषुम्नेशाद्ब्रह्मरंध्रेश्वरादपि
ततः परस्माच्छक्तेश्च परस्ताच्छिवतत्त्वतः २८
परमं कारणं साक्षात्स्वयं निष्कारणं शिवम्
कारणानां च धातारं ध्यातारां ध्येयमव्ययम् २९
परमाकाशमध्यस्थं परमात्मोपरि स्थितं
सर्वैश्वर्येण संपन्नं सर्वेश्वरमनीश्वरम् ३०
ऐश्वर्याच्चापि मायेयादशुद्धान्मानुषादिकात्
अपराच्च परात्त्याज्यादधिशुद्धाध्वगोचरात् ३१
तत्पराच्छुद्धविद्याद्यादुन्मनांतात्परात्परात्
परमं परमैश्वर्यमुन्मनाद्यमनादि च ३२
अपारमपराधीनं निरस्तातिशयं स्थिरम्
इत्थमर्थैर्दशविधैरियमाथर्वणी श्रुतिः ३३
यस्माद्गरीयसी तस्माद्विश्वं व्याप्तमथर्वणात्
ऋग्वेदः पुनराहेदं जाग्रद्रूपं मयोच्यते ३४
येनाहमात्मतत्त्वस्य नित्यमस्म्यभिधायकः
यजुर्वेदोऽवदत्तद्वत्स्वप्नावस्था मयोच्यते ३५
भोग्यात्मना परिणता विद्यावेद्या यतो मयि
साम चाह सुषुप्त्याख्यमेवं सर्वं मयोच्यते ३६
ममार्थेन शिवेनेदं तामसेनाभिधीयते

अथर्वाह तुरायाख्यं तुरीयातीतमेव च ३७
मयाभिधीयते तस्मादध्वातीतपदोस्म्यहम्
अध्वात्मकं तु त्रितयं शिवविद्यात्मसंज्ञितम् ३८
तत्त्रैगुण्यं त्रयीसाध्यं संशोध्यं च पदैषिणा
अध्वातीतं तुरीयाख्यं निर्वाणं परमं पदम् ३९
तदतीतं च नैर्गुण्यादध्वनोस्य विशोधकम्
द्वयोः प्रमापको नादो नदांतश्च मदात्मकः ४०
तस्मान्ममार्थस्वातंत्र्यात्प्रधानः परमेश्वरः
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्रधान्ययोगतः ४१
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते
सवार्थवाचकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ४२
तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः
शिवो हि प्रणवो ह्येष प्रणवो हि शिवः स्मृतः ४३
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः
चिंतया रहितो रुद्रो वाचोयन्मनसा सह ४४
अप्राप्य तन्निवर्तंते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः
एकाक्षरादकाराख्यादात्मा ब्रह्माभिधीयते ४५
एकाक्षरादुकाराख्याद्विधा विष्णुरुदीर्यते
एकाक्षरान्मकाराख्याच्छिवो रुद्र उदाहृतः ४६
दक्षिणांगान्महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञिकः
वामांगादभवद्विष्णुस्ततो विद्येति संज्ञितः ४७
हृदयान्नीलरुद्रो भूच्छिवस्य शिवसंज्ञिकः
सृष्टेः प्रवर्तको ब्रह्मा स्थितेर्विष्णुर्विमोहकः ४८
संहारस्य तथा रुद्रस्तयोर्नित्यं नियामकः ४९
तस्मात्त्रयस्ते कथ्यंते जगतः कारणानि च

कारणत्रयहेतुश्च शिवः परमकारणम् ५०
अर्थमेतमविज्ञाय रजसा बद्धवैरयोः
युवयोः प्रतिबोधाय मध्ये लिंगमुपस्थितम् ५१
एवमोमिति मां प्राहुर्यदिहोक्तमथर्वणा
ऋचो यजूंषि सामानि शाखाश्चान्याः सहस्रशः ५२
वेदेष्वेवं स्वयं वक्त्रैर्व्यक्तमित्यवदत्स्वपि
स्वप्नानुभूतमिव तत्ताभ्यां नाध्यवसीयते ५३
तयोस्तत्र प्रबोधाय तमोपनयनाय च
लिंगेपि मुद्रितं सर्वं यथा वेदैरुदाहृतम् ५४
तद्दृष्ट्वा मुद्रितं लिंगे प्रसादाल्लिंगिनस्तदा
प्रशांतमनसौ देवौ प्रबुद्धौ संबभूवतुः ५५
उत्पत्तिं विलयं चैव यथात्म्यं च षडध्वनाम्
ततः परतरं धाम धामवंतं च पूरुषम् ५६
निरुत्तरतरं ब्रह्म निष्कलं शिवमीश्वरम्
पशुपाशमयस्यास्य प्रपंचस्य सदा पतिम् ५७
अकुतोभयमत्यंतमवृद्धिक्षयमव्ययम्
वाह्यमाभ्यंतरं व्याप्तं वाह्याभ्यंतरवर्जितम् ५८
निरस्तातिशयं शश्वद्विश्वलोकविलक्षणम्
अलक्षणमनिर्देश्यमवाग्मनसगोचरम् ५९
प्रकाशैकरसं शांतं प्रसन्नं सततोदितम्
सर्वकल्याणनिलयं शक्त्या तादृशयान्वितम् ६०
ज्ञात्वा देवं विरूपाक्षं ब्रह्मनारायणौ तदा
रचयित्वांजलिं मूर्ध्नि भीतौ तौ वाचमूचतुः ६१
ब्रह्मोवाच
अज्ञो वाहमभिज्ञो वा त्वयादौ देव निर्मितः

ईदृशीं भ्रांतिमापन्न इति कोऽत्रापराध्यति ६२
आस्तां ममेदमज्ञानं त्वयि सन्निहते प्रभो
निर्भयः कोऽभिभाषेत कृत्यं स्वस्य परस्य वा ६३
आवयोर्देवदेवस्य विवादोऽपि हि शोभनः
पादप्रणामफलदो नाथस्य भवतो यतः ६४
विष्णुरुवाच
स्तोतुं देव न वागस्ति महिम्नः सदृशी तव
प्रभोरग्रे विधेयानां तूष्णींभावो व्यतिक्रमः ६५
किमत्र संघटेत्कृत्यमित्येवावसरोचितम्
अजानन्नपि यत्किंचित्प्रलप्य त्वां नतोऽस्म्यहम् ६६
कारणत्वं त्वया दत्तं विस्मृतं तव मायया
मोहितोऽहंकृतश्चापि पुनरेवास्मि शासितः ६७
विज्ञापितैः किं बहुभिर्भीतोस्मि भृशमीश्वर
यतोऽहमपरिच्छेद्यं त्वां परिच्छेत्तुमुद्यतः ६८
त्वामुशंति महादेवं भीतानामार्तिनाशनम्
अतो व्यतिक्रमं मेऽद्य क्षंतुमर्हसि शंकर ६९
इति विज्ञापितस्ताभ्यामीश्वराभ्यां महेश्वरः
प्रीतोऽनुगृह्य तौ देवौ स्मितपूर्वमभाषत ७०
ईश्वर उवाच
वत्सवत्स विधे विष्णो मायया मम मोहितौ
युवां प्रभुत्वेऽहंकृत्य बुद्धवैरो परस्परम् ७१
विवादं युद्धपर्यंतं कृत्वा नोपरतौ किल
ततश्छिन्ना प्रजासृष्टिर्जगत्कारणभूतयोः ७२
अज्ञानमानप्रभवाद्वैमत्याद्युवयोरपि
तन्निवर्तयितुं युष्मद्दर्प्पमोहौ मयैव तु ७३

एवं निवारितावद्यलिंगाविर्भावलीलया
तस्माद्भूयो विवादं च व्रीडां चोत्सृज्य कृत्स्नशः ७४
यथास्वं कर्म कुर्यातां भवंतौ वीतमत्सरौ
पुरा ममाज्ञया सार्द्धं समस्तज्ञानसंहिताः ७५
युवाभ्यां हि मया दत्ता कारणत्वप्रसिद्धये
मंत्ररत्नं च सूत्राख्यं पंचाक्षरमयं परम् ७६
मयोपदिष्टं सर्वं तद्युवयोरद्य विस्मृतम्
ददामि च पुनः सर्वं यथापूर्वं ममाज्ञया ७७
यतो विना युवां तेन न क्षमौ सृष्टिरक्षणे
एवमुक्त्वा महादेवो नारायणपितामहौ ७८
मंत्रराजं ददौ ताभ्यां ज्ञानसंहितया सह
तौ लब्ध्वा महतीं दिव्यामाज्ञां माहेश्वरीं पराम् ७९
महार्थं मंत्ररत्नं च तथैव सकलाः कलाः
दंडवत्प्रणतिं कृत्वा देवदेवस्य पादयोः ८०
अतिष्ठतां वीतभयावानंदास्तिमितौ तदा
एतस्मिन्नंतरे चित्रमिंद्रजालवदैश्वरम् ८१
लिंगं क्वापि तिरोभूतं न ताभ्यामुपलभ्यते
ततो विलप्य हाहेति सद्यःप्रणयभंगतः ८२
किमसत्यमिदं वृत्तमिति चोक्त्वा परस्परम्
अचिंत्यवैभवं शंभोर्विचिंत्य च गतव्यथौ ८३
अभ्युपेत्य परां मैत्रीमालिंग्य च परस्परम्
जगद्व्यापारमुद्दिश्य जग्मतुर्देवपुंगवौ ८४
ततः प्रभृति शक्राद्याः सर्व एव सुरासुराः
ऋषयश्च नरा नागा नार्यश्चापि विधानतः
लिंगप्रतिष्ठा कुर्वंति लिंगे तं पूजयंति च ८५

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
हरिविधिमोहनिवारणं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ३५

अध्याय ३६

श्रीकृष्ण उवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्
लिंगस्यापि च बेरस्य शिवेन विहितं यथा १
उपमन्युरुवाच
अनात्मप्रतिकूले तु दिवसे शुक्लपक्षके
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कुर्याल्लिंगं प्रमाणवत् २
स्वीकृत्याथ शुभस्थानं भूपरीक्षां विधाय च
दशोपचारान्कुर्वीत लक्षणोद्धारपूर्वकान् ३
तेषां दशोपचाराणां पूर्वं पूज्य १ विनायकम्
स्थानशुद्ध्यादिकं कृत्वालिंगं स्नानालयं नयेत् ४
शलाकया कांचनया २ कुंकुमादिरसाक्तया
लक्षितं लक्षणं शिल्पशास्त्रेण विलिखेत्ततः ५
अष्टमृत्सलिलैर्वाथ पंचमृत्सलिलैस्तथा
लिण्गं पिंडिकया सार्द्धं पंचगव्यैश्च शोधयेत् ६
सवेदिकं समभ्यर्च्य दिव्याद्यं तु जलाशयम्
नीत्वाधिवासयेत्तत्र लिंगं पिंडिकया सह ७
अधिवासालये शुद्धे सर्वशोभासमन्विते
सतोरणे सावरणे दर्भमालासमावृते ८
दिग्गजाष्टकसंपन्ने दिक्पालाष्टघटान्विते
अष्टमंगलकैर्युक्ते कृतदिक्पालकार्चिते ९
तेजसं दारवं वापि कृत्वा पद्मासनांकितम्

विन्यसेन्मध्यतस्तत्र विपुलं पीठकालयम् १०
द्वारपालान्समभ्यर्च्य भद्रादींश्चतुरःक्रमात्
समुद्रश्च विभद्रश्च सुनंदश्च विनंदकः ११
स्नापयित्वा समभ्यर्च्य लिंगं वेदिकया सह
सकूर्चाभ्यां तु वस्त्राभ्यां समावेष्ट्य समंततः १२
प्रापय्य शनकैस्तोयं पीठिकोपरि शाययेत्
प्राक्शिरस्कमधःसूत्रं पिंडिकां चास्य पश्चिमे १३
सर्वमंगलसंयुक्तं लिंगं तत्राधिवासयेत्
पंचरात्रं त्रिरात्रं वाप्येकरात्रमथापि वा १४
विसृज्य पूजितं तत्र शोधयित्वा च पूर्ववत्
संपूज्योत्सवमार्गेण शयनालयमानयेत् १५
तत्रापि शयनस्थानं कुर्यान्मंडलमध्यतः
शुद्धैर्जलैः स्नापयित्वा लिंगमभ्यर्चयेत्क्रमात् १६
ऐशान्यां पद्ममालिख्य शुद्धलिप्ते महीतले
शिवकुंभं शोधयित्वा तत्रावाह्य शिवं यजेत् १७
वेदीमध्ये सितं पद्मं परिकल्प्य विधानतः
तस्य पश्चिमतश्चापि चंडिकापद्ममालिखेत् १८
क्षौमाद्यैर्वाहतैर्वस्त्रैः पुष्पैर्दर्भैरथापि वा
प्रकल्प्य शयनं तस्मिन्हेमपुष्पं विनिक्षिपेत् १९
तत्र लिंगं समानीय सर्वमंगलनिःस्वनैः
रक्तेन वस्त्रयुग्मेन सकूर्चेन समंततः २०
सह पिंडिकयावेष्ट्य शाययेच्च यथा पुरा
पुरस्तात्पद्ममालिख्य तद्दलेषु यथाक्रमम् २१
विद्येशकलशान्न्यस्येन्मध्ये शैवीं च वर्द्धनीम्
परीत्य पद्मत्रितयं जुहुयुर्द्विजसत्तमाः २२

ते चाष्टमूर्त्तयः कल्प्याः पूर्वादिपरितः स्थिताः
चत्वारश्चाथ वा दिक्षु स्वध्येतारस्सजापकाः २३
जुहुयुस्ते विरंच्याद्याश्चतस्रो मूर्तयः स्मृताः
दैशिकः प्रथमं तेषामैशान्यां पश्चिमेऽथ वा २४
प्रधानहोमं कुर्वीत सप्तद्रव्यैर्यथाक्रमम्
आचार्य्यात्पादमर्द्धं वा जुहुयुश्चापरे द्विजाः २५
प्रधानमेकमेवात्र जुहुयादथ वा गुरुः
पूर्वं पूर्णाहुतिं हुत्वा घृतेनाष्टोत्तरं शतम् २६
मूर्ध्नि मूलेन लिंगस्य शिवहस्तं प्रविन्यसेत्
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा क्रमाद्द्रव्यैश्च सप्तभिः २७
हुत्वाहुत्वा स्पृशेल्लिंगं वेदिकां च पुनः पुनः
पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा क्रमाद्दद्याच्च दक्षिणाम् २८
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होतृ-णां स्थपतेरपि
तदर्द्धं देयमन्येभ्यः सदस्येभ्यश्च शक्तितः २९
ततः श्वभ्रे वृषं हैमं कूर्चं वापि निवेश्य च
मृदंभसा पंचगव्यैः पुनः शुद्धजलेन च ३०
शोधितां चंदनालिप्तां श्वभ्रे ब्रह्मशिलां क्षिपेत्
करन्यासं ततः कृत्वा नवभिः शक्तिनामभिः ३१
हरितालादिधातूंश्च बीजगंधौषधैरपि
शिवशास्त्रोक्तविधिना क्षिपेद्ब्रह्मशिलोपरि ३२
प्रतिलिंगं तु संस्थाप्य क्षीरं वृक्षसमुद्भवम्
स्थितं बुद्ध्वा तदुत्सृज्य लिंगं ब्रह्मशिलोपरि ३३
प्रागुदक्प्रवरां किंचित्स्थापयेन्मूलविद्यया
पिंडिकां चाथ संयोज्य शाक्तं मूलमनुस्मरन् ३४
बन्धनं बंधकद्रव्यैः कृत्वा स्थानं विशोध्य च

दत्त्वा चार्घ्यं च पुष्पाणि कुर्युर्यवनिकां पुनः ३५
यथायोग्यं निषेकादि लिंगस्य पुरतस्तदा
आनीय शयनस्थानात्कलशान्विन्यसेत्क्रमात् ३६
महापूजामथारभ्य संपूज्य कलशान्दश
शिवमंत्रमनुस्मृत्य शिवकुंभजलांतरे ३७
अंगुष्ठानामिकायोगादादाय तमुदीरयेत्
न्यसेदीशानभागस्य मध्ये लिंगस्य मंत्रवित् ३८
शक्तिं न्यसेत्तथा विद्यां विद्येशांश्च यथाक्रमम्
लिण्गमूले शिवजलैस्ततो लिंगं निषेचयेत् ३९
वर्द्धन्यां पिंडिकालिंगं विद्येशकलशैः पुनः
अभिषिच्यासनं पश्चादाधाराद्यं प्रकल्पयेत् ४०
कृत्वा पंचकलान्यासं दीप्तं लिंगमनुस्मरेत्
आवाहयेच्छिवौ साक्षात्प्राञ्जलिः प्रागुदण्मुखः ४१
वृषाधिराजमारुह्य विमानं वा नभस्तलात्
अलंकृतं सहायांतं देव्या देवमनुस्मरन्
सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वमंगलनिस्वनैः ४२
ब्रह्मविष्णुमहेशार्कशक्राद्यैर्देवदानवैः
आनंदक्लिन्नसर्वांगैर्विन्यस्तांजलिमस्तकैः ४३
स्तुवद्भिरेव नृत्यद्भिर्नामद्भिरभितो वृतम्
ततः पंचोपचारांश्च कृत्वा पूजां समापयेत् ४४
नातः परतरः कश्चिद्विधिः पञ्चोपचारकात्
प्रतिष्ठां लिंगवत्कुर्यात्प्रतिमास्वपि सर्वतः ४५
लक्षणोद्धारसमये कार्यं नयनमोचनम्
जलाधिवासे शयने शाययेत्तान्त्वधोमुखीम् ४६
कुम्भोदशायितां मंत्रैर्हृदि तां सन्नियोजयेत्

कृतालयां परामाहुः प्रतिष्ठामकृतालयात् ४७
शक्तः कृतालयः पश्चात्प्रतिष्ठाविधिमाचरेत्
अशक्तश्चेत्प्रतिष्ठाप्य लिंगं बेरमथापि वा ४८
शक्तेरनुगुणं पश्चात्प्रकुर्वीत शिवालयम्
गृहार्चां च पुनर्वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ४९
कृत्वा कनीयसंबेरं लिंगं वा लक्षणान्वितम्
अयने चोत्तरे प्राप्ते शुक्लपक्शे शुभे दिने ५०
देवीं कृत्वा शुभे देशे तत्राब्जं पूर्ववल्लिखेत्
विकीर्य पत्रपुष्पाद्यैर्मध्ये कुंभं निधाय च ५१
परितस्तस्य चतुरः कलशान् दिक्षु विन्यसेत्
पंच ब्रह्माणि तद्बीजैस्तेषु पंचसु पंचभिः ५२
न्यस्य संपूज्य मुद्रादि दर्शयित्वाभिरक्ष्य च
विशोध्य लिंगं बेरं वा मृत्तोयाद्यैर्यथा पुरा ५३
स्थापयेत्पुष्पसंछन्नमुत्तरस्थे वरासने
निधाय पुष्पं शिरसि प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीजलैः ५४
समभ्यर्च्य पुनः पुष्पैर्जयशब्दादिपूर्वकम्
कुम्भैरीशानविद्यांतैः स्नापयेन्मूलविद्यया ५५
ततः पंचकलान्यासं कृत्वा पूजां च पूर्ववत्
नित्यमाराधयेत्तत्र देव्या देवं त्रिलोचनम् ५६
एकमेवाथ वा कुंभं मूर्तिमन्त्रसमन्वितम्
न्यस्य पद्मांतरे सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत् ५७
अत्यंतोपहतं लिंगं विशोध्य स्थापयेत्पुनः
संप्रोक्षयेदुपहतमनागुपहतं यजेत् ५८
लिंगानि बाणसंज्ञानि स्थापनीयानि वा न वा
तानि पूर्वं शिवेनैव संस्कृतानि यतस्ततः ५९

शेषाणि स्थापनीयानि यानि दृष्टानि बाणवत्
स्वयमुद्भूतलिंगे च दिव्ये चार्षे तथैव च ६०
अपीठे पीठमावेश्य कृत्वा संप्रोक्षणं विधिम्
यजेत्तत्र शिवं तेषां प्रतिष्ठा न विधीयते ६१
दग्धं श्लथं क्षतांगं च क्षिपेल्लिंगं जलाशये
संधानयोग्यं संधाय प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ६२
बेराद्वा विकलाल्लिंगाद्देवपूजापुरस्सरम्
उद्वास्य हृदि संधानं त्यागं वा युक्तमाचरेत् ६३
एकाहपूजाविहतौ कुर्याद्द्विगुणमर्चनम्
द्विरात्रे च महापूजां संप्रोक्षणमतः परम् ६४
मासादूर्ध्वमनेकाहं पूजा यदि विहन्यते
प्रतिष्ठा प्रोच्यते कैश्चित्कैश्चित्संप्रोक्षणक्रमः ६५
संप्रोक्षणे तु लिंगादेर्देवमुद्वास्य पूर्ववत्
अष्टपञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदंभसा ६६
गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च
प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ६७
सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यस्य लिंगस्य मस्तके
पंचवारं जपेन्मूलमष्टोत्तरशतं ततः ६८
ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठांतं संस्पृशेदपि
पूजां च महतीं कुर्याद्देवमावाह्य पूर्ववत् ६९
अलब्धे स्थापिते लिंगे शिवस्थाने जलेऽथ वा
वह्नौ रवौ तथा व्योम्नि भगवंतं शिवं यजेत् ७०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
प्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६

अध्याय ३७

श्रीकृष्ण उवाच
ज्ञाने क्रियायां चर्यायां सारमुद्धृत्य संग्रहात्
उक्तं भगवता सर्वं श्रुतं श्रुतिसमं मया १
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगं परमदुर्लभम्
साधिकारं च सांगं च सविधिं सप्रयोजनम् २
यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपमर्दतः
सद्यः साधयितुं शक्यं येन स्यान्नात्महा नरः ३
तच्च तत्कारणं चैव तत्कालकरणानि च
तद्भेदतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ४
उपमन्युरुवाच
स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण सर्वप्रश्नार्थवेदिना
ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्ये शृणु समाहितः ५
निरुद्धवृत्त्यंतरस्यं शिवे चित्तस्य निश्चला
या वृत्तिः स समासेन योगः स खलु पंचधा ६
मंत्रयोगःस्पर्शयोगो भावयोगस्तथापरः
अभावयोगस्सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः ७
मंत्राभ्यासवशेनैव मंत्रवाच्यार्थगोचरः
अव्याक्षेपा मनोवृत्तिर्मंत्रयोग उदाहृतः ८
प्राणायाममुखा सैव स्पर्शे योगोभिधीयते
स मंत्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोगः प्रकीर्तितः ९
विलीनावयवं विश्वं रूपं संभाव्यते यतः
अभावयोगः संप्रोक्तोऽनाभासाद्वस्तुनः सतः १०
शिवस्वभाव एवैकश्चिंत्यते निरुपाधिकः
यथा शैवमनोवृत्तिर्महायोग इहोच्यते ११

दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषये मनः
यस्य तस्याधिकारोस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित् १२
विषयद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च
दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः १३
अष्टांगो वा षडंगो वा सर्वयोगः समासतः
यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्यं तथासनम् १४
प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च
समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभिः १५
आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोथ धारणा
ध्यानं समाधिर्योगस्य षडंगानि समासतः १६
पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशास्त्रे समीरितम्
शिवागमेषु चान्येषु विशेषात्कामिकादिषु १७
योगशास्त्रेष्वपि तथा पुराणेष्वपि केषु च
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः
यम इत्युच्यते सद्भिः पंचावयवयोगतः १८
शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्रणिधिरेव च
इति पंचप्रभेदस्स्यान्नियमः स्वांशभेदतः १९
स्वस्तिकं पद्ममध्येंदुं वीरं योगं प्रसाधितम्
पर्यंकं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा २०
प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनम्
तद्रोचकं पूरकं च कुंभकं च त्रिधोच्यते २१
नासिकापुटमंगुल्या पीडयैकमपरेण तु
औदरं रेचयेद्वायुं तथायं रेचकः स्मृतः २२
बाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत्
नासापुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम् २३

न मुंचति न गृह्णाति वायुमंतर्बहिः स्थितम्
संपूर्णं कुंभवत्तिष्ठेदचलः स तु कुंभक २४
रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुतं न विलंबितम्
तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः २५
रेचकादिषु योभ्यासो नाडीशोधनपूर्वकः
स्वेच्छोत्क्रमणपर्यंतः प्रोक्तो योगानुशासने २६
कन्यकादिक्रमवशात्प्राणायामनिरोधनम्
तच्चतुर्द्धोपदिष्टं स्यान्मात्रागुणविभागतः २७
कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः
मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः २८
उत्तमस्तु त्रिरुद्धातः षड्विंशन्मात्रकः परः
स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः २९
आनंदोद्भवरोमांचनेत्राश्रूणां विमोचनम्
जल्पभ्रमणमूर्च्छाद्यं जायते योगिनः परम् ३०
जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलंबितम्
अंगुलीस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रेति प्रकीर्तिता ३१
मात्राक्रमेण विज्ञेयाश्चोद्घातक्रमयोगतः
नाडीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायामं समाचरेत् ३२
अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः
जपं ध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ३३
अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामःशताधिकः
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम् ३४
प्राणस्य विजयादेव जीयंते देह १वायवः
प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च ३५
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः

प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते ३६
अवाणनयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते
व्यानो व्यानशयत्यंगान्यशेषाणि विवर्धयन् ३७
उद्वेजयति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः
समं नयति सर्वांगं समानस्तेन गीयते ३८
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः
कृकलः क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ३९
न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः
क्रमेणाभ्यस्यमानोयं प्राणायामप्रमाणवान् ४०
निर्दहत्यखिलं दोषं कर्तुर्देहं च रक्षति
प्राणे तु विजिते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत् ४१
विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते
बहुभोजनसामर्थ्यं चिरादुच्छ्वासनं तथा ४२
लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम्
सर्वरोगक्षयश्चैव बलं तेजः सुरूपता ४३
धृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता
तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः ४४
प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्वं विषयेष्विह ४५
आहत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहार उच्यते
नमःपूर्वाणींद्रियाणि स्वर्गं नरकमेव च ४६
निगृहीतनिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च
तस्मात्सुखार्थी मतिमाञ्ज्ञानवैराग्यमास्थितः ४७
इंद्रियाश्वान्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत्
धारणा नाम चित्तस्य स्थानबन्धस्समासतः ४८

स्थानं च शिव एवैको नान्यद्दोषत्रयं यतः
कालं कंचावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापितं मनः ४९
न तु प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणा स्यान्न चान्यथा
मनसः प्रथमं स्थैर्यं धारणातः प्रजायते ५०
तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारणाभ्यासयोगतः
ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहुः ५१
अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते
ध्येयावस्थितचित्तस्य सदृशः प्रत्ययश्च यः ५२
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रवाहो ध्यानमुच्यते
सर्वमन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकरः ५३
परो ध्येयोऽधिदेवेशः समाप्ताथर्वणी श्रुतिः
तथा शिवा परा ध्येया सर्वभूतगतौ शिवौ ५४
तौ श्रुतौ स्मृतिशास्त्रेभ्यः सर्वगौ सर्वदोदितौ
सर्वज्ञौ सततं ध्येयौ नानारूपविभेदतः ५५
विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्वः प्रत्ययश्चाणिमादिकम्
इत्येतद्द्विविधं ज्ञेयं ध्यानस्यास्य प्रयोजनम् ५६
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम्
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत योगवित् ५७
ज्ञानवैराग्यसंपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः
निर्ममश्च सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः ५८
जपाच्छ्रांतः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रांतः पुनर्जपेत्
जपध्यनाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिद्ध्यति ५९
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम्
ध्यानद्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ६०
समाधिर्न्नाम योगांगमन्तिमं परिकीर्तितम्

समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्तते ६१
यदर्थमात्रनिर्भासं स्तिमितो दधिवत्स्थितम्
स्वरूपशून्यवद्धानं समाधिरभिधीयते ६२
ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम्
निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते ६३
न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ६४
नवाभिमन्यते किंचिद्बुध्यते न च काष्टवत्
एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते ६५
यथा दीपो निवातस्थः स्पन्दते न कदाचन
तथा समाधिनिष्ठोऽपि तस्मान्न विचलेत्सुधीः ६६
एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम्
तदन्तराया नश्यंति विघ्नाः सर्वे शनैःशनैः ६७

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां
वायुनैमिषेयर्षिसंवादे उत्तरखण्डे योगगतिवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७

अध्याय ३८

उपमन्युरुवाच
आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादः स्थानसंशयः
अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रांतिदर्शनम् १
दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता
दशैते युञ्जतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः २
आलस्यमलसत्त्वं तु योगिनां देहचेतनोः
धातुवैषम्यजा दोषा व्याधयः कर्मदोषजाः ३

प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना
इदं वेत्युभयाक्रान्तं विज्ञानं स्थानसंशयः ४
अप्रतिष्ठा हि मनसस्त्वनवस्थितिरुच्यते
अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वै योगवर्त्मनि ५
विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रांतिरित्यभिधीयते
दुःखमज्ञानजं पुंसां चित्तस्याध्यात्मिकं विदुः ६
आधिभौतिकमंगोत्थं यच्च दुःखं पुरा कृतैः
आधिदैविकमाख्यातमशन्यस्त्रविषादिकम् ७
इच्छाविघातजं मोक्षं दौर्मनस्यं प्रचक्षते
विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता ८
शान्तेष्वेतेषु विघ्नेषु योगासक्तस्य योगिनः
उपसर्गाः प्रवर्तंते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः ९
प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः
उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धयः १०
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते
प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम् ११
श्रवणं सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः
वार्त्ता वार्त्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम् १२
दर्शनं नाम दिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः
तथास्वादश्च दिव्येषु रसेष्वास्वाद उच्यते १३
स्पर्शनाधिगमस्तद्वद्वेदना नाम विश्रुता
गन्धादीनां च दिव्यानामाब्रह्मभुवनाधिपाः १४
संतिष्ठन्ते च रत्नानि प्रयच्छंति बहूनि च
स्वच्छन्दमधुरा वाणी विविधास्यात्प्रवर्तते १५
रसायनानि सर्वाणि दिव्याश्चौषधयस्तथा

सिध्यंति प्रणिपत्यैनं दिशंति सुरयोषितः १६
योगसिद्ध्यैकदेशेऽपि दृष्टे मोक्षे भवेन्मतिः
दृष्टमेतन्मया यद्वत्तद्वन्मोक्षो भवेदिति १७
कृशता स्थूलता बाल्यं वार्द्धक्यं चैव यौवनम्
नानाचातिस्वरूपं च चतुर्णां देहधारणम् १८
पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंग्रहः
एवमष्टगुणं प्राहुः पैशाचं पार्थिवं पदम् १९
जले निवसनं चैव भूम्यामेवं विनिर्गमः
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः २०
यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रैव जलदर्शनम्
विना कुम्भादिकं पाणौ जलसञ्चयधारणम् २१
यद्वस्तु विरसञ्चापि भोक्तुमिच्छति तत्क्षणात्
रसादिकं भवेच्चान्यत्त्रयाणां देहधारणम् २२
निर्व्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवैश्च समन्वितम्
तदिदं षोडशगुणमाप्यमैश्वर्यमद्भुतम् २३
शरीरादग्निनिर्माणं तत्तापभयवर्ज्जनम्
शक्तिर्जगदिदं दग्धुं यदीच्छेदप्रयत्नतः २४
स्थापनं वानलस्याऽप्सु पाणौ पावकधारणम्
दग्धे सर्गे यथापूर्व्वं मुखे चान्नादिपाचनम्
द्वाभ्यां देहविनिर्माणमाप्यैश्वर्यसमन्वितम् २५
एतच्चतुर्विंशतिधा तैजसं परिचक्षते
मनोजवत्वं भूतानां क्षणादन्तःप्रवेशनम् २६
पर्व्वतादिमहाभारधारणञ्चाप्रयत्नतः
गुरुत्वञ्च लघुत्वञ्च पाणावनिलधारणम् २७
अंगुल्यग्रनिपाताद्यैर्भूमेरपि च कम्पनम्

एकेन देहनिष्पत्तिर्युक्तं भोगैश्च तैजसैः २८
द्वात्रिंशद्गुणमैश्वर्य्यं मारुतं कवयो विदुः
छायाहीनविनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् २९
खेचरत्वं यथाकाममिन्द्रियार्थसमन्वयः
आकाशलंघनं चैव स्वदेहे तन्निवेशनम् ३०
आकाशपिण्डीकरणमशरीरत्वमेव च
अनिलैश्वर्यसंयुक्तं चत्वारिंशद्गुणं महत् ३१
ऐन्द्रमैश्वर्यमाख्यातमाम्बरं तत्प्रचक्षते
यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः ३२
सर्वस्याभिभवश्चैव सर्वगुह्यार्थदर्शनम्
कर्मानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम् ३३
संसारदर्शनं चैव भोगैरैन्द्रैस्समन्वितम्
एतच्चांद्रमसैश्वर्यं मानसं गुणतोऽधिकम् ३४
छेदनं ताडनं चैव बंधनं मोचनं तथा
ग्रहणं सर्वभूतानां संसारवशवर्तिनाम् ३५
प्रसादश्चापि सर्वेषां मृत्युकालजयस्तथा
आभिमानिकमैश्वर्यं प्राजापत्यं प्रचक्षते ३६
एतच्चान्द्रमसैर्भोगैः षट्पञ्चाशद्गुणं महत्
सर्गः संकल्पमात्रेण त्राणं संहरणं तथा ३७
स्वाधिकारश्च सर्वेषां भूतचित्तप्रवर्तनम्
असादृश्यं च सर्वस्य निर्माणं जगतः पृथक् ३८
शुभाशुभस्य करणं प्राजापत्यैश्च संयुतम्
चतुष्षष्ठिगुणं ब्राह्ममैश्वर्यं च प्रचक्षते ३९
बौद्धादस्मात्परं गौणमैश्वर्यं प्राकृतं विदुः
वैष्णवं तत्समाख्यातं तस्यैव भुवनस्थितिः

ब्रह्मणा तत्पदं सर्वं वक्तुमन्यैर्न शक्यते ४०
तत्पौरुषं च गौणं च गणेशं पदमैश्वरम्
विष्णुना तत्पदं किंचिज्ज्ञातुमन्यैर्न शक्यते ४१
विज्ञानसिद्धयश्चैव सर्वा एवौपसर्गिकाः
निरोद्धव्या प्रयत्नेन वरराग्येण परेण तु ४२
प्रतिभासेष्वशुद्धेषु गुणेष्वासक्तचेतसः
न सिध्येत्परमैश्वर्यमभयं सार्वकामिकम् ४३
तस्माद्गुणांश्च भोगांश्च देवासुरमहीभृताम्
तृणवद्यस्त्यजेत्तस्य योगसिद्धिः परा भवेत् ४४
अथवानुग्रहेच्छायां जगतो विचरेन्मुनिः
यथाकामंगुणान्भोगान्भुक्त्वा मुक्तिं प्रयास्यति ४५
अथ प्रयोगं योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहितः
शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः
विजने जंतुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते ४६
सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गन्धधूपादिवासिते
मुक्तपुष्पसमाकीर्णे वितानादि विचित्रिते ४७
कुशपुष्पसमित्तोयफलमूलसमन्विते
नाग्न्यभ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपि वा ४८
न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले
न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जनावृते ४९
श्मशाने चैत्यवल्मीके जीर्णागारे चतुष्पथे
नदीनदसमुद्राणां तीरे रथ्यांतरेऽपि वा ५०
न जीर्णोद्यानगोष्ठादौ नानिष्टे न च निंदिते
नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते ५१
नच्छर्द्यामातिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते

न चातिचिंताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासितः ५२
नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगमाचरेत्
युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु ५३
युक्तनिद्राप्रबोधश्च सर्वायासविवर्जितः
आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचि ५४
पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यसेदासनेषु च
अभिवंद्य स्वगुर्वंतानभिवाद्याननुक्रमात् ५५
ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिष्टलोचनः
किंचिदुन्नामितशिरा दंतैर्दंतान्न संस्पृशेत् ५६
दंताग्रसंस्थिता जिह्वामचलां सन्निवेश्य च
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ५७
ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य बाहू तिर्यगयत्नतः
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपरि ५८
उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरो विष्टभ्य चाग्रतः
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ५९
संभृतप्राणसंचारः पाषाण इव निश्चलः
स्वदेहायतनस्यांतर्विचिंत्य शिवमंबया ६०
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत्
मूले नासाग्रतो नाभौ कंठे वा तालुरंध्रयोः ६१
भ्रूमध्ये द्वारदेशे वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेत्
परिकल्प्य यथान्यायं शिवयोः परमासनम् ६२
तत्र सावरणं वापि निरावरणमेव वा
द्विदलेषोडशारे वा द्वादशारे यथाविधि ६३
दशारे वा षडस्त्रे वा चतुरस्त्रे शिवं स्मरेत्
भ्रुवोरंतरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम् ६४

भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे
विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके ६५
षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै
पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः ६६
ककारादिटकारांता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात्
भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद् १धृदयान्तरे ६७
गोक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्ता यथाक्रमम्
अधो दलस्याम्बुजस्य एतस्य २ च दलानि षट् ६८
विधूमांगारवर्णस्य वर्णा वाद्याश्च लान्तिमाः
मूलाधारारविंदस्य हेमाभस्य यथाक्रमम्
वकारादिसकारान्ता वर्णाः पर्णमयाः स्थिताः ६९
एतेष्वथारविंदेषु यत्रैवाभिरतं मनः
तत्रैव देवं देवीं च चिंतयेद्धीरया धिया ७०
अंगुष्ठमात्रममलं दीप्यमानं समंततः
शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ७१
इन्दुरेखासमाकारं तारारूपमथापि वा
नीवारशूकस्सदृशं बिससुत्राभमेव वा ७२
कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम्
क्षित्यादितत्त्वविजयं ध्याता यद्यपि वाञ्छति ७३
तत्तत्तत्त्वाधिपामेव मूर्तिं स्थूलां विचिंतयेत्
सदाशिवांता ब्रह्माद्यभवाद्याश्चाष्टमूर्तयः ७४
शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिताः
घोरा मिश्रा प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः ७५
फलाभिलाषरहितैश्चिन्त्याश्चिन्ताविशारदैः
घोराश्चेच्चिंतिताः कुर्युः पापरोगपरिक्षयम् ७६

चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि
सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शांतिः प्रज्ञा प्रसिध्यति ७७
सिध्यंति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र संशयः ७८

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
योगगतौ विघ्नोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८

अध्याय ३९

उपमन्युरुवाच
श्रीकंठनाथं स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धयः
प्रसिध्यंतीति मत्वैके तं वै ध्यायंति योगिनः १
स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते
स्थूलं तु निश्चलं चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्थिरम् २
शिवे तु चिंतिते साक्षात्सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः
मूर्त्यंतरेषु ध्यातेषु शिवरूपं विचिंतयेत् ३
लक्षयेन्मनसः स्थैर्यं तत्तद्ध्यायेत्पुनः पुनः
ध्यानमादौ सविषयं ततो निर्विषयं जगुः ४
तत्र निर्विषयं ध्यानं नास्तीत्येव सतां मतम्
बुद्धेर्हि सन्ततिः काचिद्ध्यानमित्यभिधीयते ५
तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते
तस्मात्सविषयं ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम् ६
सूक्ष्माश्रयं निर्विषयं नापरं परमार्थतः
यद्वा सविषयं ध्यानं तत्साकारसमाश्रयम् ७
निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं मतम्
निर्बीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते ८
निराकारश्रयत्वेन साकाराश्रयतस्तथा

तस्मात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम् ९
अंते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीजं सर्वसिद्धये
प्राणायामेन सिध्यंति देव्याः शांत्यादयः क्रमात् १०
शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम्
शमः सर्वापदां चैव शांतिरित्यभिधीयते ११
तमसोऽन्तबहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते
बहिरन्तःप्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयते १२
स्वस्थता या तु सा बुद्धः प्रसादः परिकीर्तितः
कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यंतराणि च १३
बुद्धेः प्रसादतः क्षिप्रं प्रसन्नानि भवन्त्युत
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यद्वा ध्यानप्रयोजनम्
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत् १४
ज्ञानवैराग्यसंपन्नो नित्यमव्यग्रमानसः
श्रद्दधानः प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृतः १५
ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहुः १६
योगाभ्यासस्तथाल्पेऽपि यथा पापं विनाशयेत्
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् १७
अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते
बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यावलंबनम्
ध्येयमित्युच्यते सद्भिस्तच्च सांबः स्वयं शिवः १९
विमुक्तिप्रत्ययं पूर्णमैश्वर्यं चाणिमादिकम्
शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्तं प्रयोजनम् २०
यस्मात्सौख्यं च मोक्षं च ध्यानादभयमाप्नुयात्
तस्मात्सर्वं परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्नरः २१
नास्ति ध्यानं विना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः

ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः २२
ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्ज्जितम्
योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिध्यति २३
प्रक्षीणाशेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः
पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा २४
यथावह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात् २५
अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयेत्तमः
योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापं विनाशयेत् २६
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्
यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यांतो नैव विद्यते २७
नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः
नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत् २८
तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान्
योगिनो न प्रपद्यंते स्वात्मप्रत्ययकारणात् २९
योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ३०
यथेहांतश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः
तथांतर्ध्याननिरताः प्रियाश्शंभोर्न कर्मिणः ३१
बहिस्करा यथा लोके नातीव फलभोगिनः
दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः ३२
यद्यंतरा विपद्यंते ज्ञानयोगार्थमुद्यतः
योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गमिष्यति ३३
अनुभूय सुखं तत्र स जातो योगिनां कुले
ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा संसारमतिवर्त्तते ३४

जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः
न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः ३५
द्विजानां वेदविदुषां कोटिं संपूज्य यत्फलम्
भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिने ३६
यज्ञाग्निहोत्रदानेन तीर्थहोमेषु यत्फलम्
योगिनामन्नदानेन तत्समस्तं फलं लभेत् ३७
ये चापवादं कुर्वंति विमूढाश्शिवयोगिनाम्
श्रोतृभिस्ते प्रपद्यन्ते नरकेष्वामहीक्षयात् ३८
सति श्रोतरि वक्तास्यादपवादस्य योगिनाम्
तस्माच्छ्रोता च पापीयान्दण्ड्यस्सुमहतां मतः
ये पुनः सततं भक्त्या भजंति शवयोगिनः ३९
ते विदंति महाभोगानंते योगं च शांकरम्
भोगार्थिभिर्नरैस्तस्मात्संपूज्याः शिवयोगिनः ४०
प्रतिश्रयान्नपानाद्यैः शय्याप्रावरणादिभिः
योगधर्मः ससारत्वादभेद्यः पापमुद्गरैः ४१
वज्रतंदुलवज्ज्ञेयं तथा पापेन योगिनः
न लिप्यंते च तापौघैः पद्मपत्रं यथांभसा ४२
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शिवयोगरतो मुनिः
सोऽपि देशो भवेत्पूतः सपूत इति किं पुनः ४३
तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृत्यमन्यद्विचक्षणः
सर्वदुःखप्रहाणाय शिवयोगं समभ्यसेत् ४४
सिद्धयोगफलो योगी लोकानां हितकाम्यया
भोगान्भुक्त्वा यथाकामं विहरेद्वात्र वर्तताम् ४५
अथवा क्षुद्रमित्येव मत्वा वैषयिकं सुखम्
त्यक्त्वा विरागयोगेन स्वेच्छया कर्म मुच्यताम् ४६

यस्त्वासन्नां मृतिं मर्त्यो दृष्टारिष्टं च भूयसा
स योगारम्भनिरतः शिवक्षेत्रं समाश्रयेत् ४७
स तत्र निवसन्नेव यदि धीरमना नरः
प्राणान्विनापि रोगाद्यैः स्वयमेव परित्यजेत् ४८
कृत्वाप्यनशनं चैव हुत्वा चांगं शिवानले
क्षिप्त्वा वा शिवतीर्थेषु स्वदेहमवगाहनात् ४९
शिवशास्त्रोक्तविधिवत्प्राणान्यस्तु परित्यजेत्
सद्य एव विमुच्येत नात्र कार्या विचारणा २ ५०
रोगाद्यैर्वाथ विवशः शिवक्षेत्रं समाश्रितः
म्रियते यदि सोप्येवं मुच्यते नात्र संशयः ५१
यथा हि मरणं श्रेष्ठमुशंत्यनशनादिभिः
शास्त्रविश्रंभधीरेण मनसा क्रियते यतः ५२
शिवनिन्दारतं हत्वा पीडितः स्वयमेव वा
यस्त्यजेद्दुस्त्यजान्प्राणान्न स भूयः प्रजायते ५३
शिवनिन्दारतं हंतुमशक्तो यः स्वयं मृतः
सद्य एव प्रमुच्येत त्रिः सप्तकुलसंयुतः ५४
शिवार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवभक्तार्थमेव वा
न तेन सदृशः कश्चिन्मुक्तिमार्गास्थितो नरः ५५
तस्माच्छीघ्रतरा मुक्तिस्तस्य संसारमंडलात्
एतेष्वन्यतमोपायं कथमप्यवलम्ब्य वा ५६
षडध्वशुद्धिं विधिवत्प्राप्तो वा म्रियते यदि
पशूनामिव तस्येह न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ५७
नैवाशौचं प्रपद्येत तत्पुत्रादिविशेषतः
शिवचारार्थमथवा शिवविद्यार्थमेव वा
खनेद्वा भुवि तद्देहं दहेद्वा शुचिनाग्निना ५८

क्षिपेद्वाप्सु शिवास्वेव त्यजेद्वा काष्ठलोष्टवत्
अथैनमपि चोद्दिश्य कर्म चेत्कर्तुमीप्सितम् ५९
कल्याणमेव कुर्वीत शक्त्या भक्तांश्च तर्पयेत्
धनं तस्य भजेच्छैवः शैवी चेतस्य सन्ततिः
नास्ति चेत्तच्छिवे दद्यान्नदद्यात्पशुसन्ततिः ६०

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शैवयोगवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९

अध्याय ४०

श्रीसूत उवाच
इति स विजितमन्योर्यादवेनोपमन्योरधिगतमभिधाय ज्ञानयोगं
मुनिभ्यः
प्रणतिमुपगतेभ्यस्तेभ्य उद्भावितात्मा सपदि वियति वायुः
सायमन्तर्हितोऽभूत् १
ततः प्रभातसमये नैमिषीयास्तपोधनाः
सत्रान्तेऽवभृथं कर्तुं सर्व एव समुद्ययुः २
तदा ब्रह्मसमादेशाद्देवी साक्षात्सरस्वती
प्रसन्ना स्वादुसलिला प्रावर्तत नदीशुभा ३
सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा मुनयो हृष्टमानसाः
समाप्य सत्रं प्रारब्धं चक्रुस्तत्रावगाहनम् ४
अथ संतर्प्य देवादींस्तदीयैः सलिलैः शिवैः
स्मरन्तः पूर्ववृत्तान्तं ययुर्वाराणसीं प्रति ५
तदा ते हिमवत्पादात्पंततीं दक्षिणामुखीम्
दृष्ट्वा भागीरथी तत्र स्नात्वा तत्तीरतो ययुः ६
ततो वाराणसीं प्राप्य मुदितास्सर्व एव ते

तदोत्तरप्रवाहायां गंगायामवगाह्य च ७
अविमुक्तेश्वरं लिंगं दृष्ट्वाभ्यर्च्य विधानतः
प्रयातुमुद्यतास्तत्र ददृशुर्दिवि भास्वरम् ८
सूर्यकोटिप्रतीकाशं तेजोदिव्यं महाद्भुतम्
आत्मप्रभावितानेन व्याप्तसर्वदिगन्तरम् ९
अथ पाशुपताः सिद्धाः भस्मसञ्छन्नविग्रहाः
मुनयोऽभ्येत्य शतशो लीनाः स्युस्तत्र तेजसि १०
तथा विलीयमानेषु तपस्विषु महात्मसु
सद्यस्तिरोदधे तेजस्तदद्भुतमिवाभवत् ११
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नैमिषीया महर्षयः
किमेतदित्यजानन्तो ययुर्ब्रह्मवनं प्रति १२
प्रागेवैषां तु गमनात्पवनो लोकपावनः
दर्शनं नैमिषीयाणां संवादस्तैर्महात्मनः १३
शद्धां बुद्धिं ततस्तेषां सांबे सानुचरे शिवे
समाप्तिं चापि सत्रस्य दीर्घपूर्वस्य सत्रिणाम् १४
विज्ञाप्य जगतां धात्रे ब्रह्मणे ब्रह्मयोनये
स्वकार्ये तदनुज्ञातो जगाम स्वपुरं प्रति १५
अथ स्थानगतो ब्रह्मा तुम्बुरोर्नारदस्य च
परस्पर स्पर्द्धितयोर्गाने विवदमानयोः १६
तदुद्भावितगानोत्थरसैर्माध्यस्थमाचरन्
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुखमास्ते निषेवितः १७
तदानवसरादेव द्वाःस्थैर्द्वारि निवारिताः
मुनयो ब्रह्मभवनाद्बहिः पार्श्वमुपाविशन् १८
अथ तुम्बुरुणा गाने समतां प्राप्य नारदः
साहचर्येष्वनुज्ञातो ब्रह्मणा परमेष्ठिना १९

त्यक्त्वा परस्परस्पर्द्धां मैत्रीं च परमां गतः
सह तेनाप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च समावृतः २०
उपवीणयितुं देवं नकुलीश्वरमीश्वरम्
भवनान्निर्ययौ धातुर्जलदादंशुमानिव २१
तं दृष्ट्वा षट्कुलीयास्ते नारदं मुनिगोवृषम्
प्रणम्यावसरं शंभोः पप्रच्छुः परमादरात् २२
स चावसर एवायमितोंतर्गम्यतामिति
वदन्ययावन्यपरस्त्वरया परया युतः २३
ततो द्वारि स्थिता ये वै ब्रह्मणे तान्नयवेदयन्
तेन ते विविशुर्वेश्म पिंडीभूयांडजन्मनः २४
प्रविश्य दूरतो देवं प्रणम्य भुवि दंडवत्
समीपे तदनुज्ञाताः परिवृत्योपतस्थिरे २५
तांस्तत्रावस्थितान् पृष्ट्वा कुशलं कमलासनः
वृत्तांतं वो मया ज्ञातं वायुरेवाह नो यतः २६
भवद्भिः किं कृतं पश्चान्मारुतेंतर्हिते सति
इत्युक्तवति देवेशे मुनयोऽवभृथात्परम् २७
गंगातीर्थेस्य गमनं यात्रां वाराणसीं प्रति
दर्शनं तत्र लिंगानां स्थापितानां सुरेश्वरैः २८
अविमुक्तेश्वरस्यापि लिंगस्याभ्यर्चनं सकृत्
आकाशे महतस्तस्य तेजोराशेश्च दर्शनम् २९
मुनीनां विलयं तत्र निरोधं तेजसस्ततः
याथात्म्यवेदनं तस्य चिंतितस्यापि चात्मभिः ३०
सर्वं सविस्तरं तस्मै प्रणम्याहुर्मुहुर्मुहुः
मुनिभिः कथितं श्रुत्वा विश्वकर्मा चतुर्मुखः ३१
कंपयित्वा शिरः किंचित्प्राह गंभीरया गिरा

प्रत्यासीदति युष्माकं सिद्धिरामुष्मिकी परा ३२
भवद्भिर्दीर्घसत्रेण चिरमाराधितः प्रभुः
प्रसादाभिमुखो भूत इति भुतार्थसूचितम् ३३
वाराणस्यां तु युष्माभिर्यद्दृष्टं दिवि दीप्तिमत्
तल्लिंगसंज्ञितं साक्षात्तेजो माहेश्वरं परम् ३४
तत्र लीनाश्च मुनयः श्रौतपाशुपतव्रताः
मुक्ता बभूवुः स्वस्थाश्च नैष्ठिका दग्धकिल्बिषाः ३५
प्राप्यानेन यथा मुक्तिरचिराद्भवतामपि
स चायमर्थः सूच्येत युष्मद्दृष्टेन तेजसा ३६
तत्र वः काल एवैष दैवादुपनतः स्वयम्
प्रयात दक्षिणं मेरोः शिखरं देवसेवितम् ३७
सनत्कुमारो यत्रास्ते मम पुत्रः परो मुनिः
प्रतीक्ष्यागमनं साक्षाद्भूतनाथस्य नंदिनः ३८
पुरा सनत्कुमारोपि दृष्ट्वापि परमेश्वरम्
अज्ञानात्सर्वयोगीन्द्रमानी विनयदूषितः ३९
अभ्युत्थानादिकं युक्तमकुर्वन्नतिनिर्भयः
ततोऽपराधात्क्रुद्धेन महोष्ट्रो नंदिना कृतः ४०
अथ कालेन महता तदर्थे शोचता मया
उपास्य देवं देवीञ्च नंदिनं चानुनीय वै ४१
कथंचिदुष्ट्रता तस्य प्रयत्नेन निवारिता
प्रापितो हि यथापूर्वं सनत्पूर्वां कुमारताम् ४२
तदाह च महादेवः स्मयन्निव गणाधिपम्
अवज्ञाय हि मामेव तथाहंकृतवान्मुनिः ४३
अतस्त्वमेव याथात्म्यं ममास्मै कथयानघ
ब्रह्मणः पूर्वजः पुत्रो मां मूढ इव संस्मरन् ४४

मयैव शिष्यते दत्तो मम ज्ञानप्रवर्तकः
धर्माध्यन्ताभिषेकं च तव निर्वर्त्तयिष्यति ४५
स एवं व्याहृतो भूयस्सर्वभूतगणाग्रणीः
यत्पराज्ञापनं मूर्ध्ना प्रातः प्रतिगृहीतवान् ४६
तथा सनत्कुमारोऽपि मेरौ मदनुशासनात्
प्रसादार्थं गणस्यास्य तपश्चरति दुश्चरम् ४७
द्रष्टव्यश्चेति युष्माभिः प्राग्गणेशसमागमात्
तत्प्रसादार्थमचिरान्नंदी तत्रागमिष्यति ४८
इति सत्वरमादिश्य प्रेषिता विश्वयोगिना
कुमारशिखरं मेरोर्दक्षिणं मुनयो ययुः ४९
इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
नैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ४०

अध्याय ४१

सूत उवाच
तत्र स्कंदसरो नाम सरस्सागरसन्निभम्
अमृतस्वादुशिशिरस्वच्छा गाधलघूदकम् १
समंततः संघटितं स्फटिको पलसंचयैः
सर्वर्तुकुसुमैः फुल्लैश्छादिताखिलदिग्मुखम् २
शैवलैरुत्पलैः पद्मैः कुमुदैस्तारकोपमैः
तरंगैरभ्रसंकाशैराकाशमिव भूमिगम् ३
सुखावतरणारोहैः स्थलैर्नीलशिलामयैः
सोपानमार्गौ रुचिरैश्शोभमानाष्टदिग्मुखम् ४
तत्रावतीर्णैश्च यथा तत्रोत्तीर्णैश्च भूयसा
स्नातैः सितोपवीतैश्च शुक्लाकौपीनवल्कलैः ५

जटाशिखायनैर्मुंडैस्त्रिपुंड्रकृतमंडनैः
विरागविवशस्मेरमुखैर्मुनिकुमारकैः ६
घटैः कमलिनीपत्रपुटैश्च कलशैः शिवैः
कमण्डलुभिरन्यैश्च तादृशैः करकादिभिः ७
आत्मार्थं च परार्थं च देवतार्थं विशेषतः
आनीयमानसलिलमात्तपुष्पं च नित्यशः ८
अंतर्जलशिलारूढैर्नीचानां स्पर्शशंकया
आचारवद्भिर्मुनिभिः कृतभस्मांगधूसरैः ९
इतस्ततोऽप्सु मज्जद्भिरिष्टशिष्टैः शिलागतैः
तिलैश्च साक्षतैः पुष्पैस्त्यक्तदर्भपवित्रकैः १०
देवाद्यमृषिमध्यं च निर्वर्त्य पितृतर्पणम्
निवेदयेदभिज्ञेभ्यो नित्यस्नानगतान् द्विजान् ११
स्थानेस्थाने कृतानेकबलिपुष्पसमीरणैः
सौरार्घ्यपूर्वं कुर्वद्भिःस्थंडलेभ्यर्चनादिकम् १२
क्वचिन्निमज्जदुन्मज्जत्प्रस्रस्तगजयूथपम्
क्वचिच्च तृषयायातमृगीमृगतुरंगमम् १३
क्वचित्पीतजनोत्तीर्णमयूरवरवारणम्
क्वचित्कृततटाघातवृषप्रतिवृषोज्ज्वलम् १४
क्वचित्कारंडवरवैः क्वचित्सारसकूजितैः
क्वचिच्च कोकनिनदैः क्वचिद्भ्रमरगीतिभिः १५
स्नानपानादिकरणैः स्वसंपद्द्रुमजीविभिः
प्रणयात्प्राणिभिस्तैस्तैर्भाषमाणमिवासकृत् १६
कूलशाखिशिखालीनकोकिलाकुलकूजितैः
आतपोपहतान्सर्वान्नामंत्रयदिवानिशम् १७
उत्तरे तस्य सरसस्तीरे कल्पतरोरधः

वेद्यां वज्रशिलामय्यां मृदुले मृगचर्मणि १८
सनत्कुमारमासीनं शश्वद्बालवपुर्द्धरम्
तत्कालमात्रोपरतं समाधेरचलात्मनः १९
उपास्यमानं मुनिभिर्योगींद्रैरपि पूजितम्
ददृशुर्नैमिषेयास्ते प्रणताश्चोपतस्थिरे २०
यावत्पृष्टवते तस्मै प्रोचुः स्वागतकारणम्
तुमुलः शुश्रुवे तावद्दिवि दुंदुभिनिस्वनः २१
ददृशे तत्क्षणे तस्मिन्विमानं भानुसन्निभम्
गणेश्वरैरसंख्येयैः संवृतं च समंततः २२
अप्सरोगणसंकीर्णं रुद्रकन्याभिरावृतम्
मृदंगमुरजोद्घुष्टं वेणुवीणारवान्वितम् २३
चित्ररत्नवितानाढ्यं मुक्तादामविराजितम्
मुनिभिस्सिद्धगंधर्वैर्यक्षचारणकिन्नरैः २४
नृत्यद्भिश्चैव गायद्भिर्वादयद्भिश्च संवृतम्
वीरगोवृषचिह्नेन विद्रुमद्रुमयष्टिना २५
कृतगोपुरसत्कारं केतुना मान्यहेतुना
तस्य मध्ये विमानस्य चामरद्वितयांतरे २६
छत्रस्य मणिदंडस्य चंद्रस्येव शुचेरधः
दिव्यसिंहासनारूढं देव्या सुयशया सह २७
श्रिया च वपुषा चैव त्रिभिश्चापि विलोचनैः
प्राकारैरभिकृत्यानां प्रत्यभिज्ञापकं प्रभोः २८
अविलंघ्य जगत्कर्तुराज्ञापनमिवागतम्
सर्वानुग्रहणं शंभोः साक्षादिव पुरःस्थितम् २९
शिलादतनयं साक्षाच्छ्रीमच्छूलवरायुधम्
विश्वेश्वरगणाध्यक्षं विश्वेश्वरमिवापरम् ३०

विश्वस्यापि विधातृ-णां निग्रहानुग्रहक्षमम्
चतुर्बाहुमुदारांगं चन्द्ररेखाविभूषितम् ३१
कंठे नागेन मौलौ च शशांकेनाप्यलंकृतम्
सविग्रहमिवैश्वर्यं सामर्थ्यमिव सक्रियम् ३२
समाप्तमिव निर्वाणं सर्वज्ञमिव संगतम्
दृष्ट्वा प्रहृष्टवदनो ब्रह्मपुत्रः सहर्षिभिः ३३
तस्थौ प्राञ्जलिरुत्थाय तस्यात्मानमिवार्पयन्
अथ तत्रांतरे तस्मिन्विमाने चावनिं गते ३४
प्रणम्य दण्डवद्देवं स्तुत्वा व्यज्ञापयन्मुनीम्
षट्कुलीया इमे दीर्घं नैमिषे सत्रमास्थिताः
आगता ब्रह्मणादिष्टाः पूर्वमेवाभिकांक्षया ३५
श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्मपुत्रस्य नंदीछित्त्वा पाशान्दृष्टिपातेन सद्यः
शैवं धर्मं चैश्वरं ज्ञानयोगं दत्त्वा भूयो देवपार्श्वं जगाम ३६
सनत्कुमारेण च तत्समस्तं व्यासाय साक्षाद्गुरवे ममोक्तम्
व्यासेन चोक्तं महितेन मह्यं मया च तद्वः कथितं समासात् ३७
नावेदविद्भ्यः कथनीयमेतत्पुराणरत्नं पुरशासनस्य
नाभक्तशिष्याय च नास्तिकेभ्यो दत्तं हि मोहान्निरयं ददाति ३८
मार्गेण सेवानुगतेन यैस्तद्दत्तं गृहीतं पठितं श्रुतं वा
तेभ्यः सुखं धर्ममुखं त्रिवर्गं निर्वाणमंते नियतं ददाति ३९
परस्परस्योपकृतं भवद्भिर्मया च पौराणिकमार्ग्गयोगात्
अतो गमिष्येऽहमवाप्तकामः समस्तमेवास्तु शिवं सदा नः ४०
सूते कृताशिषि गते मुनयः सुवृत्ता यागे च पर्यवसिते महति प्रयोगे
काले कलौ च विषयैः कलुषायमाणे वाराणसीपरिसरे वसतिं
विनेतुः ४१
अथ च ते पशुपाशमुमुक्षयाखिलतया कृतपाशुपतव्रताः

अधिकृताखिलबोधसमाधयः परमनिर्वृतिमापुरनिंदिताः ४२
व्यास उवाच
एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात्
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि ४३
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च
अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च ४४
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात्
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक् ४५
पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुतेः पुनः
तस्मात्पुनःपुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः ४६
पञ्चावृत्तिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया
परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः ४७
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः
सप्तकृत्वस्तदावृत्त्यालभन्त शिवदर्शनम् ४८
श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानंते मुक्तिं लभेच्च सः ४९
एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम्
भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसंमितं भक्तिवर्द्धनम् ५०
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा
सगणस्ससुतस्सांबश्शं करोतु स शंकरः ५१

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
व्यासोपदेशश्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णनं
नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१
समाप्तोऽयं ग्रन्थः

Credits:
Source: *Siva-Purana, Book 7*, Parts 1 & 2 (Bombay: Venkateshvara Steam Press, 1920).
Data Entry and Proofing by Jun Takashima et al.
File conversion using Vedapad software by Ralph Bunker.
Formatted for Maharishi University of Management Vedic Literature Collection.